CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला ४५

माधवाचार्यप्रणीतः

कालमाधवः

'तुलसी'-हिन्दीभाषाटीका-संस्कृतटिप्पणीविभूषितः

डा० व्रजकिशोर स्वाईं

आशीर्वचनम्

श्रीजयेन्द्रसरस्वती

श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्यपरंपरागतकाञ्चीकामकोटीपीठाधिपति-

जगद्गुरुश्रीशङ्कराचार्यपादानाम्

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

पोस्ट बाक्स नं० ११३९

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

४५

माधवाचार्यप्रणीतः

कालमाधवः

'तुलसी'-हिन्दीभाषाटीका-संस्कृतटिप्पणीविभूषितः

हिन्दीभाषाटीकाकारः, संस्कृतटिप्पणीकारः, भूमिकालेखकः

संपादकश्च

डा० व्रजकिशोर स्वाईं

वरिष्ठधर्मशास्त्राध्यापकः स्नातकोत्तरधर्मशास्त्रविभागः

श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः

श्रीविहारः, पुरी, उत्कलः

आशीर्वचनम्

श्रीजयेन्द्रसरस्वती

श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्यपरंपरागतकाञ्चीकामकोटीपीठाधिपति-

जगद्गुरुश्रीशङ्कराचार्यपादानाम्

सम्पादकः

डॉ० कपिलदेव गिरिः

BHARATIYA
VIDYA PRAKASHAN
P. BOX 1108 KACHAURI GALI.
VARANASI-221001
CALL : 65965

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० ११३९

जडाव भवन, के० ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक । चौखम्भासंस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४५
मूल्य : रु० १५०-००

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
इस ग्रन्थ के परिष्कृत तथा परिवर्धित मूल-पाठ एवं टीका, परिशिष्ट आदि के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं।

फोन : ६५८८९

१५३५१

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्भा विश्वभारती
पोस्ट बाक्स नं० १०८४
चौक, (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ५४७६६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
45
*****

KĀLAMĀDHAVA

OF

MĀDHAVĀCĀRYA

Edited with

Sanskrit Notes, Tulasī Hindi Commentary, Critical Introduction, Technical word-Index and Pratīka Index

by

Dr. BRAJA KISHORE SWAIN
*Post-Graduate Department of Dharmaśāstra
Sri Jagannāth Sanskrit University,
Śrī Vihār, Purī. Orissā*

Forword
by

H. H. SRI JAYENDRA SARASWATI
Śrī Śankara Bhagavadpādāchāryaparamparāgata Śrī Kanchi Kāmakoti Peethadhipathi Jagadguru Śrī Śankarāchārya Swamigal-Kanchee Puram

Edited by

Dr. KAPIL DEO GIRI

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 1139
Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI–221 001 (INDIA)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

© *Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi*

Phone : 65889

First Edition : 1989

Also can be had of

CHAUKHAMBHA VISVABHARATI

Post Box No. 1084

Chowk (Opposite Chitra Cinema)

VARANASI–221 001

Phone : 54766

Printers :

SRIGOKUL MUDRANALAYA

Gopal Mandir Lane,

Varanasi–221 001

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Phone : 2315

Sri Chandramouleeswaraya Namaha

SRI SANKARA BHAGAVADPADACHARYA PARAMPARAGATHA
His Holiness Sri Kanchi Kamakoti Peetadhipathi

Jagadguru Sri Sankaracharya Swamigal

Srimatam, : Samasthanam,
KANCHEEPURAM - 631 502.

अहोबल पण्डितः स्वविरचितायां "ईशानस्तुतौ" श्री विद्यारण्यमुनिं इत्थं प्रशंसति

वेदानां भाष्यकर्ता विवृतमुनिवचा धातुवृत्तेर्विधाता प्रोद्यद्विद्यानगर्यां हरिहरनृपतेः सार्वभौमत्वदायी वाणी नीलाहिवेणी सरसिजनिलया किंकरीति प्रसिद्धा विद्यारण्योऽग्रगण्योऽभवदखिलगुरुः शङ्कराचार्यः॥

श्री विद्यारण्याचार्याः अद्वैत विद्यायाः प्रसारणे धुरन्धराणां श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्याणां समनन्तर स्थानं आवहन्ति, तथा वेदार्थ विवृतौ असाधारणं स्थानं अधितिष्ठन्ति। विद्यारण्य-स्वामिन अरण्यानीनिभाः सर्वा विद्या आलोड-यन्त "विद्यारण्य" इति अन्वर्थाभिधाना इति नेदमाविदितं सर्वेषाम्। ते मूर्तिमन्तः इव पाण्डित्य सदाचार तपश्चर्या-राजतन्त्राणां विराजन्ते। तुरीयाश्रमाश्रयणात् पूर्वं ते माधवार्यः माधवाचार्य इति च ख्याता आसन्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्री विद्यारण्याचार्याः मीमांसा-व्याकरण-अद्वैतविद्या, सङ्गीत-गणित ज्योतिषादिषु नानाशास्त्रेषु अमूल्यानां ग्रन्थरत्नानां निर्मातारः। उपलभ्यमानेषु प्रसिद्धेषु तदीयेषु ज्योतिष-निबन्धेषु कालमाधवारण्यं मान्यतमं मान्यं स्थानमर्हति।

पूरी जगन्नाथस्य श्री जगन्नाथ संस्कृत-विश्वविद्यालये धर्मशास्त्रविभागाध्यक्षाः श्री ब्रजकिशोर महाशयाः कालमाधवारण्यस्यास्य निबन्धस्य संस्कृत भाषायां निजकृत टीकासहित, तथा श्री तुलसीमहाशयकृत हिन्दी-टीकया च सह प्रकाशनं नयन्तीति महदिदं प्रमोदस्थानं अभिनन्दनीयं च।

आशास्यते च, अस्मिन् शास्त्रे सादराः भारतीयाः, निबन्धस्यास्य उपयोगेन, निबन्धेऽस्मिन् निहितं विद्यारण्याशयानुसारिणं ज्ञानराशिमवगत्य आत्मानं कृतार्थयेयुः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

''मदीय मातृदेवी स्वर्गत: सजनीदेवी की पुण्यस्मृति के
उद्देश्य में कालमाधव का यह संस्करण
उत्सृष्ट किया जाता है''

यत्क्रोडवर्धिततनोर्मतिरप्यनेका
यद्वाक्यपङ्क्तिघटिता खलु भारती मे ।
सा सांप्रतं दिवि तदीयपवित्रवीथ्यां
स्मृत्यां समर्पितमिदं किल माधवीयम् ॥

व्रजकिशोर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमिका

कालमाधव की रचना परिपाटी तत्संपर्कीय निबन्ध ग्रन्थों की परिपाटी से भिन्न है। विशेषतः धर्मशास्त्रीय विषयों का संग्रन्थन और अनुशीलन के समय माधवाचार्य के ऊपर हेमाद्रि और कृत्यकल्पतरु का प्रभाव पड़ा है। हेमाद्रि का चतुर्वर्गचिन्तामणि के अन्तर्गत परिशेषखण्ड और कृत्यकल्पतरु के अन्तर्गत नियतकालकाण्ड इन दो ग्रन्थों का अवलम्बन से माधवाचार्य ने अपने ग्रन्थ की परिपाटी बनाई है। नियतकालकाण्ड में जिस रीति से काल की चर्चा हुई है वह रीति कालमाधव में नहीं स्वीकृत की गई, किन्तु सिद्धान्त के ऊपर माधवाचार्य की नजर रही। परिशेषखण्ड की परिपाटी के ऊपर माधवाचार्य की नजर परिस्फुट है। इस खण्ड में अठारह अध्यायों में संपूर्ण व्यावहारिक काल की चर्चा हुई है। किन्तु माधवाचार्य ने इन सब विषयों का संक्षेप पांच प्रकरणों में प्रकाश किया है। प्रभाव का यह एक लक्ष्यणीय दृष्टान्त है कि हेमाद्रि ने विषयों की सूची दी है। इस स्थल में उन्होंने कहा कि[1] चतुर्वर्गचिन्तामणि का पहला देवता कांड, उसके बाद काल का निर्णय है। उसके बाद कर्मविपाक और अन्त में लक्षणों के ऊपर बिचार है। इस प्रकार चार भागों से महा प्रकरण बनाया है। माधवाचार्य के ऊपर ग्रन्थ संग्रंथन के लिये इस निर्माण विधि का प्रभाव पड़ा है। उसने कहा है कि[2]—यहाँ पांच प्रकरणों का समाहार हैं। यथा—उपोद्घात, वत्सरादि प्रकरण, प्रतिपत्प्रकरण, द्वितीयादि प्रकरण और प्रकीर्णक प्रकरण। परिशेष-खण्ड का पहला अध्याय में कालविषयक तत्त्वों का विचार के साथ वत्सरा-दिनिरूपण सामिल है। मलमास का निर्णय के लिये संपूर्ण द्वितीय अध्याय दिया है। किन्तु मास प्रकरण के भीतर मलमास का निर्णय माधवाचार्य ने सामिल किया है।

---

१. Hemadri—*caturvargacintamani* [Chaukambha Sanskrit Sansthan, Varanasi (1985) 3. vols.]

२. पञ्च प्रकरणान्यत्र तेषूपोद्घातवत्सरौ।
प्रतिपच्छिष्टतिथयो नक्षत्रादिरिति क्रमः॥

कालमाधवकारिका—८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृत्यकल्पतरु चतुर्वर्गचिन्तामणि से प्राचीन है।[1] इसकी रचना परिपाटी से कालमाधव की रचना परिपाटी अलग है। नियतकालकाण्ड (१क) में पांच महायज्ञों को उद्देश्यकर काल विचार उपन्यस्त है। इसलिये पहले पांच महायज्ञों का विषय प्रारम्भ में आता है। वत्सरादि व्यावहारिक काल का विषय उसमें पर्वकृत्य (१ख) और तिथिकृत्य (१ग) प्रकरण में विन्यस्त है। किन्तु काल की स्थिति के बारे में आलोच्य तथ्य जो परिशेष खण्ड में (१घ) कूर्म पुराण वचन से लेकर प्रवर्त्तित है उसकी चर्चा नियतकाल काण्ड में नहीं हुई है, क्योंकि नियतकाल काण्ड में गृहस्थ का पांच महायज्ञ विषयों को लेकर चर्चा हुई और व्यावहारिक काल तत्त्व के अन्तर्गत विचारणीय विषयों की चर्चा उसमें गौण है। इसलिये काल तत्त्व विषय में माधवाचार्य के ऊपर लक्ष्मीधर का प्रभाव नहीं है, यह मानना पड़ेगा। किन्तु काल-निर्णय के बारे में तो अवश्य है। पर्वकृत्य (१ङ) के भीतर लक्ष्मीधर ने संक्रान्ति निर्णय, ग्रह-निर्णय, युगादि-युगान्त निर्णय और मन्वादि निर्णय सामिल किये गये हैं। किन्तु तिथि (१च) कृत्य प्रकरण में प्रतिपदादि तिथियों का व्यावहारिक काल निर्णय नहीं किया गया है।

---

१. लक्ष्मीधरभट्ट प्रणीत कृत्यकल्पतरु का समय खी० ११२५–११४५, हेमाद्रि प्रणीत चतुर्वर्गचिन्तामणि का समय खी० १२७० ड० पि० वी० काणे महोदय का History of Dharmaśastra (B. O. R. I., Poona, 5 vols. 1975) के अनुसार समय स्वीकृत किया गया है।

१. (क) Niyatakalakanda of krityakalpataru (Gaekwad's oriatal Series, Barads 1950.) Ed. By. K. V. Rangasvami Aiyangar.

१. (ख) वही० पृ० ३५४

१. (ग) वही० पृ० ३७७

१. (घ) Chaturvargachintamani—parisesakhanda. Vol. III, p. III. p. 6.

अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः ॥ कूर्म० पु०। १. ५. २० (का० मा०, पृ० १५)

१. (ङ) Niyatakalakanda. p. 354

१. (च) वही० पृ० ३७७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कालतत्त्व और व्यावहारिक काल-निर्णय कालमाधव में चर्चा का विषय है। वस्तुतः व्यावहारिक काल निर्णय के बारे में धर्मशास्त्र निबन्धकारों ने ज्योतिषशास्त्र के अनुसार गणित-पद्धति के द्वारा निर्णीत काल नहीं स्वीकृत किया। इसलिये धर्मशास्त्र और पुराणों के वचनों को लेकर निर्णय किया जाता है। किन्तु कालतत्त्व के बारे में काल के अस्तित्व की जो चर्चा हुई है उसमें हेमाद्रि ने पुराणों का आश्रय आमूल लिया है। माधवाचार्य के ऊपर हेमाद्रि का एतादृश प्रभाव रहने पर भी धर्मशास्त्र और पुराण वचनों के ऊपर उसने निर्भर नहीं किया। वैदिक संहिता भाग से लेकर अर्वाचीन तन्त्र निबन्ध साहित्य और सांप्रदायिक साहित्य तक प्रसिद्ध प्रमाण वचनों के द्वारा कालतत्त्व का अस्तित्व उसने प्रमाणित किया।[1] माधवाचार्य ने अष्टादश विद्याओं को मन्थन कर कालतत्त्व को जिस प्रकार निकाला, सारे धर्मशास्त्र निबन्धकारों की मण्डली में किसी दूसरों ने नहीं किया है। वस्तुगत्या माधवाचार्य वेदान्ती[2] रूप में प्रसिद्ध है। अतः उसकी चर्चा-पद्धति वेदान्त की ओर केवल नहीं अपितु वेदभाग की ओर मिलती है। कालतत्त्व को अध्यवसित करने के लिये वैशेषिक दर्शन के ऊपर उसने विरक्ति प्रकाश की और अपनी वैदिकता प्रमाणित की।[3] धर्मशास्त्रार्थ निर्णय के लिये चौदह विद्याओं की आवश्यकता होती है।[4] किन्तु वेद का

---

१. द्र० कालमाधव का प्रथम प्रकरण, पृ० १–२३ (इस संस्करण में)

२. माधबाचार्य गृहस्थाश्रम को समाप्त कर शृङ्गेरी पीठ में संन्यासी बन कर वेदान्त की चर्चा कर विद्यारण्य के नाम से प्रसिद्ध हुये थे। पञ्चदशी सर्वदर्शनसंग्रह और जीवन्मुक्तविवेक उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। द्र० Kane, p. V, Histery of Dhanmashastra (B.O. R. I) Vol I, p. II. pp 778–792। विशेष द्रष्टव्य–Sayana and Madhava Vidyaranya by. Dr. Kripacharyulu. Guntur 1986.

३. "कालस्य गुणत्रयपरिणामत्वे सावयवत्वमनित्यत्वं घटादेरिव प्रसज्ज्येतेति चेत् नित्यनिरवयवकालतत्त्वाभिनिवेशवतो वैशेषिकादेः पतत्वयं वज्रप्रहारः शिरसि वेदवादिनां तु न काऽपि क्षतिः ॥ का० मा० (इस संस्करण में), पृ० ४ पर।

४. पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ या० स्मृ० १।३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रमाण अगर मिल जाता तो दूसरे प्रमाणों के ऊपर निर्भर करना अनिवार्य नहीं होता है। धर्म जिज्ञासुओं के लिए प्रधान प्रमाण वेद ही है।[१] इसलिए उसने मनु मत स्वीकार किया। अगर कोई जगह वैदिक प्रमाण मिलने के लिये कठिनाई पड़ती तो उस स्थल में धर्मशास्त्र का प्रमाण को निःसंशय वेद की तरह मान लेने के लिये कोई पश्चात् बुद्धि रखना नहीं, क्योंकि जाबालि ने इसके लिये नीति घोषित की है।[२] वैशेषिक दर्शन वालों ने काल को विभुपदार्थ रूप से माना।[३] उनके सिद्धान्तानुसार काल का कर्तृधर्म नहीं है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती है। किन्तु उस अवसर पर माधवाचार्य ने वैदिक प्रमाण को पाथेय कर काल की उत्पत्ति स्वीकृत की है। किन्तु यह काल व्यावहारिक काल है। नित्य विभु पदार्थ काल तो भगवान ही है। उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार उसने समाधान दिया है। ऋग्वेद में[४] इस प्रसंग में मन्त्र भी उपलब्ध है। हेमाद्रि ने इस समाधान का सूत्रपात परिशेष खण्ड में किया है।[५] उसने कहा कि बीजाङ्कुर सन्तान की तरह नित्य काल व्यावहारिक काल के रूप में परिच्छिन्न किया जा सकता है।[६]

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।। विष्णु० पु० ३. ६. २८
विशद आलोचनार्थ द्र० Swain. B. K. *A Peep into Dharma-shastra* (Delhi 1983). p–5.

१. धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। म० स्मृ० २।१३

२. श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी।
अविरोधे सदा कार्यं स्मार्त्तं वैदिकवत् सता ।। जाबाल। मन्वर्थमुक्ता-वलीधृत २।१३
द्र—पू० मी० अधिकरणस्थ सूत्र—'विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनु-मानकम्।' जै० सू० १. ३. ३

३. पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन— इन नौ द्रव्यों से आकाश, काल, दिक् आत्मा और मन विभुपदार्थ हैं। वैशे० सू० १. १. ५

४. कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले। ऋ० वे० १०. ४२. ९

5. Chaturvargachintamani—Parisesakhanda. Vol III.,P III P. 6–7

६. एवं विधस्यानादिनिधनस्यापि सूक्ष्मस्य यद्यप्यपरिछिन्नता तथाप्या-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह व्यावहारिक काल त्रुटि (निमेष) से लेकर संवत्सर और महाप्रलय तक माना जाता है, व्यावहारिक काल का विभाग भी वेद से समर्थित है। इस स्थल में विशेष बात यह है कि हेमाद्रि ने काल सत्ता और व्यावहारिक काल विभाग विषयक तथ्य को उपस्थापित करने के लिये अष्टादश पुराणों के ऊपर निर्भर नहीं किया है वरं उपपुराणों से विष्णुमधर्मोत्तर पुराण के ऊपर अधिक निर्भर किया है। यह प्रभाव माधवाचार्य के ऊपर अविकल पड़ा है। उसने विष्णुधर्मोत्तर वचनों का आश्रय ऐसे ढंग से लिया है जिससे माना जाता है कि पारंपरिक काल विभाग विषयक वर्णन अष्टादश पुराणों में उपलब्ध नहीं है। अगर मिलता तो क्यों उससे नहीं स्नेहन किया ? ··· इत्यादि। इस स्थल में ऐतिहासिकों का मत से ऐसा अनुमान किया जाता है कि दाक्षिणात्य संप्रदाय में विष्णुधर्मोत्तर पुराण को बलिष्ठ प्रमाण के रूप में मानते हैं। हेमाद्रि और माधवाचार्य उस संप्रदाय में स्तम्भ के सदृश विद्वान् हैं।[1] इस कारण से विष्णुधर्मोत्तर वचनों का उदाहरण माधवाचार्य ने अधिक लिया। एक वाक्यता के लिये धर्मशास्त्र साहित्य में आपूरण किया जाता है।[2]

सांख्यदर्शन में पचीस तत्त्वों के ऊपर विचार होता है। उस दर्शन के सिद्धान्तानुसार अविवेक से सृष्टि और विवेक से मोक्ष होता है।[3] प्रकृति के साथ पुरुष का संयोग अविवेक से होता है। अविवेक से सृष्टि होती है। न्याय वैशेषिक: दर्शन के अनुसार संयोग असमवायी कारण है।[4] घट निर्माण के प्रति तीन कारण कोटि में रहते हैं। उनमें असमवायी कारण अन्यतम है। संयोग असमवायी कारण होते हुये भी संयोग सदैव नहीं रहता है। अगर

द्यन्तवतीभिः सूर्यादिग्रहक्रियाभिः परिच्छिन्नतोपपद्यते तासां क्रियाणां सन्तानस्य बीजाङ्कुरसन्तानवदनाद्यनन्तत्वादनादिनिधनस्यापि कालस्य परिच्छेदः संभवति ॥ वही०–पृ० ७

पारंपर्यतोऽन्वेषणा बीजांकुरवत्। सां० सू०। १.८७

1. Kane. P. V, *History of Dharmashastra*. (B. O. R. I. 1975) vol. I. P. II. PP. 778–792, 749–755.

२. एकवाक्यता रूपक सिद्धान्त धर्मशास्त्रकारों ने पूर्वमीमांसा से लिया है। द्र० "इतिकर्त्तव्यताभागं मीमांसा पूरयिष्यति"॥ —कुमारील

३. अविवेकाद्धि तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः। सां० सू० १–७१

४. द्र०—तर्कभाषा-कारणप्रकरण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहता तो सांख्य के अनुसार सदैव सृष्टि होती रहती। किन्तु न्याय के अनुसार ऐसा नहीं। संयोग के लिये कोई अनिर्दिष्ट कर्त्ता आवश्यक है जिसका व्यापार संयोग होता है। इसलिये सृष्टि के लिए एक कर्त्ता चाहिए। इस तत्त्व को लेकर न्याय दर्शन कर्तृवादी है ऐसा माना है।[1] पुराणों का सिद्धान्त इस अवसर पर सांख्य और न्याय को लेकर प्रतिपादित है। न्याय का 'कर्त्ता' पुराणों में सेश्वरसांख्य का प्रभु है जो संयोग ही करता है। न्याय के अनुसार काल निमित्त कारण है और विभु भी है। इस प्रकार होने पर काल के द्वारा काम नहीं हो सकता। किन्तु पुराणों में 'काल ही प्रकृतिपुरुष संयोगकारी है', ऐसा प्रतिपादित है। संयोगकारी पुरुष काल या नित्य काल है। संयोग से सृष्ट काल व्यावहारिक काल है। संयोगकारी 'काल-काल' है। वह विश्वकृद्, अनादि, संकर्षण, भूतों का अन्तकृत् इत्यादि रूप से श्रुति और शास्त्रों में वर्णित है।[2] वह कर्म फल को देनेवाला है। सब प्रकार शुभ कर्मों के प्रारम्भ समय में वह स्मर्त्तव्य है।[3] पूर्वमीमांसा में कहा है कि संयोगकारी पुरुष की प्रवृत्ति श्रुतिगम्य है।[4] पुरुष या कर्त्ता नियत नहीं है। प्रवृत्तिमान् पुरुष कर्त्ता है। वह आक्षेपलभ्य है।[5] वैधी प्रवृत्ति लिङ्-त्वांश से ही होती है।[6] उस पर पुरुष का स्वीकार व होने पर भी कर्मानुष्ठान

---

१. कर्त्तेति नैयायिकाः ।। यह पङ्क्ति दर्शनशास्त्र का नहीं अपितु महानाटक का १–२

२. स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिः ।
ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः ।। श्वे० उ० ६।२., का० मा० (इस संस्करण में उद्धृत), पृ० १४

३. सर्वेषु कालेषु समस्तदेशे-
ष्वशेषकार्येषु तथेश्वरेश्वरः ।
सर्वैः स्वरूपै र्भगवाननादिमान्
ममास्तु माङ्गल्यविवृद्धये हरिः ।।
द्र० इस संस्करण का० मा०, पृ० १६
भूतानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ।। सूर्यसिद्धान्त––१०

४. मी० न्या० प्र० (B. O. R. I. 1972), पृ० ६०

५. मी० न्या० प्र० (B. O. R. I 1972), पृ० ८६
कर्त्ता चापेक्षलभ्यः । आख्यातेन हि भावनोच्यते । सा च कर्त्तारं विनाऽनुपपन्ना तामाक्षिपति ।

६. वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के लिये निर्दिष्ठ काल का उपयोग होना चाहिये। अन्यथा अपूर्व ठीक रूप से नहीं होगा, फल भी नहीं मिलेगा। इस कारण से 'कर्मकाल' तत्त्व पूर्वमीमांसादर्शन से ही माधवाचार्य ने स्वीकृत किया।

काल का व्यावहारिक विभाग वैदिक तत्त्व के ऊपर पर्यवसित है। दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार अविवेक से (सांख्य) और माया से (वेदान्त) सृष्टि होती है। सृष्टि का तात्पर्य है परमात्मा (कालकाल) से दूरवर्त्ती संबन्ध में रहना। परमात्मा ज्योतिर्मय या ज्ञानमय है। ज्योति से दूरवर्त्ती होने से अन्धकार में क्रमशः प्रवेश करना ही है। जितना अन्धकार में प्रवेश होता है उतना ही सृष्टि-चक्र में परिभ्रमण करना पड़ता है। इसको जन्मचक्र या जन्मान्तर कहते हैं। फिर ज्योति के साथ मिलने के लिये अगर प्रयास नहीं होता तो लौटना संभव नहीं है। ज्योति से आना और ज्योति के साथ मिलना ये दो मार्ग हैं। केन्द्राभिसारी और केन्द्रापसारी (Centrifugal, centripetal) मार्ग के नाम से यह दो मार्ग अमेरिकीय दर्शन में प्रसिद्ध है।[1] ऋग्वेदीय आर्यों ने इन दो मार्ग तमोमार्ग और ज्योतिर्मार्ग के नाम से बतलाये हैं। इसलिये अपना स्थान से निकल कर फिर लौटने के लिये प्रार्थना है—'अन्धकार की ओर नहीं आलोक की ओर ले जाओ' (तमसो मा ज्योतिर्गमय)[2]। इस तत्त्व को सामने रखकर वैदिक वाङ्मय में पितृयान मार्ग और देवयानमार्ग की व्यवस्था हुई हैं। (२क) पितरों सृष्टिक्रिया का कर्त्ता हैं।[3] उनके द्वारा सृष्टि होती है। देवताओं के द्वारा प्रत्यावर्त्तन मार्ग प्रदर्शित किया जाता है। सृष्टि में प्रक्रिया का वैज्ञानिक साधन और प्रत्यावर्त्तन में भावात्मक साधन अवलम्बन है।[4] सृष्टि-तत्त्व के साथ संसार की गहनता के कारण अन्धकार और मोक्ष तत्त्व के साथ प्रत्यावर्त्तन का प्रबल आवेग का कारण ज्योति की ओर जाना संबन्धित है। इन दो तत्त्वों को लेकर कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष, उत्तरायण और

---

1. Schneider. H. W, *A History of American philosophy.* (Delhi. 1969).
2. Tilaka. B. G., *The Arctic Home in the Vedas.* (poona). p. p. 123–160.

तमसो मा ज्योतिर्गमय—बृ. उ.

३. वही

४. पितरो वाक्यमिच्छन्ति भावमिच्छन्ति देवताः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दक्षिणायन, अपराह्ण और पूर्वाह्ण की व्यवस्था हुई है। इसलिये दक्षिणायन अपराह्ण और कृष्णपक्ष प्रभृति पितरों के लिये और शुक्लपक्ष, पूर्वाह्ण और उत्तरायण प्रभृति देवताओं के लिये निर्दिष्ट है।

काल को नियत करने के लिये ब्रह्मपुराण में सृष्टि के बारे में कहा है कि[1]—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तिथि में पृथ्वी की सृष्टि हुई है। इस तिथि के साथ चान्द्र, सौर, नाक्षत्र, बार्हस्पत्य और सावन मान सामिल है।[2] इन चार मानों में सावन मान प्राचीन है। जब दूसरे मानों की सृष्टि नहीं हुई थी तब सावन मान को लेकर वैदिक सत्रों का अनुष्ठान काल नियन्त्रित हो रहा था।[3] उस समय सात सूर्यों के बारे में प्रतिपत्ति हुई थी। बारह सूर्यों की प्रतिपत्ति नहीं हुई थी। इन सात को लेकर सूर्य को सप्ताश्व कहते थे। जिस चैत्र शुक्ल प्रतिपदा में सृष्टि हुई थी उस दिन में भी मेष-संक्रान्ति हुई थी। क्योंकि वह दिन और संवत्सर का भी जन्मतिथि है। यह चैत्र शुक्ल प्रतिपदा जिस दिन में पड़ती उस दिन का अधिपति संवत्सराधिपति होता है। यथा—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अगर सोमवार होता तो संवत्सराधिपति चन्द्र होते हैं--ऐसे।[4]

किन्तु संवत्सर से लेकर तिथि तक काल का प्रविभाग में क्या तथ्य अन्तर्निहित है? अयन, ऋतु, मास, पक्ष और तिथिओं के रूप में व्यवहृत होने के लिए संवत्सर ही नित्य काल का प्रतिनिधित्व करता है। संवत्सर की व्यावहारिकता अयन और ऋतुओं की तरह नहीं। लौकिक दृष्टि ऋतुओं की स्थिति पर आ सकती है। उसके बाद संवत्सर की स्थिति आती

---

१. चैत्रे मासि जगद् ब्रह्म ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रं तत्तदा सूर्योदये सति।
प्रवर्त्तयामास तदा कालस्य गणनामपि।
ग्रहान्नागानृतून्मासान् वत्सरान् वत्सराधिपान्। ब्रह्म० पु०,
का० मा० (इस संस्करण में) धृतः, पृ० २८

२. का० मा०, पृ० ३३

३. सत्राण्युपास्यान्यथ सावनेन।
लोक्यं च यत् स्याद् व्यवहारकर्म॥ विष्णुध० पु०,
का० मा०, पृ० ३०

द्र०—Tilaka. B. G., The Arctic Home in the Vedas (poona) P. 157–161.

४. ज्योतिषशास्त्र में यह प्रसिद्धि है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। उसके बाद नित्य काल के अतिरिक्त और किसी का भी मान माना नहीं गया। इसलिए ऋतुओं की स्थिति वत्सर के भीतर हो जाती है ऐसी उपपत्ति से संवत्सर का नामधेय ठिकाना हुआ। संवत्सर की व्यावहारिकता के बारे में आयुर्वेद और ज्योतिःशास्त्र में कुछ बताया जाता है।[1] पांच प्रकारों से संवत्सर का मान निश्चित है यथा सौर बार्हस्पत्य, सावन, चान्द्र और नक्षत्र। पारिभाषिक रूप से इनकी संज्ञा यथाक्रम मातुल, पाताल, अतुल, विमल और वरांग है। इन संज्ञाओं से संवत्सर का दिन परिमाण ज्ञात होता है। ज्योतिः-शास्त्र में संपूर्ण व्यञ्जन वर्णमाला चार वर्गों के द्वारा विभक्त की गयी है। यथा—'क' 'ट' 'प' और 'य' वर्ग। स्वर वर्णों का संकेत शून्य है। वर्गों का वर्ण क्रम के अनुसार संख्या संकेतित होती है। दक्षिण से वाम दिशा में गणना करने से (अङ्कानां वामतो गतिः,) संवत्सर का दिन मान ज्ञात होता है। क्रमानुसार और संवत्सर का नाम मातुल है। 'म' वर्ण पवर्ग का पञ्चम वर्ण है। इससे पांच (५) संकेतित होता है। 'त' वर्ण टवर्ग का षष्ठ वर्ण है। इससे छै (६) संकेतित होता है। 'ल' वर्ण 'य' वर्ग का तृतीय वर्ण है। इससे तीन (३) संकेतित होता है। इन तीन संख्याओं की वाम गति के अनुसार ३६५ संख्या होती है। अतः सौर संवत्सर ३६५ दिनात्मक होता है। बार्हस्पत्य संवत्सर का नाम क्रमानुसार पाताल है। 'प' वर्ण पवर्ग का पहला वर्ण है। इससे एक (१) संकेतित होता है। 'त' वर्ण 'ट' वर्ग का

---

१. सौर-बृहस्पति-सावन-चान्द्रिक-नाक्षत्रिकाः क्रमेण स्युः।
मातुलपातालातुलविमलवराङ्गाश्च वत्सराः पञ्च॥

का० मा०, पृ० ३३.

अधिकन्तु द्रष्टव्य—समयप्रकाश (वीरमित्रोदय), पृ० १०

"गणकप्रसिद्ध्या कटपया वर्गाः। शुद्धस्वरः शून्यार्थः। तत्र वर्गाक्षर-संख्ययाऽङ्कसंग्रहः। तेन मातुलेत्यत्र पवर्गात् पञ्चमेन मकारेण पञ्चसंख्या लभ्यते टवर्गषष्ठेन तकारेण षट्संख्या। यवर्गतृतीयेन लकारेण त्रित्वसंख्या। एवं चाङ्कानां वामतो गतिरिति प्रकारेण मेलने सावनदिनानां पञ्चषष्ठ्यधिक-शतत्रयं सौरसंवत्सरो भवति। एवं पातालशब्दः एकषष्ठ्यधिकशतत्रयसंख्या-माचष्टे। तावत्सूर्योदयपरिमितो बार्हस्पत्यः संवत्सर एवमतुलशब्दः षष्ठ्य-धिकशतत्रयसंख्यामाह। तावत्सूर्योदयपरिमितः सावनः संवत्सरः। एवं विमल-शब्दः चतुःपञ्चाशदधिकशतत्रयसंख्यामाचष्टे। तावत्सूर्योदयपरिमितश्चान्द्रः। एवं वराङ्गशब्दश्चतुर्विंशत्यधिकशतत्रयसंख्यामाह तावत्सूर्योदयपरिमितो नाक्षत्रः संवत्सर इति"।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षष्ठ वर्ण है। इससे छः (६) संकेतित होता है। 'ल' वर्ण 'य' वर्ग का तृतीय वर्ण है। इससे तीन (३) संकेतित होता है। इन तीन अङ्कों की वाम गति के अनुसार ३६१ संख्या होती है। अतः बार्हस्पत्य संवत्सर ३६१ दिनात्मक है। इस प्रकार क्रमानुसार 'अतुल' सावन संवत्सर का नाम है। वह ३६० दिनात्मक है। 'विमल' चान्द्र संवत्सर का नाम है। वह ३५४ दिनात्मक है। 'वरांग' नाक्षत्र संवत्सर का नाम है। वह ३२४ दिनात्मक है।

इस प्रणाली के अतिरिक्त और एक प्रणाली है[१] जो उत्कल में प्रसिद्ध है। उस प्रणाली के द्वारा भी मातुल प्रभृतिओं का दिन मान का परिमाण मिलता है। यथा—

० अ
१ आ क प य श
२ इ ख न फ र ष
३ ई ग ध ब ल स
४ उ घ द भ व ह
५ ऊ च थ म
६ ए छ त
७ ऐ ज ढ़
८ ओ झ ड़
९ औ ट ठ

इस रेखाचित्र में संख्या के साथ वर्गों की गोष्ठी बताई गयी है। इस गोष्ठ्यन्तर्गत वर्णों की संख्या इससे संकेतित होती है। मातुल संवत्सर का वर्णप्रक्षेप के अनुसार 'मा' से ५, 'तु' से ६ और 'ल' से ३ संकेतित होकर ३६५ संख्या होती है। अतः मातुल सौर संवत्सर है। इस प्रकार दूसरों का संकेत ग्रहण किया जाता है।

अयन उपसंहारवादी है। सामान्य से विशेष को निर्णीत करना उपसंहार का उद्देश्य है।[२] (क) उपसंहार के द्वारा सामान्य की कार्यरूपता मिलती है। नित्यकाल सामान्य है। संवत्सरादि कालावयवों के रूप में इसका उपसंहार होता है। उनमें अयन से प्रारम्भ होकर उपसंहृत काल का कार्या-

---

१. यह प्रणाली परंपरा के अनुसार उत्कल में प्रसिद्धि के साथ चलती हैं। यह प्रणाली माधवाचार्य के अनुसार बनाई गई है।

२(क). सामान्यविधिरस्पष्टः संह्रियेत विशेषतः। —त० वा० ३।४।४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्वयन होता है। वही आश्रय है। अतः गत्यर्थक अयधातु से निष्पन्न अयन शब्द सामान्य से विशेष को निरूपित करता है। नित्य काल का संवत्सर के अन्तर्गत अवयवों से प्राथमिक उपसंहार उत्तरायण और दक्षिणायन के रूप में होता है। विभाग करनेवाला कर्त्ता के द्वारा कार्यान्वयन के समय पश्चिम भाग पश्चात् रह जाता है। वह नहीं दिखाई पड़ता है। वस्तु का दृश्यमान अवयव उत्तर-दक्षिण के रूप में पहली बार विभक्त हो सकता है। यह है सामान्य का विशेष रूप और उपसंहार का फल। अयन के द्वारा कालावयव की उपसंहार न्याय से व्यावहारिकता आती है।

अयन के अनन्तर 'ऋतु' काल का अवयव है। गत्यर्थक और प्रापणार्थक 'ऋ' धातु से ऋतुशब्द की उत्पत्ति होती है।[1] जाने का समय कुछ कार्य संपादन करके जाना ही इसका तात्पर्य है। संवत्सर के छ ऋतुएँ हैं। प्रति ऋतु अपनी विशेषता के अनुसार पारिपार्श्विक परिवेष्टनी से असामान्य गुण और दोष को संपादित करते हैं। ऋतु क्रम के अनुसार क्रियाकारिता का वैमत्य मालूम पड़ता है। उद्भिदों के शरीर में जैसे फलदान के लिये असामान्य लक्षण ऋतु के द्वारा ही सम्पादित होता है उस प्रकार प्राणियों के शरीर में सन्तान उत्पत्ति के लिए वर्गीकृत लक्षण ऋतु के द्वारा सम्पादित होता है। अतः ऋतु स्वक्रम काल में कुछ नैसर्गिक लक्षणों के द्वारा कार्य सम्पादन कर फल बाँट कर जाता है।

अग्र-पश्चात्, उत्तर-दक्षिण, उच्च-नीच प्रभृति लक्षणों को लेकर वस्तु का परिमाण नियन्त्रित होता है। काल का परिमाण विन्यास धर्मी अवयव 'मास' शब्द से परिचिह्नित होता है।[2] यह शब्द इसलिये परिमाणार्थक मसी धातु से निष्पन्न है।

परिग्रह अर्थ को सूचित करनेवाला शब्द पक्ष है।[3] मूल धनस्वामी स्वसम्पत्ति को दूसरे लोग को भोग करने के लिये जब देता है तब वह सम्पत्ति परिग्रह नाम से कही जाती है। शुक्ल और कृष्ण भागों को लेकर जो मास प्रवर्त्तित होता है वह मास उस काल अवयवों का मूलस्वामी है। पितरों के लिए, देवताओं के लिए यह कालावयव विशेष रूप से दिया गया

---

१. पाणिनीय धातु संख्या अय—४७४, वही पाणिनीयधातुसंख्या, ९३६, १०९८

२. पाणिनीय धातु संख्या १२२१

३. पणिनीय धातु संख्या १५५०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। यह परिग्रह है। परिग्रह में सर्वदा मूलस्वामी और भोगस्वामी रहते हैं। इसलिए मास का दो पक्ष परिगृहीत होते हैं।

पक्ष और तिथि के बीच में सप्ताह रहता है। किन्तु सप्ताह को लेकर कोई कालावयव के द्वारा विशेष कृत्य की व्यवस्था उपलब्ध नहीं होती है। किन्तु प्रश्न हो सकता है कि सात दिनों को लेकर प्रवर्तित सप्ताह में विद्यमान दिवस क्रम का क्या प्रमाण है? क्यों रविवार के अनन्तर सोमवार आता है किन्तु मंगलवार नहीं? या गुरुवार भी नहीं या शनिवार भी नहीं? इसका उत्तर ज्योतिषशास्त्रीय वैज्ञानिक प्रमाण के द्वारा दिया जा सकता है।[1] पृथिवी के ऊपर क्रमानुसार चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, बृहस्पति और शनि—ये सात ग्रहों की अवस्थिति है।[2] स्व केन्द्र में आवर्त्तित होकर भी पृथिवी को केन्द्र करके भी घूरते हैं। साठ दण्डात्मक एक अहोरात्र में ये सात ग्रह पृथिवी की परिक्रमा करते हैं। इन साठ दण्डों में प्रत्येक दण्ड का अधिपति एक ग्रह रहता है। ऐसी स्थिति में एक अहोरात्र में एक ग्रह का आठ बार ($६० \div ७ = ८ \frac{४}{७}$) आवृत्ति हो जाती है। इसलिए ५६ दण्ड लग जाते हैं। इस क्रम के अनुसार अवशिष्ट चार दण्डों को व्यवस्थित करने से दिन का पहला दण्डाधिपति को लेकर चतुर्थ ग्रह उस बार का अन्तिम दण्डाधिपति हो जाता है। अत एव वार का अधिपति को छोड़कर चतुर्थग्रह परवर्त्ती वार का सूर्योदय में पहला दण्ड का अधिपति हो जाता है। उसके अनुसार उस वार का नामकरण होता है। अगर सूर्योदय में पहला दण्डाधिपति के रूप में चन्द्र को मान लिया जाय तो ८, १५, २२, २९, ३६, ४३, ५० और ५७ दण्डों में चन्द्र आवर्त्तित होकर फिर अधिपति हो जायगा। अवशिष्ट तीन दण्डों के लिए क्रमानुसार बुध, शुक्र और रवि अधिपति होंगे अर्थात् ६० तम दण्ड का अधिपति रवि रहेंगे। दूसरे दिन का सूर्योदय के पहला दण्ड का अधिपति के रूप में क्रमानुसार (पृथिवी के ऊपर विद्यमान सात ग्रहों से) मंगल रहेंगे। अतएव उस वार मंगलवार होगा। सोमवार के अनन्तर मंगलवार होने के लिए यह प्रमाण है। इस प्रकार सात बारों का क्रम उपलब्ध होता है। सूर्यसिद्धान्त में[3] चतुर्थदण्ड का अधिपति के अनुसार वार का नामकरण के लिए व्यवस्था कही गयी है। माधवाचार्य ने

---

१. Shastri. B. H, शास्त्रीय सन्दर्भ-सौरभ० (पुरी० १९७९), पृ० १७४–१७६

२ शशाङ्कज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा ॥ भास्कर । वही

३. चतुर्थाः दिवसाधिपाः ॥ —सूर्यसिद्धान्त । वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस वैज्ञानिक प्रमाण को नहीं उठाया है किन्तु वारों को लेकर प्रवर्त्तित व्रतों का काल निर्णय किया है।

साठ दण्डों को लेकर तिथि प्रवर्त्तित होती है। तिथिपरिमाण का परिमाप के लिए चन्द्रकला की वृद्धि और क्षय दृश्य प्रमाण है।[1] माधवाचार्य ने इस प्रसंग में पुराण वचनों का उद्धरण दिया है। सूर्यरश्मि का अभिभव से चन्द्र की ज्योत्स्ना नहीं दिखाई पड़ती है। सूर्य की निकटवर्त्तिता के कारण चन्द्रकला दृश्य नहीं होती है। यह शुक्लपक्ष में संभव है। दूरवर्त्ती होकर अपनी स्थिति और निकटवर्ती होकर अपनी स्थिति सूर्य को लेकर ही निश्चित होती है।[2] नित्यकाल (ब्रह्म) ज्योतिर्मय है। सूर्य इनके दृश्य बिम्ब है। इनका निकटवर्त्ती होने का तात्पर्य है अपनी स्थिति को संकुचित करना और दूरवर्त्ती होना का तात्पर्य अपनी स्थिति को बढ़ाना है। इस सिद्धान्त के अनुसार शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष और पूर्वाह्ण का परिमाप होता है। इस परिमाप का विपरिणाम से उत्तरायण, दक्षिणायन और देवयान-पितृयान मार्ग आश्रित हैं। इनकी व्यवस्था के बारे में हमने आलोचना की है। चन्द्रकला का क्षय और वृद्धि के अनुसार प्रवर्त्तित तिथि का मान ६० दण्ड है।[3] किन्तु कालपर्याय से पांच दण्ड तक वृद्धि और छ दण्ड तक क्षय होता है।[4] ऐसे होने से भी क्षय-वृद्धि व्यवस्था तिथिमान का विचार में अपनाई गयी है।

ज्योतिषशास्त्रीय गणना के अनुसार तिथियों की मानव्यवस्था होती है। किन्तु धर्मशास्त्र के अनुसार इनकी सामाजिक व्यावहार्यता सम्पादित होती है। इस व्यवस्था को लेकर धर्मशास्त्र में नियत-कालतत्त्व का (concept of appointed time) उद्भावन हुआ है।[5] यह नियतकाल वेद में जन्यकाल या 'काल' के रूप में प्रसिद्ध है। किन्तु जन्यकाल एक सामान्य

---

१. का० मा०, पृ० ९३–९४

२. का० मा० (इस संस्करण में), पृ० ९६। यः परो विप्रकर्षः सूर्याचन्द्रमसोः सा पौर्णमासी। यः परः सन्निकर्षः साऽमावास्येति।

३. आदित्योदयवेलाया आरभ्य षष्टिनाडिकाः।
तिथिस्तु सा हि शुद्धा स्यात्सार्वतिथ्यो ह्ययं विधिः॥ नारदपुराण
षष्टिनाड्यो हि वै तिथिः॥ सूर्यसिद्धान्तः, का० मा०, पृ० १००

४. बाणवृद्धिः रसक्षयः।

5. Aiyangar. K. V., *Krityakalpataru's Introduction* (नियतकाल काण्ड) P–1.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द है। नियतकाल एक विशेष शब्द है। निर्दिष्ट कृत्य को संपादित करने के लिए निर्दिष्ट काल परिमाण की आवश्यकता होती है। इससे कर्मकाल की धारणा अवतारित होती है। काल में ही कर्म किया जाता है। कर्म के अनुसार काल की व्यवस्था नहीं होती है। धर्मशास्त्र में कालानुसार कर्म व्यवस्था से नियत काल की प्रवृत्ति हुई। कालव्यवहार में ज्योतिषशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र की यह व्यवस्था प्रसिद्ध है। इसलिए महाभाष्यकार पतञ्जलि ने[1] कहा कि नियतकालाः स्मृतयः ॥ लक्ष्मीधर भट्ट ने भी अपने कृत्यकल्पतरु का एक काण्ड को नियतकालकाण्ड के नाम से नामित किया है।[2] नियत काल तत्त्व को लेकर कर्मकाल व्याप्ति की व्यवस्था हुई। जन्यकाल का नियत काल के रूप में और नियत काल का कर्मकाल के रूप में व्यावहारिक काल की जो प्रवृत्ति हुई वह वैदिक सत्रों का अनुष्ठान-काल-विषयक तत्त्वों से उद्भूत है। क्योंकि सत्रों का अनुष्ठान के लिए अनेक दिनों की आवश्यकता पड़ती है।[3] पुत्र–पौत्रादि पुरुषानुक्रमिक सत्रो भी हैं। उनका प्रारम्भ और समाप्ति का निरूपण करके ही संकल्प में उनका अनुष्ठेय काल परिमाण उच्चारित किया जाता है। इस अवसर पर कर्मकाल तत्त्व की भित्ति स्थापित है।

धर्मशास्त्र में सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत कालव्यवस्था के लिए सत्रों का काल निरूपण विषयक प्रेरणा मिली। इसलिए शुद्धाशुद्ध काल व्यवस्था की प्रवृत्ति हुई। इस स्थल में धर्मशास्त्रीय विषयों का पर्याय क्रमिक प्रभाव कालव्यवस्था के ऊपर पड़ा शास्त्र में नित्य विधियों से काम्य और नैमित्तिक विधियों को लेकर उनकी कालव्यवस्था के ऊपर गुरुत्व दिया है, क्योंकि नित्य विधि में फल नहीं है।[4] केवल प्रत्यवाय विनाश धर्मी फलाभास है।[5] किन्तु काम्य विधि का विशिष्ट फल है। इसलिये 'काले हि कर्म चोद्यते न कर्मणि

---

१. द्र० महाभाष्य ।

२. कृत्यकल्पतरु का तृतीयभाग ।

3. Tilaka B. G., *The Arctic Home in the Vedas* (Poona) P–161.

४. नित्यं सदा यावदायुर्न कदाचिदतिक्रमेत् ।
इत्युक्त्वातिक्रमे दोषः श्रुतेरत्यागचोदनात् ।
फलाश्रुते वींप्सया च तन्नित्यमिति कीर्त्तितम् ॥ इस नित्यत्व द्योतक पदों में फलाश्रुति अन्तर्भुक्त है। का० मा०, पृ० २१२

५. "अतिक्रमे दोषः' इस संकेत से प्रत्यवाय की सूचना मिलती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कालः' ऐसा कहा है । नैमित्तिक विधि का फल है सुधारना इसके लिये कर्मं-काल की व्यवस्था आवश्यक है ।[1]

कर्मकाल का निरूपण के अवसर पर चार कर्त्तव्यों का मूल्याङ्कन करना पड़ता है । यथा—(१) उपवास, (२) एकभक्त, (३) नक्त और (४) अयाचित । इन चार कर्त्तब्यों में उपवास मुख्य है और अहोरात्र इसका कर्मकाल है ।[2] दूसरे तीन उसका प्रतिनिधि हैं । विशेष स्थल में तीन कर्त्तव्यों का स्वातन्त्र्य भी बताया गया है । कोई भी कुछ प्रधान का अङ्ग है ।[3] उपवास व्रत के रूप में किया जाता है । किन्तु उपवास का सामान्य उद्देश्य प्रायश्चित्त है । करणीय नित्य कर्मों का (Routine duty) अनुष्ठान अगर नहीं हो सकता तो उपवास करना पड़ता है । मनु ने पहले यह सिद्धान्त घोषित किया है ।[4] साधारण नीति के रूप में धर्मशास्त्र में इसकी स्थिति है । यह सिद्धान्त राजधर्म में भी प्रवर्त्तित है । जिस दिन में जो कर्मचारी काम नहीं करता है उस दिन का वेतन नहीं ले सकता है । (Concept of no work no Pay) । उपवास का अनुष्ठान जब नहीं हो सकता तब उसके प्रतिनिधि के रूप में एकभक्त प्रभृति की अवतारणा होती है । मनु की इस व्यवस्था को लेकर उपवास के लिये अहोरात्र की कर्मकाल-व्यवस्था प्रवर्त्तित है । पुराणों में इसका वर्णन आख्यानों की सहायता से किया गया है ।

इस उपवास की प्रतिनिधि व्यवस्था जब आवश्यक हुई तब कर्मकालों का प्रकारभेद धर्मशास्त्रीय विचार परिसर में आया । इनके विकास के लिए पुराणों का योगदान महत्त्वपूर्ण है क्योंकि नव्यव्यवस्था के रूप में दूसरों के नियम को अपनाने के लिए पौराणिक स्मार्त्तों का पदक्षेप सामाजिक व्यवस्था में आदर्श हो गया है ।[5] जो व्रत वैदिक सत्र संपृक्त व्यक्तियों के

---

१. द्र०– गणिताज्जायते कालः काले तिष्ठन्ति देवताः ।
वरन्त्वेकाहुतिः काले नाकाले लक्षकोटिशः ।।
परिशेषखण्डः Vol–III. P–III. p–९२३

२. द्र० का० मा० (इस संस्करण में)—पृ० १९३

३. वही ।

४. वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ।। मनु ११।२०३

5. Goyal. S. R, *Religious History of Ancient India* (meerut 1986) Val–II, P. 4.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए व्यवस्थापित हुये थे उनका सामाजिकीकरण अर्थात् स्मार्त्तपरंपरा में अन्तर्भाव हुआ।[1] सामाजिक स्मार्त्त कृत्य के रूप में उनका वर्गीकरण हुआ। क्रमशः पुराणों में नाना व्रतों की अवतारणा हुई।[2] इन सब व्रतों तिथियों को लेकर तिथि के भीतर कर्मकाल व्याप्ति के अनुसार नियतरूप से व्यवस्थित काल में अनुष्ठित होने लगे।

नियत काल व्यवस्था में वेध और कर्मकाल का गुरुत्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों को लेकर साकल्य[3] सिद्धान्त की प्रवर्त्तना हुई। साकल्य सिद्धान्त के लिए शाब्द ही प्रमुख प्रमाण है। यह शाब्द प्रमाण वचन है। धर्मशास्त्र में संहितीकरण (codification) के द्वारा साकल्य सिद्धान्त लिया जाता है। इसके हेतु कर्मकाल मात्र को स्पर्श करके तिथि रहने पर भी संपूर्ण अहोरात्र में तिथि है ऐसा माना जाता है। अथवा सूर्योदय या सूर्यास्त के समय भी ऐसा साकल्य माना जाता है।[4] ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्त से पृथक् सिद्धान्त लाने के लिए धर्मशास्त्र में साकल्य सिद्धान्त का उपयोग हुआ।

स्मार्त्त-परंपरा में साकल्य (व्यवस्था) सिद्धान्त का प्रवर्त्तन दो संप्रदायों में[5] प्रबल है। एक ब्राह्मण्य स्मार्त्त और दूसरा वैष्णव स्मार्त्त। ब्राह्मण्य स्मार्त्तों का सम्बन्ध वेद और धर्मशास्त्र के साथ रहता है। वैष्णव स्मार्त्तों का संबन्ध पुराण और तन्त्रों के साथ रहता है। ब्राह्मण्य स्मार्त्त-परम्परा में देवताओं को लेकर प्रधान कर्म की व्यवस्था होती है। वैष्णव स्मार्त्त-परंपरा में अंगों की भावात्मक उपयोगीकरण प्रक्रिया की व्यवस्था होती है।[6] ब्राह्मण्य-परंपरा में सूर्योदय वेध ही आधार है। किन्तु वैष्णव स्मार्त्त-परंपरा में

---

१. व्रतमिदं मया कर्त्तव्यम्। इदं मया न कर्त्तव्यम् इति शास्त्रविहित-संकल्पविशेषः। (कृत्यकल्पतरु) व्रतकालकाण्ड, पृ० xxIII

2. Hazra. R. C, *Studies in the Puranic Records on Hindu Rites and customs* (Delhi 1975) and Studies of (Upapurnas Calcutta)

३. द्र० साकल्य वचन—यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु॥
—देवल, का० मा०, पृ० १५३

४. सा तिथिः सकला ज्ञेया यस्यामस्तमितो रविः॥ का० मा०, पृ० २७१

५. द्र० का० मा०, पृ० १५३। स्मार्त्त और वैष्णव।

६. नवधा भक्ति का दास्यभाव वैष्णव ग्रन्थों में।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरुणोदय वेध-ऊपर नजर रखी गयी हैं ।[1] एकादशी व्रत में यह विधान स्पष्ट है ।[2] देवतापूजा के साथ वाहनों की पूजा, वाहनों को लेकर कर्मकाल-व्यवस्था और इष्टदेवता निरूपण नाना परंपरावादियों को मिलन का सूचक है ।[3] धर्मशास्त्र में इस विषय का स्थापन के द्वारा सामाजिक विधियों का संहितीकरण (codification) हुआ है ।

कालमाधव में कालनिर्णय विषयक विचार के अवसर पर यह विषय ध्यान में रखा गया है कि सभी को समाज की परिधि में स्थान देना । वैषम्य समाधान के लिए वाक्यार्थ निरूपण (Interpretation) पद्धति का

---

१. दशमीशेषसयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः ।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ।। —गरुडपुराण । दे० का० मा०, पृ० ३०५.

२. वही०, पृ० २९२–३२६
nis cealiatis)

3. The emotional attitudes attached to the old forms are transferred to the new which is fitted into the background of the old. Many tribes and races had mystic animals, and when the tribes entered the Hindu Society the animals which followed them were made vehicles and companions of gods. One of them is mounted on the peacock. another on the swan, a third is carried by the bull, and fourth by the goat. The enlistment of Hanuman, the monkey general, in the service of Rama signifies the meeting............ There are other stories in the epic literature indicating the reconciliation of the Vedic and the non-vedice faiths. —Radhakrishnan.

R, *Hindu View of life* (*Bomby 1983*) pp. 29–30
द्र० Hazra. R. C, *Stidies in the Puranic Records on Hindu Rites and Custems*. (Delhi) 1975

Bose & haldar : *Tantras : Their Philosophy and Occult Secrets* (Calcutta) 1981

Sarkar. B. K., *Positive Background, of Hindu Sociology* (Delhi 1985) P. 1

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्रय लिया गया है। यह पद्धति पूर्वमीमांसा शास्त्र से संगृहीत हुई है।[१] इसलिए मीमांसा अधिकरणों का विचार कालमाधव में प्रमुख रूप से प्रदर्शित है।

कालमाधव ग्रन्थ का मौलिक नाम कालनिर्णय है। किन्तु माधव का सिद्धान्त गत गुरुत्व को लेकर यह ग्रन्थ कालमाधव के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। माधवाचार्य ने पराशरस्मृति के ऊपर पराशर माधवीय व्याख्या की है।[२] इसके अनन्तर कालमाधव की रचना की। ख्रीष्टीय चतुर्दश शताब्दी (ख्री॰ १३४०–१३६०) में माधवाचार्य ने कालमाधव की रचना की।[३] उसकी लेखनी ख्री० १३३० से १३८५ कालावधि में चालू रही।[४] १३३५ खीष्टाब्द में उसने विजयनगर की स्थापना की।[५] बुक्क, कम्पण, द्वितीय संगम और द्वितीय हरिहर के राजत्व काल में माधवाचार्य का मन्त्रित्व विद्यमान था।[६] उसके पिता का नाम मायण, माता का नाम श्रीमती, भाइयों का नाम सायण और भोगनाथ, शाखा का नाम बोधायन और गोत्र भारद्वाज था। विद्यातीर्थ, भारती-तीर्थ और श्रीकण्ठ उसके गुरु थे।[७]

कालमाधव का प्रथम प्रकाशन १८८९ ख्री० में और दूसरा प्रकाशन १९३६ ख्री० में हुआ था। रामचन्द्राचार्य ने कालमाधव की कालनिर्णय

---

1. Shastri P. *Introduction to Purva Mimamsa.* (Varanasi) P–179
   Indian Law Reports I4 Allahabad. p. 70
   Sarkar K. L., *Mimamsa Rules of Interpretation* (T. L. L, Calcutta) P. 453
2. Kane P. V, *History of Dharmashastra* (B. O. R. I 1975) Vol-I. P.-II. PP–778–792

३. वही,

४. वही,

५. वही,

६. वही,

७. श्रीमती जननी यस्य सुकीर्त्ति र्मायणः पिता।
सायणो भोगनाथश्च मनोबुद्धी सहोद्धरौ॥
यस्य बोधायनं सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी।
भारद्वाजं कुलं यस्य सर्वज्ञः स हि माधवः॥ पराशरमाधवीय–उपोद्-
घातश्लोक ६-७; द्र० का मा० कारिका २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीपिका नामक एक टीका खृी १४५० में लिखी हैं।[1] विद्यारण्य पायगुण्डे की पत्नी लक्ष्मीदेवी ने लक्ष्मी नाम्नी एक टीका भी की थी।[2] नृसिह के द्वारा कालनिर्णय दीपिका के ऊपर भट्ट वैद्यनाथ सूरि ने विवरण लिखा था।[3] उससे अलग कालमाधव कारिका प्रकाशित हुई है।[4] यह कारिका इस संस्करण में ग्रन्थ के उपोदघात शीर्षक में संश्लिष्ट किया गया है। उपोदधातगत कारिका की हिन्दी व्याख्या देने से ग्रन्थ का महत्त्व बढ़ गया है, क्योंकि यह संक्षिप्त रूप में ग्रन्थ की भूमिका ही तो है अतः यह परिपाटी सज्जन विद्वान् पाठक और विद्यार्थी लोगों के लिए सुगम होगी ऐसी आशा है। इस संस्करण को प्रस्तुत करने के लिये हमने चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार सम्पादित कालमाधव[5] (१९३५) और रत्न गोपालभट्ट द्वारा सम्पादित कालमाधव[6] की सहायता ली है। इस संस्करण में हमने तुलसी हिन्दी भाषा टीका और विश्लेषण के लिये लघु टिप्पणी संस्कृत में दी है। ग्रन्थान्त में पारिभाषिक शब्दावली और प्रामाणिक वचनों की सूची दी है जो गवेषकों के लिए सहायक होगी।

कृतज्ञता-ज्ञापन

सबसे बड़ी बात यह हैं कि माधवाचार्य के अद्वैतपन्थी आचार्य काञ्ची कामकोटी पीठाधिपति शङ्कराचार्य श्रीजयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने इस संस्करण के लिए आशीर्वचन दिया है जो इसमें संलग्न है। यह आशीर्वचन केवल पाठकों को नहीं, श्रद्धालु धार्मिको को भी उत्साह और कर्त्तव्य प्रेम से मग्न होने के लिए प्रेरणा देगा। इसलिए श्रीस्वामी जी के प्रति मैं साष्टांग प्रणिपात कर रहा हूँ और आशा रखता हूँ कि जन्मजन्मान्तर में इस प्रकार सहायता मैं प्राप्त कर सकूँ। इस संस्करण में हिन्दी भाषा टीका बनाने के लिए मेरे गुरुदेव पण्डित कुलमणि मिश्र (राष्ट्रपति-सम्मानित), डा० बलरामदास जी (मेरे हिन्दी भाषा के आचार्य), मेरे सतीर्थ डा० रवीन्द्रनाथ मिश्र जी (हिन्दी अध्यापक, रेमेन्सा कालेज, कटक,

---

1. Kane *H. D. S.* Vol. I., P. 1I. P–791.
२. वही
३. वही
४. वही
5. Bombay (1935) Edition. Venkateswar Steam Press.
6. Chaukhamba Edition Varanasi.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्कल) और डा० जयकृष्ण मिश्रजी ने (धर्मशास्त्राध्यापक) सहायता दी है। इसलिए मैं उनका आभारी हूँ। इस ग्रन्थ का प्रकाशन के लिए चौखम्वा संस्कृत संस्थान के अध्यक्ष श्रीयुत मोहनदास गुप्त जी और राजेन्द्र जी प्रमुख के प्रयास अविस्मरणीय है। संस्कृत शास्त्रों की सुरक्षा के लिए मैं उनकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि कामना कर रहा हूँ। इस ग्रन्थ को इस रूप से बनाने के लिए मेरी धर्मपत्नी श्रीमती तुलसी देवी एम. ए (मनस्तत्त्व) ने मुझे सब प्रकार स्वाधीनता दी है। इसलिए इस भाषा टीका का नाम 'तुलसी' रखकर उसके प्रति मैं अपनी अधमर्णता व्यक्त कर रहा हूँ। इस प्रकाशन में डॉ० कपिलदेव गिरि (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) का एकनिष्ठ सहयोग सदैव स्मरणीय रहेगा।

अन्त में भगवान श्रीजगन्नाथ जी के चरणारविन्दों में प्रार्थना करता हूँ की धर्मशास्त्रों की वैज्ञानिक गवेषणा के लिये इस काल में सदैव अनुरागियों के हृदय में प्रेरणा दें।

रंगभरी एकादशी
१८-३-१९८९

डॉ० व्रजकिशोर स्वाईं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्णक्रमानुसारिणो कालमाधवस्य विषयसूची

विषयः	पृष्ठे
अ	
अद्भिः पारणस्याशितानशितोभयात्मकत्वम्	३५३
अधिकारिभेदेन नक्तस्य कालभेदव्यवस्थानिर्णयः	१४१
अपराह्णद्वयेऽप्यमावास्याया अप्राप्तौ प्रतिपद्यपि तत्तच्छ्राद्धकरणम्	४०३
अपराह्णे दैवादननुष्ठाने सायाह्नेऽपि पार्वणस्य कर्त्तव्यतानिर्णयः	१७४
अमावास्यानिर्णयः	३९५
अमावास्याशब्दार्थनिर्वचनम्	४०८
अमावास्याश्राद्धे ग्राह्यतिथिनिर्णयः	३९७
अयननिरूपणम्	३६
अयाचितनिर्णयः	१४८
अल्पायां द्वादश्यामरुणोदये स्नानार्चनादिसर्वक्रियाकरणम्	३४९
अष्टमीनिर्णयः	२३३
अष्टम्यां दिवाभोजनप्रायश्चित्तम्	३३७
अशक्तावद्भिः पारणम्	३४९
अशौचिनोऽपि ग्रहणस्नानादिकम्	४७७
अर्हविभागे पञ्च मतभेदाः	१०४
अहीनन्यायः	३६३
आ	
आगमन्याययोरसत्त्वे शिष्टाचारान्निर्णयकथनम्	२०४
आमश्राद्धविधिः	४७६
आमश्राद्धादीनां कालकथनम्	१२३
आमिक्षाधिकरणम्	२५२
इ	
इष्टिकालनिर्णयः	४०६
इष्टिविकृतिन्यायेन पशुसोमविकृतेः कालनिर्णयः	४३१
इष्टिविकृतीनां पर्वकालत्वम्	४३०
इष्टेः पर्वप्रतिपत्कालत्वम्	४१८
उ	
उत्तरतिथिगतवृद्धिक्षयाभ्यां मृताहतिथिनिर्णयः	१८३
उत्तरमीमांसागतं स्मृत्याधिकरणम्	८
उत्तरविद्धायास्तिथेर्ग्रहणे क्रियत्परिमाणमुदयेऽपेक्षणीयमिति विवेचनम्	१५४
उपवासनिषेधे भक्षणनिर्णयः	३४६
उपवासशब्दाभिधेयस्यान्वाधानादेः कालनिर्णयः	४१८
उपवासासमर्थस्य विधिः	३३४
उपोद्घातः	१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयः	पृष्ठे
ऋ	
ऋतुनिरूपणम्	३९
ऋतूनां षड्विधत्वपंचविधत्व-निरूपणम्	३९
ए	
एकत्रनित्यत्वकामत्वयोरविरोध-निरूपणम्	१४६
एकभक्तनक्तयोरेकस्मिन् दिने प्राप्तौ निर्णयः	१४७
एकभक्तनिर्णयः	२३६
एकभक्तस्य कालस्वरूपनिर्णयः	२३६
एकभक्तस्य त्रैविध्यम्	२३६
एकवर्षस्थमलमासत्रयामनकाल-निर्णयः	६२
एकादशीनिर्णयः	२९२
एकादशीमहिमा	३५१
एकादश्यां व्रतानुष्ठानक्रमः	३४१
एकादश्यां विरूद्धवचनानां व्यवस्थापनम्	३१९
एकादश्यां श्राद्धं कृत्वाऽपि न भोक्तव्यम्	३४०
एकादश्यां सूतकादौ तत्र परि-त्यक्तस्य देवार्चनादेः सूतकान्ते कर्त्तव्यता	३४५
एकादश्यां सूतकादौ दानार्च्चन-रहितस्योपवासमात्रस्य कर्त्तव्यता	३४५
एकादश्यां स्त्रीणां रजोदर्शनेऽपि देवार्च्चनादिरहितस्यो-पवासमात्रस्य कर्त्तव्यता	३४६
एकादश्यामधिकारिनिर्णयः	३२७
एकादश्यामरुणोदयवेधस्य वैष्णवविषयत्वनिर्णयः	३०९

विषयः	
एकादश्यामुपवासाकरणे प्रायश्चित्तम्	३३७
एकादश्युपवासस्य नित्यत्व काम्यत्वनिर्णयः	२९२
एकोद्दिष्टपार्वणभेदेन पित्र्यस्य द्वैविध्यम्	१६३
एकोद्दिष्टस्य समाप्तिकालः	१६८
एकोद्दिष्टस्यारम्भकालः	१६८
एकोद्दिष्टस्वरूपनिर्णयः	१६८
एकोद्दिष्टे किं कालव्यापिनी तिथिग्राह्येति विवेचनम्	१६५
क	
करणनिर्णयः	४४०
कर्मकालव्यापिशास्त्रस्य प्राबल्यम्	१९२
कर्मभेदकप्रमाणानि	२४७
कर्मविशेषे ऋतुविशेषनिरूपणम्	४३
कर्मविशेषे मासविशेषप्राशस्त्यम्	५१
कर्मविशेषे संवत्सरविशेषनिर्णयः	२७
काम्योपवासक्रमः	३३८
कालनिरूपणम्	१
कालस्य नित्यानित्यभेदेन द्वैविध्यम्	४
कुतपस्वरूपम्	१७७
क्षयमासयुताब्दे मासद्वयस्याधि-कत्वम्	६१
क्षयमासस्वरूपादिकम्	६१
क्षयमासस्य द्विमासत्वम्	६७
क्षिप्रादिगणनिर्णयः	४६१
ख	
खण्डापूर्णभेदेन तिथीनां द्वैविध्यम्	९७
खर्वादिभेदेन तिथीनां त्रैविध्यम्	९७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयः पृष्ठे

ग

गृहस्थस्यापि क्वचित् यतिवत् दिवानक्ताचरणम् १४४
ग्रस्तास्तमये ग्रहणे पुण्यकाल-निर्णयः ४८०
ग्रस्तास्तमये ग्रहणे भोजनव्यवस्था ४८१
ग्रहणकाले स्थितस्य पक्वान्नस्य परित्यागः ४७७
ग्रहणनिर्णयः ४६७
ग्रहणविशेषे स्नानादौ नदीविशेषनिर्णयः ४७१
ग्रहणश्राद्धं हेमाद्रिना कार्यम् ४७५
ग्रहणस्नानस्य गङ्गादौ प्राशस्त्यम् ४६७
ग्रहणस्नाने मासविशेषेण नदीविशेषस्य प्राशस्त्यम् ४७१
ग्रहणस्याद्यन्तयोः स्नानम् ४७७
ग्रहणे क्षेत्रविशेषप्राशस्त्यम् ४७३
ग्रहणे दानं सत्पात्रे करणीयम् ४७८
ग्रहणे पुत्रिण उपवासनिषेधः ४८५
ग्रहणे पुत्रिणो भोजनकालः ४८५
ग्रहणे भोजनप्रायश्चित्तम् ४८२
ग्रहणे भोजनव्यवस्था ४८०
ग्रहणे भोजनव्यवस्थायां बालवृद्धा-तुरविषये विशेषः ४८२
ग्रहणे स्वापादिनिषेधः ४७७
ग्रहणे होमादिकालः ४७७

च

चतुर्थी निर्णयः २०६
चतुर्दशीनिर्णयः ३५८
चतुर्दश्यां दिवाभोजनप्रायश्चित्तम् ३३७
चान्द्रमासस्य द्वैविध्यम् ४५

विषयः पृष्ठे

चान्द्रसंवत्सरस्य संवत्सर-परि-वत्सरादिभेदेन पञ्चविधत्वम् ३५
चान्द्र-सौर-सावनशब्दानां प्रवृत्ति-निमित्तनिरूपणम् २८
चूडामणियोगः ४७४

ज

जन्माष्टमी-जयन्तीव्रतयोः स्वरूप-निरूपणम् २५४
जन्माष्टमी-जयन्त्यो ग्राह्यतिथि-निर्णयः २७०
जन्माष्टमी-जयन्त्यो र्वेधनिरूपणम् २६४
जन्माष्टमी व्रतविचारः २४१
जन्माष्टमी विचारः २४१
जन्माष्टम्यादौ पारणनिर्णयः २७९
जन्यकालनिरूपणम् २१
जयन्तीलक्षणम् २४४
ज्योतिरधिकरणम् २४८

त

तिथिनिर्णयः ९२
तिथिभान्ते पारणनिरूपणम् १२७
तिथिभान्ते पारणस्यापवादः १२७
तिथीनां वेधनिर्णयः १०९
तृतीयानिर्णयः २००
त्रयोदशीनिर्णयः ३५६

द

दक्षिणायनेऽप्युग्रदेवतानां प्रतिष्ठा ३८
दर्शशब्दार्थनिर्वचनम् ४११
दशमीनिर्णयः २८७
दशमीवेधनिर्णयः ३०४
दशमीवेधस्य विषयव्यवस्था ३०८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयः	पृष्ठे
दानव्रतयोर्मुख्यानुकल्पभेदेन कालनिर्णयः	१५३
दिवा दैवादकरणे रात्रावपि श्राद्धकरणनिर्णयः	१७४
दिवारात्रिगतानां मुहूर्त्तानां श्रुत्याद्युक्तानि नामानि	१०१
दैविकश्राद्धनिरूपणम्	१२४
द्वादशीनिर्णयः	३५३
द्वादश्यां श्रवणनक्षत्रलाभे एकादश्युपवासे विशेषः	३४७
द्वितीयादिप्रकरणम्	१९२
द्वितीयानिर्णयः	१९२
द्वितीयायामेकभक्तादौ प्रतिपन्न्यायेन निर्णयनिरूपणम्	१९९
द्विसंक्रान्तमासस्य क्षयसंज्ञायामुपपत्तिः	६४
न	
नक्तनिर्णयः	१४१
नक्तव्रते तिथिनिर्णयः	१४३
नक्तस्य कालनिर्णयः	१४२
नक्तस्वरूपनिर्णयः	१४२
नक्षत्रनिर्णयः	२८१
नवमीनिर्णयः	२८५
नागव्रते मध्याह्नव्यापिन्याश्चतुर्थ्या ग्राह्यत्वनिर्णयः	२१९
नागवेधस्य षण्मुहूर्त्तात्मकत्वनिर्णयः	२२९
नित्यकालनिरूपणम्	१
नित्योपवासप्रकारः	३४६
निर्णेतव्यकालविचारः	१४
निर्मन्थ्यन्यायः	३७४

विषयः	पृष्ठे
प	
पक्षनिर्णयः	८८
पञ्चदशीनिर्णयः	३९४
पञ्चमीनिर्णयः	२२०
परतिथ्यादिगतयोः क्षयवृद्ध्योः पूर्वतिथ्यादिषु प्रक्षेपपूर्वकं तन्निर्णयकथनम्	१८४
पर्वसन्धिनिरूपणम्	४१४
पर्वसन्धिविषये परतिथेःक्षयवृद्धिभ्यां विशेषकथनम्	४३४
पर्वसु रात्रिभोजनप्रायश्चित्तम्	४८५
पाञ्चरात्रादिदीक्षारहितानां श्रौतस्मार्त्तपर्यवसितानामधिकारिणामेकादशीनिर्णयः	३१५
पात्रलक्षणम्	४७९
पात्रेषु मुख्यानुकल्पनिर्णयः	४७९
पापक्षयकामस्य ग्रहणदिने उपवासविधानम्	४८५
पापक्षयमात्रफलकानां काम्यत्वाभावनिरूपणम्	२५९
पारणकालविचारः	१२७
पार्वणश्राद्धनिर्णयः	१७०
पित्र्यकर्मणि प्रतिपन्निर्णयः	१६३
पूर्णिमाशब्दार्थनिर्वचनम्	४०६
पूर्वविद्धायां कर्त्तव्यतया निर्णीतानामपि कर्मणां दैवात्तत्राकरणे परविद्धायामपि कर्तव्यतानिर्णयः	१२९
पूर्वविद्धायां प्रतिपद्युपवाससंकल्पविचारः	१२४
पूर्वोत्तरविद्धयोः प्रतिपदोः पूज्यत्वविचारः	१११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयः	पृष्ठे
पौर्णमासीनिर्णयः	३९४
पौर्णमास्यमावस्ययोर्द्वैविध्यकथनम्	४१३
प्रकीर्णकप्रकरणम्	४३७
प्रतिनिधिविधानम्	३३५
प्रतिनिधौ विशेषकथनम्	३३७
प्रतिपत् प्रकरणम्	९३
प्रतिपदादिदानव्रतनिर्णयः	१५१
प्राणाधिकरणम्	११३
प्रातःकाले श्राद्धनिषेधः	१७७
प्रोक्षणीन्यायः	३६७
ब	
ब्राह्मणादिजातिभेदेन मासविशेषविधानम्	५०
म	
मकरकर्कटसंक्रान्तौ रात्रावपि स्नानादिकम्	४५७
मध्वादि शब्दानां चैत्रादिपर्य्यायत्वकथनम्	४१
मलमासनिर्णयः	५३
मलमाससंसर्पाहंस्पतिसंज्ञकानां त्रयाणामपि मासानां विवहादौ निषेधः	६०
मलमासस्य द्विराषाढसंज्ञार्णियः	८७
मलमासस्य द्विराषाढसंज्ञायाः प्रयोजनकथनम्	८७
मलमासस्य नपुंसकत्वनिर्णयः	५४
मलमासस्य मलिम्लुचत्वनिर्णयः	५४
मलमासस्य स्वातन्त्र्यपूर्वोत्तरशेषत्वविचारः	५९
मलमासे कार्याकार्यविवेकस्य पञ्चविधत्वकथनम्	८६
मलमासे वर्ज्यावर्ज्यविवेकः	६८
महानदीकथनम्	४७०
मासनिरूपणम्	४४
मासविशेषकर्त्तव्यनिर्णयः	५१
मासशब्दनिरुक्तिनिर्णयः	४५
माससामान्यकर्त्तव्यनिर्णयः	५१
मासस्य चान्द्रादिभेदननानाविधत्वनिर्णयः	५१
मासानां चैत्रादीनां कथनम्	५०
मृताहे श्राद्धनिर्णयः	१२३
मृताहे पार्वणविधिः	१६३
मेषादिसंक्रान्तितः पूर्वं मेषायणादि निर्णयः तत्र पुण्यकालादि निर्णयश्च	४५६
मेषादिसंक्रान्तीनां चैत्रादि संज्ञानिमित्तत्वविचारः	५१
य	
यागकालनिर्णयः	४१७
यावज्जीवाधिकरणम्	२९९
युग्मवाक्यस्योपवासविषयत्वनिर्णयः	१९४
योगनिर्णयः	४४०
र	
रविवारे रात्रिभोजन प्रायश्चित्तम्	३३७
रात्रिनक्तभोजने कालनिर्णयः	१४१
रात्रिसंक्रमणे पुण्यकालनिर्णयः	४५१
रामनवमी निर्णयः	२८५
व	
वत्सर-प्रकरणम्	२७
वर्ज्यावर्ज्यविवेकः	६८
वल्युत्सवीय प्रतिपन्निर्णयः	१२९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयः	पृष्ठे
वसन्तमष्तोः प्राथम्यनिर्णयः	४१
वसन्तादि ऋतुनिरूपणम्	३९
वसन्तादिऋतूनां चान्द्र-सौरभेदेन निर्णयः	४१
विद्धैकादश्युपवासे रात्रौ संकल्पः	३४३
विनायकव्रतादौ चतुर्थ्याः पूर्वविधत्वनिर्णयः	२१२
विनायकव्रते मध्याह्नकालव्याप्तिनिर्णयः	२१५
विरोधाधिकरणन्यायः	६
विविदिषाधिकरणम्	३०१
वेधकतिथेर्वेध्यतिथेश्च त्रिमुहूर्त्तत्वं वेध्यवेधकत्वप्रयोजनम्	१९४
वैश्वानरविद्योपासनन्यायः	३८०
वैष्णवलक्षणम्	३१०
वैष्णवविषये एकादशीनिर्णयः	३११
व्यवस्थितविकल्पे अष्टौ दोषाः	२०९
व्रतविशेषादष्टमीनिर्णयः	२४१
शिवरात्रिव्रतनिर्णयः	३६२
शिवरात्रिव्रतस्य नित्यत्वकाम्यत्वे	३७६
शिवरात्रिव्रतस्वरूपनिर्णयः	३७६
शिवरात्रिव्रते अधिकारिणो नियमाः	३७८
शिवरात्रिव्रते ग्राह्यतिथिनिर्णयः	३८४
शिवरात्रिव्रते पारणकालनिर्णयः	३९२
शिवरात्रिव्रते सर्वेषामधिकारः	३७७
शिवरात्रिशब्दार्थनिर्णयः	३६२
शिवरात्रौ काम्यव्रतस्य वर्षसंख्या	३७७
शुद्धतिथिनिर्णयः	३९९

विषयः	पृष्ठे
श्रुत्यादिप्रमाणानां बलाबलभावनिर्णयः	२०६
ष	
षष्ठी निर्णयः	२२५
स	
संक्रान्ति-निर्णयः	४४४
संक्रान्तिपुण्यकालनिर्णयः	४४७
संक्रान्तिविशेषेषु स्नानादीनां कालविशेषनिरूपणम्	४४८
संक्रान्तिस्वरूप-निर्णयः	४४४
सम्मुखीनिर्णयः	१००
संवत्सरस्य त्रैविध्यनिर्णयः	२७
संवत्सरस्य पञ्चविधत्वनिर्णयः	३३
संसर्पाख्यस्य त्रयोदशमासस्य ऋत्वन्तर्भावनिर्णयः	४२
संसर्पाख्यस्य त्रयोदशमासस्य कर्मार्हत्वतदपवादौ	६४
संसर्पांहस्पतीसंज्ञकमासद्वयनिर्णयः	६५
सप्तमीनिर्णयः	२३०
सर्वेषां ग्रहाणां नक्षत्रराशिसंक्रमे पुण्यकालनिर्णयः	४५६
सांवत्सरिकादौ कृतपस्य मुख्योपक्रमकालत्वकथनम्	१७७
सांवत्सरिकादौ प्रतिपदः पूर्वोत्तरविद्धायाः ग्राह्यत्वविचारः	१८०
सायाह्नापराह्णादिकालनिर्णयः	१००
सावित्रीव्रते तिथिनिर्णयः	३९५
सौरनक्ते तिथिनिर्णयः	१४५
स्कन्दोपवासे पञ्चम्याः परिविद्धायाः ग्राह्यत्वनिर्णयः	२२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपोद्घातः

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥ १ ॥

सब कार्यों के प्रयोजनों में देवगुरु बृहस्पति प्रभृति देवता लोग जिसको नमस्कार करके कृतकृत्य होते हैं उस गजानन गणेश जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

सोऽहं प्राप्य विवेकतीर्थपदवी[1]माम्नायतीर्थे परं
मज्जन् सज्जनसङ्गतीर्थनिपुणः सद्वृत्ततीर्थं श्रयन् ।
लब्धामाकलयन् प्रभावलहरीं श्रीभारतीतीर्थतो ।
विद्यातीर्थमुपाश्रयन् हृदि भजे श्रीकण्ठमव्याहतम् ॥ २ ॥

आम्नाय अर्थात् वेद । आम्नाय तीर्थ में अर्थात् वैदिक शास्त्र में आत्मा और अनात्मा को विवेचना पूर्वक जानकर विवेकतीर्थ नामक पदवी को प्राप्त होकर तथा सज्जन लोगों की संगति में निमग्न होकर, उत्तम लोगों के वृत्त अर्थात् आचार को लाभकर, भारती तीर्थ के प्रभाव की लहरी से प्रभावित होकर और विद्यातीर्थ के आश्रय लेकर मैं अपने हृदय में श्रीकण्ठ को निरन्तर भजन करता हूँ ॥ २ ॥

सत्यैकव्रतपालको द्विगुणधीस्त्र्यर्थी चतुर्वेदिता[2]
[3]पञ्चस्कन्धकृती षडन्वयदृढः[4] [5]सप्ताङ्गसर्वंसहः । /

---

१. विवेकतीर्थ इति माधवाचार्यस्योपनाम ।

२. आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती ।
विद्याश्चैताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः ॥ इति ।

३. सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः ।
विनिपातप्रतीकारः सिद्धिः पंचांगमिष्यते ॥ इति

४. सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ।
द्वैधीभावं संश्रयं च षाड्गुण्यं चिन्तयेन्नृपः मनुः ७।१६०

५. स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ।
सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ मनुः ९।२९४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[1]अष्टव्यक्तिकलाधरो [2]नवनिधिः पुष्यद्दशप्रत्ययः
स्मार्त्तोच्छ्राय-धुरन्धरो विजयते श्रीबुक्कणक्ष्मापतिः ॥ ३ ॥

सत्य का व्रतपूर्वक पालनकर्त्ता, दो गुण बुद्धिवाला, तीन अर्थों को लाभ करने के लिये तत्पर, चार वेदों को अध्ययन करनेवाला, पांच स्कन्धों को रखनेवाला, छ अन्वयों से दृढ़, सात अङ्गों के रक्षक, आठ कला को धारण करनेवाला, नौ निधि के प्रभु, दस प्रत्ययों को पुष्टि करनेवाला, और स्मृति-शास्त्र अर्थात् धर्मशास्त्र के धुरन्धर विद्वान् राजा बुक्कण विराजित (विजय शील) है ॥३॥

दूसरा अर्थ—सत्य रूप एक मुख्य व्रत के पालक, दूसरे नरपतिओं से दो गुणे बुद्धिमान अथवा सत्त्व और रज रूप दो प्रकार के बुद्धि से युक्त, धर्म, अर्थ और काम अभिलासी ये तीन पुरुषार्थो के अर्थी अर्थात्—अभिलाषी, साम, दान भेद और दण्ड रूपक उपायों के ज्ञाता, अथवा आन्विक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति को जाननेवाला, रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार है ये पांच बौध तत्त्वों के अर्थात् सहाय, साधनोपाय, देश और काल के विभाग, विनिपात और प्रतीकार ये पांच मन्त्र सिद्धि में कुशल, सन्धि–विग्रह यान, आसन, दैधीभाव और संश्रय ये छ गुणों (षाड्गुण्य) से दृढ़, स्वामी, अमात्य. सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और बल, ये सात अङ्गों से समृद्ध, सर्वसहा अर्थात् राज्यवाला, आठ दिक्पालों की शक्ति के आधार स्वरूप महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, कुन्द, नील और खर्व—ये नौ नीधियों का प्रभु, दस दिशाओं में जिसके ऊपर प्रत्यय अर्थात् विश्वास है या चार वेद और छ वेदाङ्गों मिलकर दश शास्त्रों के ऊपर जिसकी निगुणता है, वह राजा बुक्कण विराजित है।

व्याख्याय माधवाचार्यो धर्मान् पाराशरानथ ।
तदनुष्ठानकालस्य निर्णयं कर्त्तुमुद्यतः ॥ ४ ॥

पराशरस्मृति में प्रतिपादित धर्मों की व्याख्या करके इनको अनुष्ठान करने के लिये आवश्यक काल का निर्णय करने के लिये माधवाचार्य जी उद्यम करते हैं ॥ ४ ॥

---

१. सोमऽग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ।
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ मनुः ५।९६

२. महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ ।
मुकुन्दः कुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधियो नव ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यामूढानामिह तनुभृतां जाह्नवीतीर्थमेकं
विद्यातीर्थं प्रकृतिविमलं सद्विवेकोदयानाम् ।
सर्वेषां तत् प्रथमसुखदं भारतीतीर्थमाहु-
स्तद्भावान्मे विपुलमनसो निश्चये शक्तिरस्ति ॥ ५ ॥

इस जगत में मोहग्रस्त लोगों के दोष को दूर करने के लिये गङ्गा तीर्थ की तरह प्रकृति शुद्ध विद्या तीर्थं भारती तीर्थ जी ही है। वे सभी को सुख देते हैं। उनके साथ सद्भाव रखने के कारण मैं विपुलमना होकर धर्मानुष्ठानार्थ काल को निश्चय करने के लिये अवश्य शक्तिमान् हूँ ॥ ५ ॥

अर्थोऽनुक्रम्यते श्लोकैरखिला निर्णिनीषितः ।
तावतैवानुतिष्ठासुर्निःसन्देहं प्रवर्त्तताम् ॥ ६ ॥

निर्णय करने के लिये इच्छा प्रकाश कर श्लोक के माध्यम से अर्थों का विवरण दिया जाता है। इसका साहाय्य लेकर अनुष्ठानकामी लोग निसन्देह प्रवर्त्तित होंगे ॥ ६ ॥

ततो मीमांसुचित्तस्य समाधानाय तत्पुनः ।
विवरिष्ये यथान्यायं श्रुतिस्मृतिवचोबलात् ॥ ७ ॥

जिस पर मीमांसा आवश्यक होगी। उस मीमांसा को प्रतिपादन करने के लिये श्रुति और स्मृति के वचनानुसार न्याय पूर्वक विवरण उपस्थापित करूँगा ॥ ७ ॥

पञ्च प्रकरणान्यत्र तेषूपोद्घात[1]वत्सरौ ।
प्रतिपत् शिष्टतिथयो नक्षत्रादिरितिक्रमः ॥ ८ ॥

इस ग्रन्थ में क्रमानुसार उपोद्घात, वत्सर, प्रतिपत्, द्वितीया प्रभृति तिथिओं और नक्षत्रादि के नाम से पांच प्रकरण आलोचित किये हैं ॥ ८ ॥

उपोद्घाते कालसत्वं तस्य निर्णययोग्यता ।
ईश्वरो नित्यकालात्मा चिन्तनीयः स कर्मसु ॥ ९ ॥

उपोद्घात प्रकरण में काल का अस्तित्व और निर्णय के लिये योग्यता, सब प्रकार कर्मों में चिन्तनीय ईश्वर के नित्य कालस्वरूप प्रभृति विषयों पर विचार किया गया है ॥ ९ ॥

जन्ये कालेऽब्दमुख्यत्वमुक्तमेतच्चतुष्टयम् ॥ १० ॥
अब्दायनर्तुमासाश्च पक्षः प्रकरणान्तरे ।

---

१. चिन्तां प्रकृतसिद्ध्यर्थामुपोद्घातं विदुर्बुधाः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्य काल से उत्पन्न जन्मकाल अनेक हैं। उनमें अब्द या संवत्सर मुख्य होता है ॥ १० ॥

अब्दः पञ्चविधश्चान्द्रो व्रतादौ तिलकादिके ॥ ११ ॥
सुजन्मादिव्रते सौरो गोसत्रादिषु सावनः।
त्रयोऽप्याचार्यसेवादौ विकल्प्यन्ते निजेच्छया ॥ १२ ॥
आयुर्दाये हि नाक्षत्रो बार्हस्पत्योऽधिवत्सरे।
चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके युगे ॥
संपरीदान्विदित्येतच्छब्दपूर्वास्तु वत्सराः ॥ १३ ॥

इस प्रकरण से भिन्न प्रकरण में अयन, ऋतु, मास और पक्ष के विषय पर विचार होता है। अब्द पांच प्रकार होता है। तिलकादि व्रत में उपयोगी चान्द्र संवत्सर प्रसिद्ध है। सुजन्मादि व्रत में सौर और गोसत्रादि में सावन संवत्सर विनियुक्त होते हैं। लेकिन आचार्यसेवादि क्रिया में ये तीन संवत्सर विकल्प रूप से गृहीत होते हैं। आयु की गणना और अधिवत्सर में यथाक्रम नक्षत्र और बार्हस्पत्यवत्सर अनुमोदित होते हैं। प्रभवादि चान्द्र-संवत्सर पांच-पांच वर्ष में आवर्त्तित होते हैं। सं, परि, इद, इदा, और आ, इन पांच शब्दों को पूर्व में स्थापित कर संवत्सरों के नाम का निर्णय होता है ॥ ११-१३ ॥

तिलो यवो वस्त्रधान्ये राजतं दीयतेऽत्र तु।
उग्रे कर्मणि शान्ते च स्तोऽयने दक्षिणोत्तरे ॥ १४ ॥

इन संवत्सरों में तिल, यव, वस्त्र, धान्य और रजतादि द्रव्यों का दान होता है। उग्रकर्मों का अनुष्ठान के लिये दक्षिणायन और शान्तिकर्मों के लिये उत्तरायण प्रशस्त है ॥ १४ ॥

वसन्ताद्यृतवो द्वेधा चान्द्राः सौराश्च चान्द्रकाः।
चैत्राद्या अथ मीनाद्या मेषाद्या वा विवस्वतः ॥ १५ ॥

चान्द्र और सौर भेद से बसन्तादि ऋतुओं को दोभागों में विभाजित की जाती है। चान्द्र-संवत्सर का चैत्रमास से और सौर संवत्सर का मीन या मेष से प्रारम्भ होता है ॥ १५ ॥

तेष्वाधानादयस्तद्वत् षण्मूर्त्तिव्रतपूजनम्।
मासास्तु सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्र इत्यमी ॥ १६ ॥

आग्न्याधान और षण्मूर्त्ति व्रत इस समय पर अनुष्ठित होते हैं। सावन, सौर, चान्द्र और नक्षत्र भेद से मास चार प्रकार होता है ॥ १६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दर्शान्तः पूर्णिमान्तो वा चान्द्रोऽसौ विप्रवैश्ययोः ।
सौरो राज्ञः सावनस्तु यज्ञे ज्योतिषिके परः ॥ १७ ॥

दर्शान्त और पूर्णिमान्त के रूप में चान्द्र मास प्रसिद्ध है, यह विप्र और वैश्य के लिये व्यवहार योग्य है। सौरमास क्षत्रिय के लिए और सावनमास यज्ञादि काल का निर्णय के लिये उपयुक्त है। ज्योतिष शास्त्र में इस मास की प्रसिद्धि पाई जाती है ॥ १७ ॥

माघादिमासभेदेषु तिलदानादयः स्मृताः ।
चान्द्रोऽधिमासोऽसंक्रान्तः सोऽन्तर्भवति चोत्तरे ॥ १८ ॥

माघादिमासों में तिलदानादिधार्मिक कृत्य अनुष्ठेय है। चान्द्र अधिमास संक्रान्तिरहित होने से परवर्त्तिमास में अन्तर्भुक्त होता है ॥ १८ ॥

असंक्रान्तावेकवर्षे द्वौ चेत् संसर्प आदिमः ।
क्षयमासो द्विसंक्रान्तः स चांहस्पतिसंज्ञकः ॥ १९ ॥

एक संवत्सर में अगर दो संक्रान्तिरहित मास होते हैं तो उनसे प्रथम संक्रांति रहित मास की संज्ञा 'संसर्प', द्विसंक्रान्त मास की संज्ञा क्षयमास और परवर्त्ती संक्रान्ति रहित मास की संज्ञा अंहस्पति होती है ॥ १९ ॥

त्रयस्त्याज्या विवाहादौ संसर्पाहंस्पती उभौ ।
शुद्धौ श्रौते तथा स्मार्त्ते मलमासो विविच्यते ॥ २० ॥

ये तीन प्रकार के मास विवाहादि शुभकार्यों में परित्याज्य हैं। मलमास के शुद्धपक्ष में श्रौतकर्म और स्मार्त्तकर्म हो सकते हैं ॥ २० ॥

काम्यारम्भं तत्समाप्तिं मलमासे विवर्जयेत् ।
आरब्धं मलमासात्प्राक् कृच्छ्रं सत्रादिकं तु यत् ॥ २१ ॥
तत्समाप्यं सावनस्य मानस्यानतिलङ्घनात् ।
आरम्भस्य समाप्तेश्च मध्ये स्याच्चेन्मलिम्लुचः ॥ २२ ॥
प्रवृत्तमखिलं काम्यं तदाऽनुष्ठेयमेव तु ।
[1]कारीर्यादि तु यत्काम्यं तस्यारंभसमापने ॥ २३ ॥
कार्ये कालविलम्बस्य प्रतीक्षाया असंभवात् ।
अनन्यगतिकं नित्यमग्निहोत्रादि न त्यजेत् ॥ २४ ॥

---

१. कारीरी नाम यागविशेषः । अवग्रहे शुष्यतां शस्यानां वृद्धया सञ्जीवनं तत्फलम् । अतस्तत्र कालप्रतीक्षा न संभवति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गत्यन्तरयुतं नित्यं सोमयागादि वर्जयेत् ।
अगतिग्रहणं स्नानं [1]जातेष्टिर्गतिसंयुता ॥ २५ ॥

मलमास में सब प्रकार के काम्य कर्मों का आरंभ और समाप्ति नहीं हो सकती । मलमास के पूर्ववर्त्ती काल तक प्रारब्ध सत्रादि कर्मों की मलमास में समाप्ति हो सकती है, क्योंकि उसकी परिगणना सावनमान से होती है। सावनमान का लंघन उचित नहीं है । आरंभ और समाप्ति के मध्यवर्त्ती समय पर मलमास हो जाने से आरब्ध काम्य कर्म का अनुष्ठान में कोई दोष नहीं है । कारीरी प्रभृति काम्य कर्म और गत्यन्तर रहित कर्मों का अनुष्ठान के लिये काल प्रतीक्षा नहीं हो सकती । इसलिये काम्य कर्मों का आरंभ या समाप्ति और गत्यन्तर रहित अग्निहोत्रादि नित्य कर्मों का अनुष्ठान मलमास में हो सकता है ।

सोमयाग प्रभृति याग भिन्न समय में अनुष्ठित हो सकते हैं, परन्तु, मलमास में उनका वर्जन होता है । ग्रहण-स्नान भिन्न काल में नहीं हो सकता । इस लिये अगतिक कर्म होता है । जातेष्टि भिन्न काल में हो सकती है इस लिये सगतिक कर्म है । इन दोनों में ग्रहण स्नान मलमास में हो सकता। किन्तु जातेष्टि कर्म नहीं हो सकता ॥ २१-२५ ॥

द्वयं नैमित्तिकं तस्य व्यवस्था नित्यवन्मता ।
शुद्धमासमृतानां स्यान्मलिने प्रथमाब्दिकम् ॥ २६ ॥
मलमासमृतानां तु मले स्यादाब्दिकान्तरम् ।
दैवे मुख्यः शुक्लपक्षः कृष्णः पित्र्ये विशिष्यते ॥ २७ ॥

शुद्ध मास में मृतों के प्रथमाब्दिक श्राद्ध और मलमासों में मृतों में प्रथमाब्दिक श्राद्ध मलमास में होता है । दैव कार्य के लिये शुक्लपक्ष और पितृकार्य के लिये कृष्णपक्ष प्रशस्त है ॥ २६-२७ ॥

तृतीये तु प्रकरणे वर्णिता प्रतिपत्तिथिः ।
प्रतिपन्नाम विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला ॥ २८ ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीया प्रकरण में प्रतिपत् तिथि का निर्णय वर्णित है। प्रतिपत् चन्द्र की सबसे पहली कला है ॥ २८ ॥

---

१. वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जाते इति श्रुत्या विहिता जातेष्टि भिन्नकालेऽनुष्ठातुं शक्यते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुक्लपक्षे विशेच्चन्द्रं कृष्णपक्षे विनिःसरेत् ।
शुद्धा विद्धा तिथिः शुद्धा हीना तिथ्याऽन्ययाऽह्नि ॥ २९ ॥

शुक्ल पक्ष में यह कला चन्द्र में प्रवेश करती है और कृष्णपक्ष में निकल जाती है । शुद्धा और विद्धा भेद से तिथि दो प्रकार की होती है ॥ २९ ॥

उदये पूर्वया तिथ्या विध्यते त्रिमुहूर्त्तकैः ।
सायं तूत्तरया तद्वत् न्यूनया तु न विध्यते ॥ ३० ॥

सूर्योदय से पुनः सूर्योदय का अन्तराल में अन्य तिथि का संसर्ग से रहित तिथि शुद्धा होती है । सूर्योदय में पूर्वतिथि तीन मुहूर्त्त होने से तिथि विद्धा होती है । अस्तकाल में उत्तरतिथि के तीन मुहूर्त्त न्यून होने से वह विद्ध नहीं हो सकती है ॥ ३० ॥

वेध्याऽपि त्रिमुहूर्त्तैश्च न न्यूना वेधमर्हति ।
शुद्धायां नास्ति सन्देहो दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ३१ ॥

अतः वेध के लिये तीन मुहूर्त्त काल की स्थिति अनिवार्य है । दैव और पितृकर्म के लिये शुद्धा तिथि में सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥

उपवासश्चैकभक्तं नक्तं चायाचितं व्रतम् ।
दानं च षड्विधं दैवं क्रमादत्र विविच्यते ॥ ३२ ॥

उपवास, एकभक्त, नक्त (दिवानक्त और रात्रिनक्त), अयाचित और दान—ये छ प्रकार देवकर्म की विवेचना यहाँ होती है ॥ ३२ ॥

एकोद्दिष्टं पार्वणं च पित्र्यं द्वैविध्यमीर्य्यते ।
शुक्लपक्षे दर्शविद्धा कृष्णे विद्धा द्वितीयया ॥ ३३ ॥

एकोद्दिष्ट और पार्वण नाम से पितृकर्म दो प्रकार है । शुक्लपक्ष की अमावास्या-विद्धा और कृष्ण पक्ष की द्वितीया-विद्धा प्रतिपत तिथि उपवास के लिये प्रशस्त होती है ॥ ३३ ॥

उपोष्या प्रतिपच्छुक्ले मुख्या स्यादापराह्णिकी ।
तदभावे तु सायाह्नव्यापिनी परिगृह्यताम् ॥ ३४ ॥

विशेषतः अपराह्णव्यापिनी शुक्लपक्ष की प्रतिपत् तिथि मुख्य होती है । अपराह्ण व्याप्ति के अभाव से सायाह्न व्याप्ति अङ्गीकृत होती है ॥ ३४ ॥

प्रातः-सङ्गव- मध्याह्नापराह्णाः सायमित्यसौ ।
अत्राह्नः पञ्चधा भागो मुख्यो द्वित्र्यादिभागतः ॥ ३५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रातः, संगव, मध्याह्न, अपराह्न और सायाह्न भेद से दिवस का पांच प्रकार विभाग है। दो प्रकार और तीन प्रकार विभाग से इस प्रकार विभाग मुख्य हैं ॥ ३५ ॥

अभावेऽपि प्रतिपदः संकल्पः प्रातरिष्यते।
तिथिस्त्रियामतोऽर्वाक् चेत्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ ३६ ॥
यामद्वयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणम्।
बल्युत्सवं च पूर्वेद्युरुपवासवदाचरेत् ॥ ३७ ॥

संगवप्रभृति विभागों से अभाव होने पर भी दैवकार्य के लिये प्रातः काल में संकल्प होता है। पूर्वविद्धा प्रतिपत् प्रातः काल में तीन मुहूर्त्त नहीं होने पर भीं प्रातः काल में संकल्प होकर अन्त में पारण होता है। पूर्वविद्धा प्रतिपत तिथि में उपवास जैसा होता है वल्युत्सव भी वैसा होता है ॥ ३६–३७॥

मुख्यतिथ्यन्तराये तु तिथिशेषोऽपि गृह्यताम्।
शुद्धाधिका तु कृष्णाऽपि पूर्वा संपूर्त्तिसंभवात् ॥ ३८ ॥

पूर्व बिद्धा मुख्य तिथि अन्तराय होने से विहिति कर्म अगर नहीं हो सकता तो परवर्ती दिन में तिथि के अवशिष्ट भाग में (पूर्वाह्न में) कर्म हो सकता है। एक दिन में साठ दण्ड विशिष्ट तिथि शुद्ध होती है। इससे अधिक होने से तिथि शुद्धाधिका होती है ॥ ३८ ॥

ग्रहीतव्या त्वेकभक्ते मध्याह्नव्यापिनी तिथिः।
परेद्युरेव तद्व्याप्तिः पूर्वेद्युर्वा दिनद्वये ॥ ३९ ॥

शुद्धाधिका कृष्ण प्रतिपत तिथि भी पूर्वविद्धा होकर ग्रहणीय होती है। क्योंकि पूर्वदिन में तिथि की व्याप्ति संपूर्ण होतीं है। एकभक्त में मध्याह्न व्याप्ति स्वीकृत है ॥ ३९ ॥

नोभयत्रोभयत्रांशे साम्यं वैषम्यमित्यमी।
षट् पक्षास्तेषु चैकैकव्याप्तौ सैवात्र गृह्यताम् ॥ ४० ॥
दिनद्वयेऽपि तद्व्याप्तावव्याप्तौ चैकदेशतः।
समव्याप्तौ च पूर्वैव वैषम्ये त्वधिकेष्यताम् ॥ ४१ ॥

तिथि व्याप्ति छ प्रकार की होती है। यथा पूर्वदिन से विद्ध होने से परत्रव्याप्ति, उभयदिनों से विद्ध होने पर उभयत्रव्याप्ति, विद्ध न होने पर नोभयत्रव्याप्ति, उभयदिन व्याप्ति स्थल में समान अंश से विद्ध होने पर उभयत्र साम्यव्याप्ति और विषम अंश से विद्ध होने पर उभयत्रवैषम्यव्याप्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है। छ प्रकार की व्याप्तिओं में पूर्वत्रव्याप्ति में पूर्वदिन और परत्र-व्याप्ति में परदिन ग्रहणीय होता है। उभयत्रसाम्यव्याप्ति तक पूर्व दिन ग्रहणीय है और यहाँ वैषम्यव्याप्ति होती है। इस स्थल में जिस दिन में अधिक व्याप्ति होती वह दिन ग्रहणीय होता है ॥ ४०–४१ ॥

अन्याङ्गस्यैकभक्तस्य कालस्त्वङ्ग्यनुसारतः।
उपवासप्रतिनिधेस्तिथिः स्यादुपवासवत् ॥ ४२ ॥

वहाँ एकभक्त स्वतन्त्र न होकर किस विशेष कर्म का अङ्ग होता है। यहाँ यह कर्म अङ्गी हो जाता है। एकभक्त अन्यांग हो जाने से एकभक्त के लिये स्वतन्त्र कर्मकाल नहीं है। अङ्गी का अनुष्ठान काल ही इसका अनुष्ठान काल होता है। उपवास का प्रतिनिधि होने पर इसका कर्मकाल उपवास की तरह होता है ॥ ४२ ॥

प्रदोषव्यापिनी नक्ते तिथिर्व्याप्तिर्दिनद्वये।
अव्याप्तिर्वाऽथवांऽशेन व्याप्तिः स्यात् सर्वथोत्तरा ॥ ४३ ॥

नक्तव्रत (रात्रिव्रत) के लिये प्रदोष को व्याप्त होनेवाली तिथि गृहीत होती है। उभयदिनों में व्याप्ति होने से या न होने से या कुछ अंश में होने से उत्तर दिन गृहीत होता है ॥ ४३ ॥

सौरनक्ते तु सायाह्नव्यापिनी न प्रदोषगा।
अयाचिते तु तिथयः स्वीकार्या उपवासवत् ॥ ४४ ॥

सौरनक्त के लिये तिथि की प्रदोषव्याप्ति न होकर सायाह्न व्याप्ति गृहीत होनी है। अयाचित व्रत के लिये उपवास की तरह तिथियाँ स्वीकृत होती हैं ॥ ४४ ॥

सोदयत्रिमुहूर्त्तायां कुर्याद्दानं व्रतानि च।
उभयत्र तथात्वे तु पूर्वेद्युस्तदनुष्ठितिः ॥ ४५ ॥

सूर्योदय से परवर्त्ती तीन मुहूर्त्त तक तिथि रहने से उदयव्याप्ति होती है। दान और व्रत के लिये उदय व्याप्ति मानी जाती है। उभयदिनों में उदयव्याप्ति होने से पूर्वदिन में दान और व्रतों का अनुष्ठान होता है ॥४५॥

परत्रैव तथात्वं चेत् पूर्वा ग्राह्या तिथिक्षये।
तिथेः साम्ये च वृद्धौ च गृह्यतां तिथिरुत्तरा ॥ ४६ ॥

परदिन में व्याप्ति होने से या तिथि क्षय होने से पूर्वदिन गृहीत होता है। दो दिनों में तिथि की व्याप्ति समान होने से या तिथ की वृद्धि होने से परदिन ग्रहणीय होता है ॥ ४६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्पर्शे चैकदेशस्य व्याप्तौ पूर्वैव गृह्यताम् ।
एकोद्दिष्टे तु मध्याह्नयुक्ता स्यादेकभक्तवत् ॥ ४७ ॥

एकदेश में व्याप्ति होने पर पूर्व दिन गृहीत होता है। एकभक्त की तरह एकोद्दिष्ट में मध्याह्नकाल प्रशस्त है ॥ ४७ ॥

एकदेशसमव्याप्तौ क्षये पूर्वाऽन्यथोत्तरा ।
[1]कुतपाद्यपराह्णान्तव्याप्तिराब्दिके उत्तमा ॥ ४८ ॥

एक देश व्याप्ति या तिथिक्षय में पूर्वदिन गृहीत होता है। अन्यथा सब जगह उत्तर दिन प्रशस्त है। वार्षिक पार्वण श्राद्ध के लिये कुतप से अपराह्ण तक तिथि व्याप्ति प्रशस्त है ॥ ४८ ॥

तदभावेऽपराह्णस्य व्यापिका गृह्यतां तिथिः ।
क्षये पूर्वोत्तरा वृद्धौ व्याप्तिश्चेदपराह्णयोः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार की व्याप्ति का अभाव से केवल अपराह्ण व्याप्ति गृहीत होती है। श्राद्ध के लिये तिथि क्षय हो जाने से पूर्व दिन और वृद्धि होने पर परदिन गृहीत होता है ॥ ४९ ॥

न ग्राह्यतिथिगौ वृद्धिक्षयावूर्ध्वतिथेस्तु तौ ।
साम्ये तूर्ध्वतिथेर्ग्राह्या परविद्धैव वृद्धिवत् ॥ ५० ॥
न स्पृशेदपराह्णौ चेत् पूर्वा स्यात् कुतपो वृथा ।
वैषम्येणैकदेशस्य व्याप्तौ ग्राह्या महत्त्वतः ॥ ५१ ॥

दो दिनों के अपराह्ण में व्याप्ति होने से तिथि की वृद्धि होती है किन्तु ग्राह्य तिथि का क्षय नहीं होता है। वृद्धि स्थल की तरह साम्य स्थल में भी परदिन गृहीत होता है। उभयदिनों के अपराह्ण को स्पर्श न होने से पूर्वदिन गृहीत होता है। परदिन के कुतपकाल में तिथि की अवस्थिति होने पर भी कुतप वृथा है। विषम एकदेश व्याप्ति स्थल में जिस दिन में अधिक व्याप्ति हो उस दिन का ग्रहण होता है ॥ ५०–५१ ॥

साम्येन चेत् क्षये पूर्वा परा स्याद् वृद्धिसाम्ययोः ।
वृद्धिसाम्यक्षया ग्राह्यतिथिगा नोर्ध्वगा इह ॥ ५२ ॥

साम्य एकदेश व्याप्ति स्थल में क्षय होने से पूर्वदिन और वृद्धि साम्य स्थलों में परदिन गृहीत होता हैं। वृद्धिसाम्य-क्षय के अवसर पर पूर्व तिथि की तरह निर्णय नहीं होता है। किन्तु ग्राह्य तिथि की वृद्धि प्रभृति यहाँ नियामक होती है ॥ ५२ ॥

---

१. अह्नोऽष्टमो मुहूर्त्तः कुतपः, तस्य द्वादशमुहूर्त्तेनापराह्णसमाप्तिः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीयाद्यास्तु पर्वान्तास्तुर्यप्रकरणोदिताः ।
सञ्चारणीयः सामान्यात् तिथिषु प्रतिपन्नयः ॥ ५३ ॥

द्वितीया से पंचदशी तक तिथिओं का निर्णय चौथा प्रकरण का विषय है । प्रतिपद का निर्णय के लिये अनुसृत नियम सब तिथि के लिये साधारण है ॥ ५३ ॥

क्वचित् क्वचित् विशेषोऽस्ति सोऽयमत्राभिधीयते ।
पूर्वेद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा ॥ ५४ ॥

स्थल विशेष में कुछ विशेष है जो यहाँ विचारणीय है । पूर्वदिन के प्रातः में द्वितीया न होकर परदिन में प्रातः में तीन मुहूर्त्त होने पर परदिन ग्रहणीय है ॥ ५४ ॥

सा द्वितीया परोपोष्या पूर्वविद्धा ततोऽपरा[1] ।
रम्भातृतीया पूर्वास्यादुत्तरा स्याद् व्रतान्तरे ॥ ५५ ॥

अन्यथा पूर्वदिन के प्रातः में तीन मुहूर्त्त होने से पूर्वदिन ग्रहणीय है । रम्भातृतीया पूर्वविद्धा गृहीत होती है । अन्य व्रतों में तृतीया परविद्धा होती है ॥ ५५ ॥

मुहूर्त्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे ।
शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात् ॥ ५६ ॥

परदिन में नहीं होने से अन्य व्रतों में तृतीया पूर्वविद्धा होती है । परदिन में तृतीया मुहूर्त्त मात्र होने से भी गौरी व्रत के लिये प्रशस्त है । यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि पूर्वदिन में मुहूर्त्तमात्र होने से द्वितीया विद्धा तृतीया त्याज्य है । परदिन में तीन मुहूर्त्त होने से तिथि शुद्धाधिका होती है ॥ ५६ ॥

चतुर्थी तु परोपोष्या गणनाथव्रतस्य तु ।
मध्याह्नव्यापिनी पूज्या तद्वन्नागचतुर्थ्यपि ॥ ५७ ॥

चतुर्थी के साथ युक्त तृतीया की प्रशंसा से परविद्धा तृतीया ग्रहणीय है ।

---

१. यद्यपि द्वितीया कृष्णा पूर्वा; शुक्ला परा इति सामान्यतो निर्णयस्तथापि पूर्वेद्युः त्रिमुहूर्त्तव्यापित्व एव कृष्णा पूर्वा नोचेत् परा स्यात् ॥ यदि परदिनेऽपि त्रिमुहूर्त्तन्यूना नास्त्येव वा तदापि पूर्वैव । एवं परदिने त्रिमुहूर्त्तव्यापित्व एव शुक्ला परा यदि परदिने ततो न्यूना नास्त्येव वा तदा सापि पूर्वैव ॥ इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गणेशव्रत में परविद्धा मध्याह्नव्याप्तियुक्त चतुर्थी पूजनीय (मान्य) है। नागचतुर्थी व्रत में भी यह नियम रहता है ॥ ५७ ॥

परेद्युरेव मध्याह्नव्याप्तौ विघ्नस्य सोत्तरा ।
अन्यथा पूर्वविद्धैव मातृयोगप्रशस्तितः ॥ ५८ ॥

परदिन में मध्याह्नव्याप्ति होने से विघ्नराज (गणेश) की पूजा के लिये चतुर्थी प्रशस्त है। अन्यथा मातृ (तृतीया) योग के कारण पूर्वविद्धा ही पूज्य है ॥५८॥

पूर्वेद्युरेव तद्व्याप्तौ पूर्वा सर्पप्रिया तिथिः ।
नोचेत् सर्पस्य पञ्चम्या योगोऽत्यन्तं प्रशस्यते ॥ ५९ ॥

गणेशव्रत के पूर्वदिन गौरीव्रत होता है। इसलिये पूर्वविद्धा चतुर्थी को मातृयोग कहते हैं। पूर्वदिन में मध्याह्नव्याप्ति होने से सर्प के लिये यह तिथि प्रिय है। अन्यथा पंचमी के साथ चतुर्थी का योग प्रशस्यतम है ॥५९॥

गौर्याः शुद्धजयाव्यस्तु नागविद्धा निषिध्यते ।
सर्वत्र पञ्चमी पूर्वा ग्राह्या स्कन्दव्रते परा ॥ ६० ॥

गोरी व्रत में तृतीया अगर संपूर्ण रहती और चतुर्थी का ह्रास हो जाता है तो चतुर्थी विद्धा तिथि व्रत के लिये गृहीत नहीं होती है। सर्वत्र पंचमी तिथि पूर्वविद्धा गृहीत होती है। किन्तु स्कन्द-पंचमी परविद्धा गृहीत होती है ॥ ६० ॥

नागविद्धा स्कन्दषष्ठी सा निषिद्धा व्रतान्तरे ।
उत्तरस्या अलाभे तु नागविद्धैव गृह्यताम् ॥ ६१ ॥

निषिद्ध होनेवाली पंचमी विद्धा षष्ठी स्कन्द व्रत के लिये ग्रहणीय है। अन्य व्रतों के लिये ये निषिद्ध है। साधारण व्रत के लिये परविद्धा न होने से अगत्या पंचमी विद्धा षष्ठी मानी जाती है ॥ ६१ ॥

विना द्वादशनाडीभि र्नागवेधो न दोषकृत् ।
सप्तमी पूर्वविद्धैव व्रतेषु निखिलेष्वपि ॥ ६२ ॥

क्योंकि वारह दण्ड विशिष्ट पंचमी तिथि के वेध से षष्ठी तिथि दूषित हो जाती है। सभी व्रतों के लिये सप्तमी पूर्वविद्धा गृहीत होती है ॥ ६२ ॥

अलाभे पूर्वविद्धायाः परविद्धैव गृह्यताम् ।
व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाऽष्टमी परा ॥ ६३ ॥

पूर्वविद्धा के अभाव से परविद्धा सप्तमी मानी जाती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी पूर्वविद्धा और शुक्ल पक्ष में परविद्धा गृहीत होती है ॥ ६३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूर्वाष्टमी तु शुक्लाऽपि पूर्वविद्धा विधीयते।
पक्ष-द्वयेऽप्युत्तरैव शिवशक्तिमहोत्सवे॥ ६४॥

किन्तु दूर्वाष्टमी शुक्लपक्ष में भी पूर्वविद्धा मानी जाती है। शिवशक्ति उत्सव के लिये शुक्ल और कृष्ण पक्ष में अष्टमी परविद्धा गृहीत होती है॥ ६४॥

ज्येष्ठर्क्षयोगे पूर्वाऽपि ग्राह्या ज्येष्ठा व्रते तिथिः।
मध्याह्नादूर्ध्वमृक्षं चेत् परेद्युः सा प्रशस्यते॥ ६५॥

ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त व्रत के लिये ज्येष्ठा नक्षत्र का योग पूर्वदिन में होने से पूर्वविद्धा अष्टमी मानी जाती है। मध्याह्न से उत्तर ज्येष्ठा नक्षत्र रहने से परविद्धा अष्टमी होती है॥ ६५॥

ज्येष्ठर्क्षभानुवाराभ्यां युक्ताष्टम्यतिदुर्लभा।
जयन्त्याख्यं व्रतं भिन्नं कृष्णजन्माष्टमीव्रतात्॥ ६६॥

रविवार और ज्येष्ठा नक्षत्र का योग सबसे दुर्लभ है। कृष्ण जन्माष्टमी व्रत से जयन्ती व्रत अलग है॥ ६६॥

शुद्धा च सप्तमीविद्धेत्येवं जन्माष्टमी द्विधा।
सप्तमी चेन्निशीथात् प्राक् विद्धा शुद्धाऽन्यथा भवेत्॥ ६७॥

जन्माष्टमी दो प्रकार की होती है। यथा शुद्धा और सप्तमी-विद्धा। सप्तमी यदि निशीथ से पूर्व होती तो अष्टमी सप्तमी-विद्धा होती है। अन्यथा अष्टमी शुद्धा होती है॥ ६७॥

शुद्धायां नास्ति सन्देहो विद्धा च त्रिविधेष्यते।
निशीथयोगः पूर्वेद्युः परेद्युर्वा द्वयोरुत॥ ६८॥

शुद्धा जन्माष्टमी में सन्देह नहीं है। विद्धा तीन प्रकार की है। यथा—पूर्वदिन में निशीथ योग, परदिन में निशीथ योग और उभय दिनों में निशीथ योग॥ ६८॥

पूर्वैव प्रथमे पक्षे परैवोत्तर-पक्षयोः।
अष्टमी रोहिणी-युक्ता जयन्ती सा चतुर्विधा॥ ६९॥

पूर्वदिन में निशीथयोग होने से पूर्वदिन और परदिन या उभयदिनों में निशीथ योग से परदिन गृहीत होता है। रोहिणी नक्षत्र से युक्त भाद्रपद अष्टमी जयन्ती है। ये चार प्रकार की है॥ ६९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुद्धा शुद्धाधिकेत्येवं विद्धा विद्धाधिकेति च[1]।
शुद्धायामपि विद्धायां न संभाव्योत्तरा तिथिः ॥ ७० ॥

शुद्धा, शुद्धाधिका, विद्धा और विद्धाधिका। शुद्धा और विद्धा के लिये परदिन ग्रहणीय नहीं होता है ॥ ७० ॥

शुद्धाधिकायां योगश्चेदेकस्मिन् वा दिनद्वये।
नैकयोगेऽस्ति सन्देहो द्वि-योगे प्रथमं दिनम् ॥ ७१ ॥

जिस दिन में रोहिणी का योग है वह दिन स्वीकृत होता है। उभय-दिनों में योग होने पर पूर्व दिन ग्रहणीय होता है ॥ ७१ ॥

सदा निशीथे पश्चाद् वेत्युत्तमो मध्यमोऽधमः।
योगस्त्रिधाऽपि पूर्वेद्युः संपूर्णत्वादुपोषणम् ॥ ७२ ॥

निशीथ योग सबसे प्रशस्त है। निशीथ मध्यरात्र को कहा जाता है। अर्धरात्रि के बाद में भी रोहिणी का योग होता है। इस लिये यह योग उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीन प्रकार का है। तीन प्रकार के योग से पूर्वदिन गृहीत होता है, क्योंकि उस दिन में तिथि पूर्णरूप में रहती है ॥ ७२ ॥

विद्धाधिकायामप्येकदिनयोगे स गृह्यताम्।
द्वयोर्योगस्त्रिधा भिन्नो निशीथे वृत्तिभेदतः ॥ ७३ ॥

विद्धाधिका में एक दिन में योग होने से वह दिन गृहीत होता है। दो दिनों में होनेवाला योग तीन प्रकार का होता है। एकदिन में निशीथ योग, उभयदिनों निशीथ योग निशीथ और उभयदिनों में नहीं होनेवाला निशीथ योग ॥ ७३ ॥

तद्वृत्तिर्दिन एकस्मिन् उभयोर्नोभयोरिति।
एकस्मिंश्चेत् तद्दिनं स्यात् पक्षयोरन्त्ययोः परम् ॥ ७४ ॥

उस क्षेत्र में जिस दिन में निशीथ योग होता है वह दिन ग्राह्य होता है और दो पक्षों में परदिन ग्राह्य होता है ॥ ७४ ॥

बुधे सोमे जयन्ती चेत् वारे साऽतिफलप्रदा।
तिथ्यृक्षयोर्द्वयोरन्त उत्तमं पारणं भवेत् ॥ ७५ ॥

---

१. या पूर्वदिने सप्तमीयोगमप्राप्ता सती तत्रैव परिसमाप्यते साऽष्टमी शुद्धा। या पूर्वदिने संपूर्णा सती परदिनेऽपीषन्निःसरति सा शुद्धाधिका या पुनः सप्तमीयुक्तापि पूर्वदिन एव परिसमाप्यते सा विद्धा। या तु पूर्वदिने सप्तमीविद्धा सती परदिनेऽपि निःसरति सा विद्धाधिकेति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बुध और सोमवार में होनेवाली जयन्ती सबसे अधिक फल देनेवाली है। यहाँ पारण के लिये तीन प्रकार की रीति होती है। तिथि और नक्षत्र की समाप्ति में होनेवाला पारण उत्तम है ॥ ७५ ॥

एकस्यान्ते मध्यमं स्यादुत्सवान्तेऽधमं स्मृतम्।
यस्मिन् वर्षे जयन्त्याख्यो योगो जन्माष्टमी तदा ॥ ७६ ॥

तिथि या नक्षत्र की समाप्ति में मध्यम और उत्सव की समाप्ति में पारण अधम होता है। जिस वर्ष में जयन्ती योग और जन्माष्टमी आ जाती है उस वर्ष में जयन्ती में जन्माष्टमी अन्तर्मुक्त हो जाती है ॥ ७६ ॥

अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादृक्ष-योग-प्रशस्तितः।
नवमी पूर्वविद्धैव पक्षयोरुभयोरपि ॥ ७७ ॥

क्योंकि जयन्ती में होनेवाला नक्षत्रयोग सबसे प्रशस्त है। उभयपक्ष की नवमी पूर्वविद्धा गृहीत होती है ॥ ७७ ॥

मध्याह्ने[1] रामनवमी पुनर्वसु-समन्विता।
ग्राह्या नैवाष्टमी-युक्ता सनक्षत्राऽपि वैष्णवैः ॥ ७८ ॥

किन्तु पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त रामनवमी का कर्मकाल मध्याह्न होने से मध्याह्न व्याप्ति ही यहाँ मानी जातीं है। अष्टमी विद्धा नवमी के साथ पुनर्वसु का योग होते हुये भी वैष्णवों ने भी गृहीत नहीं होती है ॥७८॥

कृष्णा पूर्वोत्तरा शुक्ला दशम्येवं व्यवस्थिता।
जयन्ती व्रतवन्नित्यं काम्यं चैकादशीव्रतम् ॥ ७९ ॥

कृष्णपक्ष में नवमी पूर्वविद्धा और शुक्लपक्ष में परविद्धा गृहीत होती है। कृष्णपक्ष की दशमी पूर्वविद्धा और शुक्लपक्ष की परविद्धा गृहीत होती है। जयन्तीव्रत की तरह एकादशी व्रत नित्य और काम्य होता है ॥ ७९ ॥

अरुणोदयवेधोऽत्र[2] वेधः सूर्योदये यथा।
उक्तौ द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्तयोः क्रमात् ॥ ८० ॥

---

१. दिवसस्य त्रिधाविभागः पञ्चधाविभागश्चेति। अत्र लक्ष्मीटीका यथा "मध्याह्नोऽत्र पञ्चधा विभागेन त्रिधा विभागेनेति केचित्। अष्टममुहूर्त्त एवात्र मध्याह्नः मध्यरात्रवदित्यपरे। तथा च रामनवमी मध्याह्न—व्यापिनी ग्राह्या दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदव्याप्तौ तदेकदेशव्याप्तौ वा पुनर्वसुयुता, दिनद्वये पुनर्वसुयोगे मध्याह्ने तद्योगवती, दिनद्वऽयेपि मध्याह्ने तद्योगे मध्याह्नं विहाय तद्योगे वा सर्वथाऽयोगे वोत्तरैवेति ॥

२. उदयात्प्राक् चतस्रो नाडिका अरुणोदयः। तत्र दशमीसंसर्गेऽरुणोदय-वेधः, सूर्योदये तथा सति सूर्योदयवेधः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें अरुणोदयवेध और सूर्योदयवेध माने जाते हैं। व्यवस्थित विकल्प के रूप में अरुणोदय वेध वैष्णवों के लिये और सूर्योदयवेध स्मार्त्त लोगों के लिये गृहीत होता है ॥ ८० ॥

कलाकाष्ठादिवेधोऽपि ग्राह्योऽत्र त्रिमुहूर्त्तवत् ।
वैखानसाद्यागमोक्तदीक्षां प्राप्तो हि वैष्णवः ॥ ८१ ॥

वह वेध तीन मुहूर्त्त विशिष्ट ही होना चाहिये। वैखानस शास्त्र के अनुसार दीक्षा ग्रहण करनेवाला वैष्णव होता है ॥ ८१ ॥

विद्धा त्याज्या वैष्णवेन शुद्धाऽप्याधिक्यसंभवे ।
एकादशी द्वादशी वाऽधिका चेत् त्यज्यतां दिनम् ॥ ८२ ॥

सर्वथा वैष्णवों के लिये विद्धा एकादशी ग्रहणीय नहीं है। शुद्धा भी त्याज्य है अगर तिथि की अधिकता उपलब्ध हुई है। शुद्धा में अधिकता एकादशीमात्र की वृद्धि द्वादशीमात्र की वृद्धि से होती है ॥ ८२ ॥

पूर्वं, ग्राह्यं तूत्तरं स्यादेष वैष्णवनिर्णयः ।
एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्धते यदा ।
तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्त्तैर्ग्राह्यं परं दिनम् ॥ ८३ ॥

यहाँ पूर्वदिन त्याज्य है और परदिन ग्रहणीय है। यह वैष्णवों के लिये एकादशी का निर्णय है। एकादशी और द्वादशी की वृद्धि में पूर्वदिन को छोड़कर स्मार्त्त लोग परदिन को ग्रहण करते हैं ॥ ८३ ॥

एकादशीमात्रवृद्धौ गृहि-यत्योर्व्यवस्थितिः ।
उपोष्या गृहिभिः पूर्वा यतिभिस्तूत्तरा तिथिः ॥ ८४ ॥

अगर एकादशी की केवल वृद्धि होती है तो गृहस्थ के लिये पूर्वदिन और संन्यासी के लिये परदिन व्यवस्थित रूप में ग्रहणीय है ॥ ८४ ॥

द्वादशी मात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते ।
शुद्धा पूर्वोत्तरा विद्धा स्मार्त्तनिर्णय ईदृशः ॥ ८५ ॥

द्वादशी मात्र की वृद्धि में शुद्धा और विद्धा के भेद से व्यवस्था होती है। शुद्धा में पूर्वदिन और विद्धा में उत्तरदिन स्मार्त्त लोग के लिये ग्रहणीय है ॥ ८५ ॥

श्रवणेन युता चेत्स्याद्द्वादशी सा हि वैष्णवैः ।
स्मार्त्तैश्चोपोषणीया स्यात्त्यजेदेकादशीं तदा ॥ ८६ ॥

श्रवणा नक्षत्र से युक्त द्वादशी में वैष्णव और स्मार्त्त लोगों ने उपवास करणीय है। इस स्थल में एकादशी छोड़ दी जा सकती है ॥ ८६ ॥

उपवासव्रतादन्यव्रते चार्द्धमुहूर्त्तकैः ।
सप्तभिर्दशमी-विद्धामेतामेकादशीं त्यजेत् ॥ ८७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपवास व्रत से भिन्न व्रतों में अगर दशमी का दिनार्ध से एकादशी का वेध होता है तो विद्धा एकादशी त्याज्य होती है ॥ ८७ ॥

द्वादशीपूर्वविद्धैव व्रतेषु निखिलेष्वपि ।
शुक्लत्रयोदशी पूर्वा परा कृष्णा त्रयोदशी ॥ ८८ ॥

इस दिनार्ध का काल-परिमाण सार्ध सात मुहूर्त्त है । सभी व्रतों में पूर्वविद्धा द्वादशी मान्य है । शुक्लपक्ष की त्रयोदशी पूर्वविद्धा और कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी परविद्धा होती है ॥ ८८ ॥

अलाभे साऽपि पूर्वैव पराऽनङ्ग-त्रयोदशी ।
या शुक्ला गृह्यते पूर्वा, गृह्यतां साऽपराह्णिकी ॥ ८९ ॥

परदिन में होनेवाली त्रयोदशी अगर नहीं रहती तो पूर्वदिन में हो सकती । लेकिन अनंग त्रयोदशी पूर्वविद्धा ही होती है । शुक्लपक्ष में गृहीत होनेवाली पूर्वविद्धा त्रयोदशी अपराह्ण को व्याप्त होनी चाहिये ॥ ८९ ॥

चतुर्दश्युत्तरा शुक्ला पूर्वा कृष्णा चतुर्दशी ।
उदये त्रिमुहूर्त्ताऽपि ग्राह्याऽनन्तव्रते तिथिः ।
शुक्लापि रात्रियुक्ता स्याच्चैत्रश्रावणमासयोः ॥ ९० ॥

शुक्लपक्ष की चतुर्दशी परविद्धा और कृष्णपक्ष की चतुर्दशी पूर्वविद्धा होती है । अनन्त व्रत के लिये उदयकालीन चतुर्दशी की स्थिति तीन मुहूर्त्त तक कम से कम होनी चाहिये । चैत्र और श्रावण मासों की चतुर्दशी रात्रि युक्ता होकर ग्रहणीय होती है ॥ ९० ॥

शुक्ला सर्वापि पूर्वैव यदि स्यादापराह्णिकी ॥ ९१ ॥

शुक्लपक्ष की सभी चतुर्दशी पूर्वविद्धा मानी जाती है अगर अपराह्ण को व्याप्त होती है ॥ ९१ ॥

प्रदोषे वा निशीथे वा द्वयोर्वा याऽस्ति सा भवेत् ।
शिवरात्रिव्रते तत्र द्वयोः सत्ता प्रशस्यते ॥ ९२ ॥

शिवरात्रि व्रत के लिये प्रदोष व्याप्ति या निशीथ व्याप्ति या दोनों की भी व्याप्ति मानी जाती है क्योंकि उसमें दोनों की सत्ता रहती है ॥ ९२ ॥

तदभावे निशीथैकव्याप्ताऽपि परिगृह्यताम् ।
तस्याश्चासंभवे ग्राह्या प्रदोषव्यापिनी तिथिः ॥ ९३ ॥

उसके अभाव से निशीथ व्याप्ति ग्रहणीय होती है । निशीथव्याप्ति के अभाव से प्रदोषव्याप्ति मानी जाती है ॥ ९३ ॥

तिथ्यन्ते पारणं यामत्रयादर्वाक् समापने ।
अन्यथा पारणं प्रातरन्यतिथ्युपवासवत् ॥ ९४ ॥

तीन याम से पूर्व चतुर्दशी की समाप्ति होने से तिथि की समाप्ति में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पारणा होती है। अन्यथा अन्य तिथि के उपवास की तरह प्रात में पारण हो सकती है ॥ ९४ ॥

पूर्वविद्धैव सावित्रीव्रते पञ्चदशी तिथिः।
नाड्योऽष्टादश भूतस्य स्युश्चेत्तन्न[1] परेऽहनि ॥ ९५ ॥

सावित्री व्रत के लिये कृष्ण पंचदशी अर्थात् अमावास्या पूर्वविद्धा होनी चाहिये। अगर पूर्वदिन में चतुर्दशी अठारह दण्ड अवस्थित रहती तो पर-दिन नहीं गृहीत होती है (किन्तु पूर्वदिन में चतुर्दशी अठारह दण्ड तक रहती तो सावित्री व्रत के लिये पूर्वदिन त्याज्य है) ॥ ९५ ॥

व्रतान्तराणि सर्वाणि परेऽहन्येव सर्वदा।
श्राद्धेऽपराह्णकालीनो दर्शं आब्दिकवन्मतः ॥ ९६ ॥

सब प्रकार व्रतों के लिये पंचदशी परविद्धा होनी चाहिये। सांवत्सरिक श्राद्ध की तरह साधारणतः श्राद्ध के लिये अमावास्या की अपराह्णव्याप्ति मानी जाती है ॥ ९६ ॥

दिनद्वयेऽप्येकदेशे वृत्तौ ग्राह्यो महत्त्वतः।
तुल्यत्वं चेदेकदेशे क्षये पूर्वोऽन्यथोत्तरः ॥ ९७ ॥

दो दिनों में अपराह्ण के एकदेश में व्याप्ति होने से जिस दिन में अधिक व्याप्ति होती है वह दिन ग्राह्य है। तिथि क्षय होकर एकदेश में दर्श की व्याप्ति होने से पूर्वदिन श्राद्ध के लिये ग्रहणीय है ॥ ९७ ॥

कृत्स्नव्याप्तौ द्वयोरह्नोरुत्तरस्तिथिवृद्धितः।
साऽग्न्यनग्निव्यवस्था स्यान्न स्याच्चेदपराह्णयोः ॥ ९८ ॥

उभयदिनों में तिथि की वृद्धि के कारण दर्शकी व्याप्ति होने से परदिन ग्रहणीय है। उभयदिन के अपराह्ण में दर्शकी यदि व्याप्ति न हो तो साग्निक और निरग्निक भेद से व्यवस्था होती है और पूर्वदिन साग्निक के लिये और परदिन निरग्नि के लिये व्यवस्थित है ॥ ९८ ॥

---

१. स्युश्चेन्न च परेऽहनि इति पाठान्तरम्। "यद्यपि पूर्वदिने चतुर्दश्या अष्टादश नाड्यः सन्ति तथापि पूर्वविद्धैवेत्यर्थः। एवकारव्यवच्छेद्य-माह न परेऽहनीति। पाठान्तरे तु तत्र पूर्वदिने भूतस्याष्टादशनाड्यः सन्ति चेत् तदा परेऽहनि व्रतं न तत्र पूर्वविद्धा ग्राह्येत्यर्थः साहजिकः टीकायां तु तत्र परेऽहनीति पाठेऽपि तस्मिन् परे उत्कृष्टे पूर्वरूपेऽहनि, तस्य ताः स्युर्यद्यपि इति कष्टकल्पनया व्याख्यानम्" इति चन्द्रकान्त-तर्कालङ्कारस्य टिप्पणी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वेद्युः साग्निकः कुर्यादुत्तरेद्युरनग्निकः।
पर्वप्रतिपदोः सन्धिर्मध्याह्ने वा ततः पुरा ॥ ९९ ॥

पूर्वदिन में साग्निक और परदिन में निरग्निक के द्वारा की जाती है। पर्व और प्रतिपद की सन्धि अगर मध्याह्न में या उससे पहले होती है तो पूर्वदिन में अन्वाधान करके सन्धिदिन में याग किया जाता है ॥ ९९ ॥

अन्वाधानं पूर्वदिने यागः सन्धिदिने भवेत्।
ऊर्ध्वं मध्याह्नतः सन्धावन्वाधानन्तु तद्दिने ॥ १०० ॥

मध्याह्न से ऊपर अगर सन्धि होती है तो वाजसनेयी के द्वारा उस दिन में अन्वाधान करके परदिन में इष्टि की जाती है ॥ १०० ॥

इष्टिं परदिने कुर्यादन्यो वाजसनेयिनः।
यस्तु वाजसनेयी स्यात् तस्य सन्धिदिनात्पुरा ॥ १०१ ॥
न काप्यन्वाहितिः किन्तु सदा सन्धिदिने हि सा।
सन्धिश्चेत् [1]सङ्गवादूर्ध्वं प्राक् पर्यावर्त्तनाद्रवः ॥ १०२ ॥
सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यस्कालविधौ तिथिः।
वृद्धिः[2] प्रतिपदो याऽस्ति तदर्धं पर्वणि क्षिपेत् ॥ १०३ ॥

जो वाजसनेयी है उसके जरिये सन्धिदिन से पहले कोई अन्वाधान नहीं होता है अपितु सन्धिदिन में ही होता है। सूर्य के आवर्त्तन से पहले और संगव से ऊपर इनके बीच में सन्धि होने से सद्यःकाल (प्रातःकाल) विधि में

---

१. सङ्गवः पञ्चधा विभक्तस्य दिनस्य द्वितीयो भागः स च अह्नोऽष्टममुहूर्त्तः ॥

२. अत्र चन्द्रकान्ततर्कालङ्कारटिप्पणी यथा—प्रसिद्धसन्धिनिरासाय विशेषमाह वृद्धिरिति। यदा घटिकान्यूने मध्याह्ने पर्वसमाप्तिः परेद्युश्च घटिकाचतुष्टयवृद्धेरर्द्धस्य घटिकाद्वयस्य पर्वणि प्रक्षेपे पूर्वेद्युर्मध्याह्नादूर्ध्वमपि घटिकामात्रं पर्वानुवृत्तिर्लभ्यते। ततश्च तत्र सन्धिदिनेऽन्वाधानं परेद्युरिष्टिरिति फलितम्। दृश्यपर्वसमाप्त्यनुसारेण सन्धिनिर्णये तु तत्र सन्धिदिने इष्टिः तत्पूर्वदिनेऽन्वाधानमिति प्राप्नोति। एवं यत्र पूर्वदिने मध्याह्नात् परतो घटिकामात्रं पर्वानुवृत्तिः परदिने च घटिकाचतुष्टयं प्रतिपदुपक्षयः, तत्र क्षयार्धस्य घटिकाद्वयस्य पर्वणि प्रक्षेपे मध्याह्नात् पूर्वघटिकातः सन्धिर्भवति। तत्र स्वाभाविकसन्ध्यनुसारेण सन्धिदिनेऽन्वाधानं परदिने चेष्टिः प्राप्नोति, क्षयप्रक्षेपे तु सन्धिदिने इष्टिः पूर्वदिनेऽन्वाधानमिति विशेषः। इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहीं पर तिथि पूर्णिमा होती है। ऐसा समझ में आता है। उस अवसर पर (मध्याह्न के पहले पर्व की समाप्ति होने पर) परदिन में प्रतिपद की अगर वृद्धि हो तो उस वृद्धि अंश के आधा भाग पर्व के साथ योग कर सन्धि को निश्चित की जाती है। (आश्वलायन के मतानुसार इस प्रकार निर्णय होता है) ॥१०१–१०३॥

क्षयस्यार्धं तथा हित्वा सन्धिर्निश्चीयतां सदा।
बोधायनमते दर्श-श्राद्धं चेष्टिर्विशिष्यते ॥ १०४ ॥
द्वितीया त्रिमुहूर्त्ता चेत् प्रतिपद्यापराह्णिकी।
अन्वाधानं चतुर्दश्यां दर्शे स्वल्पेऽपि वर्तयेत् ॥ १०५ ॥
दर्शश्राद्धं तथा कार्यमिति बौधायनोऽब्रवीत्।
इष्टयादि[1]विकृतिः सर्वा पर्वण्येवेति निर्णयः ॥ १०६ ॥

बौधायन के मतानुसार दर्श श्राद्ध और इष्टि (दश पौर्णमास इष्टि) विशिष्ट है। जिस पर प्रतिपद अपराह्ण को व्याप्त होकर रहती और सूर्यास्त से पहले तीन मुहूर्त्त तक द्वितीया रहती तो दर्श का अंश स्वल्प रहने पर भी चतुर्दशी में अन्वाधान होता है। दर्श श्राद्ध इस प्रकार होता है ऐसा बौधायन का मत है। इष्टि प्रभृतिओं की सब विकृति पर्वदिन में ही होती है; ऐसा निर्णय होता है ॥ १०४–१०६ ॥

पञ्चमे तु प्रकरणे पूर्वार्द्धे भादिनिर्णयः।
उत्तरार्द्धे कालभेदात् कर्मभेदोपदर्शनम् ॥ १०७ ॥

पांचवां प्रकरण के पूर्वार्ध में नक्षत्रप्रभृति का निर्णय और उत्तरार्ध में कालभेद के अनुसार कर्मभेद का प्रदर्शन किया गया है ॥ १०७ ॥

यस्मिन्नस्तमियाद्भानुस्तन्नक्षत्रमुपोषणे।
मुख्यं तस्यासम्भवे तु ग्रहीतव्यं निशीथयुक् ॥ १०८ ॥

जिस नक्षत्र में सूर्य अस्त होते हैं वह नक्षत्र उपवास के लिये मुख्य है। इस प्रकार की संभावना न होने पर निशीथ अर्थात् मध्यरात्रि में रहने वाला नक्षत्र माना जाता है ॥ १०८ ॥

उपवासे यदृक्षं स्यात् तद्धि नक्तैकभक्तयोः।
उदये त्रिमुहूर्त्तस्थं नक्षत्रं व्रतदानयोः ॥ १०९ ॥

उपवास में जो नक्षत्र है, नक्त और एकभक्त में भी वह माना जाता है;

---

१. सर्वासामिष्टानां दर्शपौर्णमासेष्टिः प्रकृतिः सा च दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत स्वर्गकाम इति वाक्येन विधीयते। ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेदिति विकृतिभूतेष्टिसूचकं विधिवाक्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्रत और दान के लिये उदय काल में नक्षत्र की तीन मुहूर्त्त तक अवस्थिति आवश्यक है ।। १०९ ।।

दिनद्वये तथात्वे तु पूर्वं स्याद् बलवत्त्वतः ।
श्रवणं तूत्तरं ग्राह्यमुपाकरणकर्मणि ।। ११० ।।

दो दिनों में इस प्रकार अवस्थिति होने पर (अर्थात् दो दिनों के उदय में रहने पर) पूर्वदिन (संपूर्ण अहोरात्र को व्याप्त होकर रहने के कारण) माना जाता है । उपाकरण कर्म के लिये श्रवणा नक्षत्र का परवर्त्ती नक्षत्र के अर्थात् धनिष्ठा के साथ योग आवश्यक है ।। ११० ।।

पित्र्ये तु तिथिवत्सर्वो नक्षत्रस्य विनिर्णयः ।
पूर्वः स्यादुपवासादावुत्तरो व्रतदानयोः ।। १११ ।।

योगः श्राद्धे कर्मकालव्याप्तस्तु परिगृह्यताम् ।
करणं यद्दिने तत्तु ग्राह्यं, रात्रौ यदा, तदा ।। ११२ ।।

तिथि निर्णय की तरह पितृ-कार्य के लिये नक्षत्रों का भी निर्णय होता है । उपवासादि के लिये (नक्त और एकभक्त) पूर्वदिन के संबन्धित योग और दान व्रत के लिये परदिन के संबन्धित योग और श्राद्ध के लिये कर्मकाल को व्याप्त होनेवाला योग गृहीत होता है । करण जिस दिन में है उस दिन ग्रहणीय होता है, रात में होने पर भी रात ग्रहणीय होता है ।। १११-११२ ।।

दिनद्वयैकभक्ताभ्यामुपवासः प्रसिद्ध्यति ।
वारेषु संशयाभावात् ग्रहीतव्यं यथास्थितम् ।। ११३ ।।

दो दिनों में व्याप्त होने पर एकभक्त करके दो दिनों का उपवास समाहित होता है । वारों में सन्देह न रहने के कारण स्थिति के अनुसार निर्णय होता है ।। ११३ ।।

आसन्ननाड्यः संक्रान्तेः पुण्याः स्नानादिकर्मसु ।
चरेषु[1] कर्कटे पूर्वा मकरे विंशतिः पराः ।। ११४ ।।

संक्रान्ति में स्नान और दान के लिये आसन्न (पूर्व और पर) नाड़ी पुण्य काल के रूप में मानी जाती है । चर (मेष, कर्कट, तुला और मकर) संक्रान्तिओं में कर्कट संक्रान्ति की पूर्व बीस नाडी और मकर की पर बीस नाडी पुण्य काल है ।। ११४ ।।

---

१. चरादीनां लक्षणं यथा—चरस्थिरद्वयात्मकनामधेया ।
मेषादयोऽमी क्रमशः प्रदिष्टाः ।। इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्त्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश।
वृषभादौ स्थिरे पुण्याः प्राक् पश्चादपि षोडश ॥ ११५॥

तुला और मेष संक्रान्तिओं में उभय पार्श्वों की दस नाडी पुण्य काल हैं। वृषभ प्रभृति स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ) संक्रान्तिओं में पूर्व और पर सोलह नाडी पुण्य काल है ॥ ११५ ॥

मिथुनादौ द्विस्वभावे उत्तराः षष्टिनाडिकाः।
अह्नःसंक्रमणे रात्रावनुष्ठाननिषेधतः ॥ ११६ ॥

मिथुन प्रभृति दो स्वभाव वाली (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) संक्रान्तिओं में परवर्त्ती साठ नाडी पुण्य काल है। दिन में संक्रमण होने से (दिन पुण्य काल होता है) रात में कर्मानुष्ठान का निषेध होने पर उक्त दो काल उनके अनुसार पूर्व और पर काल को लेकर व्यवस्थापित होते हैं ॥ ११६ ॥

उक्तौ कालौ व्यवस्थाप्यौ तद्वशात्पूर्वपश्चिमौ।
रात्रौ संक्रमणे भानो दिनार्धे स्नानदानयोः ॥ ११७ ॥

रात में संक्रमण होने पर दिन का अर्ध भाग स्नान और दान के लिये प्रसिद्ध है ॥ ११७ ॥

अर्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया।
ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वं उदयात् प्रहरद्वयम् ॥ ११८ ॥

अर्धरात्र से पहले संक्रमण होने से मध्याह्न के ऊपर याग क्रिया होती है और अर्धरात्र से ऊपर होने से परदिन में सूर्योदय के बाद दो प्रहर तक पुण्य काल रहता है ॥ ११८ ॥

पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः।
प्राहु र्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ ११९ ॥

पूर्ण अर्थात् निशीथ में संक्रमण होने पर मकर और कर्कट संक्रान्ति को छोड़कर सर्वत्र दो दिन पुण्य काल होते हैं ॥ ११९ ॥

कर्कटे मकरे रात्रावप्याचारादनुष्ठितिः[1]।
पूर्णिमाप्रतिपत्सन्धौ राहुः संपूर्णमण्डलम् ॥ १२० ॥

कर्कट और मकर-संक्रान्ति में रात में संक्रमण होने पर आचारानुसार

---

१. अत्र तर्कालङ्कारटिप्पणी यथा—शिष्टाचारानुसारेणानुष्ठानमितमर्थः। तत्र रात्रावयनसंक्रमे रात्रावेव पूर्वापरभावेन स्नानादिक्रियेति प्राच्यशिष्टाचारः। रात्रौ कर्कटसंक्रान्तौ पूर्वमेव दिनं मकरसंक्रतौ तु परमेव दिनं ग्राह्यमिति दाक्षिणात्यशिष्टाचारः। तथा च शिष्टाचारादुभयं प्रमाणमिति भावः ॥ इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् शिष्टाचार को देखकर निर्णय करना चाहिये। पूर्णिमा और प्रतिपद की सन्धि में राहु चन्द्र के संपूर्ण मंडल को और अमावासा तथा प्रतिपद की सन्धि में सूर्य के संपूर्ण मंडल को ग्रसता है ॥ १२० ॥

ग्रसते चन्द्रमर्कं च पर्वप्रतिपदन्तरे।
ग्रस्यमाने भवेत् स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते ॥ १२१ ॥
मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते।

ग्रास होने के समय में स्नान किया जाता है और ग्रस्त होने पर होम, मोचन (मुक्त-मोक्ष) होने के समय में दान और मुक्ति होने पर स्नान किया जाता है ॥ १२१ ॥

सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम् ॥ १२२ ॥
चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना।
अपराह्णे न मध्याह्ने मध्याह्ने न तु सङ्गवे ॥ १२३ ॥

भुञ्जीत, संगवे चेत्स्यात् न पूर्वं भुजिमाचरेत्।
ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत् ॥ १२४ ॥

सूर्योपराग में पराग स्पर्श के चार याम समय से पहले और चन्द्र ग्रहण में तीन याम समय पहले बालक और वृद्ध को छोड़कर दूसरे लोगों के जरिये भोजन नहीं किया जाता है। अपराह्ण में होने पर मध्याह्न में, मध्याह्न में होने पर संगव में, और संगव में होने पर उससे पहले भोजन छोड़ देना चाहिये। ग्रस्त होकर चन्द्रोदय होने से पूर्व दिन में भोजन नहीं किया जाता है ॥ १२२–१२४ ॥

ग्रस्तावेवास्तमानञ्च रवीन्दू प्राप्नुतो यदि।
तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाऽभ्यवहरेन्नरः ॥ १२५ ॥

ग्रस्त होकर चन्द्र और सूर्य के अस्त होने पर परदिन में उदय होने के बाद स्नान करके भोजन करना चाहिये ॥ १२५ ॥

त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां नवकं ध्रुवम्।
मङ्गलेषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ १२६ ॥

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण हेतु त्रयोदशी से लेकर नौ दिन तक सब प्रकार के मांगलिक कार्य वर्जनीय है ॥ १२६ ॥

द्वादश्यादिस्तृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः।
एकादश्यादिकः सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्त्तितः ॥ १२७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रग्रहण में द्वादशी से लेकर तृतीया तक और सूर्य ग्रहण में एकादशी से लेकर चतुर्थी तक काल वेध काल के रूप में प्रसिद्ध है ॥ १२७ ॥

खण्डग्रहे तयोः प्रोक्तमुभयत्र दिनद्वयम् ।
नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमयज्ञक्रियासु च ॥ १२८ ॥

दोनों के (सूर्य और चन्द्र) खण्ड ग्रह होने पर उभयत्र दो दिन दोषः दुष्ट है। नित्य और नैमित्तिक जप, होम, यज्ञ, क्रिया, उपकर्म और उत्सर्जन कर्मो के लिये ग्रह दोष नहीं होता है ॥ १२८ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहदोषो न विद्यते ।
तमेवं निर्णयं शास्त्रन्यायाभ्यां कर्त्तुमुद्यतः ॥ १२९ ॥

इस प्रकार विषयों का निर्णय करने के लिये शास्त्रवचन और शास्त्रानुसार न्याय युक्ति को उपस्थापन करके माधवाचार्य जी ने उद्यम किया है ॥ १२९ ॥

श्रीमाधवविद्यारण्य प्रणीत कालमाधव (कालनिर्णय) की कारिका
के ऊपर श्रीव्रजकिशोरस्वाई पुरुषोत्तमपुरीवास्तव्य कृता
तुलसी हिन्दीभाषाटीका समाप्त ।

नीलाकाशविशालनीलजलदच्छायास्फुरद्विग्रहं
लीलालोलगलद्दलं मधुरिमोद्वेलच्चलेन्दीवरम् ।
खेलोत्तुङ्गविभङ्गसङ्गमभवद्गोपालबालं शुभां
वेलामाकलयच्छिवं दिशतु नो नीलाद्रिनीलं महः ॥

तुलसीदलपूतात्मसाधुमण्डलमण्डिताः ।
धर्मशास्त्रानुगा लोका माधवीय-पथाश्रयाः ॥
विहितैव कृते तेषां व्रजकिशोरधीमता ।
टिप्पणीसहिता टीका तुलसी कालमाधवे ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

॥ श्रीः ॥

कालमाधवः

'तुलसी'-हिन्दीभाषाटीकाविभूषितः

प्रथमप्रकरणम्

ननु नायमुद्यमः सफलः कालस्य गगन-कुसुमायमानत्वात् । तदेतत्परमरहस्यमभिजानानः कपिलमहामुनिस्तत्त्वानि विवेक्तुकामः कालमुपेक्ष्यान्यान्येव पञ्चविंशतितत्त्वानि विविवेच—

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकश्च विकारो न प्रकृति र्न विकृतिः पुरुषः[1] ॥ इति

न चैतेष्वेव तत्त्वेषु कालस्यान्तर्भावो मुनिना विवक्षित इति शङ्कनीयम् । त्वदभिमतस्य कालस्य यथोक्तपञ्चविंशतितत्त्वानां च परस्परमत्यन्तविलक्षणत्वात् । तथाहि चिरक्षिप्रादि[2]व्यवहारस्यासाधारणहेतुः काल इति त्वदभिमतं काललक्षणम् । तत्त्वानां त्वन्यादृशानि लक्षणानि । सत्त्वरजस्तमोगुणानां साम्यावस्था मूलप्रकृतिः ।

प्रणिपत्य जगन्नाथं माधवं तुलसीप्रियम् ।
कालमाधवटीकेयं क्रियते तुलसीमुदा ॥

कालतत्त्व की स्थिति के बारे में माधवाचार्य जी स्वयं पूर्वपक्ष के मतको उपस्थापित करते हैं कि कालसत्ता को प्रमाणित करने के लिये उद्यम सफल नहीं हो सकता क्योंकि आकाश के कुसुम की तरह काल एक अत्यन्त अभाव पदार्थ है । इस परम रहस्यमय तत्त्व को जान कर स्वयं सांख्यदर्शन के प्रवर्त्तक आचार्य कपिल मुनि ने तत्त्वों की गणना में कालतत्त्व को छोड़-

---

१. सांख्यकारिका—कारिका ३

२. द्रष्टव्यम्—अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति कालांगानि । द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते तत्त्वं भावेन । नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति ॥ वैशेषिकदर्शनम्—२।२।६–९

अत्र प्रशस्तपादो यथा—परापरव्यतिकरयौगपद्यायौगपद्यचिरक्षिप्रप्रत्ययलिङ्गम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर पचीश तत्त्वों की विवेचना की। मौलिक प्रकृति किसकी विकृति नहीं है। महत् तत्त्व से लेकर सात तत्त्वों तक प्रकृति और विकृति होते हैं। सोलह तत्त्वों तक विकृति होते हैं। पुरुष जिसकी प्रकृति या विकृति नहीं होता है। इन तत्त्वों में कालतत्त्व का अन्तर्भाव करने के लिये मुनि की विवक्षा है ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये। आपके मतानुसार काल और पचीश तत्त्वों में परस्पर विलक्षणता दिखाई पड़ती है। चिर या क्षिप्र प्रभृति व्यवहार के सामान्यकारण काल है ऐसा आपके प्रतिपादित काल का लक्षण है। किन्तु तत्त्वों के लक्षण इससे अलग हैं। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की समान अवस्था मूलप्रकृति होती है।

महदहङ्कारपञ्चतन्मात्राख्यानां सप्तानां प्रकृतिविकृतीनां मध्येऽध्यवसायहेतु र्महत्तत्त्वम्। अभिमानहेतुरहङ्कारः। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकानि पञ्च तन्मात्राणि। पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतानामेकादशेन्द्रियाणां च षोडशविकाराणां लक्षणानि प्रसिद्धानि। अप्रकृतिरविकृतिः पुरुषश्चिदात्मकः न ह्येवंलक्षणकेषु तत्त्वेषु कालस्यान्तर्भावः संभाव्यते। नापि षड्विंशतत्त्वान्तरं मुनिरनुमन्यते। कथं तर्हि मुनिप्रणीतानि तत्त्वानि आर्याभिः संगृह्णान ईश्वरकृष्णो बहिःकरणान्तःकरणे विविचन् कालं व्यवजहार—

साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालाभ्यन्तरं करणम्[1]॥ इति।

परप्रसिद्ध्या परो बोधनीय इति न्यायेनायं व्यवहारो न तु स्वसिद्धान्ताभिप्रायेणेति वदामः।

महत्, अहङ्कार और पांच तन्मात्राएँ ये सात तत्त्व प्रकृति-विकृति के रूप में अवगम्य हैं। इनमें अध्यवसाय का हेतु महत् तत्त्व के नाम से अभिहित है। अभिमान के हेतु अहंकार। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच तन्मात्राओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। पृथिवी प्रभृति पांच महाभूतों के साथ ग्यारह इन्द्रियों को मिलाकर सोलह विकार पदार्थों का लक्षण प्रसिद्ध है। पुरुष किसीकी प्रकृति या विकृति न होकर चित्स्वरूप या ज्ञानमय है। इस प्रकार लक्षण से लक्षित तत्त्वों में काल को अन्तर्भाव कराने की संभावना नहीं है। मुनि (कपिल जी) ने इस लिये छब्बीस तत्त्वों के लिये अनुमति नहीं दी। इसके बारे में प्रश्न आता है कि सांख्यकारिका के रचयिता ईश्वरकृष्ण ने कैसे मुनिप्रणीत तत्त्वों को आर्याछन्दों में संग्रह करके बहिःकरण और

---

१. अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्॥
सांख्यकारिका—३३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्तःकरण की भी विवेचना करके काल शब्द का व्यवहार किया। उत्तर यह होता है कि अन्य लोक को समझाने के लिये उसकी प्रसिद्धि जिस मार्ग पर है, उस मार्ग से ही समझाना चाहिये। इस न्याय से काल शब्द का व्यवहार यहाँ हुआ न तु स्वसिद्धान्त के अभिप्राय को प्रकाश करने के लिए।

अत एवैतद्वचनं व्याचक्षाणा वाचस्पतिमिश्रास्तत्त्वकौमुद्यामेवमाहुः। कालस्तु वैशेषिकाभिमत एकोऽतीतानागतादिव्यवहारभेदं प्रवर्त्तयितुमर्हति। तस्मादयं यैरुपाधिभेदैरतीतानागतादिभेदभावं प्रतिपद्यते, सन्तु त एवोपाधयो व्यवहारहेतवः, कृतमन्तर्गडुना कालेनेति सांख्याचार्याः[1]। तस्मान्न कालरूपतत्त्वान्तराभ्युपगम इति। अथोच्यते-भूतकालो, वर्त्तमानकालो, भविष्यत्काल इत्येवं त्रिष्वपि भूतादिष्वनुगतः कालप्रत्यय एकमनुगतं कालतत्त्वमन्तरेणानुपपन्न इति। तन्न। पदार्थप्रत्ययवदुपपत्तेः[2]। यथा भवन्मते द्रव्यपदार्थो गुणपदार्थ इति षट्सु[3]भावेषु चतुर्ष्वभावेष्वपि[4] अनुगतः पदार्थप्रत्ययः एकमनुगतं पदार्थशब्दवाच्यं तत्त्वान्तरमन्तरेणाप्युपपन्नः, तथा कालप्रत्ययः कुतो नोपपद्यते। तस्मान्निस्तत्त्वं कालं निर्णेतुं महानयमुद्यमः प्रेक्षावच्छिरोमणे र्माधवाऽऽचार्यस्य न कथंचिदप्युपपन्न इत्येवं प्राप्ते ब्रूमः।

अतः इस वचन की व्याख्या करके वाचस्पति मिश्र जी ने कहा है कि काल वैशेषिक दर्शन के अनुसार प्रसिद्ध है। वह एक ही है। अतीत और अनागतादि के रूप में इसकी प्रवृत्ति होती है। इस कारण से जिस उपाधि को लेकर काल अतीत या अनागतादि के भेदभाव को प्राप्त हुआ है व्यवहार के हेतुभूत उन उपाधियों को रहने दिया जाय, निरर्थक एक कालतत्त्वों को स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। ये हैं सांख्याचार्यों के सिद्धान्त। यहाँ से उत्तर शुरू होता है। भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्यत् काल इन तीनों में जो काल प्रत्यय संलग्न है, वह एक निर्दिष्ट काल तत्त्व के बिना जैसे

१. सांख्यतत्त्वकौमुदी।

२. नवपदार्थेषु कालोऽन्तर्भवति पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि।

३. द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाख्याः षट् भावपदार्थाः॥

४. प्रागभावः प्रध्वंसाभावः, अन्योन्याभावः, अत्यन्ताभाव इति चत्वारोऽभावाः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संभव नहीं हो सकता। इस प्रकार कहना ठीक नहीं है क्योंकि पदार्थ के साथ प्रत्यय का संयोग रहता है। यथा—आपके मतानुसार द्रव्य पदार्थ गुण-पदार्थ है। छ भावपदार्थों में और चार अभावपदार्थों में भी पश्चात् संयुक्त जो पदार्थप्रत्यय एक निर्दिष्ट पदार्थ शब्द के बिना उत्पन्न हो सकता तो काल प्रत्यय की उत्पत्ति क्यों नहीं होती। इस कारण से निस्तत्त्व काल के निर्णय करने के लिये महान् उद्यम प्रेक्षावत् शिरोमणि माधवाचार्य के किसी भी प्रकार से उपपन्न नहीं होता है ऐसा कहने का उत्तर हम बोलेंगे।

आयुष्मतश्चैतस्यैवं निरूढकालतत्त्वे यः प्रद्वेषः स कस्य हेतोरिति वक्तव्यम्। किं कपिलमहामुनिना निराकृतत्वात् किं वा सांख्यशास्त्र-प्रणीतेषु तत्त्वेष्वसंगृहीतत्वाद् उत लक्षणाभावात् आहोस्वित् प्रमाणा-भावात् अथवा प्रयोजनाभावात् अथवा तत्त्वगतपञ्चविंशतितत्त्वसंख्या-भ्यासपाटवेनावसिताच्छ्रद्धाजाड्यात्। न प्रथमः। कालनिराकरणसूत्र-स्य मुनिना प्रणीतस्यानुपलम्भात्। न द्वितीयः। अतिप्रसंगात्। ऋग्वे-दादिप्रोक्तानां ज्योतिष्टोमादीनाम् आयुर्वेद-धनुर्वेद-गान्धर्वप्रोक्ताना-मौषधशस्त्रस्वरादीनां चासंगृहीतत्वेन तेष्वपि भवतः प्रद्वेषः केन वार्यते।

अथ तेषां विशिष्यासंग्रहे पि सुखदुःखमोहात्मकत्वेन गुणत्रयान्त-र्भावादस्त्येवार्थात् संग्रह इत्युच्यते। तर्हि कालस्याप्यसौ न दण्डो वारित इति बुद्धिं समाधत्स्व। कालस्य गुणत्रयपरिणामत्वे सावयव-त्वमनित्यत्वं घटादेरिव प्रसज्ज्येतेति चेद् नित्यनिरवयवकालतत्त्वाभि-निवेशवतो वैशेषिकादेः पतत्वयं वज्रप्रहारः शिरसि। वेदवादिनां तु न कापि क्षतिः। कालस्योत्पत्तिसावयत्वयोः प्रत्यक्षश्रुतावुपलभ्यमान-त्वात्। तैत्तिरीयशाखायां नारायणीये कालोत्पत्तिराम्नायते।

आयुष्मान् आप की बुद्धि में एक निश्चित काल तत्त्व के ऊपर आपकी जो प्रद्वेष भावना आती है इसका कारण क्या है। क्या कपिलमुनि के द्वारा काल तत्त्व निराकृत होने से या सांख्यशास्त्र ने प्रतिपादित तत्त्वों के भीतर असंगृहीत होने से या कोई लक्षण का अभाव से अथवा प्रमाण का अभाव से या प्रयोजन के अभाव से या तत्त्व के संबंधी पचीस संख्या का अभ्यास के कारण श्रद्धा बुद्धि में जडत्वप्राप्ति से ? इसमें प्रथम ठीक नहीं है क्योंकि कालतत्त्व को निराकरण करने के लिये मुनि (कपिल) प्रणीत सूत्रराशि में कोई सूत्र उपलब्ध नहीं होता है। यहाँ अतिप्रसंगता के कारण द्वितीय पक्ष ठीक नहीं है। ऋग्वेदादि में प्रतिपादित ज्योतिष्टोम प्रभृति यागों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, औषध, शस्त्र और स्वर प्रभृति इन सब पदार्थों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सांख्यसूत्र में असंगृहीत होने से उनके ऊपर प्रद्वेष कैसे निवारित हो सकता ? अतः विशेषरूप से संग्रह न करके भी सुख, दुख, मोह के रूप में तीन गुणों में अन्तर्भाव करने से काल तत्त्व के अस्तित्त्व अर्थतः सिद्ध होता है, ऐसा कहा जाता है। तब काल के ऊपर यह दण्ड लागू नहीं होता। तीन गुणों के द्वारा काल के परिणाम होने से घट की तरह उसका अवयव आ जाता है और वह अनित्य भी हो जाता है ऐसा अगर कहा जायेगा तो काल के नित्यत्व निरवयवत्व को सिद्ध करने वाले वैशेषिक मतवादियों के ऊपर वज्र प्रहार होता, किन्तु वेदवादियों की कोई हानी नहीं होगी। तैतिरीय शाखा के नारायणीय में काल की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
कलामुहूर्त्ताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः॥
अर्धमासामासा ऋतवः संवत्सराश्च कल्पन्तामिति। १।८

तस्यामेव शाखायाम् अरुणकेतुचयनब्राह्मणे सावयवत्वं श्रूयते।

उक्तो वेषो वासांसि च कालावयवानामितः प्रतीच्येष्विति १।१२।१५

इतोऽस्मादनुवाकात् प्रतीच्येष्वधस्तनेषु कालाऽवयवानाम् ऋतूनां ध्यातव्यो वेष उक्तः, वस्त्राणि चोक्तानीत्यर्थः। नित्यत्वनिरवयवत्वाभिधायिनो वैशेषिकादिशास्त्रस्य अमृता देवता[1] इतिवदापेक्षिकनित्यतायाम् अन्तर्धानशक्त्युपेतयक्षराक्षसादिवत् संस्पर्शयोग्यावयवशून्यतायां च तात्पर्यं वर्णनीयम्। एवंच सति विरोधाधिकरणन्यायो[2]ऽत्रानुगृहीतो भवति। तस्य च न्यायस्य संग्राहकावेतौ श्लोकौ—

---

१. देवतानाममरत्वं "तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजञ्च" (वै० सू० ४।२।५) इति सूत्रे वैशेषिकै रयोनिजकोटावङ्गीकृतम्। तत्र शङ्करमिश्र एवमाह—"अयोनिजत्वं शुक्रशोणितसन्निपातानपेक्षत्वम्। अयोनिजञ्च देवानामृषीणां च" इति। पुण्यकर्मणा स्वर्गं फलरूपेण प्राप्तुकामो मनुष्यो देवता भवति। "अथ देवाः कर्मभिर्दिवं जग्मुः" (२।७।१६।१) इति आपस्तम्बो धर्मसूत्रे सूत्रयति। पुण्यकर्मणः फलोपभोगसमाप्तौ पुण्यक्षयेन "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" (भ० गी० ९।२) इति वचनात् देवता मनुष्यत्वं प्राप्नोति। "प्रक्षीण एवायुषि कर्मकृष्टे नरान्न तिष्ठत्युपतिष्ठते यः। बुभुक्षते नाकमपथ्यकल्पं धीरस्तमापातसुखोन्मुखं कः (६।१००) इति नैषधेऽपि स्वर्गस्य अवाञ्छनीयतया तदधिष्ठात्र्या देवताया आपेक्षिकत्वं स्पष्टम्। अनेन देवतात्वं न चिरन्तनमिति सिद्धम्।

२. "विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्" (१।३।३) इति जै० सूत्रे माधवाचार्यस्य न्यायमालाधिकरणम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औदुम्बरी वेष्टितव्या सर्वेत्येषा स्मृतिर्मितिः ।
अमिति वेति सन्देहे मितिः स्यादष्टकादिवत् ॥
औदुम्बरीं स्पृशन् गायेदिति प्रत्यक्षवेदतः ।
विरोधान्मूलवेदस्याऽननुमानादमानता ॥ इति ।

उस शाखा के अरुणकेतुक ब्राह्मण में काल के अवयव की सूचना श्रुति प्रतिपादित है । काल के वेष और वस्त्रादि आभूषण हैं । काल का नित्यत्व और निरवयवत्व को मानने वाले वैशेषिक मतवादियों के मतानुसार देवता अमृत है लेकिन देवताओं का ये अमृतत्व नियत नित्यत्व को नहीं प्रकाश करता अपितु आपेक्षिक नित्यता को ही प्रकाश करता है । यक्ष-राक्षसों का अन्तर्धान शक्ति भी आपेक्षिक रूप से मानी जाती है । इस तरह से काल को संस्पर्श करने के लिये योग्यता के अभाव से भी कालतत्त्व है । यह है कालतत्त्व की वर्णना का तात्पर्य । ऐसे होने से श्रुति द्वारा प्रतिप्रादित काल-तत्त्व की स्थिति और सांख्य प्रभृति स्मृति के द्वारा प्रतिपादित कालतत्त्व का अभाव इन दोनों में विरोध आ जाता है । इसका समाधान करने के लिये मीमांसा दर्शन का विरोधाधिकरण आ जाता है । इस अधिकरण का आशय ये है ।

अयमर्थः—अध्वरे महावेद्यां सदो नामकस्य मण्डपस्य मध्ये काचिदुदुम्बरशाखा स्तम्भत्वेन निखाता भवति । तामुद्दिश्य वस्त्र-वेष्टनं स्मर्यते । औदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्येति[1] । तत्र संशयः । एषा स्मृतिः प्रमाणं न वेति । तत्र पूर्वाधिकरणे अष्टकाः कर्त्तव्या इत्यस्याः स्मृतेर्मूलवेदानुमापकत्वेन प्रामाण्यमुक्तम् तेनैव न्यायेन सर्ववेष्टन-स्मृतिः प्रमाणमिति पूर्वः पक्षः ।

आशयः—अध्वर के महावेदि में "सदो" नामक एक मण्डप है । इसके ऊपर वस्त्र को वेष्टन करने के लिये स्मृति वाक्य उपलब्ध होता है । इस लक्ष्य में संशय होता है कि औदुम्बर शाखा के ऊपर वस्त्र वेष्टन करने के लिये कहने वाली स्मृति प्रमाण है या नहीं ? यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि पूर्व अधि-करण में अष्टकाश्राद्ध का अनुष्ठान करने के लिये स्मृति की निष्पत्ति प्रमाण रूप से मानी गयी है । साक्षात् वेद की तरह स्मृति यहाँ प्रमाणरूप से स्वीकृत हो गई । इसी तरह यहाँ औदुम्बरी को वेष्टन कराने वाली स्मृति प्रमाण है । यह है पूर्वपक्ष का आशय ।

---

१. तैत्तिरीयसंहिता २।१।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायेदिति[1] प्रत्यक्षश्रुतौ स्पर्शो विधीयते। न चासौ सर्ववेष्टने सत्युपपद्यते। तथा च सर्ववेष्टनस्मृतिमूलभूतवेदानुमानस्य प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धस्य कालात्ययापदिष्टत्वेन निर्मूला वेष्टनस्मृतिरप्रमाणमिति सिद्धान्त इति। अथ मन्यसे महता तपसा शिवमाराध्य तत्प्रसादलब्धसर्वज्ञत्वपदः कणादमहामुनिर्वेदतात्पर्यं सम्यग्वेत्तीति वेदस्यैव मन्दमतिप्रतीतादर्थादनन्तरं नेतव्यमिति। एवमपि यस्य प्रसादादयं सर्वज्ञतामलभत स एव शिवो मुख्यः सर्वज्ञ इति तन्मतानुसारेण कणादमतस्यैवान्यथानयनमत्यन्तमुचितम्। शिवो हि सर्वेष्वागमेषु षट्त्रिंशत्तत्त्वानि निरूपयन् कालतत्त्वस्योत्पत्तिमङ्गीचकार। निखिलशैवागमसारमार्याभिः संगृह्णानो भोजराजः शुद्धानि पञ्च तत्त्वानि शिवशक्तिसदाशिवेश्वरविद्याख्यानि निर्दिश्येतराणि निर्दिशन् मायाकार्योक्तिपूर्वकमेव कालं निरदिशत्।

सिद्धान्तपक्ष के अनुसार औदुम्बरी शाखा को स्पर्श करने के लिये प्रत्यक्ष श्रुतिवाक्य मिलता है। किन्तु वस्त्रवेष्टन करने के लिये कहने वाली स्मृति यहाँ भी है। प्रत्यक्षरूप में स्पर्शन श्रुति के विरोध वेष्टन-स्मृति के द्वारा आ जाता है। इसलिये श्रुति और स्मृति के बीच में विरोध हो गया। यहाँ कालात्ययापदिष्ट नामक हेत्वाभास से वेष्टन स्मृति निर्मूल हो गई। इसलिए इसकी अप्रमाणता प्रतिपादित हो गई। यहाँ तात्पर्य यह है कि स्मृति की प्रामाणिकता मानी जाती है अगर कोई मूलवाक्य श्रुति में उपलब्ध हो। कालका अभावरूप प्रकाश करने वाली सांख्यप्रभृति स्मृतियों का मूल श्रुति में काल के अस्तित्व को प्रकाश करने वाला वाक्य के साथ विरुद्ध हो गया। इसलिए सांख्य प्रभृति स्मृतियाँ अप्रमाणित हो गईं। अन्ततः कालतत्त्व के अभाव अप्रमाणित हुआ इसके बाद महान तपस्या के द्वारा शिवजी की आराधना करके उनके प्रसाद से वेदों की सब तत्त्वराशि कणादमुनि ने प्राप्त की। इसलिये वेदों का वास्तव तात्पर्य वे जानते हैं ऐसा सभी लोगों का दृष्टप्रत्यय है। वेद तत्त्व के वास्तव अर्थ से अन्यथा करने वाले लोगों की मति को अर्थान्तर कर देना कणादजी का आशय है। जिस शिव जी के प्रसाद से कणाद जी को सर्वज्ञता प्राप्त हुई इन शिवजी वस्तुतः मुख्य और सर्वज्ञ हैं। इनके मतानुसार कणाद के मत को अन्यथा करना उचित है। शिवजी ने सभी आगमों में छत्तीस तत्त्वों का निरूपण करके कालतत्त्व की उत्पत्ति मानी। निखिल शैव आगम के सार

१. तैत्तिरीयसंहिता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को आर्या छन्दों में संगृहीत कर भोजराज पांच तत्त्वों को निर्दिष्ट करते हैं। इनमें शिव, शक्ति, सदाशिव और अविद्या प्रसिद्ध हैं। इनसे भिन्न तत्त्वों को माया के कार्यरूप से स्वीकार कर काल को मानते हैं।

पुंसो जगतः कृतये मायातस्तत्त्वपञ्चकं भवति।
कालो नियतिश्च तथा कला च विद्या च रागश्चेति॥

तानि मायासहितान्येकादश तत्त्वानि सांख्यप्रसिद्धपञ्चविंशति-तत्त्वानि चोद्दिश्य क्रमेण विवृण्वन्निदमाह।

नानाविधशक्तिमयी सा जनयति कालतत्त्वमेवादौ।
भाविभवद्भूतमयं कलयति जगदेष कालोऽतः॥ इति।

तत्र टीकाकार इत्थं व्याचख्यौ। नन्वेष कालो नैयायिकादिभि-र्नित्योऽभ्युपगतोऽत आह भाविभवद्भूतमयमिति। भूतादिरूपेण त्रिविधत्वादचेतनत्वे सत्यनेकत्वेनास्याऽनित्यत्वं सिद्धमिति भावः। केन कार्येणास्य सिद्धिरत आह 'कलयति जगदेष कालोऽत' इति। चिरक्षिप्रादिप्रत्ययद्वारेण कलयत्याक्षिपतीत्यर्थ इति। इत्थं प्रत्यक्षश्रुतिसहकृतैरागमैः कणादशास्त्रस्य बाधे सत्युत्तरमीमांसागत-द्वितीयाध्यायप्रथमाधिकरणन्यायोऽनुगृह्यते। तस्य च न्यायसंग्राहकौ श्लोकौ—

सांख्यस्मृत्यस्ति सङ्कोचो न वा वेदसमन्वये।
धर्मे वेदः सावकाशः सङ्कोच्योऽनवकाशया॥
प्रत्यक्षश्रुतिमूलाभिर्मन्वादिस्मृतिभिः स्मृतिः।
अमूला कापिली बाध्या न सङ्कोचोऽनया ततः॥ इति

पुरुष जब जगत को निर्माण करने के लिये प्रवृत्त होता है तब माया से काल, नियति, कला, विद्या और राग के नाम से पांच तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। माया के साथ मिलकर ये छ तत्त्व होते हैं। शिव शक्ति प्रभृति पांच तत्त्व को लेकर ग्यारह तत्त्व होते हैं। सांख्य प्रसिद्ध पचीस तत्त्वों के साथ इन ग्यारह तत्त्वों को लेकर छत्तीस तत्त्व होते हैं। इसके टीकाकार के मतानुसार कहा जाता है कि नानाविध शक्ति से संयुक्त माया कालतत्त्व को पहले जन्म देती है। वह काल आप के अतीत वर्तमान और भविष्य स्वरूप से जगत की कलना करता है। इसलिये इसको काल कहा जाता है। यहाँ एक प्रश्न आता है कि नैयायिकों ने काल के नित्यत्व माना। किन्तु अतीत वर्तमान और भविष्य के रूप से त्रिविध होने से काल एक अचेतन पदार्थ होकर अनित्य होता है। यहाँ किस कारण से काल की नित्यत्व सिद्धि होती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है ? चिरक्षिप्रप्रत्ययों के द्वारा काल जगत की कलना करता है। इस रूप से काल का आक्षेप सिद्ध होता है। यहाँ प्रत्यक्षश्रुति वाक्य से कणाद-प्रणीत स्मृति की अर्थात् वैशेषिक दर्शन की बाधा आती है। इसका समाधान करने के लिए उत्तरमीमांसा का द्वितीय अध्याय के प्रथम अधिकरण आलोच्य है।

अयमर्थः—ऋग्वेदादिभिरग्निहोत्रादिधर्मो ब्रह्मणो जगत्कर्त्तृत्वं च प्रतीयते। सांख्यस्मृत्यादिस्तु प्रधानस्य जगत्कारणत्वं प्रतिपादयति। तत्र तया च स्मृत्या वेदस्य सङ्कोचोऽस्ति न वेति संशयः। स्मृतेर्जगत्कारणत्वमन्तरेण निरवकाशत्वात् प्राबल्यम्। वेदस्य तु धर्मेऽपि चरितार्थत्वाद्दौर्बल्यम्। ततः स्मृत्यनुसारेण वेदः सङ्कुचित इति पूर्वः पक्षः। प्रत्यक्षश्रुतिभि र्बह्वीभिरनुगृहीता बह्व्यो मन्वादिस्मृतयो ब्रह्मणः कारणतामाचक्षते। सांख्यस्मृतिस्त्वेका मूलहीना चेति दुर्बलत्वात् सैव बाध्या। अतो नास्ति वेदस्य सङ्कोच इति राद्धान्त इति।

इसका आशय यह है कि ऋग्वेदादि के द्वारा अग्निहोत्रादि धर्म को जगत के कर्त्ता रूप में ब्रह्म को माना जाता है। सांख्यस्मृति के द्वारा जगत के कारण रूप में प्रकृति मानी जाती है। यहाँ सांख्यस्मृति के द्वारा वेद का संकोच हुआ या नहीं इस विषय में संशय होता है। पूर्वपक्ष कहता है कि सावकाश से निरवकाश बलवान होता है। सांख्य स्मृति जगत को अगर प्रकाश नहीं करती तो निरवकाश हो जाती।

इसलिए निरवकाशकारण से प्रबल होती है। धर्म के बारे में साक्षात् वेद चरितार्थ होने से सावकाश हो जाता है। इसलिए वेद दुर्बल हो जाता अतः स्मृति के अनुसार वेद संकुचित होना चाहिए। यहाँ सिद्धान्तपक्ष कहता है कि प्रत्यक्षश्रुतिवाक्य को पृष्ठपोषकता से संबन्धित मनु प्रभृति की अनेक स्मृतियाँ जगत के कारण रूप से ही ब्रह्म को मानते हैं। साख्यस्मृति तो एक ही स्मृति हैं। जिसका मूल कहाँ नहीं उपलब्ध होता है। इसलिए वेद से दुर्बल होकर बाधित हो जाती है। अतः वेद का संकोच नहीं होता है।

अथ तार्किकत्वाभिमानग्रहगृहीतः सन् परवश एवं ब्रूषे—भूतादीनामौपाधिकानां कालविशेषाणामेवोत्पत्तिर्न तु निरूपाधिकस्य मुख्यकालस्येति। तर्हि कपर्दकान्वेषणाय प्रवृत्तश्चिन्तामणिमलभतेत्यस्य वासिष्ठरामायणप्रोक्तस्य आभाणकस्य त्वमेव विषयोऽभूः। यतः साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानाय द्रव्याण्यन्विष्यन् परब्रह्मत्वावगमः। व्यवहारहेतूनां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूतादिकालविशेषाणामाधारः स्वयं व्यवहारातीतो नित्यो निरवयवो मुख्यः कालो यः स परमात्मैव। तथा च श्वेताश्वेतरा आमनन्ति। "कालकालो गुणी सर्वविद्य" इति। आस्तां नित्यत्वानित्यत्व सावयवत्वनिरवयवत्वचिन्ता। सर्वथाप्यस्ति सांख्यतत्त्वेष्वार्थिकः कालसंग्रहः।

पूर्वपक्ष को आक्षेप करके माधवचार्यजी यहाँ कहते हैं कि स्वयं तर्कशास्त्र के अभिमानरूप ग्रह के द्वारा गृहीत होकर क्या ऐसे आप कहते हैं। भूत वर्तमान प्रभृति उपाधि के द्वारा काल का विशेष रूप उत्पन्न होता है किन्तु सभी उपाधि से रहित मुख्य काल की उत्पत्ति नहीं होती। ऐसे होने से कपर्दक (कौड़ी) का अन्वेषण के लिए प्रवृत्त को चिन्तामणि मिल गई इसलिए योगवासिष्ठरामायण के आभाणक यहाँ प्रतिपाद्य विषय हो गया। साधर्म्य और वैधर्म्य ज्ञान के लिए द्रव्य की जिज्ञासा होती है, इस क्रम से परंब्रह्म की प्राप्ति हो जायगी। व्यवहार के हेंतुभूत वर्तमान प्रभृति उपाधियों का आधार स्वयं परमात्मा जो व्यवहार से अतीत नित्य अवयसे रहित मुख्य काल है। श्वेताश्वेतर में कहा है कि स्वयं परमात्मा काल की कलना करने वाले काल-काल सभी गुणों से संपन्न स्वयं गुणी और पदार्थ को जान लेने वाले सर्वत्र जो नित्य काल का लक्षण हैं। यहाँ कालका नित्यत्व अनित्यत्व सावयवत्व निरवयवत्व की चिन्ता होने दी लेकिन सर्वथा सांख्यतत्त्व से अर्थतः काल की उपलब्धि होती है।

साक्षात् संग्रहाभावस्तु ज्योतिष्टोमादिवत् प्रकृतिपुरुषविवेकानुपयोगादित्यवगन्तव्यम्। तृतीयचतुर्थपक्षौ तु भवतो वैशेषिकपरिचयगन्धोऽपि नास्तीति प्रकटयतः। वैशेषिकग्रन्थेषु सर्वेष्वपि कालप्रकरणे तल्लक्षणस्य तत्साधकानुमानस्य च प्रपञ्चितत्वात्। प्रमाणान्तराणि तु कालसाधकानि श्रुत्यैवोपन्यस्तानि। तथा च तैत्तिरीया आरुणकेतुके मन्त्रमामनन्ति—

स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानश्चतुष्टयम्।
एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते॥ इति।

तत्र स्मृतिरनुमेयश्रुतिमूलं मन्वादिशास्त्रम्। प्रत्यक्षं श्रोत्रग्राह्योऽकृत्रिमो वेदाख्योऽक्षरराशिर्योगिप्रत्यक्षमौपनिषदाभिमतं साक्षिप्रत्यक्षं वा ऐतिह्यमितिहासपुराणादिकम् ज्योतिःशास्त्रस्याप्यत्रान्तर्भावो द्रष्टव्यः। अनुमीयते स्वमूलभूतस्मृतिवाक्यमनेनेत्यनुमानः शिष्टाचारः। तस्य च स्मृत्यनुमापकत्वमाचार्यैं र्विस्पष्टमभिहितम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचाराच्च स्मृतिं ज्ञात्वा स्मृतेश्च श्रुतिकल्पनम् ॥

इति तदेवं स्मृत्यादीनां चतुष्टयं संपन्नम्। एतैश्चतुर्भिः सर्वैरप्यादित्यमण्डलं प्रमीयत इति मन्त्रस्यार्थः ॥

जैसे ज्योतिष्टोमादि याग सांख्यतत्त्वों में उपलब्ध नहीं होने से भी उनकी अवस्थिति मानी जाती है। प्रकृति और पुरुष का विवेक के लिए ये सब विषय अनुपयोगी होने से सांख्यतत्त्व के अन्तर्गत ये सब नहीं हैं। इसी तरह काल का भी संग्रह नहीं हुआ। तृतीय और चतुर्थ पक्ष के बारे में पूर्वपक्ष के वैशेषिकशास्त्र का परिचय नहीं है ऐसा माधवाचार्य ने कहा है। सभी वैशेषिक ग्रन्थों के कालप्रकरण में काल का लक्षण और कालका साधकों के अनुमान विषय आलोचित है। कालको साधन करने वाले अन्यान्य प्रमाणों श्रुति के द्वारा प्रतिपादित हैं। तैत्तिरीयशाखा का अरुणकेतुक ब्राह्मण में इसके बारे में मन्त्र उपलब्ध होता है। तथा—स्मृति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान ये चार तत्त्व हैं। इनके द्वारा आदित्यमण्डल का विधान होता है। यहाँ अनुमान के द्वारा मूलकों श्रुति में खोजकर ठीक कराने वाली स्मृति मनुप्रभृति के द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र प्रसिद्ध है। श्रोत्र के द्वारा ग्राह्य अपौरुषेय नित्य अक्षर राशि वेद ही प्रत्यक्ष है अथवा उपनिषद् प्रभृति के अभिमत से साक्षी प्रत्यक्ष या यागिप्रत्यक्ष होते हैं। इतिहास और पुराण ऐतिह्य नाम से प्रख्यात हैं। ज्योतिःशास्त्र का भी इनमें अन्तर्भाव होता है। आपके मूल स्मृतिवाक्य के द्वारा अनुमान करने वाला शिष्टाचार ही यहाँ अनुमान नाम से विदित है। आचार्यों ने स्मृति के अनन्तर शिष्टाचार ही प्रमाण रूप से माना। आचार से स्मृति को जानकर स्मृति से श्रुति की कल्पना होती है। इसी तरह इन चार तत्त्वों का स्पष्टीकरण होता है। इन सब चार तत्त्वों के द्वारा आदित्यमण्डल का माप होता है। ये हैं मन्त्र का अर्थ।

ननु स्मृत्यादीनि मण्डले साधकत्वेनात्रोपन्यस्तानि, नतु कालसाधकत्वेनेति चेन्मैवम्। मण्डलस्य सार्वजनीनप्रत्यक्षसिद्धत्वेन तत्र स्मृत्याद्यनुपयोगात्। कालविवक्षयैवात्र कालनिर्वाहके मण्डले तान्युपन्यस्तानि। तथा च मण्डलद्वारा कालस्तैः प्रमीयते। कालविवक्षा चोत्तरमन्त्रेष्वतिस्फुटा। तत्रानन्तरो मन्त्र एवमाम्नायते—

सूर्यो मरीचिमादत्ते सर्वस्माद् भुवनादधि ॥
तस्याः पाकविशेषण स्मृतं कालविशेषणम् ॥ इति

(तैत्तिरीयारण्यकम् १।२।१)

तस्यायमर्थः—भुवनगतं सर्वभूतजालमधिकृत्य रसवीर्यविपाका-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिभिस्तदनुग्रहसमर्थं मरीचिं सूर्यः स्वीकरोति । तत्कृतेन च भूतपाकविभेदेन निमेषादिपरार्द्धपर्यन्तः कालविभेदोऽस्माभिरवगतो भवतीति । कालप्रतिपादकानि च स्मृत्यादीनि उदाहरामः तत्र मनुः (१।२४) कालं कालविभक्तिं चेति सृष्टिप्रकारणे कालं व्यवजहार । याज्ञवल्क्योऽपि (१।२१८) श्राद्धकालाः प्रकीर्त्तिता इति । एवमन्यास्वपि स्मृतिषूदाहार्यम् । श्रुतिष्वपि—

कृतं यत्स्वप्ने विचिनोति काले ॥ इति बह्वृचाः ।
अहमेव कालो नाहं कालस्य ॥इति तैत्तिरीयकाः ।
का च सन्ध्या कश्च सन्ध्यायाः कालः ॥ इति सामगाः ।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि आदित्यमण्डल को प्रमाणित करने के लिए स्मृतिओं का उपन्यास हुआ किन्तु कालको साधन करने के लिए नहीं, ऐसी शंका करना उचित नहीं है । क्योंकि आदित्यमण्डल सभी के लिए प्रत्यक्ष सिद्ध है । फिर उनकी सिद्धि के लिए स्मृतियों की प्रवृत्ति नहीं होती । अतः मण्डल के द्वारा काल प्रमाणित होता है । परवर्त्ती मन्त्र में रस-वीर्य और विपाकादि के द्वारा अनुग्रहीत होने वाला मरीचि को सूर्य ले जाते हैं । इसके द्वारा भूतों के जो पाक भेद में जाता है उसके कारण निमेष से लेकर परार्ध तक कालका एक एक भेद हमें अनुभूत होता है । कालको प्रतिपादन करने वाली स्मृतियों को हम उद्धार करेंगे । यथा—मनु काल और कालके भेद को सृष्टि प्रकरण में प्रतिपादित करते हैं । याज्ञवल्क्य भी श्राद्धकाल शब्द को प्रयोग कर काल शब्द का व्यवहार करते हैं । अलग-अलग स्मृतियों में भी ऐसा उदाहरण मिलता है । श्रुतिओं के अन्तर्गत ऋगवेद में (विचिनोति काले) काल में चयन करता है । तैत्तिरीयसंहिता में मैं ही काल हूँ मैं कालका नहीं हूँ, सामवेद में सन्ध्या कौन है और सन्ध्या का काल कौन है इन उदाहरणों से काल की सूचना मिलती है ।

योगशास्त्रेऽपि संयमविशेषाद् धारणाध्यानसमाधित्रयरूपाद्योगिनोऽतीतादिकालं प्रत्यक्षतः पश्यन्तीत्यभिहितम् । तथा च पातञ्जलसूत्रम् (३।१६)

परिणामत्रयसंयमाद् अतीताऽनागतादिज्ञानम्[1] ॥ इति

साक्षिप्रत्यक्षमपि अहमस्मिन् काले निवसामीत्यनुभवस्तावत् सार्वजनीनः । न वासौ बाह्येन्द्रियकृतः कालस्य रूपादिहीनत्वात् । नापि

१. मुद्रितयोगसूत्रे आदिपदं नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानसः तार्किकैस्तदनङ्गीकारात्। नाप्यनुमानादिजन्यः अपरोक्षप्रत्ययत्वात्। अतः सामग्र्यभावेऽपि अपरोक्षदर्शनात् साक्षिप्रत्यक्षमेतदित्यौपनिषदा मन्यन्ते। इतिहासेऽपि महाभारते पठ्यते—

प्रहरौ घटिकान्यूनौ प्रहरौ घटिकाधिकौ।
स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ इति

पुराणेऽपि—अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरः परः॥ इति।

शिष्टाश्च पौर्णमासाख्ये काले अह्निनैबुकसंज्ञकान् स्वस्वकुलोचितान् देवताविशेषेभ्यः क्षीरदध्यादिसमर्पणादिकान् धर्मविशेषान् भानुवारादिकालविशेषे समाचरन्ति। तदेवमनेकप्रमाणप्रमीते काले प्रमाणाभावरूपश्चतुर्थपक्षः कथमाशङ्क्यते।

योगशास्त्र में भी धारणा, ध्यान और समाधि इन तीन संयमविशेष से योगिजन अतीत प्रभृति कालको जानते हैं। पातञ्जलयोग सूत्रों में अतीत कालका स्पष्ट उदाहरण मिलता है। यथा—परिणामत्रयसंयमाद् अतीतानागतविज्ञानम्। साक्षी प्रत्यक्ष भी सार्वजनीन है क्योंकि इस काल में मैं निवास कर रहा हूँ ऐसा अनुभव है। इन बाह्य इन्द्रियों के द्वारा नहीं होता है क्योंकि कालका कोई बाह्यस्वरूप नहीं है। मानस स्वरूप भी नहीं है क्योंकि तार्किक इस रूपको स्वीकार नहीं करते हैं। अपरोक्ष प्रमाण से उपपन्न होने से अनुमान व्यापार से कालकी सिद्धि भी नहीं होती क्योंकि प्रत्यक्ष को लेकर अनुमान चलता है। अतः उपनिषद् के तत्त्वज्ञ लोगों ने काल को साक्षीप्रत्यक्ष के रूप में माना है सामग्री के अभाव में भी अपरोक्ष दर्शन से ही। इतिहास के स्वरूप महाभारत में कुतप का परिमाण निर्णय करने के समय कालशब्द का व्यवहार हुआ है। पुराण में काल को अनादि, अनन्त, अजर, पर और भगवान के रूप में कहा है। शिष्टलोग पूर्णिमा तिथि में विशेषतः रविवार में अन्य देवता से भिन्न अह्निननैबुकदि स्व स्व कुलोचित देवताओं की पूजा क्षीर दही प्रभृति को समर्पण पूर्वक विशेष धर्म का अनुष्ठान करते हैं। इसी तरह अनेक प्रभाण से प्रमाणित कालतत्त्व 'प्रमाण के अभाव' ऐसा चतुर्थपक्ष के द्वारा कैसे शङ्काग्रस्त होता है।

नापि प्रयोजनाभावादिति पञ्चमः पक्षो युज्यते।

तार्किकैस्तावत् सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तकारणत्वमुद्घोषितम्। लोके च कृष्याद्युपयोगः कालविशेषः कृषीबलादिभि र्व्यवह्रियते। गृहप्रवेशप्रयाणाद्युपयोगोऽपि ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धः। श्रौतस्मार्त्तकर्मोपयोगस्तु प्रदर्शयिष्यते। तस्माच्छ्रद्धाजाड्यकृतस्तव प्रद्वेष इत्ययं षष्ठः पक्षः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिशिष्यते। तथा च पापात्मनस्तव बुद्ध्यपराधं पुण्यात्मनि माधवाचार्ये समारोपयन् कया वा शिक्षया न दण्ड्योऽसि। तदेवं कालस्य प्रत्याख्यातुमशक्यत्वात्तन्निर्णयोद्यमः सफल इति सुस्थितम्।

प्रयोजन के अभाव में ऐसा पंचम पक्ष भी नहीं, क्योंकि तार्किकसंप्रदाय में सभी की उत्पत्ति में निमित्तकारण के रूप में कालकी घोषणा की है। समाज मे कृषक लोग कृषि के लिए उपयुक्त कालका विशेष रूप को व्यवहार करते हैं। ज्योतिषशास्त्र में गृहप्रवेश और गृह से प्रस्थान के उपयोगी काल प्रसिद्ध है। श्रौत और स्मार्त्त कर्म में उपयोग होने वाला कालको प्रदर्शित किया जायगा। श्रद्धा से जडता के द्वारा कालतत्त्व को अस्वीकार कराना जो षष्ठ पक्ष वह अवशिष्ट है। बुद्धि के अपराध को पुण्यात्मा माधवाचार्य के ऊपर आरोपित कर किन शिक्षा से तुम्हारा दण्ड विधान न होगा? ऐसे कहकर स्वयं माधवाचार्य जी पूर्क्षपक्ष को आक्षेप करते हैं। अतः कालतत्त्व का प्रत्याख्यान करने के लिए सभी पक्ष असमर्थ हो जाने से उसका निर्णय सफल होता है ऐसा ठीक है।

ननु कतरः कालोऽत्र निर्णीयते। किं केवलः कालः, उत कालकालः। ननु किमित्यप्रसिद्धया भीषया भीषयसि। न भीषयाम्यहम्। किन्त्वस्त्येव कल्पितव्यभेदात् कालस्य द्वैविध्यं, येन प्राणिदेहादयोऽतीतवर्त्तमानादिरूपेण कल्पितव्याः स केवलः कालः।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि कौन सा कालका निर्णय अब होगा। केवल कालका या कालकालका? यहाँ क्या कहकर अप्रसिद्ध सूचना से भय देखाते हैं? ऐसा भय नहीं दिखाता हूँ किन्तु कल्पना के भेद से काल दो प्रकार का है। अतीत वर्तमान प्रभृति के रूप से प्राणियों के देह को लेकर कल्पित काल केवल काल है।

स च तत्त्वप्रकारावचनेन पूर्वमुदाहृतः। कलयति जगदेष कालोऽत इति। तादृशोऽपि कालः उत्पत्ति-स्थिति-विनाशकारिणा येन कलयितव्यः, स कालकाल इति। स च वासिष्ठरामायणे दर्शितः कालोऽपि कल्यते येनेति। श्रुतिश्च भवति—

स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।
प्रधानं क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥ इति च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कूर्मपुराणेऽपि[1]—

अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरः[2] परः ।
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः । (१-५-२०)
ब्रह्मणो बहवो रुद्रा अन्ये नारायणादयः ।
एको हि भगवानीशः कालः कविरिति स्मृतः ॥ (१-५-२१)
ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्राकृतो लयः ।
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च संभवः । (१-५-१८)
परं ब्रह्म च भूतानि वासुदेवोऽपि शङ्करः ।
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः ॥ (१-५-१९)
तस्मात्कालात्मकं विश्वं स एव परमेश्वरः । इति ।

वह तत्त्वप्रकाश के वचन द्वारा पहले कहा गया है । "जगत् की कलना करने वाला काल वैसे" उस प्रकार भी काल जिस उत्पत्ति, स्थिति और विकाश करने वाला के द्वारा कलित होता है, वह काल काल होता है । वह काल वासिष्ठरामायण में कहा है । काल भी जिससे कल्पित होता है इत्यादि । श्रुति भी कहती है कि वह विश्व को करने वाला, विश्व को जानने वाला, आप से आप उत्पन्न, ज्ञानस्वरूप, गुण के आधार, सर्वत्र विद्यमान, प्रधान, क्षेत्रपति, गुणों के प्रभु, संसार के मोक्ष, स्थिति और बन्धन का हेतु कालकाल है । कूर्मपुराण में भी कहा है कि काल है अनादि भगवान्, अनन्त, अजर, पर सर्वग, स्वतन्त्र, सर्वात्मा और ईश्वर अनेक संख्यक ब्रह्मा, अनेक संख्यक रुद्र और अनेक संख्यक नारायण होता है । लेकिन एक ही काल है जो भगवान और कवि इस नाम से स्मरणीय है । ब्रह्मा नारायण और रुद्र इन तीन का लय प्रकृति में होता है । फिर कालके संयोग से इनकी उत्पत्ति भी होती है । परं ब्रह्म प्राणिवर्ग, वासुदेव और शंकर को भी काल के द्वारा सृष्टि होती है । ये काल सबको प्राप्त करता है । इसलिए विश्व कालात्मक है । वह ही साक्षात् परमेश्वर है ।

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

अनादिनिधनः कालो रुद्रः संकर्षणः स्मृतः ।
कलनात् सर्वभूतानां स कालः परिकीर्त्तितः ॥ १।७२।१
कर्षणात् सर्वभूतानां स तु संकर्षणः स्मृतः ।

---

१. हेमाद्रिः-कालः पृ—६

२. प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत् ।
तस्मात् प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसंचरः ॥
अनादि भगवान् कालः ॥ विष्णुपुराणम् ॥ १।२।२५-२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वभूतशमित्वाच्च स रुद्रः परिकीर्त्तितः
अनादिनिधिनत्वेन स महान् परमेश्वरः ॥ इति ।

ज्योतिःशास्त्रेऽपि—

भूतानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ॥ इति

तत्रैवं सति द्वयोर्मध्ये कालकालोऽत्र तावन्न निर्णेतव्यः। तस्य धर्मानुष्ठाने अहेतुत्वादनुपादेयत्वाच्च। यस्त्वितरो मासपक्षतिथ्यादिरूपः सोऽपि ज्योतिःशास्त्र एव सम्यङ् निर्णीत इति कृतमनया कालनिर्णय-प्रवृत्त्येति प्राप्ते ब्रूमः। उभयमप्यत्र निर्णेतव्यम्। कालकालस्य जगदी-श्वरस्य सर्वेषु कर्मारम्भेष्वनुस्मर्त्तव्यत्वात्। अत एव शिष्टाः पुण्याह-वाचनादौ ईश्वरमनुस्मरन्ति—

सर्वेषु कालेषु समस्तदेशे—ष्वशेषकार्येषु तथेश्वरेश्वरः।
सर्वैः स्वरूपैर्भगवाननादिमान् ममास्तु माङ्गल्यविवृद्धये हरिः॥

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा है कि काल है अनादिनिधन, रुद्र, और संकर्षण; तब भूतों की कलना करके वह काल नाम से अभिहित है। सभी भूतों के कर्षण से वह संकर्षण और शमन से रुद्र के नाम से कीर्तित है। अनादि निधन के कारण वह परमेश्वर है। ज्योतिषशास्त्र में काल है भूतों का अन्त करने वाला अन्यों की कलना करने वाला। ऐसे होने के कारण इन दोनों में यहाँ काल कालका निर्णय नहीं होता है। धर्मानुष्ठान के लिए वह कारण नहीं है उपादेय भी नहीं है। इससे भिन्न मास, पक्ष और तिथि के रूप में परिचित काल ज्योतिषशास्त्र में अच्छी तरह से निर्णीत है। फिर इसका निर्णय करने के लिए प्रवृत्ति निरर्थक नहीं होती क्योंकि दोनों का निर्णय यहाँ होगा। कालकाल स्वयं परमेश्वर हैं। सब कर्म के आरम्भ में ये स्मरणीय होते हैं। अत एव शिष्ट लोग पुण्याहवाचन में ईश्वरस्मरण करते हैं यथा—सब काल में, सब स्थान में, सब काम में अनादि भगवान हरि आपके सब स्वरूप से मेरे मङ्गल की वृद्धि के लिये सहायक हो।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ इति।

मासादिरूपभेदस्य तु स्वरूपेण निर्णीतत्वेऽपि श्रौतस्मार्त्तकर्म विशेषेण सह कालस्याङ्गाङ्गिभावो निर्णेतव्यः। यद्यप्यसौ हेमाद्रिप्रभृ-तिषु ग्रन्थेषु निर्णीतस्तथाप्यनेकत्र विप्रकीर्णस्यैकत्र संग्रहाय यत्नः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रियते। तदेवं चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य कालरूपो विषयः संग्रहरूपं प्रयोजनं चास्तीत्ययं ग्रन्थ आरभ्यते[1]।

नित्यो जन्यश्च कालौ द्वौ तयोराद्यः परेश्वरः।
सोऽवाङ्मनसगम्योऽपि देही भक्तानुकम्पया॥

इति नित्यकालस्य परमेश्वरत्वेऽपि प्रमाणं पूर्वमेवोपन्यस्तम्। परमेश्वरस्य चाऽवाङ्मनसगोचरत्वे सर्वे वेदान्तास्तदनुसारिस्मृतिपुराणानि तत्त्वविदनुभवश्च प्रमाणम्। भक्तानुग्राह्विमूर्त्तिस्वीकारश्च तवलकाराख्ये सामवेदशाखाविशेषे कस्याञ्चिदाख्यायिकायामाम्नायते। तस्यां ह्याख्यायिकायामेवमुक्तम्।

जिनके स्मरण से, नामोच्चारण से, तपस्या और यज्ञादि क्रियाओं की पूर्णाङ्गप्राप्ति होती है, इन अच्युत की वन्दना मैं कर रहा हूँ। "मास प्रभृति काल भेद का निर्णय ज्योतिःशास्त्र में होते हुए भी श्रौत और स्मार्त्त कर्म के साथ कालका जो अङ्गाङ्गी भाव है उसका निर्णय होगा। यदि वा हेमाद्रि के द्वारा प्रणीत चतुर्वर्गचिन्तामणि प्रभृति ग्रन्थों में यह संबन्ध निर्णीत है। तथापि इतस्तत रूप से होने वाले विषय को एकत्र संग्रह करने के लिए यह प्रयास है। अतः कालका स्वरूपगत विषय और संग्रहरूप प्रयोजन के कारण इस ग्रन्थ का आरंभ होता है। नित्य और जन्य के भेद से काल दो प्रकार है। इनमें प्रथम है परमेश्वर, वचन और मनके अतिरिक्त पदार्थ। भक्त को अनुकम्पा प्रदर्शन करने के लिए शरीर धारण करते हैं। ऐसे नित्यकाल हैं परमेश्वर जिनके प्रमाण हमने उपन्यस्त किया है। परमेश्वर स्वयं वचन और मनसे अतिरिक्त पदार्थ। इसके बारे में सब वेदान्त ग्रन्थ और उनके अनुसार चलने वाली स्मृति, पुराण और तत्त्वज्ञों के अनुभव ये सब प्रमाण हैं। भक्त के प्रति अनुग्रह करके नित्यकाल को विग्रहधारण के विषय में सामवेद की तवलकारशाखा में उपलब्ध एक आख्यायिका के द्वारा कहा गया है—

अग्निवाय्विन्द्रादयो देवा ईश्वरानुगृहीताः सर्वत्र विजयमानाः स्वकीयमेवैतत्सामर्थ्यमित्यभिमन्यन्ते स्म। तान् बोधयितुमवाङ्मनसगम्यं परमेव ब्रह्म पूज्यां चक्षुर्गम्यां कांचिन्मूर्त्तिं धारयित्वा प्रादुर्बभूव। तया सह वादं कृत्वाऽपि राजसचित्तावग्निवायू ब्रह्मतत्त्वं नैव बुबु-

---

१. तुलनीयम्—सिद्धार्थं ज्ञातसंबन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते।
शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः संबन्धः सप्रयोजनः॥ श्लोकवार्त्तिकम् १।१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धाते। इन्द्रस्तु सात्त्विकचित्तो बुबुध इति। वासिष्ठरामायणेऽपि शुक्रोपाख्याने शुक्रं मृतमवलोक्य तत्पिता भृगुः क्रुद्धो मारयितारं कालं शप्तुमुद्यतः। तदानीं कालोऽनुग्रहीतुमीदृशेन रूपेणाविर्बभूवेति पठ्यते।

अथाकलितरूपोऽसौ कालः कवलितप्रजः।
आधिभौतिकमास्थाय वपुर्मुनिमुपाययौ॥
खड्गपाशधरः श्रीमान् कुण्डली कवचान्वितः।
ऋतुषट्कमयोदारवक्त्रषट्कसमन्वितः॥
मासद्वादशकोद्दामभुजद्वादशकोद्भटः।
स्वाकारसमया बह्वयावृतः किङ्करसेनया॥
स उपेत्य प्रणम्यादौ कुपितं तु महामुनिम्।
कल्पक्षुब्धाब्धिगम्भीरं सान्त्वपूर्वमुवाच ह।

"अग्नि, वायु और इन्द्र प्रभृति देवताओं ने ईश्वर के अनुग्रह से सभी स्थान पर विजय लाभ किया। इस प्रकार आपके सामर्थ्य से इनके अभिमान हो गया। इनको समझाने के लिए वचन और मनसे अतिरिक्त तत्त्व वाले परब्रह्म आँख से दृश्य स्पष्ट मूर्ति को धारणकर आविर्भूत हो गये। इन मूर्ति के साथ वाद करके राजसचित्त वाले अग्नि और वायु ने ब्रह्मतत्त्व को नहीं समझ पाये। सात्त्विकचित्त वाला इन्द्र ने समझ शका।" वासिष्ठरामायण में भी शुक्र के उपाख्यान में कहा है—शुक्र की मृत्यु हो गई, मृत शुक्र को देखकर उसके पिता भृगु क्रोधान्ध हो गये। काल वश होकर काल ही शुक्र के हन्ता है ऐसा समझ गया। इसलिए कालको अभिशाप देने के लिए प्रवृत्त हुआ। उस समय स्वयं काल अनुग्रह करके ऐसा एक रूप धारण कर आविर्भूत हो गये। इसके बारे में कहा गया है कि "सभी प्रजाओंको कवलित कर स्वयं काल आधिभौतिक शरीर को धारण करके भृगुमुनि के पास आ गये। इनका रूप ऐसा था—हाथों में खड्ग और पाश, कान में कुण्डल, शरीर में कवच, छ ऋतुओं के अनुसार छ प्रकार का मुख। बारह मास, बारह हाथ की तरह हैं। आपके आकार के अनुसार अनेक किंकर सेनाओं से युक्त काल क्रुद्ध और समुद्र की तरह गम्भीर मुनि को प्रणाम करके कहते हैं—

त्वमत्यन्ततपा विप्र वयं नियतिपालकाः।
तेन संपूज्यसे पूज्य साधो नेतरयेच्छया॥
मा तपः क्षपयानल्पं कल्पकालमहानलैः।
यो न दग्धोऽस्मि ते तस्य किं त्वं शापेन धक्ष्यसि॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संसारावलयो ग्रस्ता निगीर्णा रुद्रकोटयः ।
भुक्तानि विष्णुवृन्दानि केन शप्ता वयं मुने ॥
भोक्तारो हि वयं ब्रह्मन् भोजनं युष्मदादयः ।
स्वयं नियतिरेषा हि नावयोरेतदीहितम् ॥ इति ।

न च भक्तानुजिघृक्षया स्वीकृता मूर्त्तिरीदृश्येवेति कश्चिन्नियमोऽस्ति सर्वात्मकस्य परमेश्वरस्य भक्तचित्तप्रियायाः सर्वस्या अपि मूर्त्तेः स्वकीयत्वात् । अत एव भगवद्गीतायां (७।२१–२२)—

हे विप्र ! आप अत्यन्त तपस्याशील हैं लेकिन हम नियति के पालक हैं । इसलिए हे पूज्य ! हे साधु ! आप पूज्य हैं । कल्पकालकी महा आग से अर्जित तपस्या को नष्ट नहीं करो क्योंकि मैं दहनीय पदार्थ नहीं हूँ । आप अभिशाप की आग से नहीं दग्ध कर सकते हैं । संसार में व्याप्त होने वाले करोड़ रुद्रों को मैंने हजम कर दिया है । वृन्द वृन्द संख्यक विष्णुओं को मैंने खा लिया ! कौन हमको शाप दे सकेगा । हे ब्रह्मन्, आप लोग सब हमारे भोजन हैं । हम भोक्ता हैं । स्वयं नियति ने ऐसी व्यवस्था की हैं । भक्त के प्रति दया प्रदर्शन करके काल ने ऐसी मूर्ति धारण की है ऐसा कोई नियम नहीं है क्योंकि स्वयं परमेश्वर ने भक्त के चित्तानुसार जैसी मूर्त्ति का प्रयोजन है ऐसी मूर्त्ति को धारण किया है । सभी मूर्ति भगवान की ही हैं । अत एव भगवद् गीता में कहा है—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान् ॥ इति ।

विष्णुरुद्रादिचेतनमूर्त्तिवच्चेतनमूर्त्तयोऽपि तत्तत्फलविशेषार्थिभिरीश्वरत्वेनोपास्याः । तदेतदृग्वेदे समाम्नायते—एवं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्त एतमग्नावध्वर्यव एतं महाव्रते छन्दोगा एतमस्यामेतं दिव्येतं वायावेतमाकाश एतमप्स्वेतमोषधीष्वेतं वनस्पतीष्वेतं चन्द्रमस्येतं नक्षत्रेष्वेतं सर्वेषु भूतेष्विति । वाजसनेयिनोऽपि मण्डलब्राह्मणे "तमेतमग्निमित्यध्वर्यव उपासत इत्यारभ्य पठन्ति, विषमिति सर्पाः, सर्पः इति सर्पविदः, ऊर्गिति देवा रयिरिति मनुष्याः मायेत्यसुराः स्वधेति पितरो देवयजन इति देवयजनविदो रूपमिति गन्धर्वा गन्ध इत्यप्सरसस्तं यथा यथोपासते तदेव भवतीति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जिस जिस मूर्त्ति के द्वारा जो जो भक्त श्रद्धा प्रकाश करने के लिए चाहते हैं उन मूर्त्तियों को लेकर मैं अचल श्रद्धा को विधान करता हूँ। उसी श्रद्धा से वह भक्त जिसकी आराधना करता है उससे सभी कामनाओं की पूर्त्ति मैं करता हूँ।" विष्णु रुद्र प्रभृति चेतनमूर्त्ति की तरह अचेतन मूर्त्ति से भी विशेष लाभ के लिए भक्त ईश्वर की उपासना करता है। इसके बारे में ऋग्वेद ने कहा है कि—ऋग्वेदी लोग उक्थमें, यजुर्वेदी लोग अग्नि में, सामवेदी लोग महाव्रत में इनको (ईश्वर को) मीमांसित करते हैं। द्युः लोक में, वायु में, आकाश में, जल में, औषधि में, वनस्पति में, चन्द्रमा में, नक्षत्रों में सब भूतों भी उनकी (ईश्वर की) उपासना करते हैं। यजुर्वेदीलोग मण्डलब्राह्मण में अग्नि के रूप में इनकी (ईश्वर) उपासना करते हैं। इसीसे शुरू कर पाठ हुआ है कि साँप विषकों जानने वाले साँप को, देवतागण ऊर्ग को, मनुष्य सूर्य को, असुर माया को, पितृलोक स्वधा को देवताओं की पूजा को जानने वाले देवयजनको, गन्धर्वों रूपको, अप्सरा गन्ध को जैसे-जैसे पूजते हैं वैसे-वैसे ईश्वर होते हैं।

तैत्तिरीयाश्च पठन्ति–क्षेम इति वाचि योगक्षेम इति प्राणापानयो-रित्यादि। परब्रह्मारोपितं यद्यावज्जगद्रूपमस्ति तेन सर्वेणाप्युपासनाय परमेश्वरो रूपवान् भवतीति हिरण्मयाधिकरणमनोमयाधिकरणयोः प्रपञ्चितम्। एवं च सति यो यदा यत्कर्मारभते स तदा तत्कर्मोप-युक्तां कालात्मकस्येश्वरस्य मूर्त्तिमिष्टदेवतारूपेणानुस्मरेत्। अत एव मन्त्रशास्त्रेषु नानाविधानि ध्यानान्युपदिष्टानि। लोकेऽपि आवि-द्वद्गोपालं सर्वेऽपि जना एकैकां स्वेच्छया पूजयन्ति। तदेतद्भग-वानाह (गीता १७।४)—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

तस्मादारभ्यमाणकर्मफलप्रदो निजेष्टदेवतारूपो नित्यकालः कर्मा-रम्भेऽप्यनुस्मर्त्तव्य इति सिद्धम्।

तैत्तिरीयसंहिता में पाठ है कि वचन में क्षेम को, प्राण और अपान में योगक्षेम को पूजते हैं। हिरण्मयाधिकरण और मनोमयाधिकरण में प्रपञ्चित है कि परब्रह्म के ऊपर जैसे जगत का रूप आरोपित हुआ है उन सब रूप में उपासना के लिए वे विग्रहवान हो जाते हैं। ऐसे होने से यो कोई लोक जब किसी कर्म करने के लिए प्रवृत्त होता है तब उस कर्म के उपयुक्त कालात्मक ईश्वर को इष्टदेव के रूप में मानता है। इसलिए मन्त्र-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शास्त्र में ध्यान का उपदेश दिया है। व्यवहारिक लोक में विद्वान से लेकर गोपाल जाति तक सभी लोग एक एक देवता की उपासना इच्छा के अनुसार करते हैं। इनके भेद भगवान ने कहा है। सात्विक लोग देवताओं को पूजते हैं। राजसिक लोग यक्ष और राक्षस को पूजते हैं। इनसे अलग तामसिक लोग भूत-प्रेत को पूजते हैं। इनसे सिद्ध हुआ कि आरभ्यमाण कर्म के फल देने वाली आपकी इष्टदेवता नित्य काल परमेश्वर हैं। कर्म के आरम्भ में उनको स्मरण करते हैं।

अथ जन्यकालं निरूपयामः। कालस्य जन्यत्वे सति कथं प्रलये कालव्यवहारः। प्रलयः कालः प्रलयोऽतीतः, प्रलयो भावीति। कालनित्यत्ववादिनस्तवाऽपि समो दोषः। नित्यस्य कालस्य तपनपरिस्पन्दाद्युपाधिभिः परिच्छेदे सत्येतावान् काल इति कालेयत्ता वर्णयितव्या। न च प्रलये तदुपाधयः सन्ति। अतस्तव कथं प्रलयकाले इयत्तानिर्णयः। अथ सत्कार्यवादाभ्युपगमेनोपाधयोऽपि वासनारूपेण सन्ति। तर्हि कालेऽपि तत्समानम्। न चैतावता नित्यत्वप्राप्तिः। उपाधिषु तदनङ्गीकारात्। अथ मन्यसे इयत्तारहितेऽपि प्रलयकाले सृष्टिकालेयत्तावासनावशादियत्ता व्यवह्रियते। तत्रोपाध्यायत्वादिदृष्टान्तः। यथा कश्चिन्माणवकस्त्रिंशद्वर्षवयस्कादध्येतुमुपक्रम्य संवत्सरमधीत्यास्मदुपाध्याय एकत्रिंशद्वर्षवयस्क इत्यध्ययनरहितेऽप्यतीते वयस्युपाध्यायत्वं व्यवहरति तद्वदियत्ताव्यवहारः। एवं तर्ह्यनेन न्यायेन कालरहिते प्रलये कालव्यवहारः किं न स्यात्। कालरहितं च प्रलयादिकं वस्त्वस्तीति माण्डूक्यादिश्रुतयोऽभ्युपगच्छन्ति। तथा च श्रूयते[1] यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एवेति। प्राभाकराश्च अपूर्वस्य कालत्रयासंसृष्टां काञ्चिदवस्थामाहुः। तस्मात्कालः सुखेन जन्यताम्। स च सामान्यविशेषाभ्यां द्विविधः। तस्य चोभयस्येश्वराख्यान्नित्यात् कालादुत्पत्तिं मनुराह—(१।२४)

कालं कालविभक्तिं च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजा॥ इति

---

१. भूतं भवद् भविष्यमिति सर्वमोङ्कार एव।
यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥ माण्डूक्योपनिषत्॥
येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः॥ श्वेता० उप० ६।२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र यः सामान्यकालः स विशेषानुगतत्वात् तदपेक्षया नित्यो ग्रहगत्यादिभिरनुमेयो भूतोत्पत्तिनिमित्तकारणमिति तार्किकज्यौतिषिकादयः प्रतिपेदिरे ॥

इससे जन्य कालका निरूपण करेंगे। यहाँ एक प्रश्न आता है कि काल जन्य होने से प्रलय कालका व्यवहार कैसे होता है ? प्रलय का काल प्रलय का अतीत और प्रलय होने के लिए भावी काल इत्यादि कालको नित्य मानने वालों का ऐसा ही समान दोष है। आपके कक्ष में घूर्णन से सूर्य का स्पन्दन होता है। यह स्पन्दन है एक उपाधि। स्पन्दन रूप उपाधि के द्वारा नित्यज्ञान परिछिन्न हो जाता है। उससे इतना काल ऐसे काल की इयत्ता वर्णित होती है। किन्तु प्रलय में इसकी उपाधि नहीं रहती है। अतः प्रलयकाल में आपके द्वारा कालकी इयत्ता कैसे निर्णीत होती है। सत्कार्यवादसिद्धान्त से उपाधियाँ वासना के रूप में रहती है। काल में भी इसके समान वासना रहती है। ऐसे कालकी नित्यता नहीं होती। उपाधियों में उसको नहीं मानते हैं। ऐसा आपका अभिप्राय है कि प्रलय-काल की इयत्ता नहीं होने से भी सृष्टिकाल की इयत्ता की वासना के कारण इयत्ता का व्यवहार होता है वहाँ उपाध्यायदृष्टान्त से समझ आ जाता है। यथा—कौन सा एक विद्यार्थी तीसवर्ष वयस्क उपाध्याय से अध्ययन करने के लिये प्रवृत्त होकर एक वर्ष अध्ययन करके उसके बाद भी एकतीस वर्ष वयस्क को भी अध्याय के रूप में मानता है। इसी तरह काल की इयत्ता का व्यवहार होता है। इस न्याय से कालरहित प्रलय में भी काल का व्यवहार क्यों न हो सकता। कालरहित प्रलयप्रभृति वस्तुओं की स्थिति के बारे में माण्डूक्यश्रुति में सिद्धान्तित है। यथा—तीन काल से अतीत ओङ्कार ही है। गुरुमतवादी प्रभाकर मिश्र जी के समर्थक तीन काल से अमिश्रित कुछ अवस्था के रूप में अपूर्व को मानते हैं। इसके कारण कालकी उत्पत्ति सुखमय प्रमाण से प्रमाणित हुई। सामान्य और विशेष के भेद से वह काल द्विविध है। ईश्वर नाम से प्रसिद्ध नित्य काल से ये उभयविध काल की उत्पत्ति के बारे में मनुने कहा है—काल, काल, के विभिन्न रूप, नक्षत्र, ग्रह, इन सबकी सृष्टि, आपकी प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए प्रवृत्त होकर उसने की। वहाँ जो सामान्य काल है वह विशेषरूप से नित्य ग्रहगति के अनुसार प्राणियों की उत्पत्ति में निमित्त कारण अनुमेय होता है। वैसे नैयायिक और ज्योतिष लोग मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र ज्योतिषा आहुः—

प्रभवविरतिमध्यज्ञानबन्ध्यानितान्तम्
विदितपरमतत्त्वा यत्र ते योगिनोऽपि ।
तमहमिह निमित्तं विश्वजन्मात्ययाना-
मनुमितमभिवन्दे भग्रहैः कालमीशम् ॥

युगवर्षमासदिवसाः समं प्रवृत्तास्तु चैत्रशुक्लादेः ।
कालोऽयमनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे ॥ इति ।

कालविशेषेषु च संवत्सरः प्रधानभूतः । अन्ये तु सर्वे गुणभूताः । तथा चारुणकेतुके समाम्नायते—

नदी च प्रभवा काचिदक्षय्या स्यन्दते यथा ।
तां नद्योऽभिसमायन्ति सोरुः सती न निवर्त्तते ॥
एवं ननासमुत्थानाः कालाः संवत्सरं श्रिताः ।
अणुशश्च महत्शश्च सर्वे समवयन्ति तम् ।
स तैः सर्वैः समाविष्ट उरु सन्न निवर्त्तते ॥ इति

अयमर्थः—भागीरथीगोदावर्यादिका नदीवाऽयं कालः कुतश्चिद् उत्पत्तिस्थानादुत्पद्यते । तत्रोत्पत्तिस्थानं सांख्योक्तप्रकृतिर्वा शैवागमोक्तमाया वा, श्रुतिस्मृत्युदितनित्यकालात्मक ईश्वरो वा भविष्यति । यथा तां गङ्गादिकां नदीमन्या अल्पनद्यो अभितः प्रविशन्ति,

सा च प्रविष्टै र्नद्यन्तरैः सह विस्तीर्णा प्रवहत्प्रवाहा सती न कदाचिच्छुष्यति ।

ज्योतिर्विद लोग कहते हैं कि विश्व में जन्म और मृत्यु के निमित्तकारण जो काल है उसको नक्षत्र के साथ मैं प्रमाण करता हूँ । युग, वर्ष, मास और दिन ये सब चैत्र शुक्ल प्रतिपद तिथि से शुरू होते हैं । ऐसे ही जो काल वह ग्रह नक्षत्र के द्वारा अनुमित होता है । काल के विशेष रूपों में संवत्सर प्रधान है । अन्य सब गौण होते हैं । आरुण केतुक में कहा है—जैसे नदियाँ और छोटी उपनदियाँ अक्षय होकर भी बहती हैं जिसके साथ मिलती हैं उसमें शुष्कता नहीं आती । वैसे नाना प्रकार उत्थान के द्वारा काल के विशेष प्रविभागों संवत्सरों से आश्रित हैं । छोटा या बड़ा सभी भाग संवत्सर के साथ समवाय संबन्ध में रहते हैं । उनके साथ समाविष्ट होकर संवत्सर बलिष्ठ हो जाता है और उसकी निवृत्ति नहीं होती है । भागीरथी गोदावरी की तरह काल किससे उत्पन्न होता है । वह उत्पत्ति स्थान सांख्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अनुसार प्रकृति या शैवागम के अनुसार माया अथवा श्रुतिस्मृति के अनुसार नित्यकाल ईश्वर होते हैं। जैसे अन्य नदियाँ गङ्गा प्रभृति के साथ मिलकर उसी में सामिल हो जाती हैं, गंगा भी उन नदियों से विस्तीर्ण होकर कभी भी नहीं सुखती।

एवं नानाविधरूपैः समुत्पन्नाः कालभेदाः संवत्सराख्यं प्रधानं कालमाश्रिताः तत्र निमेषाद्याः अयनपर्यन्ताः कालभेदाः संवत्सरादणवः। युगाद्याः परार्धपर्यन्ताः संवत्सरान्महान्तस्ते सर्वे तं संवत्सरं सम्यक् प्रविशन्ति। अणूनामवयवत्वेन प्रवेशः। महतां तु संवत्सरावृत्तिनिष्पाद्यानामध्यक्षः संवत्सर इति तत्र प्रवेशोऽभिधीयते। तथा च वेदाङ्गे ज्योतिषग्रन्थे पठ्यते—

पञ्च संवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचि ॥ इति

स च संवत्सरस्तैरणुभिर्महद्भिश्च सर्वैः समाविष्टोऽतिदीर्घः सन्नस्मिन् जगति नोच्छिद्यत इति। नन्वल्पत्वं निमिषे पर्यवसितम्। महत्त्वन्तु परार्धे। तथा च तयोरन्यतरस्य प्राधान्यमुचितम्। तत्र कथं संवत्सरस्य प्राधान्यमिति चेत् ईश्वरेण प्रथमं सृष्टत्वादिति ब्रूमः। तथा च वाजसनेयिनः आमनन्ति—[बृहदारण्यकोपनिषत् (१।२।४)]

सोऽकामयत द्वितीयो मे आत्मा जायेतेति स मनसा वाचा मिथुन समभवत् तद्रेत आसीत् संवत्सरोऽभवदिति। तस्मात्संवत्सरं प्रधानम्।

वैसे नाना प्रकार में काल के नाना रूप संवत्सरको प्रधान रूप में मानकर उससे मिलकर रहते हैं। निमेष से लेकर अयन तक काल के जितने भेदरूप हैं सब संवत्सर से छोटे-छोटे पदार्थ हैं। युगादि से लेकर पदार्थ तक संवत्सर से बृहद् होते हैं। ये सब संवत्सर में प्रवेश करते हैं। छोटे भेदों का अवयव के रूप में प्रवेश और संवत्सरों की आवृत्ति से निष्पादित होने से अध्यक्ष के कारण बड़े-बड़े तत्त्वों के भी प्रवेश होता है। वेदांग के अन्तर्गत ज्योतिष ग्रन्थ में कहा है कि युग के अध्यक्ष प्रजापति संवत्सरमय है। दिन, ऋतु, अयन और मास उसके अङ्ग होते हैं। इन सबसे अन्वित युगाध्यक्ष को प्रणाम करके संवत्सर छोटे बड़े तत्त्वों से समाविष्ट होकर आपकी दीर्घतमता के कारण उच्छिन्न नहीं होता है। यह एक प्रश्न आता है कि निमेष सबसे छोटा और पदार्थ सबसे बड़ा है। उनमें पदार्थ का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राधान्य रहना चाहिये। संवत्सर का प्राधन्य वहाँ कैसे रहा? उत्तर है कि ईश्वर की सृष्टि के अनुसार निष्पत्ति होती है। शुक्लयजुर्वेदी कहते हैं—ईश्वर की इच्छा हुई कि कोई द्वितीय आत्मा मेरी होती है। इनके मन और वचन का मैथुन से जो रेत स्खलित हुआ इससे संवत्सर की सृष्टि हुई। इसलिए संवत्सर ही प्रधान है।

अत एव वयं संवत्सरमारभ्य कालविशेषं निर्णयामः।

तत्र संवत्सरः अयनमृतुर्मासः पक्षस्तिथिर्नक्षत्रमित्येवंविधाः कर्मकालाः। यद्यपि पुराणेषु मृत्युमार्कण्डेयादीनां युगाद्याकल्पादि- परिमितं तपः स्मर्यते, तथापि शतवत्सरायुषो[1] मनुष्यानधिकृत्य धर्म- शास्त्रप्रवृत्ते र्न युगादिनिर्णयोऽत्र उपयुक्तः। मनुष्याधिकारत्वं चास्माभिः पराशरस्मृतिव्याख्याने 'मनुष्याणां हि तं स्मृतं धर्मम्' (प० स्मृ० १।२) इत्यस्मिन् वचने प्रपञ्चितम्। ये तु "कलौ विवर्जयेत्" इत्यादयो मनुष्यधर्मास्तेष्वपि न युगादिकं निर्णतव्यम्। संदेहा- भावात्। न च शतायुषामधिकारे कथं सहस्रसंवत्सरसत्रश्रुतिरिति शङ्कनीयम्। तत्र संवत्सरशब्दो दिवसपर इति षष्ठाध्यायसप्तमपादे निर्णीतत्वात्। ये च संवत्सराऽऽवृत्तिसाध्या अनन्तव्रतादयस्तेष्वपि स संवत्सराधिकः कश्चित् कालो निर्णतव्योऽस्ति। अतः संवत्सरमा- रभ्यार्वाञ्च एव निर्णतव्याः कर्माङ्गकालाः। न च कालस्य कर्माङ्गत्वे विवदितव्यम्, सायं जुहोति प्रातर्जुहोतीति वाक्यादङ्गत्वप्रतीतेः। तत्र कर्मणस्तावदपूर्वविषयत्वात् प्राधान्यमभ्युपगन्तव्यम् तथा च गुण- त्वेनान्वयः परिशिष्यते। अत एव गर्गः

तिथिनक्षत्रवारादिसाधनं पुण्यपापयोः।
प्रधानगुणभावेन स्वातन्त्र्येण न ते क्षमाः॥ इति।

तस्मादङ्गभूतेषु निर्णयेषु कालेष्ववयवित्वेन संवत्सरस्यभ्यर्हित- त्वादल्पवक्तव्यतया सूचीकटाहन्यायानुसाराच्च स एवाऽऽदौ निर्णीयत इति स्थितम्।

इति माधवीये कालनिर्णये उपोद्घात नाम प्रथमप्रकरणम्॥ १॥

अतएव हम संवत्सर से लेकर कालविशेष के निरूपण करते हैं। वहाँ संवत्सर प्रथम है। अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि और नक्षत्र ये सब नाना

---

१. शतायुषं कृणुत दीर्घमायुः॥ साममहाब्राह्मणम् १।१।६

९८३५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकार के कर्म काल हैं। यदि वा मनु और मार्कण्डेय प्रभृति के द्वारा युगादि और कल्पादिपर्यन्त तपस्या का तथापि सौ वत्सर वाले मनुष्यों के लिये धर्मशास्त्र की प्रवृत्ति होती है। इसलिए युगादि के निर्णय यहाँ आवश्यक नहीं है। मनुष्यों के अधिकार के बारे में पराशरस्मृति की व्याख्या के अवसर पर हमने सब कहा है। कलियुग में पाँच वर्जनीय पदार्थ की सूची में युगादिका अन्तर्भाव न होने से उसका निर्णय संदेहकोटि में नहीं आती है। सौ वर्ष तक जीवित रहने वालों के अधिकार में कैसे सहस्रसंवत्सर सत्र की श्रुति आती है ऐसी शंका नहीं होनी चाहिए क्योंकि वहाँ सहस्रशब्द दिवस के अर्थ में प्रयुक्त है। मीमांसा दर्शन का षष्ठ अध्याय का सप्तमपाद में इसके बारे में विचार हुआ है। संवत्सर की आवृत्ति के आने वाले अनन्तव्रतप्रभृति के लिए संवत्सर से अधिक कुछ कालका निर्णय नहीं होता है। अतः संवत्सर से लेकर उससे अर्वाचीन छोटे-छोटे कर्मकाल तक सबका निर्णय होगा। कालकी कर्माङ्गगता में सन्देह नहीं। वेद में प्रातः और सायं आहूती देने के लिये वाक्य उपलब्ध है। अपूर्व के बारे में कालका प्राधान्य अवश्य है। कालका गुणरूप में अन्वय अब बाकी है। अतएव गर्ग ऋषि ने कहा है कि पुण्य और पाप में तिथि, नक्षत्र और दिवस के साधन रूप से प्रधान गुण स्वरूप को लेकर काल को प्रवृत्ति होती है। स्वतन्त्ररूप से नहीं। अतः अङ्गभूत काल के निर्णय में संवत्सर अवयव को लेकर स्वयं अवयवी हो जाता है। इसलिये सूचीकटाहन्याय से उसका निर्णय सबसे पहले होना चाहिये।

माधवीय कालनिर्णय में उपोद्घात नामक पहला प्रकरण समाप्त ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीयप्रकरणम्

संवत्सरो नामायनाद्यवयवयुक्तोऽवयवी कालविशेषः। सम्यग् बसन्त्यस्मिन्नयनर्त्तुमासादय इति व्युपत्तेः। स च द्वादशमासात्मकः "द्वादशमासाः संवत्सर" इति श्रुतेः। मासानां च चान्द्रसावनसौराख्येन दिवसभेदेने चान्द्रादित्रैविध्यं वक्ष्यते। मासत्रैविध्येन संवत्सरस्त्रिविधः। तदुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—

चान्द्रसावनसौराणां मासानां तु प्रभेदतः।
चान्द्रसावनसौराः स्युस्त्रय संवत्सरा अमी॥ इति

तत्र चान्द्रः संवत्सरश्चैत्रशुक्लप्रतिपदादिः फाल्गुनदर्शान्तः। सौरस्तु मेषादिर्मीनान्तः। सावनः षष्ठ्युत्तरशतत्रयाहोरात्रात्मकः। ते च त्रयः संवत्सराः केषुचित् कर्त्तव्येषु व्यवतिष्ठन्ते केषुचिच्च विकल्पन्ते। तथा च भविष्योत्तरपुराणे संवत्सरसाध्यं तिलकव्रतं पठ्यते।

वसन्ते किंशुकाशोकशोभिते प्रतिपत्तिथिः।
शुक्ला तस्यां प्रकुर्वीत स्नानं नियममास्थितः॥
ललाटपट्टे तिलकं कुर्याच्चन्दनपङ्कजम्।
ततः प्रभृत्यनुदिनं तिलकालङ्कृतं मुखम्।
धार्यं संवत्सरं यावच्छशिनेव नभस्तलम्॥ इति।

अयनप्रभृति अवयवों से युक्त संवत्सर अवयवी होता है। वह काल का एक विशेष स्वरूप है। "अयन, ऋतु, मास प्रभृति जिस पर सम्यक् रूप से बसते हैं" इसी व्युत्पत्ति से संवतसर शब्द की सिद्धि होती है, संवत्सर बारह मास विशिष्ट हैं। बारह मासों से एक संवत्सर होता है ऐसी श्रुति की उपलब्धि होती हैं। चान्द्र, सावन और सौर भेद से दिवस तीन प्रकार का होता है। इस-लिये चान्द्र प्रभृति भेद से भी मास तीन प्रकार का होता है और मास के भेद से संवत्सर भा तीन प्रकार का होता है। इस बारे में ब्रह्मसिद्धान्त का वचन उपलब्ध होता है--चैत्रशुक्ल प्रतिपद से शुरू होकर फाल्गुन मास की अमावास्या में चान्द्र संवत्सर की पूर्ति होती हे। सौर संवत्सर मेष से मीनमास तक होता है। तीन सौ साठ दिनों से सावन संवत्सर होता है। ये तीन कुछ कर्म में व्यवस्थित रूप से कुछ कर्म में विकल्परूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से माने जाते हैं। इस लिये भविष्योंत्तरपुराण में संवत्सर साध्य तिलक व्रत के बारे में कहा है—वसन्त ऋतु की शुक्ल प्रतिपदा तिथि पलाश, अशोक पुष्पों से सुशोभित होती है। इसी तिथि में नियम पूर्वक स्नान करके ललाट में तिलक धारण किया जाता है। इस दिन से लेकर वर्ष में प्रतिदिन मुख-मण्डल तिलक से अलङ्कृत किया जाता है जैसे चन्द्रमण्डल आकाश मण्डल को सुशोभित करता है।

तत्र सांवत्सरश्चान्द्रोऽवगन्तव्यः शुक्लपक्षप्रतिपत्तिथ्योस्तल्लिङ्गत्वात्। न हि शुक्लकृष्णपक्षौ प्रतिपदादितिथयश्च सौरसावनोपजीवनेन प्रवृत्ताः। यत्तु "नव वर्षाणि पञ्च च" इत्यादिसंवत्सरस्यानन्तव्रताद्यङ्गत्वं स्मर्यते तत्रापि चान्द्र एव संवत्सरः। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामित्यादिलिङ्गात्। न च चैत्रप्रतिपदि तदुपक्रमाभावादचान्द्रत्वं शङ्कनीयम्। तदुपक्रमस्य संवत्सरस्य सृष्ट्यपेक्षत्वात्। अतः एव ब्रह्मपुराणेऽभिहितं—

चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रं तत्तदा सूर्योदये सति॥
प्रवर्त्तयामास तदा कालस्य गणनामपि।
ग्रहान्नागानृतून्मासान् वत्सरान् वत्सराधिपान्॥ इति।

चान्द्रसौरसावनशब्देषु तु प्रवृत्तिनिमित्तान्युच्यन्ते। चन्द्रकलावृद्धिक्षयप्रयुक्तप्रतिपदादितिथीनां षष्ठ्यधिकशतत्रयेण निष्पन्नो यः स चान्द्रः। द्वादशराशिषु सूर्यसंक्रमणैर्निष्पन्नो यः स सौरः। सावनशब्दोऽहोरात्रोपलक्षकः। सोमयागे सवनत्रयस्याहोरात्रसंपाद्यत्वात्। तैश्च सावनैः षष्ठ्यधिकशतत्रयसंख्याकैर्निष्पन्नो यः स सावनः। एवं सति वर्त्तमानभाद्रशुक्लचतुर्दशीमारभ्य आगामि भाद्रशुक्लचतुर्दश्याः प्राचीने तिथिसमुदाये चान्द्रसंवत्सरत्वमविरुद्धम्।

यहाँ शुक्लपक्ष और प्रतिपत् तिथि इस संकेत से यह संवत्सर चान्द्र है ऐसा समझ में आता है। क्योंकि शुक्ल और कृष्णपक्ष की प्रतिपत् प्रभृति तिथियों सौर-सावन संवत्सर में प्रवर्तित होती है। फिर "नव वर्षाणि पञ्च च" इस वचन से अनन्त व्रत के अनुरूप से जो संवत्सर माना जाता है वह भी चान्द्रसंवत्सर है। क्योंकि यहाँ भी "शुक्लपक्षे चतुर्दश्याम्" इस वचन से पक्ष और विधि के द्वारा चान्द्रसंवत्सर होने के लिये अवसर प्रसिद्ध है। चैत्र प्रतिपत् तिथि में इन व्रतों का उपक्रम नहीं होने से चान्द्रसंवत्सर नहीं माना जा सकता ऐसी शंका नहीं होनी चाहिये। चैत्रमास प्रतिपत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिथि में जो उपक्रम कहा है संवत्सर की सृष्टि के बारे में वह प्रसिद्ध है। अत एव ब्रह्म पुराण में कहा है—चैत्र शुक्ल प्रतिपत का सूर्योदय में भगवान् ब्रह्माजी ने निखिल जगत की सृष्टि की है और काल की गणना का प्रारम्भ करके ग्रह, नाग, ऋतु, मास,संवत्सर और संवत्सराधिप को सृष्टि की। चान्द्र, सौर सावन शब्द में प्रवृत्तिनिमित्त को कहा जायेगा। चन्द्रकला की वृद्धि और क्षय से प्रयुक्त जो प्रतिपत प्रभृति तीन सौ साठ तिथियों से निष्पन्न संवत्सर वह चान्द्र होता है। बारह राशियों में सूर्य के संक्रमण से निष्पन्न संवत्सर सौर। सावन शब्द अहोरात्र को उपलक्षित करता है। सोमयाग में तीन बार होने वाला सवन के लिए एक अहोरात्र प्रयोजनीय है। तीन सौ साठ संख्याविशिष्ट सवन से निष्पन्न संवत्सर सावन संवत्सर होता है। इस लिये सांप्रतिक भाद्र शुक्ल चतुर्दशी से लेकर फिर आगामी भाद्रशुक्ल चतुर्दशी तक होने वाली तिथियों की समष्टि चान्द्रसंवत्सर नाम से प्रसिद्ध होती है।

यच्च निरुढ़पशुबन्धप्रकरणे श्रूयते—"तेन संवत्सरे संवत्सरे यजेतेति पशुना संवत्सरो नातीयादिति" च। तत्रापि चान्द्र एव द्रष्टव्यः। "सर्वाँल्लोकान् पशुबन्धयाज्यभिजयति, तेन यक्ष्यमाणोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वेति" कल्पसूत्रकारैश्चान्द्रतिथौ तदनुष्ठानविधानात्। सौरस्तु संवत्सरः सुजन्मादिव्रतादावुपज्यते। तच्च व्रतं विष्णुधर्मोत्तरे स्मर्यते—

> भगवान् कर्मणा केन तिर्यग्योनौ न जायते।
> म्लेच्छदेशे च पुरुषस्तन्ममाचक्ष्व भो मुने ॥ ३।१९९।१

मार्कण्डेय उवाच—

> मेषसंक्रमणे भानोः सोपवासो नरोत्तम।
> पूजयेद् भार्गवं देवं रामं शक्त्या यथाविधि ॥ ३।१९९।२

इत्यारभ्य "मीनसंक्रमणे मत्स्यं वासुदेवं च पूजयेदि"-३।१९९।३ त्यन्तेन ग्रन्थेन व्रतं विधायान्ते तदुपसंहृतम्।

> [1]कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं।
> म्लेच्छेषु तिर्यक्षु न चापि जन्म ॥ ३।१९९।१० इति।

(१)संपूर्णवचनं यथा—कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं। म्लेक्षेषु तिर्यक्षु न चापिजन्म ॥ प्राप्नोत्यवाप्नोति शुरंच नाकं। कामं तथाप्नोति मनोभिरामम् ॥ विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् ३।१९९।१०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा स्कन्दपुराणे धान्यदानव्रतं पठ्यते—

अथातः संप्रवक्षामि धान्यव्रतमनुत्तमम् ।
अयने विषुवे चैव स्नानं कृत्वा विचक्षणः ॥

इत्यारभ्य व्रतं विधायैवमुपसंहृतम् ॥

एवं संवत्सरे पूर्णे कुर्यादुद्यापनक्रियाम् ॥ इति ।

निरुढपशुबन्ध प्रकरण में कहा है—संवत्सर संवत्सर में पशु से याग क्रिया जाता है । यहाँ भी चान्द्रसंवत्सर माना है । पशुबन्ध याग करने वाला यजमान सब लोक को विजय करता है । इस याग के अनुष्ठाता यजमान अमावास्या और पौर्णमासी में चान्द्रतिथि के अनुसार अनुष्ठान करता है—ऐसे कल्पसूत्र कारों ने कहा है । सौर संवत्सर सुजन्मादि व्रत में विनियुक्त होता है । वह व्रत विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा है—हे भगवन् ! हे मुनिजी, किस कर्म से पशुपक्षियों की योनि में और म्लेच्छ देश में पुरुष जन्म नहीं लेता है इसके बारे में मुझे बताइये । मार्कण्डेय ने कहा—हे नरोत्तम सूर्य के मेषराशि में संक्रमण होने पर उपवास पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार भार्गव और राम को पूजना चाहिए इस स्थल से शुरू करके "मीनराशि के संक्रमण में मत्स्यावतार वासुदेव को पूजते हैं ।" यहाँ व्रतविधान करके उपसंहार हुआ है—व्रत में अभिलषित व्रत को अनुष्ठान करके म्लेच्छ देश में और तिर्यक् योनि में मनुष्य जन्म नहीं लेना है । स्कन्दपुराण में धान्यव्रत के बारे में कहा है— इसके बाद अनुत्तम धान्य व्रत के प्रसंग में कहता हूँ । अयनसंक्रान्ति और विषुव संक्रान्ति में, विचक्षण व्रताचारी स्नानपूर्वक व्रतारंभ करके संवत्सरपूर्ण होने के बाद उद्यापन करे ।

सावनस्य सत्रादावुपयोगः तदप्युक्तं विष्णुधर्मोत्तरे—

सत्राण्युपास्यान्यथ सावनेन
लोक्यं च यत् स्याद् व्यवहारकर्म ॥ इति ।

गोसत्रं वै संवत्सरो य एव विद्वांसः संवत्सरमुपयन्ति ऋध्नुवन्त्येवेति श्रुतौ गवामयनस्य सत्रस्य संवत्सरनाम्ना व्यवहारात् संवत्सरकालस्तदङ्गमिति प्रतीयते । तत्र सावनो ग्रहीतव्यः । चान्द्रसौरयोर्मानयोस्तदनुष्ठानासंभवात् । तथाहि अहोरात्रसाध्य एकः सोमयागो वेदेष्वहः शब्देन अभिधीयते । तादृशानामहर्विशेषाणां गणः षडहः । स च द्विविधः अभिप्लवः पृष्ठ्यश्चेति । तत्र चत्वारोऽभिप्लवाः षडहाः एकपृष्ठ्यः षडह इति षडहपञ्चकेन एको मासः संप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्यते। तादृशैर्द्वादशभिर्मासैः साध्यं संवत्सरसत्रम्। तथाच सावनेनैव तत्सिद्धिः। चान्द्रस्य षड्भिरहोरात्रैर्न्यूनत्वात्। सौरस्य सपादैः पञ्चभिरहोरात्रैरधिकत्वात्। ननु संवत्सराय दीक्षिष्यमाणा एकाष्टकायां दीक्षेरन्निति माघमासगतायामष्टम्यां चान्द्रतिथौ सत्राय दीक्षा श्रूयते। ततश्चान्द्रेणैव संवत्सरेण भवितव्यम्। मैवम्। उक्तस्य दीक्षाकालस्य पूर्वपक्षरूपत्वात्। तन्निराकरणं हि श्रूयते। आर्त्तं वा एते संवत्सरस्याभिदीक्षन्ते य एकाष्टकायां दीक्षन्ते व्यस्तं वा एते संवत्सरस्याभिदीक्षन्ते य एकाष्टकायां दीक्षन्त इति।

सावनमान से जो संवत्सर होता है उसमें सत्रका अनुष्ठान होता है और जो कोई व्यावहारिक या लौकिक कर्म है वह भी सावन संवत्सर में अनुष्ठेय है। श्रुति में कहा है—गोसत्र एक संवत्सर है। विद्वान लोग जो संवत्सर की उपासना करते हैं वे अपने फल पाते हैं। यहाँ गवामयन सत्र संवत्सर नाम से व्यवहृत है। इसलिये संवत्सर काल इसका अङ्ग है ऐसा प्रतीत होता है। यहाँ सावन संवत्सर ग्रहणीय है क्योंकि चान्द्र और सौर मान से उसका अनुष्ठान नहीं हो सकता। इस लिये कहा गया है कि एक अहोरात्र में सम्पादित होने वाला एक सोमयाग वेद में अहः नाम से अभिहित है। इसी तरह कुछ विशेष अहके गण षडह नाम से कहा जाता है। षडह दो प्रकार का है। अभिप्लव और पृष्ठ्य। चार अभिप्लव और एक पृष्ठ्य मिलकर पाँच षडहों से एक मास होता है। इसी तरह बारह मासों से साध्य संवत्सर सत्र। सावन मान के द्वारा इसकी सिद्धि होती है क्योंकि चान्द्रमान में अहोरात्र न्यून हो जाते हैं। सौर संवत्सर सावन संवत्सर से सपाद पाँच अहोरात्र ज्यादा हैं। यहाँ एक प्रश्न आता है कि संवत्सर सत्र के लिये दीक्षा दान माघमास की अष्टमी तिथि में होता है। ऐसा श्रुति वचन मिलता है। इसलिये तिथि के ग्रहण से चान्द्र संवत्सर ही यहाँ मान्य है। ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यहाँ दीक्षा के लिये निर्णीत काल पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थापित है। इसका निराकरण भी मिलता है। "आर्त्त वा" ऐसा वचन यहाँ निराकरण के लिये उपजीव्य है।

ननु पक्षान्तरमपि चान्द्रतिथिमेवोपजीव्य श्रूयते। फाल्गुनी पूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत् संवत्सरस्य यत् फाल्गुनी पूर्णमास इति। नतस्यापि निराकृतत्वात्। तस्यैकैव निर्येति हि निराकृतम्। एकैव निर्या। एक एव दोष इत्यर्थः। ननु सिद्धान्तेऽप्येवं श्रूयते। चित्रा पूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत् संवत्सरस्य यच्चित्रापूर्णमासो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुख्यत एव संवत्सरमारभ्य दीक्षते तस्य न काचन निर्या भवति। चतुरहे पुरस्तात् पौर्णमास्ये दीक्षेरन् तेषामेकाष्टकायां क्रयः संपद्यत इति बाढम्। अस्त्वेवमङ्गभूते दीक्षोपक्रमे चान्द्रतिथ्युपजीवनं, तथापि प्रधानकर्मणि सावनग्रहे को बाधः। नन्वस्ति बाधः। तेषां पूर्वपक्षे सुत्या संपद्यत इति सुत्याख्ये प्रधानकर्मणि चान्द्रस्य शुक्लपक्षस्योपजीवनात्। उपजीव्यतां नाम शुक्लपक्षस्तथापि यथोक्तप्रकारेण कृत्स्नस्य प्रधानकर्मणः सावनमन्तरेणानिर्वाहात्। स एवात्र गृह्यते। अयमेव न्याय उत्सर्गिणामयने कुण्डपायिनो मयने तुरायणादौ च योजनीयः तेषां गोसत्रविकृतित्वात्। यत्र तु चान्द्रादिनियामकं नास्ति तत्रैच्छिको विकल्पः। तथाहि पिप्पलादशाखायामाथर्वणिकभारद्वाजादीनां षण्मुनीनां विद्याधिकारसिद्धये गुरुणा पिप्पलादेन आदिष्टं संवत्सरं व समामनन्ति।

यहाँ और भी एक पक्ष में प्रश्न होता है कि फाल्गुनपूर्णिमा में दीक्षा दान के लिए वचन उपलब्ध होता है। इससे चान्द्रतिथि की स्थिति स्पष्ट मिलती है। संवत्सर का मुख फाल्गुन पूर्णिमा ऐसा भी ठीक नहीं। इस मत का भी निराकरण हुआ है। यहाँ भी दोष पूर्व विषय की तरह होता है। फिर एक प्रश्न आता है कि सिद्धान्त में सुना है चित्रापूर्णिमा में (चैत्रपूर्णिमा) दीक्षा दान होता है। संवत्सर सत्र के चित्रापूर्णिमा मुख है। मुख्यतः संवत्सर से प्रारंभ कर दीक्षा होती है। इसका कोई दोष नहीं है। चतुरह के आगे पूर्णिमा में दीक्षा होती है। इनका क्रम एकाष्टका में आता है। ऐसा ठीक है। सत्र में अङ्गस्वरूप दीक्षा दान के लिए चान्द्र तिथि मानी जाती है। तथापि प्रधान कर्म (संवत्सर सत्र) को अनुष्ठान करने के लिये सावन मान को ग्रहण करना कैसे बाधित होगा। एक पक्ष में कहा जाता है कि बाधा आती है। यहाँ पूर्व पक्ष में सुत्या होती है। सुत्या नामक प्रधान कर्म में चान्द्रमान से शुक्ल पक्ष गृहीत होता है लेकिन शुक्ल पक्ष का ग्रहण हो तथापि प्रकरण के अनुसार संपूर्ण प्रधान कर्म का अनुष्ठान सावन के विना संभव नहीं है। सावन मान ही यहाँ गृहीत होता है। इस न्याय से उत्सर्गिणामयन में कुंडपायिनामयन में, और तुरायणादि में भी योजनीय है। क्यों कि ये सब गोसत्र की विकृति होते हैं। जहाँ चान्द्रादिमान के लिए कोई नियामक वचन नहीं है वहाँ इच्छा के अनुसार विकल्प होता है। फिर भी पिप्पलादशाखा में आथर्वणिक भारद्वाज प्रभति मुनियों के विद्याधिकार की सिद्धि के लिए गुरु पिप्पलाद ने आदिष्ट संवत्सर को मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया वा संवत्सरं वत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छतेति। बह्वृचास्त्वेतमेवार्थं व्यतिरेकमुखेन आमनन्ति—"ता एताः संहिता नाऽनन्तेवासिने प्रब्रूयान्नाऽसंवत्सरवासिन इति । तैत्तिरीयाश्चारुणकेतुकमग्निं चेष्यमाणस्यादौ त्रिषवणस्नानादिरूपं व्रतमामनन्ति—संवत्सरमेतद् व्रतं चरेदिति। एवं विधेषु प्रदेशेषु नियामकाभावाच्चान्द्रादीनामब्दानामन्यतम इच्छया ग्रहीतव्यः।

ननु संवत्सरस्य चान्द्र-सौर-सावनभेदेन त्रैविध्यमेवाङ्गीकृत्य तत्स्वरूपविनियोगावुक्तौ। तत्रैवं त्रैविध्यनियमो न युक्तः। अन्ययोरपि नाक्षत्रबार्हस्पत्ययो द्विविधयोः संवत्सरयोर्विद्यमानत्वात्। तथा ह्यायुर्वेदविदः पठन्ति—

"सौरबृहस्पतिसावन-चान्द्रिकनाक्षत्रिकाः क्रमेण स्युः।
मातुलपातालातुलविमलवराङ्गाश्च वत्सराः पञ्चेति॥

अस्यायमर्थः। गणकप्रसिद्धयाऽक्षरसङ्ख्यया मातुलशब्दः पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रयमाचष्टे। तावद्दिवसपरिमितः सौरसंवत्सरः। पातालशब्द एकषष्ट्यधिकशतत्रयमाचष्टे। तावद्दिवसपरिमितो बार्हस्पत्यसंवत्सरः। अतुलशब्दः षष्ट्यधिकशतत्रयमाचष्टे। तावद्दिवसपरिमितः कालः सावनः संवत्सरः। विमलशब्दश्चतुःपञ्चाशदधिकशतत्रयमाचष्टे। तावद्दिवसपरिमितश्चान्द्रः संवत्सरः। वराङ्गशब्दश्चतुर्विंशत्यधिकशतत्रयमाह। तावद्दिवसपरिमितो नाक्षत्रिकः संवत्सर इति।

"फिर तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के सहित एक संवत्सर तक बैठ जाइये। इच्छा के अनुसार प्रश्न करिये। ऋग्वेद वाले इस विषय को व्यतिरेक-दृष्टान्त के रूप में मानते हैं। जो अन्तेवासी नहीं है और जिसने एक संवत्सर तक अध्ययन नहीं किया है उसको इसी संहिता को नहीं कहना। तैत्तिरीय लोग आरुणकेतुक अग्नि को चयन करने के लिये त्रिषवण (तीन बार नहा) स्नान के रूप व्रत अनुष्ठित करते हैं। एक संवत्सर तक यह व्रत होता है। इन सब क्षेत्रों में कुछ नियामक नहीं है। इस लिये चान्द्र प्रभृति अब्दों से कुछ एक विकल्प में ग्रहणीय है।

यहाँ एक प्रश्न आता है—चान्द्र, सौर और सावन के भेद से संवत्सर तीन प्रकार है। इस प्रकार को स्वीकार करके इनका स्वरूप और विनियोग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहा गया है। यहाँ तीन प्रकार का नियम नहीं माना जा सकता, क्योंकि नाक्षत्रबार्हस्पत्य के नाम से भी संवत्सर दो प्रकार है। आयुर्वेदज्ञ लोग कहते हैं—

सौर, बार्हस्पत्य, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र इन पांच संवत्सर के नामान्तर यथाक्रम मातुल, पाताल, अतुल, विमल और वराङ्ग होते हैं।

इनका यह अर्थ है—गणना प्रसिद्धि के अनुसार अक्षर संख्या के द्वारा मातुल शब्द प्रयुक्त होता है। यह संवत्सर (वर्ष) तीन सौ पैंसठ दिनों को लेकर प्रवर्तित होता है। इसको सौर संवत्सर कहते हैं। तीन सौ एकसठ दिनों को लेकर पाताल शब्द प्रयुक्त होता है। इसको बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। तीन सौ साठ दिनों को लेकर अतुल शब्द प्रयुक्त होता हैं। इसको सावन संवत्सर कहते हैं। तीन सौर चौवन दिन को लेकर विमल शब्द प्रयुक्त होता है। इसको चान्द्र संवत्सर कहते हैं। तीन सौ चौबीस दिन को लेकर वराङ्ग शब्द प्रयुक्त होता है। इसको नाक्षत्र संवत्सर कहते हैं।

एवं तर्ह्यस्तु संवत्सरः पञ्चविधः। तत्र नाक्षत्रिकस्य ज्योतिः—शास्त्रप्रसिद्धे आयुर्दायादावुपयोगो द्रष्टव्यः। बार्हस्पत्यस्तु सिंहबृहस्पत्यादिविशेषमुपजीव्य गोदावर्यादिस्नानादौ विनियुक्तः।

इसी तरह पांच प्रकार के संवत्सर होते हैं। नाक्षत्र संवत्सर ज्योतिष में प्रसिद्ध है और आयुर्वेद में उसका उपयोग होता है। सिंह-बृहस्पति योग के स्वरूप विशेषता को लेकर गोदावरी स्नानादि में बार्हस्पत्य संवत्सर प्रयुक्त होता है।

अनेन बार्हस्पत्यमानेन कदाचिदधिसंवत्सरोऽपि निष्पद्यते। तदुक्तमुत्तरसौरे—

गुरोर्मध्यमसंक्रान्तिहीनो यश्चान्द्रवत्सरः।
अधिसंवत्सरस्तस्मिन् कारयेन्न सवत्रयम्॥
वर्जनीया प्रयत्नेन प्रतिष्ठा सर्वनाकिनाम्।
स्फुटसंक्रान्तिहीनश्चेत् केऽप्याहुरधिमासवत्॥ इति।

मध्यमगणनया गुरोः संक्रान्तिर्यस्मिंश्चान्द्रसंवत्सरे न विद्यते सोऽयमधिसंवत्सरः तत्र बृहस्पतिसवादिकं न कार्यम्। स्फुटगणनया बृहस्पतिसंक्रान्तिरहितो यश्चान्द्रो वत्सरस्तस्मिन्नधिमासवत् काम्यादिकं वर्ज्यमिति केचिन्महर्षयो मन्यन्ते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ चान्द्रस्यावान्तरभेदा उच्यन्ते। संवत्सरः परिवत्सरः इडावत्सरोऽनुवत्सरः इद्वत्सरश्चेत्येते पञ्च भेदाः। तदेतत् सामान्याकारेण संवत्सरादिपञ्चविधत्वं सावित्रचयनगताग्निप्रशंसकमन्त्रे पठ्यते—

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि, इदावत्सरोऽसि, इद्वत्सरोऽसि इदुवत्सरोऽसि[1] इति। इदुवत्सरोऽनुवत्सर इत्यर्थः। अतएव चातुर्मास्यब्राह्मणे तदधिष्ठातृदेवतारूपत्वेनैवं श्रूयते—"अग्निर्वाव संवत्सरः आदित्यः परिवत्सरः चन्द्रमा इदावत्सरः। वायुरनुवत्सरः।" महेश्वर इद्वत्सर इति। ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि।

संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः।
इदावत्सरस्तृतीयश्चतुर्थश्चानुवत्सरः॥
इद्वत्सरः पञ्चमस्तु तत्सङ्घो युगसंज्ञकः॥ इति।

तेषां पञ्चानां विनियोगो विष्णुधर्मोत्तरे पठ्यते—३।११७।२-३

संवत्सरे तु दातॄणां तिलदानं महाफलम्।
परिपूर्वे तथा दानं यवानां द्विजसत्तम॥
इदापूर्वे[2] च वस्त्राणां धान्यानां चानुपूर्वके।
इत्पूर्वे रजतस्यापि दानं चोक्तं महाफलम्॥ इति।

इस बार्हस्पत्यमान से कब कब अधि संवत्सर हो जाता है। इस लिये उत्तर सौरे में कहा है बृहस्पति की मध्यम गणना के अनुसार जिस चान्द्र संवत्सर में बृहस्पति की संक्रान्ति नहीं है। उसको अधिसंवत्सर कहते हैं। उसमें बृहस्पति प्रभृति तीन सवन अनुष्ठित नहीं होते हैं। देवता की प्रतिष्टा भी नहीं होती है। स्फुट गणना के द्वारा बृहस्पति संक्रान्ति रहित जो चान्द्र संवत्सर उसमें अधिमास की तरह काम्य कर्म नहीं होता है ऐसा कुछ महर्षि लोग कहते हैं।

चान्द्र संवत्सर के कुछ अवान्तर भेद यहाँ विचारित होगा। संवत्सर परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर के नाम से पांच भेद होते हैं। साधारणतया इन सभी के सावित्रचयन में अग्निप्रशंसक मन्त्र में पाठ मिलता है। "संवत्सरोऽसि" इत्यादि मन्त्रों के द्वारा यहाँ इदुवत्सर अनुवत्सर को

---

१. शुक्लयजुर्वेदे इदुवत्सरस्थाने वत्सर इति पाठः। माध्य—२७।४५, काण्व—२९।५०

२. विष्णुधर्मोत्तरे इडापूर्व इति पाठः। मार्कण्डेय वज्रसंवादे पञ्चमूर्तिव्रते एतत् पठ्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं। अत एव चातुर्मास्य ब्राह्मण में इन संवत्सरों की देवता का नाम मिलता है। यथा संवत्सर की देवता अग्नि, परिवत्सर की देवता आदित्य, इदावत्सर की देवता चन्द्रमा, अनुवत्सर की देवता वायु, इद्वत्सर की देवता महेश्वर है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में कहा है—पहला संवत्सर दूसरा परिवत्सर, तीसरा इदावत्सर, चौथा अनुवत्सर और पांचवां इद्वत्सर होते हैं। इनकी समष्टि से एक युग होता है। इन पांच संवत्सरों का विनियोग विष्णुधर्मोत्तर-पुराण में बताया गया है—संवत्सर में तिलदान, परिवत्सर में यवदान, इदा-वत्सर में वस्त्रदान, अनुवत्सर में धान्यदान, इद्वत्सर में रजतदान प्रशस्त हैं। इनसे महाफल लाभ होता है।

तथा तदधिष्ठातृदेवतापूजारूपो व्रतविशेषः पठ्यते—

(वि० धर्मो० पु० ३।१५३।१-३)

"संवत्सरः स्मृतो वह्निस्तथार्कः परिवत्सरः।
इदापूर्वस्तथा सोमो ह्यनुपूर्वः प्रजापतिः।
इत्पूर्वश्च तथा प्रोक्तो देवदेवो महेश्वरः।
तेषां मण्डलविन्यासं प्रागवदेव विधीयते।
प्राग्वत्स्यात् पूजनं कार्यं होमः कार्यो यथाविधि ॥" इति।

प्रभवमारभ्य क्षयान्तेषु षष्टिवर्षेषु द्वादश पञ्चकानि। तत्रैकस्मिन् वर्षपञ्चके एकैकक्रमेण संवत्सरादयो भवन्ति। तदेतत्सर्वं ज्योतिः-शास्त्रादवगन्तव्यम्।

इति संवत्सरनिर्णयः ॥

अथायनम्

अयते यात्यनेन ऋतुत्रयेण सूर्यो दक्षिणाऽऽशामुत्तराशां चेति ऋतुत्रयमयनम्। तथा च वाजसनेयिनः पञ्चाग्निविद्यायां दक्षिणोत्तर-मार्गयोः समामनन्ति[1]—"यान् षण्मासान् दक्षिणादित्य एति[2] यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति[3] ॥ इति। तथा छन्दोगा अप्यधीयते-यान् षड्दक्षिणेति मासांस्तान्, यान् षडुदगेति मासांस्तानिति। तैत्तिरीया ऋतुग्रह-ब्राह्मणे पठन्ति-तस्मादादित्यः षण्मासान् दक्षिणेनेति षडुत्त-

१. बृह० उप० ६।२।१६
२. शत० ब्रा० १४।६।१।१६
३. शत० ब्रा० १४।६।१।२८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रेणेति। एवं च आदित्यगतिमुपजीव्यायननिष्पत्तेः सौरमेवैतत्। अत एव विष्णुधर्मोत्तरे (१।७३।१७) सौरमानमधिकृत्य उक्तम्—"ऋतुत्रयं चायनं स्यादिति। केचित्तु चान्द्रमानेनायनद्वयमभ्युपगच्छन्ति। मार्गशीर्षमासादिकैस्त्रिभिर्ऋतुभिः कल्पितः कालः षण्मासात्मकमुत्तरायणम्। ज्येष्ठमासादिकैर्दक्षिणायनमिति। तत्र प्रमाणं ज्योतिःशास्त्रादौ मृग्यम्॥

इन सब संवत्सर में निर्दिष्ट देवताओं की पूजा के स्वरूप विशेष व्रतों का नाम सुना है।

संवत्सर में वह्नि, परिवत्सर में सूर्य, इदावत्सर में चन्द्र, अनुवत्सर में प्रजापति, इद्वत्सर में महेश्वर पूजनीय देवताएँ हैं। इनके मण्डल विन्यास, पूजा और होम पूर्ववत् अनुष्ठित होते हैं।

प्रभव से लेकर क्षय तक साठ संवत्सरों में बारह पञ्चक गोष्ठी होती है। एक एक पञ्चक में क्रमानुसार संवत्सर होते हैं। ये सब ज्योतिष से जान लेना सहज साध्य होता है।

इस प्रकार संवत्सर का निर्णय समाप्त हुआ।

यहां से अयन विषय का प्रारम्भ होता है। गत्यर्थक 'अय' धातु से अयन शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध होती है। तीन ऋतुओं के द्वारा सूर्य को दक्षिण और उत्तर दिशा में गमन करने के लिये जो काल निश्चित है। उसे अयन कहते हैं। इसके बारे में शुक्लयजुवेदियों ने पञ्चाग्निविद्या के प्रसंग में दक्षिण और उत्तर मार्ग को अयन लक्ष्य में प्रयोग करते हैं। जिन छ मासों में सूर्य दक्षिण दिशा को जाते हैं और जिन छमासों में सूर्य उत्तर दिशा को भी जाते हैं क्रमानुसार इनको दक्षिणायन और उत्तरायण कहते हैं। सामवेदी लोग ऋतुग्रहब्राह्मण में, कृष्ण-यजुर्वेदी भी ऐसे ही कहते हैं। सूर्य की गति के अनुसार अयन की निष्पत्ति सौरसंवत्सर की तरह होती है। अत एव विष्णु धर्मोत्तर पुराण में सौरमान को लेकर तीन ऋतुओं से एक अयन होता है ऐसा कहा है। कुछ लोग चान्द्र मान के अनुसार दो अयन को मानते हैं। मार्गशीर्ष-मास से लेकर छ मासों से कल्पित काल उत्तरायण और ज्येष्ठमास से लेकर छ मासों से कल्पित काल दक्षिणायन होता है। इसके लिये ज्योतिष में प्रमाण अनुसन्धेय है।

श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठाने तु मकर-कर्कटसङ्क्रान्त्यादिक एवायनद्वयकाल इति तथोक्तश्रुतिस्मृतिभ्याम् अवगन्तव्यम्। उत्तरायणस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यागकर्माङ्गत्वं काण्वा अधीयते—उदगयने[1] आपूर्यमाणपक्षस्य पुण्याहे द्वादशाहमुपसद्व्रती[2] भूत्वेत्यादि। चौलादीनामुत्तरायणकर्त्तव्यता गृह्यस्मृतिषु प्रसिद्धा। सत्यव्रतश्च देवताप्रतिष्ठादीनामुत्तरायणदक्षिणायनयो र्विधिनिषेधावाह—

देवताऽऽरामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ।
दक्षिणाशामुखे कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात्॥ इति

उदङ्मुखे उदग्गते इत्यर्थः। उग्रदेवतानां प्रतिष्ठा दक्षिणायने कर्त्तव्या। तथा च वैखानससंहितायामभिहितम्—

मातृभैरव - वाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः।
महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने॥ इति

एवं विष्णुधर्मोत्तराभिहितानि पदद्वयव्रतादीन्ययनकर्त्तव्यान्युदाहार्याणि।

इत्ययननिर्णयः॥

श्रौत स्मार्त्त कर्मों के अनुष्ठान में मकर और कर्कट संक्रान्ति से लेकर दो अयनों का काल श्रुति और स्मृति से जाना जाता है। त्याग कर्म के अंगरूप में उत्तरायण को शुक्लयजुर्वेद के काण्व शाखा वाले जानते हैं। यथा—उत्तरायण में शुक्लपक्ष के पुण्य दिवस में बारह दिन तक याग में व्रती होते हैं। गृह्यसूत्रों में चौलकर्म लिये उत्तरायण काल निर्दिष्ट हैं। सत्यव्रत देवता प्रतिष्ठा के लिये उत्तरायण को विधान करता है और दक्षिणायन को निषेध करता है—देवता, आराम, कूप प्रभृतियों की प्रतिष्ठा सूर्य के उत्तरायण में होती है। अगर दक्षिणायन में इनकी प्रतिष्ठा होती है तो फल नहीं मिलता है।

उग्रदेवताओं की प्रतिष्ठा दक्षिणायन में होती है। वैखानस-संहिता में कहा है—

मातृगण, भैरव, वराह, नृसिंह, त्रिविक्रम, दुर्गादेवी प्रभृति की प्रतिष्ठा दक्षिणायन में होती है। ऐसे ही विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी कहा है—दो अयन में कर्त्तव्य कर्मों का अनुष्ठान के लिये विधि की उपलब्धि होती है।

इस प्रकार यहाँ अयन निर्णय समाप्त हुआ।

---

१. बृह० उप० ६।३।१ २. उपसद्व्रती पयोवतीत्यर्थः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ ऋतवः

ऋतुशब्दः 'ऋ' गतावित्यस्माद्धातो र्निष्पन्नः। इयर्त्ति गच्छति अशोक पुष्पविकासादि असाधारणलिङ्गमिति वसन्तादिकालविशेष ऋतुः। स च षड्विधः। षड्वा ऋतवः इति श्रुतेः। यत्तु द्वादशमासाः पञ्चर्त्तव इति श्रुतम् तत्र हेमन्तशिशिरयोरेकीकरणं विवक्षितम्। याजमानेषु पञ्च प्रयाजानुमन्त्रणमन्त्रेषु हेमन्तशिशिरयोरेकस्मिन्नेकेनैव पदेनैकीकणोक्तेः। तथा हि – [1]वसन्तमृतूनां प्रीणामि, ग्रीष्मऋतूनां प्रीणामि। वर्षा ऋतूनां प्रीणामि, शरदमृतूनां प्रीणामि इति चतुर्णां प्रयाजानां पृथक् पृथगनुमन्त्रणमन्त्रानाम्नाय पञ्चमप्रयाजस्यानुमन्त्रणमन्त्र एव श्रूयते। हेमन्तशिशिरावृतूनां प्रीणामीति। एतदेवाभिप्रेत्य बह्वृचब्राह्मणे द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेनेति। यत्त्वनयोर्मन्त्रब्राह्मणयो र्द्विवचनं तत्स्वरूपद्वैविध्याभिप्रायेण। शिशिरस्य षष्ठस्यान्तिमत्वात् तेनानुमन्त्रणीयस्य षष्ठप्रयाजस्याभावाच्च तस्यैव पञ्चमे हेमन्तेऽन्तर्भावो न्याय्यः। अत एव प्रयाज-ब्राह्मणे—"वसन्तमेवर्त्तूनामवरुन्धे इत्यादिना चतुरः प्रयाजान् प्रशंस्य पञ्चमे प्रयाजे केवलेन हेमन्तेन प्रशंसा स्वाहाकारं यजति हेमन्तमेवावरुन्धे इति।

अस्तु नाम यथा तथा पञ्चसंख्या यथोक्तस्वरूपेण तु षोढा भिद्यते द्वादशमासात्मके संवत्सरे एकैकस्य ऋतोर्मासद्वयात्मकत्वे सति एकादश-द्वादशमासयोर्वर्जयितुमशक्यत्वात्। षष्ठर्त्तौ पृथगनुष्ठानविधानाच्च। तत्रोपरिष्टादुदाहरिष्यामः। मासद्वयात्मकत्वं चाग्निचयने ऋतव्येष्टकोपधानब्राह्मणे श्रूयते द्वन्द्वमुपदधाति तस्माद् द्वन्द्वमृतव इति। एकस्मिन्नृतौ कयो र्मासयो र्द्वन्द्वं ग्रहीतव्यमिति चेत् वसन्ताद्यनुक्रमेण चैत्रमासादिद्वन्द्वमिति ब्रूमः। तच्चेष्टकोपधानमन्त्रेषु [2]श्रूयते— मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू।

यहाँ से ऋतु के बारे में आलोचना होगी। गत्यर्थक में ऋधातु से ऋतु-शब्द की निष्पत्ति होती है। अशोक प्रभृति फूलों के विकास के स्वरूप जो असाधारण संकेत दिखाई पड़ती है इस संकेत से वसन्त प्रभृति विशेष काल ऋतु के नाम से परिचित होता है। ये छ प्रकार होता है। वेद में ऋतुओं की छ प्रकारता के बारे में कहा है। फिर भी कहा है—संवत्सर में बारह मास

---

१. शु० य० वे० १३।२४

२. तै० सं० १.६ २.३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होते हैं तथा पांच ऋतुएँ होती हैं। यहाँ हेमन्त और शिशिर इन दोनों के मिलन से एक ऋतु का पाठ मिलता है। इस लिये कहा है कि ऋतुओं में वसन्त ऋतु को सन्तुष्ट करता हूँ। ऋतुओं में ग्रीष्म ऋतु को सन्तुष्ट करता हूँ। ऋतुओं में वर्षा ऋतु को सन्तुष्ट करता हूँ। ऋतुओं में शरद ऋतु को सन्तुष्ट करता हूँ। इस प्रकार चार प्रयाजों का अलग-अलग अनुमन्त्रण मन्त्र को कहकर पांचवा प्रयाज का अनुमन्त्रण मन्त्र में ऐसा कहा है। ऋतुओं में हेमन्त-शिशिर को सन्तुष्ट करता हूँ। इस विषय को लक्ष्य करके बह्वृचब्राह्मण में कहा है कि संवत्सर के बारहमासों में पांच ऋतुएँ होती हैं। यहाँ हेमन्त और शिशिर को मिला करके एक ऋतु की तरह माना जाता है। हेमन्त और शिशिर को लेकर जो दो वचन प्रयुक्त होते हैं। इनमें स्वरूपतः ऋतु दो प्रकार होती है। ऐसा स्पष्ट अवगत होता है। शिशिर छ ऋतुओं में अन्तिम ऋतु होती है। वस्तुगत्या पांच ही प्रयाज हैं, अनुमन्त्रणीय छ प्रयाजों का अभाव के कारण छ ऋतुओं की परिगणना न करके पांचवा प्रयाज में ही समापित करते हैं। हेमन्त ऋतु पाचवाँ ऋतु होती है। इसमें शिशिर का अन्तर्भाव होता है। अत एव प्रयाजब्राह्मण में "वसन्तमेवर्त्तूनामवरुन्धे" इस वचन से चार प्रयाज की प्रशंसा करके पांचवां प्रयाज में केवल हेमन्त के द्वारा ही प्रशंसा होती है। यथा—स्वाहाकारं यजति हेमन्तमेवावरुन्धे इति।

इस लिये जहाँ तहाँ पांच संख्या होती है। ठीकरूप से ही छ संख्या की स्वीकृति मिलती है और ऋतुओं का भेद छ प्रकार होता है। बारह मास विशिष्ट संवत्सर में एक एक ऋतु के लिये दो दो मास माने जाते हैं। इसमें ग्यारहवां और बारहवां मास को छोड़ देने से कोई असंभवता नहीं होगी।

छवों ऋतु में पृथक् अनुष्ठान का विधान है। इसके बारे में आगे कहा जायेगा। अग्निचयन में इष्टकोपधान ब्राह्मण में मासद्वय से एक ऋतु होती है ऐसा सुना है। एक एक ऋतु में दो मास की जो गण निरूपित हो गया इसमें किस ऋतु के लिये किस मास की गणना होती है ऐसा सन्देह होता है। इस लिये कहा जाता है कि वसन्त ऋतु से लेकर चैत्रादि मास को ही परिगणित किये जाते हैं। इष्टकोपधान मन्त्रों में सुना है—मधु और माधव को लेकर वसन्त ऋतु, शुक्र और शुचि को लेकर ग्रीष्म ऋतु।

नभश्च[1] नभस्यश्च वार्षिकावृतू। इषश्चोर्जश्च शारदावृतू। सहश्च[2] सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू। तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू[3]। एषु च

---

१. शु० य० वे० १४।१५ २. तत्रैव १४।२७

३. शु० य० वे० १५।५७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्येषु 'ऋतू' इति द्विवचनम् ऋत्ववयवमासाभिप्रायम्। अन्यथा षड् ऋतव इति श्रूयमाणा षट् संख्या बाध्येत। अवयविन ऋतोर्वसन्तादेरेकात्मकत्वं सौत्रामणीयहौत्रमन्त्रेष्वेकवचनेन व्यवहारादवगन्तव्यम्। वसन्तेनर्तुना देवाः ग्रीष्मेणर्त्तुना देवा इत्यादि हि तत्र पठ्यते। तथैवाधानब्राह्मणे श्रूयते—वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुं ग्रीष्मो वै राजन्यस्यर्तुः शरद् वै वैश्यस्यर्तुरिति।

यद्यप्येते षडर्तवो घटीयन्त्रघटवन्नैरन्तर्येणाऽऽवर्त्तन्ते तथापि संवत्सरोपक्रमरूपत्वेन वसन्तस्य प्राथम्यं द्रष्टव्यम्। एतदेवाभिप्रेत्य श्रूयते मुखं वा एतदृतूनां यद्वसन्त इति पूर्वोदाहृतेषु मन्त्रब्राह्मणेषु सर्वत्र वसन्तोपक्रमपाठाच्च वसन्तस्य प्राथम्यम्।

ते च वसन्ताद्यृतवो द्विविधाः चान्द्राः सौराश्च। चैत्रादयश्चान्द्रा। तच्चोदाहृतं मधुश्च माधवश्चेत्यादिना। न च तत्र चैत्रादयो नोक्ता इति शङ्कनीयम्। मध्वादिशब्दानां चैत्रादिपर्यायत्वात्। अत एवाहुः—

चैत्रो[1] मासो मधुः प्रोक्तो वैशाखो माधवो भवेत्।
ज्येष्ठमासस्तु शुक्लः स्यादाषाढः शुचिरुच्यते॥
नभोमासः श्रावणः स्यान्नभस्यो भाद्र उच्यते॥

नभ और नभस्य को लेकर वर्षा ऋतु. इष और ऊर्ज को लेकर शरत् ऋतु, सह और सहस्य को लेकर हेमन्त ऋतु, तप और तपस्य को लेकर शिशिर ऋतु होती हैं। इन सब वाक्यों में ऋतु शब्द में जो द्विवचन लगा है, येसब ऋतु का अवयव के अभिप्राय से। अन्यथा "छ ऋतुओं" इस वाक्य में छ संख्या बाधित हो जायगी। सौत्रामणीय हौत्रमन्त्र में एक वचन में ऋतु का व्यवहार मिलता है, जहाँ वसन्त प्रभृति ऋतुएँ अवयवी के रूप में कहे गये हैं।

यदि ये छ ऋतुएँ घटीयन्त्र के घट की तरह क्रमानुसार आवर्तित होती हैं, तथापि संवत्सर का उपक्रम के रूप में वसन्त को पहला ऋतु कहा गया है।·इस विषय को अभिप्राय करके सुना है कि ऋतुओं का मुख वसन्त है। पूर्वोदाहृत मन्त्रवाक्यों में वसन्त से ऋतुओं का प्रारम्भ हुआ ऐसा कहा है। वे वसन्तादि ऋतु दो प्रकार के होते हैं—चान्द्र और सौर। चैत्र मास से लेकर चान्द्र ऋतु होता है। "मधुश्च माधवश्च" इस वाक्य में विषय स्पष्ट है। इस विषय में चैत्रमास का नाम नहीं कहा गया है। ऐसी शंका नहीं

---

१ वि० ध० पु० चैत्रो मधुरिति स्मृतः। वैशाखो माधवः प्रोक्त इत्यादिः प्रकारभेदेन पाठः ३।६।३–६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करनी चाहिये। क्योंकि मधुप्रभृति शब्द चैत्र प्रभृति शब्दों का पर्याय है। विद्वान् लोग चैत्र मास को मधु, वैशाख मास को माधव, ज्येष्ठमास को शुक्र, आषाढ़मास को शुचि और श्रावणमास को नभ, भाद्रपदमास को नभस्य,

इषश्चाऽश्वयुजो मासः कार्त्तिकश्चोर्जसंज्ञकः।
सहो मासो मार्गशीरः सहस्यः पुष्यनामकः॥
माघमासस्तपाः प्रोक्तस्तपस्यः फाल्गुनः इति॥ इति।

एतेषां चैत्राद्यात्मकानां वसन्तादीनां चन्द्रगतिपरिकल्पितत्वाच्चान्द्रत्वम्। अत एव होतृमन्त्रेष्वाम्नायते। चन्द्रमाः षड्ढोता स ऋतून् कल्पयति। तथा सूक्तविशेषे सूर्याचन्द्रमसौ [1]प्रकृत्याम्नायते—

पूर्वापरं चरतो माययैतौ।
शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम्॥
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट।
ऋतुरन्यो विदधज्जायते पुनः॥ इति।

अत्रः पुन र्जायत इति लिङ्गादृतुविधाता चन्द्र इत्यवगम्यते।

नन्वस्त्वेवं मध्वादीनां वसन्ताद्यृतुत्वम्। संसर्पाख्यस्य तु त्रयोदशस्य चान्द्रमासस्य कथम् ऋतुषु निर्वाहः? तन्माससद्भावश्चर्तुग्रहब्राह्मणे मन्त्रानुवादपुरःसरमाम्नायते—उपयाम गृहीतोऽसि संसर्पोऽहंस्पत्याय त्वेत्यहास्ति त्रयोदशो मास इत्याहुस्तमेव तत् प्रीणाति। तथा प्रवर्ग्यब्राह्मणेऽपि—अस्ति त्रयोदश मास इत्याहुः, यत् त्रयोदशः परिधिर्भवति तेनैव त्रयोदशं मासमवरुन्धे इति। तदुत्पत्तिप्रकारश्चास्माभिर्मलमासनिर्णये वक्ष्यते।

विद्यतामेवं त्रयोदशो मासः, तस्य काऽनुपपत्तिर्वसन्ताद्यृतुष्विति चेत्। उच्यते किमयं सप्तमः ऋतुः आहोस्विदुक्तेष्वेव षट्स्वन्तर्भूतः उतर्त्तुद्वयान्तरालवर्त्ती कश्चिदनृतुरूपः?

आश्वीन मास को इष कार्त्तिक मास को ऊर्ज मार्गशीरमास को सह, पौषमास को सहस्य, माघमास को तप, फाल्गुनमास को तपस्य कहते हैं।

चैत्रप्रभृति मासों को लेकर वसंतप्रभृति ऋतुओं की प्रवृत्ति होती है। चन्द्रगति के अनुसार चैत्र प्रभृति मासों की प्रवृत्ति होने से उनको चन्द्र कहते हैं। अत एव होतृमन्त्र में कहा है कि चन्द्र ऋतु की कल्पना करता है। कुछ विशेष सूक्त में सूर्य और चन्द्र को लेकर कहा है कि—

१. ऋ० वे० १०।५८।१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माया के द्वारा ऋतुएँ शिशुओं के खेल की तरह क्रमानुसार आवर्त्तित होती हैं। एक के अनन्तर दूसरे का जो आगमन है वह शिशु-क्रीडा की तरह होता है। इसलिये ऋतु एक के अनन्तर दूसरे का फिर विधान होता है। इस वाक्य के द्वारा विधान करने वाला चन्द्र है ऐसा माना जाता है।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि मधु प्रभृति मासों को लेकर वसन्त प्रभृति ऋतुओं की परिगणना चन्द्र की गति के अनुसार होती है। किन्तु संसर्प नाम से अभिहित तेरहवाँ चान्द्र मास का ऋतुओं में कैसे निर्वाह होगा? चतुर्ग्रहब्राह्मण में मन्त्रानुवाद को लेकर संसर्पमास का सद्भाव के बारे में कहा है। प्रवर्ग्य ब्राह्मण में भी संसर्प मास को तेरहवां मास कहा गया है। इसकी उत्पत्ति के बारे में मलमास निर्णय के अवसर पर हम बोलेंगे।

इस लिये तेरहवाँ मास होने दो। वसन्त प्रभृति ऋतुओं में इसकी अनुपपत्ति कैसे होगी? क्योंकि ये क्या सातवाँ ऋतु होती है, या छ ऋतु में अन्तर्भूत हो जाता है या दो ऋतुओं के बीच में कोई अनृतु की तरह रहती है।

न तावत्पश्चिमः ऋतु र्ऋतूनानुद्यमान इति ऋतूनां नैरन्तर्यश्रवणात् नाप्यग्रिमः "षड्वा ऋतवः" इति षट्संख्यानियमात्, वसन्तादिवन्मन्त्र ब्राह्मणयोर्नामान्तराश्रवणाच्च। नापि मध्यमः। मध्वादिष्वपाठात्। उच्यते। ययोर्मासयोर्मध्ये मलमासो दृश्यते तयोरुत्तरस्मिंस्तस्या-न्तर्भावः। तथा चाऽसौ षष्ठिदिवसात्मको मलिनशुद्धभागद्वयात्मक इति मध्वादिशब्दवाच्यत्वेन उक्तेष्वन्तर्भावान्न काप्यनुपपत्तिः।

सौरेष्वृतुषु बौधायनेन, "मीनमेषयो र्मेषवृषयो र्वा वसन्त" इत्य-भिधानात्। मीनादित्वं मेषादित्वं च वैकल्पिकं वसन्तस्याङ्गीकृतम्। तथा तदनुसारेण इतरे ग्रीष्मादयोऽपि यथायथं विकल्प्यन्ते, विनि-योगश्चैषाम् ऋतुविशेषाणां श्रुति-स्मृति-पुराणेष्ववगम्यते। तत्र श्रुतिः "वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, ग्रीष्मे राजन्य आदधीत, शरदि वैश्य आदधीते" त्यादिः। स्मृतिरपि "वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्य" मिति। विष्णुधर्मोत्तरेऽपि षण्मूर्त्तिव्रते वसन्ताद्यृतुषु षट्सु पृथक् पूजाविशेषाः कथिताः। तथा तत्रैव वसन्ते स्नानाऽनु लेपनादिदानं, ग्रीष्मे प्रपानकदानादि चोक्तम्। देवीपुराणे वर्षासु तिल-दानमुक्तम्। तथा शरद्यन्नदानं हेमन्तेऽग्निदानं शिशिरे वस्त्रदानमित्ये-तानि विष्णुधर्मोत्तर एवोक्तानि। एवमन्यदप्युदाहार्यम्।

इति ऋतुनिर्णयः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इनमें अन्तिम पथ ग्रहणीय नहीं है। एक ऋतु से दूसरी ऋतु अपसारित हो जाती है ऐसे कहने से अनृतु कोई मास नहीं रहता है। पहला पक्ष भी अङ्गीकृत नहीं है क्योंकि छ ऋतुओं की संख्या मानी जाती है। मन्त्र और ब्राह्मण में वसन्त प्रभृति ऋतुओं की तरह अन्य कोई ऋतु का नाम नहीं मिलता है। बीच वाला पक्ष भी नहीं माना जाता है क्योंकि मधु प्रभृति मासों के भीतर संसर्प का पाठ नहीं मिलता है। इस लिये यहाँ ऐसा कहा जाता है—जिन दो मासों के बीच मलमास होता है इन दोनों में दूसरा मास में मलमास का अन्तर्भाव होता है। इसी तरह साठ दिन में एक मास होता है और इसमें मलिन और शुद्ध भाग रहते हैं। इसलिये मधु प्रभृति मासों में अन्तर्भाव होकर इसकी संज्ञा मधुप्रभृति हो जाने से कोई आपत्ति नहीं रहती।

सौर ऋतुओं में बौधायन ने मीन और मेष या मेष और वृष को लेकर वसन्त की प्रवृत्ति होती है, ऐसा कहा है। इससे मीन से लेकर या मेष से लेकर ऋतुचक्र की प्रवृत्ति में वसन्त को वैकल्पिकरूप से मानते हैं। तदनुसार ग्रीष्म प्रभृति ऋतुओं का भी विकल्प माना जाता है। इन ऋतुओं का विनियोग श्रुति, स्मृति और पुराण में मिलता है। श्रुति ने कहा है—वसन्त में ब्राह्मण, ग्रीष्म में क्षत्रिय और शरत में वैश्य अग्न्याधान करते हैं। स्मृति में कहा है— वसन्त में ब्राह्मण का, ग्रीष्म में क्षत्रिय का, शरत में वैश्य का उपनयन निर्दिष्ट है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी षण्मूर्त्ति व्रत के बारे में वसन्त प्रभृति छ ऋतुओं में होनेवाली विशेष पूजा कही गयी है। वसन्त में स्नान और अनुलेपन का दान, ग्रीष्म में प्रपानक दान प्रशस्त है। देवीपुराण में वर्षा ऋतु में तील दान की उक्ति मिलती है। शरत ऋतु में अन्न दान, हेमन्त में अग्निदान, शिशिर में, वस्त्रदान विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहे हैं। इसी तरह अन्य विषयों के बारे में उदाहरण भी मिलते हैं।

इस प्रकार ऋतु निर्णय समाप्त हुआ।

अथ मासनिर्णयः

तत्र सकरान्तं मासिति प्रातिपादिकं चन्द्रवाचि। तस्यायं काल इति मासः। तदीयत्वं च पञ्चदशानां कलानां वृद्धिक्षयद्वारेणावगन्तव्यम्। यदिदं मासत्वं सौर-सावनयोरनुगतं तद्वेवमस्तु 'मस' परिमाणे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्यस्माद्धातोर्निष्पन्नोऽयं मासशब्दः। मस्येते परिमीयेते यावता कालेन चन्द्रवृद्धिक्षयौ स चान्द्रो मासः। यद्वा चन्द्रवृद्धिक्षयाभ्यां स्वयं मस्यते इति मासः। तथा च सिद्धान्तशिरोमणौ—

मस्यन्ते परिमीयन्ते स्वकला वृद्धिहानितः।
मास एते स्मृता मासास्त्रिंशत्तिथिसमन्विताः॥ इति।

सूर्यस्य राशिगति र्यत्र परिमीयते स सौरः। अहोरात्राणां त्रिंशत्संख्या परिमीयते यत्र स सावनः। तदुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—

चान्द्रः शुक्लादिर्दर्शान्तः सावनस्त्रिंशता दिनैः।
एकराशौ रविर्यावत्कालं मासः स भास्करः॥

नाक्षत्रमपि मासं केचिदिच्छन्ति —

सर्वर्क्षपरिवृत्तैस्तु नाक्षत्रो मास उच्यते॥

इति विष्णुधर्मोत्तरेऽभिधानात्। तत्रापि सप्तविंशतिसंख्या परिमीयते अनेनेति मासशब्दो योजनीयः।

तत्र सौरमासस्याद्यन्तौ मेषादिराशीनामाद्यन्ताभ्यां व्यवस्थितौ सावने पुरुषेच्छादि र्नियामकः। नाक्षत्रे नक्षत्रं नियामकम्। चान्द्रस्तु दर्शान्तः पूर्णिमान्तो वेति द्विधा विकल्प्यते। तथा च श्रूयते— अमावास्यया मासान् संपाद्याहरुत्सृजन्त्यमावास्यया हि मासान् सम्पश्यन्ति। पौर्णमास्या मासान् संपाद्याहरुत्सृजन्ति पौर्णमास्या हि मासान् संपश्यन्तीति।

यहाँ से मास निर्णय प्रारंभ होता है। सकारान्त मास शब्द चन्द्र के अर्थ प्रकाश करता है। इसका यह काल है। इस लिये इसको मास कहते हैं। चन्द्र जो पंदरह कला की क्षयवृद्धि के द्वारा मास की प्रवृत्ति होती है। यदि वा इस 'मास' शब्द सौर और सावन मास के लिये भी प्रयुक्त होता है तब परिमाण अर्थ को प्रकाश करने वाला मस धातु से मास शब्द की निष्पत्ति होती है। जितना काल से चन्द्र की वृद्धि और क्षय को परिमापित किया जाता है इतना काल चान्द्रमास के रूप में कहा जाता है। अथवा चन्द्र की वृद्धि और क्षय के द्वारा जो माप किया जाता है यह मास होता है। सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है—

"अपनी कला के क्षय और वृद्धि के द्वारा परिमित होता है जो काल वह मास कहा जाता है। तीस तिथिओं की समष्टि से उसकी उत्पत्ति होती है।" सूर्य की राशिगति का माप नहीं किया जाता है उसको सौर मास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं। तीस अहोरात्र की पूर्त्ति जहाँ होती वह सावन मास होता है। इस लिये ब्रह्मसिद्धान्त में कहा है—

चान्द्र मास का प्रारंभ शुक्लपक्ष में और समाप्ति अमावस्या में होती है। तीस अहोरात्र से सावन मास होता है। एकराशि में सूर्य की स्थिति जितना काल तक होती है इतना काल भास्कर संबन्धि सौर मास होता है।

कुछ विद्वान् नक्षत्रों के संक्रमण से भी नक्षत्रमास को मानते हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा है—सभी नक्षत्रों की एक परिवृत्ति से नाक्षत्र मास होता है। वही पर भी सताइस संख्यक अहोरात्र जिस काल को मापते हैं, उसको मास कहते हैं। उसका नाम नाक्षत्र मास होता है। नक्षत्रों की संख्या सताइस होती है। इसलिये सताइस संख्या की आवश्यकता यहाँ होती है। मेष प्रभृति राशियों की आदि और समाप्ति के द्वारा सौर मास की आदि और समाप्ति मानी जाती है।

अस्य वाक्यस्यायमर्थः। अस्ति किञ्चिदुत्सर्गिणामयनं नाम सत्रम्। तच्च गवामयनस्य विकृतिः। अतो द्वादशमासेष्वनुष्ठेयम्। प्रकृतावेकैकस्मिन् मासे त्रिंशत्स्वहस्सु सोमयागविशेषाणां त्रिंशतामनुष्ठेयत्वान्न किञ्चिदप्यहरुत्स्रष्टुं शक्यते। तद्वद् विकृतावपि प्राप्तौ प्रतिमासमेकैकस्मिंस्तस्मिन् सोमयागपरित्यागो विधीयते। तत्र कतमदहस्त्यज्यतामिति वीक्षायामिदमुच्यते। अमावास्यायामनुष्ठेयेन यागेन पूर्वमासं परिसमाप्योत्तरस्यादिभूतमहस्त्यज्यतामिति विधायार्थवादे प्रसिद्धवाचिना हिशब्देन मासस्यामावास्यान्तत्वं प्रत्यक्षदृष्टवत् सर्वेषां सम्मतमिति द्रढयति। एवं पौर्णमासीवाक्येऽपि योज्यमिति।

पूर्णमास्यन्तत्वे श्रुतेः कटाक्षो भूयान्। "यो वै पूर्ण आसिञ्चती"-त्यादिना, "यज्ञेन यज्ञं प्रत्यवरोहन्ती" त्यन्तेन अर्थवाद-प्रपञ्चेन सदृष्टान्तान्वयव्यतिरेकयुक्तेन प्रपञ्चितत्वात्।

ननु नोदाहृतं वाक्यं मासान्तस्य नियामकम्, अतिप्रसङ्गात्। तथाहि तस्यैव अनुवाकस्याऽऽदौ पक्षान्तरमुपन्यस्तम्। षडहैर्मासान् संपाद्याहरुत्सृजन्ति षडहैर्मासान् संपश्यन्तीति। तत्र पूर्वन्यायेन षष्ठमहर्मासान्त इति प्रसज्यते।

अथ मन्यसे षडहैरिति बहुवचननिर्देशात् पञ्चभिः षडहैरिति व्याख्यायां न कोऽपि विरोध इति। एवमप्यन्यत्रातिप्रसङ्गो दुर्वारः। तथा च वाक्यान्तरं श्रूयते अर्धमासैर्मासान् संपाद्याहरुत्सृजन्ति अर्ध-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मासैर्मासान् संपश्यन्तीति। अत्रैकैकार्धमासस्वीकारे पक्षस्य मासत्वप्रसङ्गः।

पुरुष की इच्छा के अनुसार सावन मास की प्रवृत्ति होती है। नाक्षत्र-मास में नक्षत्र नियामक होता है। चान्द्रमास विकल्प रूप से दर्शान्त और पूर्णिमान्त होता है। इस लिये वेद में सुना है—अमावास्या के द्वारा मास को संपादन करके इसी के द्वारा ही मास को जानते हैं। पूर्णिमा के द्वारा मास को संपादन करके इसी के द्वारा ही मास को जानते हैं।

इस वाक्य का आशय यह है, यथा—उत्सर्गिणामयन नाम से एक सत्र है। यह गवामयन सत्र की विकृति है। अतः बारहमासों में इसका अनुष्ठान होता है। प्रकृतिभूत सत्र में एक-एक मास के तीस दिनों में तीस सोमयागों का अनुष्ठान होता है। इस लिये कुछ दिन छोड़ दिया जा सकता है। विकृति में भी यह नियम लागू होता है। हर महिने में एक-एक सोम याग छोड़ दिया जाय। तब कितना दिन छोड़ दिया जा सकता है इसके बारे में कहा है कि अमावास्या में होने वाला याग से पूर्वमास को समाप्त करके उत्तर मास का पहला दिन छोड़ दिया जाता है—ऐसे विधान करके अर्थवाद में प्रसिद्ध "हि" शब्द के द्वारा मास का अन्तिम दिन अमावस्या है ऐसा कहा गया है। इसी तरह पूर्णिमा के पक्ष में भी लगाना होगा।

किन्तु पूर्णिमा में समाप्त होने वाला मास के बारे में श्रुति में ("यो वै") इसी तरह अनेक प्रमाण मिलते हैं। अन्वय-व्यतिरेकभाव से (यज्ञेन यज्ञं) इस अर्थवाद के द्वारा प्रमाणित होता है।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि अतिप्रसंगता के कारण उदाहृत वाक्य मासान्त के लिये नियामक नहीं होता है। इस अनुवाक पक्षान्तर के रूप में उपन्यस्त हुआ था। "षडहै र्मासान्" इस वाक्य के द्वारा पूर्व न्याय से छवां दिन मासान्त के रूप में परिगणित होता है।

इस वाक्य में बहुवचनान्त पद के प्रयोग से कोई विरोध नहीं होता है। इस प्रकार अन्यत्र भी जहाँ विरोध आता है वह भी परित्याज्य है। वहाँ वाक्यान्तर में अर्धमास के द्वारा मास की समाप्ति पाई जाती है। वहाँ अर्ध-मास शब्द से पक्ष की परिगणना होती है और इसके द्वारा मास का प्रसंग आ जाता है।

बह्वर्धमासस्वीकारे पक्षत्रयादेर्मासत्वप्रसङ्गः। किञ्च पूर्वोक्तोऽव्यतिप्रसङ्गो दुःपरिहर एव। षडहैरित्यत्र षडहपञ्चकस्वीकाराऽसंभवात्। एकैकस्य षडहस्य स्वीकर्त्तव्यत्वात्। उत्तरानुवाके षडहै र्मासान्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संपाद्य यत् सप्तममहस्तस्मिन्नुत्सृजेयुरिति सप्तमत्वविशेषणात् । तस्माद्तिप्रसङ्गद्वयग्रस्तत्वात् न पूर्वोक्तमासान्तः ।

अत्रोच्यते, श्रुतिस्मृति-लोकप्रसिद्धिभ्यो मासशब्दस्त्रिंशद्दिनसमूहे रूढ़ः । श्रुतयः संवत्सरायनर्त्तु विषयाः पूर्वमुदाहृताः । तत्र संवत्सरस्य द्वादशो भागो मासः । अयनस्य षष्ठो भागः । ऋतुषु द्वयोर्भागयोरन्य-तरः । स्मृतयस्तु—

मानै र्मासस्तु नाक्षत्रे सप्तविंशतिभिर्दिनैः ।
पारिशेषेषु मासेषु मासस्त्रिंशद्दिनैः स्मृतः ॥

चान्द्रः शुक्लादिदर्शान्त इत्यादयः । लोकेऽप्याविद्वदङ्गनागोपालं मासस्य त्रिंशद्दिनात्मकत्वं प्रसिद्धम् । एवं सत्यर्द्धमासैर्मासानि-त्यत्र मासशब्दो मासैकदेशं लक्षयति । षडहैरित्यत्र षडहः पञ्चक-विवक्षायां न काचिदनुपपत्तिः । एकैकषडहविक्षायां पूर्ववदेकदेश-लक्षणा । अतोऽतिप्रसङ्गाभावादुक्तवाक्याभ्यां मासस्याऽमावास्या-न्तत्वं पौर्णमास्यन्तत्वं च विकल्प्यते ।

तत्र प्रथमपक्षे "चान्द्रः शुक्लादिदर्शान्त" इत्यादि स्मृतय उदाहार्याः । शिष्टाचारबाहुल्यं च तत्र तत्र प्रसिद्धम् । द्वितीयपक्षस्योपोद्बलकं श्रुतिलिङ्गं स्मृतिलिङ्गं च । आथर्वणिकाः सृष्टिप्रकरणे संवत्सरदक्षिणो-त्तरायण-सृष्टिमाम्नाय मासपक्ष-सृष्टिमामनन्ति । मासो वै प्रजापतिः तस्य कृष्ण पक्ष एव रयिः शुक्लः प्राण इति । तत्र कृष्णपक्षस्य प्राथम्ये पाठो लिङ्गम् ॥

जहाँ अनेक अर्धमास स्वीकृत होते हैं वहाँ तीन पक्ष से एक मास हो जाता है । पूर्वोक्त मासान्त के बारे में कहा है—"षडहैः" इसी तरह कहने से पांच षडहों को स्वीकार करना संभव नहीं है क्योंकि एक-एक षडह का स्वीकार होता है । उत्तर अनुवाक में कहा है—षडहों के द्वारा मासों की समाप्ति करके जो सातवाँ दिन आता है, उसको छोड़ देते हैं । इसी तरह दो प्रकार की अति प्रसंगता के कारण पूर्वोक्त मासान्त ठीक नहीं है ।

यहाँ उत्तर ऐसा है—श्रुति, स्मृति और लोक प्रसिद्धि से मास के तीस दिन स्पष्ट होते हैं । तीस दिनों से एक मास ऐसी रूढ़ि भी है । संवत्सर, अयन और ऋतु के बारे में श्रुति यहाँ से पूर्वभाग में आलोचित की गयी है । वहां कहा है कि संवत्सर को बारह भागों से विभक्त करने से एक मास होता है । इसी तरह अयन को छ भागों से विभक्त करने से, ऋतु को दो भागों से विभक्त करने से मास की उत्पत्ति होती है । स्मृति में कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाक्षत्र मास सताइस दिन को लेकर प्रवर्तित होता है। इससे भिन्न प्रकार का मास तीस दिन को लेकर होता है।

चान्द्र मास शुक्ल पक्ष में प्रारंभ होकर अमावस्या में समापित होता है। इस लिये यह चान्द्रमास दर्शान्त कहा जाता है।

लोक में भी विद्वान् से लेकर गोपाल तक तीस दिनात्मक मास को व्यवहार करते हैं। जहाँ अर्धमास के द्वारा मास को चिह्नित करते हैं, वहाँ मास के एक देश कहा जाता है। "षडहैः" इसी तरह कहने से पाँच षडह को लेकर एक मास होता है, इसमें कोई आपत्ति नहीं आती। जहाँ एक-एक षडह की विवक्षा होती है वहाँ एकदेशलक्षणा होती है। अतः यहाँ अतिप्रसङ्गता के अभाव से दर्शान्त और पूर्णिमान्त भेद से मास दो प्रकार होकर विकल्प रूप में माना जाता है।

यहाँ शुक्ल पक्ष में प्रारम्भ होकर दर्श में मास की समाप्ति होती है। ऐसी स्मृति भी उदाहरणीय है। इसके समर्थक रूप में शिष्टाचार बहुशः मिलते हैं। दूसरा पक्ष में श्रुति लिंग और स्मृति लिग मिलते है। अथर्ववेद वाले सृष्टि प्रकरण में दक्षिणायन और उत्तरायण के द्वारा संवत्सर की सृष्टि के बारे में कहकर मास और पक्षसृष्टि के बारे में कहते है। मास प्रजापति होता है। कृष्णपक्ष इसकी सम्पत्ति और कृष्ण पक्ष प्राण होता हैं। यहाँ कृष्णपक्ष का पाठ पहला होता है। इस लिंग से यह मास दर्शादि और शुक्लान्त होता है।

स्मृतौ महालयप्रकरणे पठ्यते—

अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिने दिने ॥ इति

तत्र यदि दर्शान्तो मासो विवक्ष्येत तदा भाद्रपदकृष्णपक्ष इत्युच्येत। न त्वेवमुक्तम्। आश्विनमासान्तर्गतत्वमिहोच्यते। तच्च कृष्णपक्षादिपूर्णिमान्तत्वे संभवति। तथा च जयन्तीप्रकरणे स्मर्यते—

मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके।
भवेत् प्रजापते ऋक्षं जयन्ती नाम सा स्मृता ॥ इति च

अत्रापि जयन्त्या भाद्रपदान्तर्गतत्वं मासस्य पूर्णिमान्तत्वं गमयति। शिष्टाचारविशेषादपि पूर्णिमान्तत्वं द्रष्टव्यम्। यतिधर्मप्रकरणे स्मर्यते—ऋतुसन्धिषु वापयेदिति। तत्र यदि दर्शान्तविवक्षा स्यात्तदा दर्शस्यैव सन्धित्वात्तत्र वपनं कुर्युः, कुर्वन्ति तु पूर्णिमायाम्। तस्माद्दर्शान्तत्वपूर्णिमान्तत्वयोः समो विकल्पः। अनुष्ठाने तु तत्तद्वचनविशेषाच्छिष्टाचाराच्च व्यवस्था द्रष्टव्या। वचनविशेषस्तु ब्रह्मसिद्धान्ते पठ्यते—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमावास्यापरिच्छिन्नो मासः स्याद् ब्राह्मणस्य तु ।
संक्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः ॥ इति

दर्शान्तानां-पूर्णिमान्तानां वा मासविशेषाणां चैत्रादिसंज्ञा नक्षत्र-प्रयुक्ता । यस्मिन् मासे पूर्णिमा चित्रानक्षत्रेण युज्यते स चैत्रः । एवं वैशाखादिषूह्नेयम् । चित्राविशाखादियोगस्योपलक्षणत्वात् क्वचिच्चित्रादिप्रत्यासन्नस्वात्यनुराधादियोगेऽपि चैत्रवैशाखादिसंज्ञा न विरुद्ध्यते । चैत्रादिश्रवणान्तानां चित्रादिनक्षत्रद्वन्द्वं प्रयोजकम् । भाद्रपदाश्वयुजोस्तु शतभिषग्रेवत्यादिकं त्रिकम् ।

स्मृति में महालय प्रकरण में कहा है—

आश्विनमास के कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन श्राद्ध करणीय है ।

यहाँ अगर दर्शान्त मास विवक्षित हो तो भाद्रपद मास का कृष्ण पक्ष हो जाता । किन्तु ऐसा तो नहीं होता है । आश्विनमास में अन्तर्भूत ही होता है । इस स्थल में यह मास कृष्ण पक्ष से प्रारम्भ होकर पूर्णिमा में समाप्त होता है । इसी तरह जयन्ती प्रकरण में धर्मशास्त्र में कहा है—

भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष अष्टमी के अधरात्रि समय में प्रजापति नक्षत्र होने से ही जयन्ती होती है ।

यहाँ जयन्ती व्रत के द्वारा भाद्रपद के अन्तर्गत होता है और मा स पूर्णिमान्त हो जाता है । विशेष शिष्टाचार के अनुसार पूर्णिमान्त मास ही होता है । यतिधर्म प्रकरण में कहा है—ऋतु सन्धि में वापन करना है । यहाँ अगर दर्शान्त मास की विवक्षा होगी तो दर्श ही सन्धि काल होगा और वहाँ वापन करना होगा । किन्तु पूर्णिमा में वापन करते हैं । इसी के कारण दर्शान्त और पूर्णिमान्त के रूप में मास का विकल्प स्वरूप माना जाता है । अनुष्ठानक्षेत्र में विशेष वचन के अनुसार और शिष्टाचार को लेकर मास की व्यवस्था होती है । विशेष वचन ब्रह्मसिद्धान्त में मिलता है ।

अमावास्या में समाप्त होने वाला मास ब्राह्मण के लिये, संक्रान्ति में समाप्त होने वाला मास क्षत्रिय के लिये और पूर्णिमा में समाप्त होने वाला मास वैश्य के लिये प्रयुक्त होते हैं ।

दर्शान्त हो या पूर्णिमान्त हो, सब प्रकार मासों की संज्ञा चित्रा प्रभृति नक्षत्रों को लेकर प्रवर्त्तित होती है । जिस मास में पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र के साथ संयुक्त होती है वह पूर्णिमा चैत्र पूर्णिमा होती है । इस प्रकार बैशाख प्रभृति मासों के विषय में व्यवस्था होती है । चित्रा विशाखा प्रभृति नक्षत्रों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का योग उपलक्षण होता है। क्योंकि चित्रा के निकटवर्त्ती होने वाली स्वाती या अनुराधा के योग से भी चैत्र या वैशाख प्रभृति संज्ञा होने पर कोई विरोध नहीं है। चैत्र मास से लेकर श्रावणमास तक चित्रा प्रभृति नक्षत्र के द्वन्द्व प्रयोजक होता है। (यथा—चैत्रमास के लिये चित्रा और स्वाती, वैशाख मास के लिये विशाखा और अनुराधा, ज्येष्ठमास के लिये ज्येष्ठा और मूला, आषाढ़मास के लिये पूर्वाषाढा और उत्तराषाढ़ा श्रावणमास के लिये श्रवणा और धनिष्ठा) भाद्रपद और आश्विन मास के लिये शतभिषादि तीन नक्षत्रों का प्रयोजन क्रमानुसार होता है। (यथा—भाद्रपद के लिये शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद, आश्विन मास के लिये रेवती, अश्विनी और द्विजा) ॥

कार्त्तिकादिमाघान्तानां कृत्तिकादिद्वन्द्वम्। फाल्गुनस्य तु पूर्वफाल्गुन्यादित्रयमिति विवेकः। तथा च संकर्षणकाण्डे—

द्वे द्वे चित्रादितारार्णां परिपूर्णेन्दुसङ्गमे।
मासाश्चैत्रादयो ज्ञेयास्त्रिकैः षष्ठान्त्यसप्तमाः ॥ इति

अन्यत्रापि—

अन्तोपान्तौ त्रिभौ ज्ञेयौ फाल्गुनस्य त्रिभो मतः।
शेषा मासा द्विभा ज्ञेयाः कृत्तिकादिव्यवस्थया ॥ इति

तत्र माससामान्यकर्त्तव्यानि तैत्तिरीया आमनन्ति—"मासि मासि पितृभ्यः क्रियन्ते पृष्ठान्युपयन्ति मासि मास्यतिग्राह्य गृह्यन्त" इति। पृष्ठानि स्तोत्रविशेषाः[1]। अतिग्राह्या ग्रहविशेषाः। शाखान्तरेऽपि कुण्डपायिनामयने—"मासमग्निहोत्रं जुहोतीति।

मासविशेषानुपजीव्यं कर्त्तव्यविशेषं कल्पसूत्रकाराः पठन्ति—

"अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवतीति फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां चैत्र्यां वा वैश्वदेवेन यजते। ततश्चतुर्षु मासेषु आषाढ्यां श्रावण्यां वोदवसाय वरुणप्रघासै र्यजेत" इत्यादि। स्मार्त्ताश्च पद्मपुराणोक्तगौरीव्रतादयश्चैत्रमासादिषु क्रमेण कर्त्तव्या। ते च हेमाद्रौ व्रतखण्डे द्रष्टव्याः। तथा विष्णुधर्मोत्तरे तिलदानादीनि माघमासादिषु कर्त्तव्यानि। तानि च दानखण्डे द्रष्टव्यानि। चान्द्रसौरसावनमासानां मध्ये कस्यचित् क्वचित् प्रशस्तत्वं द्रष्टव्यम्। तदुक्तं ज्योतिर्गणे—

सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः।
आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥ इति

इति शुद्धमासनिर्णयः ॥

---

१. प्रगीतमन्त्रसाध्यगुणिनिष्ठगुणाभिधानं स्तोत्रम्। अप्रगीतत्वे शस्त्रम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्त्तिक से माघ तक चार मास के लिये कृत्तिका प्रभृति नक्षत्रों का द्वन्द्व प्रयोजक होता है। (यथा-कार्तिक के लिये कृत्तिका और रोहिणी, मार्गशीर के लिये मृगशीरा और आर्द्रा, पौष के लिये पुनर्वसु और पुष्या, माघ के लिये अश्लेषा और मघा)। फाल्गुन के लिये पूर्व फाल्गुनि, उत्तरा फाल्गुनि और हस्ता नक्षत्रों का प्रयोजन होता है। इसके समर्थक वाक्य संकर्षण कांड में उपलब्ध होता है यथा "द्वे द्वे" इत्यादि चित्रा प्रभृति दो-दो नक्षत्रों को लेकर क्रमानुसार चैत्र प्रभृति मासों का नामकरण होता है। कहीं-कहीं तीन नक्षत्रों को लेकर भी एक गण निर्माण करके भी मासों की नामावली प्रस्तुत होती है। दूसरा स्थान में कहा गया है कि अन्त और उपान्त मासों के तीन नक्षत्रों को लेकर नामित होते हैं। फाल्गुनमास के लिये तीन नक्षत्र नियत होते हैं। कृत्तिका से लेकर अन्यों मासों के लिये दो-दों नक्षत्र नियत हैं।

तैत्तिरीय शाखा में मासों में साधारण कर्त्तव्य कर्मों की सूचना मिलती है। यथा प्रत्येक मास में पितृगण के लिए कृत्य किया जाता है। पृष्ठ का गान होता है। अतिग्राह्य का ग्रहण होता है। पृष्ठ एक स्तोत्र विशेष और अतिग्राह एक ग्रहविशेष होता है। भिन्न शाखा में कुण्डपायिनामयन में मासव्यापी अग्निहोत्र के हवन के लिये विधि वाक्य मिलता है।

यथा—"मासमग्निहोत्रं जुहोती"ति।

कल्पसूत्रकार विशेष विशेष मास में विशेष विशेष कर्मों का अनुष्ठान के लिये प्रचोदित करते हैं। जैसे—चातुर्मास्य इष्टि में चार पर्वों का अनुष्ठान होता है। वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साफ मेध और सुनासिरीय। फाल्गुन और चैत्रपूर्णिमा में वैश्वदेव पर्व का अनुष्ठान होता है। आषाढ़ और श्रावण पूर्णिमा में वरुणप्रघास का अनुष्ठान होता है। स्मार्त्त लोग पद्मपुराणोक्त गौरी व्रत प्रभृति को चैत्रप्रभृति मासों में क्रमानुसार करते हैं। इस विषय में हेमाद्रि के चतुर्वर्ग चिन्तामणि का व्रतखंड अनुसन्धेय है। इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तर में माघमास में तिलदान करने की विधियों का वर्णन है। इन्हें वहाँ दान खण्ड में देखना चाहिए। चान्द्र, सौर और सावन मासों में कुछ कुछ कृत्य के लिये विशेष प्रकार मास की प्रशस्ति मिलती है। ज्योतिशास्त्र में इसके बारे में कहा गया है कि—

विवाह के लिये सौर मास, यज्ञ के लिये सावन मास और पितृकार्य के लिए चान्द्र मास प्रशस्त है।

इस प्रकार शुद्ध मास का निर्णय हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ मलमासनिर्णयः

तस्य स्वरूपं ब्रह्मसिद्धान्तेऽभिहितम्—

चान्द्रो मासो ह्यसङ्क्रान्तो मलमासः प्रकीर्त्तितः ॥ इति

मलत्वं च कालाधिक्यात् । तथा च गृह्यपरिशिष्टे—

मासं विदन्ति कालस्य मासं कालविदोऽधिकम् ॥ इति

कालाधिक्यं च विष्णुधर्मोत्तरे दर्शितम्—

सौरेणाब्दस्तु मानेन यदा भवति भार्गवः ।
सावने तु तथा माने दिनषट्कं न पूर्यते ॥
दिनरात्राश्च ते राम प्रोक्ताः संवत्सरेण षट् ।
सौरसंवत्सरस्यान्ते मानेन शशिजेन तु ॥
एकादशातिरिच्यन्ते दिनानि भृगुनन्दन ।
समाद्वये साष्टमासे तस्मान्मासोऽतिरिच्यते ॥
स चाधिमासकः प्रोक्तः काम्यकर्मसु गर्हितः ॥ इति ।

अयमर्थः—सौरसंवत्सरः षड्भिर्दिनैः सावनादतिरिच्यते । एकादशभिर्दिनैश्चान्द्रादतिरिच्यते । तथा च चान्द्रसंवत्सरद्वयात् सौरसंवत्सरद्वयं द्वाविंशत्या दिनैरधिकं भवति । तत ऊर्ध्वं सौरं मासाष्टकं चान्द्रान्मासाष्टकान् सार्द्धैः सप्तभिर्दिनैरतिरिच्यते । तथा च मिलित्वा दिनार्धन्यूनो मासो भवति । सोऽयमधिको मास इति । अवशिष्टदिनार्धपूरणं च यथोक्तकालादूर्ध्वं षोडशभिर्दिनैः संपद्यते ।

यहाँ से मलमास का निर्णय होगा । उसका स्वरूप ब्रह्मसिद्धान्त में कहा है—असंक्रान्त चान्द्रमास मलमास होता है । काल का आधिक्य से मल की उत्पत्ति होती है । इस तत्त्व के समर्थक वचन गृह्यपरिशिष्ट में उपलब्ध है-- कालविद् लोग इस प्रकार मास को अधिक मास के रूप में ग्रहण करते हैं ।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में काल के आधिक्य के बारे में कहा गया है कि सावन संवत्सर का छ दिन और चान्द्रसंवत्सर से ग्यारह दिन अधिक होते हैं । इस प्रकार दो चान्द्रसंवत्सर से दो सौर संवत्सर का बाईस दिन अधिक होता है । इसके बाद आठ चान्द्रमासों से आठ सौर मासों का सात और आधा दिन अधिक होते हैं । इसलिये मिलाकर आधा दिन न्यून होकर एक मास अधिक हो जाता है। इसको अधिक मास कहते हैं । अवशिष्ट दिनार्ध का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूरण सोलह दिन में हो जाता है इस अधिक मास में काम्यकर्मों का अनुष्ठान नहीं होता है।

इसका अर्थ यह है—सावन संवत्सर से सौर संवत्सर का काल परिमाण छ दिन अधिक है। चान्द्रसंवत्सर से भी ग्यारह दिन अधिक है। इस प्रकार दो चान्द्र संवत्सरों से दो सौर संवत्सरों का कालपरिमाण बाईस दिन अधिक है। इसके बाद आठ चान्द्र मासों से आठ सौर मासों का काल परिमाण सात दिन और एक आधा दिन अधिक होता है। कुल मिलकर एक दिन का आधा न्यून होकर एक मास अधिक होता है। यह अधिक मास के नाम से अभिहित है। अवशिष्ट आधा दिन को पूरण करने के लिये सोलह दिनों की आवश्यकता होती है।

अत एव सिद्धान्तेऽभिहितम्—

द्वात्रिंशद्भिर्गतै र्मासै र्दिनैः षोडशभिस्तथा।
घटिकानां चतुष्केण पतति ह्यधिमासकः॥ इति

न च कालाधिक्यमात्रेण मलत्वे तिथ्यादिवृद्धेरपि मलत्वं प्रसज्ज्येतेति शङ्कनीयं कालाधिक्ये सति नपुंसकत्वेन मलत्वाङ्गीकारात्। नपुंसकत्वं च ज्योतिःशास्त्रेऽभिहितम्—

असङ्क्रान्तो हि यो मासः कदाचित्तिथिवृद्धितः।
कालान्तरात् समायाति स नपुंसक इष्यते॥ इति।

पुरुषस्य सूर्यस्य तत्राभावान्नपुंसकत्वम्। तदपि तत्रैवोक्तम्—

अरुणः सूर्यो भानुस्तपनश्चन्द्रो रविर्गभस्तिश्च।
अर्यमा हिरण्यरेता दिवाकरो मित्रविष्णू च॥
एते द्वादश सूर्या माघाद्येषूदयन्ति मासेषु।
निःसूर्योऽधिकमासो मलिम्लुचाख्यस्ततः पापः॥
मासेषु द्वादशादित्यास्तपन्ते हि यथाक्रमम्।
नपुंसकेऽधिके मासे मण्डलं तपते रवेः॥ इति।

मलिम्लुचत्वं च तस्य राक्षसैस्तस्करैराक्रान्तत्वात्। तदाह शातातपः—

वत्सरान्तर्गतः पापो यज्ञानां फलनाशकृत्।
नैर्ऋतै र्यातुधानाद्यैः समाक्रान्तो विनाशकैः॥
मलिम्लुचैः समाक्रान्तं सूर्यसङ्क्रान्तिवर्जितम्।
मलिम्लुचं विजानीयात् सर्वकर्मसु गर्हितम्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः सिद्धान्त में कहा है—बतीस मास सोलह दिन चार घटिका के अन्तर अधिक मास या अधिमास होता है। यदि कहो कि कालाधिक्य से मलमास होता है, तिथि की वृद्धि से तिथिओं के मलत्व आता है। तो ऐसी बात नहीं क्योंकि कालाधिक्य होने पर मलमास को नपुंसक कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र में इस मास को नपुंसकमास कहते हैं। कभी-कभी तिथि वृद्धि के कारण जो असङ्क्रान्त मास होता है। उसको नपुंसक मास कहते हैं। क्योंकि मासों का पुरुष है सूर्य, सूर्य की गति के अनुसार संक्रान्ति होती है। जिस मास में सक्रान्ति नहीं है, उस मास में संक्रान्ति के सम्बन्धी सूर्य के अभाव से नपुंसकता आ जाती है।

ज्योतिष शास्त्र में कहा गया है कि—अरुण, सूर्य, भानु, तपन, चन्द्र, रवि, गभस्ति, अर्यमा, हिरण्यरेता, दिवाकर, मित्र और विष्णु—ये बारह सूर्य हैं। माघमास से लेकर उनकी प्रवृत्ति होती है। जो मास अधिक होता है उसमें इनकी प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिये अधिक मास को मलिम्लुच या पापमास कहते हैं। बारह मासों से क्रमानुसार आपके आदित्य के प्रताप प्रकाश करते हैं। नपुंसक मास में केवल सूर्य के मंडल तप्त होता है।

राक्षस और तस्करों के द्वारा आक्रान्त होने से इस मास को मलिम्लुच भी कहते हैं। इस सिद्धान्त के समर्थक शातातप के वचन मिलता है।

मलमास में यज्ञादि के अनुष्ठान बाधित होने से यज्ञादि के विनाश करने वाला यह मास वत्सर के बीच में एक पाप के स्वरूप है। नैऋत और राक्षसों के द्वारा आक्रान्त होने पर सूर्य इस मास में संक्रमित नहीं होते हैं। इसलिये यह मास मलिम्लुच अर्थात् मलीन हो जाता है और सब प्रकार कर्मों का अनुष्ठान के लिये यह गर्हित माना जाता है।

ननु द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैरित्यनेन वचनेन येयं कालेयत्ता दर्शिता सा वचनान्तरेण विरुद्ध्यते। तथा च काठकगृह्यम्—

यस्मिन्मासे न सङ्क्रान्तिः सङ्क्रान्तिद्वयमेव वा।
मलमासः स विज्ञेयो मासे त्रिंशत्तमे भवेत्॥ इति।

नाऽयं दोषः द्वयोर्वचनयोर्भिन्नविषयत्वात्। ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धं मध्यममानमाश्रित्य द्वात्रिंशद्भिरिति वचनं प्रवृत्तम् "यस्मिन्मास" इति तु स्फुटमानमाश्रित्य प्रवृत्तम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ननु मध्यममानप्रवृत्तोऽधिकमासो ज्योतिःशास्त्रव्यवहार एवोपयुज्यते न तु श्रौतस्मार्त्तयोः। तस्य शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तत्वनियमासम्भवात्। षोडशभिर्दिनैर्घटिकाचतुष्टयेन चोपेतेषु द्वात्रिंशन्मासेषु गतेषु सोऽधिमासो विधीयते। तत्र यदि दर्शान्ता मासा विवक्षितास्तदा कृष्णद्वितीयायां घटिकाचतुष्टये गतेऽधिमासस्योपक्रमः प्रसज्ज्येत। अथानियतोपक्रमावसाना द्वात्रिंशन्मासा विवक्षेरंस्तदापि शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तो मास इत्येष नियमो न लभ्यते। श्रौतस्मार्त्तव्यवहारोपयोगिनि त्वधिकमासेऽस्ति नियमः। तथा च लघुहारीत—

इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः परिकीर्त्तितः।
अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ॥
तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छेत् कदाचन।
आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः॥ इति।

अयमर्थः—दर्शपूर्णमासयाजिना शुक्लप्रतिपदि दर्शेष्टिदेवाविन्द्राग्नी हूयेते। कृष्णप्रतिपदि तु पूर्णमासेष्टिदेवावग्नीषोमौ। अमावास्यायां पिण्डपितृयज्ञदेवौ पितृसोमकौ। तत्रैवं सति शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तो मासः। सङ्क्रान्तिरहितोऽधिमास इत्यर्थाल्लभ्यते इति। तस्मान्मध्यममानगणना श्रौर्त्तस्मार्त्तयो नोंपयुक्ता। बाढम्। तथापि कालाधिक्यान्मलमास इत्यस्मिन्नंशे तदुदाहरणमित्यदोषः। यत्तु "मासे त्रिंशत्तमे भवे" दित्युदाहृतं तच्छ्रौतस्मार्त्तयोरुपयुज्यते स्फुटमानसिद्धत्वात्।

यहाँ एक प्रश्न आता है—बतीस मासों के अन्तर एक अधिक मास आता है। इसमें जो काल की इयत्ता या सीमा की सूचना मिली वह अलग वचन से विरुद्ध हो जाती है। काठकगृह्य में कहा है—

जिस मास में संक्रान्ति नहीं है या दो संक्रान्ति होती हैं, तीस दिनों के अन्तर वह मास आता है, उसको मलमास कहते हैं।

इसमें कोई दोष नहीं है। क्योंकि ये दोनों वचन अलग-अलग विषय में व्यवस्थित होते हैं। ज्योतिःशास्त्र में दो प्रकार का मान प्रामाणिक है। बत्तीस मास को कहने वाला वचन मध्यममान के अनुसार और तीस मास को कहने वाला वचन स्फुट मान के अनुसार नियन्त्रित होते हैं। यहाँ एक प्रश्न आता है कि मध्यम मान की प्रवृत्ति से होने वाला अधिक मास ज्योति-शास्त्र व्यवहार में आता है लेकिन श्रौतस्मार्त्त कर्म में नहीं। इसमें मास की प्रवृत्ति शुक्लप्रतिपद से प्रारंभ होकर दर्शके अन्त तक नियम से नहीं होती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बत्तीस मास सोलह दिन चार घटिका के अन्तर अधिमास होता है। यहाँ अगर दर्शान्त मास विवक्षित होता तो कृष्ण द्वितीया में चार घटिका के बाद अधिमास का उपक्रम होता। वहाँ अगर बत्तीस मास के विषय में अनियत उपक्रम होने वाला नियम को विवक्षित करेंगे तो शुक्लप्रतिपद से लेकर दर्शान्त मास तक मास का अवधि-विषयक नियम नहीं मिलेगा। श्रौतस्मार्त्त कर्म में व्यवहार के लिये उपयोगी होता है, जो अधिक मास उसमें नियम है।

लघु हारीत ने कहा है—

जिस समय में इन्द्र और अग्नि के लिये हवन किया जाता है, वह काल मास का आदि होता है। मास के बीच में अग्नि और सोम के लिये और मास की समाप्ति में पितृ और सोम के लिये हवन किया जाता है। इसको अतिक्रम करके अगर रवि कहीं पर चले जाते हैं तो पहला मास मलमास और दूसरा मास प्राकृत अर्थात् शुद्ध मास होता है।

इसका आशय यह है कि—दर्शपूर्णमास याग करने वाला यजमान शुक्ल प्रतिपदा में दर्शेष्टि की देवता इन्द्र और अग्नि के लिये होम करता है।

कृष्ण प्रतिपदा में पूर्णमासेष्टि की देवता अग्नि और सोम के लिये होम करता है। अमावास्या में पिण्डपितृयज्ञ की देवता पितृ और सोम के लिये भी होम करता है। ऐसे होने से शुक्ल प्रतिपदा से लेकर दर्शके अन्तिम तक होने वाला मास माना जाता है। यहाँ संक्रान्ति रहित मास अधिमास अर्थात् उपलब्ध होता है। इस कारण से मध्यममान की गणना श्रौत और स्मार्त्त के लिये उपयुक्त नहीं होता है। यह अगर ठीक है तो भी कालाधिक्य से मलमास की उत्पत्ति होती है, इसके लिये उदाहरण में कोई दोष नहीं है। 'तीस मासों से अधिक मास होता है' इस तात्पर्य को प्रकाश करने वाला वाक्य श्रौत और स्मार्त्त कर्म के लिये उपयुक्त है। क्योंकि स्फुटमान से ही इस मास की गणना सिद्ध होती है।

तादृशं च अधिमासमुदाहरामः। अष्टपञ्चाशद्युक्तशतद्वयाधिके शकवर्षाणां सहस्रे गते सति समनन्तरभावी योऽयमीश्वरसंवत्सरस्तस्मिन् श्रावणमासोऽधिकः। ततः पूर्वभावी यो भावसंवत्सरस्तस्मिन् फाल्गुनमासोऽधिकः। तयोः संवत्सरयोर्मध्यवर्त्तिनौ यौ युव[1]धातृसंवत्सरौ तदाद्याश्चतुर्विंशतिमासा ईश्वरसंवत्सरे च चत्वारश्चैत्राद्याः। तथा सति यथोक्तफाल्गुनमारभ्य गणनायां यथोक्तः श्रावणमासस्त्रिंशत्तमो भवति। अनेन न्यायेन षष्टिमासात्मकेषु पञ्चसु वत्सरेषु द्वावधिकमासौ संपद्येते। तदुक्तं महाभारते—

१. पूष इति पाठान्तरम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावधिमासकौ।
तेषां कालातिरेकेण ग्रहाणामतिचारतः ॥ इति।

नन्वधिकमासस्य क्वचित्त्रिंशत्तमत्वं व्यभिचरति न्यूनाधिकसंख्यायाऽपि दर्शनात्। तथा हि—यथोक्तेश्वरसंवत्सरोत्तरभाविनि चित्रभानु संवत्सरे वैशाखमासोऽधिकः। तत् उत्तरभाविनि तारणसंवत्सरव्यवहिते पार्थिवसंवत्सरे भाद्रपदमासोऽधिकः। तथा च तस्यैकोनत्रिंशत्त्वं संपद्यते। तथा खरसंवत्सरे वैशाखमासोऽधिकः नन्दनसंवत्सरव्यवहिते विजयसंवत्सरे भाद्रपदमासोऽधिक इति। तत्राप्येकोनत्रिंशत्त्वम्। तथा दुर्मुखसंवत्सरे श्रावणमासोऽधिकः। हेमलम्बिविलम्बि-संवत्सरद्वयव्यवहिते विकारिसंवत्सरे ज्येष्ठोऽधिकः तथा च पञ्चत्रिंशत्वं संपद्यते। 'तस्मान्मासे त्रिंशत्तमे भवे'दित्येतदयुक्तं भवति। नायं दोषः त्रिंशत्तमस्य उपलक्षण[1]त्वेनाङ्गीकारात्। उदाहरणप्रदर्शनार्थमेतदुक्तमित्यविरोधः।

इसके लिए उदाहरण यह है। १२५८ शकाब्द के बाद होनेवाला ईश्वर संवत्सर में श्रावणमास अधिक था। इससे पूर्व भाव संवत्सर में फाल्गुनमास अधिक था। इन संवत्सरद्वय के मध्यवर्त्ती जो युव और धातृसंवत्सर हैं, इनके चौबीस मास अर्थात् दो संवत्सर में फाल्गुन से माघ तक बारह मास + फाल्गुन से माघ तक बारहमास = चौबीस मास + फाल्गुन + ईश्वर संवत्सर के चैत्र से लेकर चार मास मिलाकर उनतीस मास होते हैं। तीसवाँ मास श्रावणमास ही होता है। इस न्याय से साठमासात्मक पांच वत्सरों में दो अधिक मास होते हैं। इस लिये महाभारत में कहा है कि—

पांच-पांच वत्सर में दो-दो अधिक मास होते हैं। ग्रहों के अतिसार से और कालाधिक्य से भी यह अधिक मास होता है।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि कहीं पर भी अधिक मास का काल तीस दिन न होकर व्यभिचार से कम होता है, अधिक भी होता है। ईश्वर संवत्सर के अनन्तर चित्रभानुसंवत्सर में बैशाख मास अधिक था। इसके बाद होनेवाला तारण संवत्सर को छोड़कर पार्थिव संवत्सर में भाद्रपदमास अधिक था। यहाँ अधिक मास उनतीस तम मास होता है। इसी तरह खर संवत्सर में बैशाखमास अधिक था। बीच में नन्दन संवत्सर को छोड़कर विजय संवत्सर में भाद्रपद मास अधिक हुआ। यहाँ भी उनतीस मास अधिक होता है।

---

१. स्वबोधकत्वे सति स्वेतरवोधकत्वमुपलक्षमिति प्राञ्चः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी तरह दुर्मुख संवत्सर में श्रावणमास अधिक था। हेमलम्बी और बिलम्बी इन दोनों को छोड़कर विकारी संवत्सर में ज्येष्ठमास अधिक था। यहाँ पैंतीसतम मास अधिक था। इस लिये तीसतम मास ही अधिक होगा, यह ठीक युक्ति नहीं है। सिद्धान्ती यहाँ कहता है कि इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि तीस मास यहाँ उपलक्षण के रूप में अङ्गीकृत है। उदाहरण प्रदर्शन करने के लिये तीस मास तक वचन यहाँ उदाहृत हुआ था।

इदमत्र विचार्यते। किमयं मलमासः स्वतन्त्र उत पूर्वस्य शुद्धमासस्य शेषः आहोस्विदुत्तरस्य शुद्धमासस्य शेष इति। न च काकदन्तपरीक्षेयमनुष्ठानानुपयोगादिति शङ्कनीयम्। प्रत्याब्दिकाद्यनुष्ठाने तद्विचारस्योपयुक्तत्वात्। तथा हि शुद्धाषाढशुद्धश्रावणयो र्मध्ये यदा मलमासस्तदा तस्य स्वातन्त्र्ये तस्मिन् प्रत्याब्दिकमेव न प्राप्नोति। पूर्वस्योत्तरस्य वा शेषत्वे शेषिणि मासे यत् प्रत्याब्दिकादि तस्य मलमासेऽप्यनुष्ठानं भवति "पितृकार्याणि चोभयो" रिति वचनात्। तस्मात् सार्थको विचारः।

तत्र स्वातन्त्र्यं तावद् ऋतुनिर्णये निरस्तम्। पारतन्त्र्येऽपि पूर्वशेषत्वं युक्तमिति केचिदाहुः। तत्रोपपत्तिं केचिदिच्छन्ति चोपन्यस्यन्ति च मेषादिसङ्क्रान्तयश्चैत्रादिसंज्ञानां प्रयोजिकाः।

तथा च ज्योतिःशास्त्रेऽभिहितम्—

मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः।
चैत्राद्यः स विज्ञेयः पूर्त्तिद्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः॥ इति।

यदा सवितर्येकराशिस्थे सति दर्शद्वयं पूर्यते तदानीमन्त्य उत्तरदर्शावसानको मासोऽधिमासो न तत्पूर्वदर्शावसानक इत्यर्थः। यदा शुद्धाऽऽषाढस्य बहुलचतुर्दश्यां दर्शे वा कर्कटसङ्क्रान्तिर्भवति, शुद्धश्रावममासस्य शुक्लपक्षे प्रतिपदि द्वितीयायां वा सिंहसङ्क्रान्तिस्तदा कर्कटसङ्क्रान्तियुक्तस्य शुद्धमासस्याषाढत्वं युक्तम्। तदीयदर्शस्य कर्कटस्थे रवावसितत्वात्। सिंहसङ्क्रान्तियुक्तस्यापि श्रावणत्वमुचितम्। तदीयदर्शस्य सिंहस्थे रवावसितत्वात् तेनैव न्यायेन तयोर्मध्यवर्त्तिनः सङ्क्रान्तिरहितस्य मासस्य दर्शः कर्कटस्थ एव रवौ पूर्यत इति पूर्वाषाढवदेतस्याप्याषाढत्वमुचितम्।

यहाँ एक विचार आता है—क्या यह मलमास स्वतन्त्र या पूर्व शुद्धमास के अवशेष या उत्तर शुद्धमास के अवशेष होता है। कुछ कर्म के अनुष्ठान के लिए अनुपयुक्त होने से यहाँ इसके बारे में विचार करना काकदन्त-परीक्षा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की तरह निरर्थक नहीं होता है क्योंकि प्रत्याब्दिक कर्म के लिए इसका उपयोग मिलता है। शुद्ध आषाढ़ और शुद्ध श्रावण के बीच में अगर मलमास होता तो उसमें स्वातन्त्र्य रहता। किन्तु प्रत्याब्दिक कर्म इसमें नहीं हो सकता। पूर्वमास का या उत्तर मास का अवशेष होने से पूर्व-उत्तर मास में होने वाला प्रत्याब्दिक श्राद्ध का अनुष्ठान मलमास में आता है। उभयमास में पितृकार्य करने के लिए वचन भी मिलता है। इस लिए इसके बारे में विचार करने की सार्थकता है।

ऋतु-निर्णय प्रकरण में इस मास का स्वातन्त्र्य निराकृत हुआ है। पूर्व-मास के अवशेष के रूप में कहने से इस अधिक मास की परतन्त्रता के बारे में युक्ति आती है। ऐसे कुछ पण्डित लोग कहते हैं। इसके समर्थक वचन और युक्ति भी मिलती है। सौरमास मेषादि के अनुसार चान्द्रमास चैत्रादि होते हैं।

ज्योतिशास्त्र में ऐसा कहा है—

एक राशि में रवि रहने के समय दो दर्शकी पूर्त्ति होने से यहाँ एक सौरमास में दो चान्द्रमास की पूर्त्ति हो गई। तब अन्तिम दर्श में होने वाला मास अधिमास होता है। किन्तु पूर्ववर्त्ती दर्श में समास होने वाला मास नहीं। जिस समय शुद्ध आषाढ़मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी या अमावास्या में कर्कट संक्रान्ति होती है, शुद्धश्रावणमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में या द्वितीया में सिंहसंक्रान्ति होती है उस समय कर्कटसंक्रान्ति युक्त शुद्धमास आषाढ़मास होता है क्योंकि उसकी अमावास्या की समाप्ति कर्कट में रवि की अवस्थिति के काल में हुई। सिंहसंक्रान्ति युक्त मास को श्रावणमास कहना उचित है। श्रावणमास की अमावास्या सिंहराशिस्थ रवि के समय पर समास होने के कारण उस न्यास से उनके मध्यवर्त्ती संक्रान्ति रहित मास की अमावस्या कर्कटस्थ रवि के समय पर पूरित होता है। इसलिए पूर्ववर्त्ती आषाढ में इसका अन्तर्भाव होना चाहिए।

अत्रोच्यते—मेषादीनां शुद्धमाससंज्ञा प्रत्येव प्रयोजकत्वम्। मल-माससयोत्तरमासशेषत्वस्मणात्। तथा च ज्योतिःपितामहः—

षष्ठ्या तु दिवसै र्मासः कथितो बादरायणैः।
पूर्वार्धं तु परित्यज्य कर्त्तव्या उत्तरे क्रियाः॥ इति।

इत्यत्रापि षष्ठिदिनात्मकं मासं प्रकृत्योक्तम्—

आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः॥ इति।
एवं षष्ठिदिनो मासस्तदर्धं तु मलिम्लुचः॥ इति च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्योतिःशास्त्रान्तरेऽपि—

षष्ठ्या हि दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः।
पूर्वमर्धं परित्यज्य उत्तरार्धं प्रशस्यते॥ इति।

अस्त्वेवं सङ्क्रान्तिरहितस्य मलमासस्योत्तरशेषत्वं द्विसङ्क्रान्तियुक्तस्य तु कथमिति चेत्, उच्यते—प्रथमं तावत् स्वरूपं निरूप्यते। तच्च ज्योतिःसिद्धान्तेऽभिहितम्—

असङ्क्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्।
द्विसङ्क्रान्तमासः क्षयाख्यः कदाचित्॥
क्षयः कार्त्तिकादित्रये नान्यदा स्यात्।
तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च॥ इति।

यहाँ कहना है—मेषप्रभृति सौर मास के साथ चैत्रप्रभृति शुद्ध चान्द्रमासों की प्रयोजकता है क्योंकि मलमास सर्वथा उत्तरमास में अन्तभू त होता है। ऐसा ज्योतिषशास्त्र में पितामह ने कहा है—

साठ दिन में एक मास पूरित होता है—ऐसे बादरायण मुनि ने कहा। इस मास के पूर्वार्ध को परित्याग करके परवर्त्ती अर्धभाग में धार्मिक कृत्य किया जाता है। इसी तरह अन्यत्र भी कहा है कि साठ दिनात्मक मास में प्रथमार्ध मलमास और द्वितीयार्ध शुद्धमास होता है। पहला भाग मलमास होता है, दूसरा भाग मौलिक शुद्धमास होता है। इस प्रकार साठ दिनों को लेकर होने वाला मास के अर्धभाग मल हो जाता है।

दूसरे ज्योतिशास्त्रों में भी कहा गया है। बादरायण के मतानुसार साठ दिनात्मक मास होता है। इसमें पहला आधा भाग मल होता है इसलिये इसको छोड़कर दूसरा भाग को ग्रहण किया जाता है। यहाँ अगर संक्रान्ति रहित मलमास उत्तरमास में अन्तर्भूत होता तो दोनों संक्रान्ति युक्त मास की निष्पत्ति कैसे होती है? उत्तर ऐसा है—पहले इसका स्वरूप निरूपित होता है। ज्योतिःसिद्धान्त में कहा है—

असंक्रान्त मास को अधिमास कहते हैं। द्विसंक्रान्त मास को क्षयमास कहते हैं। कार्त्तिक से लेकर तीन मासों में क्षयमास होता है। इस वर्ष में दो अधिमास होते हैं।

अयमर्थः—स्फुटमानेन योऽयमसङ्क्रान्तः स स्फुटोऽधिमासः। तेनैव मानेन योऽयं द्विसङ्क्रान्तियुक्तः क्षयमासः, स च कार्त्तिकमार्गशीर्षपौषेष्वेव त्रिष्वन्यतमो भवति। नान्येषु माघादिषु नवसु। एवंविधक्षयमासयुक्ते वर्षे क्षयमासात् पूर्वेषु त्रिषु मासेषु मध्ये कश्चिद-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धिकमासो भवति। क्षयमासादूर्ध्वमपि मासत्रयमध्ये परोऽधिमासः। तदेवंविधमेकवर्षस्य मलमासत्रयं चिरेण कालेन यदा कदाचिदायाति न त्वेकाधिमासवत् पुनः पुनः सहसा समायाति। तत्त्रितयाऽऽगमनकालश्च सिद्धान्तशिरोमणौ दर्शितः—

गतेऽब्ध्यद्रिनन्दैर्मिते शाककाले।
तिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः॥
गजाद्र्यग्निभूमिस्तथा प्रायशोऽयं।
कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च॥ इति।

अस्यायमर्थः—चतुःसप्तत्यधिकनवशतसंख्याकैर्वर्षैः परिमिते शककाले कश्चिदुक्तमासत्रयोपेतो वत्सरो गतः। यथोक्तसंख्या चाब्ध्यद्रिनन्दैरित्यनेन पदेन विवक्षिता। अब्धयश्चत्वारः। अद्रयः सप्त। नन्दा नव। एतत्संख्यात्रयगमका अङ्का गणकप्रसिद्ध्या प्रातिलोम्येन लिखिता यथोक्तसंख्यायां पर्यवस्यन्ति।

तिथीशैरत्रापि तिथयः पञ्चदश, ईशा एकादश। तत्र गणकैरङ्केषु प्रक्षिप्तेषु पञ्चदशाधिकशतयुक्तसहस्रसंख्या संपद्यते। तावद्भिः शकवर्षैर्मिते काले कश्चिदुक्तमात्रयोपेतः संवत्सरः। अङ्गाक्षसूर्यैरित्यत्र अङ्गानि षट्। अक्षाणीन्द्रियाणि पञ्च। सूर्या द्वादश। तत्राङ्कप्रक्षेपे सति षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयोपेतसहस्रसंख्योपपद्यते। तावद्भिर्वत्सरैर्मिते शककाले यथोक्तमासत्रयोपेतः कश्चित् संवत्सरः।

अस्य चोदाहरणं पूर्वोदाहृत ईश्वरसंवत्सरप्राचीनो भावसंवत्सरः। तत्र हि भाद्रपदबहुलामावास्यायां कन्यासंक्रान्तिः तत ऊर्ध्वमसंक्रान्तमेकं मासमतीत्य उत्तरयोर्मासयोः क्रमेण तुलावृश्चिकसंक्रान्ती। तत ऊर्ध्वमेकस्मिन्नेव मासे शुक्लप्रतिपदि धनुः संक्रान्तिर्दर्शे मकरसंक्रान्तिः। तत ऊर्ध्वं कुम्भसंक्रान्तिः, अनन्तरे मासे दर्शे तत ऊर्ध्वमेकमसंक्रान्तमासमतीत्य उत्तरस्यां शुक्लप्रतिपदि मीनसंक्रान्तिः। एवं सत्येकस्मिन्नेव वत्सरे द्वावसंक्रान्तौ मासौ। एको द्विसंक्रान्तमास इति यथोक्तमासत्रयं संपद्यते।

इसका स्पष्टार्थ यह है—स्फुटमान से जो असंक्रान्तमास होता है उसको अधिमास कहते हैं। उस मान से संक्रान्ति द्वययुक्त जो मास उस मास को क्षय मास कहते हैं। वह मास कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौषमासों से अन्यतम होता है। माघप्रभृति मासों में नहीं होता है। इस प्रकार क्षयमास युक्त वर्ष में क्षयमास से पूर्ववर्ती तीन मासों में एक अधिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मास और क्षयमास के बाद तीन में एक अधिक मास होता है। इस प्रकार वर्ष में तीन मलमास यदा कदाचित् आते हैं किन्तु अधिमास की तरह बार-बार एकाएक नहीं आते। इस काल के आगमन के बारे में सिद्धान्त-शिरोमणि में कहा है—अब्धि, अद्रि और नन्दा से परिमित शकाब्द में यह मास होता था। तिथि और ईश से परिमित शकाब्द में अङ्ग, अक्ष और सूर्य से परिमित शकाब्द में, गज, अद्रि, अग्नि और भूमि से परिमित शकाब्द में कु, वेद, इन्दु से परिमित शकाब्द में और कभी-कभी गोकु से परिमित शकाब्द में यह मास होता है।

इसका आशय यह है—९७४ शकब्द में इस प्रकार एक संवत्सर आया था। अब्धि-समुद्र–४, अद्रि–पर्वत—७, नन्दा ९ = ९७४; इसी संख्या की गणना ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध है।

तथीशैः = तिथि—१५, ईश–रुद्र = ११ = १११५ शकाब्द में हुआ था। अङ्गाक्षसूर्यैः = अङ्ग—६, अक्ष–५, सूर्य–१२ = १२५६ शकाब्द में हुआ था। इन संवत्सरों में क्षयमास आता था और तीनमास विशिष्ट संवत्सर होता था। इससे पहले आलोचित ईश्वरसंवत्सर से प्राचीन भावसंवत्सर क्षयमास के लिए उदाहरणीय है। इस संवत्सर में भाद्रपद की अमावास्या में कन्या-संक्रान्ति हुई थी। इसके बाद एक असंक्रान्त मास को अतिक्रान्त करके दोनों मासों की दो संक्रान्ति तुला और वृश्चिक आती थी। इसके बाद एक मास में शुक्ल प्रतिपदा तिथि में धनु संक्रान्ति और अमावास्या में मकर संक्रान्ति हो गई। अनन्तर मास के दर्श में और इससे ऊर्ध्व एक संक्रान्त मास को अतिक्रम करके परवर्त्ती शुक्ल पतिपद से मीनसंक्रान्ति हुई। इस लिये एक संवत्सर में दो असंक्रान्त मास और एक संक्रान्ति दोनों होने वाला मास मिलकर तीन मास होते हैं।

गजाद्र्यग्निभूमिरित्यत्रापि गजा अष्टावद्रयः सप्ताग्नयस्त्रयः। भूरेका। तत्राङ्कप्रक्षेपे सत्यष्टसप्तत्यधिकशतत्रयोपेतसहस्रसंख्या संपद्यते। तावद्भिर्वत्सरैर्मिते शाककाले कश्चिदुक्तविधः संपद्यते वत्सरः। कुवेदेन्दुवर्षैरित्यत्र कुरेका, वेदाश्चत्वारः, इन्दुरेकाः। तत्राङ्कप्रक्षेपेणैकचत्वारिंशदधिकशतसंख्या भवति। एतावद्भि वर्षैः क्वचित् पूर्वोत्तरक्षयमासयोर्व्यवधानं भवति। गोकुभिश्चेत्यत्र नपुंसकवर्जितेषु स्वराक्षरेषु गण्यमानेषु ओकारो नवमः संपद्यते। कुरेका। तत्राङ्क प्रक्षेपे सति एकोनविंशति भवति। तावद्भिर्वत्सरैः क्वचित् पूर्वोत्तरयोः क्षयमासयोर्व्यवधानं भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्र द्विसंक्रान्तियुक्तस्य क्षयसंज्ञायामुपपत्तिरुच्यते। यदा धनुःस्थे रवौ दर्शपूर्त्तिस्तदा तस्य मेषादिस्थवचनेन मार्गशीर्षत्वं प्राप्तम्। तथा सति पूर्वोदाहृते द्विसङ्क्रान्तमासे धनुःस्थे रवौ दर्शो न समाप्तः किन्तु मकरस्थे। अतः पौषमासत्वं तस्य संपन्नम्। तथा च मार्गशीर्षस्य तत्र लुप्तत्वात्तस्य क्षयसंज्ञा युक्ता। अत एवैकमासग्रासित्वादंहसः पापस्य पतिरिति व्युत्पत्त्या स एवाहंस्पतिसंज्ञयाऽपि व्यवह्रियते।

"गजाद्रयग्नि भूमि" इस संकेत से (गज ८, अद्रि=७,अग्नि=३,भूमि=१) १३७८ संख्या होती है। इसी संख्या से परिमित शकाब्दों में इस प्रकार एक संवत्सर होता था। "कुवेदेन्दु" इस संकेत से (कु–१, वेद–४, इन्दु १) १४१ संख्या होती है। इसी संख्या से परिमित वर्षों में इस प्रकार पूर्व और परवर्त्ती क्षयमासों में व्यवधान होता है। "गोकुभिश्च" इस संकेत से (नपुंसक अक्षर को छोड़कर स्वर वर्ण में ओकार ९, कु=१) १९ वत्सरों के व्यवधान में भी पूर्व और परवर्त्ती क्षयमासों में व्यवधान होता है।

यहाँ दो संक्रान्ति युक्त मास की क्षयमास संज्ञा होने का कारण यह है कि जब धनु में रवि की स्थिति के समय दर्शकी पूर्त्ति होती तब "मेषादिस्थ" वचन के अनुसार मार्गशीर मास होता है। इसके अनुसार दो संक्रान्ति युक्त मास में अर्थात् धनु में रवि की स्थिति के समय अमावास्या की समाप्ति नहीं हुई किन्तु मकर में हुई। अतः इस मास में पौष मास होता है। इसलिये मार्गशीर यहाँ लुप्त हो गया। अतः इसकी संज्ञा क्षयमास हुई। एक मास को ग्रास करने से अंहः अर्थात् पापकर्म हुआ। पाप के पति इस व्युत्पत्ति से अहंस्पति संज्ञा व्यवहृत हुई है।

स च व्यवहारो बार्हस्पत्ये ज्योतिर्ग्रन्थे—

यस्मिन्मासे न सङ्क्रान्तिः सङ्क्रान्तिद्वयमेव वा।
संसर्पाहंस्पती मासावधिमासश्च निन्दितः॥ इति।

तत्र क्षयमासात् प्राचीनो योऽसङ्क्रान्तः स संसर्पः। असंक्रान्तत्वेनेतराधिकमासवत् कर्माऽनर्हतायां प्राप्तायां तदपवादेन कर्मार्हः सन् सम्यक् सर्पतीति संसर्पः। तस्य कर्मानर्हत्वप्राप्तिरेव स्मर्यते—

सिनीवालीमतिक्रम्य यदा संक्रमते रविः।
रविणा लङ्घितो मासो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु॥ इति।

तदपवादश्चैवं स्मर्यते—

मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्ति र्न यदा भवेत्।
प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संक्रान्तिरहितयोर्द्वयोर्मासयोर्यः पूर्वोऽसंक्रान्तः स प्राकृतः शुद्धः कर्मार्हं इत्यर्थः ॥ अस्मिन्नेवार्थे जाबालिः—

एकस्मिन्नेव वर्षे तु द्वौ मासावधिमासकौ।
प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादुत्तरस्तु मलिम्लुचः ॥ इति।

अतः संसर्पत्वं तस्योपपन्नम्। असङ्क्रान्तमासद्वयमध्यवर्त्तिनः क्षयमासस्यांऽहस्पतित्वनिरुक्तिः पूर्वमेव दर्शिता। तदुत्तरभाविनोऽसङ्क्रान्तस्य कालाधिक्यादधिमासत्वम्। त एते त्रयोऽपि ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धे विवाहादौ निन्दिताः।

तथा तत्रैव स्मर्य्यते—

"यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मं, तत्कार्तिकादित्रितये क्षयाख्यम्।
मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद्, विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु ॥ इति।

यथोक्तप्रकारेणांहस्पतिनाम्नः क्षयमासस्य द्वितीयसङ्क्रान्तिप्रयुक्तनामसम्भवे सति शुद्धमासवत् स्वातन्त्र्यान्न पूर्वोत्तरमासशेषत्वशङ्कावकाशः ॥

इसका व्यवहार बार्हस्पत्य ज्योतिष ग्रन्थ में मिलता है—

जिस मास में संक्रान्ति नहीं होती या दो संक्रान्ति होती हैं, वह मास संसर्प और अंहस्पति के नाम से अभिहित होते हैं। अधिमास यहाँ निन्दित होता है।

यहाँ क्षयमास से प्राचीन असंक्रान्त मास संसर्प होता है। असंक्रान्त होने के कारण अन्य अधिमास की तरह कर्म के लिये अनर्ह–अयोग्य होता है। इसका अपवाद करके कर्मार्ह होकर सम्यक् रूप से संसर्पण अर्थात् परिवर्त्तित होने के कारण संसर्प कहा जाता है। इस असंक्रान्तमास में कर्मानुष्ठान के विरोध वचन "सिनीवाली" इत्यादि मिलता है। सिनीवाली को अतिक्रम करके जब रवि का संक्रमण होता है, तब रवि के द्वारा लंघित होने के कारण यह मास सब कर्मों में अनर्ह होता है और इसके अपवाद "मासद्वय" इत्यादि वचन परिस्फुट रूप में मिलते हैं। एक संवत्सर में अगर दो मासों में संक्रान्ति नहीं आती, तो इनमें पूर्व मास मौलिक होकर शुद्धरूप से रहता है और परवर्ती संक्रान्ति रहित मास अधिमास के नाम से परिचित होता है। संक्रान्ति रहित जो दो मास होते हैं इससे पूर्व असंक्रान्त मास शुद्ध और संसर्प होने के कारण कर्मार्ह है। इसके लिये जाबालि ने कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार एक संवत्सर में जो दो अधिमास होते हैं इनमें पूर्व अधिमास प्राकृत—शुद्ध और उत्तर मलिम्लुच अधिमास मलमास होता है।

अतः पूर्ववर्त्ती मास को संसर्प कहना उचित है। दो असंक्रान्त मास के मध्यवर्त्ती क्षयमास अहंस्पति संज्ञा से अभिहित है। इसकी निरुक्ति इससे पहले प्रदर्शित की गई है। इससे परवर्त्ती असंक्रान्त मास कालाधिक्य से अधिमास होता है। ज्योत्तिषशास्त्र में प्रसिद्ध ये सब मास विवाह के लिए निन्दित होते हैं। इस प्रकार यहाँ स्मरण किया जाता है—जिस वर्ष के बीच में दो अधिमास होते हैं, उस वर्ष के कार्तिक प्रभृति तीन मासों में (कार्त्तिक, मार्गशीर और पौष) क्षय मास आ सकता है। ये तीन मास विवाह, यज्ञ, उत्सव और मङ्गल कार्यों के लिये सर्वथा त्याज्य हैं। अंहस्पति संज्ञक क्षयमास द्वितीय संक्रान्ति युक्तता के कारण शुद्ध मास की तरह व्यवहृत होता है। यह पूर्व और उत्तर मास के अङ्ग होने के लिए शङ्का नहीं होती है।

नन्वेकाधिकमासोपेतसंवत्सरस्य त्रयोदशमासात्मकत्वं यथा तथाऽधिमासद्वयोपेतसंवत्सरस्य चतुर्दशात्मकत्वं प्राप्तम्। न च तद्युक्तम्—

त्रयोदशं तु श्रुतिराहमासं चतुर्दशः क्वापि न चैव दृष्टः॥

इति वचनात्। नैष दोषः। असङ्क्रान्तत्वेनाधिकत्वप्रसक्तियुक्तयोर्द्वयोर्मध्ये पूर्वस्याधिमासत्वनिषेधात्। उक्तं हि ज्योतिःसिद्धान्ते—

घटकन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाऽथ धन्विनि।
मकरे वाऽथ कुम्भे वा नाधिमासो विधीयते॥ इति।

अयमर्थः—वृश्चिकादिषु चतुर्षु मासेषु यदा मलमासः प्राप्नोति तदा सूर्ये तुलाकन्ययोर्वर्त्तमाने सत्यसङ्क्रान्तोऽपि नाऽधिमास इति। घटकन्यागत इत्युपलक्षणम्[1]। पूर्वेष्वपि प्रसक्तोऽसङ्क्रान्तो नाधिमासः। तदुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—

चैत्रादर्वाङ् नाधिमासः परतस्त्वधिको भवेत्॥ इति।

चैत्रादारभ्योपरितनेषु मासेषु यदा यौ कौचिन्मासावसङ्क्रान्तौ तदा तयोरर्वाचीनः पूर्वो नाधिमासः। उत्तरस्तु भवत्यधिमासः।

ननु मा भूच्चतुर्दशमासत्वप्राप्तिः। तथाप्येकादशमासत्वं संप्रसज्ज्येतेत्यस्त्येव दोषः। तथा हि "द्वादशमासाः संवत्सर" इत्येषा नित्यवच्छ्रुतिः ससंक्रान्तान्मासानुद्दिश्य प्रवृत्ता। अस्ति त्रयोदशो मास

१. स्वग्राहकत्वे सति स्वेतरग्राहकत्वमुपलक्षणम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्याहुरसंक्रान्तस्य कादाचित्कस्य पृथक् श्रवणात्। तथा च सति प्रकृते क्षयमासोपेते त्रयोदशमासात्मके संवत्सरे द्वयोरसंक्रान्तयोः परित्यागे सति अवशिष्टाः ससंक्रान्ता एकादशैव। ततो नित्यवच्छ्रुति-विरोधः। नायं दोषः। संक्रान्तिद्वययुक्तस्य क्षयस्य मासद्वयत्वेन परिगणनात् ॥

यहां एक प्रश्न आता है—एक अधिक मास से युक्त संवत्सर जैसे तेरह मास विशिष्ट वैसे दो संक्रान्ति युक्त मास को लेकर एक संवत्सर चौदह मास विशिष्ट होता हे। किन्तु ऐसी युक्ति ठीक नहीं है। तेरह मास के लिये श्रुति प्रमाण मिलता है। लेकिन चौदह मास के लिए कहीं भी वचन नहीं मिलता। इसमें कोई दोष नहीं है। असंक्रान्त होने से जो दो मास क्षयमास के आगे और पीछे होते हैं—इनमें पूर्व की अधिमास संज्ञा नहीं होती। ज्योतिः-सिद्धान्त में ऐसा कहा है—तुला, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ मासों में अधिमास नहीं होता है।

अभिप्राय यह कि वृश्चिक प्रभृति चार मासों में जब मलमास होता है. तब सूर्य के तुला और कन्या में रहने के समय असंक्रान्त होने पर भी अधिमास नहीं होता। यहाँ पर कन्या उपलक्षण होते हैं। पूर्ववर्त्ती प्रसक्त असंक्रान्त भी अधिमास नहीं होता है। ब्रह्मसिद्धान्त में कहा है कि चैत्र से पहले अधिमास नहीं होता है। अपितु परवर्त्ती मासों में हो सकता है।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि क्षयमास विशिष्ट संवत्सर में चौदह मास जनित दोष अगर नहीं आता तो कदाचित् ग्यारह मास जनित दोष भी होता है। जिस पर बारह मास विशिष्ट संवत्सर की प्रवृत्ति के बारे में कहा है उस पर संक्रान्ति युक्त मास के पक्ष में ही युक्ति आती है। फिर भी इस प्रकरण में क्षयमास युक्त-तेरह मास युक्त संवत्सर में दो असंक्रान्त मास को छोड़ कर अवशिष्ट ससंक्रान्त ग्यारह मास ही होते हैं। इसी युक्ति से बारह मास युक्तसंवत्सर के बारे में आने वाली श्रुति में विरोध आता है। यहाँ सिद्धान्ती का कहना है कि इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि दो संक्रान्ति युक्त मास में दो मास की गणना होती है।

तथा च स्मर्यते—

तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्धे तथोत्तरः।
मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥ इति।

ज्योतिःशास्त्रे द्विसंक्रान्तियुक्तक्षयमासादाद्यसंक्रान्तेः क्वचित् पूर्वत्र-चालनसंस्कारोऽस्तीति उक्तम्। तथा च यदा चालनमस्ति तदा पूर्व-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्यासंक्रान्तस्य ससंक्रान्तत्वसंपादनादयं क्षयमास एकत्वेनैव परिगणनीयः। यदा तु चालनं नास्ति तदा यथोक्तप्रकारेण मासद्वयात्मकत्वं द्रष्टव्यम्। यथोक्तं वटेश्वरसिद्धान्ते—[1]

यदि न चलति वै मासयुग्मं विचिन्त्यम्॥ इति।

इत्थं मलमासस्वरूपं निरूपितम्॥

अथ तत्र वर्ज्यविवेकः क्रियते।

तत्रैव पैठीनसिः—

श्रौतस्मार्त्तक्रियाः सर्वा द्वादशे मासि कीर्त्तिताः।
त्रयोदशे तु सर्वास्ता निष्फलाः परिकीर्त्तिताः॥

तस्मात्त्रयोदशे मासे कुर्यात्ता न कथञ्चन।
कुर्वन्ननर्थमेवाशु कुर्यादात्मविनाशनम्॥ इति।

अतः निष्फला इत्यभिधानात् फलकामनया प्रवृत्तं कर्म निषिद्ध्यत इति गम्यते। तथा च स्मृत्यन्तरे--

इष्ट्यादि सर्वकाम्यं तु मलमासे विवर्जयेत्॥ इति।

न च सर्वास्ता इत्यभिधानान्नित्यनैमित्तिकयोरपि निषेधः शङ्कनीयः।

---

१. मासः संक्रान्तिहीनोऽधिक इति कथित शीघ्रप्रचारैः।
संसर्पोऽहस्पतिः स्यात् समविषमतया चालनं तत् क्षयस्य।
पूर्वैश्चन्द्रार्कयोगैर्विरहितरविसंक्रान्तितश्चालनं मा
स्याद्वा तस्यार्कमासो यदि न चलति वै मासयुग्मं विचिन्त्यम्।

क्वचित् ज्योतिर्ग्रन्थे नित्यवदेव चालनमुक्तम् तथाहि—
"यावन्मासो द्विसंक्रान्तिः संक्रान्त्यैवयं प्रपद्यते।
स्वर्गसाम्यवशं दृष्ट एवं वत्सरेण क्रमः"॥
तथा—
"असंक्रान्तौ द्विसंक्रान्तिः संक्रान्तिरहितो यदा।
मासाः पूर्वस्य मासस्य पूर्वं दशं दिनोर्गमात् (?)॥
उत्तरे मासे संक्रान्तिनाडिकार्धं विशेषयेत्"—इति।
इत्थं मलमास-स्वरूपं निरूपितम्।
क्वचिदित्यादिरेदन्तो न दृश्यते वि० पुस्तकातिरिक्तपुस्तकेषु।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन् मलिम्लुचे ॥

इति बृहस्पतिवचनात् । जाबालिनापि तथैवोक्तम्—

नित्यनैमित्तिके कुर्याच्छ्राद्धं कुर्यान्मलिम्लुचे ।
तिथिनक्षत्रवारोत्थं काम्यं नैव कदाचन ॥ इति ।

योऽयं मलमासे काम्यनिषेधः असावारम्भसमाप्तिविषयः ॥

स्मृति में कहा है—क्षयमास के मध्यवर्त्ती आने वाली तिथियाँ इनके प्रथमार्ध, पूर्ववर्त्ती मास की और द्वितीयार्ध परवर्त्ती मास की तिथि होती हैं। ज्योतिष में कहा है—दो संक्रान्तियुक्त क्षयमास में कभी-कभी पूर्वत्र चालन संस्कार मिलता है। इस क्षेत्र में पूर्ववर्त्ती असंक्रान्त मास संक्रान्तियुक्त होता है। ऐसे होने से क्षयमास एक मास के रूप में परिगणित होता है। जिस पर चालन नहीं है, उस पर पूर्वोक्त प्रकार में दो मास की गणना होती है। वटेश्वरसिद्धान्त में यह सिद्धान्त निर्णीत है। इस तरह मलमास का स्वरूप निरूपित हुआ ॥

यहाँ से मलमास में वर्ज्य और अवर्ज्य कर्मों का निर्णय होता है। पैठीनसि ने कहा है—श्रौत कर्म और स्मार्त्त कर्म बारह मासों में होते हैं। किन्तु तेरहवाँ मास में ऐसी क्रिया निष्फल हो जाती है। इसलिये तेरहवाँ मास में कोई क्रिया नहीं होती। करने से आत्मविनाशक रूप में इनकी परिणति होती है। "यहाँ निष्फला" कहने से कामनापूर्वक अनुष्ठेय कर्मों का निषेध है ऐसा प्रतीत होता है। अन्य स्मृति में भी इष्टि प्रभृति कर्मों का निषेध मलमास में किया है। नित्य और नैमित्तिक उभय प्रकार के कर्मों का निषेध नहीं होता है। बृहस्पति वचन के अनुसार मलमास में नित्य और नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान होता है। जाबालि ने भी कहा है कि मलमास में नित्य और नैमित्तिक श्राद्ध होता है। किन्तु तिथि, नक्षत्र और बार के अनुसार होनेवाला काम्य कर्मों का अनुष्ठान नहीं होता है। मलमास में काम्यकर्मों का जो निषेध हुआ, वह आरंभ और समाप्ति के विषय में कहा है अर्थात् काम्यकर्मों का प्रारंभ और समाप्ति नहीं होती है।

असूर्या नाम ये मासा न तेषु मम सम्मतः ।
व्रतानां चैव यज्ञानामारम्भश्च समाप्तयः ॥

इत्यारम्भसमाप्त्योरेवाधिमासे प्रतिषेधात् । आरम्भसमाप्त्योर्मध्यपातिन्यधिमासे त्वारब्धं काम्यमनुष्ठेयम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिमासे निपतिते ह्येष एव विधिक्रमः ॥

इति स्मरणात् । यत्तु काठकगृह्ये समाप्तिप्रतिप्रस[1]ववचनम्—

प्रवृत्तं मलमासात्प्राक् काम्यकर्मासमापितम् ।
आगते मलमासेऽपि तत्समाप्तिर्न संशयः ॥ इति ।

तत् सावनमानप्रवृत्तकृच्छ्रचान्द्रायणाऽहीनसत्रादिविषयम् । आवश्यकं तु यत् कर्म तन्मलमासेऽप्यनुष्ठेयम् । तद्यथा प्रक्रान्ते मलमासे तद् द्वित्रेषु दिनेषु गतेषु यदि कश्चिद् बालो ब्रह्मराक्षसादिना गृह्येत तदा रक्षोघ्नीष्टिः सद्य एव कर्त्तव्या मलमाससमाप्तिप्रतीक्षायां बालादिमरणप्रसंगात् । सा चेष्टिः काम्यकाण्डे श्रूयते—"अग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् । यं रक्षांसि संचेरन्नग्निमेव रक्षोहणं स्वेन भागधेयेनोपधावति स एवाऽस्माद्रक्षांस्यपहन्तीति । संचेरन् समवेयुः गृह्णीयुरिति यावत् उपधावति—देवतां प्रियेण हविर्भागेन तोषयति । अस्माद्रक्षोगृहीतादिष्टिकर्त्ता रक्षांस्यपनयतीति ।"

तथैवाभिचरतः प्रतिचरतश्च काचिदिष्टिः श्रूयते । "आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचरन्निति। "प्रति वै पुरस्तादभिचरन्तमभिचरन्ति द्वे द्वे पुरोऽनुवाक्ये[2] कुर्यादि"ति च ॥ तत्र द्वयोरप्येकैवेष्टिः अभिचरत एकैका पुरोनुवाक्या प्रतिचरतस्तु द्वे द्वे इति विशेषः कालविलम्बप्रतीक्षाऽत्रापि न भवति । बाधके शत्रौ प्रत्यासन्ने सति तदैवाभिचारस्य कर्त्तव्यत्वात् प्रतिचारस्यापि स एव कालः "एतयैव यजेताभिचर्यमाण" इति वर्त्तमानवाचिना शानच्प्रत्ययान्तेन शब्देन प्रतिचारकर्त्तुरभिचारसमकालत्वविशेषणात् ।

"असूर्या नाम ये मासा" इस वचन के अनुसार अधिमास में (मलमास में) काम्यकर्मों का प्रारंभ और समाप्ति नहीं होती है । आरम्भ और समाप्ति के बीच में होनेवाला अधिमास में आरब्धकर्मों का अनुष्ठान हो सकता है । "अधिमासे निपतिते" इस वचन के अनुसार निष्पत्ति होती है । काठक गृह्यसूत्र के अनुसार समाप्ति का प्रतिप्रसव वचन मिलता है—मलमास से पहले आरब्ध काम्यकर्मों की समाप्ति अगर नहीं होती तो मलमास के आगमन से उसकी समाप्ति ही होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

---

१. निषेधस्य पुनरभ्यनुज्ञानं प्रतिप्रसवः ।

२. याज्या पुरोनुवाक्या चेति द्वयोः ये यजामह इत्यादीनि आहुत्यर्थकमन्त्रवाक्यानि याज्या, देवताऽऽवाहननिमित्तकमन्त्रवाक्यानि पुरोनुवाक्या इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह वचन सावन मान से प्रवृत्त कृच्छ्र चान्द्रायण और अहीन याग के बारे में नियमित होता है। आश्यक काम्यकर्म मलमास में ही करना होगा। मलमास के आरम्भ होकर दो-तीन दिनों के बाद कोई अगर शिशु ब्रह्मराक्षसादिके द्वारा ग्रस्त हो जाता है तो जलादि रक्षोघीष्टि ही करनी चाहिये। मलमास के समाप्तिपर्यन्त अपेक्षा करने से शिशु का मरण हो जायगा। इसलिये उस समय पर मलमास में सद्य इष्टि होती है। काम्यकांड में इसी इष्टि के बारे में कहा है—रक्षोघ्न अग्नि के लिये आठ कपालों में पुरोडाश का निर्वपण होता है। इष्टिकर्त्ता राक्षसग्रस्त से राक्षस को अपसारित करता है। इसी तरह अभिचार और प्रतिचार के नाम से इष्टियाँ भी उपलब्ध होती हैं। अग्नि और विष्णु देवता के उद्देश्य में अभिचार करके ग्यारह कपालों में निर्वपण किया जाता है। सामने अभिचारी के लिये भी प्रतिचार करते हैं और दो दो पुरोनुवाक्या करते हैं।

इन दोनों को लेकर एक ही इष्टि होती है। अभिचार में एक ही पुरोनुवाक्या और प्रतिचार में दो पुरोनुवाक्या होती हैं। यहाँ कालविलम्ब की प्रतीक्षा नहीं होती है। बाधा देने वाला शत्रु अगर नजदीक में आ जाय तो अभिचार क्रिया अनुष्ठित होती है। प्रतिचार का भी यह एक ही काल है। "एतयैव यजेताभिचर्यमाणः" इस वचन से वर्त्तमान काल के सूचक शानच् प्रत्यय के द्वारा प्रतिचार और अभिचार क्रियाओं का एक काल सूचित होता है।

एवं प्रबलज्वरराजरोगराजद्रोहादिना यदाऽपमृत्युः प्रसक्तस्तदापि सद्य एवेष्टिः कर्त्तव्या। इष्टिस्तु श्रूयते—यो मृत्योर्विभीयात्तस्मा एतां प्राजापत्यां शतकृष्णलां निर्वपेत्। प्रजापतिमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति स एवास्मिन्नायुर्दधाति सर्वमायुरेति इति। कृष्णलाः सुवर्णशकलानि यवत्रयपरिमितानि। तानि च शतसंख्याकानि यस्यां निर्वपणीयानि सेष्टिः शतकृष्णला। यदा वृष्ट्यभावात् शस्यानि शुष्यन्ति मलमासश्चागतस्तदा "कारीर्या वृष्टिकामो यजेते"ति च विहितेष्टिर्न कालविलम्बं सहते। एवं स्मार्त्तान्यप्यावश्यकानि उदाहरणानि। नित्यनैमित्तिकयोरपि यद् अनन्यगतिकं तदेव मलमासे कार्यम्।

अनन्यगतिकं नित्यं कुर्यान्नैमित्तिकं तथा।

इति स्मरणात्। काठकगृह्येऽपि—

मलेऽनन्यगतिं कुर्यान्नित्यां नैमित्तिकीं क्रियाम्।

इत्यनन्यगतिकानि च नित्यानि गृह्यपरिशिष्टे उदाहृतानि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवषट्कारहोमाश्च पर्व चाग्रयणं तथा ।
मलमासे तु कर्त्तव्यं काम्या इष्टी विवर्जयेत् ॥ इति।

अवषट्कारहोमा अग्निहोत्रोपासनवैश्वदेवादयः। पर्व दर्शपूर्णमासौ स्थालीपाकश्च दर्शादीनां नित्यत्वमकरणे प्रत्यवायादवगन्तव्यम् ।

तथा चाऽऽथर्वणिकाश्चामनन्ति—

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपूर्णमासमनाग्रयणमतिथिवर्जितमहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतम् आसप्तमांस्तस्य लोकान् स हिनस्तीति । गत्यन्तरयुक्तानि तु नित्यानि तत्र वर्ज्यानि ॥ तदुक्तं काठकगृह्यपरिशिष्टे—

सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मलिम्लुचे ।
षष्ठीष्ट्याग्रयणाधानचातुर्मास्यादिकान्यपि ॥

इसी तरह प्रबल ज्वर, राजरोग और राजद्रोह के कारण जब अपमृत्यु की सूचना मिलती है तो उस समय में इष्टि का अनुष्ठान होता है। वेद में इसी इष्टि के बारे में कहा है—जो मृत्युभयग्रस्त होता है, वह प्रजाप्रति देवता के लिये सौ कृष्णल का निर्वपण करता है। इस हर्विभाग से प्रजापति देवता को ही सन्तुष्ट करता है। यह देवता आयु देता है। कृष्णल सुवर्ण का खण्ड है और तीन यवों के परिमित होता है। इस तरह सौ संख्यक कृष्णल का जहाँ निर्वपण किया जाता है,इसी को शतकृष्णला इष्टि कहते हैं। जब वृष्टि के अभाव से सस्य शुष्क हो जाता है, मलमास आने पर भी इस समय पर वृष्टि चाहने वाला लोग कारीरी इष्टि करते हैं। यह इष्टि कालविलम्ब की प्रतीक्षा नहीं करती है। इस प्रकार स्मार्त्त कर्म भी उपलब्ध होते हैं। नित्य और नैमित्तिक जो अनन्यगतिक होता है, मलमास में उसका अनुष्ठान हो सकता है। काठक गृह्यपरिशिष्ट में अनन्यगतिक नित्यकर्मों का उदाहरण मिलता है। अग्निहोत्र, उपासन और वैश्वदेवप्रभृति अवषट्कार होम नाम से अभिहित होते हैं। दर्श, पूर्णमास और पार्वणस्थालीपाक पर्वनाम से अभिहित होते हैं। दर्शप्रभृति नित्यकर्म होते है। उनके अनुष्ठान नहीं होने से प्रत्यवाय होता है।

अर्थववेद में सुना है—जिसके अग्निहोत्र बिना दर्श, बिना पूर्णमास, बिना अग्रहायण, बिना अतिथि सेवा, बिना वैश्वदेव और बिना विधि के द्वारा सम्पन्न होता है, यह सात पीढी तक कुल को नाश कर देता है। जो नित्यकर्म भिन्न काल में होने के लिये अवकाश है, उस कर्म को मलमास में छोड़ देना चाहिये। काठक गृह्यपरिशिष्ट में कहा है—मलमास में सोमयागप्रभृति वैदिक कर्म, आग्रयण, अग्न्याधान और चातुर्मास्येष्टि—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महालयाऽष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत्।
स्पष्टमासविशेषाख्यविहितं वर्जयेन् मले ॥ इति ।

सोमयागो वसन्ते विहितस्तस्य मलमासविवर्जनेऽपि शुद्धमासेऽनुष्ठानसंभवात् सगतिकत्वम्। षष्ठीष्टिः काठकशाखादौ प्रसिद्धा। न चाग्रयणस्य सगतिकागतिकयोरुदाहरणं विरुद्धमिति शङ्कनीयम्। तस्य मलमासे विकल्पितत्वात् । तदाह पैठीनसिः—

संक्रान्तिरहिते मासि कुर्यादाग्रयणं न वा । इति ।

अनन्यगतिकानि नैमित्तिकानि ग्रहणस्नानदानादीनि । तेषां मलमासेऽपि कर्त्तव्यमाह यमः—

चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानं श्राद्धदानजपादिकम्।
कार्याणि मलमासेऽपि नित्यनैमित्तिकं तथा ॥ इति ।

सगतिकानि तु नैमित्तिकानि जातेष्ट्यादीनि। वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जात इति विहिताया इष्टेराशौचेऽवसिते यथाऽनुष्ठानं तद्वन्मलमासेऽव्यवसितेऽनुष्ठातुं शक्यत्वात् सगतिकत्वम्। यथोक्तरीत्या काम्यमावश्यकमनन्यगतिके नित्यनैमित्तिके अपि मलमासे कार्याणि नेतराणीति सामान्यतो वर्ज्यविवेकः संपन्नः।

महालया, अष्टकाश्राद्ध, उपाकर्म प्रभृति स्मार्त कर्म जो शुद्धमास के लिये विहित हैं मलमास में उनका निषेध होता है। सोमयाग वसन्त ऋतु में होता है। मलमास को छोड़कर शुद्धमास में करने के लिये अवकाश होने से सगतिक होता है। षष्ठीष्टि काठकशाखा में प्रसिद्ध है। आग्रयण के लिये सगतिक और आगतिक के बीच कोई शंका नहीं रहती है। क्योंकि मलमास में उसका अनुष्ठान विकल्प से ही हो सकता है।

पैठीनसि ने इसके बारे में ऐसा कहा है—ग्रहण-स्नान-दानादि कर्म और नैमित्तिक कर्म अनन्यगतिक होते हैं। उनका अनुष्ठान मलमास में भी हो सकता है। यम ने कहा है—चन्द्र और सूर्य के ग्रहण जनित स्नान, श्राद्ध, दान और जप, नित्य और नैमित्तिक कर्म मलमास में होते हैं।

जातेष्टि प्रभृति कर्म नैमित्तिक होते हैं, किन्तु सगतिक होते हैं। वैश्वानर देवता के लिये बारह कपोलों में निर्वपण करने के लिये जातेष्टि के जो नियम हैं, अशौच के अवसान पर उसका अनुष्ठान हो सकता है। इसलिये सगतिक होता है। इसी तरह मलमास में होनेवाला जातेष्टि भी न होकर शुद्धमास में अनुष्ठेय है। इस प्रकार से काम्य, आवश्यक अनन्यगतिक,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्य, नैमित्तिक मलमास में होते हैं। अन्य कर्म नहीं होने हैं। यहाँ मलमास में वर्जनीय और अवर्जनीय कर्मों की विवेचना समाप्त हुई।

तानि च कार्याकार्याणि कालादर्शकारः संगृह्येत्थमुदाजहार--

द्वादशाहसपिण्डान्तं कर्म ग्रहणजन्मनोः।
सीमन्तपुंसवे श्राद्धं द्वावेतौ जातकर्म च॥
रोगेशान्तिरलभ्ये च योगे श्राद्धं व्रतानि च।
प्रायश्चित्तं निमित्तस्य वशात् पूर्वे परत्र वा॥
अब्दोदकुम्भमन्वादि महालययुगादिषु।
श्राद्धं दर्शेष्वहरहः श्राद्धमूनादिमासिकम्॥
मलिम्लुचान्यमासेषु मृतानां श्राद्धमाब्दिकम्।
श्राद्धं तु पूर्वदृष्टेषु तीर्थेष्वेव युगादिषु॥
मन्वादिषु च यद्दानं दानं दैनन्दिनं च यत्।
तिलगोभूहिरण्यानां सन्ध्योपासनयोः क्रिया॥
पूर्वहोमश्चाग्रयणं साग्नेरिष्टिश्च पर्वणोः।
नित्याग्निहोत्रहोमश्च देवतातिथिपूजनम्॥
स्नानं च स्नानविधिना अभक्ष्यापेयवर्जनम्।
तर्पणं च निमित्तस्य नित्यत्वादुभयत्र च॥
अनित्यमनिमित्तं च दानं च महदादिकम्।
अग्न्याधानाध्वरापूर्वतीर्थयात्राऽमरेक्षणम्॥
देवारामतडागादिप्रतिष्ठा मौञ्जीबन्धनम्।
आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः॥

इस वर्ज्यावर्ज्य को संग्रह करके कालादर्शकार ने उदाहरण के रूप में उपस्थापित किया है। यथा—सपिण्डीकरण, ग्रहण स्नान, जन्म, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, रोगशान्ति, अलभ्ययोग, व्रत, प्रायश्चित्त, नैमित्तिक, आब्दिक, मन्वादिश्राद्ध, महालयश्राद्ध, युगादिश्राद्ध, दर्शश्राद्ध, नित्यश्राद्ध, ऊनमासिक, मलमासभिन्न अन्यमास में मृतों के आब्दिकश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध, मन्वादिदान, नित्यदान, तिलदान, गोदान, भूदान, हिरण्यदान, सन्ध्या. उपासना, पर्वहोम, आग्रयण, साग्निक की इष्टि, पर्व, नित्य अग्निहोत्र होम, देवतापूजा, अतिथिपूजा, स्नान, अभक्ष्य-अपेयों का वर्जन और तर्पण मलमास में हो सकते हैं। अनित्य, अनिमित्त, महादान, अग्न्याधान, अध्वर, पहले नहीं की गई तीर्थयात्रा, देवदर्शन, देवता प्रतिष्ठा, आराम प्रतिष्ठा, पुष्करिणी प्रतिष्ठा, उपनयन, विवाह, काम्यवृषोत्सर्ग, बहिर्निष्क्रमण,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजाभिषेकः प्रथमश्चूडाकर्म व्रतानि च।
अन्नप्राशनमारम्भो गृहाणां च प्रवेशनम्।
स्नानं विवाहो नामानि तथाऽऽपन्नं महोत्सवम्।
व्रतारम्भं समाप्तिं च काम्यं कर्म च पाप्मनः॥
प्रायश्चित्तं तु सर्वस्य मलमासे विवर्जयेत्॥
उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्।
अवरोहश्च हैमन्तः सर्पाणां बलिरष्टका॥
ईशानस्य बलि र्विष्णोः शयनं परिवर्त्तनम्।
दुर्गेन्द्रस्थापनोत्थाने ध्वजोत्थानं च वज्रिणः॥
पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्राऽन्यच्च दैविकम्॥ इति।

अत्र द्वादशाहेत्यारभ्य नित्यत्वादुभयत्र चेत्यनेन ग्रन्थेन कर्त्तव्य-संग्रहः। अनित्यमनिमित्तं चेत्यारभ्य वर्जयेदित्यन्तेन वर्ज्यसंग्रहः। उपाकर्मेत्यारभ्य परत्रान्यच्च दैविकमित्यन्तेन मलवर्जितानां सतां शुद्धमासे आवश्यक[1]कर्त्तव्यत्वेन संग्रहः।

अत्र च सर्वत्र साक्षिवचनान्युदाहरामः। यमः—

गर्भे वार्धुषिके भृत्ये श्राद्धकर्मणि मासिके।
सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत्॥
तिर्थस्नानं जपो होमो यवव्रीहितिलादिभिः।
जातकर्मान्त्यकर्माणि नवश्राद्धं तथैव च॥
मघात्रयोदशीश्राद्धं श्राद्धान्यपि च षोडश।
चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानं श्राद्धदानजपादिकम्॥
कार्याणि मलमासेऽपि नित्यं नैमित्तिकं तथा॥ इति।

मासिके श्राद्धकर्मणि अमावास्याश्राद्धकर्मणि इत्यर्थः॥ नित्यदाने होमोऽत्रौपासनहोमः॥ अन्त्यकर्माणि दहनोदकपिण्डदानास्थिसञ्चय-नादीनि॥

राजाभिषेक, चूडाकर्म, अन्नप्राशन, गृहारंभ, गृहप्रवेश, स्नान, महोत्सव, व्रतारंभ, व्रतसमाप्ति, काम्यकर्म और प्रायश्चित्त मलमास में नहीं हो सकते हैं। उपाकर्म, उत्सर्ग, पवित्रारोपण, दमनार्पण, हैमन्तिकावरोह, सर्पवलि, अष्टका, ईशानबलि, विष्णुशयन, पार्श्वपरिवर्त्तन, दुर्गस्थापन, दुर्गोत्थान, इन्द्र के वज्रोत्थान मलमास जनित अशुद्धमास को छोड़कर शुद्धमास में हो सकते हैं।

---

१. अवश्यकर्त्तव्यत्वेनेति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ "द्वादशाह" से प्रारम्भ कर "नित्यत्वाद" पर्यन्त वचनों के द्वारा कर्त्तव्यरूप से कहा गया है। "अनित्य" से लेकर "वर्जयेत्" पर्यन्त वचनों के द्वारा वर्ज्य कार्यों का संग्रह हुआ है। "उपाकर्म" से लेकर "परत्रान्यच्च" पर्यन्त वचनों के द्वारा मलमास में वर्जित कर्मों का शुद्धमास में करने के लिये संग्रह हुआ है।

इनके लिये प्रामाणिक वचन भी उपलब्ध होता है। यमने कहा है—गर्भाधान, सपिण्डीकरण, कुसीदव्यवस्था, भृत्यता, मासिकश्राद्ध और नित्य-कर्म इन सब कर्म के लिये अधिमास वर्जनीय नहीं है। तीर्थस्नान, जप, जौका होम, व्रीहिहोम, तिलहोम, जातकर्म, अन्त्येष्टिकर्म, नवश्राद्ध, मघा-त्रयोदशी श्राद्ध, षोडशश्राद्ध, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के स्नान, नित्य और नैमित्तिक मलमास में हो सकते हैं। मासिकश्राद्ध अमावास्याश्राद्ध कर्म. नित्यकर्म = नित्यदान, होम = औपासन होम, अन्त्यकर्म = दाह, उदक क्रिया, पिण्डदान, अस्थिसञ्चयन।

स्मृत्यन्तरे—

श्राद्धजातक[1]नामानि ये च संस्कारसव्रताः।
मलिम्लुचेऽपि कर्त्तव्या इष्टीः काम्याश्च वर्जयेत्॥ इति।

संस्कारा-अन्नप्राशननिष्क्रमणादयः। सव्रताश्चातुर्मास्यव्रतादयः।

गभस्तिः—

एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं नन्नैमित्तिकमुच्यते।
तत् कार्यं पूर्वमासे च कालाधिक्ये च धर्मतः॥ इति।

गौतमः—

जातकर्माणि यच्छ्राद्धं नव[2]श्राद्धं तथैव च।
ग्रहणं पुंसवादौ च तत् पूर्वत्र परत्र च॥ इति।

निमित्तवशादिति वाक्यशेषः। स्मृतिसंग्रहेऽपि—

जातकर्म च पुंसूतिः सीमन्तोन्नयनं व्रतम्।
मलिम्लुचेऽपि कर्त्तव्यं निमित्तं यदि जायते॥ इति।

मरीचिः—

रोगे चालभ्ययोगे च सीमन्ते पुंसवेऽपि च।
यद् ददाति समुद्दिष्टं पूर्वत्रापि न दूष्यति॥ इति।

---

१. जातकनाम जातकर्म इत्यर्थः।

२. प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमे तथा।
नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते॥ इति। मिताक्षरा-१।२५२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निमित्तवशात् प्रायश्चित्तानि अच्छिद्रकाण्डे बहूनि श्रूयन्ते। आहिताग्निर्यदा अग्नीनन्वाधायेष्टिमकृत्वा ग्रामान्तरे प्रयाणं कुर्यात् तदा "तुभ्यं ता" इति मन्त्रेण जुहुयात् ॥

दूसरी स्मृति में भी कहा है—श्राद्ध, जातकर्म, नामकरण, व्रत सहित संस्कार कर्म मलमास में हो सकते हैं। लेकिन काम्येष्टि नहीं हो सकती है। संस्कार—अन्न-प्राशन, बहिर्निष्क्रमण। व्रत—चातुर्मास्य आदि। गभस्ति ने कहा है—एकोद्दिष्ट श्राद्ध, नैमित्तिक श्राद्ध है। पूर्वमास में और अधिमास में इसका अनुष्ठान हो सकता है।

गौतम ने कहा है—जातकर्म, नवश्राद्ध, ग्रहण, पुंसवन, शुद्ध और मलमास में भी हो सकते हैं। निमित्त के कारण कर्म नैमित्तिक होता है। अर्थवाद के द्वारा इसकी प्रतीति होती है। स्मृतिसंग्रह में भी कहा है—जातकर्म, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, व्रत, नैमित्तिक कर्म मलमास में हो सकते हैं।

मरीचि ने कहा है—रोगशान्ति, अलभ्ययोग, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन और दान मलमास में हो सकते हैं। प्रायश्चित्त कर्म नैमित्तिक होते हैं। अच्छिद्रकाण्ड में इसके बारे में बहुतबार कहा है—आहिताग्नि जब अग्न्याधान पूर्वक इष्टि का अनुष्ठान न करके अन्य ग्राम में मरता है तो "तुभ्यं ता" इस मन्त्र से इसके लिये होम होता है।

तथा च श्रुतिः-सर्वान् वा एषोऽग्नौ कामान् प्रवेशयति योऽग्नीनन्वाधाय व्रतमुपैति स यदाऽनिष्ट्वा प्रयायात् अकामप्रीता एनं कामा नानुप्रयायुः। अतेजा अवीर्यः स्यात्। स जुहुयात् - तुभ्यं ता अङ्गिरस्तमविश्वाः सुक्षितय पृथक् अग्ने कामाय येमिर इति। काममेवास्मिन् दधाति। कामप्रीता एनं कामा अनुप्रयान्ति। तेजस्वी वीर्यवान् भवति यस्योभयं हविरार्त्तिमार्च्छेत्, ऐन्द्रं पञ्चशरावमोदनं निर्वपेदिति।[1]

कौथुमिः—

अब्दमम्बुघटं दद्यादन्नं चापि सुसञ्चितम्।
संवत्सरे विवृद्धेऽपि प्रतिमासं च मासिकम्॥ इति।

मरीचिः—

प्रतिमासं मृताहे यच्छ्राद्धं च प्रतिवत्सरम्।
मन्वादौ च युगादौ च मासयोरुभयोरपि॥ इति।

---

१. द्रष्टव्यं मीमांसाधिकरणम् ४।७।६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मत्स्यपुराणे—

वर्षे चाहरहः श्राद्धं दानं च प्रतिवासरम्।
गोभूतिलहिरण्यानां मासेऽपि स्यान्मलिम्लुचे ॥ इति।

एवमभक्ष्यापेयवर्जनसन्ध्यावन्दनादिष्वपि विशेषतः साक्षिवचनानि उदाहरणीयानि। सामान्यतस्तु

नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन् मलिम्लुचे ॥

इति बृहस्पतिवचनं पूर्वमेवोदाहृतम्। ननु उदाहृतेषु संग्रहवचनेषु भाद्रपदापरपक्षश्राद्धस्याप्युभयत्र कर्त्तव्यता प्रतीयते महालययुगादिष्विति तत्र पठितत्वात्। सा चोभयत्र कर्त्तव्यता स्मृतिविरुद्धा। महालयाष्टकाश्राद्धेति काठकगृहे वर्ज्यत्वस्मरणं पूर्वमुदाहृतम्।

सभी कामनायें आग में प्रवेश कर जाती हैं। जो अग्न्याधान करके व्रताचरण करता है, वह जब इष्टि न करके मर जाता है तब उसकी कामनायें अकामप्रीता अर्थात् सन्तुष्ट हो करके उसका अनुगमन नहीं करती हैं। वह तेज विहीन या वीर्यव्रीहिन हो जाता है। "तुभ्यं ता" इस मन्त्र से वह हवन करता है।

कौथुमि ने कहा है—एक संवत्सर तक अम्बुघट और अन्न-दान करते हैं। संवत्सर वर्धित होने से प्रत्येक मास में मासिक श्राद्ध करते हैं। मरीचि ने कहा है—प्रतिमास में मृत्युदिवस में 'जो श्राद्ध होता है, प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध, मन्वादि और युगादि श्राद्ध उभय मास में हो सकते हैं।

मत्स्यपुराण में कहा है—संवत्सर में प्रत्यह श्राद्ध, दान, गोदान, भूदान और तिलदान मलमास में भी होते हैं। अभक्ष–अपेयवर्जन और सन्ध्याचन्दन के लिये साक्षिवचन मिलते हैं। साधारणतया नित्य और नैमित्तिक कर्म मलमास में अनुष्ठेय होने के लिये बृहस्पतिवचन इससे पहले उदाहृत हुये हैं।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि उपर्युक्त संग्रह वचनों से भाद्रपद मास के अपरपक्ष श्राद्ध के अनुष्ठान उभयमास में प्राप्त होता है। क्योंकि महालय और युगादि श्राद्ध इनके अन्तर्गत होकर मिलते हैं। इसके विरोध में स्मृति के वचन उपलब्ध होते हैं। काठकगृह्यसूत्र में महालय और अष्टकाश्राद्ध मलमास में वर्जित होने के लिये प्रतिपादक वचन पहले उदाहृत हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भृगुरपि—

वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम्।
राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद् भानुलङ्घिते ॥ इति।

नागरखण्डेऽपि—

नभो वाऽथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत्।
सप्तमः पितृपक्षः स्यात् अन्यत्रैव तु पञ्चमः ॥ इति।

आषाढीमवधिं कृत्वा सप्तमपञ्चमौ द्रष्टव्यौ। आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे इति वचनादाषाढमासस्यान्त्यभागे कर्कटसंक्रान्तौ नभसोऽधिकमासत्वम्। श्रावणमासस्यान्त्यभागे सिंहसंक्रान्तौ नभस्यस्याधिकमासत्वम्। तयोरुभयोरपि पक्षयोः कन्यायां वर्त्तमाने सवितरि यः कृष्णपक्षः स सप्तमो भवति। असति तु द्विविधेऽधिकमासे पञ्चमः। तथा सति सप्तमे विहितस्याऽपरपक्षश्राद्धस्य मलिननभस्यकृष्णपक्षेऽनुष्ठानमयुक्तम्। नायं दोषः। संग्रहवाक्यगतमहालयशब्देन तीर्थविशेषस्य वा मघात्रयोदश्या वा विवक्षणीयत्वात्।

ननु मलिम्लुचान्यामासेषु "मृतानां श्राद्धमाब्दिकमिति प्रतिसंवत्सरं प्राप्यमाणस्य मृतश्राद्धस्य मासद्वयकर्त्तव्यता संग्रहे दर्शिता। सा न युक्ता मलमासे तन्निषेधात्। तथा च सत्यव्रतः—

वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
मलमासे न कर्त्तव्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा ॥ इति।

सत्यतपाः—

वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मृताऽहनि मलिम्लुचे।
कुर्यात्तत्र प्रमीतानामन्येषामुत्तरत्र तु ॥ इति।

भृगु ने भी कहा है—वृद्धिश्राद्ध, सोमयाग, अग्न्याधान, महालय, अभिषेक और काम्य कर्म असंक्रान्त मलमास में नहीं होते हैं। नागरखण्ड ने कहा है—नभ या नभस्य मास जब मलमास होते हैं तब सप्तम पक्ष पितृपक्ष होता है, अन्यत्र पंचमपक्ष पितृपक्ष के रूप में ग्रहणीय होता है।

"आषाढीमवधिं कृत्वा" इस वचन के अनुसार आषाढ मास के अन्तिम भाग में कर्कटसंक्रान्ति में श्रावणमास अधिमास हो जाता है। श्रावणमास के अन्त में सिंहसंक्रान्ति में भाद्रपद मास अधिक होता है। ये उभयपक्ष में जब कन्या में सूर्य अवस्थान करते हैं, तब तो कृष्णपक्ष होता है, वह सप्तम होता है, अन्यथा सर्वदा पंचम पक्ष ही अधिमास होता है। ऐसा होने से मलिन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष में सातवाँ में विहित अपरपक्ष श्राद्ध के अनुष्ठान ठीक नहीं है। किन्तु इसमें कोई दोष नहीं है। संग्रह वाक्यगत महालय शब्द के द्वारा तीर्थविशेष या मघात्रयोदशी विवक्षित होती है।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि कालादर्शकार ने जो संग्रह किया है इसमें कहा है–मलमास से भिन्नमास में मृत को सांवत्सरिक श्राद्ध प्रतिसंवत्सर के शुद्ध और मल उभयमास में हो सकता है। किन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि मलमास में इसके अनुष्ठान बाधित होने के लिये वचन उपलब्ध होता है। सत्यव्रत ने कहा है—व्याघ्रवचन के अनुसार पिता और माता के प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध मलमास में नहीं किया जा सकता। सत्यतपा ने कहा है—मलमास में मृत के श्राद्ध मलमास में हो सकता है। दूसरों के श्राद्ध शुद्ध उत्तरमास में होता है।

पैठीनसिः—

मलमासमृतानां तु श्राद्धं यत् प्रतिवत्सरम्।
मलमासे तु कर्त्तव्यं नान्येषां तु कदाचन॥ इति।

अतः शुद्धमासमृतानां मलमासे मृताहश्राद्धकर्तव्यताविधानमयुक्तम्। नैष दोषः। तस्याभिधानस्य प्रथमाब्दिकविषयत्वात्।

आब्दिकं प्रथमं यत् स्यात्तत् कुर्वीत मलिम्लुचे।

इतिस्मरणात्। तथा हारीतोऽपि—

असंक्रान्तेऽपि कर्त्तव्यमब्दिकं प्रथमं द्विजैः।
तथैव मासिकं श्राद्धं सपिण्डीकरणं तथा॥ इति।

लघुहारीतोऽपि—

प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः।
क्वचित्त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्॥ इति।

अत्र द्वादशे पूर्णे सति अनन्तरदिने कार्येति व्याख्येयम्॥

मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि।
प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः॥

इति व्यासेनाब्दिकदिनस्य विशेषितत्वात्। केचित्तु "आद्यं मुक्त्वा तु वत्सर"मित्येतदन्तराधिमासेऽपि योजयित्वा कार्त्तिकप्रमीतस्य प्रथमाब्दिकमाश्वयुजे कुर्वन्ति। तदयुक्तम्। मासपक्षेतिवचनविरोधात्। अन्तिमाऽधिमासविषये तु यथोक्तरीत्योपपद्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्माच्छुद्धमासप्रमीतानां प्रथमाऽब्दिकं मलमासे कर्तव्यम्, द्वितीयाऽब्दिकं शुद्धमास इत्येतया विवक्षयोभयत्र कर्त्तव्यतोक्ता ॥

पैठीनसि ने कहा है—मलमास में मृत लोगों के श्राद्ध मलमास में किया जाता है; दूसरों का नहीं। अतः शुद्धमास में मृत लोगों का मलमास में श्राद्ध कराना ठीक नहीं है। इसमें कोई दोष नहीं है। ये सब वचन पहला सांवत्सरिक श्राद्ध के लिये प्रयुक्त होते हैं। "आब्दिकं प्रथमं तु यत्" इस वचन के अनुसार प्रथम सांवत्सरिक श्राद्ध मलमास में होता है। हारीत ने कहा है—संक्रान्तिरहित मलमास में पहला सांवत्सरिक श्राद्ध द्विज लोगों द्वारा किया जाता है। इसी तरह मासिक श्राद्ध और सपिण्डीकरण भी होता है।

लघुहारीत ने कहा है—प्रतिसंवत्सर पुत्रों द्वारा पितृश्राद्ध बारह मासों में किया जाता है, किन्तु तेरहवें मासमें अर्थात् मलमास में पहला अशुद्ध को छोड़कर शुद्ध में किया जा सकता है। यहाँ बारहमास की समाप्ति के अनन्तर दिन में श्राद्ध किया जा सकता है, ऐसी व्याख्या करनी चाहिये। मास, पक्ष, तिथि को लेकर जो जिस दिवस में करता है, उसी रीति के अनुसार प्रत्याब्दिक श्राद्ध होता है। वह दिवस ही उसके मृताह तिथि के रूप में परिगणित होता है, ऐसा व्यास ने कहा है।

कुछ लोग "आद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्" इस वचन के अनुसार इस मास के बीच में अधिमास को जोड़कर कार्तिकमास में मृत के श्राद्ध आश्विन में करते हैं। यह ठीक नहीं है, क्योंकि इसी रीति के अनुसार "मासपक्ष" वचन का विरोध हो जाता है। अन्तिम अधिमास के विषय में रीति लागू होती है। इस सिद्धांत के अनुसार शुद्धमास में मृत लोगों के प्रथमाब्दिक श्राद्ध मलमास में होता है। द्वितीयाब्दिक श्राद्ध प्रभृति शुद्धमास में होता है। इसी विवक्षा से उभयविध मास श्राद्ध की कर्त्तव्यता प्राप्त हुई।

मलमासमृतानां यदि कदाचित् स एव मास आगतस्तदा तत्प्रत्याब्दिकं मलमासे एव कर्त्तव्यं न तत्तूपरितने शुद्धमासे। तथा च भृगुः—

मलमासमृतानां तु यच्छ्राद्धं प्रतिवत्सरम् ।
मलमासे तु तत्कार्यं नान्येषां तु कदाचन ॥ इति

अतो मलमासमृतानां तु कादाचित्कं प्रत्याब्दिकं मलमासे कार्यम्। शुद्धमासमृतानां च प्रथमाब्दिकं तत् कार्यम्। द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमास इति।

६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतं निर्णयमभिप्रेत्य—

'श्राद्धीयेऽहनि संप्राप्ते मलमासो भवेद्यदि ।
मासद्वयेऽपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न लुप्यते ॥
षष्ठ्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः ॥
उत्तरे दैवकर्माणि पितृकार्याणि चोभयो-

रित्यादीनि वचनानि प्रवृत्तानि । क्षयमासस्य मलमासत्वेऽपि तत्र च निषेधः ।

वर्षे वर्षे तु यत् श्राद्धं माता-पित्रोर्मृताहनि ।
मासद्वयेऽपि तत् कुर्याद् व्याघ्रस्य वचनं यथा ॥

इति स्मरणात् । अत्र मासद्वयेऽपीति सङ्क्रान्तिद्वयात्मके क्षयोपरमासे इत्यर्थः[२] ॥

अनित्यमनिमित्तं चेत्यादिना यानि वर्ज्यानि संगृहीतानि तेषु स्मृतय उदाह्रियन्ते ।

तत्र वृद्धमनुः—

अऽग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥
माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ।
बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तमुपागते ॥
मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ॥ इति

पैठीनसिज्योतिःपराशरयोरप्येवमेव पाठः । कौथुमिः—

अधिमासे न कर्त्तव्ये श्राद्धे संवत्सराब्दिके
वर्षवृद्ध्यभिषेकादि कर्त्तव्यमधिके न तु ॥
अधिमासे न कर्त्तव्यं श्राद्धमाभ्युदयं तथा ।
तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरान् प्रथमाद्दते ॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत् किञ्चिच्छ्राद्धिकं द्विजैः ।
इष्टं वाप्यथवा पूर्त्तं तन्न कुर्यान्मलिम्लुचे ॥ इति ।

मलमास में अगर कोई मरता है या उसका पहला संवत्सर का श्राद्ध मलमास में पड़ता है तो उस मलमास में ही उसका पहला संवत्सर का

१—ख पुस्तके पूर्णपाठः

२—ख' पुस्तके पाठोऽयं पूर्णतयोपलब्धः पुस्तकान्तरेषु नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्राद्ध होता है; किन्तु शुद्धमास में नहीं। भृगु ने कहा है—मलमास में मृत लोगों का श्राद्ध मलमास में होता है, दूसरों का नहीं। अतः मलमास में मृत लोगों का श्राद्ध मलमास में होता है। दूसरा संवत्सर का श्राद्ध शुद्धमास में होता है। इस निर्णय को लेकर "श्राद्ध के लिये निश्चित दिवस प्राप्त होने पर मलमास हो जाने से दोनों ही मासों में श्राद्ध किया जाता है। श्राद्ध का लोप नहीं हो सकता। बादरायण व्यास ने कहा है कि साठ दिनों का मलमास होने पर उत्तरार्ध में देवकार्य और दो भागों में पितृकार्य होते हैं।" इस वचन की प्रवृत्ति हुई। क्षयमास भी मलमास है, इसलिये वहां भी निषेध है। क्यों कि स्मृत्ति में मिलता है कि व्याघ्र वचन के अनुसार हर साल में पिता और माता के मृत्यु दिवस में जो श्राद्ध किया जाता है, वह दो मासों में भी किया जाता है। यहां 'मासद्वय में भी' दो संक्रातिओं के योग से क्षय भिन्न मास ऐसा अर्थ मालूम पड़ता है। संग्रह में अनित्य और अनिमित्त के बारे में जो कहा गया है, उनके समर्थक स्मृति वचन मिलते हैं—

वृद्ध मनु ने कहा—अग्न्याधान, देवताप्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत वेदारंभ वृषोत्सर्ग, चूडाकरण, व्रतोपनयन, विवाह और अभिषेक मलमास में नहीं होते हैं। शुक्र के बाल, वृद्ध और अस्त की अवस्था मलमास की तरह होती है। उसमें भी ये सब वर्जनीय हैं। पैठिनसि और पराशर के ज्योतिशास्त्र में इसी तरह पाठ मिलता है।

कौथुमि ने कहा है—अधिमास में आब्दिकश्राद्ध और अभिषेक नहीं होते हैं। अधिमास में आभ्युदयिक श्राद्ध, काम्य कर्म, सपिण्डीकरण से ऊर्ध्व अन्य श्राद्ध, इष्ट, पूर्त्तकाम नहीं होते हैं।

असंक्रान्तं प्रकृत्य ज्योतिःशास्त्रे—

तत्र दत्तमदत्तं वा हुतं न हुतमेव वा।
सुजप्तमप्यजप्तं स्यान्नोपवासः कृतं भवेत् ॥
न यात्रां न विवाहं तु न च वास्तुनिवेशनम्।
न प्रतिष्ठां च देवानां प्रासादग्रामभूरुहाम् ॥
न हिरण्यं न वासांसि कारयेदिति निश्चयः ॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठा यज्ञकर्म च ।
न कुर्यान्मलमासे च महादानफलानि च ॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महादानानि तुलापुरुषादीनि षोडशापि मत्स्यपुराणोक्तानि। कनकादीनि दश कूर्मपुराणोक्तानि। एवमन्यान्यपि प्रतिषेधवचनान्युदाहरणीयानि। उपाकर्मोत्सर्जनं चेत्यादिना शुद्धमास एव कर्तव्यान्युक्तानि।

तत्र ज्योतिःपराशरः—

रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मलिम्लुचः।
तत्र यद्विहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत्॥ इति।

प्रजापतिः—

उपाकर्म च हव्यं च कव्यं पर्वोत्सवं तथा।
उत्तरे नियतं कुर्यात् पूर्वे तन्निष्फलं भवेत्॥ इति।

हारीतोऽपि—

उपाकर्म तथोत्सर्गं काम्यमुत्सवमष्टकाः।
मासवृद्धौ पराः कार्या वर्जयित्व तु पैतृकम्॥

ज्योतिः पितामहोऽपि—

मासः कन्यागते भानावसंक्रान्तो भवेद्यदि।
दैवं पित्र्यं तदा कर्म तुलास्थे कर्त्तुरक्षयम्॥ इति।

असंक्रान्त प्रकरण को लेकर ज्योतिष में कहा है—इसमें दत्त अदत्त होता है। हवन अहवन होता है। जप अजप होता है। उपवास नहीं किया जाता। यात्रा, विवाह, गृहप्रवेश, देवता, प्रासाद और ग्रामों की प्रतिष्ठा, वृक्षरोपण, हिरण्य दान, वस्त्र दान नहीं होते हैं। अन्य स्मृति में कहा है—वापी, कूप, पुष्करिणी की प्रतिष्ठा, यज्ञ कर्म नहीं किये जाते हैं।

तुलापुरुष दान प्रभृति महादान के रूप में सोलह प्रकार का मत्स्य पुराण में प्रसिद्ध है। सुवर्णदान दश प्रकार का कर्म पुराण में कहा है। इसी तरह प्रतिषेध वचन उदाहरण के रूप में मिलते हैं। उपाकर्म और उत्सर्ग शुद्धमास में अनुष्ठान के लिये कहे गये हैं।

ज्योतिपराशर ने कहा है—रवि के द्वारा लंघित चान्द्रमास मलमास होता है। उसमें विहित कर्म उत्तर शुद्धमास में किया जाता है। प्रजापति ने कहा है—उपाकर्म, हव्य, कव्य, पर्व, उत्सव उत्तरमास में किये जाते हैं, पूर्व मलमास में ये सब निष्फल हो जाते हैं। हारीत ने कहा है—उपाकर्म, उत्सव, काम्य और अष्टकाश्राद्ध मास वृद्धि होने से परवर्त्ती शुद्धमास में किये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाते हैं किन्तु पितृकर्म को छोड़कर। ज्योति पितामह ने कन्या राशि में रवि की अवस्थिति के समय अगर असंक्रान्त मास हो गया तो दैव और पितृकर्म तुलाराशि में रवि की अवस्थिति के समय होते हैं ऐसा कहा है।

अत्र कन्यागते सवितरि योऽसंक्रान्तः असौ मलिन आश्वयुजः भाद्रपदान्ते कन्याप्रवेशात्। एवं च सति कन्यामुपजीव्य विहितं यद्दैवं पित्र्यं च तन्मलिन आश्वयुजे न कर्त्तव्यं, किं तर्हि, तुलासंक्रान्त्युपेते शुद्ध अश्वयुजे।

नन्वेवं सति महालयापरपक्षश्राद्धस्यापि तुलामासे कर्त्तव्यता प्रसज्यते। तस्यापि कन्यामुपजीव्य विहितत्वात्। तथा च पुराणम् —

कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ इति।

मैवम्। भाद्रपदकृष्णपक्षस्य कन्यासंक्रान्तिस्पर्शित्वेन कन्योपजीविनोऽप्यपरपक्षस्य तुलामासेऽनुष्ठातुमशक्यत्वात्। तथा च कार्ष्णाजिनिः—

अन्ते वा यदि वा मध्ये यत्र कन्यां रविर्व्रजेत्।
स पक्षः पञ्चमः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति॥ इति।

बृहन्मनुरपि—

मध्ये वा यदि वाऽप्यन्ते यत्र कन्यां रवि व्रंजेत्।
स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धं तत्र विधीयते॥ इति।

किञ्च, नेदमपरपक्षश्राद्धं कन्यामुपजीवति तस्यामनादरस्मरणात्।

तथा च जातूकर्ण्यः—

आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात् पक्षस्तु पञ्चमः।
श्राद्धकालः स विज्ञेयः कन्यां गच्छतु वा न वा॥ इति।

कन्या में रवि की अवस्थिति के समय जो असंक्रान्त मास वह आश्विन मास का मल होता है। क्योंकि भाद्रपद के अन्त में कन्या का प्रवेश होता है। इसलिये कन्या को लेकर विहित जो दैव और पितृकर्म उनको आश्विन मलमास में नहीं करते हैं। तुला-संक्रान्ति युक्त शुद्ध आश्विन में करते हैं।

यहाँ एक प्रश्न आता है—कि महालया के अपरपक्ष श्राद्ध तुलामास में आ जाता है किन्तु उसको कन्या में करने के लिये विधान है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुराण में कहा है—कन्या में रवि की अवस्थिति के समय जो सोलह दिन होते हैं, याग की तरह उनकी प्रधानता आती है। उस समय में पितृ लोक के लिये प्रदत्त पदार्थ अक्षय होता है। ऐसा ठीक नहीं। भाद्रपद कृष्ण पक्ष कन्या संक्रान्ति को स्पर्श करने से कन्या को घरने वाला अपरपक्ष श्राद्ध तुला मास में अनुष्ठान नहीं किया जा सकता। कार्ष्णाजिनि ने कहा है। अन्त में हो या बीच में हो जब सूर्य कन्याराशि में रहते हैं वह पक्ष सोलह श्राद्ध के लिये पूज्य है। बृहन्मनु भी कहते हैं—बीच में या अन्त में जब रवि कन्या को जाते हैं वह पक्ष सबसे पूज्य और श्राद्ध के लिये सबसे प्रशस्त है।

लेकिन और भी एक प्रश्न आता है कि अपरपक्ष श्राद्ध कन्या राशि को आश्रय करके नहीं होता है। इसके लिये कन्या का अनादर सूचक प्रमाण उपलब्ध होता है। जातुकर्ण्य ने कहा है—आषाढ़ मास को अवधि करके जो (पंचम) पाँचवाँ पक्ष होता हे वह श्राद्ध के लिये प्रशस्त है। उसमें कन्या हो या न हो।

अतः "कन्यागते सवितरि" इति वचनं कृष्णपक्षस्य कन्यायोगं प्रशंसति। अत एव क्रतुभिस्तानि तुल्यानीति तत्रैवोक्तम्। एवं सति तुलास्थे कर्त्तुरक्षयमिति वचनं महालयव्यतिरिक्तविषयम्।

अथवा महालयस्यापि गौणकालनिषेधात् तदर्थं तदस्तु। तथाहि कन्यासंक्रान्तियुक्तो भाद्रपदकृष्णपक्षस्तस्य मुख्यः कालः। केनापि निमित्तेन मुख्यकालासंभवे यावद्वृश्चिकदर्शनं तस्य गौणकालः स्मृतिसिद्धः। तत्र किं कन्यायुक्ते मलिनाश्वयुजे तच्छ्राद्धं कर्त्तव्यम् उत कन्यारहिते तुलोपेते शुद्धाश्वयुजे इति वीक्षायां तुलास्थे कर्त्तुरक्षयमिति विधीयते। एवमन्यान्यपि उत्तरमासैककर्त्तव्यविषयाणि वचानान्यप्युदाहार्याणि।

तदेवं कार्याकार्यविवेकः पञ्चधा संपन्नः। तत्र किञ्चिन्मलमास एव कर्त्तव्यम्। तद्यथा—मलमासमृतानां यदा कदाचित् प्रत्याब्दिकम् अन्यमासमृतानां प्रथमाब्दिकं च किञ्चित् शुद्धमास एव कर्त्तव्यम्। तद्यथोपाकर्मादि। किञ्चिदुभयत्रापि कर्त्तव्यम्। तद्यथाब्दोदकादि। किञ्चिदुभयोरन्यतरस्मिन्निमित्तवशात् कर्त्तव्यम्। तद्यथा द्वादशाहसपिण्डान्तादि। किञ्चिन्मलमासे वर्ज्यम्। तद्यथा अनित्यमनिमित्तं चेत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ मलमासस्यैव द्विराषाढसंज्ञको विशेष उच्यते। तत्र वृद्धमिहिरः—

माधवाद्येषु षट्स्वेकमासि दर्शद्वयं यदा।
द्विराषाढः स विज्ञेयः शेते कर्कटकेऽच्युतः॥ इति।

इयं च द्विराषाढसंज्ञा उत्तराभविनि संवत्सरे हरिस्वापविवेकायोपयुज्यते। अत एव वृद्धमिहिरः—

मेषादिमिथुनान्तेषु यदा दर्शद्वयं भवेत्।
अब्दान्तरे तदावश्यं मिथुनार्के हरिः स्वपेत॥
कर्कटादित्रिके वापि यदा दर्शद्वयं भवेत्।
अब्दान्तरे तदावश्यं कर्काटके हरिः स्वपेत्॥ इति।

इति मलमासनिर्णयः॥

अतः "कन्यागते सवितरि" यह वचन कृष्णपक्ष के कन्या योग की प्रशंसा करता है। इसलिए याग के साथ इसकी तुल्यता आती है। ऐसे होने से "तुलास्थे कर्त्तरक्षयम्" यह वचन महालय व्यतिरिक्त विषय में उपयुक्त होता है।

अथवा महालय का गौण काल निषिद्ध होने से उस परक यह वचन हो। ऐसा होने से कन्या संक्रान्तियुक्त भाद्र पद का कृष्ण पक्ष इसके लिए मुख्य काल है। कुछ निमित्त कारण से अगर मुख्य काल की संभावना नहीं होती तो वृश्चिक मास के दर्शन तक उसके गौणकाल स्मृति शास्त्र में प्रसिद्ध है। यहाँ कन्यायुक्त आश्विन मल में वह श्राद्ध करणीय है या कन्या रहित तुलायुक्त शुद्ध आश्विन में करणीय है। ऐसी शंका में "तुलास्थे कर्त्तरक्षयम्" य वचन व्यवस्थित होता है। इसी तरह उत्तर मास में कर्त्तव्य को सूचित करने के लिए वचन उदाहरणीय है।

इस प्रकार पाँच प्रकार कार्याकार्यविवेचन हुआ। मलमास में कुछ क्रिया जाता है। मलमास में मरने वालों का जब वार्षिक श्राद्ध आता है और मासान्तर में मरने वालों का पहला सांवत्सरिक श्राद्ध मलमास में आता है तो मलमास में ही श्राद्ध होता है। कुछ कर्म शुद्ध मास में किए जाते हैं। यथा—उपाकर्म। कुछ उभयमास में किये जाते हैं। यथा—जलादान प्रभृति। कुछ कर्म उभयमास के अन्यभाग में गत्यन्तरवशात् किये जाते हैं। यथा—सपिण्डीकरण। कुछ मलमास में छोड़ दिये जाते हैं। यथा—अनित्य कर्म, अनिमित्त कर्म इत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मलमास की द्विराषाढसंज्ञा को लेकर कुछ विशेष कहा जाता है। वृद्ध-मिहिर ने कहा है—माधव मास से लेकर छ महिने के अन्दर कोई एक महीने में दो अमावास्या हो गई तो इस मास को द्विराषाढ कहा जाता है, भगवान् अच्युत के शयन कर्कट में होता है।

इसी द्विराषाढ संज्ञा परवर्त्ती संवत्सर में हरिशयन के लिए उपयोग किया जाता है। वृद्धमिहिर ने कहा है—मेष से लेकर मिथुन मास के अन्दर कुछ मास में अगर दो दर्श होता है तो परवर्त्ती संवत्सर के मिथुन में हरिशयन होता है। कर्कट से लेकर तीन महिने के भीतर कुछ मास में दो अमावास्या आ गई तो परवर्त्ती वर्ष में कर्कट में हरिशयन होता है।

यहाँ मलमास निर्णय समाप्त हुआ।

अथपक्षः

पक्षशब्दः पक्षपरिग्रहे इत्यस्माद्धातोर्निष्पन्नः। देवकार्यार्थं वा पितृकार्यार्थं वा पक्ष्यते परिगृह्यते यः कालविशेषः स पक्षः। अथवा चन्द्रस्य पञ्चदशानां कलानामापूरणं क्षयो यस्मिन् गृह्यते स पक्षः। तथा च वाजसनेयिनश्चन्द्ररूपस्य संवत्सरनिर्वाहकस्य प्रजापतेः कलापूरणाय क्षयाय चाऽऽमनन्ति। स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः। तस्य रात्रय एव पञ्चदशकलाः ध्रुवैवास्य षोडशी कला। स रात्रिभिरेवावपूर्यतेऽपक्षीयत इति।

तथात एव पञ्चाग्निविद्यायां दक्षिणोत्तरमार्गयोः कृष्णशुक्लपक्षावपक्षयपूरणात्मकौ इष्टापूर्त्तादिकारिभिरुपासकैश्च प्राप्येते इति पठन्ति। "अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकं जयन्ति ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमिति ते य एवमेतद्विदुः"। ये चामी अरण्ये श्रद्धामुपासते तेऽर्चिरभिसंभवन्ति अर्चिषोऽहरह आपूर्यमाणपक्ष इति च।

तैत्तिरीयाश्च सावित्रचयने पूर्वोत्तरपक्षौ प्रत्येकं पञ्चदशाहोरात्रकावामनन्ति संज्ञानं विज्ञानं दर्शादृष्टेति एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि। प्रस्तुतं विष्टुतं सुता सुन्वतीत्येतावनुवाकावुत्तरपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानीति।

यहाँ पक्ष के विषय मे विवेचना की जाती है। परिग्रह अर्थ को प्रकाश करने वाला पक्ष धातु से पक्ष शब्द की निष्पत्ति होती है। देवकार्य के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिये या पितृकार्य के लिए जो काल परिगृहीत होता है उसको पक्ष कहते हैं। अथवा—चन्द्र की पन्द्रह कला के पूरण और क्षय को परिगृहीत करने वाला काल विशेष पक्ष नाम से अभिहित होता है। शुक्ल यजुर्वेदी संवत्सर को निर्वाह करने वाला चन्द्ररूप प्रजापति के कला पूरण करने के लिये कहते हैं—ऐसा प्रजापति रूपक संवत्सर की सोलह कला है। इसी में पन्द्रह कला रात्रि होती हैं। सोलहवाँ कला नित्य शाश्वत है। इसका नाश नहीं होता है। इसी पन्द्रह कला के द्वारा क्षय वृद्धि होती है।

अत एव पंचाग्नि विद्या में इष्टापूर्त्त कार्य करने वाले उपासक लोग कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष को लेकर कृष्ण में क्षय और शुक्ल में पूरण को लक्ष्य करते हैं। जो यज्ञ, दान और तपस्या के द्वारा लोक को जय करते हैं वे धूम रात्रि में जन्म लेते हैं। धूम से रात्रि और रात्रि से जो कृष्णपक्ष लक्षित होता है।

वे लोग इसको ऐसा जानते हैं। जो लोग अरण्य में श्रद्धा की उपासना करते हैं वे ज्योतिर्लोक में जन्म लेते हैं। ज्योति से दिन और दिन से शुक्ल पक्ष लक्षित होता है।

तैत्तिरीय शाखा वाले कहते हैं कि सावित्रचयन में पन्द्रह अहोरात्र विशिष्ट प्रत्येक पक्ष को संज्ञान, विज्ञान दर्शादृष्ट के नाम से मानते हैं। ये दोनों अनुवाक उत्तर अहोरात्र के नाम होता है।

अयमर्थः। संज्ञानं विज्ञानमित्येकोऽनुवाको मन्त्रकाण्डे पठितः। तस्मिन्ननुवाके शुक्लपक्षस्याह्नां नामधेयानि पञ्चदश नपुंसकानि पठ्यन्ते। दर्शादृष्टेत्यपरोऽनुवाकः। तत्र शुक्लपक्षस्य रात्रीणां नामधेयानि पञ्चदश स्त्रीलिङ्गानि पठितानि। तथा प्रस्तुतं विष्टुतमित्येकोऽनुवाकः। सुता सुन्वतीत्यपरोऽनुवाकः। तावुभौ कृष्णपक्षविषयौ पूर्ववद् योजनीयाविति। ते चाऽनुवाका एवं श्रूयन्ते-संज्ञानं विज्ञानं जानदभिजानत् संकल्पमानं प्रकल्पमानमुपकल्पमानमुपकॢप्तं कॢप्तं श्रेयो वसीय आयत्संभूतं भूतम्। दर्शा दृष्टा दर्शना विश्वरूपा सुदर्शना आप्यायमाना प्यायमाना प्याया सूनृता इरा आपूर्यमाणा पूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पौर्णमासी। प्रस्तुतं विष्टुतं संस्तुतं कल्याणं विश्वरूपं शुक्रममृतं तेजस्वि तेजः समिद्धम्। अरुणं भानुमन्मरीचिमदभितपत्तपस्वत्। सुता सुन्वती प्रसुता सूयमानाऽभिषूयमाणा पीती प्रपा संपा तृप्तिस्तर्पयन्ती कान्ता काम्या कामजाताऽऽयुष्मती कामदुघेति॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका अर्थ यह है कि—संज्ञान, विज्ञान एक ही अनुवाक मन्त्र कांड में मिलता है। इस अनुवाक में शुक्लपक्ष के दिनों से पन्द्रह नाम नपुंसक होते हैं। दर्शाद्दृष्टा एक दूसरा अनुवाक होता है। इसमें शुक्लपक्ष की रात्रियों के पन्द्रह नाम स्त्रीलिंग मिलते हैं। प्रस्तुत विष्टुत एक अनुवाक होता है। सुता सुन्वती दूसरा अनुवाक होता है। ये दोनों कृष्णपक्ष में विनियुक्त होते हैं। ये सब प्रकार के अनुवाक यथा—संज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, जानद, अभिजानत्, संकल्पमान, प्रकल्पमान, उपकल्पमान, उपक्लृप्त, क्लृप्त, श्रेय, वसीय, आयत् संभूत, भूत। दर्शा, दृष्टा, दर्शना, विश्वरूपा, आप्यायमाना, प्यायमाना, प्याया, सूनृता, इरा, आपूर्यमाणा, पूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा पौर्णमासी, प्रस्तुत, विष्टुत, संस्तुत, कल्याण, विश्वरूप, शुक्र, अमृत, तेजस्वि; तेज, समिद्ध, अरुण, भानुमत्, मरीचिमद्, अभितपत्, तपस्वत। सुता सुन्वती, प्रसूता, सूयमाना, अभिषूयमाणा, पीती, प्रपा, संपा, तृप्ति, तर्पयन्ती, कान्ता, काम्या, कामजाता, आयुष्मती, कामदुघा ॥

रूढो वाऽयं पक्षशब्दः। स च द्वेधा विभक्तस्य मासस्यैकैकमर्धं ब्रूते। पञ्चदशस्तोमनामकेन सामसमूहेन मध्ये छिन्नस्य[1] त्रिवृत्स्तोमनामकस्य सामसमूहस्य पूर्वोत्तरभागाभ्यामुत्पन्नत्वात्तयोः पूर्वापरपक्षत्वम्। तौ च द्वौ पक्षावनुदेवानामसुराणां च क्रमेण सृष्टत्वात्तयोः पक्षयोः प्रशस्तत्वाप्रशस्तत्वे। तदेतत् सर्वं होतृब्राह्मणे तैत्तिरीयाः पठन्ति। प्रजापतिरकामयत प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत स त्रिवृतं स्तोममसृजत्। तं पञ्चदशस्तोमो मध्यत उदतृणत्। तौ पूर्वपक्षश्चापरपक्षश्चाभवताम्। पूर्वपक्षं देवा अन्वसृज्यन्त। अपरपक्षमसुराः ततो देवा अभवन् परासुराः। यं कामयेत वसीयान् स्यादिति तं पूर्वपक्षे याजयेत्। वसीयानेव भवति। यं कामयेत पापीयान् स्यादिति तमपरपक्षे याजयेत् पापीयानेव भवति। तस्मात् पूर्वपक्षोऽपरपक्षात् कारुण्यतर इति। वसीयान् वसुमत्तरः। पापीयान् द्रव्यहीनः। कर्तॄणां शुभफलप्रापकत्वेन करुणामतिशयेनार्हतीति कारुण्यतरः। तदेवमस्मिन् प्रकरणे संवत्सरायणर्त्तुमासपक्षा निर्णीताः ॥

इति माधवीये कालनिर्णये संवत्सराख्यं द्वितीयं प्रकरणम् ॥

—००✕००—

१—स्थितस्य इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ विचारक पक्ष शब्द को रूढ़ की तरह मानते हैं। मास को दो भागों में विभक्त करने से एक ही भाग पक्ष के नाम से अभिहित करते हैं। पंचदशस्तोम नामक एक साम समूह के द्वारा बीच में छिन्न होने वाला त्रिवृत्सोम नामक साम समूह के पूर्व और उत्तर भाग के द्वारा पूर्व और अपर पक्ष उत्पन्न होते हैं। इन दोनों पक्षों की सृष्टि देवता और असुर के पीछे हुई। इसलिए एक पक्ष प्रशस्त और दूसरा पक्ष अप्रशस्त होता है। इसके बारे में होतृब्राह्मण में तैत्तिरीय शाखा वाले पढ़ते हैं। प्रजाप्राप्ति के लिए प्रजापति ने कामना की। तपस्या करके त्रिवृत्स्तोम की सृष्टि की। पन्द्रह स्तोम के अन्दर उसको रख दिया। फलतः पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष हो गये। पूर्वपक्ष को देवता लोग और अपरपक्ष को असुर लोग ले गए। देवताओं से फलप्राप्ति के लिए पूर्वपक्ष में अर्थात् शुक्लपक्ष में याग किया जाता है। असुरों को सन्तुष्ट कराने के लिए अपर पक्ष में अर्थात् कृष्णपक्ष में याग नहीं किया जाता है। अतः अपरपक्ष से पूर्वपक्ष या शुक्ल पक्ष कारुण्यतर होता है। वसीयान् धनराशि होता है। पापीयान् द्रव्यहीन होता है। कर्त्ता को शुभ फल देने के लिए करुणा से युक्त शुक्लपक्ष कारुण्यतर होता है। इसी प्रकार इस प्रकरण में संवत्सर, अयन, ऋतु, मास और पक्ष के बारे में निर्णय हुआ।

माधवीय कालनिर्णय ग्रन्थ में संवत्सर नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ तृतीयं प्रतिपत्प्रकरणम्

अथ तिथयो निर्णीयन्ते। तत्र तिथिशब्दस्तनोते र्धातो र्निष्पन्नः। तनोति विस्तारयति वर्धमानां क्षीयमाणां वा, चन्द्रकलामेकां यः कालविशेषः सा तिथिः। यद्वा यथोक्तकलया तन्यत इति तिथिः। तदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ —

तन्यते कलया यस्मात्तस्मात्तास्तिथयः स्मृताः॥ इति

एतदेवाभिप्रेत्य स्कान्दे पठ्यते —

अमा षोडशभागेन देवि प्रोक्ता महाकला।
संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी॥
अमादिपौर्णमास्यन्ता या एव शशिनः कलाः॥
तिथयस्ताः समाख्याताः षोडशैव वरानने॥ इति

अयमर्थः—या महामाया आधारशक्तिरूपा देहिनां देहधारिणी संस्थिता सा चन्द्रमण्डलस्य षोडशभागेन परिमिता चन्द्रदेहधारिणी अमानाम्नी महाकलेति प्रोक्ता, क्षयोदयरहिता नित्या तिथिसंज्ञकैव। इतरा अपि पञ्चदश कलाः दिवसव्यवहारोपयोगिन्यः क्षयोदयवत्यः पञ्चदश तिथयो भवन्तीति तिथयः षोडशैवेत्यविरुद्धं वचनमिति।

अब तिथि निर्णय हो रहा है। तिथि शब्द विस्तार अर्थ को प्रकाश करने वाला तनु धातु से निष्पन्न है। बढ़ने वाली और क्षय होने वाली चन्द्रकला को विस्तार करता है जो विशेष काल में उस को तिथि कहा जाता है। अथवा प्रकरण प्रतिपादित काल के द्वारा विस्तृत करता है जो विशेष काल वह तिथि है। यह विषय सिद्धान्तशिरोमणि में कहा गया है। इस विषय को लक्ष्य करके स्कन्दपुराण में कहा है कि हे देवि! सोलह भागों से विभक्त होकर अमाके नाम से परिचित जो महाकला वही माया और परमा, शरीरधारियों के लिये शरीरधारण करती है। हे शोभन मुख वाली! अमासे लेकर पौर्णमासी तक चन्द्र की जो कलाएँ हैं उन्ही को तिथि के नाम से अभिहित किया जाता है।

इसका अर्थ यह है कि जो महामया आधारशक्तिरूपा देहिओं की देहधारण होकर विराजमान है, चन्द्रमण्डल के सोलह भागों से परिमित चन्द्रदेह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धारिणी अमानाम से परिचित होती है उसी को महाकला कहते हैं। उसकी वृद्धि और क्षय नहीं होती है। वह नित्य और तिथि संज्ञा से अभिहित होती है। अन्य पन्द्रह कलाएँ दिन के रूप में व्यवहार के लिये उपयोगी होती हैं। इन्हीं के क्षय और वृद्धि होती है। तिथि के नाम से अभिहित होकर अमा कला के साथ सोलह कला होने के लिये कोई विरोध वचन नहीं है।

श्रुतिस्त्वस्मिन्नेवार्थे पक्षनिर्णय एवोदाहृता। 'तस्य रात्रयः पञ्चदश कला ध्रुवैवास्य षोडशी कलेति।

एवं सत्यत्र सामान्यविशेषरूपेण तिथिद्वैविध्यमुक्तं भवति। तत्र येयममेत्युक्ता क्षयोदयवर्जिता ध्रुवा षोडशी कला, तद्युक्तः कालस्तिथिसामान्यम्। यास्त्ववशिष्टा वृद्धिक्षयोपेताः पञ्चदश कलास्ताभिर्विशिष्टाः कालविभागास्तिथिविशेषास्तासां पञ्चदशानामेकैकां कलां वह्न्यादयः प्रजापत्यन्ताः पञ्चदश देवताः क्रमेण पिबन्ति।

तत्र वह्निपेया कला प्रथमं पीयत इति प्रथमेत्युच्यते। तया युक्तः कालविशेषः प्राथम्यवाचिना प्रतिपच्छब्देनाभिधीयते। एवं द्वितीयादीनां पञ्चदश्यन्तानां तिथीनां नामान्यवगन्तव्यानि। ता एताः कृष्णपक्षतिथयो भवन्ति। पुनश्च ताः पीताः कलाः अनेनैव क्रमेण तत्तत्पातृवह्न्यादिदेवताभ्यो निर्गत्य चन्द्रमण्डलं पूरयन्ति। ताभिर्युक्ताः कालविशेषाः शुक्लपक्षगताः प्रतिपदाद्यास्तिथयो भवन्ति।

इसके बारे में पक्षनिर्णय के अवसर पर श्रुतिवचन उदाहृत किया गया है। "तस्य रात्रयः पञ्चदश······" ऐसे। ऐसा होने पर सामान्य और विशेष के रूप से तिथि दो प्रकार की होती है। क्षय और वृद्धि से विवर्जित सोलहवीं कला जो नित्य होती है उसी कला से युक्त काल सामान्य होता है। वृद्धि और क्षय के साथ संयुक्त अवशिष्ट पन्द्रह कलाएँ हैं। उन्हीं से युक्त काल तिथि विशेष के नाम से अभिहित होता है। पन्द्रह कलाओं से एक एक कला को अग्नि से लेकर प्रजापति तक देवता लोग पी जाते हैं।

अग्नि के द्वारा पी जाने वाली पहली कला प्रथमा कही जाती है। उसी से युक्त काल विशेष पहला अर्थ को प्रकाश करने वाला प्रतिपत् शब्द से अभिहित होता है। इसी तरह द्वितीया से लेकर पञ्चदशी तक होने वाली तिथियों का नाम जानना चाहिये। ऐसी तिथि कृष्णपक्ष की होती है। पान होने वाली कलाएँ क्रम के अनुसार पान करने वाली अग्नि प्रभृति देवता से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निर्गत होकर चन्द्रमण्डल को पूरण करती हैं। इन्हीं कलाओं से युक्त काल विशेष शुक्लपक्ष की प्रतिपत् प्रभृति तिथियाँ होती हैं।

वह्न्यादिदेवतानां कलापानं सोमोत्पत्तौ पठ्यते। तथाहि –

प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः।
विश्वेदेवास्तृतीयां तु चतुर्थीं सलिलाधिपः॥
पञ्चमीं तु वषट्कारः षष्ठीं पिबति वासवः।
सप्तमीमृषयो दिव्यामष्टमीमज एकपात्॥
नवमीं कृष्णपक्षस्य यमः प्राश्नाति वै कलाम्।
दशमीं पिबते वायुः पिबत्येकादशीमुमा॥
द्वादशीं पितरः सर्वे समं प्राश्नन्ति भागशः।
त्रयोदशीं धनाध्यक्षः कुबेरः पिबते कलाम्।
चतुर्दशीं पशुपतिः पञ्चदशीं पजापतिः॥
निष्पीतः कलावशेषश्चन्द्रमा न प्रकाशते।
कला षोडशिका या त्वपः प्रविशते सदा॥
अमायां तु सदा सोम औषधीः प्रतिपद्यते।
तमोषधिगतं गावः पिबन्त्यम्बुगतं च यत्॥
तत्क्षीरममृतं भूत्वा मन्त्रपूतं द्विजातिभिः।
हुतमग्निषु यज्ञेषु पुनराप्यायते शशी॥
दिने दिने कलावृद्धिः पौर्णमास्यां तु पूर्यते॥ इति।

अग्नि प्रभृति देवताओं के द्वारा कलापान विषय सोमोत्पत्ति प्रसङ्ग में कहा गया है। जैसा कि—प्रथमा को अग्नि, द्वितीया को रवि, तृतीया को विश्वेदेव, चतुर्थी को वरुण, पञ्चमी को वषट्कार, षष्ठी को इन्द्र, सप्तमी को ऋषिगण, अष्टमी को एकपात, नवमी को यम, दशमी को वायु, एकादशी को उमा, द्वादशी को पितृगण, त्रयोदशी को कुबेर, चतुर्दशी को पशुपति रूद्र और पञ्चदशी (अमावास्या) को प्रजापति पी जाते हैं।

अवशिष्ट कला के साथ चन्द्र प्रकाशित नहीं होता है। सोलहवीं कला पानी में प्रवेशकर जाती है। अमा में चन्द्र ओषधि को प्राप्त करता है। इस औषधि और पानी को पीकर गाय दूध देती है। यह मन्त्र के द्वारा पवित्र होकर अमृत हो जाता है। अमृत आग में आहुती के रूप से जाकर याग संपादन करता है। याग से सन्तुष्ट होकर चन्द्र फिर अमृत को प्राप्त करता है। दिन के अनन्तर दिन में हर रोज चन्द्र की कलावृद्धि होती है और पूर्णिमा में चन्द्र पूर्ण हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्योतिःशास्त्रे तु सिद्धान्तशिरोमणिकारेण तिथिरेवं प्रदर्शिता—

अर्काद् विनिसृतः प्राचीं यद् यात्यहरहः शशी ।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः ॥ इति ।

अयमर्थः—सूर्यमण्डलस्य अधःप्रदेशवर्त्ती शीघ्रगामी चन्द्रः । ऊर्ध्वप्रदेशवर्त्ती मन्दगामी सूर्यः । तथा सति तयोर्गतिविशेषवशाद्दर्शे चन्द्रमण्डलमन्यूनमनतिरिक्तं सूर्यमण्डलस्याधोभागे व्यवस्थितं भवति । तदा सूर्यरश्मिभिः साकल्येनाभिभूतत्वाच्चन्द्रमण्डलमीषदपि न दृश्यते । उपरितने दिने शीघ्रगत्या सूर्याद्विनिःसृतः शशी प्राचीं याति । त्रिंशदंशोपेतराशौ द्वादशभिरंशैः सूर्यमुल्लङ्घ्य गच्छति । तदा चन्द्रस्य पञ्चदशसु भागेषु प्रथमभागो दर्शनयोग्यो भवति । सोऽयं भागः प्रथमकलेत्यभिधीयते । तत्कलानिष्पत्तिपरिमितः कालः प्रतिपत् तिथि र्भवति । एवं द्वितीयादितिथिष्ववगन्तव्यमिति ।

तदेतद् विष्णुधर्मोत्तरे विस्पष्टमभिहितम्—

चन्द्रार्कगत्या कालस्य परिच्छेदो यदा भवेत् ।
तदा तयोः प्रवक्ष्यामि गतिमाश्रित्यनिर्णयम् ॥
भगणेन समग्रेण ज्ञेया द्वादश राशयः ।
त्रिंशांशश्च तथा राशेर्भाग इत्यभिधीयते ॥
आदित्याद् विप्रकृष्टस्तु भागद्वादशकं यदा ।
चन्द्रमाः स्यात्तदा राम तिथिरित्यभिधीयते ॥ इति ।

ज्योतिःशास्त्र में सिद्धान्तशिरोमणिकार ने तिथि का प्रयोग ऐसा किया कि सूर्यमंडल के निम्नस्थानवर्त्ती चन्द्र खूब शीघ्र यातायात करता है । चन्द्र से ऊर्ध्ववर्त्ती स्थान में सूर्य क्षीण गति में यातायात करता है । ऐसे होने से दोनों की गति में फरक आता है । अमावास्था में सूर्यमंडल के ठीक निम्नभाग में चन्द्रमण्डल अवस्थित होता है । तब सूर्यरश्मि के द्वारा संपूर्ण रूप से चन्द्रमंडल अभिभुत होकर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है । उस दिन के बाद शीघ्रगति से सूर्य से निःसृत होकर चन्द्र पूर्व दिशा को जाता है । तीस अंशों से युक्त राशि में बारह अंशों के द्वारा सूर्य को लंघन करके चन्द्र घूमता है । ऐसे होने से चन्द्र के पन्द्रह भागों से पहला भाग दिखाई पड़ता है । इसी कला से परिमित काल प्रतिपत् तिथि होती है । इस प्रकार से द्वितीया प्रभृति तिथियों के बारे में जानना चाहिये ।

यह सब विषय विष्णुधर्मोत्तरपुराण में स्पष्ट रूप से कहा गया है—जब चन्द्र और सूर्य की गति के द्वारा कालका जो परिच्छेद होता है । तब उभय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की गति को लेकर मैं निर्णय को विस्तार पूर्वक कहूँगा। समग्र नक्षत्रों का गण के द्वारा बारह राशियों का ज्ञान होता है। राशि के तीस अंशों से भाग होता है। सूर्य से विप्रकृष्ट होकर बारह भागों को लेकर जब चन्द्र रहता है, हे राम! तब एक तिथि होती है।

सेयं द्वादशभिर्भागैः सूर्यमुल्लङ्घितवती प्रथमा चन्द्रकला शृङ्गद्वयोपेतसूक्ष्मरेखाकारा शौक्ल्यमीषदुपयाति। उत्तरोत्तरदिनेषु सूर्यमण्डल-विप्रकर्षतारतम्यानुसारेण शौक्ल्यमुपचीयते। अनयैव रीत्या सन्निकर्षतारतम्येन मेचकत्वमुपचीयते। तदेतदुक्तं सिद्धान्तशिरोमणौ—

उपचयमुपयाति शौक्ल्यमिन्दो-
स्त्यजत इनं व्रजतश्च मेचकत्वम्।
जलमयजलजस्य गोलकत्वात्
प्रभवति तीक्ष्णविषाणरूपताऽस्य॥ इति।

सूर्याचन्द्रमसो यौ निकर्षविप्रकर्षौ तयोरवसानं दर्शपूर्णिमयोः संपद्यते।

तदाह गोभिलः—"यः परो विप्रकर्षः सूर्याचन्द्रमसोः सा पौर्णमासी, यः परसन्निकर्षः साऽमावास्येति।

नन्वत्र चन्द्रकलानां सूर्यप्रवेशनिर्गमौ प्रतीयेते, सोमोत्पत्तौ तु वह्न्यादिदेवतासु। नायं दोषः। अस्मदादिदर्शनापेक्षया ज्योतिःशास्त्रस्य प्रवृत्तत्वात्। सोमोत्पत्तौ तु वह्न्यादिदेवतानां तत्तत्कला प्रयुक्ता तृप्तिर्विवक्षिता। यदि सूर्ये प्रवेशनिर्गमौ यदि वा वह्न्यादिदेवतासु सर्वथापि कला प्रयुक्ता एव प्रतिपदादितिथयः॥

बारह भागों के द्वारा सूर्य को लंघन करने वाली पहली चन्द्रकला दो शृङ्ग विशिष्ट एक रेखाकार होकर कुछ शुक्ल वर्ण को धारण करती है। दूसरे दिनों में सूर्यमंडल की दूरवर्त्तिता के तारतम्य से शुक्लिमा बढ़ती रहती है। इसी रीति से चन्द्र की निकटवर्त्तिता के कारण कृष्णिमा बढ़ती है। इसके बारे में सिद्धान्तशिरोमणि में भी कहा है—जब चन्द्र सूर्य को छोड़ देता है तब शुक्लिमा को प्राप्त होता है। जब सूर्य को ले आता है तब कृष्णिमा को प्राप्त होता है। सूर्य और चन्द्र की जो निकटवर्त्तिता और दूरवर्त्तिता है वह उन्ही के अवसान अमावास्या और पूर्णिमा में होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोभिल ने कहा है—सूर्य और चन्द्र के बीच में जो दूरवर्त्तिता वह पूर्णिमा और निकटवर्त्तिता अमावास्या होती है। यहाँ एक प्रश्न आता है—सूर्य में चन्द्रकलाओं का प्रवेश और निर्गम प्रतीत होते हैं। चन्द्रोत्पत्ति प्रकरण में अग्नि प्रभृति देवताएँ कला को पी जाती है ऐसा कहा है। इसमें कोई दोष नहीं है। हमारे मत को लेकर ज्योतिषशास्त्र में विषय की प्रवृत्ति होती है। सोमोत्पत्ति विषय में अग्नि प्रभृति देवताओं की तृप्ति चन्द्रकला को पीकर होती है ऐसा कहा गया है। सूर्य में प्रवेश और निर्गम हो या अग्नि प्रभृति देवताओं में हो, कला के द्वारा ही प्रतिपत् प्रभृति तिथिओं की प्रवृत्ति होती है।

ननु सावनदिनेषु सौरदिवसेषु च निर्णयमुपेक्ष्य चान्द्रतिथिष्वेव कुतो निर्णयोयम इति चेत्, सन्देहसद्भावादिति ब्रूमः। न खलु सौर-सावन-दिवसयोः सन्देहसद्भावोऽस्ति नियतपरिमाणत्वात्। तच्च ब्रह्मसिद्धान्तेऽभिहितम्—

सावनं स्यादहोरात्रमुदयादुदयाद्रवेः।
रवेस्त्रिंशस्तु राश्यंशस्तिथिसंभोग ऐन्दवम्॥ इति।

एकस्मिन् राशौ यावन्तं कालं रवि वर्त्तते, तावतः कालस्य त्रिंशो योऽयमंशः स सौरो दिवसः। तिथिरेका कला तत्संभोग इन्दो र्यावता कालेन निष्पद्यते तदैन्दवं दिनम् न चात्र सौरसावनयोरिव चान्द्रेऽपि दिने सन्देहाभावः शङ्कनोयः, ह्रासवृद्धिवशेन सन्देहसद्भावात्। ह्रास-वृद्धौ च गर्गेण दर्शिते—

खर्वो दर्पस्तथा हिंस्रास्त्रिविधं तिथिलक्षणम्।
धर्माधर्मवशादेव तिथिस्त्रेधा विवक्षिता॥ इति।

खर्वा समतिथिः। दर्पा वृद्धियुक्ता। हिंस्रा क्षययुक्ता। तस्यैतस्य त्र्यैविध्यस्य विपरिवर्त्तनविशेषेण तिथिः संपूर्णा खण्डा चेति द्वैविध्य-मापद्यते। तत्र संपूर्णा स्कन्दपुराणे दर्शिता—

प्रतिपत्प्रभृतयः सर्वा उदयादोदयाद्रवेः।
संपूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः॥ इति

फिर एक प्रश्न आता है कि सावन दिनों पर और सौर दिनों पर निर्णय की अपेक्षा करके चान्द्र तिथियों का निर्णय करने के लिये क्यों उद्यम हो रहा है। उत्तर ऐसा है कि चान्द्र तिथिओं के बारे में सन्देह आता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नियत परिमाण के कारण सौर और सावन दिनों में सन्देह नहीं है। ब्रह्म-सिद्धान्त में कहा है।

सूर्योदय से सूर्योदय तक होने वाला अहोरात्र एक सावन दिन होता है। सूर्य के राशि के अंश का जो तीस अंश वह चान्द्रतिथि के नाम से अभिहित होता है।

एक राशि में जितने काल तक सूर्य अवस्थान करते हैं उस काल का तीस अंश को सौर दिवस के रूप में अभिहित किया जाता है। तिथि एक कला है। इसी कला का भोग चन्द्र के जितने काल से निष्पन्न होता है, इस काल को चान्द्र दिवस कहा जाता है। सौर और सावन की तरह चान्द्रदिवस में सन्देह नहीं है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। चान्द्र कला की ह्रास वृद्धि के कारण चान्द्र दिवस के तिथि में सन्देह आता है।

ह्रास और वृद्धि के बारे में गर्गजी ने कहा है—धर्माधर्म को लेकर खर्व, दर्प और हिंस्र ऐसे तीन प्रकार की तिथि होती है।

समतिथि खर्वतिथि, वर्धित होने वाली दर्प तिथि और क्षय युक्त होने से हिंस्रातिथि होती है। तिथि की तीन प्रकारता के विपरित्तन का विशेष स्वरूप से संपूर्णा और खण्डा के रूप में तिथि दो प्रकार की होती है। स्कन्दपुराण में संपूर्णा के बारे में कहा है—सूर्योदय से लेकर पुनः सूर्योदय तक एकादशी को छोड़कर प्रतिपद प्रभृति तिथिओं का नाम संपूर्णा होता है।

हरिवासर एकादशी। या तु नोक्तलक्षणा सा खण्डतिथिः। तत्र संपूर्णायां विधिनिषेधयो र्नास्ति सन्देहः। खण्डतिथौ तु विधिनिषेध-व्यवस्थामाह गार्ग्यः—

निमित्तं कालमादाय वृत्तिर्विधिनिषेधयोः।
विधिः पूज्यतिथौ तत्र निषेधः कालमात्रके॥
तिथीनां पूज्यता नाम कर्मानुष्ठानयोग्यता।
निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते॥ इति

एवं च सति खण्डतिथौ पूज्यत्वं निर्णेतव्यं भवति तत्र प्रतिपद-मारभ्य पञ्चदश्यन्तास्तिथयः क्रमेण निर्णीयन्ते।

तत्र प्रतिपच्छब्द उपक्रमे वर्त्तते। चान्द्रः पक्षो मासो वा प्रति-पद्यते प्रारभ्यते यस्यां तिथौ सा तिथिः प्रतिपत्। प्रारम्भवाचित्वं च प्रतिपच्छब्दस्य बह्वृचब्राह्मणारण्यकसूत्रेषु प्रयोगादवगम्यते। तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

च श्रुतिः–"आत्वा रथं यथोतये इदं वसो सुतमन्ध इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरा"विति ।

अयमर्थः—मरुत्वतीयं नाम किञ्चिच्छस्त्रम्[1] । तस्यात्वारथमित्ययं मन्त्रः प्रतिपत् प्रथमं पाठ्यः । इदं वसो सुतमन्ध इत्ययं मन्त्रोऽनुचरः पश्चात् पाठ्य इति । तथा तैत्तिरीयाश्चाश्वमेधब्राह्मण आमनन्ति—"पवस्व वाजिसातय इत्यनुष्टुप् प्रतिपद् भवती"ति । तथात एव दर्शपूर्णमासब्राह्मणे पठन्ति—"सामिधेनीरनुवक्ष्यन्ते ता व्याहृतीः पुरस्ताद्दध्यात् ब्रह्मैव प्रतिपदं कुरुते" इति ।

हरिवासर का अर्थ एकादशी इस लक्षण से जो नहीं आती है । उसी को खण्डा तिथि कही गई है । संपूर्णा में विधि और निषेध के बारे में सन्देह नहीं है । खण्डा तिथि में विधि और निषेध के बारे में गर्ग ने कहा है । काल को निमित्त करके विधि और निषेध की प्रवृत्ति होती है । पूज्य तिथि में विधि की प्रवृत्ति होती है और कालमात्र को लेकर निषेघ की प्रवृति होती है । ऐसा होने से खण्डा तिथि में पूज्यता का निर्णय करना पड़ता है । प्रतिपद से लेकर पूर्णिमा तक होनेवाली तिथिओं का निर्णय क्रमानुसार है ।

प्रतिपद शब्द उपक्रम अर्थ को प्रकाश करता है । चान्द्र पक्ष या मास का जिस तिथि में प्रारम्भ किया जाता है उसी तिथि को प्रतिपद नाम से अभिहित किया जाता हे । प्रारम्भ अर्थ को प्रकाश करने वाला प्रतिपद शब्द का प्रयोग वहवृच बाह्मण और आरण्यक सूत्र में मिलता है । यथा—"आत्मा रथं······प्रतिपदनुचराविति" ॥ इसका अर्थ यह है—मरुत्वतीय के नाम से कुछ शस्त्र है । "आत्वा रथ" यह मन्त्र इस शस्त्र का प्रतिपद अर्थात् पहला पाठ्य है । "इदं वसो" यह मन्त्र पश्चात् पाठ्य है । तैतिरीय शाखा वाले आश्वमेध ब्राह्मण में इसका पाठ देखते हैं । यथा—"पवस्व······प्रतिपद् भवतीति । दर्श पूर्णमास ब्राह्मण में भी "सामिघेनी······प्रतिपदं कुरुत" ऐसा पाठ मिलता है ।

सा च प्रतिपत्तिथिः यदा सूर्योदयमारभ्य पुनरुदयपर्यन्ता भवति तदा शुद्धत्वात् प्रतिपदि विहितं सर्वं निःशङ्कैस्तत्रानुष्ठेयम् । शुद्धत्वं च नारदीयपुराणे दर्शितम्—

आदित्योदयवेलाया आरभ्य षष्टिनाडिका ।
तिथिस्तु सा हि शुद्धा स्यात् सर्वतिथिष्वयं विधिः ॥ इति

[1] शस्त्र नाम अप्रगीतमन्त्रसाध्यगुणिनिष्ठगुणाभिधानम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्यसिद्धान्तेऽपि—

सर्वा ह्येताश्च तिथयः उदयादोदयं स्थिताः।
शुद्धा इति विनिश्चेयाः षष्टि नाड्यो हि वै तिथिः॥ इति।

यदा तु सा प्रतिपत् खण्डतिथिः सती पूर्वोत्तरयोरह्नोर्दर्शद्वितीयाभ्यां युज्यते तदा दर्शयुक्तायाः पूज्यत्वात् तत्रानुष्ठेयम्। तत्पूज्यत्वं च पैठीनसिराह—

पञ्चमी सप्तमी चैव दशमी च त्रयोदशी।
प्रतिपन्नवमी चैव कर्त्तव्या संमुखी तिथिः॥ इति।

संमुखत्वं च स्कन्दपुराणे विवेचितम्—

संमुखी नाम सायाह्नव्यापिनी दृश्यते यदा।
प्रतिपत् संमुखी कार्या या भवेदापराह्णिकी॥

व्यासोऽपि—

प्रतिपत्सैव विज्ञेया या भवेदापराह्णिकी।
दैवं कर्म तथा ज्ञेयं पैत्र्यं च मनुरब्रवीत्॥

सायाह्नाऽपराह्णादयः कालविशेषाः सावनदिवसगतस्याह्नो भागभेदा अवगन्तव्याः। स च दिवसो विष्णुधर्मोत्तरपुराणे विवेचितः—

सूर्योदय से सूर्योदय तक रहने के कारण प्रतिपद तिथि शुद्ध होती है। इसलिये इसमें विहित कर्मों का अनुष्ठान बिना शंका में किया जाता है। शुद्धता के बारे में नारदीय पुराण में कहा है—सूर्योदय से लेकर साठ दण्ड पर्यन्त रहने वाली तिथि शुद्धा होती है। सभी तिथियों में यह नियम लागू होता है। सूर्यसिद्धान्त में भी ऐसा कहा गया है—जब वही प्रतिपद खण्डा तिथि होकर पूर्व और पर अर्थात् अमावास्या और द्वितीया के साथ युक्त होती है तब अमावास्या युक्त प्रतिपद की पूज्यता के कारण वहाँ कर्मों का अनुष्ठान होता है।

इसी पूज्यता के बारे में पैठीनसि ने कहा है-पञ्चमी, सप्तमी, त्रयोदशी, प्रतिपद और नवमी संमुखी होकर ग्रहणीय होती है। संमुखीता स्कन्दपुराण में विवेचित की गई है। सायाह्न को व्याप्त होने वाली तिथि संमुखी होती है। अपराह्न में रहने वाली प्रतिपद तिथि मानी जाती है। व्यास ने भी कहा है—वही तिथि प्रतिपद होती है जो अपराह्न को व्याप्त कर रहती है। उसी तिथि में दैव और पितृकार्य होते हैं, ऐसा मनु ने कहा है। सायाह्न और अपराह्न प्रभृति कालविशेष सावन दिवस के भागों का भेद है ऐसा जानना चाहिये। वह दिवस विष्णुधर्मोत्तर में विवेचित है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लध्वक्षरसमा मात्रा निमेषः परिकीर्त्तितः ।
अतः सूक्ष्मतरः कालो नोपलभ्यो भृगूत्तम ॥
नोपलभ्यं यथा द्रव्यं सुसूक्ष्मं परमाणुतः ।
द्वौ निमेषौ त्रुटि र्ज्ञेया प्राणो दशत्रुटिः स्मृतः ॥
विनाडिका तु षट् प्राणास्ते षष्टि र्नाडिका स्मृता ।
अहोरात्रं तु तत्षष्ट्या नित्यमेतत् प्रकीर्त्तितम् ॥
त्रिंशन्मुहूर्त्ताश्च तथा अहोरात्रेण कीर्तिताः ।
तत्र पञ्चदश प्रोक्ता राम रात्रिर्दिवा तथा ॥
उत्तरां तु यदा काष्ठां क्रमादाक्रमते रविः ।
तदा तदा भवेद् वृद्धिः र्दिवसस्य महाभुज ॥
दिवसश्च यदा राम वृद्धिं समधिगच्छति ।
तदाश्रितमुहूर्त्तानां तदा वृद्धिः प्रजायते ॥
दिनवृद्धौ रात्रिहानिस्तद्धानिश्च यथा यथा ।
तदाश्रितमुहूर्त्तानां हानि र्ज्ञेया तथा तथा ॥
दक्षिणां च यदा काष्ठां क्रमादाक्रमते रविः ।
दिवसस्य तदा हानि र्ज्ञातव्या तावदेव तु ॥
क्षीयन्ते तस्य हानौ च तन्मुहूर्त्तास्तथैव च ।
रात्र्याश्रिताश्च वर्द्धन्ते रात्रिवृद्धिस्तथैव ॥
यदा मेषं सहस्रांशुस्तुलां चैव प्रपद्यते ॥
समरात्रिन्दिवः कालो दिनशब्दस्य वाचकः ॥ इति ।

वाचको वाच्यार्थ इति यावत् । अत्र ये मुहूर्त्ता अभिहितास्तेषां नामानि श्रुति—ज्योतिःशास्त्र-स्मृतिषु विविधानि दर्शितानि । तत्र श्रुतिं तावत् तैत्तिरीयाः पठन्ति—"चित्रः केतु र्दाता प्रदाता सविता प्रसविता अभिशास्ताऽनुमन्तेति" एते अनुवाका मुहूर्त्तानां नामधेयानीति । अत्र द्वाभ्यां द्वाभ्यां पदाभ्यामेकैकस्यानुवाकस्य प्रतीकमुक्तम् । तथा सति चत्वारोऽनुवाकाः संपद्यन्ते । तत्र प्रथमे शुक्लपक्षगतस्याह्नो मुहूर्त्ताः द्वितीये तद्रात्रेः । तृतीये कृष्णपक्षगतस्याह्नः । चतुर्थे तद्रात्रेरिति विवेकः ।

हे भृगुवंश के उत्तम ! एक लघु अक्षर की समान मात्रा निमेष के नामा से प्रसिद्ध है । यहाँ से सूक्ष्मतर काल नहीं मिलता है । परमाणु से सूक्ष्मतर द्रव्य भी नहीं मिलता है । दो निमेषों से एक त्रुटि होती है । दश त्रुटि से एक प्राण होता है । छ प्राणों से एक विनाडिका होती है । साठ विनाडिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से एक नाडी होती है। साठ नाडिओं को लेकर अहोरात्र होता है। यहाँ से पन्द्रह मुहूर्त्तों को लेकर एक रात्रि और एक दिवाभाग होते हैं।

उत्तर दिशा को जब रवि क्रम के अनुसार आक्रान्त करते हैं तब दिवस की वृद्धि होती है, उस दिवस को आश्रय करके रहने वाले मुहूर्त्तों की भी वृद्धि होती है। दिन की वृद्धि में जब रात की हानि जैसे होती है वैसे रात को आश्रय करके रहने वाले मुहूर्त्तों की भी हानि होती है। दक्षिणायन समय में जब दक्षिण दिशा को रवि जाते हैं तब दिवस की हानि होती है। इस रीति के अनुसार मुहूर्त्तों की भी हानि होती है। रात में रहने वाले मुहूर्त्तों की वृद्धि से रात की वृद्धि होती है। जब मेष और तुला-संक्रान्ति में सूर्य रहते हैं तब रात और दिन के काल समान रहता है।

इसमें रहने वाले मुहूर्तों के नाम वेद, धर्मशास्त्र और ज्योतिशास्त्र में नाना प्रकार से प्रदर्शित किये गए है। श्रुति वचन तैत्तिरीय शाखा वाले कहते हैं—चित्र, केतु, दाता प्रदाता, सविता, प्रसविता, अभिशस्ता, अनुमन्ता—ये अनुवाक मुहूर्त्तों के नाम होते हैं। यहां दो-दो पदों से एक-एक अनुवाक का प्रतीक कहा गया है। ऐसे होने से चार अनुवाक होते हैं। वहाँ पहले अनुवाक में शुक्लपक्ष दिवस के मुहूर्त्तों, दूसरे अनुवाक में रात के मुहूर्त्तों, तीसरे में कृष्णपक्ष दिवस के मुहूर्त्तों और चौथे अनुवाक में उसकी रात के मुहूर्त्त माने जाते हैं।

ते चानुवाका एवं श्रूयन्ते—चित्रः केतुः प्रभानाभान् सम्भान् ज्योतिष्मान् तेजस्वानातपस्तपन्नभितपन् रोचनो रोचमानः शोभनः शोभमानः कल्याणः। दाता प्रदातानन्दो मोदः प्रमोदः अवेशयन्निवेशयन् संवेशनः संशान्तः शान्तः आभवन् प्रभवन् संभवन् संभूतो भूतः। सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन् दीप्यमानः। ज्वलन् ज्वलिता तपन् वितपत्सन्तपद्रोचनो रोचमानः। शुम्भूः शुम्भमानो वामः। अभिशास्ताऽनुमन्तानन्दो मोदः आसादयन् निषादयन् संसादनः संसन्नः सन्नः। अभूर्विभूः प्रभूः शम्भूर्भुव इति। एतेषु मुहूर्त्तेष्वेकैकमुहूर्त्तस्य पञ्चदशभागाः सूक्ष्ममुहूर्त्ताः। तथा च देवब्राह्मणे—

वे अनुवाक श्रुति में ऐसे हैं—चित्र केतु, प्रभान, नाभान, संभान, ज्योतिष्मान्, तेजस्वान, आतप, तपन, अभितपन, रोचन, रोचमान, शोभन, शोभमान, कल्याण, दाता, प्रदाता, नन्द, मोद, प्रमोद, अवशेयन, निवेशयन, संवेशन, संशान्त, शान्त, आभवन, प्रभवन, संभवन, संभूत, भूत, सविता, प्रसविता, दीप्त, दीपयन, दीप्यमान, ज्वलन, ज्वलिता, तपन, वितपत, संतपत,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोचनो, रोचमान, शुम्भ, शुम्भमान, वाम। अभिशास्ता, अनुमन्ता, नन्द, मोद, प्रमोद, आसादयन, निषादयन, संसादन, संसन्न, सन्न। आभू, विभू, प्रभू, शंभू, भुव। इन मुहूर्त्तों से एक एक मुहूर्त्त का पन्द्रह भाग सूक्ष्म मुहूर्त्त होते हैं। देव ब्राह्मण में कहा है—

"इदानीं तदानीमिति एते वै मुहूर्त्तानां मुहूर्त्ता" इति। इदानीमित्यादिकोऽनुवाको मन्त्रकाण्ड एवं पठ्यते। "इदानीं तदानीमेतर्हि क्षिप्रम् अजिरम् आशु निमेषः कणोद्रवन्[1] अतिद्रवन् त्वरन्, त्वरमाण आशुराशीयान् जव" इति। ज्योतिः शास्त्रे तु अहोरात्रयोस्त्रिंशन्मुहूर्त्तानां नामानि कश्यपेन उक्तानि—

गौरी वल्लभसर्पमित्र-पितरोवस्वम्बुविश्वाह्वया।
ब्रह्माम्भोरुहसंभवेन्दुहुतभुग्देवेशनक्तञ्चराः॥
तोयेशोर्यमयोनयो दश तथा पञ्च क्षणा वासरे॥
रूद्राजाहिर्बुध्न्य पूषाऽश्विनाः स्युः।
कोनाशोऽग्नि र्धातृचन्द्रादितीज्या॥
विष्णुर्भानुस्त्वष्टृधाता मुहूर्त्ताः।
रात्रौ क्रूरास्त्वन्तकाजाग्निरुद्राः॥ इति।

स्मार्तानि तु नामानि पुराणे दर्शितानि—

रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च तथा [2]सारभटः स्मृतः।
सावित्रो वैश्वदेवश्च गान्धर्वः कुतपस्तथा॥
रौहिणस्तिलकश्चैव विभवो निकृतस्तथा॥
शम्बरो विजयश्चैव भेदा पञ्चदश स्मृताः॥ इति।

एते पञ्चदश सूर्योदयादारभ्य क्रमाद्दिवामुहूर्त्तास्तथा रात्रिमुहूर्ताः—

शङ्करश्चाजपादश्च तथाहिर्बुध्न्यमैत्रकौ।
आश्विनो याम्यवाह्नेयौ वैधात्रश्चान्द्र एव च॥
आदितेयोऽथ जैवश्च वैष्णवः सौर एव च।
ब्राह्मो नाभस्वतश्चैव मुहूर्त्ताः क्रमशो निशीति॥

इदानीं तदानीं। भूते वै··· इत्यादि। इदानीं इत्यादि अनुवाक मन्त्रकाण्ड में पठित होता है। इदानीं, तदानीं, एतर्हि, क्षिप्र, अजिर, आशु,

---

१. फणोद्धवन् इति ख. पु

२. द्वारभट इति ख. पु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निमेष, कणोद्रवन्, अतिद्रवन, त्वरन्, त्वरमाण, आशु, (पुं), आशीयान्, जब ॥ ज्योतिःशास्त्र में अहोरात्रों का तीस मुहूर्त्तों के नाम कश्यप ने कहा है—"गौरीवल्लभ" इस वचन से प्रतिपादित होता है। स्मार्त्त नाम तो पुराणों में प्रदर्शित किया गया है। रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, वैश्वदेव, गान्धर्व, कुतप, रौहिण, तिलक, विभव, निर्ऋत, शबर और विजय इन पन्द्रह सूर्योदय से लेकर क्रमानुसार दिवाभाग के मुहूर्त्त होते हैं। शंकर, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, मैत्रक, आश्विन, याम्य, वाह्नेय, वैधात्र, चान्द्र, आदितेय, जैव, वैष्णव, सौर, ब्राह्म और नाभस्वत—ये पन्द्रह रात के मुहूर्त्त होते हैं।

यथोक्तना[1]नाविधनामकत्रिंशन्मुहूर्त्तोपेतस्य सावनाहोरात्रस्य यदहः पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं तस्याह्नो भागा [2]प्रातर्मध्याह्नापराह्णादयः, ते चाह्नो भागा मतभेदेन पञ्चधा विकल्पन्ते। द्विधा त्रेधा चतुर्धा पञ्चधा पञ्चदशधा चाहर्विभज्यत इति पञ्च मतभेदाः। अत्र द्विधा विभागः स्कन्दपुराणे दर्शितः—

आवर्त्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परः॥ इति।

एतदेवाभिप्रेत्य मनुराह—

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद् विशिष्यते।
तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते॥ (मनु०—३.२७८)

त्रेधा विभागोऽपि स्कन्दपुराणे दर्शितः—

---

१. ज्योतिःशास्त्रे प्रकारान्तरेण पठ्यते—
रौद्राहिमित्रपितरो वसु वारिविश्च
विश्वप्रजापतिशशाङ्ककृशानुरिन्द्रः।
नक्तञ्चराश्च वरुणार्य्यमयोनयश्च
प्रोक्ता दिने दश च पंच तथा मुहूर्त्ताः॥
निशामुहूर्ता गिरिजाऽजपादाऽ-
हिर्बुध्न-पूषाश्वियमाग्नयश्च
विधातृचन्द्रादितिजीवविष्णुः
तिग्मद्युतित्वष्टृसमीरणश्च॥ इति 'क' पुस्तकेऽधिकः पाठः।
२. अपराह्णसायाह्नप्रातरादय इति क. पु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊर्ध्वं सूर्योदयात् प्रोक्तं मुहूर्त्तानां तु पञ्चकम् ।
पूर्वाह्णः प्रथमः प्रोक्तो मध्याह्नस्तु ततः परः ॥
अपराह्णस्ततः प्रोक्तो मुहूर्त्तानां च पञ्चकम् ॥ इति ।

शातातपोऽपि—तस्मादह्नस्तु पूर्वाह्णे देवा अशनमभ्यवहरन्ति मध्यंदिने मनुष्या अपराह्णे पितरः ॥ इति । एतमेव विभागमभिप्रेत्य सहस्रसंवत्सरसत्र-ब्राह्मणे आम्नायते—

नाना प्रकार के नामों से प्रसिद्ध तीस मुहूर्त्त वाला सावन अहोरात्र का जो दिवा भाग होता है, उसका परिमाण पन्द्रह मुहूर्त्त है। उस दिवाभाग का प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न, नाम से भाग होते हैं। मतभेद से यह दिवाभाग विकल्प से पांच भागों में विभक्त होता है। दो, तीन, चार, पांच और पन्द्रह भागों से दिवाभाग विभक्त होता है। दो भागों में विभक्त होने वाला दिवस के बारे में स्कन्द पुराण में इस प्रकार कहा जाता है—सूर्य के आवर्त्तन से पूर्वाह्न और अपराह्न होते हैं।

इस विभागों को लक्ष्य करके मनु ने कहा है कि जैसे पूर्वपक्ष (शुक्ल) से अपरपक्ष विशिष्ट होता है वैसे श्राद्ध के लिये पूर्वाह्न से अपराह्न विशिष्ट होता है। तीन भागों से विभाग के बारे में स्कन्दपुराण में कहा है—सूर्योदय के बाद पहले पांच मुहूर्त्तों को लेकर पूर्वाह्न, दूसरे पांच मुहूर्त्तों को लेकर मध्याह्न और अन्तिम पांच मुहूर्त्तों को लेकर अपराह्न होता है।

शातातप ने कहा है—दिवाभाग के पूर्वाह्न में देवता लोग, मध्याह्न में मनुष्य लोग और अपराह्न में पितृलोग भोजन करते हैं।

इस विभाग को लक्ष्य करके सहस्रसंवत्सरमत्र ब्राह्मण में कहा है—

ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते ।
यजुर्वेदे तिष्ठति मध्य अह्नः ॥
सामवेदेनास्तमिते महीयते ।
वेदैरशून्यास्त्रिभिरेति सूर्यः ॥ इति ।

श्रुत्यन्तरेऽपि पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यन्दिनो मनुष्याणामपराह्णः पितॄणामिति । चतुर्धा विभागमाह गोभिलः—

पूर्वाह्णः प्रहरं सार्धं मध्याह्नः प्रहरं तथा ।
आतृतीयादपराह्णः सायाह्नश्च ततः परम् ॥ इति ।

पञ्चधा विभागं व्यास आह—

मुहूर्त्तत्रितयं प्रातस्तावानेव तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तं स्यादपराह्णोऽपि तादृशः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तस्तु सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ इति ।

वृद्धपराशरोऽपि—

लेखाऽदित्यात्प्रभृतयो मुहूर्त्तास्त्रय एव तु ।
प्रातस्तु स स्मृतः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः ॥
सङ्गवस्त्रिमुहूर्त्तोऽथ मध्याह्नस्तत्समः स्मृतः ।
ततस्त्रयो मुहूर्त्ताश्चाथापराह्णो विधीयते ।
पञ्चमोऽथ दिनांशो यः स सायाह्न इति स्मृतः ॥ इति ।

पूर्वाह्न में सूर्य ऋग्वेद को लेकर उदित होते हैं, बीच में यजुर्वेद को लेकर अवस्थान करते हैं, सामवेद को लेकर अस्तमित होते हैं। इस प्रकार वेदों से शून्य न होकर सूर्य उदित हैं।

दूसरी श्रुति में कहा गया है कि पूर्वाह्न देवताओं का, मध्याह्न मनुष्यों का और अपराह्न पितृलोगों का होता है। चार प्रकार के विभाग के बारे में गोभिल ने कहा है—पहला पहर पूर्वाह्न, दूसरा मध्याह्न, तीसरा पहर अपराहृण और चौथा प्रहर सायाह्न होता है।

पांच प्रकार के विभाग व्यास ने कहा है—तीन तीन मुहूर्त्तों को लेकर प्रात, संगव, मध्याह्न, और सायाह्न की प्रवृति होती है। सायाह्न में कोई भी धर्म का अनुष्ठान नहीं है। वृद्ध पराशर ने भी कहा है—

सूर्यरश्मि की रेखा जब दिखाई पड़ती है, उस समय में तीन मुहूर्त्त प्रातः काल होता है। दिवा में यह संगव, मध्याह्न और अपराह्न तीन तीन मुहूर्त्त होते हैं। दिन के पांचवाँ भाग सायह्न होता है।

एतमेव विभागमभिप्रेत्य कश्चिन्मन्त्रः सङ्गवकालमवलम्ब्य व्यवजहार। तं मन्त्रं च बह्वृचा आश्विनसूक्ते आमनन्ति—[1]

उतायातं सङ्गवे प्रातरह्नो
मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन
नेदानीं पीतिरश्विनाततान ॥ इति ।

अस्मिन् मन्त्रे प्रातःसङ्गवमध्यन्दिनानां स्वसंज्ञाभिर्व्याहृतत्वात् अवशिष्टयो र्भागयोरप्येतत्त्रितयमुपलक्षणं द्रष्टव्यम्। तैत्तिरीयब्राह्मणे

१. ऋ. वे. ५।७६।३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथोक्तानां पञ्चानां प्रातरादीनां भागानां मध्यवर्त्तिषु चतुर्षु सन्धिष्व-ग्निष्टोमोक्थ्यषोडश्यतिरात्राख्यानां चतसृणां सोमसंस्थानां निर्माणं वक्तुं यथोक्तपञ्चभागाः साधिष्ठातृदेवाः समाम्नाताः। "देवस्य सवितुः प्रातर्मित्रस्य सङ्गवः बृहस्पतेर्मध्यन्दिनं भर्गस्यापराह्णः वरुणस्य सायमिति"।

छन्दोगाश्च सप्तभक्त्युपेतसाम्न आदित्यात्मनोपासनं वक्तुमादि-त्यस्य संबन्धिनः कालभेदान् विभज्य तेषां हिङ्कारादिसप्तभक्तिरूपतां विवक्षन्त आमनन्ति। तस्य यत्पुरोदयात् स हिङ्कारः। अथ यत्प्रथमो-दिते स प्रस्तावः। अथ यत् संगववेलायां स आदिः। अथ यत् संप्रति मध्यन्दिने स उद्गीथः। अथ यदूर्ध्वं मध्यन्दिनात् प्रागपराह्णात्स प्रतिहारः। अथ यदूर्ध्वमपराह्णात् प्रागस्तमयात् स उपद्रवः। अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनमिति। वाजसनेयिनोऽप्येवमामनन्ति— "आदित्यो वै सर्वं ऋतवः। स यदैवोदेत्यथ वसन्तो यदा सङ्गवोऽथ ग्रीष्मो यदा मध्यन्दिनोऽथ वर्षा यदापराह्णोऽथ शरद्यदैवास्तमेत्यथ हेमन्त" इति।

इस विभाग को अभिप्रेत करके संगव काल को अवलम्बन कर कुछ मन्त्र का व्यवहार मिलता है। यह मन्त्र ऋग्वेदी लोग आश्विन सूक्त में पाठ करते हैं। उतायातं इत्यादि। अर्थ छूटा है—

इस मन्त्र में प्रात, संगव और मध्याह्न की संज्ञा से व्यवहार मिलता है। अवशिष्ट (अपराह्न सायाह्न) दो भागों में भी तीन को उपलक्षण करके देखना होगा। तैत्तिरीयब्राह्मण में प्रातः प्रभृति पांच भागों के मध्यवर्त्ती चार सन्धियों में अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र नामक चार सोम संस्था के निर्माण के अधिष्ठात्री देवताओं के लिए साथ पांच भाग कहे गये हैं। सविता के प्रात, मित्र का संगव, बृहस्पति का मध्याह्न भर्गका अपराह्न और वरुण का सायं काल निर्दिष्ट होते हैं।

सामवेदी लोग भी सात भागों से विभक्त साम के आदित्य उपासना को कहने के लिये इच्छा करके आदित्य के सम्बन्धी कालभेद को विभाग कर हिंकार प्रभृति सात विभाग रूप को प्रकाश करते हैं, जिस का पुरोदय होता है वह हिंकार, पहला जिसका उदय वह प्रस्ताव, जो संगव वेला में उदित होता है वह आदि, जो मध्याह्न में है वह उद्गीथ है।

जो मध्याह्न से ऊर्ध्व अपराह्न से पहले है वह प्रतिहार, जो अपराह्न से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊर्ध्व अस्तमन से पहले हो वह उपद्रव और अस्तमन के पहला भाग में उदित होने वाला निधन के नाम से अभिहित होते हैं। वानसनेयिओं ने भी ऐस कहा है—आदित्य ही सब ऋतु है। जब दिवाभाग का प्रारम्भ होता है, वह वसन्त, जब संगव हो वह ग्रीष्म, जब मध्याह्न हो वह वर्षा जब अपराह्न वह शरत, जब अस्तमन होता है वह हेमन्त होता है।

पञ्चदशधा विभागः शङ्खेन दर्शितः—

रौद्रश्चैत्रश्च मैत्रश्च तथा शालकटः स्मृतः।
साविक्षश्च जयन्तश्च गान्धर्वः कुतपस्तथा।
रौहिणश्च विरिञ्चश्च विजयो नैर्ऋतस्तथा।
महेन्द्रो वरुणश्चैव भेदाः पञ्चदश स्मृताः॥ इति।

तत्र पञ्चधा विभागपक्षस्य बहुश्रुतिस्मृतिषु दृष्टत्वात् प्रायेणैतमेव पक्षमाश्रित्य विधिनिषेधशास्त्राणि प्रवर्त्तन्ते। "सूर्यो ज्योति ज्योतिः सूर्यः स्वाहेति प्रात"रिति श्रुतौ[1]। प्रातःकालमुपजीव्य तत्कालीनस्य होमस्य मन्त्रविशेषोऽभिहितः। स्मृतावपि—

"सन्ध्यामुपास्य विधिवत् प्रातर्होमं समाचरेत्"

इति होमाङ्गत्वेन प्रातःकाल आश्रितः। सङ्गवस्तु कात्यायनेन व्यवहृतः।

सन्धिश्चेत् सङ्गवादूर्ध्वं प्राक् चेदावर्त्तनाद्रवेः।
सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यस्कालविधौ तिथिः॥ इति।

पन्द्रह प्रकार का विभाग शंख ने कहा है--रौद्र, चैत्र, मैत्र, शालकट, सावित्र, जयन्त, गान्धर्व, कुतप, रौहिण, विरिञ्च, विजय, नैर्ऋत, महेन्द्र और वरुण—ये पन्द्रह भाग प्रसिद्ध हैं। पांच प्रकार के विभाग पक्ष बहुत श्रुति और स्मृतियों में दिखाई पड़ते हैं। इसलिये इस पक्ष को लेकर विधि निषेध शास्त्र की प्रवृत्ति है। "सूर्यो ज्योति" इस मन्त्र से वेद में प्रातःकाल को उपजीव्य करके प्रातः कालीन होम का ही विधान होता है।

स्मृति में भी कहा है—सन्ध्योपासना करके विधिपूर्वक सुबह होम करना है। यहाँ होम का अङ्गस्वरूप प्रातःकाल आश्रित है। संगव शब्द कात्यायन ने व्यवहृत किया है—"सन्धिश्चेत्" इत्यादि। इसका अर्थ है संगव के बाद

१. वाज. सं० ३।९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और सूर्य के आवर्त्तन से पहले अगर सन्धि होती तो पूर्णिमा होती है। सद्यस्काल विधि के लिए वही तिथि इस प्रकार होने से माननीय होती है।

बौधायन ने मध्याह्न शब्द श्रुतिप्रमाण से व्यवहार किया हैं—मध्याह्नव्यापिनी……इत्यादि।

बौधायनेन मध्याह्नो व्यवहृतः—

"मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्तव्रते तिथिः॥" इति।

"अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञेन चरन्ति" इति श्रुत्या अपराह्णो व्यवहृतः। सायाह्नव्यवहारस्तु पूर्वमेव 'संमुखी नामे'ति वचनेनोदाहृतः, त्रेधा विभागस्तु सवनत्रय उपयुज्यते।

यथोक्तेषु पञ्चसु कालेषु यानि विहितानि कर्माणि तानि देवपित्र्यरूपेण राशिद्वयं कृत्वा, तयो गौणकालाभ्यनुज्ञानाय द्वेधा विभागो दर्शितः। चतुर्धा विभागस्तु प्रकरणबलाद् गोभिलस्मृत्युक्तकर्मविशेषेषु द्रष्टव्यः। पञ्चदशधा विभागे मुहूर्त्तविशेषोपजीवनेन विधिनिषेधौ ज्योतिःशास्त्रे द्रष्टव्यौ।

एवञ्च सति प्रकृते पञ्चस्वह्नो भागेषु पञ्चमं सायाह्नभागं व्याप्य ततः पूर्वं चतुर्थमपराह्णभागं या प्रतिपत् संस्पृशति तादृशी पूर्वविद्धोपवासे पूज्या। अत्र तिथीनां वेधः पैठीनसिना दर्शितः—

" पक्षद्वयेऽपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम्।
त्रिभिर्मुहूर्त्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः॥" इति॥

पूर्वेद्युरुदयानन्तरममावास्या त्रिमुहूर्त्ता चेत्, सा प्रतिपदं विध्यति। परेद्युरस्तमयात् प्राग् द्वितीया त्रिमुहूर्त्ता चेत् सापि पूर्वां प्रतिपदं विद्ध्यति। एवमुभयतो विद्धयोर्दिनद्वयवर्त्तिन्योः प्रतिपदोर्मध्ये किं पूर्वा ग्राह्या उतोत्तरेति विचार्यते। तत्र पूर्वाया ग्राह्यत्वं पैठीनसिस्कन्दव्यासा आहुः, तद्वचनानि पूर्वमुदाहृतानि। निगमेऽप्येवमेवोक्तम्।

अमावस्या के अपराह्न में पिण्डपितृयज्ञ करते हैं इस श्रुति के द्वारा अपराह्न का व्यवहार हुआ है।

"समुखी नाम" इस वचन से सायाह्न शब्द का व्यवहार हुआ है। तीन प्रकार विभाग पक्ष तीन सवन के बारे में उपयोग किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह पाँच प्रकार कालों में जो विहित कर्म होता है उनको दैव और पित्र्य कर्म नाम से भेद करके, उनके गौण काल को जानने के लिये दो प्रकार विभाग पक्ष प्रदर्शित किया गया है। चार प्रकार विभाग पक्ष तो प्रकरण के अनुसार गोभिलस्मृति में प्रतिपादित कर्म विशेष द्रष्टव्य होता है। पन्द्रह विभाग पक्ष मुहुर्त्त विशेष को लेकर प्रवर्तित होता है। विधि और निषेध ज्योतिशास्त्र में देखना है।

ऐसे होने से प्रकरण के अनुसार पाँच प्रकार विभाग पक्ष के अन्तर्गत दिवस के पाँच भागों से पाँचवां भाग सायाह्न को व्याप्त कर उससे पहले चौथा भाग अपराह्ण को जो प्रतिपदा स्पर्श करती है वही पूर्वबिद्धा होकर पूज्य होती है। यहाँ तिथिओं का वेध पैठीनसिने कहा है। दोनों ही पक्षों में तीन मुहूर्त्तों से तिथिओं पूर्व और उत्तर तिथि को वेध करती हैं। यह है सामान्य वेध का लक्षण।

पूर्व दिवस में सूर्योदय के अनन्तर अमावस्या अगर तीन मुहूर्त्त रहती है तो प्रतिपदा को वेध करती है। दूसरे दिन में सूर्यास्त से पहले द्वितीया तीन मुहूर्त्त रहती है तो पूर्व प्रतिपद को वेध करती है। ऐसे उभयविद्ध होकर दो दिनोंमें रहने वाली दो प्रत्तिपदों से पूर्व प्रतिपद ग्रहणीय होगी या पर ? इस विषय में विचार होता है। पूर्व प्रतिपद को ग्रहण करने के लिये पैठीनसि, स्कन्दपुराण और व्यास के समर्थन मिलता है। इनके वचन पहले कहा गया है। निगम में भी ऐसा कहा हैं—

"युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः।
रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा॥
प्रतिपद्यप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मंम हाफलम्।
एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥ इति।

युग्मं द्वितीया, अग्निस्तृतीया, युगं चतुर्थी, भूतं पञ्चमी, षट् षष्ठी, मुनिः सप्तमी। वसुरष्टमी। रन्ध्रं नवमी, रुद्र एकादशी। अत्र युग्माग्न्यादिसप्तयुग्मेषु पूर्वतिथिरुत्तरविद्धा ग्राह्या। उत्तरा तु पूर्वविद्धेत्युक्तं भवति। स्मृत्यन्तरेऽपि—

एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका।
उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुता॥ इति।

अन्यत्रापि—

षष्ठ्यष्टमी अमावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण संयुताः ॥ इति ।

शिवशङ्करगीतायाम्—

एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्थिका ।
चतुर्दश्यप्यमावास्या उपोष्याः स्युः परान्विताः ॥ इति ।

एतेषु सर्वेषु वचनेषु प्रतिपदः पूर्वविद्धायाः पूज्यत्वं प्रतीयते । एतस्येव पक्षस्यानुग्राहक उत्तरविद्धाया निषेधो वृहद्वसिष्ठेन स्मर्यते—

द्वितीया पञ्चमी वेधाद्दशमी च त्रयोदशी ।
चतुर्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथी ॥ इति ।

"युग्मानि" यह युग्म वाक्य प्रमाण है । युग्म = द्वितीया, अग्नि = तृतीया, युग = चतुर्थी, भूत—पञ्चमी, षट् = षष्ठी, मुनि = सप्तमी, वसु= अष्टमी, रन्ध्र = नवमी, रुद्र = एकादशी । युग्म वाक्य से सात युग्मों में पूर्व तिथि उत्तरविद्धा और उत्तर तिथि पूर्वविद्धा होकर ग्रहणीय होती हैं ऐसा प्रतीत होता है ।

दूसरीस्मृति में भी कहा है कि एकदशी, षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या और कृष्णपक्ष की त्रयोदशी परयुक्त होकर और पर तिथि पूर्वयुक्त होकर पूज्य होती है ।

शिवशंकरगीता में कहा गया है—एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, द्वितीया, चतुर्थी, चतुर्दशी और अमावास्या परविद्धा होकर उपवास के लिये योग्य होती हैं । इन सब वचनों में पूर्वविद्धा प्रतिपद की पूज्यता प्रतीत होती है । इस पक्षका अनुग्राहक जो उत्तरविद्धा का निषेध है, उसका स्मरण वृद्धवसिष्ठ ने किया जाता है । द्वितीया, पंचमी, दशमी और चतुर्दशी वेध के कारण उपवास में पूर्व और उत्तर तिथिओं को नाश करती हैं ।

द्वितीयादयः स्ववेधे पूर्वामुत्तरां च तिथिं हन्युरित्यभिधानादुत्तरा प्रतिपदुपवासे निषिद्धा भवति । आपस्तम्बस्तूत्तरविद्धायाः प्रतिपदः पूज्यत्वमाह—

"प्रतिपत् सद्वितीया स्याद् द्वितीया प्रतिपद्युता ॥" इति ।

भविष्योत्तरेऽप्ययमेव पाठः । अत्रेदं चिन्त्यते । किमुत्तरविद्धा-पूज्यत्ववचनेन प्रतिपन्मात्रं विषयीक्रियते, किं वा प्रतिपद्विशेषः ? यदा प्रतिपद्विशेषस्तदापि किमशुक्लपक्षगतत्वं किं वाऽनुपोष्यत्वं पूर्वदिने अनापराह्णिकत्वं वा, तत्रैवासायाह्निकत्वं वा, तत्रैवाऽपराह्णसायाह्नो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भयाव्याप्तित्वं वा, बलिदिनेतरत्वं वा, शुक्लपक्षादिनिखिलप्रतियोगिराहित्यं वा ?

ननु सर्वत्र संशयः कोटिद्वयमवलम्बते। कोटिद्वयावलम्बी विमर्शः संशय इति हि तार्किकडिण्डिमः।[1] अतो बहुपक्षोपन्यासो न युक्तः। मैवम्। प्राणाधिकरणवदुपपत्तेः। अस्त्युत्तरमीमांसायां[2] प्रथमाऽध्यायप्रथमपादावसाने प्राणशब्दं विषयीकृत्य प्रवृत्तमधिकरणम्। तस्य च संग्राहकावेतौ श्लोकौ भवतः—

प्राणोऽस्मीत्यत्र वाय्विन्द्रजीवब्रह्मसु संशयः।
चतुर्णां लिङ्गसद्भावात् पूर्वपक्षस्त्विहैच्छिकः॥
ब्रह्मणोऽनेकलिङ्गानि तानि सिद्धानि नान्यथा।
अन्येषामन्यथासिद्धेर्व्युत्पाद्यं ब्रह्मनेतरः॥ इति।

द्वितीया प्रभृति तिथियाँ स्ववेधस्थल में पूर्व और उत्तर तिथि को नाश करती हैं, ऐसे कहने से उपवास में परविद्धा प्रतिपद निषिद्ध होती है। लेकिन आपस्तम्ब परविद्ध प्रतिपदा की पूज्यता प्रतिपादन करते हैं "प्रतिपत्स द्वितीया" इरा वचन के साथ भविष्योत्तरपुराण में भी यह पाठ मिलता है।

यहाँ ऐसी चिन्ता होती है क्या परविद्धा की पूज्यता को प्रतिपादन करने वाले वचन से केवल प्रतिपद की सूचना मिलती है या कोई विशेष प्रतिपद लक्षित होती है ? जब विशेष प्रतिपद की सूचना आती है तब शुक्ल पक्ष से भिन्न पक्ष की सूचना मिलती या उपवास व्यतिरिक्त अन्य विषय सूचित होता या पूर्व दिन के अपराह्ण में प्रतिपदा का अभाव से या सायाह्न तक अवस्थिति के कारण या अपराह्ण और सायाह्न को अव्याप्त होने से या बलिदान से भिन्न स्थल में या शुक्लपक्ष के सब प्रतियोगी भिन्न स्थल पर ? यहाँ एक प्रश्न आता है कि सब जगह संशय दो स्थल को आश्रय करता है। दो स्थल को आश्रय करके होने वाला विमर्श संशय के नाम से तार्किक लोग घोषित करते हैं। अतः अनेक पक्षों को उपस्थापित करना उचित नहीं है ऐसी युक्ति ठीक नहीं है। क्यों कि प्रणाधिकरण का विषय आ जाता है। उत्तरमीमांसा में पहला अध्याय पहला पादका अन्त

१. समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः॥ न्या० सू० १।१।२३

२. द्रष्टव्यं—ब्रह्मसूत्रम् १।१।११।२८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में प्राण शब्द को लेकर एक अधिकरण प्रवृत्त होता ह। इसके दो संग्राहक श्लोक हैं—

"प्राणोऽस्मि" इत्यादि वाक्य यहाँ प्रमाण है। "प्राणोऽस्मि" इस वाक्य को आधार कर वायु, इन्द्र, जीव और ब्रह्म के बारे में संशय होता है। यहाँ चार तत्त्वों के लिङ्ग प्रमाणरूप से मिलता है। इसलिए पूर्वपक्ष के मतानुसार इच्छा पूर्वक विकल्प स्वीकार किया जा सकता है। सिद्धान्ती ने कहा है कि ब्रह्म के अनेक लिङ्ग हैं लेकिन कोई भी प्रकार से उनकी सिद्धि नहीं होती। दूसरों के लिङ्ग भिन्न प्रमाण से सिद्ध हो सकता है। अतः "प्राणोऽस्मि" वचन के द्वारा ब्रह्म ही सिद्ध होता है।

अयमर्थः—कौषीतकिब्राह्मणे[1] प्रतर्दनायोपसन्नायेन्द्र एवमुपसंदिदेश—प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्वेति। तत्र संशयः। किं प्राणशब्देन ऊच्छ्वासनिश्वासकारी वायु र्विवक्षितः, उतेन्द्रशब्दाभिधेयः सहस्राक्षत्वाद्याकारवान् देवताविशेषः, आहोस्वित् कार्यकारणाध्यक्षो जीवः, अथवा परंब्रह्मेति?

सन्ति चात्र प्रकरणे, पक्षचतुष्टयगमकानि चतुर्विधानि लिङ्गानि। इदं शरीरं प्रतिगृह्योत्थापयतीति प्राणवायोर्लिङ्गम्। अस्मीत्यहङ्कारवादो वक्तुरिन्द्राख्यदेवताविशेषस्य लिङ्गम्। न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्यादित्यादिना श्रुतं वक्तृत्वादिकं जीवलिङ्गम्। आनन्दोऽजरोऽमृत इत्यादिकं ब्रह्मलिङ्गम्। चतुर्णां लिङ्गानां समबलत्वादिच्छया यत् किञ्चित् स्वीकर्त्तव्यमिति पूर्वः पक्षः। आनन्दत्वाजरत्वादीनां ब्रह्मलिङ्गानामनेकत्वात्तेषां च वाय्वादौ कथञ्चिदपि योजयितुमशक्यत्वाच्छरीरोत्थापनादीनां [2]वाय्वादिलिङ्गानां तदुपाध्युपहिते ब्रह्मणि सुसंपादत्वाद् ब्रह्मैवात्र प्राणशब्देन विवक्षितमिति राद्धान्त इति।

पूर्वमीमांसायामपि[3] षष्ठाध्यायस्य सप्तमे पादे सहस्रसंवत्सराधिकरणस्य संशये पक्षा अष्टावुपन्यस्ताः। किमस्मिन् सत्रे दीर्घायुषां गन्धर्वादीनामधिकारः? उत रसायनेन सिद्धानां मनुष्याणाम् अथ

१. कौ० ब्रा० ३।१अधिकं तु द्रष्टव्यं ब्र. सू. अधि. १।१।२

२. उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनप्रसारणगमनमितिकर्माणि (वै. सू. १.१.७) इति सूत्रेण प्राप्तस्य उत्क्षेपणकर्मणः संपादको वायुः। अत उत्क्षेपण द्वारा वायुर्लिङ्ग्यते।

३. पू० मी० ६।७।३१–४०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पितृपुत्रपौत्रादिपरंपराख्पस्य कुलस्याहोस्विदस्मादेव शास्त्रादत्र प्रवृत्तस्य सहस्रसंवत्सरमायुर्भविष्यति, किं वा सार्द्धद्विशतानां पुरुषाणामत्राऽधिकारः? अत्र संवत्सरोक्तिर्मासपरा वा द्वादशरात्रिपरा वा दिनपरा वेति? एवं च सति संशयस्य एककोटिकत्वं तार्किकै-र्व्यावर्त्यते न तु बहुकोटिकत्वम्।

इसका अर्थ यह है—कौषीतकि ब्राह्मण में आनेवाला प्रतर्दन को इन्द्र ने ऐसा उपदेश दिया। मैं प्राण हूँ, प्रज्ञात्मा हूँ, आयु हूँ, अमृत हूँ। मुझको उपासना करो। यह संशय ऐसा है कि प्राणशब्द से उच्छ्वास और निःश्वास वायु विवक्षित होते हैं या इन्द्र शब्द से अभिधेय हजार नेत्रों को धारण करने वाला देवता विशेष या कार्य-कारण को जानने वाला जीव या परं ब्रह्म?

इस प्रकरण में चार पक्षों के चार प्रकार लिंग प्रमाण मिलते हैं। इस शरीर को ग्रहण करके उत्थान कर्म करने वाला प्राण वायुलिंग होता है। मैं हूँ ऐसा अहंकार इन्द्र नामक देवता विशेष का लिंग होता है। "न वाचं विजिज्ञासीत" इस वाक्य से वचन की जिज्ञासा न करके वक्ता को जानो ऐसा श्रुति वाक्य जीव का लिंग होता है। आनन्द; अजर, अमृत प्रभृति शब्दों से ब्रह्म का लिंग प्रतीत होता है। यहाँ चार लिंग-प्रमाणों के समान बल होने से इच्छा के अनुसार कोई एक प्रमाण विकल्प में स्वीकार करना चाहिये ऐसा पूर्व पक्ष का आशय है। आनन्दत्व, अजरत्व प्रभृति ब्रह्म के अनेक लिंग हैं। किसी भी प्रकार से वायु प्रभृति में इसको संयोजित नहीं किया जा सकता। शरीर के उत्थापन प्रभृति वायु का लिंग होने से भी वायु उपाधि से उपहित ब्रह्म में इसको संपादित किया जा सकता है। इसलिये प्राण शब्द से ब्रह्म ही यहाँ विवक्षित होता है ऐसा सिद्धान्त है।

पूर्वमीमांसा का छठा अध्याय के सातवें पाद में सहस्रसंवत्सराधिकरण में आठ पूर्वपक्ष आते हैं। क्या इस सत्र में दीर्घायु गन्धर्वों का अधिकार? या रसायन के द्वारा सिद्ध मनुष्यों का या पिता और पुत्र प्रभृति वंशपरंपरा के द्वारा कुलस्थ लोगों का, या इस याग का कर्त्ता के हजार वर्ष परमायु

---

१. समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषा-पेक्षो विमर्शः संशयः॥ न्या. सू. १।१।२३,
सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्च संशयः॥ वै० सू० २ २ १७
ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ तु संशयः। काव्यप्रकाशः— १०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है ? या ढाई सौ पुरुषों का यहाँ अधिकार है ? यहाँ संवत्सर शब्द मास को बोधित करता है या बारह रातको या दिन को समझाता है ? इस स्थल में तार्किकों ने कहा है कि 'संशय' एक तरफ में रहता है, बहुत तरफ में नहीं रहता।

नन्वेवमपि यथोक्तानां पक्षाणां प्राणाधिकरणन्यायेन गमकानि लिङ्गानि वक्तव्यानीति चेत्, तान्युदाहरामः। 'द्वितीया प्रतिपद्युते'त्युक्ते सामान्यतः प्रतिपन्मात्रं प्रतीयते। युग्माग्निवाक्ये "प्रतिपद्यप्यमावास्ये"ति पूर्वदिनपूज्यत्वस्य शुक्लपक्षविषयत्वादितरस्य कृष्णपक्षविषयत्वम्। न चात्रामावास्याशब्दः पूर्णिमाया अप्युपलक्षणमिति शङ्कनीयम्। "चतुर्दश्या च पूर्णिमे"ति पूर्णिमायाः पूर्वदिनेन सह युग्मत्वाभिधानात्। उदाहृतं स्मृत्यन्तरेण—

"उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः"—

इत्यमावास्यायुतायाः प्रतिपद उपोष्यत्वाभिधानाद द्वितीयायुक्ताया उपवासव्यतिरिक्तव्रतादिविषयत्वम्। उपोष्यशब्देन व्रतादीनामुपलक्षणमितिचेन्न, "पूर्वाह्णो वै देवाना"मिति श्रुत्या व्रतादौ पूर्वाह्णस्य विहितत्वेनोत्तरदिनस्वीकारे कर्मकालव्याप्तिलाभात्।

"यस्मिन् काले तु यत्कर्म तत्कालव्यापिनी तिथिः॥

इति हि कर्मकालव्याप्तिः स्मर्यते। न चोपवासेऽपि समानमेतदिति वाच्यम् उपवासस्याहोरात्रसाध्यत्वेन खण्डतिथौ संपूर्णकर्मकालव्याप्त्यसंभवात्।

प्रश्न होता है—ये जो पक्षों का उपन्यास किया गया। प्राणाधिकरणन्याय से उनके गमक लिंगों के बारे में अगर कहना होगा तो उदाहरण के रूप में उपस्थापित करेंगे। "द्वितीया प्रतिपद्युता" इस वचन के द्वारा केवल प्रतिपद ही प्रतीत होती है। "प्रतिपद्यप्यमावास्या" इस युग्म वाक्य से पूर्व दिन की पूज्यता प्रतिपादित होती है इसलिए यह विषय शुक्लपक्ष में नियत हो जाने पर इस प्रकार से भिन्न प्रतिपद कृष्णपक्ष की होती है। यहाँ अमावास्या शब्द पूर्णिमा को भी उपलक्षित करता है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। "चतुर्दश्या च पूर्णिमा" इस वचन से पूर्वदिन के साथ पूर्णिमा की युग्मता अभिहित की गयी है। "उपोष्याः परसंयुक्ताः" इस स्मृति वचन के उदाहरण से अमावास्यायुक्त प्रतिपद में उपवास प्राप्त होता है। अतः द्वितीयायुक्त प्रतिपद में उपवास को छोड़कर दूसरे कर्मों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुष्ठान प्राप्त होता है। "उपोष्य" इस शब्द से अगर व्रत प्रभृतियों का उपलक्षण स्वीकार किया जायगा तो ठीक नहीं होगा, क्योंकि "पूर्वाह्न ही देवताओं का है" ऐसी श्रुति ने व्रतों के लिये पूर्वाह्न का विधान होने पर परवर्त्ती दिन का स्वीकार कर लेने से कर्मकाल में प्रतिपद की व्याप्ति उपलब्ध होगी। जिस काल में जो कर्म कहा गया है उस कर्म के लिए उस काल में तिथि की व्याप्ति आवश्यक है। यह है कर्म काल व्याप्ति को स्मरण कराने वाला वचन। किन्तु उपवास में समानरूप से ऐसी रीति नहीं मानी जाती है, क्यों कि उपवास के लिये अहोरात्रव्याप्ति आवश्यक है। किन्तु खण्डतिथि में संपूर्णरूप से कर्मकाल की व्याप्ति नहीं मिलेगी।

व्याप्तिबाहुल्यं तु पूर्वविद्धायामेव भवति। अह्नोऽपरभागे कृत्स्नायां रात्रौ च तद्व्याप्तेः। "उदये तूपवासस्ये"ति स्मृत्या परेद्युरुपवासः प्राप्नोतीति चेन्न। तस्याः सामान्यशास्त्रत्वेन प्रतिपदुपवासाभिधायिनो विशेषशास्त्राद् दुर्बलत्वात्। पैठीनसि-स्कन्दव्यासैः पूर्वतिथावपराह्ण-व्यापितया सायाह्नव्यापितयोभयव्यापितया च पूज्यत्वाभिधाने सति तासामेव तिसृणां व्याप्तीनामभावे उत्तरतिथौ पक्षत्रयं संपद्यते।

ननु पूर्वतिथावपराह्णव्याप्तौ सत्यां तत्रान्तरीयकतया सायाह्न-व्याप्तेरवश्यभावित्वेन पृथक्तदभिधानं निरर्थकमिति चेत्। किमिदं केवलसायाह्नाभिधायिवाक्ये चोदयति किं वोभयाभिधायिवाक्ये? नाद्यः यदा विनैवापराह्णव्याप्तिं सायाह्नमात्रं व्याप्यते तदापि पूर्वविद्धायाः पूज्यत्वेन वक्तव्यत्वात्। द्वितीये वैश्वानरेष्टिन्यायेन अवयुत्यानुवादो[1] भविष्यति। स च न्याय उद्भिदादिपादे व्यवस्थितः।

काम्यकाण्डे श्रूयते[2]—"वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जाते यदष्टाकपालो भवति गायत्र्यैवैनं ब्रह्मवर्चसेन पुनाति। यन्नवकपालस्त्रि-वृतैवास्मिंस्तेजो दधाति[3]। यद्दशकपालो विराजैवास्मिन्नन्नाद्यं दधाति। यदेकादशकपालस्त्रिष्टुभैवास्मिन्निन्द्रियं दधातीति" इति। अत्र द्वादश-कपालेऽष्टौ ब्रह्मवर्चसादिफलविशेषाय अष्टकपालादिगुणविधिरिति पूर्वः पक्षः। उत्पत्तिशिष्टद्वादशकपालेनावरोधे सत्युत्पन्नशिष्टानामष्टाकपाला-दीनामत्रावकाशाभावादुपक्रमोपसंहारान्तर्गतत्वेन तेषां विध्यन्तराभावा-

१. प्राप्तस्य पुनः प्राप्तिरनुवादः। अवयुत्य नाम पृथक्कृत्य।

२. मीमांसाधिकरणम् १।४।१२

३. तप्ते पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेव्यामीक्षेति वाक्ये प्राप्तयोरामीक्षा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

च्चावयवैरष्टाकपालादिभिर्नान्तरीयकसिद्धैरवयविनो द्वादशकपालस्य स्तुतिरिति राद्धान्तः।

पूर्वविद्धा तिथि में व्याप्ति की बहुलता उपलब्ध होती है। क्यों कि दिन के अपरभाग में और संपूर्ण रात में ऐसी तिथि व्याप्त होकर रहती है। "उदये तूपवासस्य" इस स्मृति वचन के अनुसार पर दिन में उपवास की प्राप्ति होती है। ऐसा ठीक नहीं है। क्यों कि यह सामान्य वचन प्रतिपद को विधान करने वाला विशेषशास्त्र से दुर्बल होता है। पैठीनसि, स्कन्दपुराण और व्यास के मतानुसार पूर्वतिथि में अपराह्ण व्याप्ति, सायाह्नव्याप्ति और उभयव्याप्ति होने के कारण पूज्यता प्रतिपादित होती है। इसलिए इन तीन व्याप्तियों के अभाव में परवर्त्ती तिथि में इन तीन पक्षों की उपस्थिति होती है।

प्रश्न होता है—पूर्व तिथि में अपराह्ण व्याप्ति होने से इसके अन्तर्गत सायह्न व्याप्ति स्वतः आ जाती है। पृथक्रूप से उसका उपन्यास निरर्थक अगर होता ? तो क्या केवल सायाह्न को अभिहित करने के लिये वाक्य में प्रचोदित करते हो या उभय (अपराह्ण + सायह्न) को अभिहित करने के लिये ? यहां पहला पक्ष ठीक नहीं है। जिस दिन में अपराह्ण को व्याप्त होकर सायाह्न मात्र को ही व्याप्त होती है, उस दिन में पूर्वविद्धा की पूज्यता ही कही गयी है। दूसरा पक्ष में वैश्वानरेष्टि न्याय से अवयुत्यानुवाद होता है।

यह न्याय काम्यकाण्ड के प्रकरण में उद्भिदादि पाद में व्यवस्थित हुआ है। ऐसा सुना है। पुत्र जन्म होने के बाद वैश्वानर के उद्देश्य में बारह कपालों से निर्वपण किया जाता है। आठ कपालों से निर्वपण होने से गायत्री

वाजिनयोरामीक्षाया उत्पत्तिशिष्टत्वं वाजिनस्य उत्पन्नशिष्टत्वम्। उत्पन्नशिष्टस्य वाजिनस्यानुद्दिष्टत्वेन प्रसंगसिद्धत्वम्। तदर्थं तस्य दुर्बलत्वम्। तद्वदत्र द्वादशकपालास्य उत्पत्तिशिष्टत्वेन प्राबल्यात् उपक्रममुखेन अष्टाकपालाग्निभवित्वम्। सर्वथा उत्पत्तिशिष्टद्रव्यस्य विधर्थता। उत्पन्नशिष्टस्य तदवशिष्टत्वेन दरे उपलभ्यमानत्वात् निकटे उपलभ्यमानात् उत्पत्तिशिष्टात् उत्पत्तिशिष्टात् दौर्बल्यम्। स च पृथक् विषयः आमीक्षादेवताऽपेक्षया वाजिनदेवताया भेदत्वेन पृथगुपसंहारः। प्रकृतौ अष्टाकपालादीनां द्वादशकपालात्मकस्य पदार्थस्य पृथक्खण्डेन पश्चादुक्तौ तेषां द्वादशकपालोदेश्येन प्रसिद्धत्वम्। न तेषामुत्पत्तिशिष्टत्वमपितु उत्पन्नशिष्टत्वम्। विषयोऽयं प्रकृतौ स्पष्टः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्मतेजों के द्वारा उस पुत्र को पवित्र करती है। नवकपाल त्रिवृत के द्वारा तेज का आधान करता है दश कपाल विराट के द्वारा उसमें अन्नाद्य (सुपाच्य अन्न) को भरता है। ग्यारह कपाल त्रिष्टुप् के द्वारा इन्द्रिय को विधान करता है। यहाँ द्वादशकपालेष्टि में ब्रह्मवर्चस प्रभृति विशेष फलों के लिए आठ कपाल प्रभृति गुणविधिओं का उपन्यास हुआ है। यह है पूर्व-पक्ष का आशय। सिद्धान्ती पक्ष में कहा है—उत्पत्तिशिष्ट है द्वादश कपाल। उत्पन्नशिष्ट है अष्टाकपाल प्रभृतिपक्ष। उत्पत्तिशिष्ट से उत्पन्नशिष्ट दुर्बल होता है। उत्पत्तिशिष्ट के पास उत्पन्नशिष्ट का अवकाश नहीं है। इसलिये उपक्रम-उपसंहार न्याय के अन्तर्गत विषय यहाँ आता है। उपसंहार अन्य विधि का विषय नहीं होता है। बारह कपालों के द्वारा होने वाली दृष्टि यहाँ अवयवी होती है। अवयव की स्तुति जैसे अवयवी की स्तुति वैसे आठ कपालों की स्तुति बारहकपालों के उद्देश्य में होती हैं।

एवमत्रापि यदा सायाह्नव्यापिन्यपि गृह्यते तदापराह्णव्यापिन्या ग्रहणं किमु वक्तव्यमिति नान्तरीयकसिद्ध्या सायाह्नव्याप्त्या अपराह्णव्याप्तिः प्रशस्यते। स्कन्दपुराणे बलिदिनाभिधानाया; शुक्लप्रतिपदः पूर्वविद्धत्वाभिधानादितरा सर्वा प्रतिपदुत्तरेत्येष पक्षः प्रतीयते। शुक्लपक्षोपवासापराह्णसायाह्नबलिदिनानां पञ्चानां समूहस्य पूर्वतिथिप्रयोजकत्वे सति अन्तिमः पक्ष उदेति। एवं बहुविधसंशये सति निर्णयं ब्रूमः।

यद्यपि द्वितीया प्रतिपद्युतेत्यत्र न कोऽपि विशेषः पठ्यते तथाप्यशेषप्रतिपत्स्वीकारे युग्माग्न्यादीनि बहूनि वाक्यानि बाध्येरन्। न चान्तिमः पक्षो युक्तिसहः। तदा हि पूर्वविद्धायाः प्रयोजकमेवं वक्तव्यम्। शुक्लपक्षसायाह्नापराह्णव्यापिनि बलिदिने य उपवासः स पूर्वविद्धाया विषय इति। तच्च वक्तुं न शक्यते। बलिदिनत्वं निमित्तीकृत्य उपवासस्याविधेयत्वात्। पूजोत्सवादिकमेव हि तत्र विहितम्। अतः समूहस्य प्रयोजकत्वाभावे शुक्लपक्षादिपञ्चस्वन्यतमस्य प्रयोजकत्वमभ्युपेयम्। तत्र किमिच्छया विकल्पः। आहोस्विदेकं प्रतिनियतमिति विचारे विकल्पस्तावन्न युज्यते, अष्टदोषग्रस्तत्वात्। तथा हि—

यदा बल्युत्सवस्य प्रयोजकत्वं स्वीक्रियते तदोपवासवाक्यस्य प्राप्तं प्रामाण्यं परित्यज्येत। अप्राप्तं चाप्रामाण्यं स्वीक्रियेत। पुनरपि यदा कदाचिदुपवासप्रयोजकत्वस्वीकारे कल्पितमप्रामाण्यमपह्नू-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

येतानिराकृतं च प्रामाण्यनुपजीव्येत। तदेवमुपवासवाक्ये चत्वारो दोषाः। अनेनैव न्यायेन बल्युत्सववाक्येऽपि यथोक्ताश्चत्वारो दोषा उत्प्रेक्षणीयाः। नचैवं व्रीहियवादावपि विकल्पो न स्यादिति वाच्यम् अगत्या तत्र तदाश्रयणात्। तदाहुर्भट्टाचार्याः—[1]

एवमेषोऽष्टदोषोऽपि यद् व्रीहियववाक्ययोः।
विकल्प आश्रितस्तत्र गतिरन्या न विद्यते॥ इति।

यहाँ इस प्रकरण में भी जब सायाह्नव्याप्ति ग्रहणीय होती है, तब अपराह्न व्याप्ति के बारे में क्या कहना है? अर्थात् बीच में रहनेवाली अपराह्नव्याप्ति ही माननीय होती है। सायाह्नव्याप्ति से अपराह्नव्याप्ति प्रशस्त होती है। स्कन्द पुराण में बलिदिन को सूचित करने वाली शुक्लप्रतिपदा पूर्वविद्धा होती है। ऐसे कहने से दूसरी सब प्रतिपद परविद्धा होती हैं ऐसा प्रतीत होता है। शुक्लपक्ष, उपवास, अपराह्न, सायाह्न और बलिदिन ये पांच पक्ष पूर्वबिद्धा को सूचित करते हैं। ऐसे होने से अन्तिम पक्ष उठता है। इसी तरह नाना प्रकार का संशय होने पर निर्णय उपस्थापित करेंगे।

यद्यपि "प्रतिपद के साथ द्वितीया" इस वचन से अगर कोई विशेष आशय का पाठ नहीं मिलता, तथापि अनेक प्रतिपदों को स्वीकार कर लेने से युग्मवाक्य प्रभृति वचन बाधित हो जायेंगे। अन्तिम पक्ष यहां युक्तिसंगत नहीं होता है। इसलिए पूर्वबिद्धा ही प्रयोजक है ऐसा कहना चाहिये। शुक्ल-पक्ष के सायाह्न और अपराह्न की व्याप्ति में बलि दिन में जो उपवास होता हैं, वह पूर्वविद्धा के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि बलिदान को निमित्त करके उपवास विहित नहीं है। पूजा और उत्सव प्रभृति का अनु-ष्ठान यहाँ विहित होता है। अतएव इन सभी की (समूह) एक ही प्रयो-जनीयता नहीं है। शुक्लपक्ष प्रभृति पांच पक्षों से एक पक्ष की प्रयोजनीयता के बारे में निर्णय करना होगा। वहां क्या इच्छा के अनुसार विकल्प होगा?

---

१. "प्रमाणत्वाप्रमाणत्वपरित्यागप्रकल्पने प्रत्युज्जीवनहानिभ्यामष्टौ दोषाः प्रकीर्त्तिताः इति वचनात् विकल्पस्वीकारे अष्टौ दोषा भवन्ति। तत्र १—प्रमाणत्वस्य परित्यागः, २. अप्रमाणत्वस्य प्रकल्पनं चेति द्वयम्। परित्यक्तस्य प्रमाणत्वस्य प्रत्युज्जीवनम् प्रकल्पितस्य अप्रमाण-त्वस्य हानिश्चेति दोषद्वयम्। मिन्तित्वा दोषचतुष्टयम्। व्रीहि—यव-पक्षयोरुभयोः प्रत्येकं दोषचतुष्टयस्वीकारे अष्टौ दोषाः संभूय समुत्प-तन्ति। गत्यन्तरे सति विकल्पस्वीकारे एवंविधा दोषा भवन्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या एक नियत रूपसे रहता तो विकल्प नहीं हो सकता। विकल्प स्वीकार मे आठ दोष होते हैं।

इस लिए जब बल्युत्सव की प्रयोजनीयता स्वीकृत होती है तब उपवास वाक्य के प्राप्त प्रामाण्य का परित्याग होता है अप्राप्त का अप्रामाण्य स्वीकृत होता है। फिर भी जब कभी उपवास की प्रयोजकता स्वीकृत होती है तब कल्पित अप्रामाण्य स्वीकृत नहीं होता है और अनिराकृत का प्रामाण्य फिर स्वीकृत हो जाता है। ऐसे उपवास वाक्य में चार दोष होते हैं। इस न्याय से बल्युत्सव वाक्य में भी चार दोष अवगत हो जाते हैं। लेकिन व्रीहियव वाक्य में विकल्प का स्वीकार नहीं हो सकता, ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कुछ गति को न प्राप्त कर अगतिक रूप से वहां विकल्प स्वीकार होता हैं। इसलिए भट्टाचार्यों ने कहा गया हैं कि "आठ दोष होने पर भी व्रीहियव वाक्य में जो विकल्प का आश्रय हुआ वह अन्य गति के अभाव से ही हुआ।

प्रकृते तु गत्यन्तरसंभवान्न विकल्पः। अतो विकल्पाऽसंभवादेकस्यैव प्रतिनियतस्य स्वीकर्त्तव्यत्वे सति शुक्लपक्षस्यैव स्वीकरणं युक्ततरं मन्यामहे। तथा सति बह्वनुग्रहसिद्धेर्यूग्मादिवाक्यं बलिदिनवाक्यमुपवासवाक्यं चेत्येतान्यनुगृह्यन्ते। न ह्येतानि कृष्णपक्षविषयतया कथंचिदपि योजयितुं शक्यन्ते। तदनुसारेण द्वितीयायुतत्वं कृष्णपक्षविषयत्वेन सङ्कोचनीयम्। तस्य सामान्यवचनत्वात्। इत्थं शुक्लकृष्णप्रतिपदोः क्रमेण पूर्वोत्तरविद्धतया व्यवस्थितौ सत्यां योऽयं द्वितीयायुक्तोपवासनिषेधः, असौ शुक्लपक्षविषयतया योजनीयः। यद्यप्यापराह्णिकवचनं शुक्लकृष्णपक्षद्वयसाधारणं प्रतिभासते तथापि शुक्लपक्षविषयत्वमेव तस्य न्याय्यं, सांमुख्यमुपजीव्य प्रवृत्तत्वात्। कृष्णपक्षे द्वितीयायुतायाः प्रतिपदो विमुखत्वात्।

नन्वेवं सति यदा शुक्लपक्षे सायाह्नमात्रं व्याप्नोति, न त्वपराह्णं तदानीमुत्तरतिथिः प्रसज्ज्येतेति चेन्मैवम्। "संमुखी नाम सायाह्नव्यापिनी"ति[1] वचनेन तादृशे विषये पूर्वतिथे विंधानात्। एवमपीषन्न्यूनसायाह्नव्याप्तौ शुक्लपक्षेऽपि परेद्युरेव प्रसज्येतेतिचेत् प्रसज्यतां नाम पूर्वतिथेर्युग्मवाक्यविषयत्वाभावात्। यदा प्रातरमावास्या त्रिमुहूर्त्ता ततोऽधिका वा सायं च प्रतिपत्त्रिमुहूर्त्ता ततोऽधिका

१. संमुखीनाम सायाह्नव्यापिनी दृश्यते यदा ।। स्क० पु०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चा भवति, तादृश्या एवोभयतस्त्रिमुहूर्त्तवेधोपेतायास्तिथेस्तद्विषयत्वात्। न च त्रिमुहूर्त्तवेधः सर्वसाधारणो न प्रतिपद्विषय इति शङ्कनीयम्। विशेषवचनाभावे सामान्यस्य स्वीकर्त्तव्यत्वात्।

किन्तु इस प्रकरण में गत्यन्तर उपलब्ध होता है। इसलिए विकल्प नहीं हो सकता। अत एव विकल्प का स्वीकार न होने से एक-एक नियत व्यवस्थित का स्वीकार हो जाता है। ऐसे होने से शुक्लपक्ष का स्वीकार युक्तिसंगत होता हैं ऐसा मान लिया जाता है। युग्म वाक्य, वलिदिन वाक्य और उपवास वाक्य इस विषय में अनुगृहीत होते हैं। इन वाक्यों को कृष्णपक्ष के बारे में किसी भी प्रकार से जोड़ नहीं दिया जा सकता। कृष्णपक्ष के अनुसार प्रतिपद की द्वितीयायुक्तता के अर्थ में संकुचित करना होगा। क्योंकि यह है सामान्य वचन। इस प्रकार से शुक्ल और कृष्णपक्ष की प्रतिपद क्रम के अनुसार पूर्व और उत्तरविद्धा के रूप में व्यवस्थित होती है। इस स्थल में द्वितीयायुक्त प्रतिपद में उपवास का जो निषेध सुना है वह शुक्ल पक्ष के विषय में व्यवस्थित होता है। यद्यपि अपराह्ण व्याप्ति को लक्ष्य करके जो वचन शुक्ल और कृष्ण पक्ष इन दोनों के विषय में साधारणतः प्रवृत्त होता है तथापि शुक्लपक्षविषय में इसकी प्रवृत्ति ही न्यायतः होती हैं। क्योंकि साम्मुख्य को आश्रय करके यहाँ प्रवृत्ति होती हैं। कृष्णपक्ष में द्वितीयायुक्त प्रतिपद विमुख होती है।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि जब शुक्लपक्ष में सायाह्नकाल में ही केवल प्रतिपद की व्याप्ति होती है अपराह्ण में नहीं, तब उत्तर तिथि की प्रसक्ति होती हैं? ऐसा ठीक नहीं है। सायाह्न को व्याप्त होने वाली तिथि संमुखी होती है। इस मत के समर्थक वचन से उस विषय में पूर्व तिथि का विधान होता है। ऐसे होने से शुक्लपक्ष में थोड़ा न्यून होकर सायाह्न व्याप्ति में परदिन की प्रसक्ति होती है क्या?

प्रसक्ति हो सकती हैं क्योंकि पूर्वतिथि की स्थिति युग्मवाक्य विषय में नहीं होती। जिस दिन में सुबह तीन मुहर्त्त या कुछ अधिक काल तक अमावास्या रहती और सायंकाल में तीन मुहर्त्त या कुछ अधिक प्रतिपद रहती है, इस स्थल में उभयविद्ध तिथि का यह विषय हैं। तीन मुहर्त्तों के द्वारा होने वाला वेध सर्वसाधारण होता है, प्रतिपद के विषय में इसको व्यवस्थित नहीं किया जा सकता, ऐसी शंका नहीं हो सकती। क्योंकि जिसपर विशेष बचन का अभाव परिलक्षित होता है उस पर सामान्य वचन स्वीकृत होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीयायुक्तोपवासनिषेधस्तु पूर्वेद्युः प्रतिपदस्त्रिमुहूर्त्तवेधे सति द्रष्टव्यः। सायाह्नव्याप्तिवचनेन त्रिमुहूर्त्तवेधोऽभिधीयते। आपराह्णिकवचने ततोऽधिकवेधः। तत्रोभयत्र शुक्लप्रतिपत्पूर्वैवोपेष्या। यदा कृष्णप्रतिपत्परेद्युरुदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्त्ता ततोऽधिका वा स्यात्तदा सैवोपोष्या। अन्यथा पूर्वेद्युरिति निर्णयः।

व्यासवचने पूर्वविद्धायां शुक्लप्रतिपदि ये दैवपित्र्ये विहिते तयोर्दैवशब्देन प्रतिपन्निमित्त उपवासो बल्युत्सवश्चेत्युभयं विवक्षितम्। वचनान्तराभ्यां तयोः शृङ्गग्राहिकतया विधानात्।

"एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका।
उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः॥
श्रावणी दुर्गनवमी तथा दुर्वाष्टमी च या।
पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्"॥ इति।

द्वितीया युक्त प्रतिपद में उपवास का निषेध वहाँ होता है जहाँ पूर्वदिन में प्रतिपद का तीन मुहर्त्त वेध होता है। सायाह्नव्याप्ति वचन के द्वारा तीन मुहर्त्त वेध अभिहित होता हैं अपराह्न वचन के द्वारा सायाह्न व्याप्ति से अधिक व्याप्ति होती है। यहां उभयत्र शुक्ल प्रतिपद पूर्वविद्धा होकर उपवास योग्य होती है। जब कृष्ण प्रतिपद दूसरे दिन में उदय से ऊर्ध्व तीन मुहर्त्त या अधिक काल तक रहती, तब उपवास के लिये ग्रहणीय होती है अन्यथा पूर्वदिन निर्णीत होता है।

व्यास वचन के अनुसार पूर्वविद्धा शुक्लप्रतिपद में जो दैव और पितृकर्म विहित होते हैं, वहाँ दैव शब्द से प्रतिपद को निमित्त करके प्रसक्त-उपवास और वल्युत्सव विवक्षित होते हैं क्योंकि दो वचनों के द्वारा शृङ्ग ग्रहण करके चिह्नित किया जाता है। यथा—

एकादशी, षष्ठी, अमावस्या, और चतुर्थी परविद्धा होकर उपवास के लिये निर्णीत होती हैं और परवर्त्ती तिथियां पूर्वविद्धा होकर ग्रहणीय होती हैं। श्रवणा कर्म, दुर्गनवमी, दूर्वाष्टमी, शिवरात्रि और बलिदिन पूर्वविद्धा होकर गृहीत होती हैं।

नन्वाश्वयुजमासे योऽयं नवरात्रोत्सवस्तदुपक्रमस्यापि पूर्वविद्धायां क्रियमाणत्वात् सोऽप्यत्र विवक्षणीय इतिचेन्न तस्य नक्तव्रतत्वादेकभक्तनक्तप्रतिपद्दिष्टीनां दैवत्वेऽपि पृथङ्निर्णयस्य वक्ष्यमाणत्वात्। न च व्रतादीन्यपि च दैवादन्यत्र विवक्ष्यन्तामिति शङ्कनीयम्। तेषु उदयतिथिप्राशस्त्यस्य बहुभिर्वक्ष्यमाणत्वात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पित्र्यशब्देनात्र मृताहश्राद्धं विवक्षितम् । आपराह्णिकीति[1] तस्मिन् वचनेऽभिधानात् । आपराह्णिकत्वं च मृताहश्राद्धप्रयोजकमिति वक्ष्यते । एवं तर्हि तिथ्यन्तरमृताहश्राद्धवदत्रापि प्राप्तत्वात् "पित्र्यं वा मनुरब्रवीदिति"[2] विशेषविधानमनर्थकमिति तदपवादार्थत्वात् । यदा पूर्वेद्युरल्पोऽपराह्णस्पर्शः परेद्युर्भूयांस्तदा तिथ्यन्तरेषु परेद्युरेव मृताहश्राद्धम् , प्रतिपदि तु तदपवादेन पूर्वेद्युरेव विधीयते । नचाऽत्र पित्र्यशब्दस्यैकोद्दिष्टविषयत्वं युक्तम् । एकोद्दिष्टादीनां मध्याह्नादिकालेषु विहितत्वेन कर्मकालव्यापिन्यास्तिथेस्तत्र ग्रहीतव्यत्वात् । ते च काला हारीतेन दर्शिताः—

आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोदिष्टं तु मध्यतः ।
पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥ इति ।

मनुरपि—

पूर्वाह्णे दैविकं श्राद्धमपराह्णे तु पार्वणम् ।
एकोदिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥ इति ।

यहां एक प्रश्न उठता है—कि आश्विनमास में नवरात्रोत्सव का प्रारंभ पूर्वविद्धामें किया जाता है । वह भी यहां विवक्षणीय होना चाहिए ? किन्तु ऐसा ठीक नहीं हैं क्योंकि नक्त व्रत के लिए वह कहा गया है । एकभक्त, नक्त, प्रतिपद और इष्टि ये सब दैव कर्म होते हैं । इसलिए इनका पृथक् निर्णय किया होगा । व्रत भी दैव कार्य के रूप में ग्रहणीय होते हैं, इसलिए उनकी भी विवक्षा होनी चाहिये ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये । क्योंकि उनका निर्णय में उदय तिथि की प्रशस्ति अनेक वचनों के द्वारा कही गयी है ।

पित्र्य शब्द से यहां मृताहश्राद्ध विवक्षित होता है । निर्णय वचन में "आपराह्णिकी" ऐसा कहा गया है । मृताहश्राद्ध के प्रयोजक अपराह्ण काल होता है । एक प्रश्न यहाँ हो सकता कि अन्य तिथि में मृताहश्राद्ध की तरह यहाँ "पित्र्यं वा" इस मनु वचन के अनुसार विशेष

---

१. अपराह्णो वै पितृणाम् ॥
अथ यदपराह्णे पितृयज्ञेन चरन्ति अपक्षयभाजो वै पितरः ॥ श. ब्रा. ५।६

२. प्रतिपत् सैव विज्ञेया या भवेदपराह्णिकी ।
दैवं कर्म तथा ज्ञेयं पैत्र्यं च मनुरब्रवीत् ॥ इति व्यासः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विधान अनर्थक हो जाता है। किन्तु ऐसा ठीक नहीं हैं। यहां अपवाद का विषय आ जाता है। जब पूर्व दिन में अल्प अपराह्ण स्पर्श होता है, पर दिन में अधिक स्पर्श होता है, तो अन्य तिथि में पर दिन ही मृताह श्राद्ध के लिये निर्णीत होता है। प्रतिपद में उपवास के लिये पूर्व दिन का विधान होता है। यहाँ पित्र्य शब्द से एकोदिष्ट विषय विवक्षित नहीं होता है। एकोदिष्ट प्रभृति मध्याह्न में विहित होता है। वहां कर्म काल को व्याप्त होकर रहने वाली तिथियों का ग्रहण होता है।

हारीत ने यहाँ काल प्रदर्शित किया है—आम श्राद्ध पूर्वाह्ण में, एकोद्दिष्ट मध्याह्न में, पार्वण अपराह्ण में, वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल में अनुष्ठित होते हैं। मनु ने कहा है—पूर्वाह्ण में दैविकश्राद्ध, अपराह्ण में पार्वण, मध्याह्न में एको-द्दिष्ट और प्रातःकाल में वृद्धिश्राद्ध होते हैं।

दैविकं विश्वामित्र आह[1]—

देवानुद्दिश्य क्रियते यत्तद्दैविकमुच्यते।
तन्नित्यश्राद्धवत् कुर्याद् द्वादश्यादिषु यत्नतः॥

तस्मान्नैकोद्दिष्टमत्र विवक्षितं किन्तु मृताहश्राद्धम्। अन्यद्वा किञ्चिद् पार्वणश्राद्धम्। अत्र पूर्वविद्धायां शुक्लप्रतिपदि दैवशब्देन विवक्षितो य उपवासस्तमुदाहरामः भविष्योत्तरपुराणे बृहत्तपाभिधे व्रते कार्त्तिक-मासान्तदर्शे पायसभोजनादिनियमं विधायेदं पठ्यते—

ततो मार्गशीरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि।
पृष्ट्वा गुरुं चोपवसेन्महादेवं स्मरन् मुहुः॥ इति।

ननु पूर्वविद्धायां शुक्लप्रतिपदि योऽयमुपवासो विहितस्तस्य संकल्पः किं प्रातः कार्यः, किं वा प्रतिपत्काले? नाद्यः। अमावास्या-वेलायां प्रतिपदुपवाससंकल्पायोगात्। अत एव बौधायनः—

यो यस्य विहितः कालः कर्मणस्तदुपक्रमे।
तिथिर्याभिमता सा तु कार्या नोपक्रमोज्झिता॥ इति।

---

१. नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम्।
पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्ध्यर्थमष्टमम्।
कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृतम्।
यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम्॥
इति विश्वामित्रेण द्वादशविधशाद्धेषु दशमस्थानपतिश्राद्धं दैवमश्राद्धम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्कन्दपुराणे—

योो यस्य विहितः कालः कर्मणस्तदुपक्रमे।
विद्यमाने भवेदङ्गं नोज्झितोपक्रमेण तु॥ इति।

विश्वामित्र द्वारा दैवकश्राद्ध का लक्षण प्रदर्शित किया है—"देवताओं के उद्देश्य में जो श्राद्ध किया जाता है, उसको दैविक श्राद्ध कहते हैं। नित्य श्राद्ध की तरह उसका अनुष्ठान द्वादशी प्रभृति तिथियों में होता है।"

इस लिये एकोद्दिष्ट श्राद्ध यहाँ विवक्षित नहीं होता है। किन्तु मृताह श्राद्ध होता है। वह पार्वण विधि से अनुष्ठित होता है। यहाँ पूर्वविद्धा शुक्ल प्रतिपद में दैवशब्द से विवक्षित होता है जो उपवास, उसका उदाहरण देते हैं। भविष्योत्तरपुराण में बृहत्तपा नामक व्रत में कार्त्तिक मास की अमावास्या में पायस भोजन करके ऐसा पाठ मिलता है—"अग्रहायण मास का अपर दिन प्रतिपद में गुरु जी से पुछ कर, महादेव को स्मरण करके उपवास किया जाता है।"

यहाँ एक प्रश्न आता है—पूर्वविद्धा शुक्लप्रतिपद में जो उपवास विहित होता है उसका संकल्प प्रातः काल में किया जाता है या प्रतिपद काल में? पहला पक्ष यहाँ ग्रहीत नहीं होता है, क्योंकि अमावास्या के अवसर पर प्रतिपद का उपवास के लिये संकल्प नहीं होता है। अत एव बौधायन ने कहा है—"कर्म के आरंभ में जिस कर्म का जो कर्मकाल है उस समय में उस तिथि की उपस्थिति रहनी चाहिये। किन्तु आरंभ काल को नहीं छोड़ दिया जाता है।" स्कन्द पुराण में कहा है"—जिस कर्म के लिये जो काल विहित है उस कर्म का आरंभ समय में उसकी स्थिति होनी चाहिये। आरंभ काल को छोड़कर काल की स्थिति होने पर भी ग्रहणीय नहीं होता है।"

न द्वितीयः। प्रातः कालस्यैव संकल्पाङ्गत्वात्। तथा च स्मर्यते—

प्रातः संकल्पयेद् विद्वान् उपवासव्रतादिकम्॥ इति।

तथा

प्रातरारभ्य मतिमान् कुर्यान्नक्तव्रतादिकम्।
नापराह्णे न मध्याह्ने पित्र्यकालौ हि तौ स्मृतौ॥ इति[1]

---

१. अपराह्णो वै पितॄणामिति श्रुत्या पितृदेवतोद्देश्येन पिण्डोऽपराह्ण एव त्यज्यते। माध्यन्दिनो वै मनुष्याणामिति श्रुत्या मध्याह्नस्य मनुष्याणां कृते निर्दिष्टत्वेऽपि तस्यपित्रुद्देश्यकता नास्तीति नैव शक्यम्। एकोद्दिष्टस्य मध्याह्ने संपाद्यत्वात् मध्याह्नस्य पित्रुद्देश्यकता फलति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्रोच्यते। यथोक्तवचनबलात् प्रातरेव सङ्कल्पः कार्यः। तदानीं ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धप्रतिपदभावेऽपि स्मृतिभिरापादितायाः प्रतिपदः सत्त्वात्। अत एव देवलः—

यां तिथिं समनुप्राप्य अस्तं याति दिवाकरः।
तिथिः सा सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु॥ इति।

अत्र दानाध्ययनयोरुपवासादिनिखिलदैवोपलक्षणार्थत्वविवक्षया कर्मस्विति बहुवचनं निर्दिष्टम्। अत्रास्तमयात् पूर्वं मुहूर्त्तत्रयव्यापिनीं तिथिं समनुप्राप्येति व्याख्येयं, न तु ततोऽल्पव्याप्तिर्विवक्षिता। तथा सति पूर्वोक्तवेधाभावेनोत्तरतिथेरेव ग्राह्यत्वप्रसङ्गात्। तथा त्रिमुहूर्त्त-व्याप्तिः स्कन्दपुराणे दर्शिता—

यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीप्रियः।
सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्त्ता च या भवेत्॥ इति।

शिवरहस्य-सौरपुराणयोरपि—

यां प्राप्यास्तमुपैत्यर्कः सा चेत् स्यात्त्रिमुहूर्त्तिका।
धर्मकृत्येषु सर्वेषु संपूर्णां तां विदुर्बुधाः॥ इति।

बृहद्वसिष्ठोऽपि—

यस्यां तिथावस्तमियात् सूर्यस्तु त्रिमुहूर्त्तकैः।
यागदानजपादिभ्यस्तामेवोपक्रमेत् तिथिम्॥ इति।

दूसरा पक्ष भी ग्रहणीय नहीं होता है, क्योंकि प्रातः काल संकल्प का अङ्ग होता है। स्मृति में है—उपवास प्रभृति व्रतों के लिये विद्वान लोग प्रातः काल में संकल्प करते हैं। फिर भी कहा है—नक्त प्रभृति व्रतों का अनुष्ठान के लिये प्रातःकाल से प्रारंभ कर संकल्प होता है। अपराह्ण और मध्याह्न में संकल्प नहीं होता है, क्योंकि पितृलोगों का यह काल है।

यहाँ कहा जाता है—पूर्वोक्त वचन के अनुसार प्रातःकाल में ही संकल्प किया जाता है। उस समय में ज्योतिशास्त्र की गणना के अनुसार प्रसिद्ध प्रतिपद का अभाव होने पर भी धर्मशास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित होने वाली प्रतिपद रहती है। अत एव देवल ने कहा है—

जिस तिथि को स्पर्श कर के सूर्य अस्त होते हैं, वही तिथि संपूर्ण रूप से रहती है, ऐसा माना जाता हैं और यही तिथि दान-अध्ययन कर्मों के लिये उपयुक्त होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ दान और अध्ययन में उपवास प्रभृति सब देवताओं का कर्म उपलक्षित होते हैं। इस लिये कर्म पद में बहुवचन दिया है। यहाँ अस्त काल से पहले तीन मुहूर्त होने वाली तिथि को स्पर्श करके ऐसी व्याख्या करनी चाहिये। किन्तु उनसे कम व्याप्ति ग्रहणीय नहीं होती है। ऐसे होने से पूर्वोक्त वेध का अभाव से परवर्त्ती तिथि गृहीत होती है। तीन मुहूर्त्त व्याप्ति स्कन्दपुराण में प्रदर्शित की गई है—पद्मिनीप्रिय (सूर्य) जो तिथि को स्पर्श करके अस्त होते हैं, वही तिथि संपूर्ण दिन को व्याप्त करके रहती है अगर तीन मुहूर्त्त तक रहती। शिवरहस्य और सौरपुराण में कहा है—जो तिथि को लेकर अर्क (सूर्य) अस्त होते हैं, वही अगर तीन मुहूर्त्त रहती तो सब धर्मकृत्यों के लिये पण्डित लोग उसकी संपूर्णता को मानते हैं। वृद्धवसिष्ठ ने भी कहा है—तीन मुहूर्त्त तक व्याप्ति होकर जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं, याग, दान, जप प्रभृतियों का उपक्रम के लिए वही तिथि प्रशस्त है।

ननु सायन्तनत्रिमुहूर्त्तशुक्लप्रतिपदुपेतायां तिथौ प्रातरेव सङ्कल्प्य प्रतिपदुपवासः कार्य इति युग्मादिवाक्यमाश्रित्य निर्णीतम्। तत्तिथिक्षये तथाऽस्तु। साम्यवृद्ध्योस्तु खर्वदर्पवाक्यात् परेद्युरुपवासः प्राप्नोतीति चेन्मैवम्। खर्वादिवाक्यस्यैकोद्दिष्टादिविषयत्वात्। तथा च व्यासः—

द्वितीयादिकयुग्मानां पूज्यता नियमाऽऽदिषु।
एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ ह्रासवृद्ध्यादिचोदना[1] ॥ इति।

नियमादिष्वित्यादिशब्देन पित्र्यकर्मव्यतिरिक्तव्रतोपवासादिसकलकर्मणो ग्रहणम्। एकोद्दिष्टादीत्यादिशब्देन विवाहादिमङ्गलाङ्गभूतश्राद्धव्यतिरिक्तपार्वणश्राद्धस्य वृद्ध्यावावित्यादिशब्देन माङ्गलिकश्राद्धस्य। ह्रासवृद्ध्यादीत्यादिशब्देन सर्वस्य ग्रहणम्। तदेवं पूर्वेद्युः शुक्लप्रतिपदुपवासं कृत्वा परेद्युः पारणं कुर्यात्।

तत्रेदं चिन्त्यते। किं प्रातः पारणं, किं वा तिथ्यन्त इति। नाद्यः, सुमन्तुवचनविरोधात्;

तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पारणम्।
अतोऽन्यथा पारणे तु व्रतभङ्गमवाप्नुयात् ॥ इति।

---

१. चोदना नाम विधिरर्थात् विधिवाक्यम्। चोदना चोपदेशश्च विधिश्चैकार्थवाचिनः ॥ (श्लो० बा० १।१।५।११)। प्रकृतौ ह्रासवृद्ध्यादिचोदना नाम ह्रासवृद्ध्यादिवाक्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न द्वितीयः, देवलवचनविरोधात्—

उपवासेषु सर्वेषु पूर्वाह्णे पारणं भवेत्।
अन्यथा तु फलस्यार्द्धं धर्ममेवोपसर्पति ॥ इति।

धर्मो यमः। नायं दोषः। पूर्वाह्णवाक्यस्य सामान्यरूपत्वेन परविद्धोपवासविषयतया सङ्कोचनीयत्वात्। एतदेवाभिप्रेत्य निगमः श्रूयते--

पूर्वविद्धासु तिथिषु भेषु च श्रवणं विना।
उपोष्य विधिवत् कुर्यात्तत्तदन्ते च पारणम् ॥ इति।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि सायं काल में तीन मुहूर्त्त तक व्याप्त होने वाली प्रतिपदा पूर्वविद्धा होती है। इस तिथि में प्रातःकाल में संकल्प करके प्रतिपद के लिए होने वाला उपवास करना है ऐसा युग्मवाक्य के अनुसार निर्णय हो गया है। वह विषय तिथि क्षय के अवसर पर होने दो। साम्य और वृद्धि के अवसर में खर्वदर्प वचन के अनुसार परवर्त्ती दिन में उपवास पाता है। ऐसा ठीक नहीं है। क्योंकि खर्व प्रभृति वाक्य एकोद्दिष्ट में विनियुक्त होते हैं।

इसलिए व्यास ने कहा है—द्वितीयादि युग्म वाक्यों की पूज्यता नियमप्रभृति स्थलों में लगती है। एकोद्दिष्ट और वृद्धिस्थल में ह्रास-वृद्धि वचन लगता है।

"नियम प्रभृति" इस स्थल में (प्रभृति) से शब्द पितृकर्म को छोड़कर सब व्रत और उपवास गृहीत होते हैं। एकोद्दिष्ट प्रभृति शब्द से विवाहप्रभृति मङ्गलों के अङ्गभूत श्राद्ध को छोड़कर पार्वणश्राद्ध का ग्रहण होता है और वृद्धि आदि शब्द से मांगलिक श्राद्ध का ग्रहण होता है। ह्रासवृद्ध्यादि शब्द से खर्व का ग्रहण होता है। अतः पूर्वदिन में शुक्लप्रतिपद का उपवास कर पर दिन में पारण किया जाता है।

यहाँ ऐसी चिन्ता होती है कि प्रातःकाल में पारण किया जाता है या तिथि के अन्त में किया जाता है? सुमन्तु वचन का विरोध होने से पहला पक्ष गृहीत नहीं है। जिस स्थल में तिथि और नक्षत्र के नियम लागू हैं, उस स्थल में तिथि और नक्षत्र की समाप्ति के बाद पारण होता है। अन्यथा व्रतभङ्ग होता है। दूसरा पक्ष भी गृहीत नहीं होता है, क्योंकि देवल वचन का विरोध होता है। सब उपवासों में पूर्वाह्न में पारण किया जाता है। अन्यथा फल का आधा भाग और धर्म नष्ट हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ धर्म यमराज होता है। इसमें दोष नहीं है, क्योंकि पूर्वाह्न वाक्य सामान्य वाक्य होने से परविद्धा तिथि का उपवास विषय में लगता है। इस विषय में इसका संकोचन होता है।

इसको लक्ष्य करके निगम में सुना है—पूर्वविद्धा तिथियों में और श्रवणा नक्षत्र को छोड़कर अन्य नक्षत्र में उपवास कर इनके अन्त में विधिपूर्वक पारण किया जाता है।

भेषु नक्षत्रेषु। स्कन्दपुराणेऽपि—

तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु।
तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद् विना शिवचतुर्दशीम्॥ इति।

अत्रोपवासव्रतादिष्वित्यादिशब्देनैकभक्तनक्तायाचितानि गृह्यन्ते। यां तिथिमुद्दिश्यैतानि पूर्वेद्युर्विहितानि परेद्युस्तत्तिथिभागेऽतीते पश्चाद्भोजनं कार्यम्, अन्यथा पूर्वदिनानुष्ठितैकभक्तादिव्रतानां वैकल्यं स्यादित्यभिप्रायः। अस्य च तिथिभान्तपारणस्यापवादः क्वचित् स्मर्यते—

तिथ्यन्ते चैव भान्ते च पारणं यत्र चोद्यते।
यामत्रयोर्ध्ववर्त्तिन्यां प्रातरेव हि पारणम्॥ इति।

यथोक्तोपवासवद् बल्युत्सवोऽपि पूर्वविद्धायामेव कर्त्तव्यः। स चोत्सवो ब्रह्मपुराणे वामनपुराणे भविष्योत्तरपुराणे च प्रपञ्चितः। अत्र प्रातःकाले द्यूतादिकं ब्रह्मपुराणे दर्शितम्—

तस्माद् द्यूतं प्रकर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः॥ इति।

यद्यपि प्रातरमावास्या वर्तते, न तु प्रतिपत्, तथापि पूर्वोक्त[1]-संकल्पन्यायेन प्रतिपदः साकल्यमाश्रित्य द्यूतादिकं प्रातरेव कार्यम्।

ननु यावेतावुपवासबल्युत्सवौ पूर्वविद्धायां प्रतिपदि विहितौ तयोः केनापि निमित्तेन तत्रानुष्ठानासंभवे सति किमुत्तरविद्धा गौणकालत्वेन ग्राह्या, किं वा मुख्यकालातिक्रमात्तयोः परित्याग एव। अत्र केचिदाहुः। परित्याग एव युक्तः मुख्यकालमन्तरेणाप्यनुष्ठाने द्वितीयातृतीयादिष्वपि तदनुष्ठानप्रसङ्गात्। अथोच्यते, यथा त्रैवर्णि-

---

१. यां तिथिं समनुप्राप्य अस्तं याति दिवाकरः।
तिथिः सा सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु॥ इति देवलवचनानुसारं प्रवृत्तेन न्यायेन वाचनिकसाकल्यनिर्देशोऽत्रावगन्तव्यः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोपनयनस्य गर्भाष्ट[1]मादिमुख्यकालासंभवे सत्याषोडशा[2]दिकालाः गौणकालत्वेन स्वीकृताः एवमत्रापीति। तन्न, वैषम्यात्। तत्र गौण-कालो वाचनिकः—

आषोडशात्तु द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात्।
ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः ॥ इति[3]

यहाँ 'भ' का अर्थ नक्षत्र है। स्कन्दपुराण में भी कहा है—शिवचतुर्दशी के बिना अन्य सब तिथियों का उपवास और व्रत प्रभृत्तियों में तिथि के अन्त में पारण किया जाता है।

यहाँ उपवास व्रत के साथ संयुक्त आदि पद से एकभक्त नक्त और अयाचित का ग्रहण होता है। जो तिथि को लक्ष्य करके पूर्व दिन में इन कर्मों का विधान हो गया, पर दिन में इस तिथि के अवशेष की समाप्ति के बाद भोजन किया जाता है। अन्यथा पूर्व दिन में अनुष्ठित एकभक्त प्रभृति व्रतों का विकल्प हो जायगा ऐसा अभिप्राय सूचित होता है। यहां तिथि और नक्षत्र के अन्त में जो पारण होता है कुछ अवसर पर इसके अपवाद का स्मरण होता है—तिथि और नक्षत्र के अन्त में जिस पर पारण के लिये विधि मिलती है, उस पर परवर्त्ती दिन में प्रातःकाल तीन मुहूर्त्तों से अधिक तिथि रहने से ही पारण होता है।

उपवास की तरह बल्युत्सव का भी अनुष्ठान पूर्वविद्धा तिथि में किया जाता है। ब्रह्म, वामन और भविष्योत्तरपुराण में इस उत्सव का संकेत मिलता है। प्रातःकाल में द्यूतक्रीडा का अनुष्ठान के लिये ब्रह्मपुराण में कहा गया है—इस लिये प्रभात में मानवों के द्वारा द्यूतक्रीडा की जाती है।

प्रातः में अगर अमावास्या है, प्रतिपदा नहीं है, तथापि पूर्वोक्त संकल्प न्याय से प्रतिपदा सारा दिन रहती है। ऐसा मानकर प्रातःकाल में द्यूत क्रीडा की जाती है।

---

१. मनुरपि—गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ २।३७

२. आशोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ २।३८

३. आषोडशादा द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरातत्।
ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः ॥ याज्ञवल्क्यः १।३७
अत्र आषोडशात्तु इत्यस्मिन्नंशे आषोडशादा इति आषोडशवर्षं याव-दिति पाठार्थं सूचयितुं प्रवृत्तः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ एक प्रश्न आता है कि उपवास और बल्युत्सव जो पूर्वविद्धा प्रतिपद्य में अनुष्ठित होने के लिए विहित होते हैं, किसी भी कारण से उस प्रतिपद में अनुष्ठित नहीं होने पर गौणकाल के रूप से इसके लिए उत्तर विद्धा प्रतिपद् गृहीत होती है या मुख्य काल का अतिक्रम हो जाने पर उनको छोड़ दिया जाय? यहाँ कुछ मतवादी कहते हैं—छोड़ देना उचित होगा क्योंकि मुख्य काल को छोड़कर अगर अनुष्ठान होता तो द्वितीया और तृतीया प्रभृति तिथियों में भी अनुष्ठान का प्रसंग आ जायगा? इसके बाद उत्तर के रूप में कहा जाता है--तीन वर्णों का उपनयन के लिए गर्भ से आठवां मास जो काल मुख्य काल के रूप में कहा गया है, उस काल में अगर नहीं किया जा सकता तो सोलह वर्ष पर्यन्त गौण काल जिस प्रकार स्वीकृत होता है इस प्रकार यहाँ भी हो सकता है किन्तु विषमता के कारण यहां नहीं हो सकता। उपनयन में गौणकाल का विधान वचन के द्वारा हुआ है। सोलह, बाईस और चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का उपनयन काल क्रमानुसार निश्चित हैं।

न त्वेवमत्रोत्तरप्रतिपदो गौणत्वेन स्वीकारे किञ्चिद् वचनमस्ति। अन्तरेणापि वचनं युक्तिमात्रेण तत्कल्पनायां षोडशादिवर्षेभ्य ऊर्ध्वमपि सन्निकर्षविप्रकर्षतारतम्येन गौणतरगौणतमावुपनयनकालौ प्रसज्ज्येयाताम्। न च तौ युक्तौ॥

"अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते यथाकालमसंस्कृताः[1]॥" (या० स्मृ०)

इति पातित्यस्मरणात्। किञ्च पूर्वोत्तरविद्धयोरुभयोरपि स्वीकारे पूज्यत्वविचारो निरर्थकः स्यात्। तस्मात् परित्याग एवेति। तत्र ब्रूमः। सन्त्येवात्रोपनयनवदुत्तरतिथेः प्रापकाणि बहूनि वचनानि। 'प्रतिपत् सद्वितीया स्यादित्येकं वचनम्।

नन्वेतद्यथोक्तविषयव्यतिरिक्तविषये मुख्यकालत्वं विदधाति, न तु यथोक्तविषये गौणकालत्वमिति चेत्। अत्र वक्तव्यम्। किमत्र विषयान्तरे वाचनिकं मुख्यत्वं, किं वा यथोक्तविषयस्य कालेऽभिहिते सति अर्थादितरविषयत्वं तस्य वचनस्य परिशिष्यते इति। नाद्यः, तस्मिन् वचने विषयान्तरस्य शब्दतोऽप्रतीतेः। द्वितीये तु सामान्यवचनस्य

१. अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥ मनुः २।३९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेषव्यतिरिक्तसंभावितकृत्स्नविषयत्वं[1] परिशेषणीयम् । तथा सति कृष्णप्रतिपद्विषयत्वमुपवासव्यतिरिक्तदानव्रतादिविषयत्वं च संभावितत्वाद्यथा परिशिष्यते तथोपवासेऽपि गौणकालविषयत्वं कुतो न परिशिष्यते । द्वितीयायुतोपवासनिषेधादिति चेत् । न, तस्य निषेधस्य पूर्वविद्धोपवासप्रशंसायां तात्पर्यात् ।

यहाँ उत्तरविद्धा प्रतिपदा को गौणकाल के रूप में स्वीकार करने के लिए कुछ वचन नहीं है । वचन के बिना केवल युक्ति के द्वारा गौण काल के रूप में सोलहवाँ वर्ष से ऊर्ध्व, निकट और दूरवर्त्ती काल भी गौणतर और गौणतम काल उपनयन के लिए हो जायगा । इस लिये यह युक्तिसंगत नहीं होगा । इस समय से ऊर्ध्व काल में उपनयन होने से सावित्री पतित हो जाती है । पातित्य दोष आ जाता है । फिर भी पूर्व और उत्तर विद्धा इन दोनों को अगर स्वीकृत कर लिया जाय तो काल का पूज्यत्व-विकार निरर्थक हो जायगा । इसलिए वरं परित्याग कर देना उचित होगा । सिद्धान्त के रूप में हम बोलेगें—उपनयन की तरह उत्तरविद्धा प्रतिपदा तिथि को स्वीकार करने के लिये अनेक वचन मिलते हैं । (प्रतिपत्सद्वितीया स्यात्) "द्वितीया के साथ मिलने वाली प्रतिपदा" यह वचन प्रमाण के रूप से अवतारित किया जाता है ।

यहाँ एक प्रश्न आता है कि इस वचन प्रकरण को छोड़कर प्रवृत्त होने वाला विषय में मुख्यकाल को विधान करता है । यथोक्त विषय में गौणकाल का अवसर नहीं है । ऐसा यहाँ कहा जा सकता—क्या अन्य विषयों में मुख्यता वाचनिक होती है ? अथवा यथोक्त विषय का ठीक समय में अभिधान होने पर अर्थात् अन्य विषयों में यह वचन लागू होता है ? इनमें पहला पक्ष नहीं माना जाता है । इस वचन में अन्य विषय को समझाने के लिये कोई शब्द ऐसा नहीं है । दूसरे पक्ष में ऐसा आता है कि विशेष को छोड़कर सब संभावित विषयों में सामान्य वचन का स्थान मिलता है । ऐसे होने पर कृष्ण प्रतिपद विषय उपवास से व्यतिरिक्त दान व्रतादि विषय जिस प्रकार संभावित होने से रह जाते हैं, वैसे उपवास में भी गौणकाल विषय क्यों नहीं लगता है ? द्वितीया तिथि के साथ युक्त प्रतिपद् का निषेध सुना है । इस कारण से ग्रहणीय नहीं होती ऐसा अगर प्रश्न होता तो ऐसा

१. सामान्यापेक्षया विशेषस्य बलवत्त्वे विशेषस्याभावे सामान्यं निखिलं कार्यजातं विषयीकरोति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाधान होगा कि पूर्वविद्धा प्रतिपदा में उपवास के प्रशंसार्थ में इस निषेध का तात्पर्य माना है।

"अपशवो वा अन्ये गोऽश्वेभ्यः, पशवो गो अश्वा"[1] इत्यत्र गोऽश्वप्रशंसार्थमजादीनां पशुत्वं निषिध्यते, न तु सर्वथा तन्निषेधः प्रत्यक्षविरोधात् शास्त्रान्तरविरोधाच्च। एवमत्राप्युत्तरविद्धायां प्रतिपदि सर्वथा प्रतिपदुपवासनिषेधो व्याहन्यते। तथा [2]चोदितानुदितहोमयोरन्योन्यं निन्देतरप्रशंसायै, न तु सर्वथा हेयत्वार्था। नो चेदुभावपि होमौ परित्यज्येयाताम्। यदि तत्र शाखाभेदेन व्यवस्था, तर्ह्यत्रापि मुख्यगौणभेदेन व्यवस्थाऽस्तु। न चैतावता तिथेः पूज्यत्वविचारो निरर्थको भवति, प्रशस्ततिथिस्वीकाराय तदुपयोगात्।

यानि चान्यानि सामान्यवचनानि "उदये तूपवासस्य", पूर्वाह्णिकास्तु तिथयो दैवकार्ये फलप्रदाः—" इत्यादीनि तानि सर्वाणि यथा कृष्णप्रतिपदमुपोद्बलयन्ति तथा गौणप्रतिपदं कुतो नोपोद्बलयेयुः। न चैवं सति द्वितीयातृतीयादिष्वपि प्रसङ्गः, गौणप्रतिपत्त्वस्य तत्राभावात्। गौणप्रतिपद्येतावताऽतिनिर्बन्धेन कस्तव लाभ इति चेत् तत्र द्वेषेण वा तव को लाभ इति वक्तव्यम्। शिष्टाचार इति चेत् [3]विपर्यये एव तं पश्यामः। तथा हि यदा तथोक्तरीतया कस्याश्चित्तिथेर्द्वैविध्यं भवति तदानीं संप्रतिपन्नशिष्टेषु केचन शिष्टाः पूर्वत्रानुतिष्ठन्ति अन्ये च परत्र। न च तत्राविगीतः शिष्यचारः प्रमाणं, नेतर इति वाच्यम्। उभयेषां शिष्टानामविगीतत्वकथनायैव संप्रतिपन्नेति विशेषितत्वात्।

गाय और घोड़ा को छोड़कर दूसरे पशु यज्ञ के लिये उपयुक्त नहीं होते हैं। गाय और घोड़ा पशु रूप से ही माने जाते हैं। इस वचन से उनकी प्रशंसार्थ छाग का पशुत्व यहाँ निषिद्ध होता है, लेकिन सब जगह इस निषेध की प्रसक्ति नहीं होती। क्योंकि ऐसे होने से प्रत्यक्ष का विरोध आ जायगा।

---

१. "अपशवो" इति वचनमर्थवादपरम्। नैतेनं गोऽश्वभिन्ना अपशुत्वमर्जन्ति सर्वथा। "नहि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्त्ततेऽपितु स्तुत्यं स्तोतुम्" इति न्यायेन गोऽश्वादीनां प्रशंसार्थवादस्य प्रसरः।

२. उदिते जुहोति नानुदिते जुहोति।

३. विपर्यये नाम श्रुतिस्मृत्यो विपर्यये इत्यर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फिर भी यहां उत्तर विद्धा अर्थात् द्वितीया विद्धा प्रतिपदा में सर्वथा प्रतिपद में होने वाला उववास का निषेध व्याहत हो जाता है। सूर्योदय के समय में और अनुरूप समय में दोनों की परस्पर निन्दा और प्रशंसा के लिये, सुना है किन्तु दोनों की सर्वथा निन्दा के लिए नहीं, अन्यथा उभय प्रकार होम परित्यक्त हो जाता है। वहीं पर शाखाभेद से अगर व्यवस्था होती तो यहां भी मुख्य गौण भेद से व्यवस्था होनी चाहिए। इससे तिथि की पूज्यता का विचार निरर्थक नहीं होता है। क्योंकि प्रशस्त तिथि का स्वीकार के लिए इसका उपयोग होता है।

"उदये तूपवासस्य" "पौर्वाह्णिका" ये सब वचन जैसे कृष्णप्रतिपद को उपोद्बलन करते हैं, वैसे गौण प्रतिपद् को क्यों नहीं करेंगे। किन्तु ऐसे होने से द्वितीया-तृतीया प्रभृतियों में यह प्रसंग नहीं आता है। क्योंकि यहाँ गौण प्रतिपद का अभाव है। ऐसा अगर कहा जायगा कि गौण प्रतिपद को मान लेने के लिये आपके यह उद्यम से क्या लाभ है। इसके उत्तर के रूप में हम पुछेंगे कि गौण प्रतिपद को द्वेष करके आपको क्या लाभ है। शिष्टाचार है तो इसका ग्रहण विपर्यय में ही मिलता है। जब इस रीति से कोई तिथि दो प्रकार की मिलती तो संप्रतिपन्न शिष्टलोगों में कुछ शिष्टलोग पूर्व दिन में अनुष्ठान करते हैं, कुछ पर दिन में। वहाँ कोई अनिन्दित या निन्दित शिष्टाचार प्रमाण नहीं है। अपितु दो प्रकार शिष्टों की अनिन्दितता को प्रकाश करने के लिए "संप्रतिपन्न" यह विशेषण दिया है।

एवं तर्हि मुख्यत्वमप्यन्यतमस्य निश्चेतुमशक्यमिति चेत्। यस्मिन् देशे यस्मिन् काले येषु शिष्टेषु न रागद्वेषस्य स्वस्य प्रामाण्यातिशयस्य बुद्धिस्तदा तादृशाचारस्य मुख्यत्वात्।

तदेतदेवाभिप्रेत्य गुरोः शिष्यानुशासने तैत्तिरीयाः समामनन्ति। "अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनो युक्ताः आयुक्ताः अलूक्षाः धर्मकामाः स्युर्यथा ते तत्र वर्त्तेरन् तथा त्वं तत्र वर्तेथा"' इति। युक्तिकुशलैर्युक्ताः शास्त्रतत्पराः। आयुक्तास्तदर्थानुष्ठाननिरताः। अलूक्षाः क्रोधादिवर्जिताः। धर्मकामा जीवन्मुक्तवत्कर्मण्यौदासीन्यमकुर्वाणाः। उक्तरीत्या कस्यचिच्छिष्टाचारविशेषस्य मुख्यत्वे सत्यपरो गौणो भविष्यति, न तु सर्वथे-

१. आपस्तम्बीया इत्थ मामनन्ति सर्वजनपदेष्वेकान्तसमाहितमार्याणां वृत्तं सम्यग् विनीतानां वृद्धानामात्मवतामलोलुपानामदाम्भिकानां वृत्तसादृश्यं भजेत एवमुभौ लोकावभिजयति ॥ इति २।११।२९।१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाऽनाचारः। एवं च सति एकामेव तैत्तिरीयशाखामधीत्य बौधायनापस्तम्बमतभेदेन परस्परविलक्षणमाचरतामुभयविधानां मनुष्याणां स्वस्वपूर्वपुरुषपारंपर्यक्रमायात एवाचारो मुख्यः[1]। कदाचित्तदसंभवे मानान्तरेणाप्यनुष्ठानमेव श्रेयो न तु सर्वथा तल्लोपो युक्तः। किं बहुना, मुख्यायाः पूर्वविद्धायाः प्रतिपदोऽसंभवे शेषिपरित्यागाद्वरमुत्तरविद्धायाः परिग्रहणमित्यवगन्तव्यम्। तदेवं शुक्लप्रतिपदुपवासबल्युत्सवयोः पूर्वविद्धा मुख्येति व्यवस्थितम्।

ऐसे होने से दोनों में किसका मुख्यत्व निश्चित नहीं किया जा सकता, ऐसा प्रश्न होगा। जिस देश में जिस काल में जिन शिष्टों का राग या द्वेष नहीं है, या अपने मनको प्रमाणित करने के लिए अतिशय आग्रह बुद्धि भी नहीं है, इन शिष्टलोग के आचार प्रमाण है। यह उत्तर होगा।

इस विषय को लक्ष्य करके गुरु और शिष्य के बीच में अनुशासन के माध्यम से तैत्तिरीयसंहिता को अध्ययन करने वाले कहते हैं। आपके कर्म और वृत्त में अगर कोई सन्देह आया तो इस सन्दर्भ में जो ब्राह्मण लोग समदर्शी, युक्तिकुशल, सरल और धर्म कार्यों में जिस मार्ग पर चलते हैं उस मार्ग पर आप अवस्थित रहिये? युक्ति की कुशलता को अर्जित करने वाला युक्त अथवा शास्त्रतत्पर, आवश्यक वैधकर्मों का अनुष्ठान में निरत आयुक्त, क्रोधादि से रहित अलूक्ष, जीवन्मुक्त की तरह कर्म में उदासीनता प्रकाश नहीं करने वालों के काम धर्म नाम से अभिहित होता है। इस रीति से कोई शिष्टाचार मुख्य होने पर दूसरे गौण हो जाते हैं। किन्तु सर्वथा अनाचार प्रमाण नहीं है। ऐसे होने पर एक तैत्तिरीय शाखा को अध्ययन करके बौधायन और आपस्तम्बों के मतभेद से परस्पर अलग-अलग आचरण करने वालों की अपनी-अपनी पूर्व परंपरा में प्राप्त आचार मुख्य होता है। कभी-कभी इस मुख्य को अनुष्ठान करने के लिये असंभवता आती है। इस स्थल में दूसरी शाखा का प्रमाण के अनुसार अनुष्ठान करना वरं श्रेय माना जाता हैं। किन्तु सर्वथा कर्म त्याग उचित नहीं है। इस विषय में अधिक कहना फिर उचित नहीं है। मुख्य रूप से पूर्वविद्धा प्रतिपदा में अनुष्ठान असंभव होने पर अंगी कर्म का परित्याग हो जाता है। इस स्थल में उत्तरविद्धा प्रतिपदा को स्वीकार करना है ऐसा बोध होना चाहिये। इस प्रकार शुक्ल

---

१. तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥ मनु २।१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिपद् में उपवास और बल्युत्सव के लिए पूर्वविद्धा तिथि मुख्य होती है। ऐसी व्यवस्था हो गई है।

अथैकभक्तनिर्णयः

ब्रह्मपुराणे वैश्वानरव्रते पठ्यते—

प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रदः ॥ इति ।

तत्रादावेकभक्तं त्रिविधं स्वतन्त्रमन्याङ्गमुपवासप्रतिनिधिरूपं चेति । तेष्विदानीमुदाहृतं स्वतन्त्रम् ।

तत्रेदं चिन्त्यते । किमुपवासवत्तिथिरस्मिन् ग्रहीतव्या उत प्रकारान्तरेणेति । उपवासवदिति तावत् प्राप्तम् । 'दैवं पित्र्यं तथा कार्य'-मिति वचनेन उपवासैकभक्तादि कृत्स्नदैवस्य विवक्षितत्वात् । न च कर्मकालव्याप्त्या तन्निर्णय इति शङ्कनीयम् । तत्कालस्याद्याप्यनिर्णीतत्वात् । कथञ्चित्तन्निर्णयेऽपि कर्मकालव्यापिवचनस्य पित्र्यविषयत्वेनाप्युपपत्तेः । तस्मादुपवासवन्निर्णय इति प्राप्ते ब्रूमः । कर्मकालव्याप्तिरेवात्र निर्णयहेतुः । कर्मकालस्तत्कर्मस्वरूपं चेत्युभयं स्कन्दपुराणे दर्शितम्—

दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् ।
एकभक्तमिति प्रोक्तमतस्तत् स्याद्दिवैव हि ॥

देवलोऽपि—

दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् ।
एकभक्तमिति प्रोक्तं न्यूनं ग्रासत्रयेण तु ॥ इति ।

अत्र च दिनार्धस्योपरि सार्द्धमुहूर्त्तपरिमितः कालः पञ्चधा विभागे मध्याह्नस्यापरभाग एकभक्तस्य मुख्यकालः । दिनार्द्धेऽतीते सति समनन्तरभावित्वात् , अस्तमयात् प्राचीनोऽवशिष्टो गौणकालो दिवेत्यभ्यनुज्ञानात् । एवं स्थिते सति मुख्यकालव्यापिनी तिथिर्ग्रहीतव्या । अत एव पद्मपुराणम्—

अब एकभक्त का निर्णय हो रहा है। ब्रह्मपुराण के वैश्वानर व्रत में एकभक्त पाठ किया जाता है। प्रतिपदा में एकभक्त करके व्रत की समाप्ति में कपिला गाय दी जाती है। पहले एकभक्त तीन प्रकार होता है। यथा स्वतन्त्र, अन्याङ्ग और उपवास के प्रतिनिधि रूप। इनमें अब उदाहृत होने वाला एकभक्त स्वतन्त्र होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहां इसके बारे में चिन्ता होती है। क्या उपवास की तरह तिथि गृहीत होती है या कोई अन्य प्रकार से। उपवास की तरह होती है ऐसा मिलता है। "दैवं पित्र्यं" इस वचन से उपवास और एकभक्त प्रभृति संपूर्ण दैव कार्यों की विवक्षा यहाँ होती है। कर्मकाल व्याप्ति से इसका निर्णय होता है ऐसी शंका नहीं होनी चाहिए क्योंकि उस काल का अब तक निर्णय नहीं हुआ है। कोई भी प्रकार से इसका निर्णय होता तो कर्मकाल व्याप्ति के वचन पितृकर्म के विषय में उपपन्न हो जायगा इसके कारण उपवास की तरह निर्णय हो ऐसा प्रश्न अगर होता तो कर्मकाल व्याप्ति ही यहाँ निर्णय का कारण होगी।

कर्मकाल और काल में अनुष्ठित होने वाला कर्म के स्वरूप स्कन्द पुराण में प्रदर्शित किये गये हैं—दिनार्ध समय में निमयपूर्वक जो भोजन किया जाता है उसको एकभक्त कहते हैं। अतः यह दिन में किया जाता है। देवल ने भी कहा है—दिनार्ध समय में नियमपूर्वक होनेवाला तीन ग्रास परिमित भोजन नक्त होता है। दिवाभाग को पाँच भागों से विभक्त करके मध्याह्न का अपरभाग अर्थात् दिनार्ध समय के बाद डेढ़ मुहूर्त्त परिमित काल एकभक्त का मुख्य काल होता है। क्योंकि दिन का आधा समय व्यतीत होने पर उसके अनन्तर काल ही ऐसा है। अस्तमय से पूर्व अवशिष्ट काल गौण काल होता है।

"मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः" ॥ इति।

बौधायनोऽपि—

उदये तूपवासस्य नक्तस्यास्तमये तिथिः।
मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः॥ इति।

नचात्रोपवासन्यायो युक्तः। तत्र पूर्वबिद्धायामेव विशेषशास्त्रपर्यवसानात्। द्विविधं हि विशेषशास्त्रं तिथिप्रयुक्तमेकं, कर्मप्रयुक्तमपरम्। तत्र "पौर्वाह्णिकास्तु तिथयो दैव" इत्यनेन कर्म-विषयेण सामान्यशास्त्रेणोत्तरबिद्धायां प्राप्तायाम्—

"उपोष्याः परसंयुताः पराः पूर्वेण संयुताः ॥"

इत्यनेन कर्मविषयेण विशेषशास्त्रेण पूर्वबिद्धा विहिता। तिथिविषयेऽपि सामान्यविशेषशास्त्रे उदाह्रियेते। "पूर्वाह्णिकास्तु तिथय" इति तिथिमात्रमुपजीव्य प्रवृत्तत्वात्सामान्यशास्त्रम्। "प्रतिपत्संमुखी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्ये' त्येतद्विशेषशास्त्रम्। तथा सति द्विविधेनापि विशेषशास्त्रेण पूर्वविद्धायामेवोपवासः सुस्थितः। अत्र तु "मध्याह्नव्यापिनी"—त्येतत्कर्मविशेषविषयशास्त्रम्। अतस्तदनुसारेण निर्णयो युज्यते।

क्यों कि दिन में इसका काल निश्चित होता है। इस स्थिति में जहाँ मुख्यकाल को तिथि की व्याप्ति होती है। वही तिथि ग्रहणीय होती है। अत एव पद्मपुराण में कहा है—एकभक्त के लिये मध्याह्न को व्याप्त होने वाली तिथि गृहीत होती है। बौधायन ने भी कहा है—उपवास के लिए उदय व्याप्ति, नक्त के लिए अस्तमय व्याप्ति और एकभक्त के लिए मध्याह्न व्याप्ति आवश्यक होती है।

यह उपवास न्यायतः ग्रहण नहीं किया जायगा। क्योंकि वहाँ पूर्वविद्धा तिथि में विशेष शास्त्र का पर्यवसान होता है। विशेषशास्त्र दो प्रकार है। तिथिप्रयुक्तशास्त्र और कर्मयुक्त शास्त्र। दैव कार्य के लिए पूर्वाह्न को व्याप्त होने वाली तिथि ग्रहणीय है। सामान्य शास्त्र वचन से उत्तरविद्धा की प्राप्ति होने पर उपवास के लिए उत्तर तिथि के साथ संयुक्त तिथि और पूर्व तिथि के साथ परवर्त्ती तिथि माननीय है।

इस विशेष शास्त्र से पूर्वविद्धा विहित होती है। कर्म विषय में ये वचन प्रवृत्त होते हैं। तिथि विषय में सामान्य और विशेष शास्त्र मिलते हैं। "पूर्वाह्न को व्याप्त होने वाली तिथि" इस वचन से तिथि मात्र को उपजीव्य करके प्रवृत्त होता है। इसको सामान्य शास्त्र कहते हैं। प्रतिपद तिथि संमुखी (सायाह्न को व्याप्त होने वाली तिथि) होने पर माननीय होती है। ऐसा है विशेषशास्त्र। इन दोनों की स्थिति में विशेष शास्त्रों से पूर्वविद्धा में उपवास निश्चित हुआ है। "यहां मध्याह्न व्यापिनी" इस वचन से कर्मविशेष विषय शास्त्र होता हैं। अतः इसके अनुसार निर्णय होता है।

ननु "प्रतिपत्संमुखी कार्य" त्यनेन तिथिविषयेण विशेषशास्त्रेण कुतो न निर्णय इति चेत्। उपवासविषयत्वेनापि तस्योपपत्तेरिति ब्रूमः। ननु मध्याह्नव्यापिवचनमपि तिथ्यन्तरैकभक्तविषयत्वेनोपपादयितुं शक्यम्। अतः कर्मविशेषशास्त्रतिथिविशेषशास्त्रयोः समानबलत्वमिति चेत्। अस्तु नाम, किं नश्छिन्नम्। मध्याह्नव्यापित्वसंमुखत्वयोः पूर्वविद्धायां संपादयितुं शक्यत्वेन विरोधाभावात्। यदा तूत्तरविद्धायामेव मध्याह्नव्यापित्वं तदा विरोध इति चेत्। बाढं, तथापि तिथि विषयविशेषशास्त्रात् कर्मविषयविशेषशास्त्रं प्रबलम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिथेर्गुणत्वात्[1] कर्मणश्च प्रधानत्वात्। तस्मादेवंविधे विषये कर्मकालव्याप्त्यैव निर्णेतव्यम्।

अत्र निर्णेतव्यो विषयः षोढा भिद्यते। पूर्वेद्युरेव मध्याह्नव्यापित्वम्। परेद्युरेव तद्व्यापित्वम्। उभयत्र तद्व्यापित्वम्। उभयत्र तदव्यापित्वम्। उभयत्र साम्येन तदेकदेशव्यापित्वम्। उभयत्र वैषम्येण तदेकदेशव्यापित्वं चेति।

तत्र प्रथम-द्वितीययोर्मध्याह्नव्यापित्वस्य निर्णायकत्वम्। तृतीये पूर्वविद्धा ग्राह्या मुख्यकालव्याप्तेः समत्वेऽपि गौणकालव्याप्तेरधिकत्वात्। अनेनैव न्यायेन उभयत्र मुख्यकालव्याप्त्यभावेऽपि गौणकालव्याप्तिलाभात् पूर्वविद्धैव। पञ्चमेऽप्ययमेव न्यायो योज्यः। षष्ठे तु यदा पूर्वेद्युर्मध्याह्नैकदेशमधिकं व्याप्नोति तदानीं तदाधिक्याद् गौणकालव्याप्तेश्च पूर्वेद्युर्ग्राह्या। यदा परेद्युर्मध्याह्नैकदेशमधिकं व्याप्नोति तदा गौणकालव्याप्त्यभावेऽपि मुख्यकालव्याप्त्याधिक्याऽनुसारेण परेद्युर्ग्राह्या।

प्रश्न आता है—"प्रतिपत्संमुखी कार्या" इस वचन से तिथि विषयक विशेषशास्त्र के द्वारा क्यों निर्णय न होगा ? उपवास विषय में इस वचन की उपपत्ति होती हैं ऐसा उत्तर है।

फिर प्रश्न आता है कि मध्याह्न व्याप्ति वचन अन्य तिथियों में होने वाला एक भक्त विषय में भी उपपादित किया जा सकता है ? इस लिये कर्म विशेषशास्त्र और तिथिविशेषशास्त्रों का समान बल होता है ? (उत्तर ऐसा होता है) इसमें हमारा कुछ छिन्न (अहित) नहीं होता है। मध्याह्न व्याप्ति और संमुखित्व इन दोनों में पूर्वविद्धा में संपादन करने से कोई विरोध नहीं आता है। जब उत्तर विद्धा में मध्याह्नव्याप्ति होती, तब विरोध अगर आता तो तिथि विषयक विशेष शास्त्र से कर्म विषयक विशेष शास्त्र प्रबल होता है। तिथि का गुणत्व और कर्म का प्रधानत्व माने जाते हैं। इस कारण से इस विषय में कर्मकालव्याप्ति के द्वारा निर्णय होता है।

यहाँ निर्णय होने वाले विषयों का भेद छ प्रकार होते हैं। यथा—पूर्वदिन में मध्याह्नव्याप्ति, परदिन में उसी तरह व्याप्ति, उभय दिनों में

---

१. निमित्तस्य गुणधर्मत्वेन कालस्य फलं प्रति निमित्तकारणत्वेन च तिथेः कालरूपत्वेन गुणत्वं सिद्धम्। अनेन कर्मणः स्वतः प्रधानत्वं फलति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसी तरह व्याप्ति, उभय दिनों में अव्याप्ति, उभय दिनों में समान रूप से एकदेशव्याप्ति और उभय दिनों में विषम रूप से एकदेशव्याप्ति।

यहां पहला और दूसरा पक्षों में मध्याह्नव्याप्ति से निर्णय होता है। तीसरा पक्ष में पूर्वविद्धा गृहीत होती है क्योंकि मुख्य काल व्याप्ति दो दिनों में समान होने से गौण काल का आधिक्य से निर्णय होता है। इस न्याय से उभय दिनों में गौणकालव्याप्ति के अभाव होने पर गौणकालव्याप्ति से पूर्वविद्धा मानी जाती है। पांचवां पक्ष में यह न्याय भी जोड़ दिया जाता है। छठे पक्ष में पूर्व दिन के मध्याह्न का एकदेश में अधिक व्याप्ति होती, तब अधिकता के कारण गौणकालव्याप्ति से पूर्व दिन गृहीत होता है। जब पर दिन में मध्याह्न के एक देश में अधिक व्याप्ति होती, तब गौणकाल व्याप्ति के अभाव होने पर भी मुख्यकालव्याप्ति के आधिक्य से पर दिन गृहीत होता है।

नन्वस्त्वेवं स्वतन्त्रैकभक्ते निर्णयः। अन्याङ्गे तु कथम्। तत्र कानुपपत्तिरिति चेत्। उच्यते—

"पूजाव्रतेषु सर्वत्र मध्याह्नव्यापनी तिथिः॥" इति

तथा "मध्याह्ने पूजयेन्नृपे"त्यादिशास्त्रैरङ्गिनः पूजादेर्मध्याह्ने विहितत्वेनाङ्गस्यैकभक्तस्यापराह्णादौ प्राप्यमाणत्वान्न मुख्यकालसम्भवः। माभूत्तादृशविषये मुख्यः कालः, प्रधानानुसारेण गुणस्य नेतव्यत्वात्। यदा स्वतन्त्रैकभक्तेऽपि केनचिन्निमित्तेन मुख्यकालासंभवे गौणकालोऽभ्यनुज्ञायते तदा किमु वक्तव्यमन्याङ्गे।

यत्तूपवासप्रतिनिधिरूपमेकभक्तं तदुपवासतिथौ कार्यम् तस्य गौणोपवासत्वात्। अत एव सुमन्तुः—

"तिथौ यत्रोपवासः स्यादेकभक्तेऽपि सा तथा॥" इति

न च तादृशमेव नास्तीति शङ्कनीयम्। उपवासव्रतं प्रक्रम्य रोगादिना तदशक्तौ गुर्वनुज्ञया तस्यैकभक्तस्य संभावितत्वात्—

अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ इति।

शास्त्रात्।

इत्येकभक्तनिर्णयः॥

प्रश्न होता है—इस प्रकार स्वतन्त्र एकभक्त का निर्णय हुआ है। अन्याङ्ग एक भक्त में कैसे निर्णय होता है। इस स्थल में क्या अनुपपत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती उत्तर होता है—पूजा और व्रत प्रभृतिओं में सब जगह मध्याह्न को व्याप्त होनेवाली तिथि ग्रहणीय होती है। "मध्याह्न में पूजा करनी चाहिये इस शास्त्र वचन से अंगी के रूप में स्वीकृत होने वाली पूजा प्रभृतियों का मध्याह्न विहित होता है। इसका अंग एकभक्त का अपराह्ण प्रभृति काल प्राप्त होने से मुख्य काल का संभव नहीं होता। उस विषय मे मुख्य काल न हो। प्रधान के अनुसार गुण का काल मान लिया जाता है। जब स्वतन्त्र: एकभक्त में कुछ कारण से मुख्य काल में कर्मानुष्ठान अगर संभव नहीं हुआ तो गौणकाल का विधान होता है। अन्यांग एक भक्त के बारे में सन्देह नही है।

उपवास के प्रतिनिधि रूप जो एक भक्त उसका काल उपवास काल होता है। उपवास तिथि में उसका अनुष्ठान होता है। यहां उसका स्वरूप गौण भाव से माना जाता है। अत एव सुमन्तु ने कहा है—जिस तिथि में उपवास होता है, एक भक्त में भी वह काल निरूपित होता है इसी तरह नहीं हो सकता ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। उपवास व्रत को प्रारम्भ करके रोग प्रभृति के कारण अगर अनुष्ठान के लिये अशक्त हो गये तो गुरु की अनुमति से एकभक्त की संभावना होती है। व्रत का नाश नहीं करने वाले आठ पदार्थ शास्त्र में कहे गये हैं। यथा—पानी, मूल, फल, दूध, हवि ब्राह्मण के लिये काम्य कर्म, गुरु के वचन और औषध। इस शास्त्रवचन के अनुसार एकभक्त की निष्पत्ति होती है।

इस प्रकार एकभक्त का निर्णय हुआ।

अथ नक्तं निर्णीयते

तत्र वाराहपुराणे धान्यव्रते पठ्यते—

मार्गशीर्षे सिते पक्षे प्रतिपद्या तिथिर्भवेत्।
तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ विष्णुं प्रपूजयेत्॥ इति।

अत्र नक्तशब्दो भोजनपरः कालपरत्वे, प्रकुर्वीतेत्यस्यानन्वयात्। न हि कालः केनचित् कर्त्तुं शक्यते। तस्य भोजनस्य रात्राविति कालविधिः। अतो दिवाभोजनरहितत्वे सति रात्रिभोजनं व्रतस्य स्वरूपम्। अन्यथा स्वतः प्राप्तस्य रात्रिभोजनस्य विधानवैयर्थ्यात्[1]।

१. स्वतः प्राप्तस्य रात्रिभोजनस्य विधानत्वाभावेन दिवाभोजननिषेधेन अर्थापत्त्या प्राप्तस्य रात्रिभोजनस्य विधानाभ्यनुज्ञातत्वमस्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्य च नक्तभोजनस्य विष्णुपूजनमङ्गम्। तत्सन्निधौ[1] पठितत्वात्। तथा होमोऽपि तदङ्गम्। होमं च तत्र कुर्वीतेत्यभिधानात्। एवञ्च सति प्रधानाऽविरोधेन पूजाहोमयोरङ्गयोर्दिवानुष्ठानमुक्तं भवति। प्रधानस्य च नक्तस्य कालद्वयं भविष्यत्पुराणे दर्शितम्—

मुहूर्त्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।
नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप ॥ इति।

अस्य च कालद्वयस्याधिकारिभेदेन व्यवस्थामाह देवलः—

नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थस्य बुधैः स्मृतम्।
यतेर्दिनाष्टमे भागे तस्य रात्रौ निषिद्ध्यते ॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः।
यतिश्च विधवा चैव कुर्यात्तत्सदिवाकरम् ॥

अब नक्त का निर्णय हो रहा है। वाराहपुराण में धान्यव्रत को उपजीव्य करके पाठ किया जाता है। अग्रहायण (मार्गशीर्ष) के शुक्लपक्ष प्रतिपद में नक्त व्रत किया जाता है। इसमें रात में विष्णुपूजन होता है। यहाँ नक्त शब्द भोजन अर्थ में मान लिया जाता है। काल अर्थ में लेने से 'प्रकुर्वीत' शब्द के साथ इसका अन्वय नहीं हो सकता। किसी भी प्रकार से या लोक से काल का निर्माण न हो सकता। भोजन के अर्थ में प्रयुक्त नक्त रात में विहित होता है। अतः दिवा भाग में भोजन का निषेध होने पर रात में होने वाला भोजन व्रत का स्वरूप होता है। अन्यथा स्वतः प्राप्त होने वाला रात में भोजन का विधान व्यर्थ हो जायगा। विष्णु-पूजन नक्त व्रत का अंग होता है। क्योंकि विष्णु पूजन प्रकरण में नक्त कहा गया है। इसी तरह होम भी अंग होता है। 'होमं च' यह वचन यहाँ प्रमाण है। ऐसे होने से प्रधान का विरोध न कर दिन में पूजा और होम का अनुष्ठान किया जाता है (ऐसा कहा गया है)। प्रधान रूप में विहित नक्त का दो प्रकार काल भविष्यत् पुराण में प्रदर्शित किया गया है। मनीषी लोग एक मुहुर्त्त न्यून होने वाला दिन नक्त के रूप में मान लेते हैं। हे गणाधिप ! नक्षत्र दर्शन पर्यन्त नक्त का काल रहता है। देवल के मतानुसार अधिकारी भेद से दो प्रकार काल की व्यवस्था होती है। नक्षत्र दर्शन पर्यन्त रहने वाला नक्त गृहस्थ के लिये प्रशस्त है, ऐसा पण्डित लोग से स्मरण किया जाता है। यतियों के लिये दिन का आठवां भाग नक्त काल होता है। रात में उनके व्रत निषिद्ध

१. सन्निधौ इन्यत्र श्रुत्यादिसहकारिषु प्रमाणेषु देशप्रमाणमेवाभ्युपगम्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। अन्य स्मृति में भी कहा है—विधि के साथ संयुक्त होने वाला गृहस्थ रात में नक्त व्रत करता है। सूर्य के अवस्थान काल में यति और विधवा लोग नक्त व्रत करते हैं।

सदिवाकरं तु तत्प्रोक्तमन्तिमे घटिकाद्वये।
निशानक्तं तु विज्ञेयं यामार्द्धे प्रथमे सदा॥ इति।

रात्रिनक्तभोजने व्यासः—

त्रिमुहूर्त्तं प्रदोषः स्याद् भानावस्तं गते सति।
नक्तं तु तत्र कर्त्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः॥

तदेवं नक्तकालौ व्यवस्थितौ। तत्र नक्तं प्रदोषव्यापिन्यां तिथौ कार्यम्। तदाह वत्सः—

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा।
एकादशीं विना सर्वा शुक्ले कृष्णे तथा स्मृता॥ इति।

एकादश्यां तु यन्नक्तं तत्रोदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या। तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या सदा नक्तव्रते तिथिः।
उदयस्था सदा पूज्या हरिनक्तव्रते तिथिः॥ इति।

अत्राप्येकभक्तन्यायेन षोढा विषयभेदा उत्प्रेक्षणीयाः मध्याह्न-प्रदोषयोरेव भिन्नत्वात्। पूर्वेद्युरेव प्रदोषव्याप्तौ पूर्वतिथिर्ग्राह्या। परेद्युरेव प्रदोषव्याप्तौ परतिथिः। उभयत्र प्रदोषव्याप्तौ परतिथिरेव। तदाह जाबालिः—

सदैव तिथ्योरुभयोः प्रदोषव्यापिनी तिथिः।
तत्रोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रापि सा यतः॥ इति।

सूर्य के अवस्थान समय में (सदिवाकर) जो कहा गया है, वह अन्तिम दो घटिका मानी जाती है। पहला यामार्ध में निशानक्त का ज्ञान होता है। रात में होने वाला नक्त के बारे में व्यास ने कहा है—सूर्यास्त होने से तीन मुहूर्त्त तक प्रदोष होता है। शास्त्रनिष्पत्ति के अनुसार उस समय में नक्त किया जाता है। इसी तरह दो प्रकार नक्तकाल व्यवस्थित होता है। प्रदोष समय को व्याप्त होने वाली तिथि में नक्त किया जाता है। वत्स ने कहा—नक्त व्रत में प्रदोषव्यापिनी तिथि गृहीत होती है। एकादशी को छोड़कर शुक्ल और कृष्ण पक्ष में यह सिद्धान्त माना जाता है। एकादशी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का नक्त उदय को व्याप्त होने वाली तिथि में होता है। स्कन्दपुराण में कहा है—प्रदोष को व्याप्त होने वाली तिथि नक्त के लिये गृहीत होती है। हरि नक्त में (एकादशी) उदय को व्याप्त होने वाली तिथि गृहीत होती है। यहाँ भी एकभक्त की तरह छ प्रकार व्याप्ति होती है। क्योंकि मध्याह्न और प्रदोष में भेद रहता है। पूर्व दिन में प्रदोष व्याप्ति होने पर पूर्व दिन गृहीत होता है। पर दिन में प्रदोष व्याप्ति होने से पर दिन गृहीत होता है। उभय दिनों में प्रदोष व्याप्ति होने से पर दिन गृहीत होता है। जाबालि ने कहा है—सब समय में उभय व्याप्ति स्थल में प्रदोष को व्याप्त होने वाली तिथि गृहीत होती है। तिथि की अवस्थिति के कारण पर दिन में नक्त व्रत किया जाता है।

उभयत्रापि दिवा रात्रौ च सा तिथि र्विद्यते यत इत्यर्थः। उभयत्र प्रदोषव्याप्त्यभावेऽपि परैव। तदाऽऽह जाबालिः—

अतथात्वे परत्र स्यादस्तादर्वाग् यतो हि सा॥ इति।

प्रदोषे तदभावेऽप्यस्तमयादर्वाग् यतः सा विद्यते ततः सा ग्राह्ये-त्यर्थः। अस्य च दिवारात्रव्रतत्वेन प्रदोषव्याप्तिवत् सायंकालव्याति-रपि निर्णयहेतुर्भवतीत्यनेनाभिप्रायेणार्वागस्तमयादित्युक्तम्। दिव-रात्रिव्रतत्वं च कूर्मपुराणेऽभिहितं—

प्रदोषव्यापिनी यत्र त्रिमुहूर्त्ता यदा दिवा।
तदा नक्तव्रते कुर्यात् स्वाध्यायस्य निषेधवत्॥ इति।

यद्यप्यत्र प्रदोषकालसायङ्कालौ द्वावेव प्रयोजकौ प्रतिभासेते तथापि प्रदोषव्याप्तिर्मुख्यकल्पः। सायङ्कालव्याप्तिरनुकल्प इति जाबालिवचनाद् अवगम्यते। तत्र "ह्यतथात्वे" इति प्रदोषव्याप्त्य-भावमनूद्य तादृश्यास्तिथेर्ग्राह्यत्वे अर्वागस्ताद्यत इति हेतूपन्यासात्। ईदृशे विषये गृहस्थोऽपि यतिवद्दिवानक्तमाचरेत्। तदुक्तं स्कन्द-पुराणे—

प्रदोषव्यापिनी न स्याद्दिवा नक्तं विधीयते।
आत्मनो द्विगुणच्छायामतिक्रामति भास्करे॥
तन्नक्तं नक्तमित्याहु र्न नक्तं निशि भोजनम्।
एवं ज्ञात्वा ततो विद्वान् सायाह्ने तु भुजिक्रियाम्॥
कुर्यान्नक्तव्रती नक्तफलं भवति निश्चितम्॥ इति।

उभय दिनों के दिवा और रात में वही तिथि रहती है यह अर्थ होता है। उभय दिनों के प्रदोष में व्याप्ति के अभाव से पर दिन गृहीत होता है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाबालि ने कहा है—उभय दिनों में न रहने के कारण अस्तमन से पहले रहने से पर दिन में नक्त होता है। इसका अर्थ यह है—प्रदोष में तिथि के अभाव होने से अस्तमन से पहले जिस प्रकार तिथि रहती है, उस प्रकार वही तिथि गृहीत होती है। यह व्रत दिवा और रात में होने के कारण प्रदोष व्याप्ति की तरह सायंकाल व्याप्ति भी निर्णय का कारण होती है। इस अभिप्राय से अस्त से पहले ऐसा कहा गया है। दिवा और रात में व्रतानुष्ठान के बारे में कूर्म पुराण में कहा है कि—दिन में तीन मुहूर्त्त तक जब प्रदोष व्याप्ति होती है, तब स्वाध्याय के निषेध की तरह नक्त व्रत के लिये तिथि गृहीत होती है। यद्यपि यहाँ प्रदोष और सायंकाल दोनों ही प्रयोजक के रूप म प्रतिभासित होते हैं तथापि प्रदोषव्याप्ति मुख्य काल होती है।

जाबालि के वचन से सायं काल व्याप्ति अनुकल्प रूप में मानी जाती है। 'अतथात्व' इस शब्द से प्रदोष व्याप्ति के अभाव को अनुवाद करके इसी प्रकार तिथि के ग्रहण के लिये अस्तमन से पहले ऐसा काल कारण रूप से उपन्यस्त किया जाता है। इस विषय में गृहस्थ भी यति की तरह दिन में नक्त किया जाता है। स्कन्दपुराण में कहा है—अगर प्रदोष-व्यापिनी तिथि नहीं है तो दिवा भाग में नक्त का विधान होता है। सूर्य के अतिक्रम के समय जब अपनी छाया द्विगुणित हो जाती है वह काल नक्त के रूप में माना जाता है। रात में होने वाला भोजन रूप नक्त नहीं होता हैं। इस विषय को जानकर नक्त व्रत करने वाले विद्वान लोग सायाह्न में भोजन करते हैं। इस प्रकार नक्त काल निश्चित होता है।

यत्तु सप्तमीभानुवासरादौ सौरनक्तं विहितं, तत्र पूर्वोक्तविपर्यासेन सायङ्कालव्याप्तिर्मुख्यः कल्पः। प्रदोषव्याप्तिरनुकल्पः। एतदेवाभिप्रेत्य सुमन्तुः—

त्रिमुहूर्त्तस्पृगेवाह्नि निशि वै तावती तिथिः।
तस्यां सौरं भवेन्नक्तमहन्येव तु भोजनम्॥ इति।

अत्र सायंव्याप्ते र्मुख्यकालत्वात् प्रथमतो निर्देशः। प्रदोषव्याप्तेरनुकल्पत्वात् पश्चान्निर्देशः। इतरनक्तेषु तु प्रदोषव्याप्ते र्मुख्यत्वादुदाहृतकूर्मपुराणवचने सैव प्रथमं निर्दिष्टा। सायङ्कालव्याप्तिः पश्चान्निर्दिष्टेति विवेकः। तेष्वितरनक्तेषु प्रदोषव्याप्तितिथिग्रहणेऽपि भानुवासरसङ्क्रान्त्यादिना गृहस्थस्यापि यदा रात्रिभोजननिषेधस्तदा दिवैव नक्तं कुर्यात्। तथा च भविष्योत्तरपुराणे—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्नक्तं कुर्वन्ति मानवाः ।
दिनान्ते तेऽपि भुञ्जीरन् निषेधाद्रात्रिभोजने ॥ इति ।

अस्मिंश्च दिवाभोजने उत्तमोऽन्तिमो मुहूर्त्तो मध्यम उपान्त्यं ततः प्राचीनो जघन्यः । एवञ्च सत्यन्तिमभागत्रिमुहूर्त्तवचनान्युपपद्यन्ते । रात्रिभोजनेऽपि घटिकात्रयमुत्तमः काल, घटिकाषट्कं मध्यमः कालः । एतदेवाभिप्रेत्य वचनद्वयं स्मर्यते—

प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकात्रयमिष्यते ॥ इति ।
त्रिमुहूर्त्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तङ्गते सति ॥ इति ।

निशीथपर्यन्तो जघन्यः कालः । नक्तं प्रकुर्वीत रात्राविति सामान्येनाभिधानात् । असौरनक्तेषु साम्येन वैषम्येण वा दिनद्वये प्रदोषैकदेशव्याप्तौ परेद्युरेव नक्तं कार्यं सायङ्कालस्य गौणस्य तत्तिथिव्याप्तत्वात् । अत्राप्येकभक्तवदन्याङ्गनक्तोपवासस्थानीयनक्तयो र्निर्णयो द्रष्टव्यः ।

जिस रविवार में सप्तमी होती है उस रविवार में सौरनक्त का अनुष्ठान किया जाता है । उस स्थल में सायं काल ही मुख्य कल्प और प्रदोष अनुकल्प होता है । इसको अभिप्रेत करके सुमन्तु ने कहा है—दिन में तीन मुहूर्त्त तक स्पर्श करके रात में तिथि रहती तो सौर नक्त के लिये वही तिथि मानी जाती है । और दिनों में भोजन किया जाता है । यहां सायं काल की व्याप्ति मुख्य काल होती है । अतः इसका पहला निर्देश होता है । प्रदोषव्याप्ति अनुकल्प होती है । इसलिये इसका बाद में निर्देश हुआ है । दूसरे नक्तों में प्रदोषव्याप्ति मुख्य काल के रूप में स्वीकृत होती है । कूर्मपुराण के वचन में वही व्याप्ति पहला बार निर्दिष्ट हुई । अतः बाद में सायंकाल व्याप्ति का निर्देश होता है । ऐसी विवेचना की जाती है । इन दूसरों नक्तों में प्रदोष व्यापिनी तिथि के ग्रहण में रविवार और संक्रमण प्रभृति के द्वारा गृहस्थ के जब रात में भोजन निषेध मिलता है वहां दिन में नक्त किया जाता है ।

भविष्योत्तर पुराण मे इस लिये कहा गया है—हे ब्रह्म ! जो लोग रविवार में नक्त करते हैं, उन्होंने दिनान्त में भोजन किया जाता है क्योंकि रात में भोजन निषिद्ध है । इस स्थल में दिन में होने वाला भोजन उत्तम, अन्तिम मुहूर्त्त मध्यम और उससे प्राचीन जघन्य होता है । ऐसे होकर अन्तिम भाग और तीन मुहूर्त्त व्याप्ति को सूचित करने वाले वचन उपस्थित हो जाते हैं । रात में होने वाला भोजन के लिये भी तीन घटिकायें उत्तम काल, छ घटि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्य मध्यमकाल होते हैं। इसको अभिप्रेत करके वचन का स्मरण किया जाता है। सूर्यास्त से ऊर्ध्व तीन मुहूर्त तक काल प्रदोष नाम से अभिहित किया जाता है। निशीथ पर्यन्त जघन्य काल होता है क्योंकि रात में नक्त भोजन किया जाता है ऐसा सामान्य वचन कहा गया है। सौर नक्त भिन्न नक्तों में समान रूप से या विषमरूप से दो दिनों में प्रदोष के एक देश में व्याप्ति होने पर दिन में नक्त किया जाता है। क्योंकि वही तिथि गौणकालके स्वरूप सायंकाल तक व्याप्त होती है। यहाँ भी एकभक्त की तरह अन्याङ्ग नक्त और उपवास के प्रतिनिधिरूप नक्त का निर्णय होता (द्रष्टव्य) है।

यथोक्तलक्षणलक्षितयोरेकभक्तनक्तयोरेकस्मिन् दिने यदा प्रसक्तिस्तदा कथं कर्त्तव्यम्? नचैतादृशी प्रसक्तिरेव नास्तीति शङ्कनीयम्। भविष्योत्तरपुराणोक्ते रथसप्तमीव्रते कदाचित्तत्प्रसक्तेः। तथाहि तत्र तृतीयादिषु सप्तम्यन्तेषु पञ्चसु दिनेषु क्रमेणैकभक्तनक्तायाचितोपवासपारणानि विहितानि। अत्र यदा तृतीया यामत्रयपरिमिता तत ऊर्ध्वं चतुर्थी तदा मध्याह्नव्यापित्वात् तृतीयैकभक्तं तत्र प्राप्तम्। प्रदोषव्याप्तित्वाच्चतुर्थीनक्तमपि तत्रैव। तथा सति परस्परविरोधो दुष्परिहरः।

अत्रोच्यते। एकभक्तस्य प्राथम्यात् प्रबलत्वेन तस्मिन् मुख्यकल्प एवानुष्ठेयः तद्विरोधिनि तु नक्तेऽनुकल्पः। सच द्विविधः। दिनान्तरानुष्ठानात् कर्त्रन्तरानुष्ठानाच्च। यदा चतुर्थी परेद्यु र्वृद्ध्या सायंकालं व्याप्नोति तदा तस्य गौणकालव्यापित्वादेक एव कर्त्ता दिनभेदेन व्रतद्वयमनुतिष्ठेत्। यदा चतुर्थी समा क्षीणा च तदा गौणकालव्याप्त्यसंभवेन पूर्वेद्युरेव भार्यापुत्रादिना कर्त्रन्तरेण तन्नक्तं करणीयम्।

इति नक्तनिर्णयः॥

इस (पहले कहे गये) लक्षण से लक्षित एकभक्त और नक्त के एक दिन में जब प्रसक्ति आ जाती है तो क्या करना हैं? ऐसी प्रसक्ति नहीं है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। भविष्योत्तरपुराण में कहा हैं जो रथसप्तमी व्रत, कभी-कभी वहीं पर प्रसक्ति आ जाती है। उस स्थल में तृतीया से लेकर सप्तमी तक पांच दिनों में क्रमानुसार एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास और पारण विहित होते हैं। इसमें जब तृतीया तीन मुहूर्त तक रहती है, उसके बाद चतुर्थी आ जाती है, तब तृतीया की मध्याह्न व्याप्ति होती है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और उस दिन में एकभक्त की प्राप्ति होती है। प्रदोष में रहने पर चतुर्थी के नक्त भी उस दिन में होता है। ऐसे होने से परस्पर विरोध को परिहार करना कठिन है।

यहां कहा जाता है—एकभक्त का प्रवेश पहले होता है। इस लिये वह प्रबल होकर मुख्य काल में अनुष्ठित होता है। उसके विरोधी नक्त अनुकल्प काल में अनुष्ठित होता है। दूसरा दिन में और दूसरा कर्त्ता ने अनुष्ठान होकर इसकी निष्पत्ति दो प्रकार होती है। जब चतुर्थी पर दिन के सायं काल तक वर्धित होकर व्याप्त हो जाती है तब गौण काल व्याप्ति भी होती है। इस स्थल में एक ही कर्त्ता भिन्न २ दिन में दो व्रतों का अनुष्ठान कर सकता है। जब चतुर्थी समान होती या क्षीण हो जाती, तब गौण काल का असंभव हो जाता है। यह कारण से पहला दिन में भार्या या पुत्र प्रभृतिओं के द्वारा भिन्न कर्त्ता ने इस नक्त किया जा सकता।

इस प्रकार नक्त का निर्णय हुआ।

अयाचितं निर्णीयते

पूर्वोदाहृते सप्तमीव्रते पञ्चम्यामयाचितं विहितम्। तस्यैकभक्तवत् प्रतिपदोक्तः कालविशेषविधिर्नास्ति। तस्य याचितभोजननिषेधरूपत्वात्। स च निषेध उपवासवदहोरात्रं विषयीकरोति। अत एव सङ्कल्पोऽप्यस्मिन्नहोरात्रे याचितमन्नं न भोक्ष्य इत्येवं कर्त्तव्यः। अथवा याचितादन्यदयाचितमित्यतिप्रयत्नलभ्यस्य परदत्तस्य भोजनं विवक्ष्यते तदाऽपि पराधीनत्वादेव न तस्य कालविशेषो विधातुं शक्यते। यद्यपि स्वगृहे पूर्वसञ्चितं वस्तु इदानीमयाचितं भवति तथापि पूर्वप्रयत्नसंपादितत्वादयाचितमेव। अथवा निषेधस्य प्रसक्तिपूर्वकत्वाद्याच्ञाप्रसक्तेश्च परद्रव्यविषयत्वात् अयाचितशब्दोऽपि परद्रव्यमेव विषयीकरोति।

अत्रायाचितशब्दस्य यथोक्तरीत्या द्वावर्थौ संपन्नौ प्रतिषेधः पर्युदासश्च। तयोः प्रतिषेधपक्षं प्राजापत्यकृच्छ्रव्याख्याने गौतमो व्यवजहार—"अथापरं त्र्यहं न कंचन याचेत"॥ इति। पर्युदासपक्षं बृहस्पतिर्व्यवजहार—

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्।
त्र्यहं परं तु नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन् द्विजः॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्मृत्यन्तरेऽपि—

अयाचिताशी मितभुक् परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ इति ।

मितभोजित्वं दशग्रासत्वम् । तदुक्तं चतुर्विंशतिमते—

प्रातस्तु द्वादश ग्रासा नक्ते पञ्चदशैव तु ।
अयाचिते तु द्वौ चाऽष्टौ प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ इति ।

तच्च भोज्यद्रव्यं परकीयमप्रयत्नोपनीतं चेत्येतदुभयं स्मार्त्तलिङ्गादवगम्यते । तथा च प्रतिग्रहप्रकरणे याज्ञवल्क्यः[1]—

अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ॥ इति ।

अब अयाचित का निर्णय हो रहा है। पहले कहा गया जो सप्तमी व्रत उसमें पञ्चमी तिथि में अयाचित का विधान होता है। एकभक्त की तरह प्रतिपद में कहा गया जो कालविशेष इसका विधान नहीं है। क्योंकि यहां मांग करके किया जाने वाला भोजन का निषेध रूपायित हुआ है। वह निषेध उपवास की तरह अहोरात्र को विषय रूप में रखता है। अतः संकल्प भी इस प्रकार होना चाहिये कि इस अहोरात्र में मांगकर अन्न न खाउंगा। अथवा प्रार्थित अन्न से भिन्न अयाचित होता है। प्रयत्न करके दूसरे लोगों से दिया गया भोजन यहाँ विवक्षित होता है। वहीं पर भी पराधीन द्रव्य रूप से वह अयाचित माना जाता है। अतः उसके लिये विशेष काल का विधान नहीं किया जा सकता। अपने घर में बहुत काल से संचित वस्तु अब अयाचित हो सकता है। लेकिन पूर्वकाल में प्रयत्न पूर्वक उनका संपादन हुआ था। इसलिये इस प्रकार की वस्तु याचित हो जाती है। अथवा यह भी हो सकता किनिषेध सब समय में प्रसक्तिपूर्वक होता है। अतः प्रार्थना की आवश्यकता है। यहाँ परद्रव्य के लिये ही प्रार्थना होती है। इसलिये अयाचित शब्द पर के द्रव्य को ही लक्ष्य करता है।

यहाँ अयाचित का दो अर्थ होते हैं। प्रतिषेध और पर्युदास। गौतम ने प्राजापत्य कृच्छ्र के व्याख्यान पर प्रतिषेध पक्ष का व्यवहार किया। इसके बाद दूसरे तीन दिनों में नक्त किया जाता है। क्योंकि यहाँ प्रार्थना करके नहीं लाना चाहिये। पर्युदास पक्ष बृहस्पति ने व्यवहार किया। तीन दिन तक प्रातःकाल में, तीन दिन तक सायं काल में और तीन दिन तक अयाचित के

---

१. अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ।
अन्यत्र कुलटाषण्ढपतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥ या० स्मृ० १।२१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप में भोजन किया जाता है। तीन दिन तक भोजन न करके प्राजापत्य व्रत किया जाता है। दूसरी स्मृति में भी कहा गया है कि—अयाचित भोजन करने वाले मिताहारी लोग उत्तम सिद्धि पाते हैं। मिताहार का परिमाण दश ग्रासों का भोजन से सूचित होता है। चतुर्विंशति मत में कहा है—प्रातःकाल में बारह ग्रास, नक्त में पन्द्रह और अयाचित में २+८ = दश ग्रास परिमित भोजन प्राजापत्य विधान के अन्तर्गत है। यहां भोजन परकीय द्रव्य से और भोजन करने वाले का बिना प्रयत्न से लब्ध होना चाहिये। ये दो लक्षण स्मार्त प्रमाण से माना जाता है। प्रतिग्रह प्रकरण में याज्ञवल्क्य ने कहा है—कोई पाप करने वाला भी अगर कुछ देता है तो अयाचित के रूप में भी उसका ग्रहण किया जाता है।

तथा यतिधर्मेषु उशना—

भिक्षाशनं समुद्योगात् प्राक्तेनापि निमन्त्रितम्।
अयाचितं तु तद्भैक्ष्यं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत्॥

यति प्रतिषेधो यदि वा पर्युदासः, उभयथाऽप्येकभक्तादिवन्न कालो विशेषणीयः। प्रतिषेधेऽनुष्ठेयाभावात् पर्युदासे पराधीनत्वात्। असति तु कालविशेषविधौ न कर्मकालव्याप्तिवचनमत्र प्रवर्त्तते। तथा सति किं "पूर्वाह्णिकास्तु तिथय" इति वचनेन परा ग्राह्या, किं वा "युग्माग्नि" इतिवाक्येन पूर्वेति विवक्षायां युग्मवाक्यस्यतिथि विशेष-विषयत्वादनुसरणं न्याय्यम्। अनेनैव न्यायेन प्रतिपदप्ययाचिते पूर्व-विद्धैव ग्राह्य॥ अयाचितस्य नियमरूपत्वात्।

"द्वितीयाऽऽदिकयुग्मानां पूज्यता नियमादि"ष्वित्युक्तत्वात्।

प्रतिपद्युपवासैकभक्तनक्तायाचितानि निर्णीतानि। अत्र शुक्लप्रतिपत् पूर्वविद्धोपोष्या। कृष्णप्रतिपदुत्तरविद्धा। एकभक्तनक्तयोः सर्वासु तिथिषु मध्याह्नप्रदोषव्याप्त्या निर्णयः। अयाचितस्य प्रातिस्विककाल-विशेषविध्यभावात् उपवासवत् शुक्लकृष्णप्रतिपदौ पूर्वोत्तरविद्धे ग्रहीतव्ये इत्येतावद् व्यवस्थितम्।

इत्ययाचितनिर्णयः॥

यतिधर्मप्रकरण में उशना ने कहा गया है—उद्योग पूर्वक भिक्षा लब्ध भोजन और पूर्व से कोई निमन्त्रण अयाचित होता है। इस भोजन को स्वीकार करने के लिये मनु ने कहा है—अगर यति प्रतिषेध या प्रर्युदास होता है तो उभय जगह एकभक्त की तरह काल का विशेष रूप से कहना है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्योंकि प्रतिषेध में अनुष्ठान नहीं होता है और पर्युदास में पराधीन होता है। काल के विशेष विधान का अभाव होने पर कर्मकालव्याप्ति का वचन वहां प्रवर्तित नहीं होता है। इस प्रकार होने पर "पूर्वाह्णिकास्तु तिथयः" इस वचन के अनुसार पर तिथि का ग्रहण होता या 'युग्माग्नि' इस वचन से पूर्व तिथि ? इस विवक्षा में तिथि विशेष के विषय में युग्मवाक्य का अनुसरण न्याय्य होता है। इस न्याय से अयाचित व्रत में प्रतिपदा पूर्वविद्धा गृहीत होती है। क्योंकि अयाचित नियम के रूप से अनुष्ठित होता है। द्वितीया प्रभृति युग्म तिथिओं की पूज्यता नियम क्षेत्र में कही गयी है। यहां उपवास क्षेत्र में पूर्वविद्धा शुक्ल प्रतिपद गृहीत होती है। कृष्ण प्रतिपद परविद्धा गृहीत होती है। सभी तिथिओं में एकभक्त और नक्त मध्याह्न और प्रदोष की व्याप्ति से निर्णीत होते हैं। अपना कालविशेष के विधान का अभाव से उपवास की तरह अयाचित होता है। शुक्ल-प्रतिपद पूर्वविधा और कृष्ण प्रतिपद परविधा गृहीत होती है। ऐसी व्यवस्था हुई है।

इस प्रकार अयाचित का निर्णय हुआ ॥

अथ प्रतिपद्दानव्रतानि निर्णीयन्ते

भविष्योत्तरपुराणे दानं पठ्यते—

प्रतिपत्सु द्विजान् पूज्य पूजयित्वा प्रजापतिम्।
सौवर्णमरविन्दं च कारयित्वाष्टपत्रकम् ॥
कृत्वा त्वौदुम्बरे पात्रे सुगन्धिघृतपूरिते।
पुष्पैर्धूपैः पूजयित्वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥ इति।

ब्रह्मपुराणे फलव्रतं पठ्यते—

मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे च प्रतिपत्तिथौ।
नैवेद्यं च पचेन्मौनी षोडशत्रिगुणानि च ॥
फलानि पिष्टपक्वानि दद्याद् विप्राय षोडश।
देवाय षोडशैतानि दातव्यानि प्रयत्नतः ॥
भुज्यन्ते षोडश तथा व्रतस्य नियमाशया ॥ इति।

एवमन्यान्यपि दानव्रतान्युदाहरणीयानि। तानि च सर्वाण्युत्तरविद्धायां प्रतिपदि कर्त्तव्यानि तेषां दैवत्वात्। याज्ञवल्क्यः—

पौर्वाह्णिकास्तु तिथयो दैवकार्ये फलप्रदाः ॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यप्येतत् तिथिसामान्यमुपजीव्य प्रवृत्तं तथापि प्रतिपदि बाधकाभावात् तत्र प्रवर्त्तते। न चात्र युग्मवाक्यं बाधकम्। तस्य तिथिविशेषमुपजीव्य प्रवृत्तस्यापि कर्मकालव्यातिवाक्याद् दुर्बलत्वात्तिथिरङ्गं, कर्माङ्गि ततः प्रबलमिति पूर्वमुक्तम्। कर्मकालव्यर्ति च वृद्धयाज्ञवल्क्य आऽऽह—

कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः।
तथा कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥ इति।

अब प्रतिपद में अनुष्ठित होने वाले दान व्रतों का निर्णय हो रहा है। भविष्योत्तरपुराण में दान के बारे में कहा है—प्रतिपदों में द्विजों की पूजा और प्रजापति के पूजन करके स्वर्ण से निर्मित आठ दल विशिष्ट पद्म की गन्धयुक्त ताम्र पात्र में धूप और पुष्पों के द्वारा पूजा करके विप्र को दिया जाता है। ब्रह्म पुराण में फलव्रत प्रसंग में पाठ मिलता हैं—भाद्रपद मास का शुक्लप्रतिपद तिथि में अडतालिस फलों और पिष्टक के नैवेद्य करके ब्राह्मण को उनमें से सोलह दिये जाते हैं, देवताओं को सोलह देकर स्वयं सोलह व्रत का नियम के अनुसार भोजन किया जाता है। ऐसे दानव्रतों का उदाहरण मिलता है। ये सब दैव कार्य होने के कारण परविद्धा प्रतिपद में अनुष्ठित होते हैं।

याज्ञवल्य ने कहा हैं—दैव कार्य में तिथियों की पूर्वाह्णव्याप्ति फलप्रद होती है। सामान्य तिथियों को आश्रय करके अगर इसकी प्रवृत्ति हुई तथापि प्रतिपद में कोई बाधक का अभाव से इसकी प्रवृत्ति होती है। यहाँ युग्म वाक्य बाधक नहीं होता है। तिथि विशेष को लक्ष्य करके उसकी प्रवृत्ति होती है। इसलिये कर्मकाल व्याप्ति को सूचित करने वाला वाक्य से वह दुर्बल होता हैं और तिथि अङ्ग होती है। कार्म अंगी होकर उससे प्रबल होता है; ऐसा पूर्व से कहा भया है। कर्मकाल व्याप्ति के बारे में प्रवृद्ध याज्ञवल्क्य ने कहा है—जिस कर्म का जो काल निर्दिष्ट है, इस काल को व्याप्त होने वाली तिथि उस कर्म के लिये माननीय होती है। इस तिथि के द्वारा कर्म किया जाता है। तिथि की कमती या बढ़ती कारण नहीं होती है।

स्कन्दपुराणेऽपि—

यस्मिन् काले तु यत्कर्म तत्कालव्यापिनी तिथिः।
तथा कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गार्ग्योऽपि—

यो यस्य विहितः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः।
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥ इति

कर्मकालश्च दानव्रतयो र्दैवत्वेन पूर्वाह्णोऽवगन्तव्यः। "पूर्वाह्णो वै देवाना"मिति शास्त्रात्। एकभक्तनक्तयो र्दैवत्वेऽपि प्रतिपदोक्तकाल-विशेषशास्त्रेण सामान्यरूपं पूर्वाह्णशास्त्रं बाध्यते। न त्वेवं प्रकृतयो-र्दानव्रतयोः किञ्चिद् बाधकमस्ति।

अह्नः पूर्वो भागः पूर्वाह्णः स च पञ्चधा विभागपक्षे मुहूर्त्तत्रयात्मकः प्रातः कालः चतुर्द्धाविभागपक्षे सार्द्धप्रहरात्मकः। त्रिधाविभागपक्षे पञ्चमुहूर्त्तात्मकः। द्विधा विभागपक्षे सार्द्धसप्तमुहूर्त्तात्मकः। पञ्चदश-धाविभागपक्षेऽप्यर्थात् तथैव संपद्यते। यद्यपि बहुशास्त्रानुरोधेन पञ्चधा विभाग एवात्र ग्राह्य इति पूर्वमुक्तं, तथापि बहुकर्त्तव्योपेतयो-र्दानव्रतयोर्मुहूर्त्तत्रयमात्रेणानुष्ठातुमशक्यत्वात् इतरेऽपि पक्षा अनु-कल्पत्वेन ग्रहीतव्याः। यत्र सार्द्धसप्तमुहूर्त्तैरपि कर्म न समाप्यते तत्र कृत्स्नो दिवसोऽभ्यनुज्ञायते। अत एव देवलः—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु ॥ इति

व्यासोऽपि—

उदयन्नेव सविता यां तिथिं प्रतिपद्यते।
सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥ इति

स्कन्द पुराण और गार्ग्य ने भी ऐसा कहा है। दान और व्रत दैव कार्य के रूप से गृहीत होने पर उनके कर्म काल पूर्वाह्ण माना जाता है। पूर्वाह्ण वाक्य यहाँ प्रमाण है। एकभक्त और नक्त दैव कार्य के रूप से माने जाते हैं। तथापि प्रतिपद को निमित्त करके काल विशेष को सूचित करने वाला शास्त्रवचन से सामान्य रूप पूर्वाहण वाक्य बाधित हो जाता है। किन्तु प्रकरण में प्राप्त दान और व्रत के लिये कुछ बाधक इसी तरह नहीं है।

दिवस के पहला भाग पूर्वाह्ण है। दिवाभाग को पांच भागों से विभक्त किया जाता है। तीन मुहूर्त्त तक प्रातःकाल यहाँ पूर्वाह्ण के रूप में माना जाता है। चार भागों से जब विभक्त किया जाता है, टेढ़ प्रहर तककाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ माना जाता है। जब तीन भागों से विभक्त किया जाता है, तब पांच मुहूर्त्त तक काल माना जाता है। दो भागों में जब विभक्त किया जाता है तब सात और आधा मुहूर्त्त तक काल माना जाता है। पन्द्रह भागों से जब विभाग किया जाता है तब इसी तरह विभाग होता है। अनेक शास्त्र वचनों के द्वारा अगर पांच प्रकार के विभागों यहाँ गृहीत होते हैं, ऐसा पहले कहा गया है तथापि बहुत कर्त्तव्यों से युक्त दान और व्रतों का तीन मुहूर्त्त तक काल अवसर में अनुष्ठान नहीं किया जा सकता। इसलिये दूसरे पक्षों का भी अनुकल्प को रूप में ग्रहण किया जाता है। जहाँ सात और आधा मुहूर्तों से भी कर्मानुष्ठान की समाप्ति नहीं होती वहां संपूर्ण दिवाभाग माना जाता है।

अत एव देवल ने कहा है—जिस तिथि को लेकर सूर्य उदित होते हैं, वही तिथि दिनभर रहती है। ऐसी मानी जाती है। इस तिथि को सकला तिथि कहते हैं। स्नान, दान और व्रत के लिये वही तिथि प्रशस्त है, व्यास ने कहा है—जिस तिथि को स्पर्श करके सूर्योदय होता है, वही तिथि सकला तिथि के रूप्र से मानी जाती है और दान-अध्ययन कर्म के लिये यही प्रशस्त है।

भविष्योत्तरपुराणेऽपि—

व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत्।
सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्र्यर्थे वाऽपराह्णिकी ॥ इति।

पद्मपुराणेऽपि—

व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत्।
उदये सा तिथिस्तत्र विपरीता तु पैतृके ॥ इति

स्कन्दपुराणेऽपि—

व्रतोपवासदानादौ घटिकैका यदा भवेत्।
उदये सा तिथि र्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके ॥ इति।

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत्।
उदये सा तिथि र्ग्राह्या श्राद्धादावस्तगामिनी ॥ इति

बौधायनोऽपि—

आदित्योदयवेलायां याऽल्पापि च तिथि र्भवेत्।
पूर्णा इत्येव मन्तव्या प्रभूता नोदयं विना ॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नन्वस्त्वेवं कृत्स्नदिवसाऽभ्यनुज्ञा। तथाऽप्युत्तरविद्धायास्तिथेर्ग्रहणे कियत्परिमाणमुदये अपेक्षणीयमिति विवेचनीयम्। तत्र बौधायने-नाल्पापीत्यभिधानात् निमेषमात्रं प्रतिभाति। तथा व्यासवाक्येऽपि प्रतिभाति 'उदयन्नेवे'त्यभिधानात् भविष्योत्तरपुराणादिवचनेषु घटिका-मात्रं प्रतीयते। वचनान्तरे तु विष्णुधर्मोत्तरबौधायनप्रोक्ते घटिका-चतुष्टयं प्रतिभासते। तथा च पठ्यते—

उदिते दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ।
द्विमुहूर्त्तं त्रिरह्नश्च सा तिथि र्हव्यकव्ययोः॥ इति

भविष्योत्तरपुराण में कहा है—व्रत, उपवास और नियम के क्षेत्र में जब एक घटिका रहती है, वही तिथि सकला तिथि होती है। पितृकार्य के लिये अपराह्ण माना जाता है। पद्मपुराण में भी व्रत, उपवास और नियम के क्षेत्र में जब उदय में एक घटिका तिथि रहती, वही दैव कार्य के लिये मानी जाती है। पितृकार्य के लिये विपरीत काल का अपराह्ण माना जाता है। स्कन्दपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण में ऐसा कहा गया है। बौधायन ने कहा है—सूर्योदय वेला में जो तिथि अल्प रहती है, वही तिथि सारे दिन रहती है ऐसा माना गया है। इस तिथि को पूर्ण तिथि कहते हैं। उदय को छोड़कर दिनभर रहती, तो नहीं मानी जाती है। यहाँ एक प्रश्न होता है—सारे दिवस को मान लेने के लिये ऐसी प्रक्रिया कही गई है। तथापि उत्तरविद्धा तिथि को ग्रहण करने के लिये उदय काल में कितना परिमाण अपेक्षणीय है, इसकी विवेचना होगी। इस विषय में अल्पपरिमाण कहने से निमेषमात्र काल प्रतिभात होता है। उसी तरह व्यास वाक्य में भी उदय शब्द से और भविष्योत्तर पुराण वचन में एक घटिका शब्द से ऐसा प्रतीत होता है। विष्णुधर्मोत्तर और बौधायन के दूसरे वचनों में चार घटिका प्रतिभात होती हैं। इस लिये पाठ मिलता है—सूर्य के उदय में दैवकार्य, अस्त में पितृकार्य किये जाते हैं। दो या तीन मुहूर्त्तों अगर हैं तो हव्य और कव्य के लिये प्रशस्त होते हैं।

अस्यार्थः—भानावुदिते सत्युत्तरकालेऽह्नो मुहूर्त्तद्वयं दैवतम्। तस्मिंश्चास्तमिते ततः पूर्वकालीनमह्नो मुहूर्त्तद्वयं पितृदैवत्यम्। अत-स्तावत्कालव्यापिनी या तिथि र्भवति सैव क्रमेण हव्यकव्ययो र्ग्राह्या। अत्रोच्यते। पौर्वाह्णिका इति वचनेन दैवे पूर्वाह्णव्याप्त्यभिधानात् पूर्वाह्णस्य पञ्चधा विभक्तस्य मुख्यत्वादुदिते भानौ त्रिमुहूर्त्ता तिथि ग्रहीतव्या। यत्तु दक्षेणोक्तम्—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिमुहूर्त्ता न कर्त्तव्या या तिथिः क्षयगामिनी ।
द्विमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या या तिथि र्वृद्धिगामिनी ॥ इति

तत् न त्रिमुहूर्त्तव्याप्तेर्बाधकं प्रत्युतोपद्बलकमेव। तथाहि प्रतिषेधः सर्वत्र प्रसक्तिपूर्वकः । प्रसक्तिश्चात्र यथोक्तरीत्या पौर्वाह्णिक-वाक्याद्वा, त्रिमुहूर्त्तवेधाभिधायिपैठीनसिवाक्याद्वा भवति। तच्च प्रसक्तं त्रिमुहूर्त्तत्वं, समतिथौ बाधकाभावात्तथैव व्यवतिष्ठते। तिथिक्षये त्वधिकव्याप्तिर्विधित्सया प्रतिषिद्ध्यते । अतस्तत्र चतुर्थमुहूर्त्त-स्पर्शिनी तिथि र्ग्राह्या। तिथिसाम्यवत् तिथिवृद्धावपि मुहूर्त्तत्रयमेव मुख्यम्। मुहूर्त्तद्वयं त्वनुकल्पः। एतदेव सूचयितुं द्विमुहूर्त्तापीत्यपि शब्दः पठ्यते।

नन्वत्र क्षयवृद्ध्युपजीवनेन निर्णयः क्रियते। स चानुपपन्नः। व्यासवाक्ये ह्रासवृद्धिचोदनायाः पित्र्यविषयत्वाभिधानात्।

एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ ह्रासवृद्ध्यादिचोदना ॥

इति हि पूर्वमुदाहृतम्। दानव्रते च दैवे। अतः कथमनयोर्वृद्धि क्षयाभ्यां निर्णयः? किञ्च उदाहृतयाज्ञवल्क्यस्कन्दपुराणगार्ग्यवचनेषु ह्रासवृद्धी न कारणमित्युक्तम्। तत् कथमत्र ह्रासवृद्ध्योर्निर्णयकार-णत्वम्? अत्रोच्यते। सन्ति ह्यन्यानि ह्रासवृद्धिवाक्यानि। तत्रो-शना —

इसका अर्थ यह है—सूर्य के उदय से परवर्ती दिवस के दो मुहूर्त्त तक काल देवताओं के लिये उपयुक्त है। इस दिवस के सूर्यास्त से पहले दो मुहूर्त्त तक काल पितृदेवता के लिये प्रशस्त है। इस परिमाण को लेकर तिथि की व्याप्ति होने से क्रमानुसार हव्य और कव्य के लिये अस्तमय तिथि ग्रहणीय होती है। यहाँ उत्तर के रूप में कहा जाता है। पौर्वाह्णिक वचन के अनुसार दैव कार्य के लिये पूर्वाह्णव्याप्ति कही गयी है। इन स्थलों में पांच भागों से विभक्त सूर्योदय से पर तीन मुहूर्त्त रहने वाली तिथि गृहीत होती है। जिस पर दक्ष ने कहा है—तिथि का अगर क्षय हो गया तो तीन मुहूर्त्त व्याप्ति के अनुसार नहीं किया जाता है। तिथि की वृद्धि में दो मुहूर्त्तों रहने वाली तिथि मानी जाती है।

किन्तु ऐसा ठीक नहीं है। यहां वचन तीन मुहूर्त्त व्याप्ति को नहीं बाधित करता है। अपितु समृद्ध करता है। क्योंकि प्रसक्ति (विधि) पूर्वक सर्वथा निषेध की प्रवृत्ति होती है। कही गयी रीति के अनुसार पौर्वाह्णिक वाक्य से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या तीन मुहूर्त्त परक पैठीनसि वाक्य से प्रसक्ति होती है। तीन मुहूर्त्त तक वही प्रसक्ति समतिथि में बाधक का अभाव से इस प्रकार व्यवस्थित होती है। तिथिक्षय स्थल में अधिक व्याप्ति को विधान करने के लिये प्रतिषेध किया जाता है। अतः यहां चौथा मुहूर्त्त को स्पर्श करने वाली तिथि ग्रहणीय होती है। तिथि साम्य की तरह तिथि वृद्धि में भी तीन मुहूर्त्त व्याप्ति मुख्य होती है। दो मुहूर्त व्याप्ति अनुकल्प होती है। इस सूचना को देने के लिये "अपि" भी शब्द यहाँ पठित किया है।

प्रश्न आता है—यहां क्षय और वृद्धि को लेकर निर्णय किया जात है, यह ठीक नहीं है। व्यास वाक्य में ह्रास और वृद्धि को सूचित करने वाली चोदना पितृकर्म के बारे में नहीं कहती है। एकोद्दिष्ट और वृद्धि प्रभृति क्षेत्रों में ह्रास वृद्धि वाक्य की प्रवृति होती है। ऐसे पहले गये हैं। दान और व्रत तो दैव कर्म के रूप में स्वीकृत होते हैं। अतः वृद्धि क्षय के द्वारा इन दोनों का निर्णय कैसे होता? फिर भी याज्ञवल्क्य, स्कन्दपुराण और गार्ग्य के जो वचन उदाहृत किये गये हैं, उनमें ह्रास और वृद्धि का कारण के रूप में कुछ नहीं कहा है। तब कैसे ह्रास और वृद्धि निर्णय में कारण होती है? यहां उत्तर ऐसा है—ह्रास-वृद्धि के बारे में दूसरे वाक्य मिलते हैं। उशना ने कहा है—

खर्वो दर्पस्तथा हिंस्र[1] स्त्रिविधं तिथिलक्षणम्।
खर्वदर्पौ परौ [2]पूज्यौ हिंस्रः पूर्वत्र युज्यते[3]॥ इति

भविष्योत्तरेऽपि—खर्वो दर्पस्तथा हिंस्रस्त्रिविधं तिथिलक्षणम्।
खर्वदर्पौ परौ कार्यौ हिंस्रः स्यात् पूर्वकालिकः॥ इति।

पितामहोऽपि — खर्वो दर्पस्तथा हिंस्रस्त्रिविधं तिथिलक्षणम्
खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ हिंस्रः स्यात् पूर्वकालिकः॥ इति।

खर्वः साम्यम्, अल्पक्षयो वा। दर्पो वृद्धिः। हिंस्रः अधिकक्षयः। एतैः खर्वादिवाक्यैः सह यस्मिन् विषये युग्मादिवाक्स्य विरोधः प्राप्नोति तत्र दैवपित्र्यभेदेन व्यवस्थापकं व्यासवाक्यं, न तु प्रकृतयोः क्षयवृद्ध्योः पित्र्यविषयत्वप्रतिपादकम्। याज्ञवल्क्यादिवचनेष्वपि कर्मकालव्याप्तिशास्त्रस्य खर्वदर्पादिशास्त्रस्य वा विरोधे प्राप्ते सति

---

१. हिंस्रा इति पाठान्तरम्
२. कार्यौ इति पाठान्तरम्
३. स्यात् पूर्वकालिकी इति पाठान्तरम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्मकालव्याप्तिशास्त्रस्य प्राबल्यमुच्यते न तु प्रकृतयोः क्षयवृद्ध्योः निर्णयहेतुत्वं प्रतिषिद्ध्यते।

ननु व्यासः खर्वादिवाक्यानि, पित्र्यविषयत्वेन संकोचयामास। याज्ञवल्क्यादयस्तु पित्र्ये कर्मकालव्याप्त्या खर्वादिवाक्यान्य॑बाधन्त। हन्तैवं निर्विषयत्वमेषां प्रसज्ज्येतेति चेत्। मैवम्। यदा पूर्वोत्तरदिनयोः पित्र्यविषयकर्मकालव्याप्तिः समाना, यदा वा दिनद्वयेऽपि कर्मकाल-व्याप्त्यभावस्तत्रोभयत्र खर्वादिवाक्यै निर्णेतुं शक्यत्वात्।

खर्व, दर्प और हिंस्रा के रूप में तिथि के लक्षण तीन प्रकार है। खर्व और दर्प परविद्धा और हिंस्रा तिथि पूर्वविद्धा होती है। भविष्योत्तर पुराण और पितामह ने ऐसा कहा है। खर्व का अर्थ है साम्य वा अल्पक्षय, दर्प का अर्थ है वृद्धि और हिंस्रा के अर्थ है अधिक क्षय। इन खर्वादि वाक्यों के साथ जिस विषय में युग्मादि वाक्य का विरोध मिलता है, वहां दैवकार्य और पितृकार्य भेद से व्यास वाक्य व्यवस्थापक होता है। किन्तु इस प्रकरण में प्रतिपादित क्षय वृद्धि वाक्य पितृविषय को प्रतिपादित नहीं करता है। याज्ञवल्क्यादि वचनों में भी कर्मकाल व्याप्ति को सूचित करने वाला शास्त्र वचन और खर्वदर्प को सूचित करने वाला शास्त्र वचनों के बीच में अगर विरोध हुआ तो कर्मकाल व्याप्ति को सूचित करने वाला शास्त्रवचन प्रबल होता है। किन्तु इससे क्षय और वृद्धि के निर्णय हेतु प्रतिषिद्ध नहीं होता है।

प्रश्न होता है—खर्वादिवाक्य को पितृविषय में व्यास संकुचित करते हैं। याज्ञवल्क्य प्रभृति पितृविषय में कर्मकाल व्याप्ति से खर्वादि वाक्यों को बाधित करते थे। ऐसे होने से ये सब वचन निर्विषय हो जायेंगे। यह ठीक नहीं हैं। जब पूर्व और उत्तर दिन में कर्मकाल की व्याप्ति नहीं होती तब खर्वादि वाक्यों से निर्णय हो सकता है।

आस्तां प्रासङ्गिकी खर्वादिवाक्यचिन्त्या। प्रकृते तु सूर्योदये मुहूर्त्त-त्रयव्यापिनी प्रतिपद्दानव्रतयो ग्रहीतव्या। एवं च सत्युदयमात्रव्याप्ति-शास्त्रं घटिकामात्रव्याप्तिशास्त्रं च वैश्वानराधिकरणन्यायेनावयुत्यानु-वादरूपतया त्रिमुहूर्त्तव्याप्तिं प्रशंसति। अथवा पूर्वेद्युरुदयकालं परि-त्यज्योपरि सर्वत्र व्याप्नोति, परेद्युरुदयकालमात्रं व्याप्नोति। तदा-

१. पित्र्यविषयान्विबाधन्त इति वा० पु० अधिकपाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नीमुदयानन्तरभाविन्या मुख्यायास्त्रिमुहूर्त्तव्याप्तेर्दिनद्वयेऽप्यभावेन द्वयोरपि दिनयोर्गौणकालत्वे सति किं ग्राह्यमिति वीक्षायां पूर्वदिने कर्मकालव्याप्तेर्भूयस्त्वात् तस्यैव ग्रहणं न्यायतः प्राप्तम् ॥ केनापि निमित्तेन तत्र प्रत्यूहे सति परेद्युः कर्मकालव्याप्तिसंपादनाय पूर्णत्वमभिधायोदयविहीनस्य व्याप्तिबाहुल्यस्य हेयत्वोक्तिव्याजेन तदेव प्रशस्यते—

आदित्योदयवेलायां याऽल्पाऽपि च तिथिर्भवेत् ।
पूर्णा इत्येव मन्तव्या प्रभूतं नोदयं विना ॥ इति ।

यदा पूर्वेद्युः सङ्गवमारभ्य परेद्युरुदयात् प्रागेव तिथिक्षयवशात् प्रतिपत्समाप्ता तदा यद्यपि दिनद्वये सोदयमुहूर्त्तत्रयं नास्ति पूर्वेद्युरेवानुष्ठेयम् ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया यस्यामस्तमितो रविः ॥

इति वचनेन संपाद्यायाः सोदयत्रिमुहूर्त्ताया व्याप्ते विद्यमानत्वात् । परेद्युस्तादृश्या अप्यभावात् । यदा पूर्वेद्युरुदयमारभ्य परेद्युरुदयादूर्ध्वं मुहूर्त्तत्रयं वर्धते तदानीं यद्यपि द्वयो र्दिनयोः सोदयत्रिमुहूर्त्तव्याप्तिरस्ति तथापि पूर्वेद्युरेवानुष्ठानम् । अस्तमयव्याप्तेरधिकत्वात् । अत एव पद्मपुराणेऽभिहितम्—

प्रसंगानुसार खर्वादिवाक्यों की चिन्ता होने दी । इस प्रकरण के अन्तर्गत सूर्योदय में तीन मुहूर्त्त तक व्यप्ति होने वाली प्रतिपद दान और व्रत के लिये ग्रहणीय होती हैं । ऐसे होने पर उदय मात्र को सूचित करने वाला शास्त्रवचन और घटिका मात्र की सूचित करने वाला शास्त्र वचन वैश्वानर अधिकरण में अवगत अवयुत्यानुवाद के न्याय से तीन मुहूर्त्त व्याप्ति की प्रशंसा करते हैं ।

अथवा पूर्वदिन में उदय काल को छोड़कर उपरान्त में संपूर्ण व्याप्ति अगर होती और पर दिन में उदय काल को ही व्याप्ति होती तो उदय के अनन्तर मुख्य रूप से तीन मुहूर्त्त व्याप्ति उभय दिनों में नहीं होती । किन्तु गौण काल व्याप्ति होती हैं । ऐसे होते पर कौन सा दिन ग्रहणीय होता हैं ऐसी चिन्ता आती है । उत्तर ऐसा है कि पूर्व दिन में कर्मकाल की व्याप्ति अधिक होने पर पूर्व दिन का ग्रहण न्यायतः होता है । कुछ नितित्त के कारण अगर पूर्व दिन में अनुष्ठान नहीं किया जा सकता तो पर दिन में कर्मकाल व्याप्ति को संपादन करने के लिये साकल्य वचन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अनुसार तिथि के पूर्णत्व स्वीकार किया जाता हैं। उदय विहीन व्याप्ति (पूर्व दिन) अधिक होने पर भी उसको छोड़ देने के लिये पर दिन की प्रशंसा की जाती है। सूर्योदय काल में जो तिथि अल्प रहती है, वही तिथि संपूर्ण रूप से है ऐसा माना जाता है। उदय को छोड़कर अधिक काल रहने से भी तिथि 'पूर्णा' संज्ञा नहीं रखती है।

जब पूर्वदिन में संगव से लेकर पर दिन में उदय से पहले तिथि क्षय के कारण प्रतिपद अगर समाप्त हो चुकी, इसके कारण दो दिनों में अगर उदय काल में तीन मुहूर्त्त व्याप्ति नहीं है तो पूर्वदिन में अनुष्ठान होता है। जिस तिथि से सूर्य अस्त होते हैं, वही तिथि सकल होती हैं। इस वचन के अनुसार संपादित होने वाली तीन मुहूर्त्त व्याप्ति विद्यमान है। किन्तु पर दिन में ऐसी तिथि नहीं है। जब पूर्वदिन में उदय से लेकर परदिन में उदय के बाद तिथि की अगर तीन मुहूर्त्त वृद्धि होती, तब दो दिनों में तीन मूहूर्त व्याप्ति होने पर भी पूर्व दिन गृहीत होता है, क्योंकि पूर्व दिन में अस्तमय व्याप्ति अधिक है। इस लिये पद्मपुराण में कहा है—

व्रते स्नाने तथा नक्ते पितृकार्ये विशेषतः।
यस्यामस्तं गतो भानुः सा तिथिः पुण्यभाग् भवेत् ॥ इति।

नन्वास्तां सोदयत्रिमुहूर्त्तव्याप्तिरस्तमयव्याप्तिश्च। निर्णयस्तु शुक्लकृष्णपक्षाभ्यां भविष्यति। तथा च मार्कण्डेयः—

शुक्लपक्षे तिथि र्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः।
कृष्णपक्षे तिथि र्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः ॥ इति।

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

वर्धमानेन्दुपक्षस्य उदये पूज्यते तिथिः ॥
यदा चन्द्रः क्षयं याति तदा स्यादापराह्णिकी ॥ इति।

अथवा पक्षस्य वृद्धिक्षयाभ्यां निर्णतव्यम्। तथा च वृद्धवसिष्ठः—

वर्धमानस्य पक्षस्य उदये पूज्यते तिथिः।
यदा पक्षः क्षयं याति तदा स्यादापराह्णिकी ॥ इति।

बौधायनः—

सा तिथिस्तच्च नक्षत्रं यस्यामभ्युदितो रविः।
वर्धमानस्य पक्षस्य हानौ त्वस्तमयं प्रति ॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्रोच्यते। शुक्लपक्षाभ्यां निर्णयो न संभवति। तथा सति बहुवचनबाधप्रसङ्गात्। तथाहि यानि वचनानि पूर्वविद्धायां शुक्लप्रतिपदि उपवासविधायकानि पूर्वमुदाहृतानि तानि बाध्येरन्॥ तथा कृष्णप्रतिपदः परविद्धाया उपोष्यत्वं पूर्वं निर्णीतं तच्च विपरिवर्त्तेत एवमेकभक्तादावपि यथायोग्यं विपरिवृत्तिरुन्नेया। नाऽपि पक्षस्य क्षयवृद्धिभ्यां निर्णयो युज्यते।

व्रत, स्नान, एक भक्त और विशेष रूप से पितृकार्य के लिये जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं, वही तिथि पुण्यदायिनी है। प्रश्न है—तीन मुहूर्त्त तक उदय की और अस्त की व्याप्ति होने दीजिये। निर्णय तो शुक्ल और कृष्ण पक्ष को लेकर होगा। मार्कण्डेय ने कहा है—जिस तिथि में सूर्य उदित होते हैं, वह तिथि शुक्ल पक्ष में और जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं, वह तिथि कृष्ण पक्ष में गृहीत होती है। विष्णुधर्मोत्तर में भी–जिस पक्ष में चन्द्र मण्डल की वृद्धि होती है, उस वर्धमान पक्ष में उदयकालीन तिथि पूज्य होती है। जिस पक्ष में चन्द्रमण्डल का क्षय होता है, उस पक्ष में अपराह्ण व्याप्ति मानी जाती है। अथवा पक्ष की वृद्धि और क्षय के अनुसार निर्णय होना चाहिये। इसलिए वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—वर्धमान अर्थात् शुक्ल पक्ष का उदयव्याप्त तिथि पूज्य अर्थात् मानी जाती है। जब पक्ष क्षय होता है अर्थात् कृष्ण पक्ष में अपराह्णको व्याप्त होनेवाली तिथि गृहीत होती हैं। बौधायन ने कहा है—वर्धमान पक्ष में जिस तिथि और नक्षत्र में सूर्य उदित होते हैं, वही तिथि और नक्षत्र पूज्य होते हैं। जिस हानि पक्ष में अस्त को लेकर तिथि और नक्षत्र पूज्य होते हैं।

यहाँ कहा जाता है—शुक्ल और कृष्ण पक्ष को लेकर निर्णय संभव नहीं है। ऐसा अगर होगा तो बहुवचन की बाधा आयेगी। ऐसे होने से जिन वचनों को पूर्वविद्धा शुक्ल प्रतिपद में उपवास को विधान करने वाले पूर्व से कहे गये हैं, उनकी बाधा हो जायगी। इसी तरह परविद्धा कृष्ण प्रतिपद में उपवास का निर्णय जो पूर्व से हुआ है, उसकी विपरीत स्थिति हो जायगी। ऐसे एकभक्तादि के क्षेत्र में योग के अनुसार परिवर्त्तन मान लिया जायगा। किन्तु क्षयवृद्धि के द्वारा पक्ष का निर्णय उचित नहीं है।

तत्राप्युक्तदोषस्यापरिहार्यत्वात्। यदा शुक्लपक्षस्तिथिवृद्ध्या षोडशदिनात्मको भवति तदा भवन्मते परविद्धायां शुक्लप्रतिपद्युपवासः प्राप्नोति। कृष्णपक्षस्य तिथिक्षयवशाच्चतुर्दशदिनात्मकत्वे पूर्वविद्धायां कृष्णप्रतिपद्युपवासः प्राप्नोति। एवं बाधान्तरमुन्नेयम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्ति च शुक्लकृष्णपक्षवाक्यस्य विनाऽप्यन्यबाधं विषयविशेषः। तथाह्यङ्गिरसा स्मर्यते—

संपूर्णा दशमी कार्या परया पूर्वयाऽथवा।
युक्ता न दूषिता तस्मादिति सा सर्वतोमुखी॥ इति

तत्र शुक्लकृष्णपक्षाभ्यां व्यवस्था कर्त्तव्या। पक्षवृद्धिक्षयवाक्यमपि पूर्वेण समानविषयतया व्याख्येयम्। वर्द्धमानस्य चन्द्रस्य यः पक्षस्तस्येति योजनीयम्। तथा सति शुक्लपक्ष इत्युक्तं भवति। "यदा पक्षः क्षयं याति" इत्यत्रापि पक्षनिर्वाहकश्चन्द्रः क्षयं यातीति व्याख्याने कृष्णपक्ष इति लभ्यते। अतो यथोक्तसोदयत्रिमुहूर्त्तव्याप्तिकृतो निर्णयः सुस्थितः।

अत्राप्येकभक्तवत् षोढा भिद्यते। उदयकाले पूर्वेद्युरेव त्रिमुहूर्त्तव्यापिनी। परेद्युरेव त्रिमुहूर्त्तव्यापिनी। उभयत्रापि त्रिमुहूर्त्तव्यापिनी। नोभयत्र त्रिमुहूर्त्तस्पर्शिनी। उभयत्र साम्येन वैषम्येण वा त्रिमुहूर्त्तवर्त्तिन्येकदेशवर्त्तिनी चेति। अत्र प्रथमपक्षे खण्डतिथित्वाभावान्नास्ति सन्देहः। तृतीयादिषु चतुर्षु पक्षेषु अस्तमयव्याप्तेः कर्मकालबाहुल्यस्य च लाभात् पूर्वेद्युरेवानुष्ठानम्। द्वितीयपक्षे तु क्षयगामित्वे त्रिमुहूर्त्तामप्युत्तरविद्धां परित्यज्य पूर्वेद्युरेवानुष्ठानम्। वृद्धिगामित्वे साम्ये च परेद्युरिति निर्णयः। इष्ट्यङ्गभूता तु प्रतिपत् पर्वनिर्णये वक्ष्यते।

इति दानव्रतनिर्णयः।

वहाँ भी उक्त प्रकार में दोष का परिहार नहीं हो सकता। जब तिथि वृद्धि के कारण शुक्लपक्ष सोलह दिनात्मक होता है, तब आप के मतानुसार परविद्धा शुक्ल प्रतिपद में उपवास माना जाता है। कृष्णपक्ष तिथिक्षय के कारण चौदह दिनात्मक होता है। उसमें पूर्वविद्धा प्रतिपद में उपवास माना जाता है। इसी तरह दूसरी बाधा का परिहार किया जाता है। शुक्लकृष्ण पक्ष वाक्य की दूसरी बाधा के बिना भी विशेष विषय है। उस विषय में अङ्गिरा के वचन स्मरण किया जाता हैं। संपूर्णा दशमी पूर्वविद्धा हो या परविद्धा हो, करनी चाहिये। क्योंकि सब दिशा में उसका मुख रहता है। इसलिये दोष नहीं है।

यहाँ शुक्ल और कृष्ण पक्ष को लेकर व्यवस्था करनी चाहिये। पक्ष का वृद्धिक्षय वाक्य पहले समान विषय के रूप में व्याख्यान होना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वहाँ वर्धमान चन्द्र का जो पक्ष ऐसा योग करना होगा। ऐसे होने पर शुक्ल पक्ष कहा जाता है। "जब पक्ष का क्षय हो जाता है" इस वाक्य में भी पक्ष शब्द से आने वाला चन्द्र क्षय हो जाता है इस प्रकार व्याख्यान में कृष्णपक्ष का लाभ होता है। अतः कही गई जो उदय में तीन मुहूर्त्त व्याप्ति, उससे ही निर्णय सुस्थित हो गया।

यहाँ भी एकभक्त की तरह छ भेद होते हैं। पूर्व दिन के उदय काल में तीन मुहूर्त्त रहने वाली, परदिन में वैसे तीन मुहूर्त्त रहने वाली और उभय दिनों में तीन मुहूर्त रहने वाली उभय दिनों में न रहने वाली, उभय दिनों में समान रूप से और विषम रूप से रहने वाली या तीन मुहूर्त्त रहने पर एक देश को व्याप्त होनेवाली तिथि यहाँ पहला पक्ष में खण्ड तिथि के अभाव से सन्देह नहीं है। तीसरा पक्ष प्रभृति चार पक्षों में अस्तमय व्याप्ति के कर्मकाल का अधिक लाभ से पूर्व दिन में अनुष्ठान होता है। दूसरा पक्ष में क्षय होने के कारण तीन मुहूर्त्तात्मक परविद्धा को छोड़कर पूर्व दिन में अनुष्ठान होता है। वृद्धि और साम्य क्षेत्र में पर दिन में अनुष्ठान हुआ है ऐसा निर्णय होता है। इष्टि के अंगभूत प्रतिपद का निर्णय पर्वनिर्णय के अवसर पर कहेंगे।

इस प्रकार दानव्रतों का निर्णय हुआ॥

उक्तान्युपवासैकभक्तायाचितदानव्रतानि प्रतिपद्विषयाणि। तावता दैवविषयनिर्णयः सुस्थितः।

अथ पित्र्यं निर्णीयते।

तत्र सामान्येनापराह्णिकप्रतिपदि पित्र्यं विहितम्।

प्रतिपत् सैव विज्ञेया या भवेदापराह्णिकी।
दैवं कर्म तथा ज्ञेयं पित्र्यं वा मनुरब्रवीत्॥

इति हि व्यासवाक्यं पूर्वमुदाहृतम्। पित्र्यं च द्विविधम्। एकोद्दिष्टं पार्वणं च। तयोः स्वरूपमाह कण्वः—

एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रकीर्त्तितम्।
त्रीनुद्दिश्य तु यत्तद्धि पार्वणं मुनयो विदुः॥ इति।

तत्र प्रतिपदि मृतस्य मासान्तरवर्त्तिन्यां प्रतिपद्येकोद्दिष्टरूपं मासिकं प्रसक्तम्। संवत्सरान्तरवर्त्तिन्यां तस्यां प्रतिपदि पार्वणरूपमाब्दिकं श्राद्धं प्राप्नोति। तत्र मासिकस्य तद्दिनकर्त्तव्यतामाह याज्ञवल्क्यः—(१।२५६)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मृतेऽहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् ।
प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ॥ इति ।

तेषां च मासिकानामेकोद्दिष्टरूपत्वं पैठीनसिराह—

षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वेद्यु रेव ते ।
मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेऽपि वा ॥
सपिण्डीकरणादर्वाक् कुर्वन् श्राद्धानि षोडश ।
एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि तानि तु ॥ इति

प्रतिपद के अवसर पर उपवास एकभक्त, नक्त, अयाचित, दान और व्रतों के बारे में कहा गया है । इनके माध्यम से दैव विषय का निर्णय हो गया । अब पितरों के लिये निर्णय होता है । साधारणतः प्रतिपद के अपराह्ण पितरों के लिये विहित है । अपराह्ण को व्याप्त होनेवाली प्रतिपद दैव और पित्र्य कर्म के रूप में मानी जाती है । ऐसे मनु ने कहा है । व्यास के यह वचन बहुत पूर्व से कहा गया है । पित्र्य कर्म दो प्रकार का होता है । एकोदिष्ट और पार्वण, इनके स्वरूप कण्व ने कहा है । एक पुरुष को उद्देश्य करके जो किया जाता है वह एकोदिष्ट होता है । तीन पुरुष को उद्देश्य करके जो किया जाता है वह मुनिओं के मतानुसार पार्वण कहा जाता है । प्रतिपद में मृत व्यक्ति का मासिक श्राद्ध दूसरे मासों की प्रतिपदों में एकोदिष्ट विधान से किया जाता है । दूसरे संवत्सरों में उक्त प्रतिपद में किया जाने वाला श्राद्ध पार्वण के रूप में होता है । याज्ञवल्क्य ने मासिक श्राद्ध की कर्त्तव्यता के बारे में कहा है— संवत्सर के प्रत्येक मास में मृत्यु दिन में, संवत्सर में, सपिण्डीकरण के बाद प्रत्येक संवत्सर के मृत्युदिन में और ग्यारहवां दिन में श्राद्ध कर्त्तव्य है । इन मासिक श्राद्धों का अनुष्ठान एकोद्दिष्टविधि के अनुसार करने के लिए पैठीनसि ने कहा है । षाण्मासिक, सांवत्सरिक, ऊनसांवत्सरिक, ऊनषाण्मारिक, बारहवें दिन में होने वाला श्राद्ध सपिण्डीकरण से पहले एकोदिष्टविधान से उन षोडश श्राद्धों का अनुष्ठान करना है ।

अयमर्थः—ऊनषाण्मासिकं सप्तमभासगतमृताहदिनात् पूर्वेद्यु रनुष्ठयम् । ऊनाब्दिकञ्च द्वितीयवत्सरादेर्मृताहदिनात्पूर्वेद्युः कर्त्तव्यम् । मासिकानि तु तत्तन्मासमृताहदिनेऽनुष्ठेयानि । स एव मुख्यः कल्पः । यदा तु द्वादशाहादौ सपिण्डीकरणं तदा तस्मात् पूर्वं यस्मिन् कस्मिन्नपि वा दिने मासिकान्याकृष्यानुष्ठेयानि । सोऽयमनुकल्पः । पक्षद्वयेऽप्येकोद्दिष्टविधानमेव न तु पार्वणविधानमिति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्रेदं चिन्त्यते। किमेकोद्दिष्टेष्वपराह्णव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या, किं वा सायाह्णव्यापिनी उतास्तमयव्यापिनी, आहोस्विन्मध्याह्णव्यापिनीति ? न चात्र पक्षान्तराणि संभाव्यन्ते। तत्प्रापकाभावात्।

ननु युग्मानि वाक्यं तिथिह्रासवृद्धिवाक्यं शुक्लकृष्णपक्षवाक्यं पक्षक्षयवृद्धिवाक्यं कर्मकालव्यातिवाक्यं वा पक्षान्तरप्रापकं भविष्यति। मैवम्। पक्षक्षयवृद्धिवाक्यस्य शुक्लकृष्णपक्षपरत्वेन व्याख्यातत्वात्। शुक्लादिवाक्यं तु पूर्वोत्तरयोस्तिथ्योः शास्त्रान्तरभ्यां प्रातिसाम्ये सति पुरुषेच्छानिवारणाय व्यवस्थापकमित्युक्तम्। तिथिह्रासवृद्धी तु कर्मकालेन बोध्येते। कर्मकालवाक्ये साक्षादेव। "ह्रासवृद्धी न कारणम्" इत्युक्तत्वात् युग्मवाक्यं तु न पित्र्यविषयम्। कर्मकालश्चैकोद्दिष्टस्य नाद्यापि निर्णीतः। अतो न पक्षान्तरसंभवः।

इसका अर्थ यह है—

ऊनषाण्मासिक श्राद्ध सातवां मास के मृताह दिन के पहला दिन में किया जाता है। ऊनसांवत्सरिक श्राद्ध दूसरा संवत्सरका मृताह दिन के पहला दिन में किया जाता है। मासिक श्राद्ध भी उस मासों के मृताह दिन में किये जाते हैं। यह है मुख्य कल्प। जब बारहवां दिनों में सपिण्डीकरण किया जाता है, तब उससे पहले जिस किसी भी दिन में मासिक श्राद्धों का अनुष्ठान होता है। यह है अनुकल्प। दो पक्षों में भी एकोदिष्ट के विधानानुसार श्राद्धों का अनुष्ठान होता है। किन्तु पार्वणविधि के अनुसार नहीं होता है।

यहां इस प्रकार चिन्ता आती है कि—क्या एकोदिष्ट में अपराह्ण को व्याप्त होने वाली तिथि गृहीत होती है या सायाह्न को व्याप्त होनेवाली या अस्तकाल को व्याप्त होने वाली या मध्याह्न को व्याप्त होने वाली ? यहाँ दूसरे पक्षों की संभावना नहीं होती क्योंकि दूसरा पक्ष को प्राप्त कराने वाले वचनों का यहां अभाव है।

प्रश्न आता है—प्रापक रूप से युग्मवाक्य, तिथि ह्रासवृद्धि वाक्य, शुक्लकृष्णपक्षवाक्य अथवा पक्षवृद्धिवाक्य और कर्मकाल व्याप्ति वाक्य भी माने जा सकते हैं। लेकिन ऐसा ठीक नहीं है। पक्षक्षय वृद्धि वाक्य शुक्लकृष्ण पक्ष के लिये व्याख्यात हुआ है। शुक्लादि वाक्य पूर्व और उत्तर तिथि शास्त्रों के द्वारा समान रूप से प्रतिपादित होने पर पुरुष की इच्छा के अनुसार विकल्प को निवारित करने के लिये व्यवस्थापक होता है। तिथि के ह्रास वृद्धि तो कर्म काल में बाधित नहीं होती हैं। क्योंकि कर्म काल वाक्य में ह्रास और वृद्धि कारण नहीं हो सकते हैं, ऐसा स्पष्ट कहा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपन्यस्तेषु तु पक्षेषु प्रथमं तावत् सामान्यविशेषशास्त्राभ्यामपराह्णव्यापिनी प्रतिभाति ।

अपराह्णिकास्तथा ज्ञेयाः पित्र्यर्थेषु शुभावहाः ॥

इति हि निगमवाक्यं पूर्वमुदाहृतम् । हारीतोऽपि—

अपराह्णः पितॄणां तु याऽऽपराह्णानुयायिनी ।
सा ग्राह्या पितृकार्ये तु न पूर्वाह्णानुयायिनी ॥ इति

बृहन्मनुरपि—

यस्यामस्तं रवि र्याति पितरस्तामुपासते ।
तिथिं तेभ्यो यतो दत्तो ह्यपराह्णः स्वयंभुवा इति

तदेतत्सामान्यशास्त्रम् । तिथिमात्र मुपजीव्यप्रवृत्तत्वात् ।

"प्रतिपत्सैव विज्ञेया या भवेदापराह्णिकी" ॥

इति तु विशेषशास्त्रं तिथिविशेषोपजीवनेन प्रवृत्तत्वात् । ताभ्यामुभाभ्यां शास्त्राभ्यां प्रथमपक्ष उत्तिष्ठति । द्वितीयपक्षेऽप्यस्ति शास्त्रद्वयम् । बौधायनः—

उदिते दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ ।
द्विमुहूर्त्तं त्रिरह्नश्च सा तिथिर्हव्यकव्ययोः ॥ इति ।

युग्म वाक्य तो पितरों के लिये नहीं हे । एकोदिष्ट के कर्मकाल तो अब तक निर्णीत नहीं हुआ हैं । अतः दूसरे पक्षों की संभावना नहीं है ।

जिन पक्षों का उपस्थापन हुआ है, उनसे पहला पक्ष सामान्य विशेष शास्त्रवचनों के द्वारा अपराह्ण व्यापिनी प्रतिपद मानी जा सकती है ऐसा प्रतिभात होता है । इस प्रकार अपराह्ण को व्याप्त होने वाली तिथि पितृ के लिये शुभ दायक होती है । इस निगम वाक्य पूर्व से कहा गया है । हारीत ने कहा हे—अपराह्ण पितरों के लिये उपयुक्त काल होता है । इसलिये अपराह्ण को व्याप्त होने वाली तिथि पितृकर्म के लिये ग्रहणीय होती है । पूर्वदिमें अस्त काल को व्याप्त होने पर भी नहीं मानी गयी है ।

वृद्ध मनु ने भी कहा है—जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं, पितरों इस तिथि की उपासना करते हैं । क्योंकि स्वयंभू ब्रह्मा ने अपराह्ण काल पितरों को दिया है । ये सब वचन सामान्यशास्त्र के रूप में माने जाते हैं । तिथि मात्र को लेकर इन वचनो की प्रवृत्ति हुई है । अपराह्ण को व्याप्त होने वाली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिपद मानी गई है। यह वचन तिथि विशेष को लेकर प्रवृत्त होने पर विशेषशास्त्र होता है। इन शास्त्रों से पहला पक्ष उठता है। दूसरा पक्ष में भी दो शास्त्र हैं। बौधायन ने कहा है—सूर्य के उदय काल देवकार्य के लिये और अस्तकाल पितृकार्य के लिए प्रशस्त होते हैं। दिन का दो या तीन मुहूर्त्त काल में व्याप्ति हुई तो हव्य और कव्य के लिए माने जाते हैं।

वचनार्थस्तु पूर्वं व्याख्यातः। तदेतत् सायाह्नव्याप्तेः सामान्यशास्त्रम्। विशेषस्तु पैठीनसिना दर्शितः—

पञ्चमे सप्तमे चैव दशमी च त्रयोदशी।
प्रतिपन्नवमी चैव कर्त्तव्या सम्मुखी तिथिः॥ इति

न चात्रापि प्रतिपदः साम्मुख्यमात्रं प्रतीयते, न तु सायाह्नव्याप्तिरिति शङ्कनीयम्।

सम्मुखो नाम सायाह्नव्यापिनी दृश्यते यदा॥ इति

स्कन्दपुराणे साम्मुख्यस्य व्याख्यातत्वात्। अस्तमयव्यापित्वपक्षो वृद्धयाज्ञवल्क्येन दर्शितः—

देवकार्ये तिथिर्ज्ञेया यस्यामभ्युदितो रविः।
पितृकार्ये तिथिर्ज्ञेया यस्यामस्तमितो रविः॥ इति

तथा दानक्रियायामुदाहृतेषु घटिकाव्याप्तिवाक्येष्वस्तमये घटिका व्याप्तिः पित्र्ये प्रदर्शिता। तदेतदुपन्यस्तं पक्षत्रयमेकोद्दिष्टपार्वणविषयं पित्र्यकर्मसामान्यमुपजीव्य प्रवृत्तत्वात्। एकोद्दिष्टे तु चतुर्थः पक्षो वाचनिकः। तथा च वृद्धगौतमः—

मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथि र्भवेत्।
अपराह्णव्यापिनी या पार्वणे सा तिथिर्भवेत्॥ इति।

शिवराघवसंवादेऽपि —

मध्याह्नव्यापिनी या स्यात् सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत्॥ इति

इस वचन का अर्थ बहु पूर्व से कहा गया है। सायाह्न के स्थल में वह सामान्य शास्त्र वचन होता है। पैठीनसि ने विशेष शास्त्रवचन का दर्शन किया है। पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी, प्रतिपद और नवमी सम्मुखी तिथि होकर माननीय होनी हैं। यहाँ प्रतिपद सम्मुखी होती है ऐसी प्रतीत नहीं होती है। सायाह्न व्याप्ति भी होने के लिये कोई शक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि सायाह्न को व्याप्त होने वाली तिथि सम्मुखी होती है ऐसे स्कन्द-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुराण में साम्मुख्य रूप का व्याख्यान हुआ है। अस्तकाल को व्याप्त होने वाला पक्ष के बारे में याज्ञवल्क्य ने प्रदर्शित किया गया है। जिस तिथि में सूर्य उदित होते हैं वह तिथि दैव कार्य के लिये और जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं, वह तिथि पितृकार्य के लिये मानी जाती है।

इस प्रकार दान क्रिया में उदाहृत व्याप्ति वाक्यों में अस्त के समय में घटिका व्याप्ति पितृकार्य के लिये प्रदर्शित की गयी। क्योंकि इन पक्षों से एकोदिष्ट और पार्वण विषय में पितृकर्म साधारणतः प्रवृत्त होता है। एकोद्दिष्ट में चौथा पक्ष वचन के द्वारा नियत होता है। गौतम ने कहा है—जो तिथि मध्याह्न को व्याप्त होती है वही तिथि पार्वण के लिये मानी जाती है। अपराह्न को जो तिथि व्याप्त होती है, वही तिथि पार्वण के लिये मानी जाती है। शिवराघव संवाद में भी ऐसा कहा गया है—'जो तिथि मध्याह्न-व्यापिनी होती है वही एकोद्दिष्ट में मान्य होती है।'

कर्मकालव्याप्तिशास्त्रेणाप्ययमेव चतुर्थः पक्षः प्राप्यते मध्याह्नस्यैकोद्दिष्टे कर्मकालत्वात्। तथा च हारीतशातातपौ—

आमश्राद्धे तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं तु मध्यमे।
पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्॥ इति

स्मृत्यन्तरं च—

पूर्वाह्णे दैविकं श्राद्धमपराह्णे तु पार्वणम्।
एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्॥ इति

व्यासः—

एकमुद्दिश्य यच्छ्राद्धं दैवहीनं विधीयते।
एकोद्दिष्टं तु तत्प्रोक्तं मध्याह्ने तत्प्रकीर्त्तितम्॥

मध्याह्नश्च सप्तमाष्टमनवममुहूर्त्तात्मकः। ते च मुहूर्त्ता गान्धर्वकुतपरौहिणसंज्ञकाः। तत्रैकोद्दिष्टस्योपक्रमे कुतपस्य पूर्वोत्तरभागाविच्छया विकल्पितौ। तदाह व्यासः—

कुतपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत्।

समाप्तिकालमाह श्लोकगौतमः—

आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः।
विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लंघयेत्॥ इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदेवं कुतपरौहिणयोर्मध्याह्नगतमध्यमचरमभागयोः कर्मकालत्वेन-व्यवस्थितयोः सतोस्तन्मुहूर्त्तव्यापिनी तिथिरेकोद्दिष्टे ग्रहीतव्येति स्थितम् ॥

कर्मकाल व्याप्ति को सूचित करने वाला शास्त्रवचन से यह चौथा पक्ष मिलता है। क्योंकि मध्याह्न काल एकोदिष्ट होता है ऐसा कहा गया है। हारीत और शतातप ने कहा है—आमश्राद्ध के लिए पूर्वाह्न एकोदिष्ट में मध्याह्न, पार्वण में अपराह्न और वृद्धि श्राद्ध के लिए प्रातःकाल निर्दिष्ट हैं। दूसरी स्मृति में भी ऐसा कहा है। व्यास ने कहा है—एक पुरुष को उद्देश्य करके जो श्राद्ध किया जाता है, उसमें वैश्वदेव नहीं होता है। मध्याह्न में एकोदिष्ट श्राद्ध होता है।

मध्याह्न काल सातवां आठवां और नवां मुहूर्त्त को लेकर निर्दिष्ट होता हे। इन मुहूर्त्तों की संज्ञा गान्धर्व, कुतप और रौहिण होती हैं। एकोदिष्ट के उपक्रम में कुतप के पूर्व और उत्तर भाग अर्थात् गान्धर्व और रौहिण मुहूर्त्त विकल्प के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। इसके बारे में व्यास ने कहा है—कुतप का पहला भाग में एकोदिष्ट का प्रारम्भ होता है। आवर्त्तन में भी ऐसा नियम माना जाता है।

समाप्ति काल के बारे में गौतम ने श्लोक कहा है—कुतप से लेकर रौहिण मुहूर्त्त तक काल में पंडित लोगों के द्वारा श्राद्ध किया जाता है। श्राद्ध विधि को जानने वाला विधि पूर्वक श्राद्ध के लिए रौहिण मुहूर्त्त को लंघन नहीं करता है। इसलिए कुतप और रौहिण में मध्याह्न के अन्तर्गत मध्यम और चरमभाग कर्मकाल के रूप में व्यवस्थित होते हैं। इन मुहूर्त्तों को व्याप्त होने वाली तिथि एकोदिष्ट के लिए ग्रहणीय होती है ऐसी स्थिति है।

अत्राप्येकभक्तवद्भेदा अवतारणीयः। तत्र पूर्वेद्युरेव वा मध्याह्न-व्याप्तिरित्यनयोः पक्षयोर्न कोऽपि सन्देहः। उभयत्र तद्व्यापित्वं तत्स्पर्शाभावो वेत्यनयोः पक्षयोः पूर्वेद्युरेवानुष्ठानम्। तथा सति पूर्वोदाहृतान्यपराह्णसायाह्नास्तमयव्याप्तिविषयाणि पित्र्यसामान्यवच-नान्यनुगृहीतानि भविष्यन्ति। उभयत्र साम्येन एकदेशव्याप्तौ खर्वादिवाक्यं द्रष्टव्यम्।

तच्च पार्वणप्रस्तावे योजयिष्यते, वैषम्येणैकदेशव्याप्तौ तु यदा पूर्वेद्युर्महती तदा महत्त्वाऽनुग्रहात् सामान्यवचनानुग्रहाच्च पूर्वेद्यु-रेवानुष्ठानम्। यदा परेद्युरेव महती तदा सामान्यशास्त्रमुपेक्ष्यापि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महत्त्वमेवादरणोयमिति पार्वणश्राद्धनिर्णये वक्ष्यते। अतस्तेनैव न्याये-नात्रापि परेद्युरेवानुष्ठानं द्रष्टव्यम्।

इत्यकोद्दिष्टनिर्णयः।

यहाँ भी एकभक्त की तरह भेदों की अवतारणा होती है। इसमें पूर्वदिन और पर दिन में मध्याह्न व्याप्ति स्थलों में कोई सन्देह नहीं है। उभय दिनों में व्याप्ति और अव्याप्ति से पूर्व दिन में अनुष्ठान होता है। ऐसे होने पर पितृ के लिए पूर्व से उदाहृत किए हुए जो अपराह्न, सायाह्न और अस्त-मय की व्याप्ति को सूचित करने वाले सामान्य वचनों का ग्रहण हो जायगा उभय दिनों में सामान्य रूप से एकदेशव्याप्ति में खर्वादि वाक्य के अनुसार निर्णय होता है।

पार्वण के बारे में भी इसका संयोग होता है। जब विषम रूप से एक देश व्याप्ति होती है, तब पूर्व दिन में अधिक व्याप्ति होने के कारण तिथि अधिक रहती है और सामान्य शास्त्र वचन के अनुग्रह से भी होती है तब सामान्य शास्त्र वचन को लंघन करके अधिक रहने के कारण पर दिन गृहीत होता है। पार्वणश्राद्ध का निर्णय के अवसर पर इस विषय को कहेंगे। अतः इस न्याय से भी पर दिन में अनुष्ठान होता है।

इस प्रकार एकोद्दिष्ट का निर्णय हुआ ॥

अथ पार्वणश्राद्धं निर्णीयते ॥

पर्वण्यमावास्यायां यद् विहितं तत्पार्वणम्। तच्च तत्कालं च शातातप आह —

दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्त्तितम्।
अपराह्णे पितृणां तु तत्प्रदानं विशिष्यते ॥ इति

यद्यप्येतादृशं पार्वणं प्रतिपदि न प्राप्नोति तथापि तद्विकृति-रूपतया त्रिपुरुषोद्देशेन कर्त्तव्यस्याऽब्दिककाम्यश्राद्धादेः पार्वणत्वं व्यवहर्त्तुं शक्यम्। अत एव काण्ववाक्यं पूर्वमुदाहृतम्।

त्रीनुद्दिश्य तु यत्तद्धि पार्वणं मुनयो विदुः ॥ इति

तथा सति प्रतिपदि मृतस्य वत्सरान्तरे तन्मासतत्पक्षवर्त्तिन्यां प्रतिपद्याब्दिकं पार्वणं प्राप्नोत्येव। एतस्यार्थस्य प्रापकं वचनं मल-मासप्रस्तावे दर्शितम्—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन्म्रियते ऽहनि ।
प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः ॥ इति

ब्रह्मपुराणेऽपि—

प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
पितृव्यस्य त्वपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि ॥ इति

काम्यं तु पार्वणमपरपक्षे सर्वासु तिथिषु प्रत्येकं विहितम् । तथा च याज्ञवल्क्यः—

कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून् वै तत्सुतानपि ।
द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफाँस्तथा ॥

अब पार्वणश्राद्ध का निर्णय हो रहा है । पर्व का अर्थ है अमावास्या अमावस्या में विहित होने वाला श्राद्ध पार्वण होता है । इसके बारे में और इसका काल के बारे में भी शातातपने कहा है—दर्श श्राद्ध जो कहा है, वह पार्वण के नाम से प्रसिद्ध है । पितरों के लिए अपराह्ण में होने वाला कर्म यहाँ विशेष होता है । प्रतिपद में ऐसा पार्वण अगर नहीं मिलता तो विकृति के रूप से तीन पुरुषों के उद्देश्य में किए हुये सांवत्सरिक, और काम्य श्राद्धों की संज्ञा पार्वण के रूप से व्यवहृत होती है । अत एव काण्व के वाक्य पूर्व से उदाहृत किया गया है । मुनियों कहते हैं कि तीन पुरुषों के उद्देश्य में किया हुआ श्राद्ध पार्वण होता है ।

इस कारण से प्रतिपद में मृत पुरुष का सांवत्सरिक श्राद्ध दूसरे वर्षों में उस मास और पक्ष के अन्तर्गत प्रतिपद में पार्वण विधि के अनुसार होता है । इस अर्थ के प्रापक वचन मलमास प्रस्ताव में दर्शित किया गया है । जिस मास के जिस पक्ष में जिस तिथि को स्पर्श कर जिस दिन में जिसका देहान्त हो गया हर संवत्सर में वह दिन क्षयाह के रूप में जाना जाता है । ब्रह्म पुराण में भी कहा है—माता और पिता के मृत्यु दिवस में प्रति सांवत्सरिक श्राद्ध किया जाता है । पुत्रहीन पितृव्य और भाई के श्राद्ध भी ऐसा किया जा सकता है । अपर पक्ष में हर तिथि में काम्य पार्वण विहित होता है । याज्ञवल्क्य ने कहा है ।

ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरूप्ये सकुप्यके ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शस्त्रेण तु हतायेे वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ॥ इति मार्कण्डेयोऽपि—

प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा ।
वरार्थिनी तृतीया च चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥
श्रियं प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यतमो नरः ।
गाणपत्यं च सप्तम्यामष्टम्यां बुद्धिमुत्तमाम् ॥
श्रियं नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् ।
वेदांस्तथाप्नुयात् सर्वान् एकादश्यां क्रियापरः ॥
द्वादश्यां जयलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः ।
पूजांमेधां पशून् वृद्धिं स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥
दीर्घमायुर्धनैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् ।
अवाप्नाति न सन्देहः श्राद्धं श्राद्धपरो नरः ॥
युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ।
तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता ॥
श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति श्राद्धकृत्पुरुषः सदा ॥ इति

श्राद्ध देने वाला कन्या कामी कन्या पाता है और पशु, पुत्र, द्यूत, कृषि, वाणिज्य, गोधन, घाड़ा, विद्यासंपन्न पुत्र, स्वर्ण प्रभृति धातुओं, श्रेष्ठ ज्ञाति प्रभृति सभी प्रकार फल भी पाता है। चतुर्दशी को छोड़कर प्रतिपद से लेकर श्राद्ध दिया जाता है। शस्त्रों के द्वारा मृत लोगों के लिये चतुर्दशी में श्राद्ध किया जाता है।

मार्कण्डेय ने भी कहा है—प्रतिपद में धन लाभ, द्वितीया में द्विपद-विशिष्ट प्राणी, तृतीया में वर प्राप्ति, चतुर्थी में शत्रुनाश, पंचमी में श्री प्राप्ति षष्ठी में पूज्यता, सप्तमी में गाणपत्य अष्टमी में बुद्धि, नवमी में श्री, दशमी में पूर्ण काम, एकादशी में वेद, द्वादशी में जय लाभ, त्रयोदशी में प्रजा, मेधा, पशु, वृद्धि, स्वातन्त्र्य, पुष्टि, आयु धन और ऐश्वर्य इस प्रकार फल मिलते हैं। युवा अवस्था में जिसके पिता का देहान्त हो गया, उनकी तृप्ति के लिये चतुर्दशी में श्राद्ध किया जाता है। शौच पूर्वक अमावास्या में श्राद्ध करने से सब प्रकार कामनाओं की पूर्ति होती है।

अतो विकृतिरूपं पार्वणं संभाव्यते प्रतिपदि। तस्य च पार्वणस्योचितां तिथिं निर्णेतुं प्रथमतो विधिनिषेधरूपाभ्यामन्वयव्यतिरेकाभ्या-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनुष्ठानकालो निरूप्यते। तत्र शातातपोक्तो विधिरुदाहृतः। "अपराह्णे पितृणां" त्विति। तथा वाक्यान्तराण्यपि। मनुः— (३।२७८)

तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥ इति

वृद्धमनुहारीतवचने चैकोद्दिष्टप्रस्तावे उदाहृते "अपराह्णः स्वयम्भुवे"ति। "अपराह्णः पितृणा"मिति च। श्रुतिश्च। अपराह्णः पितृणामिति। शङ्खः—

पूर्वाह्णे दैविकं कृत्यमपराह्णे पितृक्रिया।
ग्रहणे निशि वा कुर्यान्न रात्रौ पैतृकं पुनः ॥ इति

स्मृत्यन्तरेऽपि, "अपराह्णे तु पैतृक"मिति। ननु सायाह्नस्यापि कर्मकालत्वं क्वचित् स्मर्यते—

दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तु पुण्याः प्रोक्ता मनीषिभिः।
उदये च तथा पित्र्ये दैवे चैव च कर्मणि ॥ इति

मैवम्। यमेन प्रतिषिद्धत्वात्।

सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्।
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु ॥ इति

तर्हि पञ्चनाडीवचनं निर्विषयं स्यादिति चेन्न। केनापि निमित्तेनापराह्णासंभवे गौणकालाभ्यनुज्ञापरत्वात्। अतएव व्यासः—

इसलिये विकृति के स्वरूप पार्वण की संभावना होती है। प्रतिपद में इस पार्वण तिथि का निर्णय करने के लिये पहले विधि—निषेध और अन्वय—व्यतिरेक के द्वारा अनुष्ठान काल निरूपित किया जाता है। वहाँ शातातप ने कहा गया विधि उदाहरण रूप से प्रदर्शित किया है। "अपराह्णे पितृणां त्विति" इस वचन के अनुसार दूसरे वाक्यों भी मिलते हैं। मनु ने कहा है—इसी तरह श्राद्ध के लिये पूर्वाह्ण से अपराह्ण विशेष रूप से ग्रहण किया जाता है। एकोद्दिष्ट के प्रस्ताव में वृद्धमनु और हारीत के वचन उदाहृत किये गये हैं। "अपराह्णं स्वयंभुवा" एवं "अपराह्णः पितृणामिति" इस प्रकार भी श्रुति कहती हैं, अपराह्ण काल पितरों का है। शंख ने कहा है—पूर्वाह्ण में दैव कार्य और अपराह्ण में पितृकार्य किया जाता है। ग्रहण को छोड़कर रात में पितरों के लिये कुछ क्रिया नहीं की जा सकती।

दूसरी स्मृतिओं में भी कहा है कि अपराह्ण में पैतृक कार्य किया जाता है—"सायाह्न भी कर्म काल के रूप में कहीं पर कहा गया हैं। दैव और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पितृ कार्य के लिये दिन के अन्तिम पांच नाडियाँ पवित्र मानी जाती हैं। उदय में भी ऐसा काल माना जाता है।" ऐसा ठीक नहीं है। क्योंकि यमने इका प्रतिषेध किया है। दिन के अन्तिम तीन मुहूर्त्तों को लेकर सायाह्न होता है। इस समय में श्राद्ध नहीं किया जा सकता। राक्षसी नाम से यह काल विदित है। सब कर्मों के लिये वह काल नहीं माना जाता है। ऐसे होने से "पांच नाड़ी वचन" क्या विषयशून्य हो जाता है? ऐसा नहीं किन्तु कुछ कारण से अगर अपराह्न में श्राद्ध का अनुष्ठान नहीं किया जा सकता तो गौण काल के रूप में यह काल माना जाता है। इस काल में अनुष्ठान करने के लिये यह अनुज्ञा—आदेश वचन है। अत एव व्यास जी ने कहा है—

स्वकालातिक्रमे कुर्याद्रात्रेः पूर्वं यथाविधिः ॥ इति ।

व्याघ्रपादोऽपि[1]—

विधिज्ञः श्रद्धयोपेतः सम्यक् पात्रनियोजकः ।
रात्रेरन्यत्र कुर्वाणः श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ इति ।

ननु सायाह्नेऽपि यदा कथञ्चित् प्रत्यूहस्तदा श्राद्धस्य किं लोप एव, किं वा रात्रावपि कर्त्तुं शक्यते ? तत्र लोप एवेति तावत् प्राप्तम् कुतः। मुख्यकालगौणकालत्वयोः रात्रेर्निषेधात्। मुख्यकालत्वं प्रतिषेधति मनुः—[2]

रात्रौः श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्त्तिता हि सा ।
सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥ इति

न चैवं सति ग्रहणश्राद्धमपि प्रतिषिद्ध्येतेति शङ्कनीयम्। शातातपेन विशेषितत्वात्।

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राहोरन्यत्र दर्शनात् ।
सूर्योदयमुहूर्त्तं च सन्ध्ययोरुभयोस्तथा ॥ इति ।

---

१. मुद्रितव्याघ्रस्मृतौ (B. O. R. 1-1995) नास्ति। याज्ञवल्क्यस्मृतेरपरार्कव्याख्याने (पृ० ४६७), स्मृतिमुक्ताफलस्य श्राद्धकण्डे (पृ० ७०९) वचनमिदमुपलभ्यते। स्मृ० मु० फले 'पात्रे' इति पात्रस्थाने पाठः, अपरार्के नियोजकस्थाने प्रयोजकः, अनुत्तमस्थाने असंशयमिति पाठः।

२. मनुस्मृतौ ३।२४०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गौणकालत्वमपि व्यासव्याघ्रपद्भ्यां पर्युदस्तं¹। "रात्रेः पूर्वं" "रात्रेरन्यत्रे"ति ताभ्यामुक्तत्वात्। तस्मादह्नि श्राद्धाऽसंभवे लोप एवेति प्राप्ते ब्रूमः। न तावद्रात्रौ सर्वात्मना श्राद्धस्य निषेधो वक्तुं शक्यः। आपस्तम्बेन रात्रौ श्राद्धसमाप्त्यभ्युपगमात्। न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे च भोजनसमापनमिति। ननु सन्ध्यासमीपे प्रारब्धस्य रात्रौ समाप्तिप्रसङ्गः। तादृशस्तु प्रारम्भः स्कन्देन निषिद्धः—

यदि अपने कर्म काल अतिक्रान्त हो गया तो रात से पूर्व (सायाह्न) काल में विधि पूर्वक कर्मानुष्ठान किया जाता है। व्याघ्रपाद ने भी कहा है—विधि नियम को जानने वाला श्रद्धा पूर्वक पात्र नियोजन करके रात से भिन्न काल में श्राद्ध करने से उत्तम श्रेय फल पाता है। प्रश्न होता है—सायाह्न में अगर कुछ विघ्न होने पर श्राद्ध का लोप होता है, तो क्या रात में भी किया जा सकता है। लोप नहीं होता है ऐसा मिलता है। क्योंकि मुख्य और गौणके रूप में रात का निषेध कहा गया है। मुख्य काल के रूप में रात का निषेध मनु ने कहा है। रात में श्राद्ध नहीं किया जा सकता। रात राक्षसी कहा गई है। दोनों सन्ध्या में भी नहीं किया जाता है। ऐसे होने पर भी ग्रहण श्राद्ध प्रतिषिद्ध हो जाता है, इस प्रकार शंका नहीं की जाती है।

शातातप ने इस स्थल में कुछ वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है। राहु प्रभृतिओं का ग्रास से ग्रहण को छोड़कर दूसरी रात मे श्राद्ध नहीं किया जाता है। दोनों की सन्ध्या और सूर्योदय मुहूर्त्त में भी श्राद्ध नहीं किया जा सकता। व्यास और व्याघ्रपादों ने गौणकाल पर्युदास के रूप में प्रतिपादित किया है। क्योंकि रात से पूर्व और रात से भिन्न ऐसा कहा गया है। दिन में श्राद्ध न होने पर लोप हो जाता है इसका उत्तर दिया जाता है। सब प्रकार से रात में श्राद्ध का निषेध नहीं कहा जा सकता। रात में श्राद्ध की समाप्ति के बारे में आपस्तम्ब ने कहा है—नक्त में श्राद्ध नहीं किया जाता है, किन्तु आरम्भ होने पर भोजन की समाप्ति रात में की जा सकती है। प्रश्न होता है—सन्ध्या समय में आरम्भकर रात में समाप्ति का प्रसंग आ सकता है। स्कन्दपुराण में उस प्रकार आरम्भ का निषेध कहा गया है—

उपसन्ध्यं न कुर्वीत पितृपूजां कथञ्चन।
स काल आसुरः प्रोक्तः श्राद्धं तत्र विवर्जयेत्॥ इति।

---

१. पर्युदस्तं नाम पर्युदासग्रस्तम्। यथा—
पर्युदासः स विज्ञेयो यस्योत्तरपदेन नञ्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैवम्। सन्ध्यासामीप्यस्य मुख्यकालत्वनिषेधात्। गौणकालत्वं तु पूर्वमभिहितम्। तत्र प्रारब्धस्य रात्रावपि परिसमाप्तिः संभाव्यते।

नन्वेवमपि रात्रौ समाप्तिरेवाभ्यनुज्ञायते, न त्वारम्भ इति चेन्मैवम्। आरम्भस्यापि तया समाप्त्या उपलक्षणीयत्वात्। आब्दिक-श्राद्धपरित्यागे प्रत्यवायबाहुल्यस्मरणात्। तथा च भविष्यत्पुराण-प्रभासखण्डयोः पठ्यते—

मृतेऽहनि पितुर्यस्तु न कुर्याच्छ्राद्धमादरात्।
मातुश्चैव वरारोहे वत्सरान्ते मृतेऽहनि॥
नाहं तस्य महादेवि पूजां गृह्णामि नो हरिः॥ इति

अन्यत्रापि--भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति खगाधिप।
मातापितृभ्यां सततं वर्षे वर्षे मृतेऽहनि।
स याति नरकं घोरं तामिस्रं नाम नामतः॥ इति

अन्यत्रापि —पण्डिता ज्ञानिनो वाऽपि मूर्खयोषित एव वा।
मृताहं समतिक्रम्य चाण्डालाः कोटिजन्मसु॥ इति

मरीचिः--पण्डिता ज्ञानिनो मूर्खास्त्रियो वा ब्रह्मचारिणः।
मृताहं समतिक्रम्य चाण्डालेष्वभिजायते॥ इति।

नन्वेवं सति-

रात्रेरन्यत्र कुर्वाणः श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥

इति स्मरणाद् अपराह्णवन्मुख्यत्वेन सायाह्नवद्गौणत्वेन वा प्रातः-सङ्गवावपि कालौ प्रसज्ज्येयाताम्। नाऽयं दोषः। शिवराघवसंवादे प्रातःकालस्य निषिद्धत्वात्।

किसी भी प्रकार सन्ध्या के समय में पितृपूजा (श्राद्ध) नहीं करनी चाहिये। असुरों के लिये वह काल दिया गया है। उस समय में श्राद्ध को त्याग कर देना उचित है। किन्तु इस प्रकार निर्णय ठीक नहीं है। क्योंकि इस वाक्य में सन्ध्या के नजदीक मुख्यकाल के रूप में निषेध कहा गया है। गौणकाल के रूप में पूर्व से कहा गया है। जिस कर्म का आरंभ हो गया है, उसकी समाप्ति रात में संभावित होती है। प्रश्न होता है—"ऐसे होने पर रात में भी समाप्ति करने के लिये आदेश मिलता है किन्तु आरंभ करने के लिये नहीं मिलता है"। ऐसा ठीक नहीं है। क्योंकि समाप्ति के द्वारा आरंभ का भी उपलक्षण हो जाता है। सांवत्सरिक श्राद्ध का परित्याग से प्रत्यवाय की वृद्धि होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसलिये भविष्य पुराण और प्रभास खण्ड में कहा है—हे महादेवि ! वर्ष के अन्त में पिता और माता के मृत्यु दिवसों में कोई अगर आदर पूर्वक श्राद्ध नहीं करता तो मैं उसकी पूजा को नहीं लेता हूँ और हरि भी नहीं लेते। दूसरा स्थल में भी कहा है—हे खगाधिप ! जो भोजनदाता अपने पिता और माता के लिये निरन्तर हर वर्ष मृत्यु दिवस में श्राद्ध नहीं करता है, वह तामिस्र नामक नरक में पतित होता है। फिर भी दूसरा स्थल में कहा है—पण्डित, ज्ञानी, मूर्ख और स्त्री भी अगर मरण दिन को अतिक्रम करते हैं तो करोड़ जनम तक चांडाल होते हैं।

मरीचि ने कहा है—पण्डितलोग, मानी, मुर्ख, स्त्री और ब्रह्मचारीगण भी मृत्यु दिवस को अतिक्रम करने पर चाण्डाल होकर जन्म लेते हैं। प्रश्न होता है—"रात से भिन्न काल में श्राद्ध करने पर उत्तम श्रेय फल मिलता है" इस स्मृति-वचन से अपराह्न की तरह मुख्य काल और सायाह्न की तरह गौणकाल प्रातः और संगव भी हो जायेंगे।

प्रातः काले तु न श्राद्धं प्रकुर्वीत द्विजोत्तमः।
नैमित्तिकेषु श्राद्धेषु न कालनियमः स्मृतः॥ इति।

यद्यपि सङ्गवो न साक्षान्निषिद्धस्तथापि कुतपमुहूर्त्ते मुख्योपक्रमस्य गान्धर्वमुहूर्त्ते च गौणोपक्रमस्याभिधाने सति अर्थान्निषेधः परिशिष्यते। उपक्रमद्वयं च शिवराघवसंवाद एव दर्शितम्—

ग्रहादिव्यतिरिक्तस्य प्रक्रमे कुतपः स्मृतः।
कुतपादथवाप्यर्वागासनं कुतपे भवेदिति॥

ग्रहो ग्रहणम्। आदिशब्देन संक्रान्त्यादिनिमित्तमुच्यते। तस्य च निमित्ताधीनत्वात् कुतपो न नियन्तुं शक्यते। इतरस्य तु सांवत्सरिकादेरस्ति कुतपनियमः। स च मुख्योपक्रमे नियमः कदाचित् कार्यवशाच्छ्राद्धस्य सहसा करणीयत्वे सति कुतपादर्वाचीनो गान्धर्वोऽप्युपक्रमकालतयाऽभ्यनुज्ञायते। कुतपस्य मुख्यत्वमनेकवचनविहितत्वादवगन्तव्यम्।

तत्र कुतपस्वरूपं भविष्यत्पुराणेऽभिहितम्—

प्रविश्य भानुः स्वच्छायां खड्गवद्यत्र तिष्ठति।
स कालः कुतपो नाम मन्दीभूतस्य संज्ञया॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नारदः—

सन्त्यज्य सप्तमं भागमष्टमं क्रमते यदा।
स कालः कुतपो ज्ञेयो मन्दीभूतस्य संज्ञया॥ इति।

आपस्तम्बः—

सप्तमात्परतो यस्तु नवमात् पूर्वतः स्थितः।
उभयोरपि मध्यस्थः कुतपः स उदाहृतः॥ इति।

इस प्रकार व्याख्यान में कोई दोष नहीं है। क्योंकि शिव-राघव संवाद में प्रातःकाल का निषेध किया गया है। प्रातः काल में उत्तम द्विज श्राद्ध नहीं करता है। नैमित्तिक श्राद्ध के लिये काल का नियम नहीं है। यद्यपि संगव का निषेध साक्षात् नहीं कहा गया है। तथापि कुतप मुहूर्त्त में मुख्य कर्म का आरंभ गान्धर्व मुहूर्त्त में गौण पक्ष में आरंभ विहित होने पर अर्थतः संगव का निषेध आ गया। इन दो उपक्रमों के बारे में शिवराघव-संवाद में कहा गया है। ग्रहण श्राद्ध को छोड़कर अन्य श्राद्धों के आरंभ कुतप में किया जाता है। कुतप से या कुतप से पहले कर्म का प्रारंभ होता है।

ग्रह का अर्थ ग्रहण आदि शब्द से संक्रान्ति प्रभृतिओं को निमित्त कर श्राद्ध किया जाता है। वह निमित्ताधीन होता है। कुतप काल को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। सांवत्सरिक प्रभृति श्राद्धों के लिये कुतप ही नियत हो सकता है। किस समय के अवसर पर कार्य वशतः अगर श्राद्ध शीघ्र किया होगा तो कुतप से पहले गान्धर्व मुहूर्त्त भी उपक्रम काल के रूप में माना जाता है। अनेक वचनों से कुतप काल का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

कुतप का स्वरूप भविष्यपुराण में कहा है—जब अपनी छाया में प्रवेश कर सूर्य खड्ग की तरह रहते हैं, सूर्य की मन्दगति के कारण वह काल कुतप नाम से अभिहित होता है। (कु=क्षीण, तप=सूर्य)। नारद ने कहा है—पन्द्रह भागों से विभक्त दिन के सातवां भाग को छोड़कर आठवां भाग को जब अतिक्रम करते हैं, सूर्य की मन्द गति के कारण वह काल कुतप नाम से अभिहित होता है। आपस्तम्ब ने कहा है—सातवां मुहूर्त्त से परवर्त्ती और नौवां मुहूर्त्त से पूर्ववर्त्ती बीच में रहने वाला मुहूर्त्त कुतप के नाम से उदाहृत किया जाता है।

स च कुतपो मुख्यत्वाय वायुपुराणे प्रशस्यते—

दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभवति भास्करः।
स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुतपात्पूर्वोत्तरयोर्गन्धर्वरौहिणयोर्गौणप्रक्रमकालत्वं सूचयितुं [1]छत्रिन्यायेन मुहूर्त्तत्रयं कुतपशब्देन व्यवजहार नारदः—

मध्येऽह्नस्त्रिमुहूर्त्ते तु यदा भवति[2] भास्करः।
स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ इति।

कुतपे प्रक्रान्तस्य सायाह्नादर्वाचीनः सर्वोऽपि मुख्योऽनुष्ठान-कालः।

तदुक्तं मत्स्यपुराणे—

अह्नो मुहूर्त्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा।
अत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः॥
अष्टमे भास्करो यस्मान्मन्दी भवति सर्वदा।
तस्मादनन्तफलदस्तत्प्रारम्भो विधीयते॥
ऊर्ध्वं मुहूर्त्तात् कुतपाद्यन्मुहूर्त्तचतुष्टयम्।
मुहूर्त्तपञ्चकं ह्येतत् स्वधाभवनमिष्यते॥ इति।

नन्वपराह्णस्यान्तिमो भागो निषिद्धः। तथा च यमः—

चतुर्थे प्रहरे प्राप्ते यः श्राद्धं कुरुते नरः।
आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं दाता तु नरकं व्रजेत्॥ इति

स्मृत्यन्तरेऽपि—

चतुर्थे प्रहरे प्राप्ते यः श्राद्धं कुरुते द्विजः।
तदन्नं राक्षसो भुङ्क्ते निराशाः पितरो गताः॥

इति चेन्नायं दोषः।

कुतप के मुख्यत्व की प्रशंसा वायुपुराण में मिलती है—दिवस के आठवां भाग में सूर्य की गति मन्द हो जाती है। इस लिये इस काल का नाम कुतप

---

१. छत्रिणो गच्छन्तीति शब्दस्य त्रिविधवृत्त्यन्तर्गतलक्षणाया उदाहरणत्वेन काव्यशास्त्रेषु व्यवहारो दृश्यते। धाटिकायां विद्यमानेषु छत्रिषु सत्स्वपि अच्छत्राः सन्ति, किन्तु निखिला धाटिका छत्रिणामिति व्यवहारे कथ्यते। अत्र छत्ररहितानामन्तर्भावेऽपि छत्रिणामाधिक्येन छत्रिणो गच्छन्तीति व्यवहारो यथा प्रकृते गन्धर्वरौहिणयोरन्तर्भावेऽपि कुतपस्य व्यवहारस्तथा। प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्तीति प्रकृतौ बीजम्॥

२. चलति इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इस समय में पितरों को पिंडादि देने से वह अक्षय होता है। कुतप से पूर्व और उत्तर मुहूर्त्तों में गान्धर्व और रोहिण गौण काल के रूप से माने जाते हैं। इस सूचना को प्रकाश करने के लिये छत्रीन्याय से तीन मुहूर्त्तों को लेकर नारद ने कुतप शब्द से प्रकट किया है। दिन के बीच तीन मुहूर्त्तों में सूर्य मन्द हो जाते हैं। वह काल कुतप नाम से विदित है। इस समय में पितरों को देने से अक्षय होता है। कुतप में जिस कर्म का आरंभ होता है उसको अनुष्ठान के लिये सायाह्न से पूर्वकाल माना जाता है।

मत्स्य पुराण में कहा है कि पन्द्रह मुहूर्त्तों को लेकर एक दिवा भाग होता है। इसके आठवां मुहूर्त्त में जिस प्रकार सूर्य मन्द होते हैं, इस प्रकार यह काल अनन्त फल देता है। इस समय में श्राद्ध का प्रारंभ होता है। कुतप मुहूर्त्त से ऊर्ध्व चार मुहूर्त्तों को लेकर इन पांच मुहूर्त्तों में स्वधा वाचन अर्थात् पितृकार्य प्रशस्त है। प्रश्न होता है—अपराह्न के अन्तिम भाग श्राद्ध के लिये निषिद्ध सुना है। इस लिये यम ने कहा है—चौथा प्रहर होने पर जो लोग श्राद्ध करते हैं, वह श्राद्ध आसुर श्राद्ध हो जाता है और श्राद्धदाता नरक को जाता है। दूसरी स्मृति में भी कहा है—चौथा प्रहर होने पर जो द्विज श्राद्ध करता है, उस श्राद्ध अन्न को राक्षस ले जाता है। पितृगण निराश होकर लौट जाते हैं। यदि ऐसा कहा जाय तो इसमें दोष नही है।

इहापराह्णस्यान्तिमेन पादन्यूनमुहूर्त्तेन सह सायाह्नश्चतुर्थप्रहरो भवति। तत्र सायाह्नभागकटाक्षेणायं निषेधो, नत्वपराह्णभागकटाक्षेण। तामेतां विवक्षां विशदीकर्त्तुं यमो वचनान्तरेण सायाह्नं निराचकार। तच्च वचनं पूर्वमुदाहृतम्। नन्वपराह्णस्य मुख्यकालत्वं न प्रतिनियतं शुक्लपक्षे व्यभिचारात्। तथा च मार्कण्डेयः—

शुक्लपक्षे तु पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः।
कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रौहिणं न तु लङ्घयेत् ॥ इति।

नैष दोषः। अत्र शुक्लकृष्णयोः शब्दयोर्दैवपित्र्यपरत्वात्। देवानुद्दिश्य क्रियमाणं दैवम्। तच्च फलकामिनामुत्साहहेतुतया चित्तप्रसादं जनयतीति शुक्लशब्देनाभिधीयते। एवं पितृनुद्दिश्य क्रियमाणं पित्र्यम्। तदपि पितृमरणादिस्मारकतया चित्तकालुष्यं जनयतीति कृष्णशब्देनाभिधीयते। शुक्लस्य दैवस्य कर्मणः पक्षः शुक्लपक्षः। यदा दैवं श्राद्धं करिष्यामीति बुद्धिस्तदेत्यर्थः। एवमितरत्र योजनीयम्। एवं सत्यपराह्णो न पार्वणश्राद्धं व्यभिचरति। "रौहिणं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तु न लङ्घये" दित्येकोद्दिष्टविषयम् । यद्यापाततः प्रतीत एवार्थो वचनस्यास्य परिगृह्येत तदा पूर्वोदाहृतं वचनजातं निखिलमपि व्याकुलीभवेत् । तदेवं पार्वणश्राद्धस्य अपराह्णः कर्मकालः कुतपः प्रारम्भकाल इति ।

यहाँ अपराह्न का पादन्यून मुहूर्त्त जो अन्तिम मुहूर्त्त होता है, उसके साथ मिलकर सायाह्न चौथा प्रहर होता है। सायाह्न को लक्ष्य करके यह निषेध कहा गया है। किन्तु अपराह्न को लक्ष्य कर नहीं कहा गया है। इस विवक्षा को स्पष्ट करने के लिये यम ने दूसरा वचन से सायाह्न सूचित किया है। यह वचन पूर्व से कहा है। फिर भी प्रश्न होता है—अपराह्न को मुख्य काल रूप से ग्रहण करने के लिये कोई नियत व्यवस्था नहीं है। शुक्लपक्ष में इसके व्यभिचार दिखाई पड़ता है। इसलिये मार्कण्डेय ने कहा है—शुक्लपक्ष के पूर्वाह्न में विचक्षण लोग श्राद्ध करते हैं। कृष्ण पक्ष में रौहिण मुहूर्त्त को लंघन न कर अपराह्न में श्राद्ध करते हैं।

इसमें कोई दोष नहीं है। यहां शुक्ल और कृष्ण शब्दों को लेकर दैव कार्य और पितृकार्य के लिये अनुष्ठान कहा गया है। देवताओं के उद्देश्य में किया जाने वाला श्राद्ध दैव श्राद्ध के रूप में है। यह फल-कामना करने वाले लोगों को उत्साह देने के लिये चित्त में प्रसाद देता है। इसलिये शुक्ल शब्द से दैव श्राद्ध कहा गया है। इसी तरह पितरों को उद्देश्य करके किया जाने वाला श्राद्ध पितृश्राद्ध होता है। यह श्राद्ध पितरों के मरण दिन को स्मरण कराकर चित्त में कालुष्य देता है। इसलिये पितृश्राद्ध कृष्ण शब्द से कहा गया है। शुक्ल शब्द से दैव श्राद्ध सूचित होता है। इसका पक्ष शुक्ल पक्ष होता है। जब दैव श्राद्ध करूंगा ऐसी बुद्धि होती है इसके अर्थ में ऐसा कहा गया है। इस प्रकार दूसरे स्थलों में अर्थयोजना करनी चाहिये। ऐसे होने पर अपराह्न में पार्वण श्राद्ध का व्यभिचार हुआ नहीं है। "रौहिण को लंघन नहीं करना है" यह वचन एकोदिष्ट के लिये कहा गया है। आपाततः इस वचन के अर्थ अगर परिगृहीत होता तो पूर्व से कहे गये वचन व्याकुलित हो जायेंगे। इसलिये पार्वण श्राद्ध के लिये अपराह्न ही काल और कुतप प्रारंभकाल होता है।

भवेतामेतौ कर्मतदुपक्रमकालौ, प्रकृते तु सांवत्सरिकादौ प्रतिपत् पूर्वबिद्धा ग्राह्या, उत्तरोत्तरबिद्धेति वीक्षायां देवस्वामी ब्रूते। यस्मिन् काले यद् विहितं तदुपक्रमोपसंहारयुक्तं तस्मिन् काले तस्यां स्थितौ यस्मिन्नहनि तत्संभावयितुं शक्यते तदुत्तरं पूर्वं वा ग्राह्यमिति। यदा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुतपापराह्णोभयव्यापिनी न संभवति, तदा केवलापराह्णव्यापिन्यपि तिथिर्ग्रहीतव्या। पित्र्यर्थे चापराह्णिकीति भविष्यत्पुराणेऽभिधानात्। हारीतोऽपि—

अपराह्णः पितॄणां तु याऽऽपराह्णानुयायिनी।
सा ग्राह्या पितृकार्ये तु न ग्राह्याऽस्तानुयायिनी॥ इति

ननु केवलापराह्णव्यापिनीवत् केवलमध्याह्नव्यापिन्यपि स्मृत्यन्तरे कर्माङ्गत्वेन प्रतीयते—

मध्याह्नव्यापिनी या स्यात् तिथिः पूर्वा परापि वा।
तत्र कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥ इति।

कर्म और आरंभ काल इन दोनों की स्थिति ऐसी हो सकती है। इस प्रकरण में सांवत्सरिक श्राद्ध प्रभृतिओं के लिये प्रतिपद पूर्वविद्धा होकर ग्रहणीय होती है। उत्तरविद्धा के बारे में देवस्वामी ने कहा है, जिस काल में जो विहित होता है, उपसंहार के साथ उसका ग्रहण होता है। उस अवसर पर जिस तिथि में जो कर्म करने के लिये संभावना होती है, उसके उत्तर और पूर्व काल इसके लिये गृहीत होते हैं। जब कुतप और अपराह्ण इन दोनों को व्याप्त होने वाली तिथि की संभावना नहीं होगी तब केवल अपराह्ण को व्याप्त होने वाली तिथि ग्रहणीय होती है। पितरों के लिये अपराह्ण को व्याप्त होने वाली तिथि गृहीत होती है। इस प्रकार भविष्यपुराण में कहा है। हारीत ने भी कहा है—अपराह्ण पितरों के लिये निर्दिष्ट है। अपराह्ण को व्याप्त होनेवाली तिथि पितृकार्य में गृहीत होती है। किन्तु अस्त काल को व्याप्त होने वाली तिथि नहीं मानी जाती है।

यहां प्रश्न है कि केवल अपराह्ण को व्याप्त होनेवाली तिथि की तरह केवल मध्याह्न को व्याप्त होने वाली तिथि को कर्माङ्ग के रूप में ग्रहण करने के लिये दूसरी स्मृति में कहा है—तिथि पूर्वविद्धा हो या परविद्धा हो, मध्याह्न को व्याप्त होने वाली तिथि अगर है तो उस तिथि में कर्मानुष्ठान होता है। ह्रास और वृद्धि यहाँ कारण नहीं हैं।

मैवम्। वचनान्तरसंवादेनाऽस्य वचनस्य एकोद्दिष्टविषयत्वेन एकभक्तविषयत्वेन चोपपत्तेः। अपराह्णव्याप्तिरेकभक्तन्यायेन षोढा भिद्यते। तत्र पूर्वेद्युरेवापराह्णव्याप्तौ यथोक्तवचनेन सा ग्राह्या। परेद्युरेवापराह्णव्याप्तौ यथोक्तवचनात् प्रारम्भकालसद्भावाच्च परा शस्ता। उभयत्रापराह्णव्यापित्वे बौधायन आह—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपराह्णद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या तिथिः ।
क्षये पूर्वा च कर्त्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥ इति ।

अतीतस्य मृतस्य ।

अत्रेदं चिन्त्यते किं मृताहतिथेः प्रतिपदो वृद्धिक्षयाभ्यां निर्णयः ? उतोत्तरस्या द्वितीयाया वृद्धिक्षयाभ्यामिति । प्रतिपदो वृद्धिक्षयाभ्यामिति तावत् प्राप्तम् । खर्वादिवाक्यतुल्यतया प्रतिभासमानत्वात् ।

इस प्रकार का मत ठीक नहीं है । दूसरे वचनों के साथ मिलकर यह वचन एकोद्दिष्ट और एकभक्त विषय में लगता है । एकभक्त न्याय से अपराह्ण व्याप्ति छ प्रकार होती है । पूर्व दिन में अपराह्ण व्याप्ति होने पर वचन के अनुसार गृहीत होती है । पर दिन में अपराह्ण व्याप्ति होने पर वचन के अनुसार आरंभकाल रहता है । इसलिये पर दिन प्रशस्त है । उभयदिनों के अपराह्ण की व्याप्ति के बारे में बौधायन ने कहा है—अतीत तिथि अगर दो दिनों के अपराह्ण में व्याप्त होती है तो क्षय होने पर पूर्व दिन और वृद्धि होने पर परदिन गृहीत होता है । अतीत का अर्थ है मृत । यहाँ एक चिन्ता होती है—क्या मृताह प्रतिपद तिथि वृद्धि-क्षय के अनुसार निर्णीत होती है या परवर्त्ती द्वितीया तिथि के वृद्धि-क्षय के अनुसार निर्णीत होती है । प्रतिपद के वृद्धिक्षय को लेकर ही होता है ऐसा मिलता है । खर्वादि वाक्य के साथ तुलना करने से ऐसा प्रतिभासित होता है ।

तथा हि—

खर्वो दर्पस्तथा हिंस्रस्त्रिविधं तिथिलक्षणम् ।
खर्वदर्पौ परौ कार्यौ हिंस्रः स्यात् पूर्वकालिकी ॥ इति ।

अत्रानुष्ठानाङ्गतिथेरेव धर्माः खर्वदर्पहिंस्राः न तूपरितनतिथिधर्माः । एतच्च दर्शनिर्णये स्पष्टीकरिष्यते । खर्वादिवाक्यवदत्राऽपि ग्राह्यतिथिगतावेव वृद्धिक्षयाविति प्राप्ते ब्रूमः । उत्तरतिथिगतावेवात्र वृद्धिक्षयौ न ग्राह्यतिथिगतौ । कुतः ? द्व्यपराह्णव्यापित्वाभिधानात् पूर्वेद्युरामध्याह्नावसानममावास्या प्रवृत्ता ततोऽपराह्णोपक्रममारभ्य परेद्युरपराह्णावसानपर्यन्तत्वे सति प्रतिपदो द्व्यपराह्णव्यापित्वं भवति तच्च त्रिमुहूर्त्तवृद्ध्या संपद्यते न तु क्षयेण । तथा सति "क्षये पूर्वा तु कर्त्तव्ये"त्येतन्नोपपद्यते । उत्तरतिथिगतवृद्धिक्षयस्वीकारे तु सुतरामिदं वचनमुपपद्यते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा हि यदा परेद्युर्द्वितीया सायाह्नं प्रविशति तदा तिथिवृद्धिः। तत्र परेद्युरनुष्ठानं न्याय्यम्। कुतपमारभ्याशेषमुख्यकालव्यापित्वात्। यदा द्वितीया परेद्युरपराह्णेऽपि कियती क्षीयते तदा प्रतिपत् पूर्वविद्धा कर्त्तव्या। उत्तरविद्धायाः प्रतिपदो ज्योतिःशास्त्रप्रक्रियया अपराह्णव्यापित्वेऽपि पारिभाषिकया स्मार्त्तप्रक्रियया तद्व्यापित्वात्। तथा च स्मर्यते—

इसलिए कहा है—खर्व, दर्प और हिंस्र तीन प्रकार तिथि के लक्षण है। खर्व और दर्प परविद्धा होकर गृहीत होती है। हिंस्र पूर्वविद्धा होकर गृहीत होती है।

यहाँ अनुष्ठान के अंगस्वरूप तिथि के ही खर्व, दर्प और हिंस्र ये धर्म हैं। पूर्वोक्त तिथिओं के धर्म नहीं होते हैं। दर्श निर्णय के अवसर पर यह स्पष्ट हो जायगा। खर्वादि वाक्य की तरह तिथि को ग्रहण करने के लिये वृद्धि-क्षय वाक्य भी मिलता है ऐसा अगर कहा जायगा तो इसका उत्तर ऐसा होगा—परविद्धा तिथि के बारे में वृद्धिक्षय वाक्य की प्रवृत्ति होती है। किन्तु ग्राह्यतिथि के बारे में नहीं। क्योंकि, दो अपराह्णों की व्याप्ति के बारे में यहाँ कहा गया है। पूर्व दिन के मध्याह्न तक अमावास्या थी। उसके बाद अपराह्ण से लेकर परदिन के अपराह्ण तक प्रतिपदा रहती है। इस प्रकार दो अपराह्णों की प्रतिपद व्याप्त होती है। तीन मुहूर्त्तात्मक वृद्धि से ऐसी व्याप्ति संभावित हुई है। क्षय स्थल में इस प्रकार नहीं हो सकती। ऐसे होने पर "क्षये पूर्वा" इस वाक्य की उपस्थिति नहीं होती है। उत्तर तिथि के अन्तर्गत वृद्धि और क्षय के स्वीकार स्थल में इस वचन का अवसर आता है।

इसलिए कहा है—जब पर दिन में द्वितीया सायाह्न में प्रवेश करती है जब तिथि वृद्धि हुई है। इस स्थल में परदिन में अनुष्ठान न्यायसंगत होता है, क्योंकि कुतप से लेकर मुख्य काल को अधिक व्याप्त होकर तिथि रहती है। जब द्वितीया परदिन के अपराह्ण में भी कुछ क्षीण होती है, तब पूर्वविद्धा प्रतिपद गृहीत होती है। ज्योतिषशास्त्र प्रक्रिया के अनुसार उत्तरविद्धा प्रतिपदा अपराह्ण को व्याप्त होने पर भी स्मार्त्त-प्रक्रिया के अनुसार तिथि की पारिभाषिक व्याप्ति नहीं होती है। इसलिए स्मृति में कहा है—

तिथ्यादौ च भवेद्यावान् ह्रासो वृद्धिः परेऽहनि।
तावान् ग्राह्यः स पूर्वेद्युरदृष्टोऽपि स्वकर्मणि॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिथ्यादावित्यादिशब्देन नक्षत्र-योगौ गृह्येते। तिथिनक्षत्रयोगेषु क्षीयमाणेषु स क्षयो यावद्घटिकापरिमितो भवति तावद्घटिकापरिमितः क्षयस्तेभ्यः पूर्वेषु तिथिनक्षत्रयोगेषु ज्योतिःशास्त्रेणादृष्टोऽपि स्मार्त्तपरिभाषया ग्रहीतव्यः। एवं वृद्धिरपि द्रष्टव्या। तथा सति प्रकृतेऽपि द्वितीयाया अपराह्णे यावान् क्षयस्तावान् पूर्वेद्युः प्रतिपदि योजनीयः तथा सत्युत्तरविद्धा प्रतिपद् नापराह्णव्यापिनी ॥ पूर्वविद्धा त्वपराह्णव्यापिनी ॥ सैव ग्रहीतव्या भवति।

नन्वस्मिन् वचने स्वकर्मणीत्युच्यते। ततश्च स्वकर्मनिमित्तो वृद्धिक्षयप्रक्षेप इत्यर्थः संपद्यते। न च प्रकृतं प्रत्याब्दिकं द्वितीयायाः स्वकर्म। अतः कथं तदीयवृद्धिक्षयौ वचनस्यास्य विषयौ भवतः। नैष दोषः। मा भूत् प्रत्याब्दिकं द्वितीयायाः स्वकर्म प्रतिपदस्तु तद् भवत्येव। तथा सति प्रतिपदो यत्कर्म तस्मिन्निमित्तभूते सति तस्यां प्रतिपदि वृद्धिक्षयौ प्रक्षेपणीयाविति वचनार्थः संपद्यते। तौ च वृद्धिक्षयौ प्रक्षेपाधिकरणतिथ्यादेरुत्तरतिथ्यादिगताविति लभ्यते।

परदिन में तिथ्यादि का जितना परिमाण ह्रास और वृद्धि होती है, पूर्व दिन में अपने कर्म में इतना परिमाण करना चाहिए।

तिथ्यादि शब्द से नक्षत्र और योग के ग्रहण भी होता है। क्षय होने वाले नक्षत्र तिथि और योग के स्थल में जितनी घटिका क्षयित होती है, पूर्व तिथि, नक्षत्र और योग के साथ इतनी घटिका ग्रहण करनी चाहिए। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यह न हो सकता, किन्तु धर्मशास्त्र की परिभाषा-दृष्टि से होता है। ऐसी वृद्धि देखनी चाहिये। ऐसे होने पर इस प्रकरण में द्वितीया के अपराह्ण में जितना अंश क्षयित होता है, पूर्व दिन की प्रतिपद में इतना अंश संयोजित करना चाहिये। ऐसे होने से परविद्धा प्रतिपद अपराह्ण को व्याप्त नहीं होती हैं। पूर्वविद्धा तो अपराह्ण को व्याप्त होती है। इस प्रकार प्रतिपद ग्रहणीय होती है।

प्रश्न होता है—इस वचन में "स्वकर्मणि" ऐसा कहा गया है। फिर भी अपने कर्म के लिए वृद्धिक्षय प्रक्षेप होता है, ऐसा अर्थ होता है। किन्तु इस प्रकरण के अनुसार द्वितीया में होने वाला सांवत्सरिक श्राद्ध अपने कर्म के रूप में नहीं ग्रहण किया जाता है। अतः इसकी वृद्धि और क्षय कैसे इस वचन के विषय हो सकता है। होने पर इसमें दोष नहीं है। सावत्सरिक द्वितीया का स्वकर्म न हो, प्रतिपद का तो होगा। ऐसे होने पर प्रतिपद कर्म का निमित्त होती है—ऐसा अर्थ होता है। यह वृद्धि और क्षय प्रक्षेप का अधिकरण भूत तिथि की उत्तरतिथि में अन्तर्गत होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ननु तिथ्यन्तरगतयोर्वृद्धिक्षययोस्तिथ्यन्तरप्रक्षेपे सति ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धिः सर्वत्र विप्लवेत। ततस्तां प्रसिद्धिमुपजीव्य प्रवर्त्तमानः स्मार्त्तनिर्णयः सर्वोऽपि विप्लवेतेति चेत्। मैवम्। न खल्वयं वृद्धिक्षयप्रक्षेपोऽनुष्ठेयतिथिनिर्णयायोपन्यस्यते किं तर्हि शास्त्रान्तरेणाऽनुष्ठेयतिथौ निर्णीतायां तदुपपादनायैतावापाद्यौ वृद्धिक्षयावुपन्यस्येते। यथा दानव्रतयोः शास्त्रान्तरेण त्रिमुहूर्त्तव्यापिन्यां तिथौ निर्णीतायां कर्मकालव्याप्त्यभावशङ्कामपनेतुं "सा तिथिः सकला ज्ञेये"ति अविद्यमानमपि साकल्यमापद्यते। एवमत्राप्यपराह्णद्वयव्यापिनीत्यनेन बौधायनवचनेन ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धं द्वितीयायाः क्षयमुपजीव्य पूर्वविद्धायां प्रतिपदि निर्णीतायां कुतपादिकर्मकालव्यापिन्युत्तरविद्धा प्रतिपत् कुतो न ग्राह्येति शङ्कामपनेतुं तिथ्यादाविति वचनेनोत्तरविद्धायां प्रतिपद्यपराह्णे क्षय आपद्यते। अतो ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धेः स्मार्त्तनिर्णयस्य वा न कोऽपि विप्लवः। यदा दिनद्वयेऽप्यपराह्णमस्पृष्ट्वाऽवशिष्टः किञ्चित् कालं व्याप्नोति तदा पूर्वविद्धा प्रतिपद् ग्रहीतव्या॥

प्रश्न होता है—दूसरी तिथियों में होने वाली वृद्धि और क्षय का प्रयोग अगर दूसरी तिथियों में होता तो ज्योतिशास्त्र की प्रसिद्धि विप्लवग्रस्त हो जायगी। इस कारण से ज्योतिषशास्त्र की प्रसिद्धि को लेकर होने वाला स्मार्त्त-निर्णय विप्लवग्रस्त हो जायगा। किन्तु यह मत ठीक नहीं है। अनुष्ठान योग्य तिथि का निर्णय के लिये इस प्रकार वृद्धिक्षय प्रक्षेप का उपन्यास नहीं किया जाता है। भिन्न शास्त्र के द्वारा अनुष्ठान योग्य तिथि का निर्णय होने के बाद यह वृद्धि-क्षय प्रक्षेप क्या उपन्यस्त किया जाता है ? यथा दान और व्रत के लिये भिन्न शास्त्र के द्वारा तीन मुहूर्त्त तक व्याप्त होने वाली तिथि निर्णीत होने के बाद कर्मकाल व्याप्ति की अभावात्मक शंका को नाश करने के लिये "सा तिथि सकला ज्ञेया" इस वचन के द्वारा अविद्यमान तिथि भी संपूर्ण रूप से रहती है ऐसा साकल्य न्याय से संपादित की जाती है। इसी तरह यहाँ भी होता है। दो अपराह्णों को व्याप्त होने वाली बौधायन के इस वचन से ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध द्वितीया क्षय को उपजीव्य कर पूर्वविद्धा प्रतिपद निर्णीत होती है। इसके बाद कुतप प्रभृति कर्मकाल को व्याप्त होने वाली उत्तरविद्धा प्रतिपद क्यों ग्रहणीय नहीं होती ? ऐसी शंका को निवारित करने के लिये "तिथ्यादौ" इस वचन से उत्तरविद्धा प्रतिपद के अपराह्ण में क्षय आ जाता है। अत एव ज्योतिषशास्त्र की प्रसिद्धि और स्मार्त्त-निर्णय विप्लवित नहीं होते हैं। जब दो दिनों में अपराह्ण को स्पर्श

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न कर अवशिष्ट काल को प्रतिपद व्याप्त होती है, तब पूर्वविद्धा प्रतिपद ग्रहीत होती है।

तदाह मनुः—

द्व्यहेऽप्यव्यापिनी चेत् स्यान्मृताहे तु यदा तिथिः।
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या त्रिमुहूर्त्ता भवेद्यदि ॥ इति।

सुमन्तुरपि—

द्व्यहेऽप्यव्यापिनी चेत् स्यान्मृताहस्य तु या तिथिः।
पूर्वस्यां निर्वपेत् पिण्डमित्याङ्गिरसभाषितम् ॥ इति।

नन्वपराह्णस्पर्शः उभयत्रापि समानः। प्रारम्भकाले तु कुतपे परेद्युः सद्भावो विशिष्यते। ततः परविद्धैव कुतो न ग्राह्येति चेद् गुणाधिक्यादिति ब्रूमः। परेद्यु: कुतपव्याप्तिरेक एव गुणः। पूर्वेद्युस्तु तिथिमूलत्वमस्तमयव्याप्तिश्चेति गुणद्वयम्। मूलस्य प्राशस्त्यं नारदीयपुराणे दर्शितम्—

पैत्र्यं मूलतिथेः प्रोक्तं शास्त्रज्ञैः कालकोविदैः। इति

शिवरहस्यसौरपुराणयोरपि—

प्रायः प्रात उपोष्या हि तिथिर्दैवफलेप्सुभिः।
मूले हि पितृतृप्त्यर्थं पैत्र्यं चोक्तं महर्षिभिः ॥ इति।

अस्तमयव्याप्तेः प्राशस्त्यमाह मनुः—

यस्यामस्तं रविर्याति पितरस्तामुपासते।
स पितृभ्यो यतो दत्तो ह्यपराह्णः स्वयंभुवा ॥ इति।

मनु ने कहा है—जब मृताह तिथि दो दिनों में व्याप्त नहीं होती तब पूर्वविद्धा ग्रहीत होती है, अगर तीन मुहूर्त्त तक रहती है। सुमन्तु ने भी कहा है—आङ्गिरस के मतानुसार मृताह तिथि दो दिनों में व्याप्त नहीं होती, तो पूर्वविद्धा तिथि में पिण्ड-निर्वपण किया जाता है।

प्रश्न होता है—अपराह्ण के स्पर्श उभय दिनों में भी समान होता है। प्रारंभकाल में परदिन के कुतप में तिथि की अवस्थिति विशेष रूप से लक्ष्य की जाती है। इस कारण से परविद्धा क्यों ग्रहणीय नहीं होती? गुण के आधिक्य से निर्णय होता है, ऐसा उत्तर के रूप में हम बोलेगें। पर दिन में कुतप व्याप्ति एक ही गुण के रूप में रहती है, लेकिन पूर्व दिन में तिथि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के मूल और अस्तकाल व्याप्ति ये दो गुण ही रहते हैं। मूल की प्रशस्ति के बारे में नारदीय पुराण में प्रदर्शित किया गया है—

काल को जानने वाले शास्त्रज्ञों ने कहा है कि पितृकार्य के लिये तिथि के मूल ही प्रधान है। शिवरहस्य और सौरपुराण में भी कहा है—दैव कर्म के फल लाभ करने के लिए प्रायः प्रातः रहने वाली तिथि में उपवास किया जाता है। महर्षियों ने कहा है कि पितृतृप्ति के लिए मूल रहने वाली तिथि मानी जाती है। मनु ने असमय व्याप्ति की प्रशस्ति के बारे में कहा है—जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं, इस तिथि में पितर गण उपासना करते हैं. क्योंकि स्वयंभु ब्रह्मा ने पितरों के लिए अपराह्ण दिया गया है।

एतत्प्राप्त्यर्थमेवोत्तरविद्धां प्रतिषेधति व्यासः—

अह्नयस्तमयवेलायां कलामात्राऽपि या तिथिः।
सैव प्रत्याब्दिके श्राद्धे नेतरा पुत्रहानिदा ॥ इति।

नचापराह्णवेलायामविद्यमानतया कर्मकालव्याप्तिरहितायास्तिथेरनुपादेयत्वमिति शङ्कनीयम्। आपाद्यायास्तद्व्याप्तेर्विद्यमानत्वात्। अतएव वसिष्ठः—

पित्र्येऽस्तमयवेलायां स्पृष्टा पूर्णा निगद्यते ॥ इति।

नारदीयपुराणेऽपि—

पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता
पित्र्येऽस्तमयवेलायां स्पृष्टा पूर्णा निगद्यते ॥ इति।

उदाहृताभ्यामस्तमयवाक्याभ्यां कलामात्रवाक्ये नच पूर्वेद्युः सायङ्कालव्याप्तिर्विवक्षिता। परेद्युरपराह्णस्पर्शहीनस्य पूर्वदिने सायं प्रातेरवश्यंभावात्। अन्यथा षण्मुहूर्तक्षयप्रसङ्गात्। एतदेवाभिप्रेत्य गोभिलः—

सायाह्नव्यापिनी या तु पार्वणे सा उदाहृता ॥ इति।

ईदृशे विषये पूर्वविद्धायाः कर्त्तव्यता शिवरहस्य-ब्रह्मवैवर्त्तसौरनारदीयपुराणेषु व्यतिरेकमुखेन दर्शिता—[1]

दर्शं च पूर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम्।
पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ इति।

---

१. तत्सत्त्वे तत्सत्ताऽन्वयः, तदभावे तदभावो व्यतिरेक इति तार्किकाः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नन्वस्त्वेवमुभयत्रापराह्णस्पर्शाभावे तथाऽपराह्णद्वयव्यापिन्यामुत्तरतिथिगतवृद्धिक्षयाभ्यां निर्णयोऽप्यस्तु। उत्तरतिथेः साम्ये तु कथञ्चित्तिथिमूलत्वाऽस्तमयव्याप्तिगुणद्वयवशात् पूर्वविद्धा सा कर्त्तव्या, किं वा कुतपसद्भाववशात् उत्तरविद्धा?

इस प्रकार अर्थ प्राप्त करने के लिए व्यास ने उत्तरविद्धा निषिद्ध की गयी है। दिवाभाग के अस्तमय वेला में जो तिथि कला के परिमाण अगर रहती है तो सांवत्सरिक श्राद्ध के लिए वही तिथि प्रशस्त है, दूसरी तिथि पुत्रहानि कराती है। अपराह्ण में तिथि की अविद्यमानता के कारण कर्मकाल-व्याप्ति रहित तिथि की अनुपादेयता आ जाती है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए। आपाततः तिथि की व्याप्ति विद्यमान रहती है। अत एव वसिष्ठ ने कहा है—पितृकर्म (श्राद्ध) के लिए अस्तमय वेला में केवल स्पर्श से ही तिथि की पूर्णता कही जाती है। नारदीय पुराण में कहा है—मनुष्यों के पारण और मरण में तिथि की तात्कालिक उपस्थिति मानी जाती है। पितृ-कर्म के लिए अस्तमय वेला में केवल मात्र स्पर्श से तिथि पूर्णा कही जाती है। उदाहृत वाक्यों से कलामात्र अवस्थिति को सूचित करने वाले वाक्य में पूर्व दिन की सायं काल व्याप्ति विवक्षित होती है। क्योंकि पर दिन में अपराह्ण स्पर्श न होने से पूर्व दिन के सायं काल में तिथि अवश्य रहती है। अन्यथा छ मुहूर्त्त तक होने वाला क्षय के प्रसंग आ जाता है।

इसको लक्ष्य करके गोभिल ने कहा है--सायाह्न को व्याप्त होने वाली तिथि पार्वण श्राद्ध के लिए उदाहृत की गयी है। शिवरहस्य, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और नारदीय पुराण में व्यतिरेक (जिसके अभाव से जिसका अभाव) पद्धति के द्वारा इस विषय में पूर्वविद्धा तिथि की कर्त्तव्यता के विषय में कहा गया है। अमावास्या और पूर्णिमा पिता के सांवत्सरिक दिन होते हैं। पूर्वविद्धा तिथि में श्राद्ध नहीं करने वाला नरक जाता है।

प्रश्न होता है--उभयदिनों के अपराह्ण में तिथि का स्पर्श न होने पर और होने पर भी उत्तर तिथि के वृद्धि-क्षय के द्वारा निर्णय होने दीजिए। उत्तर तिथि के साम्य रहने से किसी भी प्रकार तिथिमूलत्व और अस्तमय व्यापित्व रूप दो गुणों के कारण पूर्वविद्धा करनी चाहिए या कुतप रहने के कारण उत्तरविद्धा करनी चाहिए?

तत्रापराह्णद्वयस्पर्शाभावविषये न्यायेन पूर्वविद्धायां प्राप्तायां देवस्वामिदेवलादि वचनादुत्तरविद्धेति निश्चयः। वचनं हि न्यायाद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बलीयः। यदा तु दिनद्वयेऽप्यपराह्णैकदेशव्याप्तिस्तदापि वैषम्येण तद्व्याप्तौ महत्त्वेन निर्णेतव्यम्। तदाह मरीचिः—

> द्व्यपराह्णव्यापिनी चेदाब्दिकस्य यदा तिथिः।
> महती यत्र तद्विद्धां प्रशंसन्ति महर्षयः॥ इति।

साम्येनोभयत्रव्याप्तिश्च तत्तिथिगतैर्वृद्धिक्षयसाम्यैस्त्रिधा भिद्यते। तथाहि। पूर्वेद्युरपराह्णस्य द्वितीयघटिकामारभ्य परेद्युरपराह्णस्य चरमघटिकां विहाय अवशिष्टासु पञ्च घटिकासु यदा तिथिर्वर्त्तते तदा पूर्वापराह्णस्य प्रथमघटिकां द्वितीयापराह्णस्य चरमघटिकां च विहायावशिष्टासु पञ्चसु घटिकासु वर्त्तमानत्वात् साम्येनैकदेशव्याप्तिर्भवति। तिथिश्च तदा घटिकाचतुष्टयेन वर्धते यदा पूर्वापराह्णस्य चरमघटिका, उत्तराऽपराह्णस्य प्रथमघटिकायां वर्त्तते। तदापि साम्येन एकदेशव्याप्तिर्भवति। घटिका चतुष्टयेन तदा तिथिः क्षीयते यदा पूर्वापराह्णस्य चरमे घटिकात्रये द्वितीयापराह्णस्य चाद्ये घटिकात्रयेऽपि वर्त्तते तदापि साम्येनैकदेशव्याप्तिस्तदवस्था। तिथिस्तु न वर्द्धते नाऽपि क्षीयते। किन्तु समैव। ईदृशे विषये खर्वदर्पवाक्यान्निर्णयः। तदेवं प्रतिपत्पार्वणरूपमाब्दिकं निर्णीतम्। पार्वणरूपस्य काम्यस्य तु दर्शविकारत्वात् प्रातिस्विकविशेषाभावाच्च वक्ष्यमाणेन दर्शनिर्णयेनैव निर्णयोऽवगन्तव्यः॥

इति श्रीमाधवीये कालनिर्णये प्रतिपन्निर्णयाख्यं तृतीयं प्रकरणम्॥

इस स्थल में दोनों अपराह्नों में तिथि स्पर्श के अभाव विषय का न्याय से पूर्वविद्धा प्राप्त होने पर भी देव स्वामी और देवल के वचनानुसार उत्तरविद्धा तिथि निश्चित होती है। क्योंकि न्याय से वचन बलवान् होता है। जब दिनों में भी अपराह्न के एकदेश में व्याप्ति होती, तब विषमता के कारण इस प्रकार व्याप्ति स्थल में जिस अपराह्न में व्याप्ति अधिक होती है, वह अपराह्न निर्णीत होता है। इस लिये मरीचि ने कहा है—सांवत्सरिक श्राद्ध के लिये जब दो दिनों के अपराह्न को व्याप्त होकर तिथि रहती, उस स्थल में जिस दिन में अधिक व्याप्ति होती; इस प्रकार विद्धा तिथि की महर्षिगण प्रशंसा करते हैं।

उभयदिनों में समान व्याप्ति होने पर तिथिगत वृद्धि, क्षय और साम्य के रूप में तीन प्रकार भेद होते हैं। यथा—पूर्वदिन में अपराह्न की दूसरी घटिका से प्रारंभ होकर परदिन में अपराह्न की अन्तिम घटिका को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छोड़कर अवशिष्ट पांच घटिकाओं में जब तिथि रहती है, तब पूर्वदिन में अपराह्ण की पहली घटिका को और दूसरा अपराह्ण की अन्तिम घटिका को छोड़कर अवशिष्ट पांच घटिकाओं में रहने से समान रूप से एकदेश व्याप्ति होती है। तब चार घटिकाओं से तिथि की वृद्धि होती है जब पूर्वदिन में अपराह्ण की अन्तिम घटिका और परदिन के अपराह्ण की पहली घटिका में तिथि रहती है, इस स्थल में भी समान रूप से एकदेश व्याप्ति होती है। चार घटिकाओं से भी तिथि का क्षय तब होता है जब पूर्वदिन के अपराह्ण में अन्तिम तीन घटिकाओं और परदिन के अपराह्ण में पहली तीन घटिकाओं में भी तिथि रहती है। इस स्थल में भी समान रूप से एकदेश व्याप्ति की वही अवस्था होती है। तिथि की वृद्धि नहीं होती या क्षय भी; किन्तु समान रहती है। इस विषय में खर्व-दर्प वाक्य के अनुसार निर्णय होता है। इस प्रकार प्रतिपद में होने वाला सांवत्सरिक पार्वण श्राद्ध का निर्णय हुआ। पार्वण रूपक काम्य श्राद्ध दर्शश्राद्ध की विकृति रूप होने से विशेष वचन या विशेष व्यवस्था का अभाव से दर्श निर्णय के अनुसार निर्णीत होता है।

इस प्रकार माधवीय काल-निर्णय में प्रतिपद्-निर्णय नामक
तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्थप्रकरणम्

अथ द्वितीयामारभ्य पर्वावसानाश्चतुर्दश तिथयोऽस्मिन् प्रकरणे निर्णीयन्ते। प्रथमद्वितीयादीनां पञ्चदशकलानां क्रमेण चन्द्रमण्डलप्रवेश-निर्गमनाभ्यां शुक्लकृष्णपक्षयोःप्रतिपद्द्वितीयादिनामधेयास्तिथयो भवन्ति। तत्र प्रतिपदि यो निर्णयः पूर्वप्रकरणेऽभिहितः स एवोत्तरासु सर्वासु तिथिषु सामान्येन[1] सञ्चारयितव्यः। विशेषस्तु तत्राभिधास्ये। प्रतिपदि दैवं पित्र्यं व्यवस्थापितम्। दैवं षड्विधम्। उपवासैकभक्तनक्ता-याचितदानव्रतभेदेन तीर्थस्नानजपहोमादयस्तु व्रतशब्देनैव संगृहीताः। पित्र्यं द्विविधम्। एकोद्दिष्टं पार्वणं चेति। तत्र सर्वत्र कर्मकालव्याप्ति युक्ताया एव तिथेरनुष्ठानाङ्गत्वं स्मृतिष्वभिप्रेतम्। कर्मकालश्च द्विविधो मुख्यो गौणः। तिथिव्याप्ति र्द्विविधा। स्वाभाविकतिथिव्याप्तिः साक-ल्यापादिततिथिव्याप्तिश्चेति।[2] तद्यथा, यदा सङ्गवपर्यन्ताऽमावास्या तदानीमुपरितनो मध्याह्नो मुख्ययैव प्रतिपदा व्याप्तो भवति।

यदा त्वपराह्णादिमारभ्य तिथिः क्षयवशात् परेद्युः सङ्गवान्ता प्रतिपद्भवति, तदा पूर्वेद्यु गौणकालव्याप्तिमुपजीव्यैकभक्तानुष्ठानाय तत्स्वीकारे सति मध्याह्नेऽवश्यानुष्ठेयत्वात्तत्रस्वाभाविकप्रतिपद्व्याप्त्यभावेऽपि साकल्यवचनापादितप्रतिपद्व्याप्तिः स्वीकृता। एवं च सति कर्मकालव्याप्तौ सर्वस्मृतीनामत्यन्तनिर्बन्धदर्शनात् कर्मकाल-व्याप्तिशास्त्र[3]मितरेभ्यः प्रबलमिति निश्चीयते। तदनुसारेण द्वितीयाद्या अपि तिथय उपवासादौ दैव एकोद्दिष्टादौ पैत्र्ये च कर्मकालव्याप्तियुक्ताः स्वीकर्त्तव्याः। उपवासस्तु सर्वतिथिषु नारदीये दर्शितः—

इस प्रकरण में द्वितीया से लेकर पर्व प्रकरण की समाप्ति तक चौदह तिथिओं का निर्णय हो रहा है। प्रथम-द्वितीय प्रभृति पन्द्रह तिथियों का चन्द्रमण्डल में प्रवेश और निर्गम के द्वारा क्रमानुसार प्रतिपद्-द्वितीया प्रभृति नाम होते हैं। पूर्व प्रकरण में प्रतिपद् के बारे में जो निर्णय अभिहित हुआ है दूसरी सब तिथियों में समानरूप से उसकी रीति लागू होगी। उसमें जो

---

१. साम्येन इति पाठान्तरम्।

२. स्वाभाविकतिथिव्याप्तिर्ज्योतिःशास्त्रगोचरा, साकल्यापादिततिथि-व्याप्तिर्धर्मशास्त्रे प्रसिद्धा। ३. शास्त्रं नाम वचनम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेष है, उसको हम बोलेंगे। प्रतिपद में दैव और पितृकर्म के बारे में व्यवस्था की गई है। दैव कर्म छ प्रकार होते हैं। उपवास एकभक्त, नक्त, अयाचित, दान और व्रत उसके भेद हैं। तीर्थ, स्नान, जप और होम प्रभृति व्रत शब्द के द्वारा संगृहीत होते हैं। पितृकर्म दो प्रकार होते हैं। एकोद्दिष्ट और पार्वण। इन सब स्थलों में कर्मकाल को व्याप्त होनेवाली तिथि ही अनुष्ठान का अङ्गरूप से स्मृतियों में अभिप्रेत की गयी है। मुख्य और गौण के भेद से कर्मकाल दो प्रकार होता है। तिथि व्याप्ति दो प्रकार होतो है। अपनी स्वाभाविक रीति से तिथि व्याप्ति और साकल्य वचन से प्रतिपादित तिथि व्याप्ति जब संगव तक अमावास्या रहती, तब इस समय के बाद में होनेवाला मध्याह्न मुख्य प्रतिपद से व्याप्त होता है।

जब अपराह्न प्रभृति से लेकर तिथिक्षय के कारण परदिन में सङ्गव के अन्त तक प्रतिपद रहती है, तब पूर्वदिन में गौणकाल व्याप्ति को आश्रय कर एकभक्त का अनुष्ठान के लिये उसका स्वीकार होने पर मध्याह्न में ही अनुष्ठान हो सकता है। इसलिये इस स्थल में स्वाभाविक रीति से प्रतिपद की व्याप्ति के अभाव होने पर भी साकल्यवचन के द्वारा प्रतिपादित प्रतिपद की व्याप्ति स्वीकृत होती है। ऐसे होने से कर्मकाल की व्याप्ति के ऊपर सब स्मृतियों की व्यवस्था निर्भरशील रहती है। इस कारण से कर्मकाल व्याप्ति को प्रतिपादित करने वाला शास्त्र वचन दूसरे शास्त्रों से प्रबल है ऐसा निश्चित होता है। इसके अनुसार द्वितीया प्रभृति तिथियों, उपवास दैवकार्य, एकोद्दिष्ट और पितृकार्य में भी कर्मकालव्याप्ति के साथ युक्त होने पर ही स्वीकृत होती हैं।

शुक्लान् वा यदि वा कृष्णान् प्रतिपत्प्रभृतींस्तिथीन्।
उपोष्यैव बलिं दत्त्वा विधिना ह्यपरे दिने॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ इति

उपवासस्याहोरात्रः कर्मकालः। तस्मात् तद्व्यापिनी तिथिर्ग्राह्या। तदसंभवे खण्डातिथिर्ग्राह्येति निरूप्यते। तत्र च सूर्योदये त्रिमुहूर्त्ता ततोऽधिका वा तृतीया भवति। सेयमुभयविद्धा द्वितीया। तत्र वेधकतिथेरुदयेऽस्तमये वा त्रिमुहूर्त्तत्वं वेधप्रयोजकं न तु ततो न्यूनत्वम्। तदेव पैठीनसि वाक्येन पूर्वमुदाहृतम्। वेध्यतिथेश्च त्रिमुहूर्त्तसद्भावोऽपेक्षित इति द्विमुहूर्त्तत्वं त्रिरह्नश्चेत्यनेन सुमन्तुवचनेन दर्शितम्। उदयास्तमययोरेव वेध इत्ययमर्थः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके ।

सब तिथिओं में अनुष्ठान योग्य उपवास के बारे में नारद पुराण में कहा गया है—शुक्ल हो या कृष्ण प्रतिपद हो, विधि पूर्वक बलि (पूजा) दान करके अगर उपवास किया जाय, और पर दिन में ब्राह्म भोजन के साथ की व्रत समाप्ति होती है तो सब प्रकार पापों से मुक्ति मिलती है ।

अहोरात्र उपवास का कर्मकाल होता है । इस लिये अहोरात्र को व्याप्त होने वाली तिथि उपवास के लिये ग्रहणीय है । इसके अभाव से खण्ड तिथि का निरूपण किया जाता है । इस स्थल में सूर्योदय के साथ तीन मुहूर्त्त या इससे अधिक काल तक तृतीया रहती है । यह उभयविद्धा द्वितीया होती है । वेध करने के लिये उदय और अस्त के समय वेधक तिथि की स्थिति तीन मुहूर्त्त तक होनी चाहिये किन्तु इनसे कम नही मानी जाती है । पूर्व से उदाहृत पैठिनसि का वाक्य से यह विषय जाना जाता है । वेध्य तिथि की अवस्थिति तीन मुहूर्त्त तक होनी चाहिये । इसके बारे में "द्विमुहूर्त्तत्वं" इस सुमन्तु के वचन में प्रदर्शित किया गया है । उदय और अस्त के समय वेध है, यह इसका अर्थ होता है । 'उदय काल में अगर वेध होता तो तिथि दैव कार्यों' के लिये मानी जाती है, किन्तु पितृकार्यों के लिये विपरीत होता है अर्थात् अस्तमय वेध माना जाता है ।

इत्यादिभिः कात्यायनवचनैरवगन्तव्यः । एवं च सति यथोदाहृते पूर्वविद्धोत्तरविद्धे ये द्वितीये तयोरुत्तरविद्धा द्वितीयोपोष्या युग्माग्निवाक्येनान्वय[1]व्यतिरेका[2]भ्यामुत्तरविद्धायाः प्राशस्त्याभिधानात् । यद्यप्युपोष्यत्वं साक्षान्नाभिहितं तथापि कर्मान्तर[3]विशेषस्यानुपादाना दुपवासविषयत्वं परिशिष्यते । तथाहि । न तावत् पित्र्यविषयत्वं संभवति । व्यासेन युग्मादिशास्त्रस्य खर्वादिशास्त्रस्य च दैवपित्र्यविषयत्वेन व्यवस्थापितत्वात् । नाऽप्येकभक्तनक्तविषयत्वम् । तयोर्मध्याह्नप्रदोषव्याप्त्यधीनत्वेन युग्मादिशास्त्रानधीनत्वात् ।

---

१. तत्सत्त्वे तत्सत्ता अन्वयः । २. तदभावे तदभावो व्यतिरेकः ।

३. अन्यत् कर्म कर्मान्तिरम् एकं कर्म इतरस्मात् कर्मणो भिद्यते शब्दान्तरात्, अभ्यासात्, संख्यया, संज्ञया, गुणात्, प्रकरणान्तराश्चेति । श्राद्धप्रदीपे मत्कृता रश्मिः । पृ–५४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार कात्यायन वचनों से मालूम पड़ता है। ऐसे होने से पूर्व से उदाहृत पूर्वविद्धा और उत्तरविद्धा–ये दो प्रकार द्वितीया में उत्तरविद्धा द्वितीया उपवास में गृहीत होती है। इसके बारे में युग्मवाक्य के द्वारा और अन्वय व्यतिरेक उपायों से उत्तरविद्धा की प्रशस्ति मिलती है। अगर यहाँ उपवास के बारे में साक्षात नहीं कहा है, तथापि दूसरे कर्मों को विशेष रूप से अभिहित नहीं किया है। इस लिये उपवास के पक्ष में इसकी संलग्नता है ऐसा परिशेष में स्फुटित होता है। फिर भी पितृकार्यों के बारे में यह नहीं लगता है। क्योंकि व्यासजी ने युग्म वचन और खर्वादि वचन क्रमानुसार दैव और पितृ के लिये व्यवस्थापित किये हैं। फिर एक भक्त और नक्त व्रत के बारे में भी नहीं लगता है। क्योंकि एक भक्त का कर्मकाल मध्याह्न और नक्त का कर्मकाल प्रदोष हैं। इस कारण से युग्म वचन के अधीन यह नहीं होता है।

अयाचितस्य तूपवासवदनुष्ठेयत्वेन न पृथग्विषयत्वम्। न च दानादिविषयत्वम्। दानादेः पौर्वाह्णिकतिथौ कर्त्तव्यतया निर्णीतत्वात्। अत उपवासविषयत्वं परिशिष्यते। कदाचिदेकभक्तादितिथौ युग्मादि-शास्त्रस्य संवादो भवति। तदा तच्छास्त्रमुपोद्बलकं भवतु, न वयं वारयामः। वचनान्तरे तु युग्मादितिथेरुपोष्यत्वं साक्षात् प्रतीयते। तथा च प्रतिपत्प्रकरणे प्रतिपदमावास्यायुग्मस्यायुग्मस्योपोष्यत्व-वचनमुदाहृतम्। तत्रापि युग्मत्वाभिप्रायेणैव द्वितीयायाः परविद्धाया उपोष्यत्वं भृगुस्मृतिविष्णुधर्मोत्तराभ्यां दर्शितम्—

एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी।
त्रयोदशी चतुर्थी च उपोष्याः स्युः परान्विताः॥ इति

यदा पूर्वेद्युरुदयस्योपरि त्रिमुहूर्त्तं वर्धते तदा पूर्वेद्युरेवोपवासः। न च उदाहृतेन परान्विता इति वचनेन विरोधः शङ्कनीयः। परा-न्वितपूर्वान्वितयोः प्रसक्तयोः सतोरस्य वचनस्य नियामकत्वात्। न चात्र परान्वितत्वं प्रसक्तमस्ति। पूर्वस्य दिनस्य संपूर्णतिथित्वात् संपूर्णखण्डयोः संपूर्णस्यासन्देहत्वेन प्रबलत्वात्।

उपवास की तरह अयाचित का अनुष्ठान होता है। इस लिये इसका अलग रूप से उपस्थान नहीं किया है। दान प्रभृति के विषय में भी नहीं कहा गया है। क्योंकि पूर्वाह्न को व्याप्त होने वाली तिथि में दान प्रभृतियों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुष्ठान के लिये निर्णय हुआ है। अत एव उपवास विषय ही यहाँ परिशेष में रह गया है। कभी-कभी एकभक्त प्रभृति का अनुष्ठान के लिये निर्णीत तिथि के बारे में युग्म वचनों का मेल मिलता है। इस स्थल में यह शास्त्र उपोद्बलक हो, यहाँ हम नहीं वारित करेंगे। किन्तु दूसरे वचनों के स्थल में युग्मवचन के अनुसार निर्णीत तिथि में उपवास का अनुष्ठान साक्षात् प्रतीत होता है। इसी तरह भी प्रतिपद प्रकरण में प्रतिपद अमावास्या का युग्म और अयुग्म के बारे में उपवास करने के लिये वचन उदाहृत हुआ है। वहां भी युग्मता को उद्देश्य करके परविद्धा द्वितीया में उपवास का अनुष्ठान भृगुस्मृति और विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रदर्शित किया है। यथा—

एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, द्वितीया, चतुर्दशी, त्रयोदशी और चतुर्थी परविद्धा होकर उपवास योग्य होती हैं।

जब पूर्वदिन के उदय से लेकर परदिन का उदय के ऊपर तीन मुहूर्त्त तक तिथि की वृद्धि होती है, तब पूर्वदिन में उपवास होता है। किन्तु उदाहृत परविद्धा वचन के साथ इसका विरोध है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये? क्योंकि परविद्धा और पूर्वविद्धा वचन जब एक जगह प्रसक्त होते हैं, तब यह वचन नियामक होता है। यहां तो परविद्धा वचन की प्रसक्ति नहीं है। पूर्वदिन में तिथि की संपूर्ण अवस्थिति के कारण संपूर्ण और खण्डा तिथि में संपूर्ण व्याप्ति में सन्देह नहीं है। इसलिये यह प्रबल होता है।

[1]असञ्जातविरोधित्वकृत्स्नकर्मकालव्याप्तिभ्यां पूर्वदिनस्यैव प्राबल्यम्। तस्मात्तत्रैवोपवासः। ननु पूर्वदिनोपवासं प्रतिषेधति व्यासः—

तृतीयया युता कार्या द्वितीया न तु पूर्वया॥ इति।

मैवम्। अस्य वचनस्य खण्डतिथिविषयत्वेन संपूर्णतिथावप्रवृत्तेः। खण्डतिथिविषयत्वं च पूर्वया युता नैव कार्येत्यभिधानादवगम्यते। ननु खण्डतिथावपि द्वितीया पूर्वविद्धैवोपोष्या।

प्रतिपत्सद्वितीया स्याद् द्वितीया प्रतिपद्युता॥

इत्यापस्तम्बेन प्रतिपद्द्वितीययोर्युग्मत्वाभिधानात्। एतदेव

---

१. पूर्वतोऽविचारितस्य वस्तुनो नूतनतयाऽभिक्रमणेन विरोधिनोऽभावतयाऽसञ्जातविरोधित्वं फलति उपक्रमेऽयं विषयः स्फुटमवगम्यते। प्रकृतो तिथेः प्रारंभाद् पूर्णतयाऽवस्थित्या विरोधिनोऽप्रजननात् असञ्जातविरोधित्वमायाति। स्कन्दपञ्चमीविचारे विषयोऽयं दृष्टः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनमुपजीव्य कृष्णप्रतिपत् परविद्धैवोपोष्येति पूर्वं निर्णीतम्। एवं तर्हि द्वितीयापि क्वचित् पूर्वविद्धा भवतु। तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

प्रतिपत् संमुखी कर्या या भवेदापराह्णिकी।
पूर्वाह्णिकी च कर्त्तव्या द्वितीया तादृशी विभो॥ इति।

तादृशी [1]संमुखी पूर्वयुतेत्यर्थः। पूर्वेद्युरुदये मुहूर्त्तं परित्यज्यावशिष्टपूर्वाह्णसबन्धिनी यदा भवति तदा वेधकारिण्याः पूर्वतिथेर्मुहूर्त्तत्रयाभावेन वेद्धुमसामर्थ्यात् स्वयं खण्डापि सती संपूर्णवत् पूर्वत्रोपवासे युज्यते।

अतंजात विरोधिता और संपूर्ण काल व्याप्ति इन दो कारणों से पूर्वदिन की प्रबलता प्रतीत होती है। अतः उस दिन में ही उपवास होता है। यहाँ एक प्रश्न आता है कि व्यास के पूर्वदिन में होने वाला उपवास प्रतिषिद्ध किया है। यथा—तृतीया के साथ रहने वाली द्वितीया ही ग्रहणीय होती है, किन्तु पूर्व तिथि के साथ नहीं।

यह मत ठीक नहीं है। क्योंकि खण्डा तिथि के विषय में इस वचन की प्रवृत्ति होने से संपूर्ण तिथि के बारे में इसकी प्रवृत्ति नहीं होगी। पूर्वतिथि के साथ युक्त द्वितीया में नहीं करनी चाहिये इस प्रकार उक्ति से खण्ड तिथि विषय स्पष्ट अवगत होता हैं। फिर भी प्रश्न आता है कि खण्डतिथि होकर भी पूर्वविद्धा द्वितीया उपवास के लिये प्रशस्त है। यथा—द्वितीया के साथ प्रतिपद और प्रतिपद के साथ द्वितीया ग्रहणीय होती है। इस प्रकार आपस्तम्ब के वचनानुसार प्रतिपद और द्वितीया की युग्मता कहीं गयी है। इस वचन को आश्रय कर कृष्णपक्ष की प्रतिपद उपवास के लिये परविद्धा ही मानी जाती है, ऐसा पूर्व से निर्णय किया है। इसी तरह द्वितीया भी कहीं पर पूर्वविद्धा हो। इसके बारे में स्कन्दपुराण में कहा है—

अपराह्ण को व्याप्त होने वाली संमुखी प्रतिपद माननीय है। इसी तरह पूर्वाह्ण को व्याप्त होने वाली द्वितीया माननीय होती है।

इसी तरह का अर्थ है संमुखी। पूर्वदिन के उदय में एक मुहूर्त्त छोड़कर जब अवशिष्ट पूर्वाह्ण को व्याप्त होती है, तब वेध कराने वाली तिथि की तीन मुहूर्त्त तक अवस्थिति का अभाव होने पर खण्डा तिथि होती है। खण्डा तिथि होने पर भी संपूर्ण तिथि की तरह पूर्वदिन में उपवास युक्तितः होता है।

१. संमुखीनाम सायाह्णव्यापिनी दृश्यते यदा॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्र द्वितीया नवधा भिद्यते। पूर्वेद्युरुदयमारभ्य प्रवृत्ता, उदयं परित्यज्य प्रवृत्ता, पूर्वाह्णं सर्वं परित्यज्य प्रवृत्तेति त्रयो भेदाः। तेष्वेकैकस्य परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तत्वतन्न्यूनत्वशून्यत्वैस्त्रैविध्ये सति मिलित्वा नवविधत्वं संपद्यते। अत्र पूर्वेद्युरुदयमारभ्य प्रवृत्तायाः संपूर्णत्वेन परेद्युर्मुहूर्त्तत्रयत्वतन्न्यूनत्वशून्यत्वेषु त्रिष्वपि पक्षेषु विवादाऽविषयत्वत् पूर्वत्रैवोपवासो युक्तः।

उदयं परित्यज्य कियत्पूर्वाह्णभागं प्रक्रम्य प्रवृत्तायाः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्ततायां सत्यपि परयुतोपवाससंभवे तां परित्यज्य पौर्वाह्णिकवचनेन पूर्वेद्युरेवोपवासो न विधीयते। परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तन्यूनत्वे च वेधकारिण्यास्तृतीयायाः सत्यपि वेद्धुं सामर्थ्ये वेध्याया द्वितीयायास्त्रिमुहूर्त्तत्वाभावेन वेधयोग्यत्वाभावात् तत्रोपवासो न प्रसक्तः।

अतः परिशेषात् पूर्वाह्णवाक्याच्च पूर्वत्रैवोपवासः। पूर्वेद्युः पूर्वाह्णं सर्वं परित्यज्य प्रवृत्तायाः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्ततयोभयत्र तिथिसत्त्वात् कुत्रोपवास इति सन्देहे सति व्यासेनोत्तरदिनविधानात् पूर्वदिननिषेधाच्चोत्तरत्रोपवासः। न चात्र शुक्लकृष्णव्यवस्था शङ्कनीया।

यहाँ द्वितीया नौ प्रकार की होती है। पूर्व दिन में (१) उदय से लेकर प्रवृत्त होने वाली (२) उदय को छोड़कर प्रवृत्त होने वाली (३) संपूर्ण पूर्वाह्ण को छोड़कर प्रवृत्त होने वाली इस प्रकार यह भेद तीन प्रकार होते हैं। उनमें एक एक प्रकार परदिन में तीन तीन भेद वाली हैं। यथा तीन मुहूर्त्त विशिष्ट तीन मुहूर्त्तों से कम होने वाली और तीन मुहूर्त्त भी नहीं होने वाली इस प्रकार मिलकर नौ प्रकार भेद होते हैं। यहां पूर्वदिन में उदय से लेकर प्रवृत्त होने वाली तिथि संपूर्णा होने के कारण तीन मुहूर्त्त तक अवस्थिति, उससे कम काल तक अवस्थित और अवस्थिति के अभाव रूप तीन प्रकार के पक्षों में भी विवाद नहीं है। इसलिये पूर्वदिन में उपवास करना युक्ति संगत होता है।

उदय काल को छोड़कर पूर्वाह्ण भाग के कुछ काल को लेकर प्रवृत्त होने वाली तिथि तीन मुहूर्त्त तक पर दिन में अवस्थित होने से पर दिन के साथ युक्त होने के कारण उपवास प्राप्त होने पर भी इसको छोड़कर पूर्वाह्ण वचन के अनुसार पूर्व दिन में उपवास विहित होता है। परदिन में तीन मुहूर्त्त न्यून होने के कारण वेध करने वाली तृतीया की वेध करने के लिये शक्ति है, किन्तु वेध्य होने वाली द्वितीया की तीन मुहूर्त्तों से न्यून काल तक अव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थिति होने से वेध योग्यता नहीं रहती है। इसलिये वहाँ उपवास की प्रसक्ति नहीं होती है।

अतः अन्त में पूर्वाह्न वाक्य के अनुसार पूर्वदिन में ही उपवास की प्राप्ति होती है। पूर्व दिन में संपूर्ण पूर्वाह्न को छोड़कर प्रवृत्त होने वाली द्वितीया की पर दिन में तीन मुहूर्त्त तक अवस्थिति होने से उभय दिनों में तिथि की प्राप्ति होती हैं। इस पर कब उपवास करना होगा इस प्रकार सन्देह आता है। इसका उत्तर के रूप में कहा जाता है कि व्यास ने उत्तर दिन विहित किया है, और पूर्व दिन निषिद्ध किया है। इसलिये परदिन में उपवास होता है। यहा शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष की व्यवस्था को आश्रय कर शंका नहीं करनी चाहिये।

युग्मवाक्येशुक्लकृष्णपक्षसाधारण्येन परदिनविधानात् कृष्णपक्षेऽपि तत्प्रवृत्तौ बाधाभावाच्च। अन्ययोस्तु पक्षयोः पूर्ववद्वेधानर्हत्वेन पूर्वेद्युः पौर्वाह्णिकत्वाभावेऽपि परिशेषादापस्तम्बोक्तयुग्मवाक्याच्च पूर्वत्रोपवास इति स्थितम्। एकभक्तादिपार्वणश्राद्धान्तेषु कर्मसु द्वितीयाप्रयुक्तस्य विशेषस्य क्वचिदप्यस्मरणात् पूर्वोक्तप्रतिपन्न्यायो योजनीयः।

इति द्वितीयानिर्णयः॥

युग्म वाक्य में शुक्ल और कृष्णपक्ष को साधारण भाव से गृहीत कर परदिन का बिधान हुआ है। इसलिये कृष्ण पक्ष में वही निष्पत्ति प्रवृत्त होने से कोई बाधा नहीं आती है। दूसरे दो पक्षों में पहला पक्ष की तरह वेध योग्य न होने से पूर्व दिन में पौर्वाह्णिक व्याप्ति के अभाव स्थल में भी अन्त में आपस्तम्ब के मतानुसार और युग्मवाक्य से भी पूर्व दिन में उपवास होता है ऐसी स्थिति है। एकभक्त प्रभृति से लेकर पार्वण श्राद्ध के अन्तिम तक होने वाले कर्मों में द्वितीया के लिये कोई विशेष स्मृति वाक्य नहीं है। इसलिये पूर्व न्याय के अनुसार वहां योजना करनी चाहिये।

इस प्रकार द्वितीया का निर्णय समाप्त हुआ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ तृतीया निर्णीयते

तत्र त्रिविधानि वचनानि स्मर्यन्ते। कानिचित् पूर्वविद्धाविधायकानि, कानिचित् पूर्वविद्धानिषेधकानि कानिचिदुत्तरविद्धाविधायकानीति। तत्र युग्मवाक्यं तावत् पूर्वविद्धाविधायकं प्रसिद्धम्। पूर्वविद्धानिषेधकं वाक्यमाहापस्तम्बः—

तृतीया तु न कर्त्तव्या द्वितीयोपहिता विभो॥
द्वितीयया युतां तां तु यः करोति नराधमः।
संवत्सरकृतेनेह स तु धर्मेण लुप्यते॥
द्वितीयाशेषसंयुक्तां तृतीयां कुरुते तु यः।
स याति नरकं घोरं कालसूत्रं भयङ्करम्॥
द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता।
सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः॥ इति।

यहाँ से तृतीया का निर्णय होता है। इसके लिये तीन प्रकार वचनों का स्मरण किया जाता है। यथा—पूर्वविद्धा तिथि को विधान करने वाले कुछ वचन, पूर्वविद्धा को निषिद्ध करने वाले कूछ वचन और कुछ परविद्धा को विधान करने वाले वचन। पूर्वविद्धा को विधान करने वाला युग्म वाक्य प्रसिद्ध है। पूर्वविद्धा को निषिद्ध करने वाला वचन आपस्तम्ब का ही प्रसिद्ध है। यथा—

हे विभु, द्वितीया के साथ युक्त होने वाली तृतीया का ग्रहण नहीं किया जाता है। जो नराधम द्वितीया युक्त तृतीया को ग्रहण करता है, वर्ष तक अर्जित धर्म को हराता है, लोप करता है। द्वितीया के अंश मात्र से युक्त तृतीया को जो करता है, वह कालसूत्र के नाम से प्रसिद्ध भयंकर नरक में डुबता है। जो स्त्री मोह वश होकर द्वितीया का अंश युक्त तृतीया को करती है, वह वैधव्य कष्ट को पाती है ऐसा मनीषियों ने कहा है।

स्कन्दपुराणेऽपि—

तृतीया तु न कर्त्तव्या द्वितीयासंयुता तिथिः।
या करोति विमूढा स्त्री पुरुषो वा शिखिध्वज।
द्वितीयासंयुतां तात पूर्वधर्माद् विलुप्यते।
विधवात्वं दुर्भगत्वं भवेन्नास्त्यत्र संशयः॥
कला काष्ठाऽपि वा चैव द्वितीया संप्रदृश्यते।
सा तृतीया न कर्त्तव्या कर्त्तव्या गणसंयुता।
यदिच्छेत् परमं पुण्यं व्रतकर्त्ता शिखिध्वज॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्र पूर्वविद्धाया निषेधबाहुल्यात् सा न ग्राह्या। युग्मवाक्यं तु रम्भाव्रतविषयं भविष्यति। रम्भाव्रतं तु भविष्यत्पुराणे दर्शितम्—

भद्रे कुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम्।
ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमतत्परा॥ इत्यादि।

तत्रैवापरं रम्भाव्रतं पठितम्—

रम्भातृतीयां वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्।
मार्गशीर्षेऽथवा मासि तृतीयायां नराधिप॥
शुक्लायां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम्॥

इत्यादिव्रतमभिधायोपसंहृतम्—

सौभाग्यार्थं पुरा चीर्णं रम्भया राजसत्तम।
तेन रम्भातृतीयेयं परं सौभाग्यदायिनी॥ इति

स्कन्दपुराण में कहा है—

द्वितीया से मिश्रित तृतीया नहीं करनी चाहिये। जो विमूढ स्त्री या पुरुष द्वितीया युक्त तृतीया को करता है, वह पूर्वार्जित धर्म को हराता है तथा वही स्त्री विधवा होती है और दुर्भगा भी होती है। द्वितीया की एक कला या काष्ठा से युक्त होने पर भी वह तृतीया नहीं करनी चाहिये, चतुर्थी के साथ अन्वित तृतीया करनी चाहिए। हे शिखिध्वज! जो परम पुण्य को अभिलषित करता है, वह इस प्रकार तृतीया को करता है।

इस स्थिति में पूर्वविद्धा का निषेध बहु परिमाण से मिलता है, इस लिये पूर्वविद्धा ग्रहण नहीं की जाती है। युग्मवाक्य के अनुसार पूर्वविद्धा तृतीया रम्भा तृतीया को ही लक्षित करती है। रम्भाव्रत भविष्यत्पुराण में दर्शित किया है—हे भद्र! जेष्ठमास के शुक्लपक्ष की तृतीया में नियम से तत्पर होकर स्नान करके यत्न पूर्वक रंभा व्रत कीजिये।

वहां भी दूसरा रंभाव्रत का पाठ मिलता है—सब पापों का नाश करने वाली रंभा तृतीया को कहूँगा। हे नराधिप, मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया में प्रातः शय्या त्याग कर दन्त धावन करने के बाद इस व्रत का प्रारंभ किया जाता है। इस व्रत को अभिहित कर इसका उपसंहार किया जाता है। यथा—हे राजसत्तम! सौभाग्य लाभ के लिये रम्भा ने यह व्रत आचरित किया था। इसलिये सौभाग्य को देनेवाली रंभा तृतीया इसका नाम हो गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतस्य रम्भाव्रतस्य पूर्वविद्धायां कर्त्तव्यत्वं स्कन्दपुराणे दर्शितम् —

बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी।
कृष्णाष्टमी च भूता च कर्त्तव्या संमुखी तिथिः॥ इति

तत्रैव पूर्वविद्धानिषेधो रम्भाव्रतव्यतिरिक्तविषयत्वेन पठ्यते —

द्वितीयया तु विद्धा च तृतीया न कदाचन।
कर्त्तव्या व्रतिभिस्तात धर्मकामार्थतत्परैः॥
विहायैकां च रम्भां च तृतीयां पुण्यवर्धिनीम्॥ इति

उत्तरविद्धाविधायकं तु ब्रह्मवैवर्त्ते दर्शितम्—

चतुर्थीसंयुता या तु सा तृतीया फलप्रदा॥ इति

आपस्तम्बोऽपि—

चतुर्थीसंयुता या च सा तृतीया फलप्रदा।
अवैधव्यकरी स्त्रीणां पुत्रसौभाग्यवर्धिनी॥ इति

बृहस्पतिरपि—

एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी।
अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः॥ इति

अस्य चोत्तरविद्धाविधायकस्य रम्भाव्यतिरिक्तविषयत्वं ब्रह्मवैवर्त्ते दर्शितम्—

इस रंभाव्रत को पूर्वविद्धा तृतीया में करने के लिये स्कन्द पुराण में कहा है—बृहत्तपा, रंभा, सावित्री, वटपैतृकी, कृष्णपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी सम्मुखी होकर पालनीय होती हैं। वहां भी रंभाव्रत को छोड़कर दूसरे व्रतों के विषय में पूर्वविद्धा का निषेध मिलता है। हे तात! धर्म, काम और अर्थ पाने के लिये तत्पर लोग ने द्वितीया के साथ युक्त तृतीया किसी भी अवस्था में नहीं करनी चाहिये। केवल पुण्यदायिनी रंभा तृतीया को छोड़कर सर्वत्र तृतीया परविद्धा होती है।

परविद्धा को विधान करने वाला वचन ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में दर्शित हैं। चतुर्थी के साथ युक्त होने वाली तृतीया फल देने वाली है। अपस्तम्ब ने भी कहा है—चतुर्थी के साथ युक्त तृतीया फलप्रद होकर स्त्रियों के वैधव्य का नाश करती है और पुत्ररूपक सौभाग्य देती है। बृहस्पति ने भी कहा है। एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, पौर्णमासी, चतुर्दशी, अमावास्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और तृतीया परविद्धा होकर उपास्य होती है। परविद्धा को विधान करने वाला रंभा व्रत से भिन्न तृतीया के लिये वचन ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में कहा है—

रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम ॥
अन्येषु सर्वकार्येषु [1]गणयुक्ता प्रशस्यते ॥ इति

क्वचित्तु सर्वव्रतेषु पूर्वविद्धैव । तदाह वशिष्ठः—

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी ।
पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या यदि न स्यात्परेऽहनि ॥ इति

अत्र परेऽहन्यसत्त्वं त्रेधा भिद्यते । सर्वथैवासत्त्वं, द्विमुहूर्त्तासत्त्वं, त्रिमुहूर्त्तासत्त्वं चेति । सर्वथैवासत्त्वे पूर्वदिनानुष्ठानमस्तु । यदा तु परेऽहनि घटिकात्रयं घटिकापञ्चकं वा स्थिता भवति—तदा कथमस्त्विति महान् सन्देहः । त्रिमुहूर्त्तसद्भावस्य मुख्यकल्पत्वात् । पञ्चघटिकापक्षे मुख्यासंभवः । द्विमुहूर्त्तसद्भावस्यानुकल्पत्वात्, घटिकात्रयपक्षे तस्याप्यसंभवः । तदा किं मुख्यानुकल्पयोरभावात् पूर्वेद्युरनुष्ठानं किं वा पूर्वविद्धाया निषेधबाहुल्यादपरेऽहनि अल्पमपि सत्त्वमाश्रित्यानुष्ठानम् । न चात्र किञ्चिन्नियामकं वचनमस्ति नाऽपि न्यायेन निर्णेतुं शक्यते । न तावत् परदिनं न्याय्यम्, प्रापकाभावात् । नापिमुख्यानुकल्पव्यतिरिक्तं कल्पान्तरं संभवति, येन प्रापकमाशङ्क्यते । नापि पूर्वदिनं न्याय्यं निषेधबाहुल्यात् । वशिष्ठवचनोक्तप्रतिप्रसवेन[2] निषेधो बाध्यते इति चेत् । मैवम् । तस्य वचनस्य परेद्युरत्यन्तासत्त्वेऽप्युपपन्नत्वात् ।

हे द्विज सत्तम! रंभा नामक तृतीया को छोड़कर दूसरे सब कार्यों में चतुर्थी युक्त तृतीया मानी जाती है।

कुछ स्थान में सब व्रतों के लिये पूर्वविद्धा तृतीया मानी जाती है। इसलिये वसिष्ठ ने कहा है—एकादशी, तृतीया, षष्ठी, त्रयोदशी अगर पर दिन में न हो तो पूर्वविद्धा होने पर भी करनी चाहिये।

परदिन में तिथि का अभाव तीन प्रकार है—सर्वथा अभाव, दो मुहूर्त्त तक अभाव और तीन मुहूर्त्त तक अभाव। सर्वथा अभाव स्थलों में पूर्व दिन में

---

१. गणो नाम चतुर्थी ।
२. निषेधस्य पुनरभ्यनुज्ञानं प्रतिप्रसवः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुष्ठान हो जब पर दिन में तीन मुहुर्त्तों या पांच दण्डों तक तिथि रहती है, तब कैसे तिथि की स्थिति स्वीकृत होगी ? ऐसे महान् सन्देह होता है। यहाँ तीन मुहूर्त्तों तक तिथि की अवस्थिति मुख्य विषय के रूप में मानी जाती है। जिस पर पांच दण्डों तक स्थिति होती, उस पर मुख्य कल्प नहीं रहता है। दो मुहूर्त्तों तक तिथि की अवस्थिति से अनुकल्प विधान अर्थात् गौण पक्ष स्वीकृत होता है। इस तीन मुहूर्त्तों की स्थिति के बारे में यह असंभव होता है। इस स्थल में मुख्य और अनुकल्प के अभाव से पूर्व दिन में अनुष्ठान होता है या पूर्व विद्धा का निषेध बहुल रूप से उपलब्ध होने पर परदिन में कुछ भी रहने के कारण क्या अनुष्ठान हो सकता है ? इस प्रकार सन्देह होता है। यहाँ इस पक्ष के कोई नियामक वचन नहीं है। कोई न्याय या युक्ति के अनुसार भी निर्णय नहीं किया जा सकता। पर दिन में अनुष्ठान करना न्याय्य नहीं होता है क्योंकि इसके लिए कोई प्रापक अर्थात् विधिवाक्य नहीं है। फिर मुख्य और अनुकल्प को छोडकर कोई दूसरा प्रकार की संभावना भी नहीं हैं जिसके द्वारा प्रापक वचन की आशंका हो सकती। पूर्वदिन भी न्याय्य नहीं है क्योंकि इसके लिए अनेक निषेध वचन मिलते हैं। वसिष्ठ वचन के द्वारा होने वाला प्रतिप्रसव से निषेध बाधित हो जाता है। ऐसा अगर प्रश्न होता तो ठीक नहीं है। क्योंकि वसिष्ठ के यह वचन पर दिन में सर्वथा अभाव के स्थल पर माना जाता है।

तस्मादागम[1]न्याययोरत्राप्रवृत्तेरयोगिनोऽसर्वज्ञस्य धर्मसाक्षात्कारासंभवाच्च शिष्टाचार[2] एवात्र शरणम्। अत एव व्यासः[3] —

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना।
न वा ऋषे दर्शनमस्ति किञ्चित्॥
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां।
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥ इति

शिष्टाश्च मुहूर्त्तमात्रसद्भावमाश्रित्य गौरीव्रतं परेद्युरेवानुतिष्ठन्ति। अतो गौरीव्रतं परेद्युरेवानुष्ठेयम्। अन्येषु भविष्यत्पुराणाद्युक्तेषु वित्तेशपूजादिषु मुख्यकल्पेनाऽनुकल्पेन चाऽपरेद्युरनुष्ठानम्।

---

१. आगमः शाब्दप्रमाणम् न्यायो युक्तिविजृम्भणम्, शिष्टाचारः सदाचारः। आगमन्याययोरभावेन सदाचारस्य प्रामाण्यमङ्गीक्रियते।

२. साधवः शीलसंपन्नाः शिष्टाचारस्य लक्षणम्। महा० भा० १३।१६२।३४

३. महा० भा० ३।२।११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्विषयाश्च पूर्वविद्धानिषेधाः। कल्पद्वयासत्त्वे तु विद्यमानायामपि परेद्युः स्वल्पायामपि तृतीयायां तां परित्यज्य वसिष्ठवचनेन पूर्वेद्युरनुष्ठानम्। एकभक्तनक्ते तु व्रताङ्गे व्रतानुसारेणानुष्ठेये। स्वतन्त्रयोस्तु मध्याह्नप्रदोषव्याप्तिवशेनानुष्ठानम्। रम्भाव्रतेऽप्यस्तमयादर्वाक् तृतीयायास्त्रिमुहूर्त्तसद्भावे तस्यामेव पूर्वविद्धायामनुष्ठानम्। तद्विधायकवाक्येषु संमुखीत्यभिधानात् सांमुख्यस्य च सायाह्नव्याप्तिरूपत्वात्।

इसलिये आगम अर्थात् शास्त्रवचन की और न्याय अर्थात् युक्ति की प्रवृत्ति नहीं होती है। अयोगी लोग असर्वज्ञ लोग ने धर्म को साक्षात् करना अर्थात् समझना असंभव होने पर शिष्टाचार ही यहां शरण के रूप में लिया जा सकता है। अत एव व्यास ने कहा है—धर्म के बारे में तर्क की प्रतिष्ठा नहीं है, श्रुतिओं की भिन्नता दिखाई पड़ती है। कोई एक ही ऋषि नहीं है, जिसका दर्शन या मत सब लोगों के जरिये माननीय है। धर्म के तत्त्व सर्वदा गुहा में निहित है। महाजन या शिष्ट लोग जिस पन्था (मार्ग) को आश्रय कर चल गये हैं, वही मार्ग है।

शिष्ट लोग मुहूर्त्त मात्र की स्थिति को आश्रय लेकर गौरी व्रत को पर दिन में करते हैं। अतः गौरी व्रत परदिन में अनुष्ठित होना चाहिये। भविष्यपुराण प्रभृति में कहे गये कुबेर पूजा प्रभृति दूसरे व्रतों के बारे में मुख्य पक्ष और गौणपक्ष को लेकर परदिन में अनुष्ठान होता है। यह विषय पूर्वविद्धा का निषेध के बारे में अवगत होता है। दोनों ही पक्षों का अभाव स्थल में परदिन में अल्प परमाण से तृतीया की अवस्थिति में भी उसको छोड़कर वसिष्ठवचत के अनुसार पूर्वदिन में अनुष्ठान होता है। व्रत के अङ्ग रूप से एकभक्त और नक्त व्रत के अनुसार अनुष्ठित होते हैं। अगर स्वतन्त्र होकर एकभक्त और नक्त व्रत हैं तो मध्याह्न और प्रदोष को व्याप्त होने पर क्रमानुसार अनुष्ठित होते हैं। रंभाव्रत में भी अस्त से पहले तृतीया की तीन मुहूर्त्त तक स्थिति होने पर उस प्रकार पूर्व विद्धा तृतीया ही अनुष्ठान के लिये मानी जाती है। इसके विधायक रूप से "सम्मुखी" ऐसे कहा है। सम्मुखीत्व तो सायाह्न को व्याप्त होनेवाली तिथि का ही रहता है।

मुहूर्त्तत्रयन्यूनत्वे सति पूर्वविद्धायाः प्रापकाभावाद्रम्भाव्रते परविद्धाया अनिषिद्धत्वाच्च सामान्यवचनैः परविद्धाप्रशंसकैः परेद्युरनुष्ठानम्। यानि द्वितीयाविद्धाया निषेधकानि वाक्यानि, तेषु द्वितीया कियती विवक्षितेति चेत् मुहूर्त्तत्रयपरिमितेति ब्रूमः। वेधशास्त्रे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथाऽभिधानात्[1]। यत्तु "कलाकाष्ठापी"-ति वचनं, तत् कैमुतिक-न्यायेन[2] त्रिमुहूर्त्तसत्त्वं द्रढ़यति।

इति तृतीयानिर्णयः॥

तीन मुहूर्त्तों तक न्यून होने से पूर्वविद्धा को प्राप्त करने वाला कोई साधन का अभाव होने पर रंभाव्रत में परविद्धा का निषेध के अभाव से परविद्धा की प्रशंसा करने वाले सामान्य वचनों के द्वारा परदिन में अनुष्ठान होता है। जहाँ द्वितीयाविद्धा को निषिद्ध करने वाले वाक्य हैं, वहाँ द्वितीया का परिमाण कितना होगा ऐसा प्रश्न आया है। उत्तर में तीन मुहूर्त्त तक होना चाहिये ऐसा कहा है। क्योंकि वेध के लिये तीन मुहूर्त्तों की अवस्थिति अनिवार्य है। कला और काष्ठा के परिमाण रहने पर भी जो वचन मिलता है, वह कैमुतिक न्याय से अर्थात् अर्थापत्ति से तीन मुहूर्त्त वाला वेध को दृढीभूत कराता है।

इस प्रकार तृतीया का निर्णय समाप्त हुआ।

अथ चतुर्थी निर्णीयते

सा च युग्मवाक्यात् परविद्धा पूज्या। न च शुक्लपक्षे तथात्वेऽपि कृष्णपक्षे पूर्वैव स्यादिति शङ्कनीयम्। युग्मवाक्यस्य पक्षद्वयसाधारणत्वात्। "चतुर्दश्या च पूर्णिमे"त्येतच्छुक्लपक्षविषयत्वे लिङ्गमिति चेत् न तस्यैकस्य युग्मस्य शुक्लपक्षविषयत्वेऽपि द्वितीयादिकानां युग्मानां पक्षद्वयसाधारण्यस्य वारयितुमशक्यत्वात् साहचर्यात्तान्यपि शुक्लपक्षविषयाण्येवेति चेन्न। "प्रतिपद्यप्यमावास्ये"त्यनेन पक्षद्वयस्पर्शिना युग्मेन साहचर्यादितरेषामपि पक्षद्वयस्पर्शित्वं किं न स्यात्। एवं तर्हि साहचर्ययोर्द्वयोरपि परस्परकलहादनिर्णय इति चेन्न, कारणान्तरेण निर्णेतव्यत्वात्।

तर्हि चतुर्दशीपूर्णिमायुग्ममेकपक्षवर्त्तितिथिद्वयात्मकत्वाद् द्वितीयादियुग्मैः सदृशं प्रतिपदमावास्यायुग्मं तु भिन्नपक्षद्वयवर्त्तितिथिद्वयरूपत्वाद् विलक्षणम्। अतः पूर्णिमायुग्मसाहचर्येणैव निर्णय इति चेन्मैवम्। श्रुत्या साहचर्यस्य बाध्यमानत्वात्। द्वितीयादिशब्दो मुख्यया वृत्त्या पक्षद्वयवर्त्तिनस्तिथीन् ब्रूते।

१. त्रिभिर्मुहूर्त्तै विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः।

२. कैमुतिकन्यायोऽर्थापत्तिं सूचयति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब चतुर्थी तिथि का निर्णय हो रहा है। युग्म वाक्य के अनुसार परविद्धा होकर पूज्य होती है। शुक्लपक्ष में इस प्रकार निर्णय होने से कृष्णपक्ष में पूर्वविद्धा ही होगी ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि युग्म वाक्य दोनों ही पक्षों को साधारण रूप से सूचित करता है। चतुर्दशी के साथ पूर्णिमा इस वचनांश के द्वारा शुक्लपक्ष विषय का चिह्न युग्म वाक्य में रहता है ऐसा भी प्रश्न हो सकता है। यह ठीक नहीं है। क्योंकि एक ही युग्म शुक्लपक्ष विषय में संलग्न होने पर भी द्वितीया प्रभृति युग्मों की दोनों पक्षों में साधारण रूप से रहनेवाली संलग्नता को वारित नहीं कर सकता। एक साथ रहने के कारण संपूर्ण युग्म वाक्य को शुक्लपक्ष विषय में संलग्न किया जायगा ऐसा अगर प्रश्न होता तो ठीक नहीं। "प्रतिपद के साथ अमावस्या" यह वचनांश दोनों ही पक्षों को स्पर्श करता है। इस युग्मता के कारण एक साथ रहने से दूसरे युग्म भी दो पक्षों के बारे में क्यों नहीं संलग्न किये जायेंगे? ऐसे होने पर दो प्रकार साहचर्यों से परस्पर कलह होने के कारण निर्णय नहीं हो सकता, ऐसा अगर प्रश्न होता तो ठीक नहीं; क्योंकि दूसरे कारणों से इसका निर्णय हो जा सकता है।

चतुर्दशी और पूर्णिमा एक पक्ष में दो तिथियों के रूप में रहने से द्वितीया प्रभृति युग्मों के साथ इनके सादृश्य रहता है। प्रतिपद और अमावास्या भिन्न पक्ष में रहने के कारण उनसे विलक्षण होती हैं। अतः पूर्णिमा युग्म के साहचर्य से ही निर्णय होता है, ऐसा भी ठीक नहीं है। क्योंकि श्रुति के द्वारा साहचर्य अर्थात् स्थान बाधित होता है। द्वितीया प्रभृति शब्द मुख्य वृत्ति से दो पक्षों में रहने वाली तिथियों को ही कहते हैं।

सेयं श्रुतिलिङ्गादिषु षट्सु प्रथमं प्रमाणम्। साहचर्यं तु सन्निधिः, स च स्थानावान्तरभेदत्वात् पञ्चमं प्रमाणम्। तच्च प्रथमादत्यन्तदुर्बलम्। सोऽयमर्थः पूर्वमीमांसायां तृतीयाऽध्याये श्रुतिलिङ्गादिसूत्रे महता प्रबन्धेन प्रपञ्चितः। सूत्रञ्चैतत् श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति:[1] इत्थमेव च श्रुतिसन्निध्ययोर्विरोधमुद्दिश्योत्तरमीमांसायां गुणोपसंहारे विचारितम्।

तथाहि। ताण्डिशाखायां[2] श्रूयते—ॐ मित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतेति। अस्यायमर्थः। पञ्चभक्तियुक्तस्य साम्न उद्गीथाख्या भक्तिः

१. पू० मी० ३।३।१४ २. छान्दोग्योपनिषत् १।१।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कश्चिदवयवः तं चावयवमुद्गाता यागकाले गायति। गीयमानं तमुद्गीथं स एवोद्गाता ताण्डिशाखागतोपनिषद्विहितैरनेकै गुणै-रूपासीतेति। ते च गुणास्ताण्डिशाखायामेव विहिताः। उद्गीथ-भक्तिस्तु ताण्डिशाद्लजैमीनीयतलवकारादिषु सर्वासु सामशाखासु पठिता।

तत्र यदिदं ताण्डिशाखोक्तगुणमुपासनं तत् किं ताण्डिशाखागत एवोद्गीथविशेषे व्यवतिष्ठते, किं वा सर्वशाखागत उद्गीथसामान्ये सञ्चरतीति संशयः। तत्र सन्निधिवशादुद्गीथविशेषेऽवतिष्ठत इति पूर्वः पक्षः। उद्गीथशब्दो मुख्यया वृत्त्योद्गीथसामान्यं[1] ब्रूते। न च सन्निधिना[2] पञ्चमप्रमाणेन प्रथमप्रमाणस्य श्रुतेः सङ्कोचो युक्तः। तस्मादुपासनमुद्गीथसामान्ये संचरतीति राद्धान्तः।

श्रुति और लिङ्ग प्रभृति छः में यह है पहला प्रमाण। साहचर्य तो सन्निधि को सूचित करता है। वह स्थान का अवान्तर भेद होने के कारण पांचवा प्रमाण होता है। पहला प्रमाण श्रुति से वह खुब दुर्बल होता है। इसका अर्थ या प्रयोजनीयता के बारे में पूर्वमीमासा के तीसरा अध्याय में श्रुतिलिग प्रभृति सूत्र में विस्तार से आलोचित किया है। सूत्र इस प्रकार है—"श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या इनके समवाय में परवर्त्ती प्रमाण क्रमानुसार पूर्वतर्त्ती प्रमाण से दुर्वल है क्योंकि इनकी दूरवर्त्ती प्रयोजनीयता ही यहां कारण है। फिर भी श्रुति और सन्निधि (स्थान) के बीच में विरोध को लक्ष्य कर उत्तरमीमांसा में गुणोपसंहार के अवसर पर विचार किया है।

इसलिये ताण्डिशाखा में सुना है—ॐ यह अक्षर उद्गीथ है। इसका अर्थ यह है—पांच भागों से विभक्त साम का उद्गीथ नामक एक विभाग एक अवयव होता है। उस अवयव को उद्गाता यागसमय में गाता है।

---

१. मुख्यावृत्ति नाम अभिधावृत्ति सा च श्रुतिः प्रथमं प्रमाणं स्वतन्त्रं निरपेक्षत्वात्।

२. सन्निधिर्नाम स्थानं श्रुतिप्रभृतिषट् प्रमाणेषु पञ्चमे आपतति। नैतेन प्रमाणेन अपवादो द्योत्यते। सामान्यस्य उत्सर्गाभिधत्वे तच्चाभिधावृत्त्या श्रुतिप्रमाणात्मकत्वे अपवादरूपात् दुर्बलम्। नात्र तथा संभवति शास्त्रे श्रुति-स्थानयोः उत्सर्गापवादप्रसिद्धेरभावात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस उद्गीथ को गान करने वाला उद्गाता ताण्डि शाखा के अन्तर्गत उपनिषद् के द्वारा विहित अनेक गुणों को लेकर उपासना करता है। ये गुणों का विधान ताण्डि शाखा में मिलता है। उद्गीथ विभाग का ताण्डि, शार्दूल, जैमिनीय, और तलबकार प्रभृति सब सामशाखा में पाठ किया जाता है।

यहां एक संशय होता है कि ताण्डि शाखा में उक्त यह उपासना ताण्डि शाखा के अन्तर्गत उद्गीथ विशेष को व्यवस्थित करती है या सब शाखा के अन्तर्गत उद्गीथ सामान्य को लेकर संचारित होती हैं? यहां पूर्वपक्ष का आशय यह है कि सन्निधि या साहचर्य के कारण उद्गीथ विशेष में ही व्यवस्था होगी? सिद्धान्त में कहा जाता है—कि उद्गीथ शब्द मुख्य वृत्ति से उद्गीथ सामान्य को ही कहता है। किन्तु (साहचर्य से) सन्निधि रूपक पांचवां प्रमाण से पहला प्रमाण जो श्रुति उसका संकोच नहीं किया जा सकता। इसलिए उद्गीथ सामान्य में ही उपासना का संचार होना चाहिए।

अनेन न्यायेन प्रकृतेऽपि साहचर्याख्येन सन्निधिना द्वितीयादिश्रुतेः सङ्कोचायोगाद्युग्मादिशास्त्रं पक्षद्वयविषयं द्रष्टव्यम्। यदि च चतुर्दशीपूर्णिमयोः कृष्णपक्षविषयत्वं न संभाव्यते तर्हि तत्रैकत्र शुक्लपक्षविषयत्वमस्तु। तथा प्रतिपद्युग्ममपि गत्यन्तराभावात् पक्षद्वयसन्धिविषयम्। एवं व्यवस्थितौ सत्यां युग्मशास्त्रेण पक्षद्वयेऽपि चतुर्थी परविद्धैव प्राप्नोति।

ननु वचनान्तरेण चतुर्थीद्वयस्य व्यवस्था प्रतीयते।

तथा च मार्कण्डेयपुराणे—

शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः।
कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः॥ इति

अत्र च वक्तव्यम्। किमिदं शुक्लादिवाक्यं युग्मादिशास्त्रनियमनद्वारा एकवाक्यतया तिथीनां व्यवस्थापकम्, उत स्वातन्त्र्येण। यदि नियमनद्वारा तर्हि युग्माग्नीत्यादियुग्मे पूर्वतिथीनामुत्तरविद्धानां पूज्यत्वेन।

शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः॥

इत्येतत् पूर्वार्धमविरोधि। उत्तरार्धं तु विरोधि। तथा तेष्वेव युग्मेषु चरमतिथीनां पूर्वविद्धानां पूज्यत्वेन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृष्णपक्षे तिथीर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः ।

इत्युत्तरार्धमविरोधि । पूर्वार्धं तु विरोधि । तथा—

इस न्याय से इस प्रकरण में साहचर्य अर्थात् सन्निधि के द्वारा द्वितीया प्रभृति श्रुति का संकेन नहीं होता है। अतएव युग्म वचन शुक्ल और कृष्ण इन दो पक्षों को ही सूचित करता है। यदि चतुर्दशी और पूर्णिमा की संभावना कृष्णपक्ष के विषय में नहीं होती तो एकत्र शुक्लपक्ष विषय में होनी चाहिये। इस प्रकार दूसरी गति के अभाव से प्रतिपद युग्म दो पक्षों की सन्धि के विषय में भी उपपन्न होगा । इस प्रकार व्यवस्था होने पर युग्म वचन के द्वारा दो पक्षों में चतुर्थी परविद्धा उपलब्ध होती है।

यहां एक प्रश्न होता है कि दूसरा वचन से दोनों ही चतुर्थी की व्यवस्था प्रतीत होती है।

इसलिए मार्कण्डेय पुराण में कहा है—जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं, उस तिथि कृष्णपक्ष में गृहीत होती है।

यहां वैसा कहा जा सकता है कि क्या शुक्लादि वाक्य युग्मादि शास्त्र के नियमन से इस वाक्य के द्वारा तिथिओं का व्यवस्थापक होता है या स्वतन्त्र रूप से! अगर नियमन के द्वारा होता है तो युग्माग्नि वाक्य से द्योतित द्वितीया और तृतीया प्रभृति युग्मों में पूवं तिथिओं की पूज्यता उत्तरविद्धा होने पर ही आती है। इसलिए शुक्ल पक्ष की तिथि गृहीत हो सकती है। यदि सूर्योदय इस तिथि में होती है। इस वचनांश से युग्म का पूर्वभाग विरोधी नहीं होता है। किन्तु परभाग तो विरोधी होता ही है। इन सब युग्मों में अन्तिम तिथिओं की पूज्यता पूर्वविद्धा होने पर ही संभावित है। इस कारण से "कृष्ण पक्ष में तिथि गृहीत होती है यदि सूर्यास्त इस तिथि में होता है" इन वचनांश के द्वारा युग्म का परभाग विरोधी नहीं होता है, किन्तु पूर्वभाग तो विरोधी होता ही है।

दर्शप्रतिपद्युग्मेऽपि कृष्णपक्षगतस्य दर्शस्योदये पूज्यत्वं, शुक्लपक्षगतायाः प्रतिपदोऽस्तमये पूज्यत्वम् । तथा सति तत्रोभयत्र विरोधः स्फुटतरः। तस्मान्न युग्मादिशास्त्रमनेन नियन्तुं शक्यम्। नापि स्वातन्त्र्येण तिथीनां व्यवस्थापकम्। तत्र युग्मादिशास्त्रविरोधस्यापरिहार्यत्वात्। अविरोधेन तु शुक्लादिवाक्यस्य दशमीविषयत्वं प्रतिपत्प्रकरणे प्रसङ्गादुदाहृतम् । तस्माच्छुक्लकृष्णयोरपि पक्षयो र्युग्मादिशास्त्राच्चतुर्थी परविद्धा ग्राह्या।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृद्धवसिष्ठोऽपि—

एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका।
उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः॥

ननु परविद्धोपवासः क्वचित् प्रतिषिद्ध्यते।

द्वितीया पञ्चमीवेधाद् दशमी च त्रयोदशी।
चतुर्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथी॥ इति

अयमर्थः। पञ्चमी वेधेन पूर्वां चतुर्थीं तिथिमुत्तरां च षष्ठीं तिथिमुपवासविषये हन्ति। अतः पञ्चमीविद्धायां चतुर्थ्यां नोपवास इति। नैष दोषः। व्रतभेदेन व्यवस्थोपपत्तेः। सन्ति हि चतुर्थ्यां भिन्नदेवताविषयाणि बहूनि व्रतानि। तत्र विष्णुधर्मोत्तरप्रोक्ते चतुर्मूर्त्तिव्रते मूर्त्तिचतुष्टयोपेतो विष्णु र्देवता। स्कन्दपुराणोक्ते अङ्गारकचतुर्थीव्रते

फिर भी दर्श, पूर्णिमा और प्रतिपदा युग्म में कृष्णपक्ष का दर्शकी पूज्यता उदय में रहती है। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा की पूज्यता अस्तमन से ही होती है। ऐस होने पर दोनों ही पक्षों का विरोध स्फुट रूप से प्रतिभात होता है। इसलिए युग्मवचन इसके द्वारा नियत नहीं किया जा सकता है। स्वतन्त्र रूप से भी यह तिथिओं का व्यवस्थापक नहीं होता है। क्योंकि वहां भी युग्म वचन का विरोध अपरिवर्त्तित होकर अपरिहार्य रूप से रहेगा। अविरोध से शुक्लादि वाक्य को दशमी के विषय में लगाने के लिए प्रतिपदा प्रकरण में प्रसंगतः उदाहरण के रूप में कहा गया है। इसलिए शुक्ल और कृष्ण इन दोनों ही पक्षों में युग्म वचन के अनुसार चतुर्थी परविद्धा होती है।

वृद्ध वसिष्ठ ने भी कहा है कि एकादशी, षष्ठी, अमावास्या, चतुर्थी परविद्धा होकर उपवास योग्य होती हैं। इस गोष्ठी में परवर्त्ती तिथिओं पूर्व विद्धा होकर गृहीत होती हैं। यहां एक प्रश्न होता है कि "परविद्धा तिथि में उपवास कहीं पर प्रतिषिद्ध किया है। यथा—वेध के कारण द्वितीया, पंचमी, दशमी, त्रयोदशी और चतुर्दशी उपवास स्थल में पूर्व और पर तिथिओं को नष्ट कर देती हैं।

इसका आशय यह है—पंचमी वेध के द्वारा पूर्ववर्त्ती तिथि चतुर्थी और परवर्त्ती तिथि षष्ठी को उपवास विषय में नष्ट कर देती है। अतः पंचमी से विद्ध चतुर्थी में उपवास नहीं करनी चाहिए"। यह एक दोष नहीं है। दूसरे व्रतों में इसकी व्यवस्था होती है। चतुर्थी में होने वाले नाना देवताओं के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्देश्य में अनेक व्रत हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चतुर्मूर्त्तिव्रत के बारे में चार मूर्त्तिओं से अन्वित विष्णु देवता हैं ऐसा कहा है। स्कन्दपुराण में अङ्गारक चतुर्थी व्रत के बारे में मङ्गल देवता हैं। कूर्मपुराण में यम व्रत में यम देवता है।

भौमो देवता। कूर्मपुराणोक्ते यमव्रते यमो देवता। सौरपुराणादिप्रोक्तेषु [1]दूर्वागणपत्यादिव्रतेषु विनायको देवता। कूर्मपुराणप्रोक्ते नागचतुर्थीव्रते शेषशङ्खपालादयः सर्पा देवताः।

तत्र विनायकनागव्यातिरिक्तानां व्रते परेद्युरूपवासः विनायकनागयोस्तु व्रते मध्याह्नव्याप्त्या निर्णेतव्यत्वात् कदाचन पूर्वेद्युरूपवासः प्राप्नोति। तादृशे विषये पञ्चमीवेधनिषेधो व्यवस्थापनीयः। तथा पूर्वविद्धाप्रशंसा च तस्मिन्नेव विषये द्रष्टव्या। अत एव ब्रह्मवैवर्त्ते पूर्वोत्तरविद्धयोर्विधिनिषेधौ स्मर्यंते—

चतुर्थी संयुता कार्या तृतीया च चतुर्थिका।
तृतीयया युता नैव पञ्चम्या कारयेत् क्वचित्॥ इति

तथा तत्रैव पूर्वविद्धा प्रशस्यते।

चतुर्थीसंयुता या च सा तृतीया फलप्रदा।
चतुर्थी तु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा॥ इति

तस्याश्च विनायकव्रतविषयत्वं तत्रैव सूचितम्।

कर्त्तव्या व्रतिभि र्वत्स गणनाथसुतोषिणी॥ इति

स्कन्दपुराणेऽपि—

विनायकव्रते कार्या सर्वमासेषु षण्मुख।
चतुर्थी तु जयायुक्ता गणनाथसुतोषिणी॥ इति

विनायकव्रतानुष्ठाने चतुर्थ्यां मध्याह्नव्यापित्वं मुख्यं प्रयोजकम्।

तदाह बृहस्पतिः—

सौर पुराण प्रभृतिओं में उक्त दूर्वागणपति व्रत में गणेश देवता है। कूर्मपुराण में कहा गया नाग चतुर्थी व्रत में शेष शंखपाल प्रभृति सांप देवता हैं।

वहाँ विनायकचतुर्थी या गणेशचतुर्थी और नागचतुर्थी से भिन्न दूसरे व्रतों में पर दिन में उपवास प्राप्त होता है। विनायक और नाग व्रतों मे

---

१. दुर्गा इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो मध्याह्नव्याप्ति से निर्णय होता है। इसलिये पूर्व दिन में उपवास होता है। उस विषय में पंचमी वेध का निषेध व्यवस्थापित होना चाहिए। फिर भी पूर्वविद्धा की प्रशंसा को इस विषय में दिखना होगा। अत एव ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में पूर्व और उत्तर विद्धा चतुर्थी के विधि और निषेध का स्मरण मिलता हैं। यथा—चतुर्थी के साथ युक्त होने वाली तृतीया और तृतीया के साथ युक्त चतुर्थी करनी चाहिए। पर पंचमी के साथ अन्वित चतुर्थी को कुछ अवसर पर भी नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार उस स्थान में पूर्वविद्धा प्रशंसित होती है। चतुर्थी से संयुक्त तृतीया फल देने वाली होती है। तृतीया में अगर चतुर्थी आ जाती तो महान् फल मिलता है। विनायक व्रत के बारे में इस चतुर्थी की सूचना वहाँ ही सूचित की गई है। हे वत्स! व्रतीओं ने गणनाथ को सन्तोष देने वाली चतुर्थी करनी चाहिए।

स्कन्दपुराण में भी कहा है कि—हे छ मुख वाले स्कन्द जी! सब मासों में विनायक व्रत के लिए तृतीया युक्ता चतूर्थी को ग्रहण करना चाहिए जिसने गणनाथ सन्तुष्ट होंगे। इसके बारे में बृहस्पति ने भी कहा है।

चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते।
मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात् परतश्चेत्परेऽहनि ॥ इति

यदा पूर्वेद्यु मध्याह्नव्यापिनी तिथिर्भवति तदा मुख्यप्रयोजकस्य विद्यमानत्वात् मातृविद्धत्वगुणसद्भावाच्च सा ग्राह्या। तादृशे विषये परेद्युः सत्यामपि मध्याह्नव्यापिन्यां त्याज्या। अत एव प्रशस्यत इत्युक्तम्। परेद्युरेव यदा मध्याह्नव्यापिनी तदा मातृविद्धत्वगुणाभावेऽपि प्रधानप्रयोजकानुसारेण परविद्धैव ग्राह्या। तथा च स्मृत्यन्तरम्—

मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच् चतुर्थी गणनायके।
मध्याह्ने परतश्चेत् स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते ॥ इति

ननु बहुषु वचनेषु पूर्वविद्धाया गणनाथसन्तोषहेतुत्वमुक्तम्। अतः पूर्वविद्धत्वस्यैव मुख्यप्रयोजकता युक्ता। मैवम्। मध्याह्नव्यापित्वस्यैव वैयर्थ्यप्रसङ्गात्। अवश्यं हि तदा मध्याह्नव्यापित्वं प्रसङ्गाद् भवति। अतस्तद् विधानं व्यर्थं व्यावर्त्याभावात्।

अथोच्येत पक्षान्तरेऽप्यनेकवचनविहितस्य पूर्वविद्धत्वस्य वैयर्थ्यं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदवस्थम्। मध्याह्नव्यापित्वेनैव तन्निर्णयादिति। तन्न। यदा तिथिक्षयवशादुभयत्र मध्याह्नव्याप्ति र्नास्ति। यदा चोभयत्र कृत्स्नमध्याह्नव्यापित्वं

मातृ (तृतीया) विद्धा चतुर्थी गणनाथ के लिए प्रशस्त होती है अगर मध्याह्न को व्याप्त होनेवाली हो। यदि परदिन में मध्याह्न को व्याप्त होती अगर तो परदिन में होती है। जब पूर्व दिन के मध्याह्न को व्याप्त होती है, तब मुख्य प्रयोजक की विद्यमानता के कारण और पूर्वविद्धा होने पर वह गृहीत होती है। उस स्थल में परदिन के मध्याह्न को व्याप्त होने पर भी उसको छोड़ देना चाहिए। अत एव इस प्रकार तिथि प्रशस्यतम है, ऐसा कहा है। पर दिन में जब मध्याह्न को व्याप्त होती है, तब तृतीया के साथ अन्वित न होकर भी प्रधान प्रयोजक के रूप मध्याह्न व्याप्ति की अवस्थिति से परदिन ही गृहीत होती है। इसलिए स्मृत्यन्तरों में कहा है गणेश की चतुर्थी मातृ (तृतीया) विद्धा प्रशस्त है। परदिन में मध्याह्न के ऊपर रहने पर नाग (पंचमी) विद्धा होकर प्रशस्त होती है।

यहां एक प्रश्न होता है—कि अनेक वचनों के द्वारा पूर्व विद्धा तिथि में गणनाथ का सन्तोष होता है। अतः पूर्वतिथि के साथ वेध ही मुख्य प्रयोजक के रूप में अङ्गीकृत होता है यह ठीक नहीं है। क्योंकि मध्याह्न को व्याप्त होने पर होने वाला गुण की व्यर्थता आ जायगी। वहां मध्याह्न व्याप्ति प्रसंगानुसार अनिवार्य न होगी। अतः यह विधान व्यर्थ होता है। पृथक रूप से भी इसके लिये कोई वचन या विषय नहीं कहा गया है।

यहां ऐसा कहा जाता है कि दूसरा पक्ष में भी अनेक वचनों के द्वारा विहित पूर्वविद्धत्व रूप गुण की व्यर्थता से उस अवस्था भी आ जाती है। इसलिए मध्याह्न व्याप्ति के द्वारा ही निर्णय होता है। किन्तु ये उचित नहीं है। जब तिथि का क्षय से दोनों ही दिनों में मध्याह्न व्याप्ति नहीं होती, जब भी पूर्ण मात्रा से दोनों ही दिनों में मध्याह्न व्याप्ति होती, या एक ही अंश में समान रूप व्याप्ति होती तब सर्वत्र मध्याह्न व्याप्ति से निर्णय न

तदेकदेशव्यापित्वं वा समानं तत्र सर्वत्र मध्याह्नव्याप्त्या निर्णयाभावे सति पूर्वविद्धत्वेनैव निर्णेतव्यत्वात्। एवं तर्हि सावकाशनिरवकाशयो र्निरवकाशं बलीय इति न्यायान् मध्याह्नव्यापित्वस्य निरवकाशतया प्राबल्यमित्येव वक्तव्यं, न तु मुख्यतयेति चेत् न मुख्यत्वस्यापि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संभवात्। तिथिनिर्णये कर्मकालव्याप्तिशास्त्रस्य मुख्यत्वमस्य प्रकरणस्य प्रारम्भे दर्शितम्। कर्मकालश्च विनायकव्रतस्य मध्याह्नः।

प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप॥

इति तत्कल्पे विधानात्। अतो मुख्यत्वादपि मध्याह्नव्यापित्वं प्रबलमिति।

ननु कस्याश्चित् स्मृतौ पूर्वविद्धत्वेन मध्याह्नव्यापित्वबाध उपलभ्यते।

जया च यदि संपूर्णा चतुर्थी ह्रसते यदि।
जया सैव हि कर्त्तव्या नागविद्धां न कारयेत्॥

इति स्मरणात्। नैवम्। अस्य वचनस्य दिनद्वये मध्याह्नस्पर्शाभावविषयत्वेनाप्युपपत्तेः। तथाहि। पूर्वदिने विनायकव्रतप्रयोजके मध्याह्ने जया संपूर्णा। परेद्युर्मुहूर्त्तत्रयवशान्मध्याह्नादर्वागेव चतुर्थी समाप्ता। तदा दिनद्वये कर्मकाले ग्राह्यतिथेश्चतुर्थ्या अभावाद् विनायकव्रते किं दिनमुपादेयमिति वीक्षायां पूर्वदिनं विधाय परदिनं प्रतिषेधति।

अथोच्यते। "जया च यदि संपूर्णे"त्यनेन कर्मकालरूपमध्याह्नसमाप्तिपर्यन्तत्वं न विवक्षितं, किं तर्ह्यस्तमयपर्यन्तत्वमिति। एवं तर्हि पूर्वविद्धैव नास्ति। वेधिकायाः पूर्वतिथेः संपूर्णत्वे सति वेध्यायाश्चतुर्थ्या अनवकाशत्वात्।[1]

होने के कारण पूर्वविद्धा को लेकर निर्णय करना चाहिए। ऐसे होने से अवकाश से सहित (सावकाश) और अवकाश से रहित (निरवकाश) इन दोनों में निरवकाश बलवान है इस न्याय से मध्याह्न व्याप्ति निरवकाश होने पर प्रबल होता है, ऐसा कहा जा सकता। किन्तु मुख्यत्व के कारण नहीं होता है। ऐसा प्रश्न होता हैं। उतर के रूप में कहा जाता है कि मुख्यत्व के कारण ही संभावित होता है। तिथि निर्णय में कर्मकाल व्याप्ति को सूचित करने वाला शास्त्रवचन की मुख्यता इस प्रकरण के प्रारम्भ में प्रदर्शित की गयी है। विनायक व्रत का कर्मकाल मध्याह्न होता है। सबेरे शुक्ल तिलों से स्नान करके मध्याह्न में पूजते हैं। इस वचन से विधान मिलता है।

---

१. अवकाशाभावात् इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः मुख्य होने पर भी मध्याह्न व्याप्ति प्रबल होती है। एक प्रश्न होता है—कि कोई एक स्मृति में पूर्वविद्धत्व के द्वारा मध्याह्न व्याप्ति की बाधा दिखाई दी गयी है। अगर तृतीया संपूर्ण रूप से रहती और चतुर्थी का ह्रास होता है, तो तृतीया में ही व्रत करना चाहिए, किन्तु पंचमी युक्त चतुर्थी में नहीं। यह ठीक नहीं है। क्योंकि इस वचन की प्रवृत्ति दो दिनों में मध्याह्न के साथ स्पर्शीभाव के विषय में भी होती है। फिर भी पूर्वदिन में विनायकव्रत का प्रयोजक मध्याह्न में तृतीया संपूर्ण रूप से रहती, परदिन में तीन मुहूर्त्तों का क्षय होने से मध्याह्न से पहले चतुर्थी समाप्त हो जाती है, इस स्थल में दोनों ही दिनों में कर्मकाल में गृहीत होनेवाली चतुर्थी तिथि का अभाव होने पर विनायक व्रत में कौन सा दिन गृहीत होना चाहिए? ऐसा अगर प्रश्न होता तो पूर्व दिन विहित होता है और परदिन प्रतिषिद्ध होता है।

ऐसा इसका उत्तर होता है। इसके बाद कहा जाता है—कि तृतीया यदि संपूर्ण रूप से रहती इस कथन से कर्मकाल के रूप में स्वीकृत मध्याह्न के समाप्ति पर्यन्त वह नहीं रहती है, ऐसी विवक्षा होती है। क्या अस्त पर्यन्त रहती? ऐसे होने से पूर्वविद्धा ही नहीं है। वेध करने वाली पूर्व तिथि यदि संपूर्ण रूप से रहती तो विद्ध होनेवाली चतुर्थी अनवकाश हो जाती है।

अथ माभूत् पूर्वविद्धत्वं, तथापि मध्याह्नव्यापिन्यां जयायां विहितायां परेद्युर्मध्याह्नव्यापित्वं बाध्यते इति चेन्मैवम्। न खलूत्तरस्य दिनस्य हेयत्वे मध्याह्नव्यापित्वं कारणतयोपन्यस्यते, किन्तु नागविद्धत्वम्। अतो नागविद्धत्वनिन्दायां वचनस्य तात्पर्यं, न चतुर्थीरहितजयाविधाने। अन्यथा चतुर्थीनिन्दायामपि तात्पर्यं प्रसज्येत। न च तद्युक्तम्। न हि वरघाताय कन्यामुद्वाहयन्ति।

वचनच्छाया तु नागविद्धा हेयत्वे कैमुतिकन्यायपरा लक्ष्यते[1] यदि शब्द प्रयोगात्। यद्यपि जया[2] संपूर्णा तथापि नागविद्धा हेया किमुत जयायुक्तायां चतुर्थ्यां संभवन्त्यामिति हि वचनव्यक्तिः। मध्याह्नव्याप्ता-

---

१. वचनच्छायया तु नागविद्धाहेयत्वे कैमुतिकन्यायेन परा लक्ष्यते इति पाठान्तरम्।

२. तृतीया—अष्टमी—त्रयोदशीतिथीनां जयात्वेऽपि प्रकरणवशादत्र तृतीयाऽवगन्तव्या।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वियती भक्तिः कुतस्तत्रेति चेत् । चतुर्थीरहितायां शुद्धतृतीयायां तवापि कुतो भक्तिरिति समानः पर्यनुयोगः । वचनबलादित्युत्तरमस्माकमपि । वचनयोः परस्परकलहे पूर्वोक्ताभ्यां मुख्यत्वनिरवकाशत्वाभ्यां मध्याह्नव्यापित्ववचनमेवातिप्रबलं विद्धि । विनायकव्रते तस्य प्रतिपदोक्तत्वादपि प्रबलत्वम् । जयावचनं तु गौर्यादिव्रते चरितार्थम् । तच्च व्रतं भविष्यत्पुराणेऽभिहितम्—

यहाँ प्रश्न होता है—पूर्वविद्धा न हो । तथापि मध्याह्न को व्याप्त होने वाली तृतीया में विहित होने से परदिन की मध्याह्न व्याप्ति बाधित होती है । यह ठीक नहीं है । परदिन की बाधा के लिए मध्याह्न व्याप्ति ही कारण के रूप में उपन्यस्त की जाती है ऐसा नहीं । किन्तु पंचमी के साथ वेध ही यहाँ हो सकता है । अतः नाग या पंचमी के साथ विद्धा चतुर्थी का निन्दार्थ में वचन का तात्पर्य माना जाता है । किन्तु चतुर्थी रहित तृतीया का विधान यहां निन्दा का विषय न होता है । ऐसा अगर नहीं होता तो चतुर्थी का निन्दार्थ में वचन की प्रवृत्ति हो जाती है । यह भी युक्ति युक्त नहीं होता है । वर हत्या को चरितार्थ करने के लिये कन्या विवाहित नहीं करते हैं ।

यदि शब्द का प्रयोग से कौमुतिक न्याय में भी वचन की छाया पर विद्धा को ही लक्षित करती है । यदि तृतीया संपूर्ण रूप से रहती, तथापि पञ्चमी विद्धा होती है । तृतीया के साथ युक्त होने वाली चतुर्थी की संभावना में वचन का आशय क्या न हो सकता ? मध्याह्न व्याप्ति के लिए ऐसी ही आपकी भक्ति क्यों है । ऐसा अगर प्रश्न होता तो चतुर्थी के बिना शुद्ध तृतीया में भी आपकी क्यों भक्ति होती ?—इस प्रकार परस्पर अन्योन्याश्रय प्रश्न होता होता है । वचन बल के अनुसार हमारा भी उत्तर होगा । दोनों वचनों में परस्पर कलह होने से मुख्यत्व और निरवकाशत्व जो पूर्व से कहे गये हैं, इन दोनों के द्वारा मध्याह्न वचन अति प्रबल हो जाता है, ऐसा जान लेना चाहिए । विनायकव्रत में उसका प्रतिपद में भी उक्त होने के कारण प्रबल है । जया (तृतीया) वचन गौरीप्रभृतिव्रत के बारे में चरितार्थ होता है । यह व्रत भविष्यत्पुराण में अभिहित किया है ।

विनायकं समभ्यर्च्य चतुर्थ्यां यदुनन्दन ।
सर्वविघ्नविनिर्मुक्तः कार्यसिद्धिमवाप्नुयात् ॥

इत्यभिधायानन्तरमिदं पठ्यते—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निद्रां रतिं शिवां भद्रां कीर्त्तिं मेधां सरस्वतीम् ।
प्रज्ञां तुष्टिं तथा कान्तिं तत्रैवाहनि पूजयेत् ॥
विद्याकामो विशेषेण पूजयेच्च सरस्वतीम् ॥ इति

लिङ्गपुराणेऽपि—

चतुर्थ्यां तु गणेशस्य गौर्याश्चैव विधानतः ।
पूजां कृत्वा लभेत् सिद्धिं सौभाग्यं च नरः क्रमात् ॥ इति

नारदीयपुराणेऽपि—

माघशुक्लचतुर्थ्यां तु गौरीमाराधयेद् बुधः ।
चतुर्थी वरदा नाम गौरी तत्र सुपूजिता ॥ इति

अतो यथोक्तरीत्या विनायकव्रते मध्याह्नव्याप्त्यैवैव निर्णयः । गौरीव्रते तु जयावचनं द्रष्टव्यम् । तत्र यदा दिनद्वयेऽप्येतद् वैषम्येण मध्याह्नैकदेशव्यापिनी तदा पूर्वदिने तन्महत्त्वं चेत् तदेवोपादेयम् ॥[1]

हे यदुनन्दन ! चतुर्थी में विनायक को अर्चित करके सब प्रकार विघ्नों से मुक्त होकर कार्यसिद्धि रूप फल को पाता है । इस प्रकार कहने के बाद फिर ऐसा कहा है—निद्रा, रति, शिवा, भद्रा, कीर्त्ति, मेधा, सरस्वती, प्रज्ञा, तुष्टि और कान्ति को उस दिन में ही पूजते हैं । विद्या की कामना करने वाले लोग विशेष रूप से सरस्वती को ही पूजते हैं ।

लिंगपुराण में भी कहा हैं—चतुर्थी में गणेश और गौरी की पूजा विधान के अनुसार करके नर क्रमानुसार सिद्धि और सौभाग्य को पाता है । नारदीय पुराण में कहा है—माघमास का शुक्लपक्ष की चतुर्थी में पण्डित लोग गौरी की आराधना करते हैं । उस चतुर्थी का नाम वरदा चतुर्थी है । उसमें गौरी की पूजा होती है ।

अतः यथोक्त रीति से विनायकव्रत में मध्याह्न व्याप्ति को उपजीव्य करके ही निर्णय होता है । गौरी व्रत में जया (तृतीया) वचन को देखना चाहिए । वहाँ दोनों ही दिनों में जब मध्याह्न के एकदेश में विषम रूप से व्याप्त होती है, तब पूर्व दिन में उसका आधिक्य रहने पर उस दिन में ही व्रत का उपादान (ग्रहण) होता है ।

---

१. लिङ्गं च वचनं देशः कालोऽयं कर्मणः फलम् ।
मीमांसाकुशलाः प्राहुरनुपादेयपञ्चकम् ॥
इति न्यायेन वचनस्यानुपादेयत्वोक्त्याऽवगम्यमानत्वेऽपि प्राकरणिकरुपादेयता तत्प्रकरणाबाधितनिरूपणगोचरेति प्राग्वादिनः ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरदिने तन्महत्त्वे किं महत्त्वगुणेन तदुपादेयं, किं वा मातृविद्धत्वगुणेन पूर्वमुपादेयमिति संशये पूर्वमिति ब्रूमः। परस्य नागविद्धत्वदोषोपेतत्वात् पूर्वस्य च तदभावत्वात्। एतदेवाभिप्रेत्य स्कन्दपुराणे पठ्यते—

ज्यैष्ठे च वटसावित्री तथानङ्गत्रयोदशी।
विनायकचतुर्थी च कर्त्तव्या संमुखी तिथिः॥ इति

विनायकव्रतवन्नागव्रतेऽपि चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्य। नागव्रतं च कूर्मपुराणे दर्शितम्—

तिथौ युगाह्वयायां च समुपोष्य यथाविधि।
शङ्खपालादिनागानां शेषस्य च महात्मनः॥
पूजा कार्या पुष्पगन्धक्षीराप्यायनपूर्वकम्।
विषाणि तस्य नश्यन्ति न च तान् घ्नन्ति पन्नगाः॥ इति

युगाह्वया चतुर्थी। मध्याह्नव्यापित्वं देवलेनोक्तम्—

युगं मध्यन्दिने यत्र तत्रोपोष्य फणीश्वरान्।
क्षीरेणाप्याज्य पञ्चम्यां पूजयेत् प्रयतो नरः॥
विषाणि तस्य नश्यन्ति न तान् हिंसन्ति पन्नगाः॥ इति

परदिन में अगर आधिक्य होता तो अधिकता को लेकर उसका ग्रहण होता है? या मातृ (तृतीया) विद्धत्व के रूप गुण को लेकर पूर्व दिन का ग्रहण होता है? इस संशय में पूर्वदिन को ही ग्रहण करने के लिए हम बोलेंगे। परदिन का नाग या पञ्चमी वेध रूप दोष हेतु से गृहीत नहीं होता परन्तु पूर्वविद्धा में वैसा नहीं है। इसको ही अभिव्रत करके स्कन्द पुराण में कहा है—

वट सावित्री, अनंग त्रयोदशी और गणेश चतुर्थी सम्मुखी तिथि में करनी चाहिए। विनायकव्रत की तरह नाग चतुर्थी में भी मध्याह्न को व्याप्त होने वाली तिथि गृहीत होती है। कूर्मपुराण में नागव्रत के बारे में कहा है—

युग अर्थात् चतुर्थी तिथि में उपवास करके फूल, गन्ध और दूध प्रभृतिओं के द्वारा शंखपालादि शेष नागों को आप्यायित करने से उनका विष नष्ट हो जाता है और ये दंशन नहीं करते हैं। युगशब्द से चतुर्थी सूचित होती है। चतुर्थी की मध्याह्नव्याप्ति के बारे में देवल ने कहा है—मध्याह्न को व्याप्त होने वाली चतुर्थी में उपवास करके नागों को दूध से आप्यायित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर प्रयत्नपूर्वक पूजा करते हैं। उनका विष नष्ट हो जाता है और ये हिंसा नहीं करते हैं।

युगं चतुर्थी। विनायकचतुर्थीनागचतुर्थ्योरियान् विशेषः—एकभक्तन्यायेन मध्याह्नव्याप्तेः षोढ़ा भेदे सति यदा परेद्युरेव मध्याह्नव्याप्तिस्तदा विनायकचतुर्थी परा। इतरेषु तु पञ्चसु भेदेषु जयायोगस्य प्रशस्तत्वात् पूर्वेद्युरेव सा भवति। यदा तु पूर्वेद्युरेव मध्याह्नव्यापिनी तदा नागचतुर्थी पूर्वा। इतरेषु तु पञ्चसु भेदेषु पञ्चमीयोगस्य प्रशस्तत्वात् उत्तरा भवति। तत्प्राशस्त्यं च—

"चतुर्थी पञ्चमीयुक्ता नगाप्रीतिविवर्धिनी।
प्रीताः स्युः पूजितास्तस्यां नागांस्तांस्तत्र पूजयेत्॥

इति वचनाद् अवसीयते।

इति चतुर्थीनिर्णयः।

गणेश चतुर्थी और नाग चतुर्थो में यह है विशेषा एकभक्त न्याय से मध्याह्न व्याप्ति का छ भेद होने पर भी जब परदिन में मध्याह्न व्याप्ति होती है, तब गणेश चतुर्थी मानी जाती है। दूसरे पांच पक्षों में जया योग प्रशस्त होने के कारण पूर्वदिन ही गृहीत होती है। जब पूर्वदिन में चतुर्थी मध्याह्न को व्याप्त होकर रहती है, तब नागचतुर्थी पूर्वदिन में मानी जाती है। दूसरे पांच पक्षों में पञ्चमी के साथ योग प्रशस्त होने से परदिन गृहीत होता है। उनकी प्रशस्ति का "पूजयेत्" इस वचन से अवसान होता है। यथा पञ्चमी युक्त चतुर्थी नागों को आनन्द देनेवाली है। उस तिथि में पूजित होने पर प्रीत होते हैं। इसलिये उस सिथि में उनकी पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार चतुर्थी का निर्णय समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चमी निर्णीयते।

युग्मशास्त्रेण पञ्चमी पूर्वविद्धा ग्राह्या॥

ननु,

प्रायः प्रान्त उपोष्या हि तिथिर्देवफलेप्सुभिः॥

इति शिवरहस्य—सौरपुराणयोस्तिथ्यग्रभागस्य उपवासाङ्गत्वाभिधानात् पञ्चम्युपवासः परेद्युः प्राप्नोति। तन्न। हारीतेन परविद्धायाः प्रतिषिद्धत्वात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया न तु।
दैवे कर्मणि पित्र्ये च शुक्लपक्षे तथाऽसिते ॥ इति ।

न चैतावता, "प्रायः प्रान्त" इति वचनस्य निर्विषयत्वं शङ्कनीयम्। निर्णीतासु निर्णेष्यमाणासु च तिथिषु यत्र यत्र परविद्धोपवासः शास्त्रान्तरेण प्राप्तस्तस्य सर्वस्य तद्विषयत्वोपपत्तेः न च तेनैव शास्त्रेण तदुपवाससिद्धेः कृतमनेन वचनेनेति शङ्कनीयम्। सामान्यविशेष-रूपेण शास्त्रद्वयस्यापि चरितार्थत्वात् । तस्य च सामान्यशास्त्ररूपस्य प्रान्तोपवासवचनस्य विरोधिना षष्ठीयुक्तपञ्चमीनिषेधकेन विशेष-शास्त्ररूपेण हारीतवचनेन बाधो युज्यते। एतादृशं बाधमभिलक्ष्यैव "प्रायः प्रान्त उपोष्या" इति प्रायःशब्दः प्रयुक्तः ॥

अब पञ्चमी निर्णय का प्रारम्भ होता है। युग्म वचन के अनुसार पञ्चमी पूर्वविद्धा गृहीत होती है। यहां एक प्रश्न होता है—फल कामना करने वाले लोग तिथि का प्रान्तभाग को लेकर ही उपवास करते हैं। शिवरहस्य और सौरपुराण के इस वचन को लेकर तिथि का अग्रभाग उपवास के लिए अंग होता है। इस आधार से भी पञ्चमी का उपवास परदिन में प्राप्त होता है। यह ठीक नहीं है। हारीत ने परविद्धा प्रतिषिद्ध किया है।

"चतुर्थी के साथ युक्त पञ्चमी में दैव कार्य किया जाता है। परदिन के साथ नहीं। शुक्ल और कृष्ण पक्षों में दैव और पितृकर्म इस प्रकार होते हैं"।

किन्तु इससे "प्रायः प्रान्त" इस वचन की निर्विषयता के बारे में शंका नहीं करनी चाहिये। जिन तिथिओं का निर्णय हो गया है, और जिनका निर्णयनहीं हुआ है, उन स्थलों में बहां भिन्न वचनों के द्वारा परविद्धा तिथि में उपवास प्राप्त होता है, ये सब विषय में इसकी व्यवस्था होती है। किन्तु

उस वचन से उपवास की सिद्धि होने पर इस वचन की स्थिति नष्ट हो जाती है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि सामान्य और विशेष के रूप में दोनों को व्यवस्था होती है। प्रान्तोपवास को प्रकाश करने वाला वचन सामान्य वचन होता है। इसकी विरोधी षष्ठी के साथ युक्त होने वाली पञ्चमी को निषेध करने वाला हारीत वचन के रूप विशेष वचन से बाधा युक्ति संगत होती है। इस प्रकार बाधा को लक्ष्य करके "प्रायः प्रान्त उपोष्या" इस वचन में प्राय शब्द का प्रयोग हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिपन्न्यायेन 'पौर्वाह्णिकाः' इति वचनबलात् पञ्चम्यामपि दानव्रतयोः परदिनानुष्ठानप्राप्तौ तद्व्यावृत्तये हारीतवचने "दैवे कर्मणि" इत्युच्यते। न च दैवकर्मणि पूर्वाह्णस्य कर्मकालत्वात् कर्मकालशास्त्रप्राबल्यस्य च वर्णितत्वात् तद् बाधो न युक्त इति शङ्कनीयम्। विधेर्निषेधस्य वा प्रतिपदोक्तस्य प्रबलतरत्वात् न च पूर्वदिनपूर्वाह्णस्यात्यन्तमकर्मकालत्वं, साकल्यवचनापादितकर्मकालत्वस्य सद्भावात् ईदृशमेव विषयमभिलक्ष्य साकल्यवचनस्य प्रवृत्तत्वात्। स्वाभाविकतिथिव्याप्तियुक्ते विषये साकल्यवचनस्य निरर्थकत्वात्। तस्माद्दैवकर्मणि परविद्धायाः पञ्चम्याः निषेधो न विरूध्यते। नन्वेवमपि पित्र्ये तन्निषेधो निरर्थकः। पित्र्यस्य स्वत एव परविद्धायामप्राप्तत्वात्। मैवम्। दृष्टान्ततयाऽपि तदुपन्यासोपपत्तेः। यथा पित्र्ये कर्मणि उत्तरविद्धा न ग्राह्या, तथा दैवेऽपीति विवक्षया दैव-पित्र्ययोः सहोपन्यासः। ननु व्यासनिगमगतं युग्मशास्त्रमुदाहृत्य भवता पञ्चम्याः पूर्वविद्धत्वमभिधीयते। आपस्तम्बादयस्तु तद्विपर्ययेण युग्मान्युदाजह्नुः—

प्रतिपद निर्णय के न्याय से (पौर्वाह्णिका) इस वचन बल से पञ्चमी में होने वाले दान और व्रतों का भी परदिन में अनुष्ठान प्राप्त होने पर उसको पृथक करने के लिए हारीत वचन में "दैवे कर्मणि" ऐसा कहा है। दैव कर्म में पूर्वाह्ण कर्मकाल स्वीकृत है। इस लिए कर्मकाल को प्रकाश करने वाला वचन का प्राबल्य वर्णित होने से उसको बाधित नहीं करनी चाहिए ऐसी शंका नहीं रखनी चाहिए। विधि हो या निषेध हो प्रतिपद में उसकी प्रबलता कही गयी है। किन्तु पूर्वदिन का पूर्वाह्ण अत्यन्त कर्मकाल नहीं है क्योंकि साकल्यवचन के अनुसार कर्मकाल की स्थिति रहती है। इस प्रकार विषय को अभिप्रेत करके साकल्य वचन की प्रवृत्ति होती है। स्वाभाविक रीति से तिथि की व्याप्ति के साथ युक्त विषय के स्थल पर साकल्य वचन निरर्थक होता है। इस कारण से दैव कर्म में परविद्धा पञ्चमी का निषेध विरूद्ध नहीं होता है। एक प्रश्न आता है कि इसी तरह पितृ कर्म के बारे में भी होने वाला निषेध निरर्थक होगा। पितरों के तरफ आप से आप परविद्धा की प्राप्ति नहीं होती है, यह ठीक नहीं है। दृष्टान्त के रूप से भी इस विषय का उपन्यास करने से उपपत्ति मिल जायगी। यथा— पितरों के कर्म में उत्तरविद्धा तिथि गृहीत नहीं होती है। उसी प्रकार दैव-कर्म में भी ऐसे कहने से दैव और पितरों का एकत्र उपन्यास हुआ है। फिर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी एक प्रश्न होता है—व्यासजी के द्वारा कथित निगम वचन में आनेवाला युग्मवचन को उदारण के रूप में मानकर आपने पञ्चमी पूर्वविद्धा हो सकती है। ऐसे कहा है। किन्तु आपस्तम्ब प्रभृतियों के द्वारा उस वचन के विपरीत युग्म वचन उदाहरण के रूप में उदाहृत किये हैं :—

प्रतिपत्सद्वितीया स्याद् द्वितीया प्रतिपद्युता।
चतुर्थी सहिता या च सा तृतीया फलप्रदा॥
पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता च नारद॥ इति।

अत एवैतद्युग्म-शास्त्र-पर्यालोचने पञ्चम्याः परविद्धत्वं प्राप्नोति। बाढम्। अत एवात्र शुक्ल-कृष्ण-शास्त्रेण व्यवस्था प्रसक्ता। तां व्यवस्थां निषेद्धुं हारीतेन "शुक्लपक्षे तथाऽसिते" इत्युक्तम्। न च सा व्यवस्था वचनेन निषेद्धुमशक्या "किं हि वचनं न कुर्यान्नास्ति वचनस्यातिभारः" इति न्यायात्। तस्माद्धारीत वचनेन पञ्चमी पूर्व-विद्धा ग्राह्या। स्कन्दपुराणेऽपि—

"पञ्चमी च तथा कार्या चतुर्थ्या संयुता विभो॥ इति।

तथा पद्मपुराण-भविष्यपुराणयोः पूर्वोत्तरविद्धाविषयौ विधि-निषेधौ स्मर्य्येते—

पञ्चमी तु चतुर्थ्या तु कार्या षष्ठ्या न संयुता॥ इति।

यत् तु ब्रह्मवैवर्त्तेऽभिहितम्—

पञ्चमी तु प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद॥ इति।

द्वितीया के साथ प्रतिपद, प्रतिपद के साथ द्वितीया और चतुर्थी के साथ तृतीया फलप्रदा होती है। हे नारद, षष्ठी से युक्त पंचमी, करनी चाहिए।

अतएव इस युग्म वचन के पर्यालोचन से पंचमी परविद्धा होती है ऐसा निश्चित होता है। अतः यहाँ शुक्ल और कृष्ण पक्ष के बारे में भेद कर वचन को व्यवस्थित किया जाता है। उस व्यवस्था को निषिद्ध करने के लिए हारीत ने "शुक्लपक्षे तथाऽसिते" ऐसा कहा है। उस व्यवस्था को वचन से निषिद्ध नहीं किया जा सकता, ऐसा नहीं। क्योंकि "वचन से क्या नहीं किया जा सकता? वचन से अधिक भार अन्य किसका नहीं है" इस न्याय से यह फलित होता हैं। इसलिये हारीत वचन के अनुसार पंचमी पूर्वविद्धा गृहीत होती है। स्कन्दपुराण में भी कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे विभु ! चतुर्थी के साथ युक्त पंचमी को करनी चाहिये। इस प्रकार पद्मपुराण और भविष्यपुराण में पूर्वविद्धा और उत्तरविद्धा विषय विधि-निषेध के रूप में स्मरण किया है। यथा—चतुर्थी से संयुक्त पंचमी करनी चाहिये किन्तु षष्ठी के साथ संयुक्त होने पर पंचमी नहीं, जो विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में अभिहित किया है कि "हे नारद ! षष्ठी के साथ युक्त पंचमी को करनी चाहिए"

तद्वचनं स्कन्दोपवास-विषयतया सङ्कोचनीयं वाक्य-शेषे तथाऽभिधानात्।

स्कन्दोपवासे स्वीकार्या पञ्चमी परसंयुता।

इति हि वाक्यशेषः। न चासञ्जातविरोधिनो वाक्योपक्रमस्य सञ्जातविरोधिना वाक्यशेषेण कथं सङ्कोच इति शङ्कनीयम्। असन्दिग्धोपक्रमस्य प्राबल्येऽपि सन्दिग्धोपक्रमस्य वाक्यशेषेण निर्णतव्यत्वात्। अत एव जैमिनिनाऽपि सूत्रितम् 'सन्दिग्धेषु वाक्यशेषात्[1]" इति। अतः स्कन्दोपवासे पञ्चमी परविद्धा अन्यत्र पूर्वविद्धेति स्थितम्॥

इति पञ्चमीनिर्णयः।

वह वचन स्कन्द–उपवास के विषय में संकुचित होता है। क्योंकि वाक्यशेष अर्थात् अर्थवाद में वैसा कहा है। "स्कन्दोपवास में परविद्धा पंचमी को स्वीकार करना चाहिये"। यही है वाक्य शेष। जिस वाक्य का उपक्रम असंजात विरोधी अर्थात् जिसका कोई विरोधी का जन्म से पहले नहीं हुआ है, वह संजात विरोधी रूप वाक्यशेष से अर्थात् जिसका कोई विरोधी का जन्म बाद में हुआ है, उससे कैसे संकुचित किया जा सकता, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि जिसका उपक्रम अर्थात् प्रारम्भ में सन्देह नहीं है, वह प्रबल हैं। प्रबल होने पर भी जिसका उपक्रम में सन्देह है, उसका निर्णय वाक्यशेष से अर्थात् अर्थवाद से होता है। अतएव जैमिनि ने भी सूत्ररूप से उपस्थापित किया है कि सन्दिग्ध होने पर वाक्य-

---

१. पू० मी० १।४।२९ वाकयशेषो नाम अर्थवादः। विध्यर्थेन सह मिलित्वा तत्परकत्वेन तस्य प्रामाण्यम्। वाक्योपक्रमो नाम विधिगतप्रवृत्तेरभिक्रमः, स सदा असञ्जातविरोधी विधित्वात्। वाक्यशेषस्य नाम अर्थवादस्य स्वयं प्रामाण्यासिद्धौ सञ्जातविरोधित्वम्। विधिकार्यस्य सन्देहे वाक्यशेषस्य सञ्जातविरोधित्वेऽपि प्रामाण्यमाहिण्डघते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शेष के द्वारा निर्णय कर लेना चाहिये"। इसलिये स्कन्दोपवास में परविद्धा पञ्चमी और दूसरे स्थानों में पूर्वविद्धा पञ्चमी गृहीत होती है, ऐसा निश्चित किया है।

इस प्रकार पञ्चमी का निर्णय समाप्त हुआ है॥

अथ षष्ठी निर्णीयते

सा च युग्मशास्त्रद्वयेन द्विविधा प्रतिभाति। तत्र "षण्मुन्योः" इत्येकं युग्मशास्त्रम्। तेन षष्ठ्याः सप्तमीविद्धत्वं प्रतीयते।

"पञ्चमी तु कर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद"।

इत्यपरं युग्मशास्त्रम्। तेन षष्ठ्याः पञ्चमीविद्धत्वं प्रतीयते। तयोः शास्त्रयोः किं शुक्ल-कृष्णभेदेन व्यवस्था कार्या, किं वा दैवपित्र्यभेदेन, उत स्कन्दव्रतान्यव्रतभेदेन? तत्र न तावत्प्रथमः कल्पः, सुमन्तुना पक्षद्वयव्यवस्थां निराकृत्य दैवपित्र्यभेदेन व्यवस्थापितत्वात्। तथा च तद्वचनम्—

नाग विद्धा न षष्ठी स्यात् पक्षयोरुभयोरपि।
दैवे कर्मणि तामन्त्यां पित्र्ये पूर्वेण संयुताम्॥ इति।

नापि द्वितीयः, दैवपित्र्यभेदेन व्यवस्थाया अयुक्तत्वात्। तथा हि यदेतत्सुमन्तुना दैवे कर्मणि शुक्लकृष्णपक्षद्वयगतायाः षष्ठ्या नागविद्धत्वं प्रतिषिध्यते, तत्तथाऽस्तु। यत्तु नाग-विद्धायाः पित्र्ये व्यवस्थापनं तत्र वक्तव्यम्, किं पूर्वविद्धत्वमेमोद्दिष्टविषयं, किं वा पार्वणविषयम्? नोभयमप्युपपद्यते। मध्याह्नापराह्णव्याप्तिभ्यामेव द्वयोर्निर्णये सति पूर्वविद्धताया अकिंचित्करत्वात्। न चैवं मन्तव्यं परेद्युः सत्यामपि मध्याह्नापराह्णव्याप्तौ तत्परित्यागाय पूर्वविद्धत्वविधानम् इति। मुख्यकर्मकालव्याप्तेः परित्यागायोगात्। अन्यथा मूषकभिया स्वगृहं दहति न्याय आपतेत्[1]।

---

1. स्वल्पार्थं बहुनाशनमविवेकाय कल्पते इत्यर्थः। रघुवंशे तदेव कविभणितिः अल्पस्य हेतो र्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्। २।४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब षष्ठी का निर्णय हो रहा है। वही षष्ठी दो युग्म वचनों के द्वारा दो प्रकार प्रतिभात होती है। वहां "मुनि सप्तमी के साथ षष्ठी" यह एक युग्म वचन है। उसने षष्ठी सप्तमीविद्धा है, वैसा प्रतीत होता है। हे नारद! षष्ठी के साथ युक्त पञ्चमी करनी चाहिये (युग्म होने के कारण पंचमी के साथ षष्ठी माननीय है)। यह दूसरा युग्म वचन है। उसमें षष्ठी पंचमी-विद्धा है, वैसा प्रतीत होता है। इन दोनों शास्त्र वचनों की व्यवस्था क्या शुक्ल कृष्णभेदे के अनुसार होती या दैव-पितृकार्य का भेद से होती है? या स्कन्दव्रत और दूसरे व्रतों के भेद से? यहाँ पहला पक्ष स्वीकृत नहीं होता है। सुमन्तु ने दो पक्षों की भेदव्यवस्था का निराकरण कर दैव और पितरों के भेदानुसार व्यवस्थापित किया है। वह वचन इस प्रकार है—नाग या पञ्चमी से विद्धा षष्ठी दोनों भी पक्षों में गृहीत नहीं होती है। यह है दैव-कर्मों का विषय। पूर्वतिथि के साथ अगर युक्त हो तो षष्ठी पितरों के लिये मानी जाती है।

दूसरा पक्ष भी नहीं मान्य होता है, क्योंकि दैवकर्म-पितृकर्मों की भेद व्यवस्था अयुक्त है। फिर भी सुमन्तु ने शुक्ल-कृष्णपक्षों की पञ्चमीविद्धा षष्ठी का जो निषेध कहा है, वह उस प्रकार से रहने दो। पितरों के लिये जो पञ्चमीविद्धा की व्यवस्था कही गई है, उस विषय में अब कहा जाता है कि—पूर्वविद्धा विषय क्या एकोद्दिष्ट के लिए कहा है या पार्वण के लिए दोनों के लिये तो नहीं आता है? क्योंकि एकोदिष्ट के लिए मध्याह्नव्याप्ति और पार्वण के लिये अपराह्णव्याप्ति आवश्यक है। पूर्वविद्धा होने पर दो प्रकार की व्याप्ति कुछ मात्रा में भी नहीं होती है। किन्तु इस प्रकार मन्तव्य नहीं प्रकाशित किया जायगा। क्योंकि पर दिन में मध्याह्न और अपराह्ण इन दोनों की व्याप्ति होने पर भी उसको परित्याग करने के लिए पूर्वविद्धा का विधान हुआ है। मुख्य रूप से स्वीकृत कर्मकाल की व्याप्ति का परित्याग नहीं किया जा सकता। ऐसा अगर न होता तो 'चूहा का भय से घर में आग लगा देना' इस प्रकार अपरिणामदर्शिता (मूर्खता) के रूप न्याय आ जायगा।

तर्हि सुमन्तु वचनस्य का गतिरिति चेत्। उच्यते। न खल्वेतद् वचनं पित्र्ये पूर्वविद्धां विधातुं प्रवृत्तत्। किं तर्हि दैवे तां निवारयितुं तत्प्रवृत्तिः। तत्रार्थवादत्वेन पित्र्ये साऽभ्यनुज्ञायते। तत्रेयं वचन-व्यक्तिः यदि नाम कथञ्चित् पूर्वविद्धा भवेत्, भवतु नाम सा पित्र्ये,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिथि मूलस्य प्रायेण पितृतुष्टिहेतुत्वात् दैवे तु सर्वथा पूर्वविद्धा न ग्राह्येति। तस्मात् तृतीयः पक्षः परिशिष्यते। स्कन्दव्रते पूर्वविद्धा व्रतान्तरेषु तूत्तरविद्धेति। तत्र स्कन्द-षष्ठ्याः पूर्वविद्धत्वमाह वसिष्ठः—

कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी।
एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्॥ इति

स्कन्दषष्ठी लिङ्गपुराणे दर्शिता—

प्रत्यब्दमपि पूजाञ्च षष्ठ्यां कार्या गुहस्य च।
दीप्ताग्निः स सुखी च स्यात्तस्मिन्नागामिवत्सरे॥ इति

तथा। तत्रैव रविषष्ठी दर्शिता—

षष्ठ्यामुपोष्य विधिवत्सप्तम्यामर्कमर्चयेत्।
[1]स द्रव्यतागरुक् चैव संप्राप्नोतीप्सितं फलम्॥ इति।

फलषष्ठी मन्दारषष्ठीत्यादिव्रतानि भविष्योत्तरे प्रोक्तानि। तत्र तत्र रव्यादिव्रतेषु परविद्धा ग्राह्या। तदुक्तं विष्णुधर्मोत्तरे—

तब एसा होने पर सुमन्तुवचन की गति क्या होगी? उत्तर है कि यह वचन पितरों के लिये पूर्वविद्धा को विधान करने के लिये प्रवृत्त नहीं है। प्रश्न होता हैं, क्या दैवकर्म में उस तिथि को निवारित करने के लिये इस वचन की प्रवृत्ति होती है? उस स्थल में अर्थवाद के रूप से पितरों के लिये तिथि की प्रवृत्ति मानी जाती है। इस वचन की विवृत्ति यह है कि अगर तिथि कोई भी प्रकार से पूर्वविद्धा होती, तो पितरों के लिये वही तिथि निश्चित की जाती है। क्योंकि तिथि के मुल उद्देश्य है पितरों को सन्तोष प्रदान करना। दैवकर्म में तो सब प्रकार से पूर्वविद्धा परित्यक्त होती है। इसलिये तीसरा पक्ष अवशेष रूप से रह जाता है। स्कन्दव्रत में पूर्वविद्धा गृहीत होती है। दूसरे व्रतों में परविद्धा मानी जाती है। स्कन्दषष्ठी को पूर्वविद्धा के रूप से ग्रहण करने के लिये वसिष्ठ ने आज्ञा दी है—

कृष्णपक्ष की अष्टमी, स्कन्द षष्ठी, शिवरात्रि की चतुर्दशी, ये सब पूर्वविद्धा होकर पूज्य होती हैं और तिथि के अन्त में पारण किया जाता है।

स्कन्दषष्ठी लिग पुराण में प्रदर्शित किया है—हर साल षष्ठी में कार्त्तिकेय

---

१. "सद्द्रव्यभार्गैर्विविधै"रिति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की पूजा करनी चाहिए। वह पूजा संमुखी तिथि में अर्थात् सायाह्न को व्याप्त होनेवाली पूर्वविद्धा तिथि में होती हैं। फिर वहां भी रविषष्ठी के बारे में कहा है—विधिपूर्वक षष्ठी में उपवास कर सप्तमी में अर्क अर्थात् सूर्य की उपासना की जाती है। ऐसे होने पर कर्त्ता द्रव्यार्जन कुशल होता है, निरोगता और इप्सित फल को पाता है। फलषष्ठी प्रभृति व्रतों के बारे में भविष्योत्तर पुराण में कहा गया है। उन उन स्थलों पर रवि के उद्देश्य में होने वाले व्रतों के लिए परविद्धा तिथि गृहीत होती हैं। इसके बारे में विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा है—

एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशा।
अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः॥ इति

यद्यप्यत्र व्रतविशेषो नोपात्तः, तथापि स्कन्दव्रतस्य पूर्वविद्धायां विहितायां परिशेषादन्येषामुत्तरविद्धा भवन्ति। तेषामप्यविरोधात पूर्वविद्धाऽस्त्विवति चेत्, न। प्रतिषेधात्। तथा च निगमः—

नागविद्धा तु या षष्ठी रुद्रविद्धो दिवाकरः।
कामविद्धो भवेद् विष्णु र्नं ग्राह्यस्ते तु वासराः॥ इति

नागः पंचमी, रुद्रः षष्ठी, दिवाकरः सप्तमी। कामस्त्रयोदशी। विष्णुर्द्वादशी। शिवरहस्यसौरपुराणयोः—

नागविद्धा तु या षष्ठी शिवविद्धा तु सप्तमी।
दशम्येकादशी विद्धा नोपोष्या तु कथञ्चन॥ इति

तथा पूर्वविद्धा प्रतिषेधः, उत्तरविद्धाविधिश्चेत्युभयं सहैव स्कन्दपुराणे पठ्यते—

नागविद्धा तु कर्त्तव्या षष्ठी च न कदाचन।
सप्तमीसंयुता कार्या षष्ठी धर्मार्थचिन्तकैः॥ इति

ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि—

नहि षष्ठी नागविद्धा कर्त्तव्या तु कदाचन।
नागविद्धा तु या षष्ठी कृता पुण्यक्षया भवेत्॥
सप्तम्या सह कर्त्तव्या महापुण्य-फलप्रदा॥

एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, पौर्णमासी, चतुर्दशी, आमावस्या और तृतीया परविद्धा होकर पूजा और उपवास के लिए योग्य होती हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यपि यहां व्रत विशेष के बारे में कुछ नहीं कहा गया तथापि स्कन्द व्रत का निर्णय पूर्वविद्धा में हो जाने पर अवशिष्ट दूसरे व्रतों का निर्णय परविद्धा तिथि में होती है ऐसा मान लिया जाता है। उनके विरोध न होने के कारण पूर्वविद्धा तिथि में निर्णय हो" इस प्रकार प्रश्न होने पर उत्तर ऐसा होता है कि यह ठीक नहीं है। क्योंकि प्रतिषेध वचन इसके लिये मिलता है। निगम वचन के रूप से कहा है—नाग से विद्ध षष्ठी, रूद्र से विद्ध दिवाकर, काम से विद्ध विष्णु—ये सब तिथियाँ माननीय नहीं होती हैं।

यहाँ नाग अर्थात् पंचमी, रुद्र अर्थात् षष्ठी, दिवाकर अर्थात् सप्तमी, काम अर्थात् त्रयोदशी और विष्णु अर्थात् द्वादशी इस रूप से चिह्नित होती हैं। शिवरहस्य और सौरपुराण में कहा है—नाग अर्थात् पञ्चमीविद्धा षष्ठी, रुद्र अर्थात् षष्ठी से विद्धा सप्तमी और दशमी से विद्धा एकादशी कोई भी प्रकार से उपवास योग्य नहीं होती है। इसी के भांति पूर्वविद्धा का प्रतिषेध और उत्तरविद्धा का विधान के बारे में एकत्र रूप से स्कन्दपुराण में पाठ किया जाता है—कि नागविद्धा षष्ठी कभी नहीं की जाती है। धर्म और अर्थ को चिन्तन करने वाले लोग सप्तमी के साथ युक्त होने वाली षष्ठी को ही मानते हैं। ब्रह्मवैवर्त्त में भी कहा है—किसी भी अवसर पर पञ्चमी विद्धा षष्ठी नहीं करनी चाहिए। अगर की जाती है तो पुण्य क्षय हो जाता है। सप्तमी के साथ होने पर करने से महा पुण्ए रूपक फल मिलता है।

पुण्यस्य क्षयो यस्यां सा पुण्यक्षया। यदि कदाचित्तिथिक्षय-वशादुत्तरविद्धा षष्ठी न लभ्यते। तदा स्कन्दव्रतवदन्यान्यपि व्रतानि नागविद्धायां कर्त्तव्यानि। तदाह वसिष्ठः—

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी।
पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या यदि न स्यात्परेऽहनि॥ इति

नागवेधश्च षण्मुहूर्त्तात्मकः। तथा च स्कान्दे—

नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पञ्चदशभिस्तथा।
भूतोऽष्टदशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्॥ इति

इति षष्ठीनिर्णयः॥

पुण्य का क्षय जिस तिथि में होता है, वह पुण्यक्षय तिथि होती है। अगर किसी समय में तिथि क्षय के कारण परविद्धा षष्ठी नहीं मिलती है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो स्कन्द व्रत की तरह दूसरे व्रतों का विधान पञ्चमीविद्धा अर्थात् पूर्वविद्धा षष्ठी में होता है। इस सिद्धान्त के समर्थक वचन वसिष्ठ ने कहा है—

एकादशी, तृतीया, षष्ठी और त्रयोदशी पूर्वविद्धा तिथि के रूप से मानी जाती है, अगर परदिन में न हो। पञ्चमी वेध छ मुहूर्तों को लेकर प्रवर्तित होता है। इसलिए स्कन्दपुराण में कहा है—पञ्चमी बारह दण्डों से, दशमी पन्द्रह दण्डों से और चतुर्दशी अठारह दण्डों से परवर्त्ती तिथि को दूषित करती है।

इस प्रकार षष्ठी का निर्णय समाप्त हुआ।

अथ सप्तमी निर्णीयते

सन्ति हि सप्तम्यां नानादेवताकानि बहूनि व्रतानि। तत्र भविस्योत्तरप्रोक्तमुमामहेश्वरदेवताकं मुक्ताभरणसप्तमीव्रतम्। तथा भविष्यत्पुराणे सूर्यदेवताकं विजयसप्तमीव्रतमुक्तम्। सूर्यदेवताकमारोग्यसप्तमीव्रतं वराहपुराणेऽभिहितम्। विष्णुदेवताकं माङ्गल्यव्रतं गरुडपुराणेऽभिहितम्। एवमन्यान्यप्युदाहरणीयानि।

तत्र काश्चित्तिथयो देवताभेदेन व्यवतिष्ठमाना लक्ष्यन्ते। तद्यथा स्कन्दषष्ठी पूर्वविद्धा मन्दारादिषष्ठी परविद्धा। काश्चित् सत्यामेकस्यां देवतायां व्रतभेदेन व्यवतिष्ठन्ते। तद्यथा गौरीव्रतेष्वेव, रम्भातृतीया पूर्वविद्धा, लवणतृतीया परविद्धा। काश्चिदेकदेवताके एकस्मिन् व्रते कर्मकालव्याप्तिभेदेन व्यवतिष्ठन्ते। तद्यथा विनायकव्रते पूर्वेद्युः परेद्युर्वा चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी गृह्यते। काचिच्छुक्लकृष्णभेदेन व्यवतिष्ठन्ते। तद्यथा। शुक्लप्रतिपत् पूर्वविद्धा कृष्णप्रतिपदुत्तरविद्धेति।

तत्र केन न्यायेन सप्तमी व्यवस्थापनीयेति वीक्षायां न केनापीति प्रतिजानीमहे। सप्तम्याः पूर्वविद्धानिन्दकस्योत्तरविद्धाभिधायकस्य च वचनस्य कस्यचिददर्शनात्। तद्विपर्ययेण पूर्वविद्धाविधायकस्योत्तरविद्धानिषेधकस्य सर्वत्रोपलम्भात्। सर्वासु देवतासु सर्वेषु व्रतेषु शुक्लकृष्णपक्षयोरुभयोरपि सप्तमी पूर्वविद्धैव ग्राह्या, युग्मादिशास्त्रे 'षण्मुन्योः' इत्यभिधानात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब सप्तमी का निर्णय हो रहा है। विभिन्न देवताओं के उद्देश्य में सप्तमी में होने वाले अनेक व्रतों की सूचना मिलती है। भविष्योत्तरपुराण में उमा और महेश्वर देवताओं को आधार कर "मुक्ताभरण सप्तमी" कही गई है। इस प्रकार भविष्यत्पुराण में सूर्य देवता के उद्देश्य में आरोग्य-सप्तमी व्रत अभिहित किया है। गरुड़ पुराण में विष्णु देवता के उद्देश्य में मांगल्यव्रत कहा है। इस प्रकार दूसरे व्रतों का उल्लेख उदाहरण के रूप में मिलता है।

वहां भिन्न-भिन्न देवताओं को लेकर कुछ तिथियों की व्यवस्था लक्षित होती है। यथा स्कन्दपुराण षष्ठी पूर्वविद्धा और मन्दारादि षष्ठी परविद्धा होती हैं। कुछ तिथियाँ एक ही देवता को आश्रय कर भी व्रतभेद से व्यवस्थित होती है। यथा—गौरीव्रतों में रंभातृतीया पूर्वविद्धा और लवण-तृतीया परविद्धा होती है। कुछ तिथिओं की एक देवता के उद्देश्य में एक ही व्रत में कर्मकालव्याप्ति के भेद से व्यवस्था अलग होती है। यथा—विनायक व्रत में पूर्वदिन हो या पर दिन हो, मध्याह्न को व्याप्त होने वाली चतुर्थी गृहीत होती है। शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के भेद को लेकर व्यवस्था मिलती है। यथा—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा पूर्वविद्धा और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा परविद्धा होकर माननीय होती है।

इस पर किस न्याय को आश्रय कर सप्तमी की व्यवस्था होगी ? इस विषय में कोई न्याय प्रतिज्ञात नहीं होता है। पूर्वविद्धा सप्तमी को निन्दित करने वाला और परविद्धा सप्तमी का विधान करने वाला वचन नहीं मिलता है। इसके विपरीत पूर्वविद्धा का विधान करने वाला और उत्तरविद्धा को निषिद्ध करने वाला वचन सब जगह मिलता है। सब देवताओं के उद्देश्य में होने वाले सब व्रतों के लिए शुक्ल और कृष्ण इन दो पक्षों में पूर्वविद्धा सप्तमी गृहीत नहीं होती है। क्योंकि युग्म वचन में "षण्मुन्योः" इस उक्ति से यही निष्पत्ति मिलती है।

स्कन्दपुराणे—

कर्त्तव्या सप्तमी तत्र षष्ठी यत्र च सर्वदा।
षष्ठी च सप्तमी यत्र तत्र सन्निहितो रविः॥ इति

भविष्यत्पुराण-ब्रह्मपुराणयोः—

षष्ठी च सप्तमी तात, अन्योन्यन्तु समाश्रिता।
पूर्वविद्धा द्विजश्रेष्ठ कर्त्तव्या सप्तमी तिथिः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पैठीनसिः—

पञ्चमी सप्तमी चैव दशमी च त्रयोदशी।
प्रतिपन्नवमी चैव कर्त्तव्या सम्मुखी तिथिः॥ इति

उत्तरविद्धा प्रतिषेधः स्कन्दपुराणे दर्शितः—

षष्ठ्येकादश्यमावास्या पूर्वविद्धा तथाऽष्टमी।
सप्तमी परविद्धा च नोपोष्यं तिथिपञ्चकम्॥ इति

न च व्रतविशेषेणाप्युत्तरविद्धायामाशा कर्त्तव्या तदुक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते—

सप्तमी नाष्टमीयुक्ता न सप्तम्या युताऽष्टमी।
सर्वेषु व्रतकल्पेषु अष्टमी परतः शुभाः॥ इति

यदा पूर्वेद्युरस्तमयपर्यन्ता षष्ठी परेद्युस्तिथिक्षयेणास्तमयादर्वागष्टमी त्रिमुहूर्त्ता, तदा पूर्वविद्धाया अलाभादुत्तरविद्धायाश्च प्रतिषिद्धत्वात् कुत्रानुष्ठानमिति चेत्। निषेधमुल्लङ्घ्याप्युत्तरविद्धायामिति ब्रूमः। यद्यप्यस्मिन्नर्थे वचनं नोपलभ्यते तथापि शेषि[1]लोपन्यायादुत्तरविद्धा गौणकालत्वेन स्वीकर्त्तव्या। अस्ति चात्र दृष्टान्तः। स्कन्दव्यतिरिक्तव्रतेषु पूर्वविद्धायाः षष्ठ्या निषेधमुल्लङ्घ्य 'यदि न स्यात्परेऽहनि' इति वाक्येन पूर्वविद्धा गृहीता तथा रम्भाव्यतिरिक्तगौरीव्रतेषु द्वितीयायुता स्वीकर्त्तव्या। तेनैव न्यायेनात्राप्यष्टमीविद्धायाः स्वीकारोऽस्तु।

इति सप्तमीनिर्णयः॥

स्कन्द पुराण में कहा है—जिस पर सब समय में षष्ठी के साथ सप्तमी रहती, वहाँ सप्तमी कर्तव्य है। जहाँ षष्ठी और सप्तमी मिलकर रहती है, वहां रवि सन्निहित होकर रहते हैं। भविष्यपुराण और ब्रह्मपुराण में कहा है—हे तात! षष्ठी और सप्तमी परस्पर मिलकर रहती है। हे द्विज श्रेष्ठ! सप्तमी तिथि पूर्वविद्धा करनी चाहिए। पैठीनसि ने कहा है—पञ्चमी, सप्तमी दशमी, त्रयोदशी, प्रतिपद और नवमी संमुखी (साम को व्याप्त होनेवाली) होकर माननीय होती हैं। उत्तरविद्धा सप्तमी को प्रतिषिद्ध करने वाला वचन

१. शेषी नाम अङ्गी प्रधानम्। न तस्य त्यागो विधीयते। मुख्यकाले कर्त्तुं नशक्यते चेत् गौणकालेऽपि कर्त्तव्यमिति भावः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्कन्दपुराण में प्रदर्शित किया है। पूर्वविद्धा षष्ठी, एकादशी, अमावास्या, अष्टमी और परविद्धा सप्तमी इन पांच तिथिओं में उपवास नहीं किया जाता है। विशेष व्रत को लेकर परविद्धा की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए।

इस विषय में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कहा गया है—अष्टमी के साथ सप्तमी और सप्तमी के साथ अष्टमी युक्त होने से माननीय नहीं होती है। सब प्रकार व्रतों में अष्टमी परविद्धा होकर शुभान्वित होती है।

जब पूर्वदिन में अस्त काल तक षष्ठी रहती है, परदिन में तिथिक्षय के कारण अस्तकाल के पहले तीन मुहूर्त्त तक अष्टमी रहती, तब पूर्वविद्धा नहीं मिलती है और परविद्धा का प्रतिषेध होने से कहां अनुष्ठान होगा ? इस प्रकार प्रश्न उठता है। यहाँ निषेध को लंघन करके परविद्धा में व्रत किया जा सकता है। ऐसा हम बोलेंगे। यद्यपि इस अर्थ में वचन नहीं मिलता है, तथापि शेषी अर्थात् मुख्य कर्म का लोप (नहीं हो) न्याय से परविद्धा को गौणकाल के रूप से मान लेना चाहिए।

इसका समर्थक दृष्टान्त भी यहाँ मिलता है। स्कन्दव्रत से भिन्न व्रतों में पूर्वविद्धा षष्ठी का निषेध को लंघन कर "यदि पर दिन में नहीं हैं" इस वाक्य में पूर्वविद्धा गृहीत होती है। इस प्रकार रंभाव्रत से भिन्न गौरीव्रतों में द्वितीयायुक्ता तृतीया स्वीकृत होती है। इस न्याय से यहाँ भी अष्टमी विद्धा का स्वीकार हो।

इस प्रकार सप्तमी का निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथाष्टमी निर्णीयते

द्विविधो हि तत्र निर्णयः। व्रतसामान्यनिर्णयो व्रतविशेषविषयश्चेति। व्रतसामान्ये तु शुक्लकृष्णपक्षभेदाद् व्यवतिष्ठते। तत्र शुक्लाष्टमी परा ग्राह्या। 'षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः' इति युग्मशास्त्रात् यद्यप्येतच्छास्त्रं पक्षद्वयसाधारणमिति चतुर्थी प्रस्तावे प्रतिष्ठितम्, तथापि शास्त्रान्तरबलात् शुक्लपक्षे पर्यवस्यति। तथा च निगमः—

शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी।
पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कर्त्तव्या परसंयुता ॥
उपवासादिकार्येषु एष धर्मः सनातनः ॥ इति

ब्रह्मवैवर्त्ते—

सप्तमी नाष्टमी-युक्ता न सप्तम्या युताऽष्टमी।
सर्वेषु व्रतकल्पेषु अष्टमी परतः शुभा ॥ इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्मपुराणे—

नाष्टमी सप्तमीयुक्ता सप्तमी नाष्टमीयुता ।
नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्रसंशयः ॥ इति

स्कन्दपुराणेऽपि—

अष्टमी नवमीमिश्रा कर्त्तव्या भूतिमिच्छता ।
सप्तम्या चाष्टमी चैव न कर्त्तव्या शिखिध्वज ॥ इति

अब अष्टमी का निर्णय हो रहा है। यह निर्णय दो प्रकार का होता है। साधारण व्रतों को लेकर निर्णय और विशेष व्रतों को लेकर निर्णय। साधारण व्रतों में शुक्ल और कृष्णपक्ष के भेद को आश्रय कर व्यवस्था होती है। वहाँ शुक्लपक्ष की अष्टमी परविद्धा ग्रहीत होती है। युग्मवचन के अन्तर्गत "षण्मुन्योः" वाक्यानुसार बहुवचन साधारण रूप से दोनों ही पक्षों में लगता है ऐसे चतुर्थी निर्णय के अवसर पर प्रतिष्ठित किया है, तथापि दूसरे शास्त्रवचनों के अनुसार यह युग्मवचन शुक्लपक्ष के बारे में खास पर्यवसित होता है। इसलिये निगम में कहा है—

शुक्लपक्ष में अष्टमी और चतुर्दशी पूर्वविद्धा नहीं की जाती है। परविद्धा की जाती है। उपवास प्रभृात कार्यों म यह सनातन धर्म होता है। ब्रह्म वैवर्त्तपुराण में कहा है।

सप्तमी अष्टमी के साथ युक्त नहीं होनी चाहिए और सप्तमी के साथ अष्टमी भी युक्त नहीं होनी चाहिए। सर्व प्रकार व्रतों में अष्टमी परविद्धा होनी चाहिए।

पद्मपुराण में कहा है—सप्तमी के साथ अष्टमी और अष्टमी के साथ सप्तमी युक्त नहीं होनी चाहिए। निःसंशय के रूप में नवमी के साथ युक्त होकर अष्टमी की जाती है।

स्कन्दपुराण में भी कहा है—ऐश्वर्य को कामना करने वाले लोग नवमी के साथ मिश्रित अष्टमी को करते है। हे शिखिध्वज! सप्तमी के साथ अष्टमी नहीं करनी चाहिए।

तान्येतानि ब्रह्मवैवर्त्तादिवचनानि यद्यपि पक्षद्वयसाधारण्येन पूर्वविद्धानिषेधमुत्तरविद्धाविधिश्च कुर्वन्ति। तथाप्युदाहृतनिगमानुसारेण शुक्लपक्षविषयतया योजनीयानि। तथा च शुक्लपक्षाभिप्रायेणैव पूर्वविद्धां प्रतिषेधति जाबालिः—

नागविद्धा तु या षष्ठी भानुविद्धो महेश्वरः ।
चतुर्दशी कामविद्धा तिस्रस्ता मलिनाः स्मृताः ॥ इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यपि ये ब्रह्मवैवर्त्त प्रभृतियों के वचन साधारण रूप से दो पक्षों में पूर्वविद्धा का निषेध और परविद्धा का विधान प्रकाशित करते हैं तथापि उदाहरण के रूप में कहा गया निगम वचन के अनुसार शुक्लपक्ष के बारे में ही उनको संयोजित किये जाते हैं। शुक्लपक्ष को उद्देश्य करके जाबालि पूर्वविद्धा को प्रतिषिद्ध करते हैं—

यथा—नाग या पंचमी से विद्धा षष्ठी, भानु या सप्तमी के साथ महेश्वर अर्थात् अष्टमी और काम या त्रयोदशी के साथ चतुर्दशी विद्धा होने से ये तीन तिथियाँ मलिन होती हैं।

स्कन्दपुराणेऽपि—

नागविद्धा तु या षष्ठी सप्तम्या तु यदाऽष्टमी।
भूतविद्धाऽप्यमावास्या न ग्राह्या मुनिपुङ्गव॥ इति

तथा च शुक्लपक्षमेवाभिप्रेत्योत्तरविद्धा विधीयते विष्णुधर्मोत्तरे—

एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी।
अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः॥ इति

शङ्करगीतायां साक्षादेव शुक्लपक्षे परविद्धा विहिता—

एकादश्यष्टमी षष्ठी शुक्लपक्षे चतुर्दशी।
पूज्याः परेण संयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः॥ इति

कृष्णपक्षे पूर्वविद्धाविधिरुत्तरविद्धाप्रतिषेधश्च निगमे पठ्यते—

कृष्णपक्षेऽष्टमी यत्र कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या परविद्धा न कर्हिचित्।
उपवासादिकार्येषु ह्येष धर्मः सनातनः॥ इति।

नारदीये—

कृष्णाष्टमी तथा रम्भा तृतीया वटपैतृकी।
बृहत्तपा तथा ब्रह्मन् कर्त्तव्या सम्मुखी तिथिः॥ इति

अत्राऽष्टम्याः शुक्लकृष्णव्यवस्था सामान्येन सर्वव्रतविषया व्रतविशेषस्यानुपादानात्। व्रतानि चोदाह्रियन्ते। तत्र वामनपुराणे, नभोमासे कृष्णाष्टम्यां कालाष्टमीव्रते पठितम्। विष्णुधर्मोत्तरे कृष्णपक्षे सन्तानाष्टमीव्रतमिति।

स्कन्दपुराण में कहा है—हे मुनि पुंगव! नागविद्धा षष्ठी, सप्तमी विद्धा अष्टमी और चतुर्दशी विद्धा अमावास्या गृहीत नहीं होती है। फिर भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुक्ल पक्ष को अभिप्रेत कर उत्तरविद्धा का विधान होता है। विष्णुधर्मोत्तर-पुराण में कहा है—एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, द्वितीया, चतुर्दशी, अमावास्या और तृतीया परविद्धा होने से उपोष्य होती हैं। शंकर गीता में शुक्लपक्ष के लिये परविद्धा गृहीत होती है—एकादशी, अष्टमी, षष्ठी और चतुर्दशी शुक्ल-पक्ष में परविद्धा होकर पूज्य होती हैं और परवर्त्ती तिथियाँ पूर्वविद्धा होकर पूज्य होती हैं। कृष्णपक्ष में पूर्वविद्धा का विधान और उत्तरविद्धा का प्रति-षेध निगम में कहा है—कृष्णपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी पूर्वविद्धा करनी चाहिए। यह कभी भी परविद्धा नहीं होती हैं। उपवास प्रभृति धार्मिक कृत्यों में यह सनातन धर्म है।

नारदीय पुराण में कहा है—हे ब्रह्मन्! कृष्ण पक्ष की अष्टमी, रम्भा-तृतीया वटपैतृकी व्रत, और बृहत्तपा सम्मुखी तिथि में करनी चाहिए। यहाँ सम्मुखी पूर्वविद्धा को द्योतित कराती है।

यहाँ अष्टमी की शुक्ल और कृष्णभेद से जो व्यवस्था हुई है, वह साधा-रणतया सब व्रतों को स्पर्श करती है। विशेष रूप से कोई व्रत का विधान यहाँ नहीं हुआ। व्रतों का उदाहरण दिया जाता है। मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी में कालाष्टमी व्रत का पाठ मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कृष्णपक्ष में सन्तानाष्टमी व्रत कहा गया है।

एतदुभयं यथोक्तरीत्या पूर्वविद्धायामनुष्ठेयम्। देवीपुराणे[1] श्रावणमासे शुक्लाष्टम्यां देवीव्रतम्। गारुडपुराणे शुक्लाष्टम्यां नृसिंहव्रतम्। एतदुभयमुत्तरविद्धायामनुष्ठेयम्। एवमन्यान्यप्युदा-हरणीयानि।

व्रताविशेषादष्टमीनिर्णयो द्विविधः। व्रतविशेषमात्रोपजीवनेन प्रवृत्त एकः नक्षत्रादियोगं व्रतविशेषञ्चोपजीव्यः प्रवृत्तोऽपरः।

तत्र दूर्वाष्टमीसंज्ञितः कश्चिद्व्रतविशेषो भविष्यत्पुराणे पठ्यते—

१. नन्दा सुनन्दा कनका उमा दुर्गा क्षमावती। गौरी सर्वेश्वरी श्वेता नारायणी सुतारका॥ अम्बिका चेति नामानि श्रावणादेरनुक्रमात्। ये च कीर्त्यन्ति उत्थाय ते नरा धूनकिल्विषाः॥ देवी पु० ११।४२-४३

सौभाग्यार्थं तथा स्त्रीभिरन्यैश्च धनकाङ्क्षिभिः। महाव्रतं महापुण्यं शंकराद्यैरनुष्ठितम्॥ दे० पु० वचनं श्रावणाष्टमीं प्रकृत्य पठितं कालसारे-पृ० ८६, मद्रित दे० पु० नोपलभ्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः ।
महेशं पूजयेद्यस्तु दूर्वया सहितं मुने ॥ इति

अस्मिन् व्रतविशेषे शुक्लवर्तित्वेनोत्तरविद्धायां प्राप्तायामपवादमाह नारदः—

धन्या कृष्णाष्टमी दूर्वा सावित्री वटपैतृकी ।
अनङ्गत्रयोदशी रम्भा कर्त्तव्या सम्मुखी तिथिः ॥ इति

पद्मपुराणे

श्रावणी दुर्गनवमी तथा दूर्वाष्टमी तिथिः ।
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रि र्बलेर्दिनम् ॥ इति ।

तथा शिवशक्तिमहोत्सवनामकः कश्चिद्व्रतविशेषः । तस्य पूर्वन्यायेन शुक्लकृष्णपक्षव्यवस्थायां प्राप्तायां तदपवादः पद्मपुराणे पठ्यते—

अष्टमी नवमी विद्धा नवमी चाष्टमीयुता ।
अर्धनारीश्वरप्राया उमामाहेश्वरी तिथिः ॥
अष्टमी नवमी युग्मे महोत्साहे महोत्सवः ।
शिवशक्त्योः शिवक्षेत्रे पक्षयोरुभयोरपि ॥ इति

इन दोनों का अनुष्ठान निर्दिष्ट रीति के अनुसार पूर्वविद्धा तिथि में होता है। दैवीपुराण में श्रावणमास में शुक्लपक्ष की अष्टमी में देवीव्रत कहा गया है। गरुड़ पुराण में शुक्लपक्ष की अष्टमी में नृसिंहव्रत कहा है। इन दोनों का अनुष्ठान परविद्धा तिथि में होता है। इन सब प्रकार के व्रतों का उदाहरण क्रमशः उपलब्ध है।

व्रत विशेष को लेकर अष्टमी का निर्णय दो प्रकार होता है। व्रतविशेषमात्र को ही उपजीव्य कर एक निर्णय और नक्षत्र प्रभृतिओं का योग के साथ व्रत विशेष को लेकर दूसरा निर्णय होता है। वहां भविष्यत्पुराण में पूर्वाष्टमी के नाम से एक विशेष व्रत मिलता है। यथा—ब्रह्मन्! भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी में उपवास कर दूर्वा के सहित महेश अर्थात् शिवजी को पूजते हैं। इन व्रत विशेष शुक्लपक्ष में होने से परविद्धा तिथि में करनी पड़ती है। किन्तु इसका अपवास मिलता है। कृष्णाष्टमी, दूर्वाष्टमी सावित्री, अनंगत्रयोदशी और रंभाव्रत सम्मुखी तिथि में करने से धन्य होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्मपुराण में कहा हैं—श्रावणी, दुर्गनवमी, दूर्वाष्टमी शिवरात्री और बलि दिन की पूजा पूर्वविद्धा तिथि में की जाती है। इस प्रकार शिवशक्ति महोत्सव के नाम से एक विशेष व्रत मिलता है। पूर्व न्याय के अनुसार इसकी शुक्ल-कृष्ण भेद से व्यवस्था होने पर पद्मपुराण में अपवाद मिलता है। नवमी के साथ अष्टमी और अष्टमी के साथ नवमी अगर हो तो अर्धनारीश्वर की तरह होती है। इसको उमा–माहेश्वरी तिथि कहते हैं। दोनों ही पक्षों में अष्टमी और नवमी के युग्म स्थल में शिवक्षेत्र में शिव और शक्ति के उत्सव खुब उत्साह के साथ होता है।

महानुत्साहो यस्मिन्निति बहुव्रीहिः। तत्पदं तिथियुग्मस्य क्षेत्रस्य वा विशेषणम्। इति। यदा युग्मस्य विशेषणं, तदा तादृशं युग्ममुपलक्ष्य सूर्यग्रहणार्धोदयादाविव मनस्युत्साहं प्राप्य देवतोत्सवः कर्त्तव्यः इत्युक्तं भवति। यदा तु क्षेत्रविशेषणं तदा, काशीश्रीगिर्यादौ[१] यस्मिन् क्षेत्रे मनस्युत्साहो जायते तत्रोत्सवः कर्त्तव्यः इत्युक्तं भवति।

नक्षत्रादियोगिवर्तविशेषोपजीवी निर्णय उदाह्रियते। स्कन्दपुराणे व्रतविशेषः पठ्यते—

मासि भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठर्क्ष-संयुते।
यस्मिन् कस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्॥ इति

तस्य ज्येष्ठाव्रतस्य नक्षत्रयोगवशेनाष्टमी ग्रहीतव्या।

नाष्टमी सप्तमीविद्धा सप्तमी चाष्टमीयुता।
नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः॥
मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता।
रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्यात् ज्येष्ठायाः परिपूजनम्॥ इति।

अयमर्थः—अष्टम्यां नक्षत्रयोगाभावे शुक्लपक्षवर्त्तित्वात् परैवाष्टमी ग्राह्या यदा तु पूर्वदिने रात्रौ नक्षत्रयोगोऽस्ति तदापूर्वविद्धा ग्राह्या। सोऽयं शुक्लपक्षप्रयुक्तस्य सामान्यशास्त्रस्य नक्षत्रप्रयुक्तविशेषशास्त्रेणापवाद इति। योऽयं पूर्वदिने रात्रौ नक्षत्रयोगः सोऽपि क्वचिदपोद्यते।

महोत्साह शब्द की व्याख्या बहुव्रीहि समास को आश्रय लेकर होती है। यथा—महान् उत्साह हो जिसमें। बहुव्रीहि समास से निष्पन्न पर तिथि

१. श्रीगिरिः श्रीशैलः विष्णुधर्मसूत्रे श्राद्धीयस्थानरूपेण गण्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युग्म का अथवा क्षेत्र का विशेषण होता है। जब युग्म का विशेषण होता है तब उस प्रकार युग्म को लेकर सूर्यग्रहण और अर्धोदय प्रभृति में मन से उत्साह लेकर देवता का उत्सव करना चाहिए ऐसा कहा जाता है। जब क्षेत्र का विशेषण होता है, तब काशी, श्री पर्वत प्रभृति पवित्र क्षेत्रों में मन से उत्साह आता है। इसलिये वहां उत्सव करना चाहिए। ऐसा कहा जाता है।

नक्षत्र के योग से व्रत विशेष को उपजीव्य करके होने वाला निर्णय का उदाहरण दिया जाता है। स्कन्दपुराण में व्रत विशेष का पाठ मिलता है—

भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में जो कुज दिन में ज्येष्ठा नक्षत्र के संयोग सेज्येष्ठ का पूजन किया जाता है। इस ज्येष्ठा व्रत के लिये नक्षत्र योग होने पर अष्टमी ही ग्रहणीय होती है। सप्मी से विद्धा अष्टमी और अष्टमी से विद्धा सप्तमी नहीं करनी चाहिए। नवमी के साथ युक्त होने पर ही अष्टमी करनी चाहिए। इसमें कोई संशय नहीं हे। भाद्रपद मान का शुक्लपक्ष की रात में जब ज्येष्ठा नक्षत्र का संयोग होता है, उस दिन में ज्येष्ठा का पूजन होता है।

इसका अर्थ यह है—अष्टमी में नक्षत्रयोग न होने पर शुक्लपक्ष होने के कारण अष्टमी परविद्धा होने से ग्रहणीय होती है। जिस स्थल में पूर्वदिन की रात में नक्षत्र का योग होता है। उस स्थल में पूर्वविद्धा ग्रहणीय होती है। यहाँ शुक्लपक्ष के विषय सामान्य या साधारण (उत्सर्ग) होता है, नक्षत्र योग का विषय विशेष वचन होता है। विशेष वचन से सामान्य का बाध हो गया। वही प्रक्रिया अपवाद नाम से अभिहित होती है। पूर्वदिन की रात में जो नक्षत्रयोग मिलता है, उसका कहीं पर भी खण्डन होता है।

तथा च स्कन्द पुराणे—

यस्मिन् दिने भवेज्ज्येष्ठा मध्याह्नादूर्ध्वमप्यणुः।
तस्मिन् हविष्यं पूजा च न्यूना चेत् पूर्ववासरे॥ इति

अत्र केवलतिथितो नक्षत्रयोगस्य प्रशस्तत्वात् केवलतिथिप्रयुक्त निर्णयमपोह्य यथा नक्षत्रप्रयुक्तो निर्णय आद्दतः, तथा नक्षत्रयुक्त तिथौ वारविशेषयोगस्य ततोऽपि प्रशस्तत्वात्तेन निर्णयः कर्त्तव्यः। एतदभिप्रेत्य स्कन्दपुराणे पठ्यते—

नभोऽष्टम्यां यदा वारो भानोर्ज्येष्ठर्क्षमेव च।
नीलज्येष्ठेति सा प्रोक्ता दुर्लभा बहु कालिकी॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदेवं त्रिधा निर्णयः संपन्नः, नृसिंहव्रतसन्तानाष्टमीव्रतादौ शुक्लकृष्णभेदेन निर्णयः, दूर्वाष्टम्यां व्रतविशेषेण निर्णयः, नीलज्येष्ठाष्टम्यां योगविशेषेण निर्णय इति।

तदेतन्निर्णयत्रयं दृष्टान्तीकृत्य जन्माष्टमी विचार्यते। सा किं पक्षभेदेन निर्णतव्या उत व्रत विशेषेण आहोस्विद्योगविशेषेण? इति अत्रैवेदमपरश्चिन्त्यते। किं जन्माष्टमीव्रतमेव जयन्तीव्रतं, उत तयोर्भेदः इति तथा अन्यदपि चिन्तनीयम्। किं तिथ्यन्तरवदत्राहर्वेध उत मध्यरात्रवेध इति। प्रथमं व्रतस्वरूपे निश्चिते पश्चादस्मिन् व्रते कीदृशा तिथिरित्याकाङ्क्षोदेति। तिथौ च पूर्वविद्धत्वेन परविद्धत्वेन वा निश्चितायां पश्चात् कीदृशो वेध इत्याकाङ्क्षा। तस्मादादौ व्रतं निश्चीयते।

इसके बारे में स्कन्दपुराण में कहा है—जिस दिन में मध्याह्न के बाद अणुमात्र परिमाष ज्येष्ठा का योग होता है, उसदिन में हविष्य भोजन पूर्व के पूजा होती हैं। मध्याह्न से पहले होता है तो पूर्वदिन में होती है। यहाँ केवल तिथि से नक्षत्र का योग प्रशस्त होने से केवल तिथि के द्वारा होनेवाला निर्णय को छोड़कर जैसे नक्षत्र के द्वारा हाने वाला निर्णय आदृत होता है वैसे नक्षत्र से युक्त तिथि में विशेष बार का योग उससे प्रशस्त होने से उसके द्वारा ही निर्णथ करना होगा। इसको अभिप्रेत करके स्कन्दपुराण में कहा है—भाद्रपद की अष्टमी में यदि रविवार और ज्येष्ठा नक्षत्र हेते हैं, वह नील ज्येष्ठा के नाम से एक दुर्बल अष्टमी होती है। बहुकाल के अन्तर पद आती है। इसका निर्णय तीन प्रकारों से सम्पन्न होता हैं। नृसिंह व्रत और सन्तानाष्टमी व्रतों में शुक्ल और कृष्ण पक्ष के भेद से निर्णय होता है। पूर्वाष्टमी में व्रत विशेष के द्वारा निर्णय होता है। नीलज्येष्ठा में योग विशेष से निर्णय होता है।

इन तीन निर्णयो को दृष्टान्त रूप से ग्रहण कर जन्माष्टमी का विचार होता है। वह क्या पक्ष भेंद से निर्णीत होती है या व्रत विशेष से या योग विशेष से होती है? यहाँ ऐसी एक चिन्ता होती है क्या जन्माष्टमी जयन्ती व्रत होती है या दोनों में कोई भेद है। इस प्रकार क्या दूसरी चिन्ता भी होती है। क्यों दूसरी तिथिओं की तरह यहां दिस वेध होता है या मध्य रात्र वेध पहले व्रत के स्वरूप निश्चित होने के बाद इस व्रत में किस प्रकार तिथि होती है, इसके बारे में आकाङ्क्षा होती है। तिथि में पूर्वविद्धा के स्वरूप निश्चित होने पर किस प्रकार वेध होता है, इसकी आकाङ्क्षा होती है। इसलिये पहले व्रत को निश्चित किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र, जन्माष्टमी-जयन्तीशब्दाभ्यां व्यवह्रियमाणं व्रतमेकमेवेति तावत्प्राप्तम्। कुतः ? रूपभेदाभावात्। यथा यागस्य द्रव्यदेवते रूपम् यथा चोपासनस्य गुणविशेषैर्युक्ता देवता यथा च तत्त्वविद्यायां वेद्यं तत्त्वं रूपम्, तथा व्रते नियमविशेषः स्वरूपम्। नियमश्चात्रोपवास-जागरणकृष्णपूजाचन्द्रार्घ्यदानमित्यादिलक्षणः। स चोभयत्र न भिद्यते।

अथोच्यते रूपभेदेऽपि नित्यत्वकाम्यत्वाभ्यां ज्योतिष्टोमयोरिव भेदो भविष्यति। नित्या जन्माष्टमी, अकरणे प्रत्यवायस्मरणात्। तथा चस्मर्यते—

गृध्रमांसं खगं काकं श्येनञ्च मुनिसत्तम।
मांसं वा द्विपदां भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने॥
जन्माष्टमीदिने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम।
त्रैलोक्यसंभवं पापं तेन भुक्तं द्विजोत्तम॥

भविष्यत्पुराणे—

श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः॥
कृष्णजन्माष्टमीं त्यक्त्वा योऽन्यव्रतमुपासते।
नाप्नोति सुकृतं किञ्चिदिष्टापूर्त्तमथापि वा॥
वर्षे वर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
न करोति महाप्राज्ञ व्याली भवति कानने॥ इति।

वहाँ जन्माष्टमी और जयन्ती इन शब्दों के द्वारा व्यवहृत होने वाला एक ही व्रत है, क्योंकि इन दोनों के रूप में कोई अन्तर नहीं है। जैसे याग का द्रव्य और देवता रूप होते हैं, जैसे उपासना के गुण विशेषों से युक्त देवता होती है, जैसे तत्त्व विद्या में वेद्य तत्त्व ही रूप होता है, वैसे व्रत में नियम विशेष ही स्वरूप होता है। यहाँ नियम का लक्षण के रूप से उपवास, जागरण, कृष्ण की पूजा और चन्द्र को अर्घ्यदान प्रभृति होते हैं। दोनों में इनके भेद नहीं होता है। यहाँ कहा जाता है कि रूप भेद में भी ज्योतिष्टोमों की तरह नित्यत्व और काम्यत्व के रूप में भी भेद होगा। जन्माष्टमी नित्य होती है क्योंकि इसका अनुष्ठान न होने से प्रत्यवाय की उत्पत्ति होती है। इस लिये स्मरण किया जाता है—

कृष्ण पक्ष की जन्माष्टमी के दिन में जो गृध्र का मांस, खग, कौआ, श्येन के मांस को और दो पादों वाले प्राणियों के मांस को खाता है, हे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विजसत्तम, तीन लोकों में पैदा हुआ पाप को वह खाता है। भविष्य पुराण में कहा है—

जो श्रावण के कृष्णपक्ष में कृष्ण का जन्मष्टमी व्रत न करता है, वह क्रूर राक्षस होता है। कृष्ण जन्माष्टमी व्रत को छोड़कर जो दूसरे व्रतों को करता है, वह सुकृत नहीं पाता है, इष्टापूर्त्त का फल भी नहीं लाभ करता हैं। जो नारी हर साल कृष्ण जन्माष्टमी व्रत को नहीं करती है, वह जङ्गल में सांप जन्म लेती है।

स्कन्दपुराणेऽपि—

ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
ते भवन्ति नराः प्राज्ञ व्याला व्याघ्राश्च कानने॥
रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो महामुने।
अतीतानागतं तेन कुलमेकोत्तरं शतम्॥
पातितं नरके घोरे भुञ्जता कृष्णवासरे॥ इति।

जयन्ती च काम्या फलविशेषस्मरणात्। विष्णुधर्मोत्तरे हि जयन्तीं प्रकृत्य पठ्यते—

यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने वार्धके तथा।
बहुजन्मकृतं पापं हन्ति सोपोषिता तिथिः॥ इति।

वह्निपुराणेऽपि—

सप्तजन्मकृतं पापं राजन् यत् त्रिविधं नृणाम्।
तन् नाशयति गोविन्दस्तिथौ तस्यां समर्चितः॥
उपवासश्च तत्रोक्तो महापातकनाशनः।
जयन्त्यां जगतीपाल विधिना नात्र संशयः॥ इति।

पद्मपुराणेऽपि—

प्रेतयोनिगतानान्तु प्रेतत्वं नाशितं नरैः।
यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता।
किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः॥ इति।

स्कन्दपुराण में कहा है—जो कृष्ण जन्माष्टमी व्रत को जानकर भी नहीं करते हैं, वे लोग जङ्गल में सांप और व्याघ्र का जन्म लेते हैं। हे महामुनि! पुराणों में अनेक बार कहा है कि जो इस दिन में खाता है, वह अतीत और भविष्यत उनके एक सौ एक कुल पुरुषों को नरक में पकाता है, फल विशेष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को स्मरण कर जयन्ती काम्या भी होती है। जयन्ती प्रकरण में विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा है—

उस तिथि में अगर उपवास किया जाता है, तो बाल्य, कौमार, यौवन और वार्धक्य काल में बहु जन्मों से अर्जित पाप का नाश किया जाता है। वह्निपुराण में भी कहा है—हे राजा! इस तिथि में गोविन्द पूजित होकर लोगों के सात जन्मों में अर्जित तीन प्रकार के पापों को नष्ट कर देते हैं। कहा गया है कि उपवास यहाँ पाप को नष्ट करता है। हे जगतीपाल (राजा)! विधिपूर्वक जयन्ती में पूजा करने से ऐसा होता है, इसमें सन्देह नहीं है।

पद्मपुराण में भी कहा है—श्रावण मास की रोहिणी नक्षत्र युक्त अष्टमी जो लोग ने की जाती है, उन्होंने प्रेतयोनि को प्राप्त हुए लोगों के प्रेतत्व का नाश करा देते हैं। यदि बुधवार या सोमवार हुआ तो फल विशेष के बारे में क्या कहा जा सकता? (अर्थात् फल विशेष होता है)।

स्कन्दपुराणेऽपि—

महाजयार्थं कुरुतां जयन्ती मुक्तयेऽनघ।
धर्ममर्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च मुनिपुङ्गव॥
ददाति वाञ्छितानर्थान्नानार्थानातिदुर्बलम्॥ इति।

भविष्योत्तरे जयन्तीकल्पे—

प्रतिवर्षं विधानेन मद्भक्तो धर्मनन्दन।
नरो वा यदि वा नारी यथोक्तफलमाप्नुयात्॥
पुत्रसन्तानमारोग्यं सौभाग्यमतुलं भवेत्।
इह धर्मरतिर्भूत्वा मृतो वैकुण्ठमाप्नुयात्॥ इति।

एवं जन्माष्टम्या अकरणे प्रत्यवायाज्जयन्त्याः फलविशेषाच्चोभयोः क्रमेण नित्यत्वं काम्यत्वञ्चाभ्युपेतव्यमिति। मैवम्। गुणफलाधिकारत्वाभ्युपगमेऽपि जयन्त्याः फलविशेषापत्तेः। गोदोहनदध्यादि तत्र दृष्टान्तः। चमसेनापः प्रणयेद्गोदोहनेन पशुकामस्य इति नित्ययोर्दर्शपूर्णमासयोरपां प्रणयनं विधाय तदेवाश्रित्य पशुफलाय गोदोहनमात्रं विहितम्। दध्नेन्द्रियकामस्य (तै० ब्रा० २.१५.६) इत्यत्र च पूर्वप्रकृते नित्याग्निहोत्रे फलाय दधि विधीयते। एवं जन्माष्टमीमाश्रित्य फलविशेषाय जयन्तीनामको रोहिणीयोगो विधीयताम्।

स्कन्दपुराण में भी कहा है—हे अनघ! महान् जय करने के लिये प्रवृत्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होनेवाले लोगों को मुक्त करने के लिए यह जयन्ती है। हे मुनिपुंगव! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देती है। यह व्रत नाना विषयों में अति दुर्बल को भी अभिलषित फल देता है। भविष्योत्तर पुराण में जयन्ती कल्प में कहा है—हे धर्मनन्दन, जो मेरे भक्त या पुरुष हो या नहीं हो विधान के अनुसार हर साल जयन्ती करता है, तो वह यथोक्त फल को पाता है। उसे पुत्र, सन्तान, आरोग्य, सौभाग्य बहु परिमाण से (अतुल) मिलता है। इह लोक में धर्म के लिये चित्त में अनुराग बढ़ता है और मरने के बाद बैकुण्ठ को पाता है।

इस जन्माष्टमी को न करने से प्रत्यवाय होता है। इसलिये फलविशेष के बारे में कहा है कि दोनों में नित्य और काम्य होती हैं ऐसा मान लेना चाहिये। इस प्रकार अगर कहा जाता है तो ठीक नहीं है। गुणफलाधिकारत्व का स्वीकार होने पर भी जयन्ती का फलविशेष कहा गया है। गोदोहन-दध्यादि का अधिकरण यहां दृष्टान्त है। गोदोहन से चमस के द्वारा (अप) पानी का प्रणयन किया जाता है यदि पशु रूपक फल को पाने के लिये कामना है। इस ब्राह्मण वाक्य के अनुसार नित्य रूप से स्वीकृत दर्श और पूर्णमास में अप-प्रणयन करके उसको ही आश्रय कर पशुफल के उद्देश्य में गोदोहन मात्र का विधान हुआ है। "दध्नेन्द्रियकामस्य" इस वाक्य से पूर्व प्रकरण के अनुसार नित्य अग्निहोत्र याग में फल के लिये दधि का विधान होता है। इस प्रकार जन्माष्टमी से आश्रय कर फल विशेष के लिये जयन्ती नाम से ख्यात रोहिणी नक्षत्र का अष्टमी के साथ योग विहित हो।

न च रोहिणीलक्षणस्य कालविशेषस्यानुपादेय[1]त्वादविधेयत्वं शङ्कनीयम्। कालविशेषस्य स्वरूपेण पुरुषैरनुत्पाद्यत्वेऽप्यनुष्ठानाङ्गत्वं शास्त्रेणावगत्यानुष्ठानाय तत्प्रतीक्षायाः कर्त्तुं शक्यत्वात्। अन्यथा "वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेत" (आप० श्रौ० सू० १०।२।५ इत्यादिकः सर्वोऽपि कालविधि र्लुप्येत।

रोहिणीयोगस्य च जयन्तीनामकत्वंजयन्तीलक्षणप्रतिपादिकैः स्मृतिवाक्यैरध्यवसेयम्। तानि च वाक्यान्युदाहरामः। विष्णुधर्मोत्तरे—

---

१. लिंगं च वचनं देशः कालोऽथ कर्मणः फलम्। मीमांसाकुशलाः प्राहुरनुपादेयपञ्चकम्॥ इति पञ्चविधानुपदेयवर्त्तित्वेन कालस्य ग्रहणाद् अत्र तथाऽभावादविधेयत्वमिति भावः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोहिणी च यदा कृष्णे पक्षेऽष्टम्यां द्विजोत्तम।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः॥ इति।

सनत्कुमारसंहितायाम्—

शृणुष्वावहितो राजन् कथ्यमानं मयाऽनघ।
श्रावणस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां नराधिप॥
रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः॥ इति।

स्कान्दे—

प्राजापत्येन संयुक्ता अष्टमी तु यदा भवेत्।
श्रावणे बहुले सा तु सर्वपापप्रणाशिनी॥
जयं पुण्यञ्च कुरूते जयन्तीमिति तां विदुः॥ इति।

रोहिणी एक काल का लक्षण है। काल अनुपादेय है। इस लिए वह विधेय नहीं हो सकता। इस प्रकार शंका नहीं करनी चाहिए कालविशेष का स्वरूप पुरुषों के द्वारा उत्पादित नहीं होता है। किन्तु कर्मानुष्ठान के लिये काल विशेष अग होने से इसको शास्त्र के द्वारा समझ कर अनुष्ठान के लिए इसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। ऐसा अगर नहीं होता तो "हर वसन्त ऋतु में ज्योति के द्वारा याग करना होगा" इस विधि वाक्य के द्वारा प्राप्त होने वाला सब कालविधि लुप्त हो जायगा। रोहिणी नक्षत्र का योग जयन्ती नाम से नामित होता है। जयन्ती के लक्षण को प्रतिपादन करने वाले स्मृति वाक्यों के द्वारा इसका आगम होता है। इन वाक्यों को उदाहरण के रूप में उपस्थापित करेंगे। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा है—हे द्विजोत्तम! कृष्णपक्ष की अष्टमी में जब रोहिणी नक्षत्र आ जाता है, तब वही तिथि जयन्ती नाम से विदित होती है। वही तिथि सब प्रकार पापों को नष्ट कर देती है। सनत्कुमारसंहिता में कहा है कि हे पापशून्य नराधिप! मैंने जो कहा जाता है, उसको सुनो। श्रावण मास का कृष्णपक्ष की अष्टमी में अगर रोहिणी नक्षत्र का योग मिलता तो वही तिथि जयन्ती नाम से कथित होती है। स्कन्दपुराण में कहा है—श्रावण का बहुल अर्थात् कृष्णपक्ष में प्राजापत्य अर्थात् रोहिणी नक्षत्र का योग होता है, तो वही तिथि सब पाप का नाश करती है। जय और पुण्य को देने वाली होने पर जयन्ती नाम से इस तिथि को सब जानते हैं।

विष्णुरहस्ये—

अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्षसंयुता।
भवेत्प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पौर्णमास्यन्तेषु मासेषु स्वीकृतेषु श्रावण्यां पूर्णिमायां श्रावणमासस्य समाप्तत्वादुपरितनीं प्रतिपदमारभ्य भाद्रपदमास इत्यभिप्रेत्य प्रौष्ठपद इत्युक्तम् । विष्णुधर्मोत्तरे—

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी ।
सोपवासो हरेः पूजां तत्र कृत्वा न सीदति ॥ इति ।

वसिष्ठसंहितायाम्—

श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणी-सहिताऽष्टमी ।
यदा कृष्णा नरै र्लब्धा सा जयन्तीति कीर्त्तिता ॥
श्रावणे न भवेद्योगो नभस्ये तु भवेत् ध्रुवम् ।
तयोरभावे योगस्य तस्मिन् वर्षे न संभवः ॥ इति ।

अत्र श्रावणे इति मुख्यः कल्पः । नभस्ये इत्यनुकल्पः । यदि वा श्रावणे यदि वा नभस्ये, सर्वथाऽपि रोहिणीकृष्णाष्टमीयोगो जयन्तीत्येतदविवादम् । पुराणान्तरे—

रोहिणी च यदा कृष्णे पक्षेऽष्टम्यां द्विजोत्तम ।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥ इति ।

विष्णुरहस्य में कहा है—

प्रौष्ठपद अर्थात् भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी यदि रोहिणी नक्षत्र के साथ युक्त होती है, तो वही तिथि जयन्ती नाम से धर्मशास्त्र में प्रसिद्ध होती है । पूर्णिमान्त मासों में श्रावणी पूर्णिमा में श्रावण मास की समाप्ति होती है । उसके अनन्तर प्रतिपद से लेकर भाद्रपद मास होता है । इसको प्रौष्ठपद कहते हैं । विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा है कि प्राजापत्य अर्थात् रोहिणी नक्षत्र से युक्त भाद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी होती है । उसमें उपवास पूर्वक हरि की पूजा करने से कोई दुःख नहीं आता है । वसिष्ठ संहिता में कहा है—

श्रावण हो या भाद्रपद हो, यदि रोहिणी नक्षत्र के साथ कृष्ण अष्टमी मिलती है, तो वही अष्टमी जयन्ती नाम से कीर्त्तित होती है । श्रावण में इसका योग नहीं होता है, भाद्रपद मास में हो सकता है । इन दोनों के अभाव से उस वर्ष में योग का संभव नहीं हो सकता ।

यहाँ 'श्रावणे' इस प्रकार उक्ति से श्रावण ही मुख्य पक्ष होता है, ऐसा मालूम पड़ता है । नभस्य अर्थात् भाद्रपद मास का ग्रहण अनुकल्प अर्थात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गौण के स्वरूप माना जाता है। श्रावण में हो या भाद्रपद में हो सब जगह रोहिणी नक्षत्र और कृष्णपक्ष का योग ही जयन्ती के नाम से प्रसिद्ध है, इसमें कोई विवाद नहीं है। दूसरे पुराणों में कहा है—

हे द्विजोत्तम! कृष्ण पक्ष की अष्टमी में जब जयन्ती होती हैं, तब सब प्रकार पापों को हरण करने वाली जयन्ती नाम से प्रसिद्ध तिथि होती है।

तदेवमेतैः स्मृतिवाक्यैर्जयन्त्याः कृष्णाष्टमीरोहिणीयोगे स्वरूपे सति पूर्वोदाहृतं फलकामिनस्तादृशो योगो दोहनदध्यादिवद् गुणत्वेन विधीयते। काम्ये तु ज्योतिष्टोमे गुणविशेषो न कोऽपि फलाय विहितः। अतः काम्यज्योतिष्टोमवैषम्याद्, गोदोहनदध्यादिसाम्याच्च पूर्वोदाहृतफलवाक्यानि प्रकृते नित्ये जन्माष्टमीव्रते गुणफलप्रतिपादकत्वेनोपपद्यन्ते। तथा सति यथा दर्शपूर्णमासाभ्यामन्यः कश्चित् पशुफलको गोदोहनसंज्ञको यागो नास्ति किन्तु गुण एव केवलं गोदोहनं, तथा न जन्माष्टमीव्रतादन्यज्जयन्तीव्रतं किन्तु प्रकृत एव व्रते फलाय गुणविधिरित्येवं[1] प्राप्ते ब्रूमः—

व्रतद्वयमिदं भवितुमर्हति। कुतः? नामभेदात्, निमित्तभेदात् रूपभेदात् शुद्धमिश्रभेदात्, निर्देशभेदाच्च[2]। तथा हि पूर्वोदाहृतेषु अकरणे प्रत्यवायप्रतिपादकस्मृतिवाक्येषु जन्माष्टमीव्रतमित्येव नाम व्यवहृतम्। तथा पूर्वोदाहृतेषु जयन्तीव्रतमिति नामव्यवहारः। नामभेदाच्च कर्मभेदो ज्योतिरधिकरणे[3] (जै० सू० २।२।८) व्यवस्थितः। अस्य चाधिकरणस्य संग्रहकावेतौ श्लोकौ भवतः—

---

१. सर्वथा गुणविधिरनुवादमभ्येति। न हि गुणविधाने केवलं विधिशक्तिः कर्मविधाने विधेः प्राप्तत्वात् कर्मणि गुणपदार्थत्वेन द्रव्य-देवता-तत्परक-तदानुगुण्यपदार्थरूपकस्य कस्यचित् विधाने नहि स्वातन्त्र्यमुपदिश्यते, अपि तु कर्मप्रतिपादकविधिशक्तिमुपचारमुखेन स्मृत्वा अनुवादरूपतया विधीयते! अतो आनुवादको विधिर्गुणविधिरिति सारः।

२. निर्देशो नाम उपदेशो विधिर्वा। निःशेषेण दिश्यते उपदिश्यतेऽनेनेति निर्देशः।
चोदना चोपदेशश्च विधिश्चैकार्थवाचिनः (श्लो० वा. १।१।५।११)
इति स्मरणात्

३. संज्ञा चोत्पत्तिसंयोगात् (जै० सू० २।२।२२) इति सूत्रविषयकाधिकरणं ज्योतिरधिकरणमित्युच्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन स्मृतिवाक्यों के द्वारा जयन्ती का स्वरूप कृष्ण पक्ष की अष्टमी के साथ रोहिणी का योग होने के कारण पहले उदाहरण के रूप में कथित फल कामी का इस प्रकार योग दोहनदधि की तरह गुणरूप से विहित होता है। काम्य ज्योतिष्टोम में कोई गुणविशेष फल के उद्देश्य में विहित नहीं होता है। अत एव काम्यज्योतिष्टोम की विषमता के कारण, गोदोहन दधि-प्रभृति के साम्य से पूर्व से उदाहृत फलवाक्य इस प्रकरण में नित्य जन्माष्टमी व्रत में गुण और फलों की प्रतिपादकता के रूप में नहीं प्रतिपन्न होते हैं। यहाँ एक प्रश्न होता है कि—ऐसे होने पर जैसे दर्शपूर्णमासों के साथ दूसरा कोई पशुफलक गोदोहन नाम से याग नहीं है, किन्तु गुण के रूप में केवल गोदोहन का विधान हुआ है, वैसे जन्माष्टमी व्रत से भिन्न कोई दूसरा जयन्ती व्रत नहीं है, किन्तु प्रकृत व्रत में फल निमित्तक गुणविधि होता है।

ऐसा अगर प्रश्न होता तो उत्तर के रूप में कहा जाता है कि यहाँ ये दो प्रकार व्रत हो सकते हैं। क्योंकि नाम भेद से, निमित्त भेद से, रूप भेद से, शुद्धमिश्र भेद से और निर्देशभेद से इसका समाधान होता है। इस व्रत के अकरण से उत्पन्न होनेवाला प्रत्यवाय को प्रतिपादित करनेवाले पूर्व से उदाहृत स्मृतिवाक्यों में जन्माष्टमीव्रत इस प्रकार नाम व्यवहृत हुआ है। फिर भी पूर्व से उदाहृत वाक्यों में जयन्ती व्रत के नाम से व्यवहार हुआ है। नामभेद से कर्मभेद ज्योति अधिकरण में व्यवस्थित हुआ है। इस अधिकरण के दो श्लोक संग्राहक रूप में उपलब्ध हैं—

अथैष ज्योतिरित्यत्र गुणो वा कर्म वा पृथक्।
गुणः सहस्रदानात्मा ज्योतिष्टोमे ह्यनूदिते॥
अथेति प्रकृते छिन्न एतच्छब्दोऽग्रगे वदेत्।
सङ्ख्ययेवाऽन्यकर्मत्वमुत्पत्तिगतसंज्ञया॥ इति।

अयमर्थः—"अथैष ज्यातिरथैष विश्वज्योतिरथैष सर्वज्योतिरेतेन सहस्रदक्षिणेन यजेत"[1] इति श्रुतम्। तत्र संशयः। किं प्रकृत एव ज्योतिष्टोमे सहस्रदक्षिणाऽऽख्यो गुणविधिः उत यागान्तरविधिरिति। एष ज्योतिरेतेनेत्याभ्यामेतच्छब्दाभ्यां प्रकृतं ज्योतिष्टोममनूद्य तत्र गुणविधिरिति पूर्वपक्षः।

---

१. ताण्ड्यब्राह्मणम्। १६।८।८१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain: Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थान्तरद्योतकेनाथशब्देन प्रकृतस्य ज्योतिष्टोमस्य विच्छेदः क्रियते। एतच्छब्दश्च प्रत्यासन्नं ब्रूते। प्रत्यासत्तिश्च द्विविधा, अतीता आगामिनी चेति। तत्रातीतायाः प्रत्यासत्ते र्विच्छेदे सति आगामिप्रत्यासत्तिपरत्वेनैतच्छब्दौ उपपन्नौ। तथाऽप्येकर्मत्वं मा भूत् कर्मभेदे तु किं प्रमाणमिति चेत्। अपूर्वसंज्ञेति वदामः। "एष ज्योति" रित्यस्मिन्नुत्पत्तिवाक्ये पूर्वप्रकृतकर्मविषयाया ज्योतिष्टोमसंज्ञाया अन्या ज्योतिरित्येषा संज्ञा श्रूयते।

'अथैष' इस वाक्य से गुण का विधान होता है या कर्म का? सहस्र दक्षिणा के रूप गुण ज्योतिष्टोम में अनुवाद से प्राप्त होता है इस प्रकार पूर्वपक्ष का मत आता है। अथ और एतत् शब्द का प्रयोग से एक शब्द दूसरे शब्दों से छिन्न होता है। इसलिये संख्या के द्वारा और संज्ञा के द्वारा कर्मों का उत्पत्ति गत भेद होता है ऐसा उत्तर है।

इसका आशय यह है—इसके बाद यह ज्योति, बाद में विश्वज्योति और बाद में सर्वज्योति हैं। इससे सहस्रदक्षिण याग को करते हैं ऐसा सुना है। यहां सन्देह होता है कि प्रकरण में प्राप्त ज्योतिष्टोम में सहस्र दक्षिण के नाम से गुण का विधान होता है या दूसरे यागों का विधान होता है? ज्योति शब्द और एतत् शब्द इन दोनों से प्रकरणगत ज्योतिष्टोम को अनुवाद करके गुणविधि की प्राप्ति होती है वैसा पूर्वपक्ष का मत है।

दूसरा अर्थ को द्योतित करने वाला अथ शब्द से प्रकृत ज्योतिष्टोम का विच्छेद किया जाता है। 'एतत्' इस शब्द निकटवर्त्तिता अर्थ को प्रकाश करता है। निकटवर्त्तिता का अर्थ है प्रत्यासत्ति। प्रत्यासत्ति दो प्रकार होती है। अतीता प्रत्यासत्ति और आगामी प्रत्यासत्ति। अतीत प्रत्यासत्ति का विच्छेद होने पर आगामी प्रत्यासत्ति के विषय में (एतत्) यह दो शब्द उपपन्न होते हैं। तथापि एक प्रकार कर्म नहीं होना चाहिये। कर्मभेद में क्या प्रमाण है? ऐसा अगर प्रश्न होता तो अपूर्वसंज्ञा ही प्रमाण है ऐसा कहा जा सकता है। 'एष ज्योति' यह वाक्य कर्मोत्पत्ति विधिवाक्य होता है। इसमें पूर्वप्रकरण के अनुसार सूचित कर्म के विषय में जो ज्योतिष्टोम संज्ञा, उससे 'ज्योति' दूसरी संज्ञा है, इस प्रकार सुना है।

तत्र यथा पूर्वाधिकरणे "सप्तदश प्राजापत्यान् पशूनालभेत"[1]

---

१. तैत्तिरीयब्राह्मणम्। १।३।४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्यत्रोत्पत्तिवाक्यगतया सङ्ख्यया कर्मभेदो निरूपितः। तथाऽत्राप्युत्पत्तिवाक्यगतया नूतनसंज्ञया कर्मभेदोऽभ्युपगन्तव्य इति।

एवञ्च सति प्रकृतेऽप्यनेन न्यायेनोत्पत्तिवाक्यगताभ्यां जन्माष्टमीव्रतजयन्तीव्रतसंज्ञाभ्यां व्रतभेदोऽभ्युपगन्तव्यः। तथा निमित्तभेदादपि व्रतभेदः। जन्माष्टमीव्रते तिथिरेव निमित्तम्[1]। जयन्तीव्रते तु रोहिणीयोगः। ननु जन्माष्टमीत्यस्मिन्नपि व्यवहारे योग एव विवक्षितव्यः नक्षत्रयुक्तायामेव तिथौ देवकीनन्दनस्योत्पत्तेः।

मैवम्, तज्जन्मन्यष्टम्या एव प्रधानप्रयोजकत्वात्। रोहिणीतद्योगयोर्विद्यमानयोरपि बुधवारादिवदुपलक्षणत्वात्। अत एव शास्त्रेषु जन्माष्टमीत्येव समाख्यायते। अन्यथा जन्मरोहिणी, इति वा जन्मयोग इति वा समाख्यायेत। तत्सद्भावमात्रेण प्रयोजकत्वे बुधवारोऽपि प्रयोजकः स्यात्।

अस्त्विति चेत्, न। अतिप्रसङ्गात्। तज्जन्मकाले द्वापरावसानस्य संवत्सरविशेषस्य च सद्भावेन तयोरपि प्रयोजकत्वं केन वार्येत। तस्माज्जन्माष्टम्या एव प्राधान्यम्। तत्र प्राधान्ये च श्रुतिलिंगादिषु षट्सु समाख्यारूपं षष्ठं प्रमाणमुपन्यस्तं वेदितव्यम्। तथा प्रत्यक्षादिषु संभवैतिह्यान्तेष्वष्टसु प्रमाणेष्वैतिह्यरूपमागमरूपं वा प्रमाणमुक्तं भवति।

वहां जैसे पहला अधिकरण में सतरह प्राज्यापत्य पशुओं का आलंभन करना है इस प्रकार विधिवाक्य में उत्पत्ति-वाक्यगत संख्या से कर्म का भेद निरूपित हुआ है, वैसे वहाँ भी उत्पत्ति वाक्य के अन्तर्गत नवीन संज्ञा से कर्मभेद को समझना चाहिये।

इस प्रकार होने से इस प्रकरण में इस न्याय से उत्पत्तिवाक्य के अन्तर्गत जन्माष्टमी व्रत और जयन्तीव्रत इन दो संज्ञा के द्वारा व्रतभेद भी अवगत हो सकता है। फिर भी निमित्त भेद से व्रतभेद होता है। जन्माष्टमी व्रत में तिथि निमित्त होती है। जयन्ती व्रत में रोहिणी नक्षत्र का योग निमित्त होता है। यहां एक प्रश्न होता है कि 'जन्माष्टमी' इस प्रकार व्यव-

---

१. तिथिः कालस्य द्योतिनी। कालः सर्वथा निमित्तम्। ''निमित्तं कालमादाय कुर्याद् विधिनिषेधयो''रिति स्मरणात्। तार्किकैरपि कालो निमित्तकारणत्वेनाभ्युपगम्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हार में योग ही विवक्षित होता है। क्योंकि नक्षत्र युक्त तिथि में देवकी नन्दन भगवान कृष्ण की उत्पत्ति हुई है।

किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि उनके जन्म में अष्टमी की प्रधान प्रयोजकता है। रोहिणी और उसका योग इन दोनों की विद्यमानता बुधवार की तरह उपलक्षण होती है। अत एव शास्त्रों में 'जन्माष्टमी' वैसी ही समाख्या हुई है। वैसा अगर नहीं होता तो जन्म रोहिणी या जन्मयोग भी संज्ञा या समाख्या हो जाती है। इनके सद्भाव प्रयोजक होने से बुधवार भी प्रयोजक हो सकता है।

वैसा अगर प्रश्न होता तो ठीक नहीं है। क्योंकि यहां अति प्रसंग हो जाता है। उनके जन्म काल में द्वापरावसान विशेष संवत्सर का सद्भाव था। इन दोनों की भी प्रयोक्ता कैसे वारित हो सकती है। इसलिये जन्माष्टमी का प्राधान्य रहता है। इस प्राधान्य के बारे में श्रुतिलिंग प्रभृति छ प्रमाणों में समाख्या रूप छवां प्रमाण उपन्यस्त है। वैसा विदित होना चाहिये।

इस प्रकार प्रत्यक्ष से लेकर (संभव) ऐतिह्य तक छ प्रमाणों में ऐतिह्य रूप या आगमरूप प्रमाण उक्त हो जाता है।

ननु निरर्थकोऽयं वाग्वादलक्षणः कोलाहलः, यदि एकं व्रतं यदि वा व्रतद्वयमुभयथाऽप्यनुष्ठाने को नामातिशयः स्यात्। उच्यते, अस्त्वेव महानतिशयः। यस्मिन् संवत्सरे श्रावणबहुलाष्टमीं परित्यज्यान्यस्मिन्नवम्यादौ रोहिणी भवति तस्मिन्संवत्सरे जयन्ती स्वरूपेणैव नास्ति। अतो जयन्तीव्रतस्य तत्र लुप्तत्वात्तस्यैव जन्माष्टमीव्रतत्वे तदपि न प्राप्नुयात्। भेदपक्षे त्वसत्यामपि जयन्त्यां जन्माष्टमीव्रतं तत्र प्रवर्त्तते इत्ययमनुष्ठानेऽतिशयः। भवत्वेवं, तथापि नोपन्यस्तो निमित्तभेदो व्रतभेदमावहति। कर्मभेदहेतुषु शब्दान्तराभ्यास-संख्या-गुण-प्रक्रिया-नामधेयेषु षट्सु प्रमाणेषु निमित्तस्यानन्तर्भावादिति चेत्। मैवम्। तथा हि पूर्वोक्तसंज्ञाभेदसंपादितं व्रतभेदं निमित्तभेद उपोद्बलयति। तस्मादत्र निमित्तभेदाद् व्रतभेदः।

तथा रूपभेदादपि व्रतभेदोऽवगन्तव्यः रूपभेदस्य कर्मभेदहेतुत्वमामिक्षाधिकरणे[1] (पू० मी० २।२।९) निर्णीतम्। तस्य चाधिकरणस्य संग्राहकावेतौ श्लोकौ भवतः—

---

१. गुणश्चापूर्वसंयोगे वाक्ययोः समत्वात् (जै० सू० २।२।२३) इति सूत्रेऽधिकरणमिदं प्राप्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहां एक प्रश्न होता है कि वाग्वाद के लक्षण विशिष्ट कोलाहल निरर्थक होता है। यदि एक व्रत होता है या दो व्रतों होते हैं। इन दो प्रकार का अनुष्ठान में क्या अतिशय होता हैं? उत्तर वैसा है कि महान् अतिशय होने से कुछ नहीं है। जिस संवत्सर में श्रावणमास की कृष्ण अष्टमी को छोड़कर दूसरी नवमी में रोहिणी रहती है उस संवत्सर में जयन्ती स्वरूपतः नहीं है। अतः इस स्थल में जयन्ती लुप्त होती है। इसलिये जन्माष्टमी व्रत रहने से जयन्ती की प्राप्ति नहीं होती है। भेदपक्ष में जयन्ती के अभाव होने पर भी जन्माष्टमी व्रत की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार अनुष्ठान क्षेत्र में अतिशय प्रकटित होता है। इस प्रकार हो सकता है, तथापि यहाँ उपन्यस्त निमित्त भेद व्रतभेद को नहीं सूचित करता है। कर्मभेद का हेतु के रूप में शब्दान्तर (दूसरा शब्द) का अभ्यास, संख्या, गुण, प्रक्रिया और नामधेय (संज्ञा) इन छ प्रमाण स्वीकृत हैं। इनमें निमित्त का अन्तर्भाव न होने से व्रतभेद की सूचना फलवती न हो सकती है इस प्रकार अगर प्रश्न होता तो ठीक नहीं है। क्योंकि पूर्वोक्त संज्ञाभेद के द्वारा संपादित व्रतभेद को निमित्त भेद बढ़ जाता है। इसलिये यहाँ निमित्तभेद से व्रतभेद माना जाता है।

इस प्रकार रूप भेद से भी व्रतभेद माना जायगा। क्यों कि रूपभेद की कर्मभेदहेतुता के बारे में आमिक्षा अधिकरण में (पू० मी० २।२।९) निर्णय किया है। इस अधिकरण के दो संग्राहक श्लोक हैं—

गुणः कर्मान्तरं वा स्यात् वाजिभ्यो वाजिनन्त्विति।
गुणो देवाननूद्योक्तः समुच्चयविकल्पतः
आमिक्षोत्पत्तिशिष्टत्वात् प्रबला तत्र वाजिनम्।
गुणोऽप्रविश्य कर्मान्यत् कल्पयेद् वाजिदेवकम्॥ इति

"तप्ते पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेव्यामिक्षा वाजिभ्यो वाजिन" मिति [1]श्रुतम्। अम्लदधिसंबन्धात् क्षीरनिरयोर्विभेदे सति यो घनीभूतः क्षीरांशः साऽऽमिक्षा। तस्याश्च विश्वेदेवा देवताः। तत्र यत् पृथग्भूतं नीरं तद्वाजिनम्। तस्य च वाजिनो देवताः। तस्य च वाक्यस्य आमिक्षान्तस्य प्रतिपाद्यमामिक्षाद्रव्यकं विश्वेदेवदेवताकमेकं कर्म। तथा सति किमुपरितनेन वाजिभ्यो वाजिनमित्यनेन वाक्येन

१. तैत्तिरीयब्राह्मणम्। १।६।२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वस्मिन्नेव कर्मणि वाजिनं गुणो विधीयते उत कर्मान्तरविधिः इति संशयः।

तत्र वाजोऽन्नमामिक्षा। सा येषां विश्वेषां देवानामस्ति ते वाजिन इति व्युत्पत्त्या प्रकृतान् देवाननूद्य वाजिनं गुणो विधीयते। सा चामिक्षया सह विकल्प्यते समुच्चीयते वेति पूर्वपक्षः। उत्पत्तिशिष्टामिक्षागुणावरुद्धस्य, कर्मणो गुणान्तराकाङ्क्षाऽभावात् वाजिनस्यतत्र प्रवेशासंभवे सत्यन्यथानुपपन्नो वाजिनगुणो वाजिशब्दार्थस्य प्रकृतदेवताव्यतिरिक्तदेवत्वं कल्पयित्वा कर्मभेदे पर्यवत्स्यतीति सिद्धान्तः[1]।

अश्विनीकुमारों को वाजि देवता के नाम कहते हैं। आमिक्षा के अवशिष्ट पानी वाजिन नाम से प्रसिद्ध है। वाजि देवताओं के उद्देश्य में त्याज्य द्रव्य वाजिन गुण होता है या कोई दूसरा कर्म होता है? यह सन्देह होता है। याग में देवता को अनुवाद करके गुण का विधान होता है। समुच्चय और विकल्प के द्वारा होता है। आमिक्षा की उत्पत्ति करने के लिये प्रयुक्त कर्त्ता आमिक्षा को उत्पत्ति शिष्ट मानता है, इसलिये आमिक्षा प्रबल होती है। वाजि देवताओं का वाजिन गुण होता है। वह दूसरा कर्म की कल्पना में आता है।

इसका आशय यह है—तप्त दूध में दधि को डालने से उससे उत्पन्न आमिक्षा वैश्वदेवों के लिये ही होती है और वाजि देवताओं के उद्देश्य में वाजिन रह जाता है। ऐसा श्रुति में मिलता है। अम्ल दधि के सम्बन्ध से दूध और पानी के बीच में जो विभेद होता है, उसमें जो घनीभूत दूध के अंश वह आमिक्षा नाम से प्रसिद्ध है। आमिक्षा की देवता विश्वेदेवा है। इस वाक्य में आमिक्षान्त भाग से प्रतिपादित हुआ जो आमिक्षा द्रव्य और विश्वेदेव देवता, उन दोनों में जो त्याग उसको एक कर्म कहते हैं। वैसे होने से दूसरा अंश में वाजिदेवताओं का वाजिन द्रव्य होता है; इसमें पूर्व कर्म

---

१. शबरो विषयेऽस्मिन् इत्थं ब्रूते यत् 'यत्र श्रुत्या देवतात्वं' तत्राऽऽमिक्षया सहैकवाक्यत्वम्। यत्र चतुर्थी तत्र वाजिनेन। तत्र तेषामेकत्र श्रुत्या देवतात्वं वाक्येन द्रव्यविशेषसम्बन्धः॥ इति। कुमारिलो व्यनक्ति स्पष्टम्—

गुणान्तरावरूद्धत्वात् पूर्वकर्मण्यसंभवात्।
क्रियान्तरमिति कुर्यादात्मसंगतये गुणः॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का गुण के रूप में वाजिन का विधान होता है या दूसरा कर्म का विधान होता है ? इस प्रकार संशय होता है।

यहां पूर्वपक्ष का मत वैसा है कि वाज का अर्थ है अन्न, वह है आमिक्षा, आमिक्षा जिन देवताओं की होती है, वे वाजिन होती हैं। इस व्युत्पत्ति के द्वारा पहला अंशों में रहनी वाली देवताओं को अनुवाद करके वाजिन गुण के रूप में विहित होता है। वह आमिक्षा के साथ विकल्प रूप में या समुच्चय के रूप में रहता है ? इस प्रकार पूर्वपक्ष का मत उपस्थापित होता है। उत्पत्ति शिष्ट रूप आमिक्षा गुण से अवरुद्ध कर्म दूसरा गुण को नहीं चाहता है। इसलिये वाजिन का प्रवेश यहाँ नहीं होता है। वैसे होने से अन्यथा अनुपपन्न वाजिन रूपक गुण वाजि शब्दार्थ का प्रकरण गत देवता को छोड़कर दूसरी देवता को कल्पना करके कर्मभेद विषय में पर्यवसित करता है इस प्रकार सिद्धान्त होता है।

तत्र यथा द्रव्यदेवतालक्षणस्य[1] यागरूपस्य भिन्नत्वात् कर्मभेदः तथा प्रकृतेऽपि रूपभेदाद् व्रतभेदोऽभ्युपगम्यताम्। उपवासमात्रं जन्माष्टमीस्वरूपं, तदुत्पत्तिवाक्ये[2] तन्मात्रस्य प्रतीयमानत्वात्।

ननु जयन्तव्रती एव "उपवासं कुर्यात्" इत्युत्पत्तिवाक्यं स्मर्य्यते न तु जन्माष्टमीव्रते। बाढम्। तथाप्यत्र विधिरुन्नेतव्यः। अन्यथा भोजने प्रत्यवाय-स्मरणानुपपत्तेः। स चोन्नीयमानो विधिरुपवासमात्रं विधत्ते, न तु मण्डपनिर्माणजागरणप्रतिमादानादिकम्। विधेरुन्नयन-

---

१. जैमिनीसूत्रे तु (४. २. २७) "यजति चोदना द्रव्यदेवताक्रियं समुदाये कृतार्थत्वात्" इति उक्तम्। यद्यप्यत्र द्रव्यदेवताक्रियमिति त्रितयमुपन्यस्तं, तथापि द्रव्यदेवते एव यागस्य स्वरूपं क्रिया तु तयोः सम्बन्धार्था। तदुक्तं भाष्यकृता यजति चोदना तावत् द्रव्यदेवताक्रियं द्रव्यं देवता च, तस्य द्रव्यस्य क्रिया यया तयोः संबन्धो भवति इति। अतएव मीमांसाभाष्यकारेण 'द्रव्यदेवते यागस्य स्वरूपम्' इत्यन्यत्राप्युक्तम्। त्रितयस्य यागस्वरूपत्वविवक्षायामपि यागानां परस्परभेदे द्रव्यदेवताभेद एव हेतुः क्रियायाः सर्वत्राविशेषादिति न प्रकृतग्रन्थस्य न्यूनता इति चन्द्रकान्ततर्कालङ्कारः।

२. उत्पत्तिवाक्ये नाम कर्मोत्पत्तिविधिवाक्ये। तल्लक्षणं मीमांसापरिभाषायां (पृ० ३) यथा—येन वाक्येनेदं कर्म कर्त्तव्यमिति बोध्यते तत कर्मोत्पत्तिवाक्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हेतुष्वकरणप्रत्यवायवाक्येषु भोजननिषेधमात्रस्मरणात्। न हि तत्र निद्रायां दानाभावे वा प्रत्यवायः स्मर्यते।

अतः उपवासमात्रं तस्य स्वरूपं न तु दानादिकम्। अतएवाकरणे प्रत्यवायमभिधाय वाक्यशेषे जयन्तीप्रयुक्तदानादिशङ्काव्यावृत्तये केवलशब्द उपवासविशेषणत्वेन पठ्यते—

केवलेनोपवासेन तस्मिन् जन्मदिने मम।
शतजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ इति।

तस्माज्जन्माष्टमीव्रतस्योपवासमात्रं स्वरूपम्। यदि शिष्टास्तत्रापि जागरणदानादिकमनुतिष्ठन्ति, अनुतिष्ठन्तु नाम। अविरुद्धैः पुण्यविशेषैः व्रतस्योपोद्बलनसंभवात्। शास्त्रेण तु प्रापितमुपवासमात्रम्।

वहां जैसे द्रव्य और देवता के लक्षण को लेकर याग का स्वरूप भिन्न हो जाने से कर्मभेद होता है, वैसे इस प्रकरण में भी रूप भेद से व्रतभेद माना जा सकता है। जन्माष्टमी के स्वरूप उपवास मात्र ही होता है। क्योंकि जन्माष्टमी का उत्पत्तिवाक्य में वैसे प्रतीत होता है।

वहां एक प्रश्न होता है—कि जयन्ती व्रत में "उपवास करता है" ऐसे उत्पत्तिवाक्य का स्मरण मिलता है। किन्तु जन्माष्टमी व्रत में तो नहीं है। तथापि यहाँ विधि को आक्षिप्त करना पड़ेगा। अन्यथा भोजन में प्रत्यवाय स्मरण की उत्पत्ति नहीं होगी। इस प्रकार यहाँ आक्षिप्त विधि उपवास मात्र को विधान करता है, किन्तु मण्डप-निर्माण, रात में जागरण और प्रतिमा दान को नहीं। क्योंकि अकरण से प्रत्यवाय होता है। इस भाव को सूचित करने वाला वाक्य विधि को आक्षिप्त करने के लिये हेतु होता है। अतः इस प्रकार वाक्यों में भोजन के निषेध मात्र का ही स्मरण किया है। इस पर निद्रा में या दान के अभाव में भी प्रत्यवाय नहीं होता है, वैसा स्मरण किया है।

अतः उपवास मात्र ही इसका स्वरूप होता है। किन्तु दान प्रभृतियों नहीं। अत एव अकरण से प्रत्यवाय होता है वैसा कहकर वाक्य शेष में (अर्थवाद) जयन्ती में होनेवाला दान प्रभृतियों की शंका को वारण करने के लिये उपवास का विशेषण के रूप में केवल शब्द का पाठ हुआ है। यथा मेरा जन्मदिन में केवल उपवास के द्वारा सौ जन्म तक अर्जित पापों से मुक्ति मिलती है। इसमें संशय नहीं है।

इसलिये जन्माष्टमी व्रत का उपवास मात्र ही स्वरूप है। यदि शिष्ट लोग वहाँ भी जागरण और दान प्रभृति कर्मों का अनुष्ठान करते हैं तो करने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि विरोध न करने वाले पुण्यविशेष से व्रत का उपोद्बलन करते हैं। शास्त्र के द्वारा उपवास मात्र की ही प्राप्ति कही गयी है।

जयन्तीव्रतस्य तु दानादिसहित उपवासः स्वरूपम्। तद्विधायकेषु शास्त्रेषु तथाऽभिधानात्। तथा च वह्निपुराणे—

तुष्ट्यर्थं देवकीसूनोर्जयन्तीसंज्ञकं व्रतम्।
कर्त्तव्यं वित्तमानेन भक्त्या भक्तजनैरपि॥ इति।

भविष्योत्तरेऽपि—

मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां निशीथे कृष्णपक्षगे।
शशाङ्के वृषराशिस्थे ऋक्षे रोहिणीसंज्ञके॥
योगेऽस्मिन् वसुदेवाद्धि देवकी मामजीजनत्।
तस्मान्मां पूजयेत्तत्र शुचिः सम्यगुपोषितः॥
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या ततो दद्याच्च दक्षिणाम्।
हिरण्यं मेदिनीं गावो वासांसि कुसुमानि च॥
यद्यदिष्टतमं तत्तत् कृष्णो मे प्रीयतामिति॥ इति।

भविष्यद्विष्णुधर्मोत्तरयोः—

जयन्त्यामुपवासश्च महापातकनाशनः।
सर्वैः कार्यो महाभक्त्या पूजनीयश्च केशवः॥ इति।

वह्निपुराणे—

कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रयत्नतः॥ इति।

जयन्ती व्रत का दानादि के साथ उपवास स्वरूप है। उस स्वरूप की विधायक शास्त्रों में इस प्रकार कहा गया है। इसीलिए वह्निपुराण में कहा है—

देवकीपुत्र की तुष्टि के लिए भक्त लोग भक्तिपूर्वक जयन्ती संज्ञा से अभिहित व्रत को धन और मान के सहित करते हैं। भविष्योत्तरपुराण में कहा है—भाद्रपद मास का कृष्णपक्ष की अष्टमी का निशीथ में देवकी ने वसुदेव से मुझे जन्म दिया था। उस समय में चन्द्र वृष राशि में थे और रोहिणी नक्षत्र का योग था। इसलिये इस अवसर पर शौच करके उपवास पूर्वक पूजा करनी चाहिये। भक्ति के साथ ब्राह्मण-भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। हिरण्य, जमीन, गाय, वस्त्र, फूल और जो जो इष्टतम पदार्थ है। हे कृष्ण! मेरे प्रिय-तुष्टि के लिए। दो इसे कहकर दान करना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भविष्यपुराण और विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा है—सभी ने जयन्ती में उपवास करके महापातकों का नाश करना है और महाभक्त से केशव की पूजा करनी चाहिये। वह्निपुराण में कहा है—जब कृष्णपक्ष की अष्टमी होती है, उसके साथ अगर एक कला तक रोहिणी का योग होता तो उस अष्टमी की जयन्ती संज्ञा होती है। इस अवसर पर यत्न पूर्वक उपवास करना चाहिये।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता श्रावणस्यासिताष्टमी।
वर्षे वर्षे[1] तु कर्त्तव्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः॥ इति।

नारदीयसंहितायां जयन्तीं प्रकृत्य स्मर्यते—

उपोष्य जन्मचिह्नानि कुर्याज्जागरणं तु यः।
अर्धरात्रयुताष्टम्यां सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

एवमेतेषु विधिवाक्येषु दानादियुक्त उपवासो जयन्तीव्रतरूपत्वेन प्रतीयते। अतो रूपभेदाद् व्रतभेदः। तथा शुद्धमिश्रत्वभेदादपि द्रष्टव्यः अकरणे प्रत्यवायमात्रस्मरणात् शुद्धं नित्यं जन्माष्टमीव्रतम्। करणे फलविशेषस्मरणात् अकरणे प्रत्यवायस्मरणाच्च नित्यत्वेन काम्यत्वेन[2] च मिश्ररूपं जयन्तीव्रतम्। तत्र फलवाक्यानि पूर्वपक्ष एव प्रसङ्गादुदाहृतानि। अकरणे प्रत्यवायश्च जयन्तीं प्रकृत्य कस्मिंश्चित्पुराणे स्मर्यते—

अकुर्वन् याति नरकं यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ इति।

स्कन्दपुराणेऽपि—

शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्य भोजने।
तत्पापं लभते कुन्ति जयन्तीविमुखो नरः॥
ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य गोवधे स्त्रीवधेऽपि वा।
न लोको यदुशार्दूल जयन्तीविमुखस्य च॥

दूसरी स्मृतियों में कहा है—

प्राजापत्य (रोहिणी) नक्षत्र से संयुक्त श्रावण की कृष्ण अष्टमी में हर

---

१. वर्षे वर्षे इति वीप्सया नित्यत्वम्।

२. नित्यत्वेन काम्यत्वेनेत्युभयत्वे संयोगपृथक्त्वम्। तदुक्तं जैमिनीये—४।३।३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साल चक्रपाणि की तुष्टि के लिये (उपवास व्रत का) अनुष्ठान किया जाता है। नारदीयसंहिता में जयन्ती का प्रकरण में स्मरण किया है—कृष्ण के जन्म दिन में अष्टमी की अर्धरात्रि में जो उपवास करके जागरण करता है, वह अश्वमेध फल को पाता है।

इस प्रकार विधिवाक्यों में दानादि के साथ उपवास जयन्ती व्रत का रूप की तरह प्रतीत होता है। अत एव रूपभेद से व्रतभेद होता है। इस प्रकार शुद्ध-मिश्रभेद को भी देखना होगा। अनुष्ठान न करने से प्रत्यवाय मात्र ही यहाँ होता है। इसलिये जन्माष्टमीव्रत की तरह शुद्ध और नित्य भी होता है। करने से फल विशेष का लाभ और न करने से प्रत्यवाय होता है। इसलिये नित्य और काम्य के रूप होकर मिश्ररूप की तरह जयन्तीव्रत होता है। पूर्वपक्ष के रूप में प्रसंगतानुसार इससे संबन्धित फलवाक्यों का उदाहरण दिया गया है। न करने से प्रत्यवाय होता है। इस विषय के बारे में जयन्ती प्रकरण के अवसर पर किसी पुराण में कहा गया हैं। यथा—

चौदह इन्द्रों के काल तक वह नरक को जाता है—जो जयन्तीव्रत नहीं करता है।

स्कन्दपुराण में भी कहा है—

हे कुन्ती, शूद्र का अन्न भोजन से और शव-हस्त (मृत व्यक्ति के हाथ) का भोजन से जो पाप होता है, उसी प्रकार जयन्ती व्रत के प्रति विमुख मनुष्य पाप को पाता है। ब्रह्महत्याकारी, मद्यप, गोघ्न, स्त्रीहत्याकारी और जयन्ती के प्रति विमुख के लिये, हे यदुपति, कोई लोक (स्थान) नहीं है।

क्रियाहीनस्य मूर्खस्य परान्नं भुञ्जतोऽपि वा।
न कृतघ्नस्य लोकोऽस्ति जयन्तीविमुखस्य च॥
न करोति यदा विष्णोर्जयन्तीसम्भवं व्रतम्।
यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम्॥
जयन्तीवासरे प्राप्ते करोत्युदरपूरणम्।
संपीड्यतेऽतिमात्रन्तु यमदूतैः सुदारुणैः॥
काकोला आयसैस्तुण्डैः कृषन्त्यस्य कलेवरम्।
यो भुञ्जीत विमूढात्मा जयन्तीवासरे नृप॥ इति।

एतैरकरणे प्रत्यवायवाक्यै र्नित्यत्वञ्च जयन्त्याः। नन्वेवमुक्तैर-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करणे प्रत्यवायवाक्यैः 'केवलेनोपवासेन' इति पापक्षयवाक्याच्च जन्माष्टमीव्रतमपि नित्यकाम्यं स्यात्। मैवम्। पापक्षयफलकत्वमात्रेण काम्यत्वे सन्ध्यावन्दनादेरपि काम्यत्वप्रसङ्गात्। अतः सत्यपि पापक्षये फलान्तरास्मरणेन केवलनित्यत्वं जन्माष्टमीव्रतस्य युक्तम्। ततः शुद्धमिश्रत्वभेदाद् व्रतयोर्भेदः। तथा निर्देशभेदादपि व्रतभेदो द्रष्टव्यः। निर्देशभेदश्च भृगुवाक्ये दृश्यते—

जन्माष्टमीजयन्ती च शिवरात्रिस्तथैव च।
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्॥ इति।

क्रियाहीन, मूर्ख, परान्न को भोजन करने वाला, कृतघ्न और जयन्तीव्रत के विमुख का कोई लोक नहीं है। जो आदमी विष्णु के जयन्तीव्रत को नहीं करता है, वह यम के वश में रहकर नरक-यंत्रणा को पाता है। जो मनुष्य जयन्ती दिवस प्राप्त होने पर उदर पूरण अर्थात् भोजन करता है, वह दारुण यमदूतों के द्वारा कठोरता पूर्वक पीड़ित होता है। हे नृप, जो मनुष्य विमूढ होकर जयन्ती दिवस में भोजन करता है। उसके कलेवर को कौआ लौह चन्चुक के द्वारा खा जाता है।

इस प्रकार न करने से प्रत्यवाय प्रतिपादक वाक्यों के द्वारा जयन्ती की नित्यता प्रतिपादित होती है। यहाँ एक प्रश्न होता है कि न करने से प्रत्यवाय होता है इस भाव को प्रकाशित करने वाले वाक्यों के द्वारा और केवल उपवास से इस वाक्य से भी जन्माष्टमी व्रत नित्यकाम्य हो सकता है। यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि केवल पापक्षय करने पर काम्यता की सिद्धि होती है ऐसे कहने से सन्ध्यावन्दन प्रभृतियों को भी काम्यता प्राप्त हो जायगी। अतः पापक्षय करने के लिये शक्ति रहने पर भी दूसरे फलों का स्मरण न करने पर केवल नित्य ही जन्माष्टमी व्रत होता है ऐसी युक्ति ठीक है। उस कारण से शुद्धमिश्र भेद से व्रतों का भेद होता है। इस प्रकार निर्देश भेद से भी व्रतभेद को देखना होगा। भृगु के वचन में निर्देशभेद के बारे में प्रतीक मिलता है। यथा—

जन्माष्टमी, जयन्ती और शिवरात्रि इन सब पूर्वविद्धा होकर माननीय होती हैं। तिथि और नक्षत्र की समाप्ति होने पर पारणा की जाती है।

यत्र 'जन्माष्टमी रोहिणी च' इति पाठः। तत्रापि रोहिणीशब्देन तद्युक्ता तिथि र्विवक्षिता, न तु केवलरोहिणी। तस्मिन् वाक्ये निर्दि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ष्टयोः पूर्वोत्तरयोर्जन्माष्टमी-शिवरात्र्योस्तिथित्वात्। यद्येकमेव व्रतं स्यात्तर्हि निर्देशभेदो नोपपद्यते।

ननु व्रतभेदेऽप्यस्ति दोषः, यदा दिनद्वयेऽष्टमी वर्तते रोहिणी तूत्तरदिन एव, तदा पूर्वदिने जन्माष्टम्युपवासः परेद्युर्जयन्त्युपवासः इति नैरन्तर्येणोपवासद्वयं प्रसज्येत। प्रसज्यतां नाम। प्रमाणवत्त्वादिति चेन्न। परदिने भोजनोपवासलक्षणविरुद्धधर्मद्वयप्रसङ्गात्। उपवासस्याङ्गं पारणमिति हि वक्ष्यते।

तथा च जन्माष्टम्युपवासाङ्गस्य पारणस्य जयन्त्युपवासस्य चैकत्र प्राप्तिः। सोऽयमेको दोषः। [1]व्यतिरेकानुपलम्भश्चापरो दोषः। तथाहि, यथा जयन्तीव्यतिरिक्ता जन्माष्टम्युपलभ्यते तथा जन्माष्टमीव्यतिरिक्ताऽपि जयन्ती क्वापि वत्सरे उपलभ्येत। न त्वेवमुपलभ्यते। अतो व्रतभेदपक्षोऽपि दुष्ट एव।

अत्रोच्यते। न तावत्पारणोपवाससाङ्कर्यलक्षणदोषोऽस्ति। आघ्राणोदकपानादिना पारणे सम्पादितेऽप्युपवासभङ्गाभावात्। अन्यथा द्वादशीपारणात्त्रयोदशीनक्तयोः क्वचित् साङ्कर्यं केन वार्येत। नाप्युपवासद्वयनैरन्तर्यम्। रोहिणीयोगसंभवे जन्माष्टम्यामपि तत्रैव कर्त्तव्यत्वात्। सर्वत्र तिथिषु नक्षत्रयोगस्य केवलतिथेरुत्कृष्टत्वेन केवलायास्तिथेस्तत्रोपेक्षणीयत्वात्। अत एव व्यतिरेकानुपलम्भोऽप्यलङ्काराय, न तु दोषाय।

जहाँ "जन्माष्टमी और रोहिणी" ऐसा पाठ मिलता है वहाँ रोहिणीशब्द से रोहिणीनक्षत्र से युक्त तिथि विवक्षित होती है। किन्तु केवल रोहिणी की विवक्षा नहीं होती है। उस वाक्य में निर्दिष्ट पूर्व और उत्तर अर्थात् जन्माष्टमी और शिवरात्रि तिथि के रूप में अवगत होती हैं। अगर एक ही व्रत होता तो निर्देशभेद का प्रसंग नहीं आता।

यहां एक प्रश्न होता है कि व्रतभेद में भी दोष है। जब दो दिनों में अष्टमी रहती है, और रोहिणी परदिन में रहती है, तब पूर्वदिन में जन्माष्टमी के लिये उपवास और परदिन में जयन्ती के लिये उपवास हो सकता हैं। इस प्रकार निरन्तर दोनों उपवासों की प्रसक्ति होती है। प्रसक्ति होने दीजिये। इनके समर्थक कोई प्रमाण तो नहीं है। परदिन में भोजन और उपवास के लक्षण से लक्षित दो प्रकार विरुद्ध धर्म का प्रसंग आ जाता है। क्योंकि उपवास के अङ्ग पारण है, ऐसा कहा है।

---

१. तदभावे तदभावो व्यतिरेकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसलिये जन्माष्टमी के उपवास का अङ्ग पारण और उपवास का एकत्र प्राप्ति होती है। वह एक दोष है। व्यतिरेक की अनुपलब्धि दूसरा दोष है। फिर भी जैसे जयन्ती भिन्न जन्माष्टमी मिलती है, वैसे जन्माष्टमी भिन्न कभी जयन्ती भी वर्ष में उपलब्ध होती है। किन्तु इस प्रकार दोनों की युगपत् प्राप्ति नहीं मिलती है। अत एव व्रतभेद का पक्ष ठीक नहीं है।

यहां उत्तर के रूप में वैसा कहा जाता है—कि पारण और उपवास इन दोनों की संकरता रूप लक्षण से लक्षित दोष यहां नहीं है। आघ्राण और जलपानादि से पारण संपादित करने पर उपवास का भङ्ग नहीं होता है। वैसा अगर नहीं होता तो द्वादशी की पारणा और त्रयोदशी का नक्त की संकरता किससे वारित होती। दो उपवासों की निरन्तर प्राप्ति यहाँ नहीं होती है।

रोहिणी का योग संभव होने पर जन्माष्टमी में भी उसी का अनुष्ठान होता है। सब जगह तिथियों में नक्षत्रयोग केवल तिथि से उत्कृष्ट होता हैं। इसलिये इस अवसर पर तिथि की उपेक्षा होती है। अत एव व्यतिरेक की (जिसकी सत्ता के अभाव से जिसका अभाव) अनुपलब्धि अलङ्कार के सदृश भूषण होता है, दोष नहीं है।

जन्माष्टम्या रोहिणीनिरपेक्षत्वेन व्यतिरेक उपलभ्यतां नाम जयन्त्यास्तु योगरूपत्वेन रोहिण्यामिवाष्टम्यामपि सापेक्षत्वेन कथं व्यतिरेकशङ्काऽवकाशः। तस्माद् व्रतद्वयपक्षे न कोऽप्यस्ति दोषः। किञ्च यदा रोहिणीयोगोऽस्ति तदा जन्माष्टमीजयन्त्योः सहप्रयोगस्यावश्यम्भावित्वेन जयन्तीव्रत एव जन्माष्टमीव्रतमन्तर्भवति। तस्मादपि नोपवासद्वयप्रसङ्गः। तदेवं व्रतभेदे दोषाभावात् तत्साधकानाञ्च नामभेदादीनां हेतूनां सद्भावाद् व्रतभेद एवावश्यमभ्युपेयः॥

व्रतैक्यभ्रमस्तु तयोरुक्तयुक्त्यनुसन्धानाभावाष्टम्युपवाससादृश्याच्च केषाञ्चिदुदेति। सादृश्यञ्च गुणविकृतित्वादाश्रयाश्रयिभावाच्च सम्भाव्यते। यथा दर्शयागस्य गुणविकृतिः साङ्कप्रस्थायीयको यागः। तत्र दर्शयागे यावन्तोऽङ्गाङ्गिविषयाः सर्वेऽपि साङ्कप्रस्थायीये विद्यते[1]

---

१. साङ्कप्रस्थायीयो यागविशेषः स च दर्शयागस्य विकृतिभूतः। प्रकृतित्वात् दर्शयागस्य तद्गतविषया विकृतिभूते साङ्कप्रस्थायीयेऽतिदिश्यन्ते "अर्थस्य शब्दभाव्यत्वात् प्रकरणनिबन्धवाच्छब्दादेवान्यत्र भावः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेदस्तु स्वल्प एव भवति। दर्शयागो सान्नाय्यहविषोर्दधिपयसोः पृथगवदानम्। साङ्कप्रस्थायीये तु सहैव प्रस्थानम्।[1]

जन्माष्टमी रोहिणी की अपेक्षा नहीं करती है। इसलिये जन्माष्टमी के लिये रोहिणी की सत्ता का अभाव से जयन्ती न होने पर व्यतिरेक होता है। इस प्रकार होने से कोई दोष नहीं है। क्योंकि जयन्ती एक योग है। रोहिणी की भांति अष्टमी की भी अपेक्षा वहां होती है। इसलिये व्यतिरेक शंका का अवकाश क्यों आयगा। फिर भी जब रोहिणी का योग है, वहां जयन्ती और जन्माष्टमी इन दोनों का एकत्र प्रयोग अवश्य कर्त्तव्य है। इस स्थल में जयन्तीव्रत में जन्माष्टमी व्रत का अन्तर्भाव हो जाता है। इस कारण से दो उपवासों का प्रसंग नहीं होता है। इस प्रकार व्रतभेद में दोष का अभाव होने पर व्रतभेद को प्रमाणित करने वाला नामभेद प्रभृति पांच पांच हेतुओं की अवस्थिति से व्रतभेद अवश्य ही माना जायगा।

इनके विषय में संभावित युक्ति और अनुसन्धान के अभाव से एक व्रत होनेवाला भ्रम अष्टमी के लिये होनेवाला उपवास के सदृश कुछ लोगों का होता है। इस सादृश्य गुणविकृति और आश्रयाश्रयीभाव के कारण से संभावित होता हैं। यथा दर्शयाग की गुणविकृति के स्वरूप साङ्कप्रस्थायीयक याग होता है। उस दर्शयाग में जितने अङ्गाङ्गी विषयों का प्रयोग कहे गये हैं, उतने सब विषयों का सद्भाव सांकप्रस्थायीय में है। किन्तु इसमें भेद स्वल्प रहता है। दर्शयाग में सान्नाय्य हवि के अन्तर्गत दधि और पय का अलग-अलग आसादन होता है। किन्तु साङ्कप्रस्थायीय में एकत्र प्रस्थान होता है।

स्यात्'' (जैं० सू० ७।१।१२) इति सूत्राशयेन भावान्तरकार्यमत्र विधीयते।

१. दर्शे त्रयो यागा भवन्ति। आग्नेयः। यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां च पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति (तै० सं० २।६।३), इन्द्रदेवताको दधिद्रव्यको याग (ऐन्द्रं दध्यमावास्यायाम् तै० सं० २।५।४।१), इन्द्रदेवताकः पयोद्रव्यको याग (ऐन्द्रं पयोऽमावास्यायाम् तत्रैव) श्चेति। दधिपयोविकारात्मकं द्रव्यं सान्नाय्यमित्युच्यते। तच्च अन्तिमयागद्वये व्यवहृतत्वात् गुणपदार्थः। दर्शे तस्य पृथक् प्रयोगः, विकृतिभूते साङ्गप्रस्थायीये सहप्रयोगश्चोदितः नात्राभ्युच्चयशंका करणीया, अभ्युच्चये अधिकया वैशिष्टयेनोपयोगात् तदत्रानुपलम्भात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतावता भेदेन गुणविकृतिरित्यभिधीयते। तथा अग्निष्टोमस्य गुणविकृतिरुक्थ्यः। अग्निष्टोमे द्वादश स्तोत्राणि उक्थ्ये त्वधिकानि त्रीणि। ततो गुणाधिक्याद्गुणविकृतित्वम्। एवमत्रापि जन्माष्टम्यामुपवासोऽनुष्ठेयः। जयन्त्यान्तु दानादिरधिको गुणः। अतः सा गुणविकृतिः।

आश्रयाश्रयिभावश्च ज्योतिष्टोमे तदङ्गावरुद्धोपासने दृष्टः। तत्र ज्योतिष्टोम आश्रयः तस्याङ्गान्युक्थ्योद्गीथानि। तत्रोक्थ्यं नाम बह्वृचाध्यायिना होत्रा शस्यमानमाज्यमरुत्वतीयनिष्कैवल्यादिनामकं शस्त्रम्। तच्चोक्थ्यमाश्रित्य बह्वृचब्राह्मणोपनिषद्युपासनानि विहितानि तथा च श्रुतिः। "उक्थ्यमुक्थ्यमिति वै प्रजा वदन्ति तदिदमेवोक्थ्यमियमेव पृथिवी" इति "अहमुक्थ्यमस्मीति विद्यात्" इति च। उद्गीथो नाम सामवेदिनोद्गात्रा यागे गीयमानः साम्नो भागविशेषः तञ्चोद्गीथमाश्रित्य छान्दोग्योपनिषद्युपासनानि विहितानि। "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत"[1] इति। एवं प्रकृतेऽपि जन्माष्टमीव्रते येयं श्रावणकृष्णाष्टमी तामाश्रित्य रोहिणीयोगनिमित्तं दानादिकं जयन्तीव्रते विधीयते। अतो गुणविकृतित्वेनाश्रयाश्रयिभावेन च सादृश्यसद्भावादनयोर्व्रतयोरैक्यभ्रमो मन्दबुद्धेर्जायतां नाम। प्रमाणन्यायदर्शिभिस्तु सर्वथैव व्रतभेदोऽङ्गीकर्त्तव्यः इति सिद्धम्॥

इस प्रकार भेद से "गुणविकृति" ऐसा कहा जाता है। इसी तरह अग्निष्टोम का 'गुणविकृति' उक्थ्य होता है। अग्निष्टोम में बारह स्तोत्र होते हैं। उक्थ्य में तीन स्तोत्रों का अधिक अनुष्ठान होता है। उस कारण से गुणाधिक्य होने पर गुणविकृति होती है। इस प्रकार यहां भी जन्माष्टमी में उपवास अनुष्ठेय होता है। जयन्ती में दानादि अधिक गुण होता है। अतः जयन्ती गुणविकृति होती है।

ज्योतिष्टोम में उसका अङ्गों के द्वारा होनेवाला प्रयोगानुष्ठान में आश्रयाश्रयी का दृष्टान्त मिलता है। उसमें ज्योतिष्टोम आश्रय होता है। उसका अंग उक्थ्य उद्गीथ प्रभृति होते हैं। ऋग्वेद का पाठ करने वाले होता के द्वारा गीत होने वाला आज्य-मरूत्वतीय-निष्कैवल्य नामक शस्त्र को 'उक्थ्य' कहते हैं। उस उक्थ्य को आश्रय करके बह्वृचब्राह्मण उपनिषद् में उपासना कही गयी है। इसलिये श्रुति में प्रमाण मिलता है। यथा—

---

१. छान्दोग्योपनिषत् १।१।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उक्थ्य-उक्थ्य इस प्रकार प्रजा बोलते हैं। यह है उक्थ्य और यह पृथ्वी होती हैं। "मैं उक्थ्य हूँ"। सामवेद को पाठ करने वाला उद्गाता के याग में गीत होने वाला साम के भागविशेष को उद्गीथ कहते हैं। उस उद्गीथ को आश्रय करके छान्दोग्य उपनिषद में उपासना विहित है। यथा—"ॐ इस अक्षर को उद्गीथ के रूप में उपासना कीजिये"। इस प्रकार इस प्रकरण में जन्माष्टमी के लिये श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी कही गयी है। उसको लेकर रोहिणी योग को निमित्त कर दानादि का विधान जयन्तीव्रत में होता है। अतः गुणविकृति और आश्रयाश्रयीभाव के द्वारा सादृश्य रहने से इन दोनों व्रतों में ऐक्यभ्रम मन्दबुद्धि लोगों का अगर होता तो होने दीजिये। किन्तु प्रमाण और न्याय को जाननेवाले तत्त्वदर्शी पण्डित लोगों के जरिये व्रतभेद अंगीकृत होता ही है, ऐसा सिद्धान्त है।

यदेतद्विचारत्रयं पूर्वमुपक्षिप्तं तिथिनिर्णये वेधे च इति तत्र व्रतभेदो निर्णीतः। अथ तिथिर्निर्णेतव्या तन्निर्णयश्च वेधाधीनः, अतो वेधः पूर्वमभिधीयते। तिथ्यन्तरेष्वह्न एव प्रायेण कर्मकालत्वादुदयास्तमय-वेलायां त्रिमुहूर्त्तवेधः सामान्येन निरूपितः[1]। पञ्चम्यान्तु विशेषः षण्मुहूर्त्तवेधो दर्शितः। जन्माष्टम्या जयन्त्याश्च रात्रिप्रधानत्वाद्रात्रि-योगोऽत्र प्रशस्तः। एतच्च जाबालिवृद्धगौतमाभ्यां दर्शितम्—

अहःसु तिथयः पुण्याः कर्मानुष्ठानतो दिवा।
नक्तादिव्रतयोगेषु रात्रियोगो विशिष्यते॥ इति।

यद्यप्युपवासव्रतत्वादहनि रात्रौ च मुख्यत्वं युक्तितः सामर्थ्यसिद्धं तथाप्यर्धरात्रस्य मुख्यकालत्वमुक्तं वसिष्ठसंहितायाम्।

अष्टमी रोहिणीयुक्ता निशार्धे दृश्यते यदि।
मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम्॥ इति।

एवं सत्यर्धरात्रसद्भाव एवात्र कर्मकालव्याप्तिरित्यभिधीयते। तदेवाभिप्रेत्य विष्णुरहस्ये दृश्यते—

रोहिण्यामर्धरात्रे तु यदा कृष्णाष्टमी भवेत्।
तस्यामभ्यर्चनं शौरे र्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्॥ इति।

एतस्मिन्नर्धरात्रे कियत्परिमाणमपेक्षितमित्यपेक्षायामादित्यपुराणे दर्शितम्—

---

१. पक्षद्वयेऽपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम्।
त्रिभिर्मुहूर्त्तै र्विध्यन्ति सामान्योऽयं वेधः स्मृतः॥ पैठीनसिः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब जो तीन प्रकार के विचार पूर्व से कहे गये हैं, यथा व्रतभेद, तिथि निर्णय और वेध उन तीनों में व्रतभेद का निर्णय हो गया है। इसके अनन्तर तिथि का निर्णय होगा। तिथि निर्णय सर्वथा वेध का अधीन है। अतः वेध के बारे में पहले कहा जाता है। दूसरी तिथियों में दिन का कर्मकाल प्रायः रहता है। इसलिये उदय और अस्तमय वेला में तीन मुहूर्तों को लेकर होने वाला वेध सामान्यरूप से निरूपित हुआ है। पंचमी में विशेषरूप से छ मुहूर्त्तों तक वेध दर्शित किया गया है। जन्माष्टमी और जयन्ती रात्रिप्रधान व्रत होते हैं। इसलिये रात्रियोग यहां प्रशस्त है। इस विषय में जाबालि और वृद्ध गौतम ने दर्शित किया है। जैसे—

दिन अर्थात् दिवाभाग में तिथियाँ पुण्यास्पद होती हैं क्योंकि दिन में कर्मों का अनुष्ठान होता है। नक्त प्रभृति व्रत योगों में रात्रियोग प्रशस्त है।

यद्यपि उपवास व्रत के कारण दिन और रात का युक्ति से मुख्य होने के लिये सामर्थ्य है, तथापि वसिष्ठसंहिता में अर्धरात्र मुख्य रूप से उक्त हुआ है। यथा—निशार्ध में रोहिणी के साथ युक्त होकर अष्टमी अगर दृश्य होती है तो वही मुख्य काल होता है क्योंकि उस समय में स्वय हरि जन्म लेते थे। इसलिये अर्धरात्र की अवस्थिति के कारण यहां कर्मकाल व्याप्ति होती है। इसको अभिप्रेत करके विष्णुरहस्य में देखा जाता है। यथा—अर्धरात्र में रोहिणी योग में जब कृष्णपक्ष की अष्टमी होती है। उस समय में शौरि—श्रीकृष्ण के अभ्यर्चन करने से तीन जन्मों में अर्जित पापों का नाश होता है।

इस अर्धरात्र में कितना परिमाण अपेक्षित है, इसके बारे में आदित्य-पुराण में कहा है—

अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलयाऽपि यदा भवेत्।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी ॥

वराहसंहितायामपि—

सिंहेऽर्के रोहिणीयुक्ता नभः कृष्णाष्टमी यदि।
रात्र्यर्धपूर्वापरगा जयन्ती कलयाऽपि च ॥ इति।

रात्रेरर्धं रात्र्यर्धं पूर्वश्चापरश्च पूर्वापरे, रात्र्यर्धे च ते पूर्वापरे च इति रात्र्यर्धपूर्वापरे, तयोर्गच्छति वर्त्तते इति रात्र्यर्धपूर्वापरगा। घटिकाया अशीत्यधिकशततमो भागः कला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः ।
तास्तु त्रिंशत्क्षणस्ते तु मुहूर्त्तो द्वादशा स्त्रियाम् ॥ इत्यमरः[१]

तथा च पलतृतीयोभागः कला भवति । तावता परिमाणेन पूर्वार्धावसाने उत्तरार्धादौ च वर्त्तमाना ग्रहीतव्या । खण्डतिथिरूपा कृष्णाष्टमी द्विविधा । "पूर्वेद्युः सप्तमीयुक्ता, परेद्युर्नवमीयुक्ता" चेति । तत्र सप्तमीयुक्तायां रात्रिपूर्वार्धावसाने कलासद्भावो विधीयते । उत्तरार्धादौ स्वतः सिद्धत्वेनाविधेयत्वात् । तद्विपर्ययेण नवमीयुक्तायामुत्तरार्धादौ कलासद्भावो विधीयते । तदा पूर्वार्धावसाने स्वतः सिद्धत्वादनुवादः । पूर्वार्धावसानकलायाः सप्तमीयुतविषयत्वं विष्णुधर्मोत्तरे स्पष्टमभिहितम् —

अर्धरात्र से पहले और बाद में एक कला अगर होती तो जयन्ती नाम से प्रोक्त सब पापों को नाश करने वाला व्रत होता है ।

वराहसंहिता में भी कहा है—

सिह–संक्राति में जब रवि रहते हैं, श्रावण की कृष्णाष्टमी में रोहिणी का योग रात्रि में होती है ।

यहाँ रात्रि का अर्थ रात्र्यर्ध है । पूर्व और अपर पूर्वापर है । रात्र्यर्ध में पूर्वापर वह रात्र्यर्ध पूर्वापर हुआ । इन दो समयों में जो रहती है वह रात्र्यर्धपूर्वापरगा होती है । घटिका का एकसौ अशीतम भाग कला होती है । इसलिये अमरकोष में कहा है—

अठारह निमेष के बराबर समय को काष्ठा कहते हैं और तीन काष्ठा के बराबर समय को कला कहते हैं । तीस कला के बराबर समय को क्षण कहते हैं । बारह क्षण अर्थात् दो घड़ी के बराबर समय को मुहूर्त्त करते हैं ।

यह मुहूर्त्त शब्द पुलिंग और नपुंसकलिंग में रहता है । फिर भी पल का तीसरा भाग कला होती है, कर्म का इतना ही परिमाण पहला अर्ध के अवसान समय में और दूसरा अर्ध का प्रारम्भ समय में ग्रहणीय है । खंड तिथि के स्वरूप कृष्ण पक्ष की अष्टमी द्विविध होती है । पूर्वदिन में सप्तमी से युक्त अष्टमी और परदिन में अष्टमी से युक्त अष्टमी । इस स्थल पर सप्तमीयुक्त अष्टमी में रात्रि के पहला अर्धभाग के अवसान में कला की अवस्थिति विहित होती है । दूसरा अर्धभाग के प्रारम्भ में स्वतः कला की अवस्थिति रहने से विहित होती हैं ।

१. अमरकोषः (१।४।११)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार स्थिति के विपर्यय से नवमी युक्त अष्टमी की रात के दूसरा अर्धभाग के प्रारम्भ में कला की अवस्थिति है। उस समय में पहला अर्धभाग का अवसान में स्वतः सिद्ध होने से अनुवाद होता है। पहला अर्धभाग का अवसान में रहने वाली कला के बारे में सप्तमी युक्त विषय का विष्णुधर्मोत्तरपुराण में स्पष्ट अभिहित किया है। यथा—

रोहिणीसहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी।
सप्तम्यामर्धरात्राधः कलयाऽपि यदा भवेत्॥
तत्र जातो जगन्नाथः कौस्तुभी हरिरीश्वरः।
तमेवोपवसेत् कालं कुर्यात्तत्रैव जागरम्॥ इति।

इयमष्टमी कृष्णपक्षादिमासविवक्षया भाद्रपदे भवति। सैवाष्टमी शुक्लपक्षादिमासविवक्षया श्रावणे भवति। अत एव योगीश्वरः—

रोहिणी सहिता कृष्णा मासि च श्रावणेऽष्टमी।
अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलयाऽपि यदा भवेत्॥
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी॥ इति।

कलाया अतिसूक्ष्मत्वेन दुर्लक्ष्यत्वात् स एव पक्षान्तरमाह—

अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वमेकार्धघटिकाऽन्विता।
रोहिणी चाष्टमी ग्राह्या उपवासव्रतादिषु॥ इति।

एका चार्धघटिका चैकार्धघटिके ताभ्यामन्विता। कलामपेक्ष्यार्धघटिका स्थूला तामपेक्ष्य घटिका स्थूला। तत्रायमर्थः संपद्यते। पूर्वभागावसान एका घटिका, उत्तरभागादौ चैका, मिलित्वा तन्निशीथशब्दवाच्यं मुहूर्त्तम्, तावत्परिमाणं सर्वैरपि सुलक्ष्यत्वान्मुख्यः कल्पः तदसम्भवेऽर्धघटिकाऽन्वेष्टव्या तस्याप्यसम्भवे कलेति। तत्र मुख्यं पक्षमभिप्रेत्य भविष्योत्तरे "निशीथे कृष्णपक्षगे इत्युक्तम्।" तच्च वचनं साकल्येन पूर्वमेवोदाहृतम्।

भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी रोहिणी युक्त होने से सप्तमी के अर्धरात्र से पहले जब एक कला रहती है, उस समय में कौस्तुभ को धारण करने वाला ईश्वर हरि जगन्नाथ जन्म लेते थे। उस समय में उपवास करके रात भर जागते रहते हैं।

यह अष्टमी कृष्णपक्ष आदि में रहने वाली मास की गणना के द्वारा भाद्रपद मास में होती है। शुक्लपक्ष आदि में रहने वाली मास की गणना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के द्वारा श्रावण मास में यह अष्टमी होती है। अतएव योगीश्वर (याज्ञवल्क्य) ने कहा है—

श्रावणमास के कृष्ण पक्ष की रोहिणी के साथ युक्त होनेवाली अष्टमी के अर्धरात्र से पहले और बाद में भी जब कला रहती हैं, वह सब पापों को नाश करने वाली जयन्ती से विदित होती है।

कला अतिसूक्ष्म होने के कारण दिखना संभव नहीं है, इसलिये दूसरे पक्ष में कहा है कि—

अर्धरात्र से पहले और बाद में एकार्ध घटिका तक रोहिणी रहने से उपवास और व्रत प्रभृतिओं में अष्टमी गृहीत होती है।

एक और अर्धघटिका एकार्धघटिका, इन दोनों से अन्वित कला की अपेक्षा करके अर्धघटिका स्थूल होती है। उसकी अपेक्षा घटिका स्थूल होती है। यहां इस प्रकार अर्थ होता है—पूर्वभाग के अवसान में एक घटिका, उत्तरभाग के प्रारंभ में एक घटिका, मीलकर निशीथशब्द से वाच्य मुहूर्त्त होता है। इतना परिमाण सभी ने भी लक्ष्य करना संभव है। इसलिये यह मुख्य कल्प होता है। उसका असंभव से अर्धघटिका अन्वेषित करना है। उसकी भी असंभवता में कला का ग्रहण होता है। वहां मुख्य पक्ष को अभिप्रेत करके भविष्योत्तरपुराण में "कृष्णपक्ष के निशीथ काल में" ऐसा कहा है। इस वचन का संपूर्ण स्वरूप पूर्व से उदाहृत किया है।

अत्र जयन्त्यां चन्द्रार्घ्यस्यावश्यकर्त्तव्यत्वात्तस्य च चन्द्रोदयकालीनत्वान्निशीथे योगः प्रशस्तः। एतदेव विष्णुधर्मोत्तरेऽभिहितम्—

अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये तथा।
नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्त्तयेत्॥ इति।

सोऽयमर्धरात्रयोगो मुख्यः कल्पः। यस्तु कृत्स्नाहोरात्रयोगः, सोऽयं मुख्यतरः यश्च यदा कदाचिदीषद्योगः सोऽनुकल्पः। स च वसिष्ठसंहितायां दर्शितः—

अहोरात्रं तयोर्योगो ह्यसंपूर्णो भवेद्यदि।
मुहूर्त्तमप्यहोरात्रे योगश्चेत्तामुपोषयेत्॥ इति।

पुराणान्तरेऽपि—

रोहिणी च यदा कृष्णपक्षेऽष्टम्यां द्विजोत्तम।
जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वासरे वा निशायां वा यत्र स्वल्पाऽपि रोहिणी।
विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः॥ इति।

इस जयन्ती में चन्द्र के उद्देश्य में अर्घ्य देना अवश्य कर्त्तव्य है। इसका समय चन्द्रोदय काल होता है। इसलिये निशीथयोग प्रशस्त है। इस विषय में विष्णुधर्मोत्तर पुराण में अभिहित किया है। यथा—

तारापति अर्थात् चन्द्र के उदय में अर्धरात्र के अवसर पर यह योग आता है। इस समय में नियतात्मा अर्थात् संयमता पूर्वक स्नान करके शुचि होकर पूजा करनी चाहिये।

अर्धरात्र में यह योग मुख्य कल्प है। संपूर्ण अहोरात्र को व्याप्त होकर इस प्रकार जो योग है, वह मुख्यतर होता है। जो योग जिस किसी प्रकार कुछ अंश से होता है, वह अनुकल्प होता है। वसिष्ठसंहिता में वह योग दर्शित किया है। यथा—

इन दोनों का योग अहोरात्र में यदि असंपूर्ण होता है, तो अहोरात्र में मुहूर्त्त मात्र का योग होने पर भी उसमें उपवास किया जाता है।

दूसरे पुराणों में भी कहा है—

हे द्विजोत्तम! कृष्णपक्ष की अष्टमी में जब रोहिणी रहती है, वह अष्टमी जयन्ती नाम से विदित, सब पापों को नाश करने वाली तिथि होती हैं। दिन में या रात में जब स्वल्प परिमाण रोहिणी रहती है, विशेषतः भाद्रपद मास में रहती है तो उसमें उपवास किया जाता है। ऐसा मनीषिओं ने कहा है।

योऽयं जयन्तीव्रते योगनिर्णयः, स एव जन्माष्टमीव्रतेऽपि द्रष्टव्यः यस्मिन् वत्सरे योगो नास्ति, तस्मिन् वत्सरे जन्माष्टमीव्रतमेकमेव प्रवर्त्तते। तत्रापि नेतराष्टमीवद्दिवसे वेधः किन्त्वर्धरात्रवेध एव। तथा च तस्मिन्नेव पुराणान्तरे—

दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला।
रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्॥ इति।

अन्यत्रापि—

अष्टमी शिवरात्रिश्च ह्यर्धरात्रादधो यदि।
दृश्यते घटिका या सा पूर्वविद्धा प्रकीर्त्तिता॥ इति।

इति वेधो निरूपितः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयन्ती व्रत में इस प्रकार योग का जो निर्णय होता है, वह निर्णय जन्माष्टमी व्रत में द्रष्टव्य है। जिस वत्सर में योग नहीं है, उस वत्सर में एक ही जन्माष्टमी व्रत प्रवर्तित होता है। वहाँ भी दूसरी अष्टमी की तरह दिन में वेध अंगीकृत नहीं होता है। किन्तु अर्धरात्र वेध ही अंगीकृत होता है। इस प्रकार दूसरे पुराणों में कहा है—

दिन में या रात में अगर रोहिणी की कला नहीं है तो विशेषतः रात्रि के साथ युक्त होने वाली कला को करनी चाहिये।

दूसरी जगह में भी कहा है—अष्टमी और शिवरात्रि अर्धरात्र से पहले अगर दृश्य होती है, तो एक घटिका रहने पर पूर्वविद्धा मानी जाती है।

इस प्रकार वेध का निरूपण हुआ।

अथ ग्राह्यातिथिर्निरूप्यते

सा च संवत्सरभेदेन द्विधा भवति, रोहिणीरहिता रोहिणीयुक्ता चेति। तत्र या रोहिणीरहिताऽष्टमी साऽपि द्विविधा। शुद्धा सप्तमीविद्धा चेति। सूर्योदयमारभ्य प्रवर्त्तमानाष्टमी शुद्धा निशीथादर्वाक् सप्तम्या कियत्याऽपि युक्ता विद्धा। शुद्धाऽपि पुनर्निशीथव्याप्त्यव्याप्तिभ्यो द्विविधा। तत्र निशीथव्यापिनी जन्माष्टमीव्रते मुख्या "विशेषेणेन्दुसंयुताम्" इति वचनात्। निशीथव्याप्तिरहिताऽपि रात्रियुक्ता "रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत" इति वचनेन ग्रहीतव्या भवति।

ननु पूर्वेद्यु र्निशीथादूर्ध्वमारभ्य परेद्युर्निशीथादर्वाग् या समाप्यते तस्या उभयत्र रात्रिसंबन्धित्वात् कुत्रोपवास इति चेत् परेद्युरिति ब्रूमः। उभयत्र निशीथव्याप्त्यभावस्य रात्रिसंबन्धस्य च तुल्यत्वेऽपि परेद्युः प्रातः संकल्पकालमारभ्य वर्त्तमानत्वात् प्राशस्त्यं द्रष्टव्यम्।

सप्तमी विद्धाऽपि त्रिविधा, पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी परेद्यु रेव निशीथव्यापिनी उभयत्र व्यापिनी चेति तत्र, प्रथमद्वितीययोः पक्षयोः निशीथव्याप्तेः प्रयोजकत्वेन या निशीथव्यापिनी सा "विशेषेणेन्दुसंयुताम्" इति वचनेन ग्रहीतव्या भवति। या तु दिनद्वयेऽपि निशीथव्यापिनी तस्या उभयत्र निशीथयोगस्य रात्रियोगस्य च तुल्यत्वान्नानेन वचनेन निर्णयः संभवति।

अब ग्रहीत होने वाली तिथि का निरूपण होता है। संवत्सर भेद से अष्टमी दो प्रकार होती है। रोहिणी के साथ युक्त होनेवाली और रोहिणी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से विरहित। रोहिणी से विरहित अष्टमी दो प्रकार होती है—शुद्धा और सप्तमी विद्धा। सूर्योदय से शुरू होनेवाली अष्टमी शुद्धा होती है और निशीथ से पहले सप्तमी से कुछ परिमाण से युक्त विद्धा होती है। शुद्धा के भी निशीथ व्याप्ति और निशीथ से अव्याप्ति भेद से द्विविध होती है। निशीथ को व्याप्त होनेवाली वह तिथि जन्माष्टमी व्रत में मुख्य है। इसलिये "विशेषतः इन्द्र के साथ" यह वचन प्रमाण है। निशीथ व्याप्ति न होने वाली रात्रियुक्त होकर माननीय होती है। इसके लिये "रात्रि युक्त को करनी चाहिये" इस वचन के अनुसार वह तिथि गृहीत होती है।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि पूर्वदिन में निशीथ से ऊर्ध्व समय से शुरू होकर परदिन में निशीथ से पहले जो अष्टमी समाप्त हो जाती है इस प्रकार अष्टमी उभयदिनों के रात में रहने से उपवास कब होता है? इस स्थल में परदिन में उपवास होता है, ऐसा उत्तर हैं। उभयदिनों में निशीथ-व्याप्ति के अभाव और रात्रि संबन्ध समान अवस्था की कोटि में आते हैं। ऐसे होने पर भी परदिन में प्रातः संकल्प काल से शुरू होकर रहने पर अष्टमी की अवस्थिति में प्राशस्त्य मिलता है।

सप्तमीविद्धा भी तीन प्रकार होती है। यथा पूर्वदिन में निशीथ को व्याप्त होनेवाली, परदिन में निशीथको व्याप्त होनेवाली और उभयत्र निशीथ को व्याप्त होनेवाली। यहां पहला और दूसरा पक्ष में निशीथ व्याप्ति प्रयोजक होने पर जिस दिन में निशीथ व्याप्ति होती है, वह दिन गृहीत होता है। इसलिये "विशेषेणेन्दुसंयुताम्" यह वचन प्रमाण है। जिस स्थल में दो दिनो में भी निशीथ व्याप्ति होती हैं, उस स्थल में उभयत्र निशीथ योग और रात्रियोग समान होने पर इस वचन के अनुसार निर्णय संभव नहीं होता है।

नापि 'कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव' इत्यादिभिरष्टमीमात्रमुपजीव्य प्रवृत्तै-र्निर्णेतुं शक्यते, तेषामद्धवेंधविषयत्वात्। अन्यथा व्रतान्तरेष्वपि निशीथवेधः प्रसज्येत। तस्मान्न्यायः परिशिष्यते। न्यायश्च परेद्यु-रुपवासं प्रापयति संकल्पकालमारभ्य तिथिसद्भावात्। न च साकल्याभिधायिवचनेन पूर्वेद्युरपि संकल्पकाले तिथिरस्तीति शङ्क-नीयं। तस्या मुख्यतिथित्वाभावात्। किञ्च—

सा तिथिः सकला ज्ञेया यस्यामस्तमितो रविः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति वचनं निशीथव्यापिनीमष्टमीं न विषयीकरोति। तस्मात्परेद्युरेवोपवासः।

तदेवं चतुर्विधा रोहिणीरहिताऽष्टमी निर्णीता। अथ रोहिणीसहिताष्टमी निर्णीयते। साऽपि चतुर्विधाः, शुद्धा, विद्धा, शुद्धाधिका विद्धाधिका चेति। तत्र शुद्धायां, संपूर्णयोगो निशीथयोगो यत्किञ्चिन्मुहूर्त्तयोगश्चेति त्रैविध्यं भवति, एवं विद्धायामपि द्रष्टव्यम्। एतेषु षट्सु भेदेषु दिनान्तरे योगाभावादुपवासे सन्देहो नास्ति। किन्तु केवलं योगतारतम्यात् प्राशस्त्यतारतम्यं भवति। यत्किञ्चिन्मुहूर्त्तयोगः प्रशस्तोऽर्धरात्रयोगः प्रशस्ततरः संपूर्णयोगः प्रशस्ततमः। सर्वेष्वपि योगेषु योगमुपजीव्योपवासो विहितो विष्णुरहस्ये—

"कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव" इन वचनों के अनुसार अष्टमी मात्र को उपजीव्य करके प्रवृत्त होकर निर्णय नहीं हो सकता। क्योंकि यह विषय दिन में होने वाला वेध विषय को संयोजित करता है। अन्यथा दूसरे व्रतों में निशीथ वेध प्रसक्त हो जाता है। इस कारण से न्याय परिशेष में रह जाता है। न्याय परदिन में उपवास को प्राप्त कराता है। क्योंकि परदिन में संकल्प काल से लेकर तिथि रहती है। साकल्य वचन के अनुसार पूर्वदिन में भी संकल्प काल में तिथि रहती है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि ये मुख्य तिथि नहीं होती हैं। फिर भी 'वही तिथि सकल रूप से रहती है, जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं' इस वचन न निशीथ को व्याप्त होनेवाली अष्टमी को सूचित नहीं करता है। इसलिये परदिन में उपवास होता है।

ऐसे चार प्रकार रोहिणी रहित अष्टमी का निर्णय हो गया। अब रोहिणी युक्त का निर्णय हो रहा है। वह भी चार प्रकार होती है। शुद्धा, विद्धा, शुद्धाधिका और विद्धाधिका। शुद्धा में तीन प्रकार योग है। यथा— संपूर्णयोग, निशीथ योग और यत्किंचित् योग अर्थात् जो कुछ अंश तक योग। इस प्रकार विद्धा में भी है। ये छ प्रकार भेदों के स्थल रहने पर दूसरे दिनों में योग का अभाव के कारण उपवास में सन्देह नहीं है। किन्तु केवल योग का तारतम्य से प्राशस्त्य का तारतम्य है। यत्किंचित् मुहूर्त्त योग प्रशस्त होता है, अर्धरात्र योग प्रशस्ततर होता है। संपूर्णयोग प्रशस्ततम होता है। सब योग में भी योगों को लेकर विष्णुरहस्य में उपवास विहित होता है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी।
मुहूर्त्तमपि लभ्येत सोपोष्या सुमहाफला॥
मुहूर्त्तमप्यहोरात्रे यस्मिन् युक्तं हि दृश्यते।
अष्टम्यां रोहिणीऋक्षं तां सुपुण्यामुपावसेत्॥ इति।

शुद्धाधिका तु सूर्योदयमारभ्य प्रवृत्ता परेद्युः सूर्योदयमतिक्रम्येषद्वर्धते। सा च त्रिविधा पूर्वेद्युरेव रोहिणीयुक्ता, परेद्युरेव रोहिणीयुक्ता, दिनद्वयेऽपि रोहिणीयुक्ता चेति। तत्राद्ययो र्द्वयोः पक्षयोर्नास्त्युपवासे सन्देहः। रोहिणीयुक्ताया द्वितीयाया कोटेरभावात्। तृतीयपक्षे तु रोहिणीयोगस्योभयत्र समानत्वेऽपि गुणाधिक्यात् पूर्वैवोपोष्या। गुणाधिक्यश्च दर्शयिष्यते।

येयमत्रोपोष्यत्वेनोक्ता पूर्वा तिथिः, साऽपि रोहिणीयोगभेदात्त्रिधा भिद्यते। अष्टमीवत् सूर्योदयमारभ्य प्रवृत्ता रोहिणी कदाचित् परेद्युरपि कियती वर्धते। कदाचित् पूर्वेद्युर्निशीथमारभ्य रोहिणी प्रवर्त्तते। कदाचित् निशीथादूर्ध्वमारभ्य प्रवर्त्तते। तत्र प्रथमपक्षे संपूर्णयोगत्वमेको गुणः। सङ्कल्पकालमारभ्य कृत्स्नकर्मकालव्याप्तिरपरो गुणः। निशीथव्याप्तिस्तृतीयो गुणः। न चैते त्रयो गुणाः परेद्युः संभवन्ति।

प्राजापत्य ऋक्ष अर्थात् रोहिणी नक्षत्र से युक्त होकर भाद्रपद की कृष्ण अष्टमी मुहूर्त्त तक रहने पर भी उपवास योग्य होती है। क्योंकि वह महान् फल देनेवाली है। जिस अहोरात्र में एक भी मुहूर्त्त तक अष्टमी के साथ रोहिणी नक्षत्र का योग होने पर उत्तम पुण्य मिलता है, इसमें उपवास करना है।

शुद्धाधिका तो सूर्योदय से शुरू होकर प्रवृत्त होती हैं और परदिन में सूर्योदय को अतिक्रम कर कुछ बढ़ती है। यह अष्टमी त्रिविध होती है। पूर्वदिन में रोहिणी से युक्त, परदिन में रोहिणी से युक्त और दो दोनों में रोहिणी से युक्त पहले और दूसरे पक्षों में उपवास के लिये सन्देह नहीं है। रोहिणी युक्त द्वितीया की कोई कोटि नहीं है। तीसरे पक्ष में रोहिणी योग उभयत्र समानभाव से रहने पर गुणाधिकता के कारण पूर्व दिन में उपवास होता है। गुणाधिकता कैसे होती है, उसके बारे में कहा होगा।

यहाँ उपवास के लिये पूर्व दिन की जो तिथि कही गयी है वह भी रोहिणीयोगभेद से तीन प्रकारों से भिन्न होती है। अष्टमी की तरह सूर्योदय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से शुरू होकर प्रवृत्त होती है। कभी रोहिणी परदिन में कुछ बढ़ती है। कभी पूर्वदिन में निशीथ से शुरू होकर रोहिणी प्रवृत्त होती है। कभी भी निशीथ ऊर्ध्वकाल से शुरू होकर पवृत्त होती है। यहाँ पहला पक्ष में संपूर्ण-योग एक गुण होता है। संकल्प काल से शुरू होकर संपूर्ण कर्मकाल की व्याप्ति दूसरा गुण है। निशीथ व्याप्ति तीसरा गुण होता है। इन तीन गुणों की संभावना परदिन में नहीं होती है।

द्वितीयपक्षे निशीथे जयन्तीसद्भावो गुणः। न च परेद्युः सोऽस्ति, तृतीयेपक्षे दिनद्वयेऽपि निशीथे योगो नास्ति। पूर्वेद्युः केवलाष्टमी, परेद्युः केवलरोहिणी। तत्राष्टम्याः प्राधान्यात् प्राबल्यमभ्युपेयम्। सर्वत्र हि जयन्तीवाक्येषु 'रोहिणीसहिताऽष्टमी' इति व्यवहाराद-ष्टमीसहिता रोहिणीति व्यवहाराभावाच्च तिथिनक्षत्रयोः क्रमेण प्रधानोपसर्जनभावोऽवगन्तव्यः। अतो गुणाधिक्याच्छुद्धाधिका पूर्वै-वोपोष्या।

निशीथादर्वाक् सप्तम्या युक्ता परेद्युरपि विद्यमाना विद्धाधिका। नन्वत्र निशीथवेधो ग्राह्य इत्युक्तम्। बाढम्। वेध्याया अष्टम्या निशीथे सद्भावोऽत्र निशीथवेधः। न तु वेधिकायाः सप्तम्याः निशीथे सद्भावः। विद्धाधिकायामपि पक्षत्रयं, द्वयोः पक्षयोः सन्देहाभावश्च पूर्ववद्योजनीयः। तत्र या पूर्वेद्युरेव रोहिणीयुक्ता विद्धाऽधिका, तस्या-मुपवास आदित्यपुराणे स्मर्य्यते—

विना ऋक्षं न कर्त्तव्या नवमीसंयुताष्टमी।
कार्या विद्धाऽपि सप्तम्या रोहिणीसंयुताऽष्टमी॥

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्रा-जयाऽन्विते।
कृत्वोपवासं तिथ्यन्ते तथा कुर्यात्तु पारणम्॥

दूसरा पक्ष में निशीथ में जयन्ती का सद्भाव एक गुण है। किन्तु ये परदिन में नहीं है। तीसरा पक्ष में दो दिनों में भी निशीथ में योग नहीं है। पूर्वदिन में केवल अष्टमी और परदिन में केवल रोहिणी रहती है। वहाँ अष्ठमी के प्राधान्य रहने से प्राबल्य जाना जाता है। सर्वत्र जयन्ती वाक्यों में रोहिणी के साथ अष्टमी ऐसा व्यवहार से और अष्टमी के साथ रोहिणी ऐसा व्यवहार का अभाव से तिथि और नक्षत्र का क्रमानुसार प्राधान्य और गौण भाव समझ में आयेगा। अतः गुणाधिक्य से शुद्धाधिका स्थल में पूर्व-दिन में उपवास होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निशीथ से पहले सप्तमी से युक्त होकर अष्टमी परदिन में रहने से विद्धाधिका होती है। यहाँ प्रश्न होता है—कि निशीथवेध को ग्रहण करना है ऐसा कहा है। ठीक है। वेध्य अष्टमी के निशीथ में सद्भाव ही यहां निशीथ वेध होता है। किन्तु वेध करनेवाली सप्तमी का निशीथ में सद्भाव यहां नहीं होता है। विद्धाधिका में भी तीन पक्ष होते हैं। इनमें दोनों पक्षों में सन्देह नहीं है। इस विषय की योजना पूर्ववत् होती हैं। वहां पूर्वदिन में रोहिणी के साथ युक्त होनेवाली जो विद्धाधिका उसमें उपवास करने के लिये आदित्य पुराण में कहा हैं। यथा—

नक्षत्र के बिना नवमी सहित अष्टमी नहीं की जाती है। किन्तु सप्तमी से विद्धा रोहिणी युक्त अष्टमी की जाती हैं। विष्णुधर्मोत्तर में भी कहा है—

भद्रा और जया के साथ अन्वित अर्थात् युक्त होनेवाली जयन्ती और शिवरात्रि की जाती हैं। उपवास करके तिथि के अन्त में पारण किया जाता हैं।

गारूड पुराणेऽपि—

जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्।
तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्॥ इति

या परेद्युरेव रोहिणीयुक्ता विद्धाऽधिका, तत्रोपवासः पूर्वतिथौ न युक्तः, रोहिणीयोगाभावात्। परेद्युस्तु तत्सद्भावात् पूर्वोदाहृतेन प्राजापत्यादिना विष्णुरहस्यवचनेनोपवासो विधीयते। या तूभयत्र रोहिणीयुक्ता विद्धाऽधिका, साऽपि निशीथे जयन्तीयोगमपेक्ष्य चतुर्धा भिद्यते। पूर्वेद्युरेव निशीथयोगवती, परेद्युरेव तादृशी, उभयत्राऽपि तादृशी उभयत्र निशीथयोगरहिता चेति। तत्र या पूर्वेद्युरेव निशीथयोगवती सा पूर्वोपोष्या। तदुक्तं पद्मपुराणे—

कार्या विद्धाऽपि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमी।
तत्रोपवासं कुर्वीत तिथिभान्ते च पारणम्॥ इति।

अत्रावशिष्टेषु त्रिषु पक्षेषु परदिन एवोपवासः। तत्र दिनद्वये निशीथयोगमभिलक्ष्य ब्रह्मवैवर्त्ते पठ्यते—

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी।
सा सर्क्षाऽपि न कर्त्तव्या सप्तमीसंयुताऽष्टमी
अविद्धायान्तु सर्क्षायां जातो देवकीनन्दनः॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदा दिनद्वयेऽपि निशीथयोगे परत्रोपवासस्तदा किमु वक्तव्यं परेद्युरेव निशीथयोगे।

गरुड़पुराण में भी कहा है—

पूर्वविद्धा जयन्ती में उपवास करते हैं। तिथि या उत्सव के अन्त में व्रती पारण करता है।

परदिन में जो रोहिणीयुक्त विद्धाधिका है, रोहिणीयोग का अभाव के कारण वहीं पूर्व तिथि में उपवास करना युक्तियुक्त नहीं है। परदिन में रोहिणी की अवस्थिति से पूर्व उदाहृत प्राजापत्य वचनों के द्वारा उपवास विहित होता है। जो उभयदिनों में रोहिणीयुक्त विद्धाधिका मिलती है, वह भी निशीथ में जयन्ती योग को लेकर चार प्रकार है। यथा—पूर्वदिन के निशीथ में रहनेवाली परदिन में एसी उभयदिनों में भी ऐसी और उभयदिनों में निशीथ योग का अभाव वहाँ पूर्वदिन के निशोथ में जो रहने वाली पूर्वदिन में उसके लिये उपवास किया जाता है। इसलिये पद्मपुराण में कहा है—

सप्तमी से विद्धा रोहिणीयुक्त अष्टमी यत्नपूर्वक की जाती है। तिथि और नक्षत्र के अन्त में पारण किया जाता है।

यहाँ अवशिष्ट तीन पक्षों में पर दिन में उपवास किया जाता है। वहाँ दो दिनों में होने वाला निशीथयोग को लक्ष्य करके ब्रह्म वैवर्त्तपुराण में पाठ मिलता है। यथा—

सप्तमीयुक्त अष्टमी को यत्नपूर्वक वर्जित करना है। क्योंकि उस (रोहिणी) नक्षत्र युक्त अविद्धा तिथि में देवकीनन्दन (कृष्ण) जन्म लिये थे।

जिस पर दो दिनों में भी निशीथयोग होने पर परदिन में उपवास किया जाता है, उस पर परदिन में निशीथयोग के बारे में क्या कहा जा सकता ?

दिनद्वयेऽपि निशीथयोगराहित्यं बहुधा जायते। तद्यथा पूर्वेद्युर्निशीथादूर्ध्वं तिथिनक्षत्रद्वयं प्रवृत्तम्। तच्च परेद्युर्निशीथादर्वागेव समाप्तमित्येकः प्रकारः। पूर्वेद्युर्निशीथादर्वागेव नक्षत्रमष्टमी तु निशीथादूर्ध्वं प्रवृत्ता, परेद्युर्निशीथादर्वाक् नक्षत्रं निवृत्तमित्यपरः। अष्टमी निशीथादर्वाक् प्रवृत्ता ऋक्षञ्च निशीथादूर्ध्वं प्रवृत्तं परेद्युर्निशीथादर्वागेव समाप्तमिति तृतीयः। त्रिष्वप्येतेषु प्रकारेषु परैवोपोष्या। दिनद्वयेऽप्यर्धरात्रयोगविषये पूर्वमुदाहृतस्य 'वर्जनीया प्रयत्नेन' इति वचनस्यात्रापि सञ्चारयितुं शक्यत्वात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किञ्च प्रथमप्रकारे न्यायोऽप्युपोद्बलकोऽस्ति सङ्कल्पकालमारभ्य तिथिनक्षत्रयोगस्य बहुकालव्यापित्वात् प्रशस्तत्वं द्रष्टव्यम् । द्वितीयप्रकारे परेद्युरष्टमीबाहुल्येऽपि नक्षत्रयोगस्याल्पत्वादनुपादेयत्वमित्याशङ्का न कर्त्तव्या अत एव स्कन्दपुराणे पठ्यते—

दो दिनों में भी निशीथयोग का अभाव बहुत प्रकार का होता है। यथा—पूर्वदिन में निशोथ से ऊर्ध्व तिथि और नक्षत्र इन दोनों की प्रवृत्ति होती है। उसकी परदिन में निशीथ से पहले समाप्ति एक प्रकार है। पूर्व दिन में निशीथ से पहले नक्षत्र और अष्टमी इन दोनों की निशीथ के बाद में प्रवृत्ति होती है। परदिन में निशीथ से पहले नक्षत्र निवृत्त हो जाता है। यह एक प्रकार होता है। अष्टमी निशीथ से पहले प्रवृत्त होती है। नक्षत्र निशीथ के बाद में प्रवृत्त होकर परदिन में निशीथ से पहले समाप्त होता है। यह तीसरा प्रकार का होता है। ये तीन प्रकारों में परदिन में उपवास किया जाता है। दो दिनों में भी अर्धरात्रयोग के विषय में पहले उदाहृत "प्रयत्नपूर्वक वर्जन करना है" यह वचन भी यहां संचारित हो सकता है।

फिर भी पहला प्रकार में न्याय उपोद्बलक है। संकल्प काल से लेकर तिथि और नक्षत्र का योग बहुकालव्यापी होने पर प्रशस्त है, ऐसा देखना हैं। दूसरा प्रकार में परदिन में अष्टमी अधिक रहने से भी नक्षत्र योग अल्प होने पर अनुपादेय होती है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। अत एव स्कन्दपुराण में कहा है—

सप्तमी के साथ युक्त होनेवाली अष्टमी में प्राजापत्य नक्षत्र अर्थात् रोहिणी रहकर दूसरा दिन में मुहूर्त्त के अर्ध समय अगर रहती है तो आठ याम तक रहती है ऐसा व्यास प्रभृतिओं में पुराकाल में कहीं गयी है।

तीसरा प्रकार में नक्षत्र अधिक काल तक रहने से भी अष्टमी योग अल्प होने पर जन्म होने पर अनुपादेय है ऐसी शंका होती है। पद्मपुराण वचन के द्वारा यह शंका निवारित होती है—

सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम।
प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि मुहूर्त्तार्द्धं भवेद्यदि॥
तदाष्टयामिकं ज्ञेयं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा॥ इति।

तृतीयप्रकारे परेद्युर्नक्षत्रबाहुल्येऽप्यष्टमीयोगस्याल्पत्वादनुपादेयत्वमित्याशङ्का भवति। सा च पद्मपुराणेन निवर्त्यते—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने ।
मुहूर्त्तमपि संयुक्ता संपूर्णा साऽष्टमी भवेत् ॥
कला काष्ठा मुहूर्त्ताऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ।
नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात् सप्तमीसंयुता न हि ॥ इति ।

तदेवं जन्माष्टमीभेदा जयन्तीभेदाश्च निरूपिताः । तत्र जयन्तीभेदेषूपवासदिने यदि सोमवारो बुधवासरो वा भवति तदा फलाधिक्यं भवति ।[1] तदुक्तं पद्मपुराणे[2]—

प्रेतयोनिगतानान्तु प्रेतत्वं नाशितं नरैः ।
यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता ॥
किं पुन बुंधवारेण सोमेनाऽपि विशेषतः ।
किं पुन र्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा ॥ इति ।

स्कन्दपुराणेऽपि—

उदये चाऽष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि ।
भवेत्तु बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते यदि वा न वा ॥ इति ।

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि

अष्टमी बुधवारेण रोहिणीसहिता यदा ।
भवेत्तु मुनिशार्दूल किं कृते र्व्रतकोटिभिः ॥ इति ।

---

१. कृष्णः सोमवंशी । सोमश्चन्द्रस्यापरपर्यायः । चन्द्रस्यापत्यं बुधः । "सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम् । ततस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः ॥ बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ।'' हरिवंशम् १।२५।४४–४५. सोमबुधयोः संबन्धात् सोम-बुधवासरौ कृष्णजन्माष्टमीकृते अधिकपुण्यदौ इति ।

२. पद्मपुराणे पुनः स्मर्यते—

अष्टमी बुधवारे च सोमे चैव द्विजोत्तम ।
रोहिणीऋक्षसंयुक्ता कुलकोटिविमुक्तिदा ॥ ३।१३।३
अष्टमी बुधवारेण किं कृतै र्व्रतकोटिभिः ॥ ३।१३।६१.

ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि—

बुधसोमसमायुक्ता जयन्ती यदि लभ्यते ।
न कुर्याद् गर्भवासं च तत्र कृत्वा व्रतं व्रती ॥ ४।८।६१–६२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वविद्धा अष्टमी नवमी दिन के उदय में एक मुहूर्त्त तक अगर रहती है तो वह अष्टमी संपूर्ण है। कला, काष्ठा या मुहूर्त्त तक भी जब कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि नवमी में रहती है तो वही ग्रहीत होनी चाहिये किन्तु सप्तमी नहीं।

इस प्रकार जन्माष्टमी भेदों का निरूपण हुआ। जयन्ती भेदों में उपवास दिन में अगर सोमवार या बुधवार होता, तो अधिक फल होता है। इसलिये पद्मपुराण में कहा है—

जो श्रावण मास की रोहिणी युक्त अष्टमी में उपवास करते हैं, वे प्रेतयोनि को प्राप्त प्रेतों को मुक्त करा देते हैं। अगर विशेषतः बुधवार या सोमवार होता या नवमी युक्त अष्टमी होती तो कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इनसे कोटि संख्यक कुलों का भी उद्धार होता है। स्कन्दपुराण में भी कहा है—

उदयकाल अष्टमी कुछ रहती है और दिन भर नवमी रहती है। इस स्थल में अगर बुधवार का संयोग होता या रोहिणी का संयोग होगा तो सौ बर्षों के अन्दर में ऐसा लाभ होता है, नहीं भी होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी कहा है—

हे मुनिशार्दूल! जब अष्टमी रोहिणीयुक्त होकर बुधवार में होती है, तो कोटि समयक व्रतों का अनुष्ठान में कुछ लाभ नहीं है।

यथोक्तरीत्या विहिततिथावुपवासं कृत्वा परेद्युः पारणेनोपवासं समापयेत्। "पारतीरकर्मसमाप्तौ"[1] इत्यस्माद्धातोर्निष्पन्नः पारणशब्दः। यद्यप्यसौ समाप्तिमात्रमभिदधाति, तथाप्युपवाससमाप्तावेव लोकशास्त्रयोः प्रयोगात् पङ्कजादिशब्दवद्योगरूढो द्रष्टव्यः। तथा च योगरूढ्योपवासस्य चरमाङ्गं भोजनमभिधत्ते। अङ्गत्वञ्चोपवासविधिवाक्येषु 'तिथिभान्ते च पारणम्' इति विधानादवगन्तव्यम्।

न च रागप्राप्तस्य भोजनस्यानेन वचनेनोपवासाङ्गतिथिनक्षत्रशेषयो र्निषेधः क्रियते न तु पारणनामकं किञ्चिदङ्गं विधीयते इति शङ्कनीयम्। तथा सति पारणशब्दप्रयोगानुपपत्तेः। रागप्राप्ते हि अभ्यवहरणे भोजनशब्दः। तत्र पारणशब्देन रागप्राप्तभोजनविवक्षायां मुख्यार्थो बाधितः स्यात्। किञ्च यदि पारणमङ्गं न स्यात्तदा

---

१. पारतीरकर्मसमाप्तौ तिङन्ते चुरादिप्रकरणे २०५७, २०५८ धातुक्रमे पठितौ अष्टाध्याय्यनुसारिण्यां सिद्धान्तकौमुद्याम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिनिधिविधानं नोपपद्यते, तद्विधानञ्च द्वादशीप्रस्तावे देवलेन स्मर्यते—

सङ्कटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत् कथम्।
अद्भिस्तु पारणं कुर्यात् पुनर्भक्तं न दोषकृत्॥ इति।

इस रीति के अनुसार विहित तिथि में उपवास करके परदिन में पारण के द्वारा उपवास की समाप्ति करते हैं। कर्म को समाप्त करना इस अर्थ को प्रकाशन करने वाला पार और तीर धातु से पारण शब्द निष्पन्न होता है। यद्यपि ये समाप्ति मात्र का ही अभिधान करता है, तथापि उपवास समाप्ति में लोक (समाज) और शास्त्र इन दोनों में प्रयोग होने से पङ्कज प्रभृति शब्दों की तरह योगरूढ़ होता है। फिर भी योगरूढ़ि के द्वारा उपवास का चरम अङ्ग भोजन को सूचित करता है। अङ्गत्व के बारे में उपवास विधि वाक्यों में "तिथि और नक्षत्र के अन्त में पारण होता है" इस विधान के द्वारा जाना जाता है।

किन्तु इस वचन से उपवास के अंग तिथि और नक्षत्रों में राग प्राप्त भोजन का निषेध नहीं किया जाता है और पारण नाम से कुछ अंग का विधान होता है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। ऐसे होने से पारण शब्द का प्रयोग उत्पन्न नहीं होता है। राग प्राप्त अभ्यवहरण को भोजन शब्द में कहते हैं। वहाँ पारण शब्द से राग प्राप्त भोजन की विवक्षा में मुख्यार्थ बाधित हो जाता है। फिर भी अगर पारण अंग नहीं होता है, तो उसमें प्रतिनिधि का विधान नहीं हो सकता है। किन्तु प्रतिनिधि विधान के बारे में द्वादशी प्रस्तावना में देवताओं ने कहा है। यथा—

संकट में, विषम अवस्था होने पर द्वादशी में कैसे पारण किया जाता है? पानी से पारण किया जाता हैं और फिर भात खाने में दोष नहीं है।

अतः पारणशब्दबलात् प्रतिनिधिबलाच्च पारणस्याङ्गत्वं द्रष्टव्यम्।

अत एवादित्यपुराणे—

पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते तद्धि भोजनम्।
असमाप्ते व्रते पूर्वं नैव कुर्यात् व्रतान्तरम्॥ इति।

तच्च पारणमुपवासदिनात्परदिने पूर्वाह्णे कर्त्तव्यम्।

उपवासेषु सर्वेषु पूर्वाह्णे पारणं भवेत्॥

इति देवलस्मरणात्।

एवं सामान्यतः पूर्वाह्णे पारणप्राप्तौ क्वचिदपवादाय "तिथिभान्ते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

च पारणम्" इत्यभिधीयते। शुद्धाधिकायां पूर्वेद्युरेव जयन्तीयोगः, उभयत्रापि जयन्तीयोगः इत्यनयोः पक्षयोः पूर्वेद्युरेवोपवासविधानात्परेद्युरेव केवलतिथे स्तिथिनक्षत्रयोर्वा सद्भावात्तदन्ते पारणविधिः। तथा शुद्धाधिकाविद्धाधिकयोरुभयोरपि यदा परेद्युरेव जयन्तीयोगस्तदा परतिथावुपवासविधानात् पारणदिने तिथ्यभावेऽपि कदाचिन्नक्षत्रावशेषसंभवात्तदन्ते पारणं विधीयते। तिथेर्वा नक्षत्रस्य वा शेषकाले पारणं ब्रह्मवैवर्त्ते प्रतिषिध्यते—

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात् पारणं क्वचित्।
हन्यात्पुराकृतं कर्म उपवासार्जितं फलम्॥
तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम्।
तस्मात् प्रयत्नतः कुर्यात् तिथिभान्ते च पारणम्॥ इति।

इस लिए पारण शब्द के सामर्थ्य से और प्रतिनिधि बल से पारण अङ्ग होता है। अतएव आदित्य पुराण में कहा है। यथा—

व्रत के अन्त पारण में होता है ऐसा जानना है। व्रत के अन्त में भोजन किया जाता है। पहले एक व्रत को समाप्त न करके व्रत के बीच में दूसरा व्रत नहीं किया जाता है।

वह पारण उपवास दिन के परदिन के पूर्वाह्ण में किया जाता है। सभी उपवासों का पूर्वाह्ण में पारण होता हैं, ऐसा देवल ने कहा है।

इस प्रकार सामान्य रूप से पूर्वाह्ण में पारण होने पर कभी अपवाद के लिए "तिथि-नक्षत्रों के अन्त में पारण होता है ऐसा कहा जाता है। शुद्धाधिका के पूर्वाह्ण में जयन्तीयोग और उभयत्र जयन्ती योग इन दोनों पक्षों में पूर्वदिन में उपवास का विधान होने पर परदिन में ही केवल तिथि का या तिथि और नक्षत्र इन दोनों का सद्भाव होने पर उसके अन्त में पारण विहित होता है। फिर भी शुद्धाधिका और विद्धाधिका इन दोनों स्थलों में जब परदिन में जयन्ती योग होता है, तब परवर्त्ती तिथि में उपवास का विधान होने पर पारण दिन में तिथि के अभाव होने पर भी कभी नक्षत्र का अवशेष रहने पर उसकी समाप्ति में पारण होता है। तिथि या नक्षत्र का शेष काल में पारण का विधान के बारे में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में प्रतिषेध मिलता है। यथा—

अष्टमी में अथवा रोहिणी में पारण नहीं किया जाता है। करने से पूर्व से कृत कर्म का और उपवास से अजित फल का भी नाश होता है। तिथि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फल का आठ गुना और नक्षत्र चार गुना नाश करते हैं। इसलिए यत्नपूर्वक तिथि और नक्षत्र के अन्त मे पारण करना चाहिये।

स्कन्दपुराणेऽपि—

तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पारणम्।
अतोऽन्यथा पारणे तु व्रतभङ्गमवाप्नुयात्॥ इति।

तिथिभान्तश्च द्विविधः उभयान्तः एकतरान्तश्चेति। दिनद्वये जयन्तीयोगवत्यां शुद्धाधिकायां परदिने अष्टमी मुहूर्त्तत्रयं नातिक्रामति रोहिणी तु पूर्वेद्युर्निशीथादर्वाग्यदा कदाचित् प्रवृत्ता तदनुसारेण परेद्युः समाप्यते। तत्र यदि दिवैव समाप्येत तदा तामतिक्रम्यैव पारणं कुर्यात् उभयान्तस्य मुख्यत्वात्।[1] यदि रात्रौ समाप्तिस्तदा तत्समाप्तिर्न प्रतीक्षणीया, रात्रिपारणस्य निषिद्धत्वात्। तथा च ब्रह्मवैवर्त्ते—

सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते।
अन्यथा पुण्यहानिः स्याद्दते धारणपारणम्॥ इति।
अन्यतिथ्यागमो रात्रौ तामसस्तैजसो दिवा।
तामसे पारणं कुर्वंस्तामसीं गतिमश्नुते॥ इति।

दिवा पारणं कुर्वन्नपि नाष्टमीवेलायां कुर्यात्। एकतरान्तस्याप्यभावात्। अष्टमीमतिवाह्य रोहिण्यां वर्त्तमानायामपि पारणं कुर्यात्[2] अतएव नारदीये—

तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत्।
पारणन्तु न कर्त्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः॥
सांयोगिके व्रते प्राप्ते यन्नैकोऽपि वियुज्यते।
तत्रैव पारणं कुर्यादेवं वेदविदो विदुः॥ इति।

---

१. चतुर्वर्गचिन्तामणौ कालप्रकरणे (पृ० १३७) इत्थमुक्तं यथा—केवलतिथ्यन्ते भान्ते वा जयन्तीप्रकरण एव वह्निपुराणे पारणविधानात्। भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारतपारणम्॥ इति

२. एतं विषयमभिलक्ष्यीकृत्य तिथितत्त्वे रघुनन्दनो (पृ० ५४) यथा—उपवासपरदिने तिथिनक्षत्रयोरवसाने पारणं, यदा तु महानिशायाः पूर्वमेकतरस्यावसानम्, अन्यतरस्य महानिशायां तदनन्तरं वा तदेकतरावसाने पारणम्। यदा महानिशायामुभयस्थितिस्तदोत्सवान्ते प्रातः पारणं कुर्यादिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्कन्दपुराण में भी कहा है—

तिथि और नक्षत्र के नियम स्थल में तिथि और नक्षत्र के अन्त में पारण किया जाता है। अतः अन्यथा पारण करने से व्रतभङ्ग हो जाता है।

तिथि नक्षत्र का अन्त दो प्रकार होता है। तिथि और नक्षत्र उभय का अन्त और इन दोनों में एक का अन्त दो दिनों में जयन्ती योग होनेवाली शुद्धाधिका तिथि में परदिन में अष्टमी तीन मुहूर्त्त तक अतिक्रान्त नहीं होती है। रोहिणी पूर्वदिन के निशीथ से पहले जब कभी प्रवृत्त होती है। उसके अनुसार परदिन में समाप्ति होती है। वहाँ अगर दिन में समाप्ति होती हैं, तो उसको अतिक्रम करके पारण किया जाता है क्योंकि उभय का अन्त पक्ष मुख्य है। अगर रात में समाप्ति होती है तो उस समाप्ति की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि रात में पारण निषिद्ध है। इसको लक्ष्य करके ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कहा है—

सब उपवासों के स्थल में दिन में पारण होता है। अन्यथा धारण और पारण के बिना युग्म की हानि होती है। रात में दूसरी तिथि का आगमन से तामस काल और दिन में आगमन होने से राजस काल होता है। तामस में पारण करने से तामस (म्लेच्छ) गति मिलती है।

दिन में पारण का विधान होने पर भी अष्टमी वेला में नहीं होता है, क्योंकि तिथि और नक्षत्र इन दोनों में एक का भी अभाव है। अष्टमी को अतिविहित करके रोहिणी रहने पर भी पारण किया जाता है। अत एव नारद पुराण में कहा है, यथा—

तिथि और नक्षत्र का संयोग को लेकर जब उपवास होता है, तब इन दोनों में एक की समाप्ति जब तक नहीं होती, तब तक पारण नहीं किया जाता है। दोनों के संयोग से निर्धारित व्रत में एक की समाप्ति होने पर वहाँ पारण किया जा सकता है ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं।

पूर्वेद्युरेव निशीथे जयन्तीयोगवत्यां विद्धाधिकायां पारणदिने तिथिभान्तो बहुधा संभाव्यते, अहन्युभयान्त एकतरान्तो वा रात्रावेकतरान्त उभयान्तो वेति। तेषु चतुर्षु भेदेषु निर्णयः स्मर्यते—

तिथ्यृक्षयोर्यदा छेदो नक्षत्रान्तमथापि वा।
अर्धरात्रेऽपि वा कुर्यात् पारणञ्च परेऽहनि॥ इति।

दिवसे यद्युभयान्तस्तदा पारणम् इति मुख्यः कल्पः। नक्षत्रान्तमित्यनेनैकतरान्तत्वं विवक्षितम्। सोऽयमनुकल्पः। यदि रात्रौ निशीथे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उभयान्त एकतरान्तो वा भवति, तदा दिवसे मुख्यानुकल्पयोरुभयोरप्यसम्भवाद्रात्रौ च पारणस्य निषिद्धत्वादर्थादुपवास[1]प्राप्तै पारणस्य प्रतिप्रसवः क्रियते 'अर्धरात्रेऽपि वा कुर्यात्' इति। ननु पारणेऽष्टम्यन्तस्य प्रतीक्षणीयत्वेऽपि रोहिण्यन्तो न प्रतीक्षणीयः।

याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रसंयुताः।
ऋक्षान्ते पारणं कुर्यात् विना श्रवणरोहिणीम्॥

इति स्मरणात्।

मैवम् 'नक्षत्रन्तु चतुर्गुणम्' इति प्रत्यवायस्योदाहृतत्वात्। तस्मात्, "विना श्रवणरोहिणीम्।" इति वचनं केवलनक्षत्रोपवासविषयं पूर्वोक्तानुकल्पविषयं वेत्यवगन्तव्यम्। अशक्तस्य तिथिनक्षत्रयोरनुवर्त्तमानयोरपि प्रातर्देवं संपूज्य क्रियमाणं पारणं न दुष्यति।

तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्॥

इति स्मरणात्॥

इति जयन्तीनिर्णयः॥

पूर्वदिन में जयन्ती योग रहनेवाली विद्धाधिका तिथि के अवसर पर पारण दिन में तिथि और नक्षत्र का अन्त बहु प्रकार से संभावित होता है। दिन में उभय का अन्त या एक का अन्त, रात में एक का अन्त उभय का अन्त भी। इन चार भेदों का निर्णय के बारे में कहा जाता है—जब तिथि और नक्षत्र की समाप्ति होती अथवा नक्षत्र की जब समाप्ति होती है, उस स्थल में परदिन के रात में भी पारण किया जाता है।

दिन में उभय का अन्त होने पर पारण करना मुख्य कल्प होता है। नक्षत्र का अन्त ऐसा कहने से एक का अन्त यहां विवक्षित होता हैं। वह अनुकूल होता है। यदि रात के निशीथ में उभय का अन्त होता या एक का, उस स्थल में मुख्य और अनुकल्प की भी अवस्थिति नहीं रहती है। रात में भी पारण का निषेध है। अतः यहाँ उपवास की प्राप्ति होने पर पारण का प्रतिप्रसव (निषेध का फिर स्वीकार) किया जाता है। इसके लिए "अर्धरात में भी किया जा सकता है" यह वचन प्रमाण है। यहाँ

१. अर्थात् नाम अर्थापत्त्या। प्रमितस्यार्थस्याऽर्थान्तरेण विनाऽनुपपत्तिमालोच्य तदुपपत्यर्थमर्थस्य कल्पनं यत् सा अर्थापत्तिः। तन्त्रसिद्धान्तरत्नावली पृ. ६९, अर्थापत्तिः स्वयं सिद्ध्येत् पदार्थान्तरवर्णनमिति चन्द्रालोके॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक प्रश्न होता है कि पारण में अष्टमी का अन्त की प्रतीक्षा करनी चाहिए किन्तु रोहिणी का अन्त नहीं। इसके लिए यह वचन प्रमाण है। यथा—

नक्षत्र से युक्त होनेवाली जो कोई तिथिओं के बारे में कहा गया है, श्रावण और रोहिणी के बिना उन सब क्षेत्रों में अन्त में पारण किया जाता है।

किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि "नक्षत्र चार गुना फलों का नाश करता है" इस वचन से प्रत्यवाय उदाहृत किया है। इसलिए पूर्वोक्त "श्रवणा और रोहिणी के बिना" यह वचन केवल नक्षत्र को उपजीव्य करके होनेवाला उपवास के बारे में अथवा पूर्वोक्त अनुकल्प के विषय में पर्यवसित होता है ऐसा समझ में आता है। अशक्त के पक्ष में भी तिथि और नक्षत्रों का अनुवर्त्तन (स्वतः प्राप्ति) होता है। ऐसे होने से भी प्रातः देवपूजन करके पारण करने से कोई दोष नहीं है। इसके लिए "तिथि के अन्त में या उत्सव के अन्त में व्रती पारण करता है" यह वचन प्रमाण है, ऐसा स्मृति में कहा है।

इस प्रकार जयन्ती का निर्णय हुआ॥

अथ नवमी निर्णीयते

सा च विधिनिषेधरूपाभ्यामन्वयव्यतिरेकाभ्यां पूर्वविद्धैव ग्राह्या। तद्विधिश्च युग्मादिशास्त्रे 'वसु-रन्ध्रयो' रिति पठ्यते। पद्मपुराणेऽपि—

अष्टम्या नवमी विद्धा नवम्या चाष्टमीयुता।
अर्धनारीश्वरप्राया उमामाहेश्वरी तिथिः॥ इति

भविष्यत्पुराणे द्वादशीकल्पेऽपि—

नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नवमी तथा। इति

निषेधस्तु पद्मपुराणेऽभिहितः—

न कार्या नवमी तात दशम्या तु कदाचन। इति।

सेयं नवमी भविष्यत्पुराणोक्तदुर्गाव्रतादौ द्रष्टव्या।

ननु कृष्णनवम्याः पूर्वविद्धत्वेऽपि शुक्लनवमी परविद्धाऽस्तु—

शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः।

इति वचनात्। मैवम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वोक्तेषु वचनेषु दशमीविद्धायाः साक्षान्निषेधात्। ननु तस्य निषेधस्य सामान्यरूपत्वात् कृष्णपक्षे सङ्कोचोऽस्त्विति चेत् नासङ्कोच हेतोरभावात्[१], भवदुदाहृतस्यापि सामान्यरूपत्वात्। तस्मात् पक्षयोरुभयोरपि पूर्वविद्धैव ग्राह्या।

अब नवमी का निर्णय हो रहा है। विधि और निषेध के रूप में अन्वय और व्यतिरेक के रूप में भी वह पूर्वविद्धा होकर गृहीत होती है। विधि के रूप में युग्मशास्त्र में "वसुरन्ध्रयोः" ऐसा पाठ मिलता है। पद्मपुराण में भी कहा है—

अष्टमी से विद्धा नवमी और नवमी से विद्धा अष्टमी गृहीत होती है। इन दोनों को अर्धनारीश्वर और उमामाहेश्वरी तिथि कहते हैं। द्वादशी के प्रसंग को उत्थापित करके भविष्यत्पुराण में कहा है—

नवमी के साथ अष्टमी और अष्टमी के साथ युक्त होनेवाली नवमी की जाती है। निषेध का स्वरूप पद्मपुराण में अभिहित किया है—हे तात, दशमी के साथ युक्त नवमी नहीं करनी चाहिए। ऐसी नवमी भविष्यत्पुराण में उक्त दुर्गाव्रतादि में आती है।

प्रश्न होता है कि कृष्ण पक्ष की नवमी पूर्वविद्धा होने पर शुक्लपक्ष की नवमी परविद्धा होनी चाहिए। जिस तिथि में रवि उदित होते हैं, शुक्लपक्ष में वही तिथि गृहीत होती है इस वचन यहाँ प्रमाण है। यह ठीक नहीं है। पूर्वोक्त वचनों में दशमी विद्धा नवमी साक्षात निषिद्ध हैं। प्रश्न होता है, वह निषेध सामान्य रूप से कहा गया है। इसका कृष्णपक्ष में संकोच हो ऐसा अगर कहा जाता तो ठीक नहीं है क्योंकि संकोच का कोई हेतु नहीं है। आपके द्वारा उदाहृत पक्ष भी सामान्य है। इसलिए उभय पक्षों में भी पूर्वविद्धा गृहीत होती है।

रामनवमी तु—

चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्॥

सामान्यं सर्वथा विशेषे उपसंह्रियते। अतः सामान्यापेक्षया विशेषो बलवान् भवति "सामान्यापेक्षया क्वचिद् विशेषो बलवान् भवेद्" इति वचनात्। यत्र विशेषवचनमनुपलब्धं तत्र सामान्यमेवावतिष्ठते। संकोचः सर्वथा निरवकाशत्वेन पर्यवस्यति। निरवकाशत्वं नाम विधेर्गत्यन्तराभावेन उपयोगभाक्त्वं तदर्थं संकोचस्य हेतुत्वम्। प्रकृतौ तथाभावात् सामान्यमेव कैवल्येनावतिष्ठते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम् ॥[1]

इति वचनादष्टमीविद्धा सनक्षत्राऽपि नोपोष्या। उत्तरदिने मध्याह्न-योगे तूत्तरैव, उभयत्र तदयोगे तूत्तरैव, इत्याहागस्त्यः—

चैत्रमासनवम्यान्तु जातो रामः स्वयं हरिः ।
पुनर्वस्वृक्षसंयुता सा च पूर्वाह्णगामिनी ॥
श्रीरामनवमीप्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहात्मिका ।
सैव मध्याह्नयोगेन सर्वकर्मफलप्रदा ॥ इति

सर्ववाक्यपर्यालोचनया नक्षत्ररहिताऽपि मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति सिद्धम् ।

इति नवमीनिर्णयः ।

राम नवमी तो "चैत्र मास शुक्ल पक्ष की नवमी यदि पुनर्वसु नक्षत्र के साथ मध्याह्न में युक्त होती है, तो महान् पुण्य देती है । अष्टमीविद्धा नवमी विष्णुपरायण लोग ने त्याज्य हैं । नवमी में उपवास किया जाता है और दशमी में पारण होता है" इन वचनों से अष्टमीविद्धा नवमी नक्षत्र के साथ युक्त होने पर भी उपवास योग्य नहीं होती हैं । परदिन के मध्याह्न में नक्षत्र का योग होने पर परदिन में और उभय दिनों में योग न होने पर भी परदिन में उपवास करने के लिए अगस्त्य ने कहा है। यथा—

चैत्रमास की नवमी में स्वयं हरि राम का जन्म हुआ । उस नवमी में पुनर्वसु नक्षत्र का योग पूर्वाह्न में हुआ था । इस प्रकार नवमी 'श्रीरामनवमी' नाम से कही जाती है । कोटि सूर्य और ग्रहों का योग इस दिन में हुआ था । वह नवमी मध्याह्न समय में रहने से सर्व-कर्म फलप्रद होती है । इस प्रकार सब वाक्यों का पर्यालोचन से ऐसा सिद्धान्त हुआ कि नक्षत्र का योग न होने पर भी मध्याह्न को व्याप्त होने से श्रीरामनवमी गृहीत होती हैं ।

इस प्रकार नवमी का निर्णय हुआ ।

अथ दशमी निर्णीयते

तस्याश्च तिथ्यन्तरवद्धेयोपादेयविभागो नास्ति । तिथ्यन्तरे तु काचित् पूर्वविद्धा ग्राह्या काचिदुत्तरविद्धा । न तु तथा दशम्यां किञ्चिन्नियामकमस्ति । एतदेवाभिप्रेत्याङ्गिरा आह—

१. वचनमिदम् अगस्त्यसंहितायां इति तिथितत्त्वे रघुनन्दनः । पृ. ६०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संपूर्णा दशमी ग्राह्या परया पूर्वयाऽथवा ।
युक्ता न दूषिता यस्मात् तिथिः सा सर्वतोमुखी ॥ इति ।

यथा संपूर्णा दोषरहिता तथा विद्धाऽपि । प्रतिपत्सम्मुखी कार्या इत्यादौ तिथे मुंखं पूज्यमुक्तम् । दशम्यास्तु मूलाग्रयो र्द्वयोरपि मुखत्वात् पूज्यत्वमुभयत्र समानम् ।

एवं स्थिते सत्यत्रेदं चिन्त्यते । किं पुरुषेच्छया[1] पूर्वोत्तरविद्धयोरन्यतरा ग्राह्या, किं वा नियामकं शास्त्रमस्तीति । तत्र न तावच्छास्त्रं किञ्चित् पश्यामः । प्रत्युत सर्वतोमुखत्वकथनात् पूर्वोत्तरविद्धयोरुभयोः समबलत्वं शास्त्रेण प्रतीयते । अतः 'व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वा'[1] इत्यादिवद्वैच्छिको विकल्पोऽवगन्तव्यः ।

न चाष्टदोषग्रस्तत्वाद्विकल्पो न युक्त इति शङ्कनीयम् । गत्यन्तराभावेन दोषग्रस्तस्याप्यवश्याश्रयणीयत्वात् । तदुक्तमाचार्यैः—

एवमेषोऽष्टदोषोऽपि यद्व्रीहियववाक्ययोः ।
विकल्प आश्रितस्तत्र गतिरन्या न विद्यते ॥ इति[2] ।

---

१. प्रमाणस्य समबलत्वे ग्रहणा ग्रहणार्थं पुरुषेच्छा नियामिका वैकल्पिके आत्मतुष्टिः प्रमाणम् (गर्गः—मन्वर्थमुक्तावली २।६) इति वचनात् तुल्यबलविरोधे विकल्प इति गौतमवचनाच्च । सति विकल्पे शास्त्रवचनेन नियमनात् व्यवस्थितविकल्प इत्युच्यते ।

१. आपस्तम्बश्रौतसूत्रम्—६।३१।१३

२. इच्छया व्रीहावुपादीयमाने प्राप्तयवप्रामाण्यस्य परित्यागः, अप्राप्तयवाप्रामाण्यस्य प्रकल्पनम् । प्रयोगान्तरे त्विच्छया यवे उपादीयमाने परित्यक्तयवप्रामाण्यस्योज्जीवनम्, स्वीकृतयवाप्रामाण्यस्य हानम् इति यवे चत्वारो दोषाः । एवं व्रीहावप्युक्तक्रमेण चत्वारः । इत्यष्टौ दोषा इच्छाविकल्पे । एतदुक्तं प्रमाणान्तरेण प्रमाणत्वाप्रमाणत्वपरित्यागप्रकल्पनात् । तदुज्जीवनहानाभ्यां द्वयोरित्यष्टदोषता ॥ इति । एतद्व्याख्याने मीमांसान्यायप्रकाशस्य प्रभाटीकाकारो (पृ—२४८) यथा—"प्रमाणत्वाप्रमाणत्वयोः परित्यागप्रकल्पने इत्येवं द्वन्द्वद्वयगर्भषष्ठीतत्पुरुषः । यथासंख्येनान्वयः । प्रमाणत्वस्य परित्यागः, अप्रमाणत्वस्य प्रकल्पनं चेति दोषद्वयम् । तथा परित्यक्तस्य प्रमाणत्वस्य प्रत्युज्जीवनं प्रकल्पितस्याप्रमाणत्वस्य हानिश्चेति दोषद्वयम् । मिलित्वा दोषचतुष्टयम् । तच्च विकल्पघटके वाक्यद्वये प्रत्येकमिति संकलनयाष्टौ दोषा भवन्ति" इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्मादैच्छिको विकल्प इति प्राप्ते ब्रूमः। अस्त्यत्र वचनं व्यवस्थापकम्[1]।

अब दशमी का निर्णय हो रहा है। उसमें दूसरी तिथिओं की तरह हेय और उपादेय भेद से विभाग नहीं है। दूसरी तिथि में कोई पूर्वविद्ध होती है तो कोई उत्तरविद्धा होती है। दशमी में इसी तरह कोई नियामक नहीं है। इसको अभिप्रेत करके अंगिरा ने कहा है—

पर तिथि से या पूर्व तिथि से युक्त संपूर्ण दशमी गृहीत होती है। युक्त होने से कोई दोष नहीं है। इसलिए वह तिथि सर्वतोमुखी होती है।

जैसे संपूर्णा तिथि दोष से रहित है वैसे विद्धा तिथि भी। "प्रतिपद के सम्मुख होनेवाली तिथि की जाती है" इन वचनों से तिथि के मुख पूज्य है। ऐसा कहा जाता है। दशमी का मूल और अग्र दोनों ही मुख होने से उभयत्र पूज्यता समान होती है।

इस प्रकार स्थिति में यहाँ ऐसी चिन्ता होती है कि पुरुष की इच्छा के अनुसार पूर्व या उत्तर विद्धा तिथिओं में कुछ एक को मान लेना है या इसके लिए कोई नियामक शास्त्र वचन है? इसके बारे में कोई शास्त्रवचन हम नहीं देखते हैं। वरं सर्वतोमुख कहने से पूर्व और उत्तर विद्धा इन दोनों के समान वल होने पर शास्त्र से वैसी प्रतीत होती है। अतः "व्रीहि के द्वारा याग करते हैं अथवा यव के द्वारा याग करते हैं" इसी तरह इच्छा के अनुसार विकल्प अवगत होता है।

विकल्प सर्वथा आठ दोषों से ग्रस्त है। इसलिए विकल्प का स्वीकार नहीं होता है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए? क्योंकि दूसरी गति के अभाव से दोष ग्रस्त होने पर भी विकल्प का आश्रय लिया जाता है। इसके बारे में आचार्य ने कहा है—

व्रीहि और यवों के वाक्य में आठ दोषों की स्थिति होने से भी विकल्प का आश्रय स्वीकृत है क्योंकि वहाँ कोई दूसरी गति नहीं है।

इसलिए ऐच्छिक विकल्प होगा इस प्रकार प्रस्ताव होने पर उत्तर के रूप में कहा जाता है कि यहां व्यवस्थापक वचन उपलब्ध है।

---

१. अव्यवस्थितविकल्पेऽष्टौ दोषा भवन्ति। व्यवस्थितविकल्पस्तु समाधानाय भवति। स च पुरुषकृतव्यवस्थया 'समय' इति आपस्तम्बीयाः। अत्र तथा दर्शनाद्दोषाभावप्रसङ्गस्यावतारः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा च मार्कण्डेयः

शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः।
कृष्णपक्षे तिथि ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः॥ इति

नन्वनेन वचनेन पक्षभेदेन विकल्प आश्रितः। तथा सति दोषाष्टकस्य[1] तादवस्थ्यादैच्छिकविकल्प एव कुतो न स्वीक्रियते इति चेत्। मैवम्। सति व्यवस्थापके शास्त्रे पुरुषेच्छाया अप्रसरात्। अत एव स्मर्यते—

उदासीने[2] तु शास्त्रार्थे पुरुषेच्छा नियामिका॥ इति

ननु पक्षभेदेन व्यवस्थाऽनुपपन्ना स्कन्दपुराणे पूर्वविद्धाया एव ग्राह्यत्वाभिधानात्—

दशमी चैव कर्त्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम॥ इति

सदुर्गा नवमीमिश्रा। मैवम्। पक्षद्वये पूर्वविद्धास्वीकारे "पूर्वया परयाऽथवा" इति परविद्धाविधानस्य निरवकाशत्वप्रसङ्गात्[3]। नवमीमिश्रत्ववचनन्तु कृष्णपक्षे चरितार्थम्।

ननु परविद्धानिषेधो ब्रह्मवैवर्त्ते पठ्यते—

प्रतिपत् पञ्चमी भूता सावित्री वटपूर्णिमा।
नवमी दशमी चैव नोपोष्या परसंयुता॥ इति

---

१. "संपूर्णा दशमी कार्या पूर्वया परयाऽथवा" इत्यङ्गिरोवचने हि विधिद्वयं पर्यवस्यति, पूर्वया युता कार्या इति परया युता कार्या' इति च विधिद्वयस्य पक्षभेदेन व्यवस्थायां पूर्वया युतेत्यस्य कृष्णपक्षे परयायु तेत्यस्य शुक्लपक्षे विषयो वाच्यः। तथा च सति पूर्वया युतेत्यस्य विधेः प्राप्तस्यापि प्रामाण्यस्य शुक्लपक्षे परित्यागः, अप्राप्तस्य चाप्रामाण्यस्य कल्पनम्। तथा कृष्णपक्षे तस्यैव विधेः परित्यक्तप्रामाण्यस्योज्जीवनम्, कल्पिताप्रामाण्यस्य च हानमिति पूर्वया युक्ता' इत्यत्र चत्वारो दोषाः। एवं रीत्या 'परया युता' इत्यत्रापि चत्वार इत्यष्टौ दोषा व्यवस्थितेऽपि विकल्पे भवन्तीति ध्येयम् इति चन्द्रकान्ततर्कालंकाराचार्याः।

२. एकं विषयमाश्रित्य पदार्थद्वयविधाने नियमविधेस्तत्राभावात् विनिगमनाया अदर्शनाच्च शास्त्रतात्पर्यमुदासीनं तिष्ठतीति उच्यते। एतस्मिन् स्थले पुरुषस्य इच्छया एकतरः पक्ष आश्रीयते। सैवेच्छा नियामिकेति भावः।

३. निरवकाशत्वं न विधेः प्रसरति। एवं सति सावकाशत्वापेक्षया बलवत्त्वम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मार्कण्डेय ने कहा है—जिस तिथि में सूर्य उदित होते हैं। उस तिथि शुक्लपक्ष में गृहीत होती है। जिस तिथि में सूर्य अस्त होते हैं, उस तिथि कृष्णपक्ष में गृहीत होती है।

यहां प्रश्न होता है कि इस वचन से पक्ष भेद के अनुसार क्या विकल्प का स्वीकार होता है। ऐसे होने से आठ दोषों की अवस्था वैसी होती है। इसलिए इच्छा के अनुसार विकल्प क्यों स्वीकृत नहीं होता है? यह ठीक नहीं है। क्योंकि व्यवस्थापक शास्त्र-वचन जिस पर है उस पर पुरुष को इच्छा का प्रसर नहीं होता है। अत एव स्मृति में कहा है–जिस पर शास्त्रार्थ (शास्त्रवचन का अर्थ) उदासीन है, उस पर पुरुष की इच्छा नियामक होती है।

प्रश्न होता है कि पक्षभेद के अनुसार व्यवस्था ठीक नहीं है क्योंकि स्कन्दपुराण में पूर्वविद्धा की ग्राह्यता के बारे में कहा है—

हे द्विजसत्तम! सदुर्गा दशमी की जाती है।

सदुर्गा अर्थात् नवमी युक्त! यह ठीक नहीं हैं। क्योंकि दोनों पक्षों में पूर्वविद्धा को स्वीकार करने से "पूर्व के साथ या पर के साथ" इस प्रकार परविद्धा को विधान करने वाला वचन का निरवकाश प्रसंग आ जायगा। नवमी मिश्र (नवमी से युक्त) वचन तो कृष्ण पक्ष में चरितार्थ होता है। परविद्धा को निषिद्ध करनेवाला वचन का पाठ ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में मिलता है। यथा–

प्रतिपद्, पञ्चमी, चतुर्दशी, सावित्री, वटपूर्णिमा, नवमी और दशमी परविद्धा होने से उपवास योग्य नहीं होती हैं।

कूर्मपुराणेऽपि—

नन्दाविद्धा तु या पूर्णा द्वादशी मकरे सिता।
भृगुणा नष्टचन्द्रा च एता वै निष्फलाः स्मृताः॥ इति

अत्रैकादश्या नन्दात्वाद्दशम्याश्च पूर्णात्वादेकादशीविद्धा दशमी-निष्फला इति गम्यते। बाढ़म्। अयमपि निषेधः पूर्वोक्तन्यायेन कृष्ण-पक्षविषयतया योजनीयः। तस्मात् पूर्वोत्तरविद्धयोर्दशम्योः पक्षभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या।

इति दशमीनिर्णयः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथैकादशी निर्णीयते ।

तत्रैकादश्यामुपवासो दानादिकञ्चेत्युभयं विहितम् । उपवासो जयन्तीवन्नित्यकाम्यरूपः[1] । द्वैविध्यञ्च तस्य द्विविधप्रमाणबलादवसीयते । उपवासविधिवाक्येषु नित्यशब्दसदाशब्ददीनां नित्यत्वसाधनानां स्मरणान्नित्यत्वसिद्धिः । तानि च साधकानि संग्रहकारेण सङ्गृहीतानि—

नित्यं सदा यावदायुर्न कदाचिदतिक्रमेत् ।
इत्युक्त्यातिक्रमे दोषश्रुतेरत्यागचोदनात् ॥
फलाश्रुतेर्वीप्सया च तन्नित्यमिति कीर्त्तितम् ॥ इति ।

अत्र च नित्यशब्दादीन्यष्टौ नित्यत्वसाधकानि । नित्यशब्द उदाहृतो गारुडपुराणे[2]—

कूर्मपुराण में भी कहा है—

नन्दा विद्धा जो पूर्णा द्वादशी मकरमास के शुक्लपक्ष में है, वह नष्ट चन्द्र हो जाने पर निष्फल हो जाती हैं, ऐसा भृगु ने स्मरण किया है ।

यहाँ एकादशी नन्दा होती है, द्वादशी पूर्णा होती हैं । एकादशी विद्धा दशमी निष्फल होती है, ऐसा जाना जाता है । वह ठीक है । यह निषेध पूर्वोक्त न्याय से कृष्णपक्ष के विषय में जोड़ दिया जाता है । इसलिए पूर्व और उत्तरविद्धा दशमी की पक्षभेद के अनुसार व्यवस्था होती हैं ।

इस प्रकार दशमी का निर्णय हुआ ।

अब एकादशी का निर्णय हो रहा है ।

एकादशी में उपवास और दानप्रभृति ये उभय विहित हैं । जयन्ती की तरह उपवास नित्य और काम्य के रूप होता है । द्वैविध्य के बारे में द्विविध प्रमाणों का उपस्थापन से युक्ति समाप्त होती है । उपवास विधिवाक्यों में नित्य शब्द और सदा शब्द प्रभृति नित्यत्व प्रतिपादन करनेवाले साधनों का स्मरण से उपवास की नित्यता सिद्ध होती है । संग्रहकार ने इनके साधकों का संग्रह किया है—

---

१. नित्यत्वे काम्यत्वे सति उभयरूपतया संयोगपृथक्त्वम् । तत्पूर्वमुदाहृतं द्रष्टव्यम् ।

२. मान्धाता चक्रवर्त्यासीदुपोष्यैकादशीं नृपः ।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥ गरुडपुराणम् १।१२५।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'नित्य' सदा यावदायु (जब तक आयु है) न कदाचित् अतिक्रमेत् (कभी भी नहीं अतिक्रम करना) इन सब उक्तिओं से अतिक्रम करने दोष, श्रुति का त्याग नहीं करने के लिए विधिवाक्य से फल सुनाने वाले वाक्यों के अभाव से और वीप्सा (बार-बार बोलना) से, भी वह नित्य है। ऐसा गरुड पुराण में कहा है। यह नित्य शब्द प्रभृति आठ नित्यत्व के साधक है। नित्य शब्द गरुड़ पुराण में उदाहृत किया है।

उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि। इति।

सदाशब्द उक्तः सनत्कुमारसंहितायाम्—

एकादशी सदोपोष्या पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। इति।

यावदायुः शब्द उक्तो विष्णुरहस्ये—

द्वादशी न प्रमोक्तव्या यावदायुः सुवृत्तिभिः। इति।

आग्नेयपुराणे—

उपोष्यैकादशीं राजन् यावदायुः सुवृत्तिभिः। इति।

अतिक्रमनिषेधः कण्वेन दर्शितः—

एकादश्यामुपवसेन्न कदाचिदतिक्रमेत्। इति।

विष्णुनाऽपि—

एकादश्यां न भुञ्जीत कदाचिदपि मानवः। इति।

अकरणे दोषमाह सनत्कुमारः—

न करोति यदा मूढ एकादश्यामुपोषणम्।
स नरो नरकं याति रौरवं तमसाऽऽवृत्तम्॥
एकादश्यां मुनिश्रेष्ठ यो भुङ्क्ते मूढचेतनः।
प्रतिमासे स भुङ्क्ते तु किल्विषं श्वादिविट्समम्॥
निष्कृतिर्मद्यपस्योक्ता धर्मशास्त्रे मनीषिभिः।
एकादश्यन्नकामस्य निष्कृतिः वापि नोदिता॥
मद्यपानान्मुनिश्रेष्ठ पातैव नरकं व्रजेत्।
एकादश्यन्नकामस्तु पितृभिः सह मज्जति॥ इति।

नारदीये—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे॥
तानि पापान्युपाश्नाति भुञ्जानो हरिवासरे॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथा—"उभय पक्षों में एकादशी में नित्य उपवास करके" इत्यादि 'सदा' शब्द सनत्कुमार संहिता में कहा है। यथा— शुक्ल और कृष्ण पक्षों में एकादशी 'सदा' उपवास योग्य है। विष्णुरहस्य में 'यावदायुः शब्द कहा है। यथा—उत्तम चरित्रशील लोग ने यावदायुः (जब तक आयु है, तब तक) द्वादशी को नहीं छोड़ना है। आग्नेयपुराण में—हे राजा, सुवृत्ति लोग ने यावदायुः एकादशी में उपवास करना है। कण्व ने अतिक्रम का निषेध के बारे में कहा है। एकादशी में उपवास को कभी भी अतिक्रम नहीं करना है। विष्णु ने भी कहा है—मानव कभी भी एकादशी में भोजन नहीं करता है।

एकादशी का अकरण से होनेवाला दोष सनत्कुमार ने कहा है—

जब मूढ एकादशी में उपवास नहीं करता है, वह नर तमसा से आवृत्त रौरव नरक को पाता है। हे मुनिश्रेष्ठ ! जो लोग मूढ होकर एकादशी में खाता है, वह कुकुर की तरह हर मास पाप को खाता है। मनीषियों ने धर्मशास्त्र में मद्यप के लिए निष्कृति नहीं कही ह। हे मुनिश्रेष्ठ ! मद्यपान से स्वयं पानकरने वाला नरक जाता है। किन्तु एकादशी में अन्न खाने वाला अपने पितरों के साथ नरक में डुबता है।

नारदीय पुराण में कहा है—

ब्रह्महत्या के समान जो कुछ पाप हैं वे सब ही हरिवासर अर्थात् एकादशी प्राप्त होने पर अन्न में आश्रय करके रहते हैं। इसलिए एकादशी में जो अन्न खाता है, वह उन सब पापों को खाता है।

स्कान्दे—

मातृहा पितृहा वापि भ्रातृहा गुरुहा तथा।
एकादश्यां तु यो भुङ्क्ते पक्षयोरुभयोरपि ॥ इति।

अकरण इवासमापनेऽपि दोष उक्तो विष्णुरहस्ये—

समादाय विधानेन द्वादशीव्रतमुत्तमम्।
तस्य भङ्गं नरः कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
परिगृह्य व्रतं सम्यगेकादश्यादिकं नरः।
न समापयते तस्य गतिः पापीयसी भवेत् ॥ इति।

नारदीयेऽपि—

द्वादशीव्रतमादाय व्रतभङ्गं करोति यः।
द्वादशाब्दं व्रतं चीर्णं निष्फलं तस्य जायते ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्यागचोदना दर्शिता विष्णुरहस्ये—

परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।
सूतके मृतके चैव न त्यजेद्द्वादशीव्रतम् ॥ इति ।

फलाश्रवणञ्च केषुचिद् वचनेषु विस्पष्टम् । तत्र कात्यायन[1]:—

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥ इति ।

स्कान्देऽपि—

उपोष्यैकादशीं सम्यक् पक्षयोरुभयोरपि ॥ इति ।

कूर्मपुराणेऽपि—

वदन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने ।
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे ॥ इति ।

वीप्सामाह सनत्कुमारः—

पक्षे पक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ॥ इति ।

स्कन्दपुराण में भी कहा है—

उभय पक्षों शुक्ल-कृष्ण की एकादशी में जो खाता है वह मातृ-हत्याकारी, पितृ-हत्याकारी, भाइयों का हत्याकारी और गुरु का हत्याकारी भी होता है ।

अकरण की तरह एकादशी की समाप्ति न करने से होनेवाला दोष के बारे में विष्णु रहस्य में कहा है—विधान के अनुसार द्वादशी व्रत को आरंभ करके जो व्यक्ति व्रतभंग करती है, वह रौरव नरक को जाती है । एकादशी प्रभृति व्रतों को ग्रहण करके जो समाप्त न करती है, उसकी गति पापीयसी (दुर्गति) होती है ।

नारदीय पुराण में भी कहा है—द्वादशी व्रत को आरम्भ कर जो व्रत-भंग करता है । उसके बारह वर्षों तक किये हुए व्रत निष्फल होते हैं । विष्णु रहस्य में अत्याग के लिए चोदना वाक्य (विधिवाक्य) मिलता है—खूब विपत्ति होने पर, आनन्द के समय में सूतक में और मृतक में जो द्वादशीव्रत को (एकादशी) न छोड़े । फल श्रवण के अभाव कुछ वचनों में स्पष्ट किया है । वहां कात्यायन ने कहा है—

---

१. एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।
वनस्थयतिधर्मोऽयं शुक्लामेव सदा गृही ॥ देवलः इति हेमाद्रिः (कालः) पृ. १५०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उभय पक्षों में भी एकादशी में नहीं खावे। स्कन्दपुराण में भी उभय पक्षों की एकादशी में उपवास करके (रहे)। कूर्मपुराण में भी हे उत्तम मुख वाली! बारंबार पुराणशास्त्र कहते हैं कि हरिवासर (एकादशी) प्राप्त होने पर नहीं खाना है, नहीं खाना है। सनत्कुमार ने वीप्सा कही है— पक्ष-पक्ष में अर्थात् हर पक्ष में एकादशी में उपवास करना चाहिए।

नारदोऽपि—

नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः।
पक्षे पक्षे च कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्॥ इति।

तदेवं नित्यशब्दादिभिर्हेतुभिरुपवासस्य नित्यत्वं सिद्धम्। काम्यत्वं च सायुज्यादिफलश्रवणादवगम्यते। तदुक्तं विष्णुरहस्ये।

यदीच्छेद्विष्णुसायुज्यं सुतान् संपदमात्मनः।
एकादश्यां न भुंजीत पक्षयोरुभयोरपि॥ इति।

कूर्मपुराणे—

यदीच्छेद् विष्णुसायुज्यं श्रियं सन्ततिमात्मनः।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥ इति।

कात्यायनः—

संसारसागरोत्तारमिच्छन् विष्णुपरायणः।
ऐश्वर्यं सन्ततिं स्वर्गं मुक्तिं वा यद्यदिच्छति॥
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥ इति।

स्कन्दपुराणेऽपि—

यदीच्छेद्विपुलान् भोगान् मुक्तिञ्चात्यन्तदुर्लभाम्।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि॥ इति।

नारदीयेऽपि—

एकादशीसमं किञ्चित् पापत्राणं न विद्यते।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्रप्रदायिनी॥
सुकलत्रप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी॥ इति।

नारद ने भी कहा है—कि नित्यभक्ति से युक्त विष्णुपरायण लोगों के द्वारा एकादशी के उपवास पक्ष-पक्ष में अर्थात् हर पक्ष में किया जाता है।

इस प्रकार नित्य शब्द रूपक हेतुओं से उपवास की नित्यता सिद्ध होती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इसके काम्यत्व के बारे में सायुज्य मुक्ति फल के रूप श्रुति से जाना जाता हैं। इस विषय में विष्णुपुराण में कहा है—

अगर कोई विष्णु का सायुज्य, पुत्र और सम्पद चाहता है तो उसने उभय पक्ष की एकादशी में भोजन नहीं किया जाता है।

कूर्मपुराण में भी कहा है—जो अपने लिए सन्तान करे, श्री और विष्णु के सायुज्य जो चाहता है, वह दोनों पक्षों की एकादशी में भोजन नहीं करता है।

कात्यायन ने कहा है—संसार सागर को पार करने के लिए इच्छा करनेवाला विष्णुपरायण व्यक्ति अगर ऐश्वर्य, सन्तान, स्वर्ग, मुक्ति या जो कुछ चाहता है, तो उभय पक्षों की एकादशी में उसने भोजन नहीं करे।

स्कन्दपुराण में भी कहा है कि अगर विपुल भोग और दुर्लभ मुक्ति को कोई चाहता है, तो उभय पक्षों की एकादशी में वह उपवास करे, भोजन नहीं करे।

नारदीय पुराण में भी—पापों से त्राण करने वाली एकादशी के समान कोई व्रत नहीं है। ऐसी एकादशी स्वर्ग, मोक्ष, राजत्व और पुत्र को देने वाली है। अच्छी पत्नी और शरीर के आरोग्य को भी देनेवाली है।

तदेवं फलश्रवणात् काम्यत्वं सिद्धम्। ननु काम्यत्वमनित्यत्वम्, असति कामे परित्यक्तुं शक्यत्वात्। तथा सत्येकस्य कर्मणो नित्यत्वकाम्यत्वाभ्यां द्वैरूप्याङ्गीकारे नित्यानित्यसंयोगविरोधः प्राप्नोति। नायं दोषः। खादिरवत् प्रमाणद्वयेन द्वैरूप्यापत्तेः। तथा हि "खादिरो यूपो भवति"[1] इति क्रतौ नित्यः खादिरो विहितः। "खादिरं वीर्यकामस्य यूपं कुर्वीत" इति तस्मिन्नेव क्रतौ काम्यत्वेनानित्यः खादिरो विहितः। तत्र यथा प्रमाणद्वयसंबन्धादेकस्यापि खादिरस्य द्वैरूप्यमङ्गीकृतम्। तद्वदत्रापि द्विविधप्रमाणसद्भावादुपवासस्य द्वैरूप्यं किन्न स्यात्।

ननु विषमो दृष्टान्तः, नित्यः खादिरः क्रत्वर्थः काम्यस्तु पुरुषार्थः। उपवासस्तु नित्योऽपि पुरुषार्थ एव, तस्य खादिरवत् क्रत्वङ्गत्वबोधकप्रमाणाभावात्। बाढम्। अस्त्वेवं वैषम्यं, द्वैरूप्यप्रयोजकन्तु प्रमाण-

---

१. शतपथब्राह्मणम्—३।६।२।१२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वयमस्त्येव। सूत्रकारेण प्रमाणद्वयस्यैव द्वैरूप्यसाधकत्वोपन्यासात्। तथा च सूत्रम्। 'एकस्य तूभयत्वे संयोगपृथक्त्वम्'[1] इति। अतः केवलपुरुषार्थस्याप्युपवासस्य द्वैरूप्यमविरुद्धम्। यदि बुद्ध्यारोहस्य सदृशो दृष्टान्तोऽपेक्षितस्तर्ह्यग्निहोत्रादिर्दृष्टान्तोऽस्तु। न हि अग्निहोत्रं क्रत्वर्थम्। तस्य स्वयमेव क्रतुत्वात्। तस्य च नित्यत्वकाम्यत्वे वाक्यद्वयादवगम्येते। 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति'[2] इति नित्यत्वावगमकं वाक्यम्। 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः'[3] इति च काम्यत्वावगमकम्। तस्य च क्रत्वर्थत्वाभावेन केवलपुरुषार्थतैव। अतोऽग्निहोत्रे नित्यत्वं[3] काम्यत्वञ्चेति द्वैरूप्यमस्ति।

इस प्रकार फल का श्रवण होने से एकादशी का काम्यत्व सिद्ध होता है। प्रश्न होता है कि काम्यत्व अनित्य है। कामना के अभाव से छोड़ दी जा सकती है। ऐसे होने से एक कर्म के नित्यत्व और काम्यत्व इन दो रूपों का अंगीकार होने पर नित्य और अनित्य का संयोग रूप विरोध हो सकता है। यह दोष नहीं है। क्योंकि खादिर की तरह दोनों प्रमाणों से दो रूप होतेहैं। "खादिर यूप होता है" इस वाक्य से प्राप्त क्रतु में नित्य खादिर का विधानहुआ है। "वीर्य को पाने के लिए कामना करने वाला यजमान खादिर यूप करता है" इस वाक्य से उस क्रतु में काम्यत्व रहने से अनित्य खादिर का विधान हुआ है। वहाँ वैसे दोनों प्रमाणों के सम्बन्ध से एक ही खादिर का दो रूप अंगीकृत है। वैसे यहाँ भी दो प्रकार प्रमाण रहने से उपवास का क्या दो रूप नहीं रहते हैं।

यह प्रश्न होता है कि वह दृष्टान्त विषम है। नित्य खादिर क्रतु के लिए होने से क्रत्वर्थ और काम्य सर्वथा पुरुष के लिए होने से पुरुषार्थ होता है। उपवास नित्य होने पर भी पुरुषार्थ है क्योंकि खादिर की तरह क्रतु के अङ्ग रूपता को बाधित करने वाला प्रमाण यहाँ नहीं है। यह बिलकुल ठीक है। इस प्रकार वैषम्य हो। किन्तु द्वैरूप्य का प्रयोजन दो प्रमाण हैं। क्योंकि सूत्रकार ने द्वैरूप्य के साधन के लिए इन दो प्रमाणों का उपन्यास किया हैं। इसलिए सूत्र किया है—इसका दो उद्देश्यों में निर्देश होने पर संयुगपृथक्त्व न्याय होता है। अतः केवल पुरुषार्थ के रूप उपवास का द्वैरूप्य नहीं होता है। अगर ज्ञात विषय की तरह दृष्टान्त अपेक्षित है,

---

१. जै० सू० ४।३।५

२. बह्वृचब्राह्मणम्

३. तै० सं० १।५।९।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो अग्निहोत्र दृष्टान्त रूप से स्वीकृत हो। किन्तु अग्निहोत्र क्रत्वर्थ नहीं है। क्योंकि वह स्वयं क्रतु है। उसका स्वरूप नित्य होता है और काम्य भी होता हैं। यह विषय दोनों वाक्यों से जाना जाता है। "जीवन भर अग्निहोत्र होम करता है" यह वाक्य नित्य अग्निहोत्र को समझाता है। "स्वर्ग को कामना करने वाला अग्निहोत्र होम करता हैं" यह वाक्य काम्य अग्निहोत्र को बोलता है। इस प्रकार अग्निहोत्र की क्रत्वर्थता के अभाव होने पर केवल पुरुषार्थता रहती है। अतः अग्निहोत्र में नित्यत्व और काम्यत्व इस प्रकार द्वैरूप्य है।

तच्च शब्दान्तराभ्यासादिकर्मभेदहेत्वभावेनैकस्यैव कर्मणः प्रयोगभेदादवगन्तव्यम्। प्रयोगभेदश्च यावज्जीवाधिकरणे (मी० २।४।१) निर्णीतः। तस्य चाधिकरणस्य संग्राहकावेतौ श्लोकौ भवतः—

यावज्जीवं जुहोतीति धर्मः कर्मणि पुंसि वा।
कालत्वात् कर्मधर्मोऽतः काम्य एकः प्रयुज्यताम्॥
न कालो जीवनं तेन निमित्तप्रविभागतः।
काम्यप्रयोगो भिन्नः स्याद्यावज्जीवप्रयोगतः॥ इति।

अयमर्थः। 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इति काम्याग्निहोत्रं श्रूयते। तथा वाक्यान्तरं पठ्यते। 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति' इति। तत्र संशयः। किं याज्जीवमित्यनेनाधिकारान्तरं बोध्यते किं वा काम्याग्निहोत्रे गुणविधिरिति। तदर्थमर्थान्तरचिन्ता। किं वा यावज्जीवमित्यस्यार्थः कर्मधर्मः उत पुरुषधर्मः इति। यावज्जीवशब्देन पुरुषायुषपरिमितः कालोऽभिधीयते। काम्येन चाग्निहोत्रेण कालविशेष आकाङ्क्षितः। तस्य च कालस्यानेन समर्पणादयं कर्मधर्मः। तस्माद्गुणविधिः। तथा चाग्निहोत्रस्य काम्यस्य प्रयोग एक एव न त्वन्यो नित्यः इति प्राप्ते ब्रूमः—

यावज्जीवशब्दो न कालस्य वाचकः, किन्तु लक्षकः[१]। वाच्यार्थस्तु कृत्स्नजीवनम्। तच्च न कर्मधर्मत्वेन विधातुं शक्यं, पुरुषधर्मत्वादिति प्राणधारणमभिधत्ते न तु कालम्। प्राणधारणञ्च पुरुषधर्मः। कालस्य तदसंभवात्। तेन स्वर्गकामनेव जीवनमपि किञ्चिन्निमित्तम्। तस्मादधिकारान्तरचोदना। तथा सति जीवननिमित्तो नित्यः

१. यावज्जीवपदे काललक्षणैव प्रसज्यते।
यजिना च तदभ्यासलक्षणां प्रक्रियावशादिति॥ शास्त्रदीपिका २।४।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयोगः कामनानिमित्तः कादाचित्कः प्रयोगश्च परस्परं भिद्यते[1] इति सिद्धान्तः ।

तेनाग्निहोत्रन्यायेन प्रकृतस्याप्युपवासस्य निमित्तभेदेन नित्यः प्रयोगः काम्यप्रयोगश्चास्तु । नन्वेकस्य कर्मणः कालभेदेन कर्तृभेदेन वा विना द्वौ प्रयोगौ न संभवतः । न चात्र कालभेदः संभवति, नित्य-काम्ययोरुपवासयोरुभयोरप्येकादश्यामेव विधानात् । नाप्यत्र कर्तृ-भेदोऽस्ति । यद्यपि काम्यं परित्यज्य केवलं नित्यमनुष्ठानं शक्यं, तथापि काम्यमनुतिष्ठासुना नित्यस्य परित्यक्तुमशक्यत्वात् । अतः कर्त्रैक्यात् कालैक्याच्च नित्यकामरूपौ द्वौ प्रयोगौ न घटेते । नायं दोषः ।

यह द्वैरूप्य दूसरे शब्दों का अभ्यास के द्वारा कर्मभेद के लिए हेतु है वैसा नहीं, किन्तु एक कर्म का प्रयोगभेद से मालूम पड़ता है । प्रयोगभेद यावज्जीवाधिकरण में निर्णीत है । इस अधिकरण का दो ही संग्राहक श्लोक है—

"जीवनभर होम करता है" यह धर्म क्या कर्म के या पुरुष के अर्थ में पर्यवसित है ? काल होने के कारण यह कर्म का धर्म होता है । अतः एक काम्य कर्म भी इसके लिए प्रयुक्त होना चाहिए । जीवन काल नहीं होता हैं । निमित्त के द्वारा भिन्न होने पर काम्य के लिए प्रयोग भिन्न होता है । क्योंकि जीवन भर याग के लिए एक प्रयोग है ।

इसका आशय यह है । काम्य अग्निहोत्र के रूप में 'अग्निहोत्र होम स्वर्ग को कामना करने वाला करता है' यह वचन सुना है । दूसरा भी वाक्य का इस प्रकार पाठ मिलता है । 'जीवनभर अग्निहोत्र होम करता है' वैसे यहाँ संशय है–क्या 'जीवनभर' इस प्रकार श्रुति से कोई दूसरा अधिकार समझ में आता है या काम्य अग्निहोत्र के गुण को विधान करने वाला वाक्य यह है । इसके लिए क्या दूसरा अर्थ की चिन्ता होती है । 'जीवन-भर' इसके तात्पर्य क्या कर्मधर्म अर्थात् यह क्रत्वर्थ है, या पुरुषधर्म अर्थात् पुरुषार्थ है ? यहां यावज्जीव (जीवन भर) शब्द के द्वारा पुरुष का आयु परिमित काल अभिहित है । किन्तु काम्य अग्निहोत्र के द्वारा काल विशेष आकाङ्क्षित होता है । इस वाक्य के द्वारा इस काल का लाभ होने

---

१. जीवनस्य पुरुषधर्मत्वान्नित्यकाम्यप्रयोगौ भिन्नौ ॥ इति जैमिनीयन्याय-मालाविस्तरः २।४।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर यह कर्मधर्म होता हैं। इसलिए गुणविधि होता है। इसलिए काम्य अग्निहोत्र का प्रयोग एक ही है, दूसरा नित्य नहीं है।

इस प्रकार अगर कहा जाता है तो उत्तर के रूप में कहा जाता है— कि यावज्जीवन शब्द कालका वाचक नहीं होता है। किन्तु काल को लक्षित करता है? इसका अर्थ संपूर्ण जीवन है। कर्म धर्म के रूप में इसका विधान हो सकता है। पुरुषधर्म के रूप में प्राणधारण करना ही अभिहित्त है किन्तु काल नहीं। प्राणधारण पुरुषधर्म है। काल का यह असंभव हैं। इससे स्वर्ग कामना की तरह जीवन भी कुछ निमित्त है। इसलिए दूसरा अधिकार (अर्थात् नित्य और काम्ये के रुप में) की चोदना (विधि) मिलती हैं। ऐसे होने से जीवन को निमित्त करके नित्य प्रयोग होता है। कामना को निमित्त करके कुछ अवसर में प्रयोग होता है। इस प्रकार परस्पर भिन्न होनेवाले दो प्रयोग हैं ऐसा सिद्धान्त है।

इस अग्निहोत्र न्याय से प्रकरण के अनुसार 'उपवास' निमित्त भेद से नित्य प्रयोग और काम्य प्रयोग इस प्रकार प्रयोग हो। प्रश्न होता है कि एक कर्म का कालभेद और कर्तृभेद के बिना दो प्रयोग संभव नहीं होते हैं। वहाँ भी कालभेद नहीं है। क्योंकि नित्य और काम्य इन दो प्रकार के उपवासों का विधान एकादशी में मिलता है। वहाँ कर्तृभेद भी नहीं है। यद्यपि काम्य उपवास को छोड़कर केवल नित्य उपवास का अनुष्ठान हो सकता है।

विविदिषाऽधिकरणन्यायेन सकृदेवानुनुष्ठिते प्रयोगद्वयसिद्धेः। तस्य चाधिकरणस्य संग्राहकावेतौ श्लोकौ भवतः—

[1]विद्यार्थमाश्रमार्थश्च द्विः प्रयोगोऽथवा सकृत्।
प्रयोजनविभेदेन प्रयोगोऽपि विभिद्यते॥
श्राद्धार्थभुक्त्या तृप्तिं हि स्याद् विद्यार्थेनाश्रमस्तथा।
अनित्यनित्यसंयोग उक्तिभ्यां खादिरो मतः॥ इति

अयमर्थः। 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति। यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' [2] इति श्रुतिवाक्येन परमात्मविद्यायां यज्ञादयो विहिताः गृहस्थाद्याश्रमधर्मत्वं तु यज्ञादीनां सर्वश्रुतिस्मृतिषु

---

१. वैयासकिन्यायमाला ३।४।८

२. बृहदारण्यकोपनिषत् ४।४।२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसिद्धम्।[1] तत्र संशयः। किं यज्ञादीनां द्विः प्रयोग उत सकृदिति। तत्र प्रयोजनभेदात् प्रयोगभेदः। इति पूर्वपक्षः।

तथापि काम्य का अनुष्ठान करने के लिए इच्छा करने वाला कर्त्ता नित्य को नहीं छोड़ सकता है। अतः कर्त्ता और काल इन दोनों के ऐक्यसे नित्य और काम्य के दो रूप का प्रयोग संभव नहीं है। किन्तु इसमें कोई दोष नहीं है।

विविदिषाधिकरणन्याय से एक वार अनुष्ठित होने से दो प्रयोग सिद्ध होते हैं। इस अधिकरण का दो संग्राहक श्लोक हैं—यथा

विद्या के लिए और आश्रम के लिए दो बार प्रयोग होता है या एकबार? इस प्रकार संशय आता है। प्रयोजन का भेद के कारण प्रयोग का भेद होता है। जैसे श्राद्ध के लिये भोजन करने से तृप्ति मिलती है, इस प्रकार विद्या के लिए आश्रम निश्चित होता है। अत एव अनित्य और नित्य विषयक वचन की प्राप्ति से खादिर का निर्णय होता है।

इसका आशय यह हैं। वेदानुवचन के द्वारा ब्राह्मण लोग इसको (ब्रह्म) जानने के लिए चाहते हैं। यज्ञ, दान, तप और अनाशक के द्वारा इस श्रुतिवाक्य से परमात्मविद्या में यज्ञों का विधान हुआ है। सब श्रुति और स्मृतियों में यज्ञ गृहस्थाश्रम का धर्म है, ऐसी प्रसिद्धि है। वहाँ संशय है कि यज्ञों का प्रयोग दो बार होता है या एक बार। वहाँ प्रयोजन का भेद से प्रयोग का भेद होता है। इस प्रकार पूर्वपक्ष का मत है।

निमन्त्रितेन ब्राह्मणेन क्रियमाणस्य भोजनस्य द्वे प्रयोजने, अन्यकर्तृकश्राद्धनिष्पत्तिः स्वतृप्तिश्च। न च द्विर्भुज्यते। तद्वद ब्रह्म-

---

१. अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत् (छान्दोग्योपनिषत् ८।५।१) इति यदादय आश्रमधर्माः किं च सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि (कठोपनिषत् २।१५) इत्यत्रापि ध्येयम्। शारीरिके तु विषयोऽयं विचारितः। यथा तत्र 'तमेतं ...... विविदिषन्ति' इत्यादिना आश्रमकर्मणां विद्यासाधनत्वेन विहितत्वाद् विद्यामनिच्छतः फलान्तरं कामयमानस्य नित्यान्यननुष्ठेयानि। अथ तस्याप्यनुष्ठेयानि न तर्ह्येषां विद्यासाधनत्वं नित्यानित्यसंयोगविरोधादिति। अस्यां प्राप्तौ पठति—आश्रममात्रनिष्ठस्याप्यमुमुक्षोः कर्त्तव्यान्येव नित्यानि कर्माणि 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति।' इत्यादिना विहितत्वात्॥ इति ब्रह्मसूत्रशङ्करभाष्यम् (३।४।८।३२)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विद्यार्थमनुष्ठितेन यज्ञादिकर्मणा प्रयोजनद्वयं सिद्ध्यति । न च नित्यानित्यसंयोगविरोधः खादिरवद्वाक्यद्वयेन तदुपपत्तेः । तच्च पूर्वमुपपादितम् । तस्मात् सकृदेव प्रयोग इति । एवमत्रापि सकृदेवोपवासं कुर्वतः काम्यप्रयोगो नित्यप्रयोगश्चेत्युभयं सिद्ध्यति ।

ननु सकृदनुष्ठानेनानेकार्थसिद्धिर्द्वेधा भवति । तन्त्रेण वा प्रसंगेन वा । तद्यथा—दर्शपूर्णमासयोः षण्णां प्रधानयागानां मध्ये त्रयाणां त्रयाणां सकृत्सकृदनुष्ठितेन प्रयाजाद्यङ्गेनोपकारः सिद्ध्यति । तदिदं तन्त्रम्[२] । पश्वर्थमनुष्ठितेन प्रयाजादिना पशुतन्त्रमध्यपातिनः पशुपुरोडाशस्याप्युपकारः सिद्ध्यति । सोऽयं प्रसङ्गः[३] । एवं सति प्रकृतेऽपि तन्त्रप्रसङ्गयोः कतरस्योपादानमिति चेत् । प्रसङ्गस्येति ब्रूमः । काम्यप्रयोगेणैव नित्यप्रयोगस्यापि सिद्धत्वात् । तथा च स्मृतिः –

---

१. खादिरो यूपो भवति इत्येकं वाक्यम्, खादिरं वीर्यकामस्य यूप कुर्वीत इत्यपरं वाक्यम् ।

२. दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत स्वर्गकाम इति विधिवाक्येन प्राप्तयोरिष्ट्योः षट् प्रधानयागा भवन्ति । तत्र षट्सु प्रधानेषु दर्शे त्रयः पौर्णमासे च त्रयोऽनुष्ठीयन्ते । यदाऽग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति" (तै० सं० २।६।३) इति वाक्येन अग्निदेवताकोऽष्टाकपालद्रव्यको यागोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां च उभयत्र सामान्येन प्राप्तः । इन्द्रदेवताकः पयोद्रव्यको यागः इन्द्रदेवताको दधिद्रव्यको यागश्चेतिद्वयं दर्शे प्राप्तम् । आग्नेयोऽग्नीषोमीयश्चेति यागद्वयं पौर्णमास्यां प्राप्तम् । एवं प्रकारेण षट्यागाः दलद्वयेन विभक्ताः सन्तः दर्शे पूर्णिमायां चानुष्ठीयन्ते । दर्शपूर्णमासयोः अङ्गयागत्वेन "प्रयाजानुयाजाभ्यां यजेत" इति वाक्येन प्रयाजोऽनुयाजश्चेति यागद्वयं प्राप्तम् । प्रत्येकं दले त्रिषु प्रधानेषु वर्त्तमानेष्वपि प्रतिप्रधानमङ्गत्वेन प्रयाजो नानुष्ठीयते किन्तु त्रयाणां कृते प्रयाजाख्याङ्गयागस्य सकृदनुष्ठानं भवति । सकृदनुष्ठानेन प्रयाजस्त्रीन् यागानुपकरोति । प्रयाजस्यायमनुष्ठानप्रकारस्तन्त्रमिति उच्यते । तदर्थमुक्तं—"तन्त्रं तत्र यत्र सकृत् कृतं सर्वेषामुपकरोति" इति तन्त्ररत्ने १२।२।७।२४

३. "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" (तै० सं० ६ १।११।६) इति वाक्येन अग्नेः सोमस्य च उद्देश्येन पशुरालभ्यते । पौर्णमासे अनुष्ठीयमानेषु त्रिषु यागेषु गणोऽयमन्यतमः । प्रयाजो इत्यङ्गत्वेनानुष्ठीयते । अग्नीषोमीयपशुयागस्य पशुपुरोडाशनिर्माणार्थं किञ्चित् अङ्गं कर्मानुष्ठीयते । प्रयाजानुष्ठा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निमन्त्रित ब्राह्मण के जरिये होनेवाला भोजन का दो प्रयोजन है। यथा—दूसरा कर्त्ता ने अनुष्ठेय श्राद्ध की निष्पत्ति और भोजन करने वाला ब्राह्मण की तृप्ति। किन्तु इन दो प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिए दो बार भोजन नहीं किया जाता है। इस प्रकार ब्रह्मविद्या के लिए अनुष्ठित यज्ञादि कर्मों से दो प्रयोजनों की सिद्धि होती है। किन्तु नित्य और काम्यवचनों में कोई विरोध नहीं है। क्योंकि खादिर वाक्य की तरह दोनों वाक्यों की उपपत्ति होती है। इसके बारे में पहले कहा गया है। इसलिए एकबार प्रयोग होता हे। इस प्रकार वहां भी उपवास एकबार करने से काम्य प्रयोग और नित्य प्रयोग इन दोनों की सिद्धि होती है।

यहां प्रश्न होता है कि एक बार अनुष्ठान से अनेकों की सिद्धि दो प्रकार होती हैं। तन्त्र के अनुसार अथवा प्रसङ्ग के अनुसार। यथा—दर्श और पौर्णमास इन दो यागों में छ प्रधान याग हैं। उनमें तीन यागों का एकबार अनुष्टान होने से प्रयाज प्रभृति अङ्गों के द्वारा उपकार होता है। वहाँ तन्त्र होता है। पशुयाग के लिये अनुष्ठित प्रयाजों के द्वारा पशुयागों के बीच में तन्त्र में आनेवाला पशुपुरोडाश का उपकार होने से वहां प्रसंग होता है। इस प्रकार होने से इस प्रकरण में तन्त्र या प्रसंगों में किसका उपादान होता है? इस प्रकार प्रश्नहोने पर प्रसंग का होता है ऐसा उत्तर में कहा जाता है। क्यौंकि काम्य प्रयोग में नित्य प्रयोग सिद्ध होता है। इसलिये स्मृति में कहा है—

काम्येऽपि नित्यसिद्धिः स्यात् प्रसङ्गेनोभयात्मकः'॥ इति।

तदेवमेकादश्युपवासस्य नित्यत्वकाम्यत्वलक्षणद्वैरूप्यविरोधाभावात् द्वैरूप्यमभ्युपेयमिति स्थितम्।

अत्रोपवासाङ्गतिथिनिर्णयस्य वेधाधीनत्वात् प्रथमं दशमीवेधो निरूप्यते। स च वेधस्त्रिविधः। अरुणोदयवेधः सूर्योदयवेधः, पञ्चदशनाडिवेधश्चेति। तत्रारुणोदयवेधो भविष्यत्पुराणे दर्शितः—

नेन अग्नीषोमीये उपकृते तन्मध्यपातिपशुपुरोडाशोऽपि उपक्रियते। एतादृश उपकारः प्रसङ्गसिद्ध इत्युच्यते। तदर्थमुच्यते—"यत्रान्यार्थेनाङ्गेनान्यस्योपकारस्तत्र प्रसङ्ग इति। तन्त्ररतनम १२।२।७।२४

१. नित्यापेक्षया काम्यस्य बलवत्त्वेन कारणमित्थं यत् नित्ये फलाभावतया काम्ये तु फलमूलकतया पार्थक्यात् काम्ये गुणाधिक्यम्। काम्यनित्ययोः स्वरूपतयैक्यं काम्येन नित्यस्य स्वतः सिद्धया प्रसङ्गसिद्धिरित्युच्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते।
सा विद्धैकादशी तत्र पापमूलमुपोषणम् ॥
अरुणोदयवेलायां दिशां गन्धो भवेद्यदि।
दुष्टं तत्र प्रयत्नेन वर्ज्जनीयं नराधिप ॥ इति।

गारुडपुराणेऽपि—

दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥ इति।

अरुणोदयस्य प्रमाणं स्कन्दनारदाभ्यामुक्तम्—

उदयात्प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः ॥ इति।

तस्मिन्नरुणोदयवेधा बहुविधाः। ते तु प्रश्नोत्तराभ्यां [ब्रह्मवैवर्त्ते दर्शिताः—

कीदृशस्तु भवेद्वेधो योगो विप्रेन्द्र कीदृशः।
योगवेधौ ममाचक्ष्व याभ्यां दुष्टमुपोषणम् ॥
चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयनिश्चयः।
चतुष्टयविभागोऽत्र वेधादीनां किलोदितः ॥

काम्य में भी प्रसङ्ग से नित्य की सिद्धि होती है।

इस प्रकार एकादशी के उपवास नित्य और काम्य के लक्षण से अन्वित होने के लिए कोई विरोध नहीं है। इसलिए द्वैरुप्य समझना चाहिए ऐसी स्थिति है।

यहाँ उपवास के अङ्गस्वरूप तिथि का निर्णय वेध का अधीन है। इस लिए पहले दशमी वेध का निरूपण होता है। वह वेध तीन प्रकार है। यथा—अरुणोदय वेध, सूर्योदय वेध और पन्द्रह नाड़ी वेध। अरुणोदय वेध भविष्यत्पुराण में दर्शित किया है—

अरुणोदय समय में यदि दशमी दिखाई पड़ती है तो वह एकादशी विद्धा होती है। उसमें उपवास करना पाप का मूल है। अरुणोदय बेला में दशमी का गन्ध (स्पर्श) अगर है तो हे नराधिप ! प्रयत्न पूर्वक उस दुष्ट काल को वर्जन करना है।

गरुड़पुराण में भी—

दशमी का अवशेष भाग में संयुक्त होकर अगर अरुणोदय होता तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैष्णवों ने उस दिन में एकादशी का उपवास नहीं किया जाता है। अरुणोदय का प्रमाण स्कन्द और नारद पुराण में कहा है—

सूर्योदय से पहले चार नाड़ी तक अरुणोदय काल है। उस समय में अरुणोदय वेध अनेक प्रकार होता है। यह वेध ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में प्रश्नोत्तर के रूप में दर्शित किया है—

हे विप्रश्रेष्ठ ! वेध और योग किस प्रकार होते हैं। योग और वेध को बताइये, जो उपवास के लिए दूषण होते हैं। प्रातः काल में चार घटिका अरुणोदय है। यहां वेधप्रभृतियों का विभाग चार प्रकार हैं।

अरुणोदयवेधः स्यात् सार्धं तु घटिकात्रयम्।
अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासन्दर्शनाद्रवेः॥
महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यतेऽर्को न दृश्यते।
तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये सति॥

अयमर्थः—वेधातिवेधमहावेधयोगाश्चत्वार उपवासस्य दूषकाः। तत्र रवेः प्रभासन्दर्शनात्पूर्वं सार्धं घटिकात्रयमेकादश्या व्याप्तम्। ततः प्राचीने घटिकार्धे अरुणोदयसंबन्धिनि दशमीसद्भावे वेध इत्युच्यते। यदा सूर्यस्य दर्शनात्पूर्वं घटिकाद्वयमुपरितनमेकादशीव्याप्तं पूर्वं तु घटिकाद्वयं दशमीव्याप्तं, तदानीमतिवेध इत्युच्यते। यदा सूर्यस्य दर्शनादर्शनसन्देहकालमेकादशी व्याप्नोति, ततः प्राक् कृत्स्नोऽप्यरुणोदयकालो दशमीव्याप्तः, तदा महावेधः। यदा सूर्योदये स्पष्टे सति पश्चादेकादशी प्रवृत्ता, ततः प्राच्यामुदयवेलायां दशमी विद्यते, तदा योगशब्देनाभिधेयो दोषो भवति। स च वेधाद्यपेक्षया तुरीयो भवतीति।

नन्वरुणोदयात् पूवमर्धरात्रात्परतोऽपि यदि दशमीकला विद्यते तदा नोपवासः कर्त्तव्यः। तदभावे तूपवासः कर्त्तव्यः। तथा च स्मृतिः—

अर्धरात्रात् परा यत्र एकादश्युपलभ्यते।
तत्रोपवासः कर्त्तव्यो न तु वै दशमीकला॥ इति।

अतो यथानिर्दिष्टेभ्योऽन्योऽपि कश्चिद्वेधोऽस्तीति चेत्। मैवम् अर्धरात्रवेधोऽपि यदा वर्ज्यस्तदा वक्तव्यमरुणोदयवेध इति वक्तुमर्धरात्रवेध उपन्यस्तो न तु वेधाभिप्रायेण। तदेव ब्रह्मवैवर्त्ते शौनकेन-स्पष्टीकृतम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीन और आधा घटिका तक अरुणोदय वेध होता है । सूर्य के किरण का दर्शन होने से दो घटिका तक अतिवेध होता है । जहाँ सूर्य दृश्य होते हैं, दृश्य भी नहीं होते हैं, उस अवस्था में महावेध होता है । सूर्योदय होने पर जो चौथा भाग होता है, उसको योग कहते हैं ।

इसका अर्थ यह है—वेध, अतिवेध, महावेध और योग–ये चार उपवास का दूषण हैं । वहाँ सूर्य के किरण का दर्शन होने से पहले साढे तीन घटिका तक एकादशी व्याप्त होती है । इससे पहले साढ़े एक घटिका में अरुणोदय से संबन्धित दशमी रहने से वेध कहा जाता है । जब सूर्य के दर्शन और अदर्शन होनेवाला काल को एकादशी व्याप्त होती है उससे पहले संपूर्ण अरुणोदय काल दशमी से व्याप्त होता है । तब इस प्रकार वेध महावेध होता है । जब सूर्योदय स्पष्ट होने पर बाद में एकादशी प्रवृत्त होती है, उससे पहले उदयकाल में दशमी रहती हैं, तब योगशब्द से अभिधेय दोष रहता है । वह वेध की अपेक्षा चौथा होता है ।

प्रश्न होता है—अरुणोदय से पहले अर्धरात्र से पर भी अगर दशमी की कला रहती है तो उपवास नहीं किया जाता है । उसके अभाव से उपवास किया जाता हैं । स्मृति में कहा है—

"जब अर्धरात के बाद एकादशी मिलती है तब उपवास किया जाता है किन्तु दशमी की कला मिलने से नहीं किया जाता है ।

अतः पूर्व से निर्दिष्ट वेधों से दूसरा कोई वेध है, यह ठीक नहीं है, क्योंकि अर्धरात्र वेध भी जब वर्जनीय है, तब अरुणोदयवेध के विषय में क्या कहा जायगा ? ऐसे कहने के लिए अर्धरात्र वेध का उपन्यास किया है, किन्तु कोई दूसरा वेध के अभिप्राय से नहीं । यह विषय शौनक ने ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में स्पष्ट किया है—

अर्धरात्रे तु केषाञ्चिद्दशम्या वेध इष्यते ।
अरुणोदयवेलायां नावकाशो विचारणे ॥
कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ।
न तन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते ॥ इति ।

य एते वेधातिवेधमहावेधयोगाः पूर्वमभिहितास्तेषु त्रयोऽरुणोदयवेधाश्चतुर्थ उदयवेधः ॥ तत्रोदयवेधं कण्वोऽप्याह—

उदयोपरि विद्धा तु दशम्यैकादशी यदा ।
दानवेभ्य- प्रीणनार्थं दत्तवान् पाकशासनः ॥ इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्मृत्यन्तरेऽपि—

दशम्याः प्रान्तमादाय यदोदेति दिवाकरः ।
तेन स्पृष्टं हरिदिनं दत्तं जम्भासुराय तु ॥ इति ।

पञ्चदशनाडीवेधस्तु स्कन्दपुराणे दर्शितः—

नागो द्वादशनाडीभि र्दिक्पञ्चदशभिस्तथा ।
भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरान्तिथिम् ॥ इति ।

तदेवं वेधत्रयं निरूपितम् । तत्र पञ्चदशनाडीवेधस्य वेधान्तरस्य च विषयव्यवस्था निगमे दर्शिता —

सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य दूषकः ।
सार्धसप्तमुहूर्त्तस्तु वेधोऽयं बाधते व्रतम् ॥ इति ।

सर्वप्रकार इत्यत्र प्रकारशब्देन कलाकाष्टाऽऽदयो वेधातिवेधादयो वा गृह्यन्ते । नात्र तिथ्यन्तरवत् त्रिमुहूर्त्तत्वं वेधेऽपेक्षितम् । किन्तु लवकलार्धादिकमपि पर्याप्तम् । तदुक्तं नारदीये -

लववेधेऽपि विप्रेन्द्र दशम्यैकादशीं त्यजेत् ।
सुराया बिन्दुना स्पृष्टं गङ्गाम्भ इव निर्मलम् ॥ इति ।

अर्धरात्र में दशमी से वेध कुछ आचार्यों के मत से होता है। अरुणोदय में होनेवाला वेध के लिए विचारार्थ अवकाश नहीं है। हरि के प्रिय आचार्यों ने इस प्रकार के वेध को कपालवेध के नाम से कहा है। किन्तु यह मेरा मत नहीं है, क्योंकि रात त्रियामा कही गई है।

ये जो वेध, अतिवेध, महावेध और योग पहले कहे गये हैं, उनमें तीन अरुणोदय वेध हैं। चौथा उदयवेध है। कण्व भी इस उदयवेध के बारे में कहते हैं—

उदय के ऊपर (बाद) अगर दशमी से एकादशी विद्ध होती है, तो पाकशासन अर्थात् इन्द्र ने दानवों की प्रीति के लिए दे दिया है।

दूसरी स्मृति में भी कहा है—दशमी के अन्तिम भाग को लेकर जब सूर्य उदित होते हैं, उससे स्पृष्ट यह हरि का दिन (एकादशी) जम्भासुर के लिए दिया गया है।

पन्द्रह नाड़ी के वेध तो स्कन्दपुराण में दर्शित किया है—नाग (पंचमी) बारह नाड़ियों से दिक् (दशमी) पन्द्रह नाड़ियों से भूत (चतुर्दशी) नाड़ियों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से परवर्त्ती तिथि को दूषित करती है। इस प्रकार तीन प्रकार वेध निरूपित हुआ है। वहां पन्द्रह नाड़ियों से वेध और दूसरे वेधों के बारे में व्यवस्था अर्थात् उपयोग क्षेत्र निगम में कहा है—

सब प्रकार यह वेध उपवास के लिए दूषक है। साढे सात मुहूर्त्त वाला वेध व्रत को बाधा देता है।

सब प्रकार इसमें 'प्रकार' शब्द से कला, काष्ठादि और वेध, अतिवेध प्रभृति गृहीत होते हैं। दूसरी तिथि की तरह यहां तीन मुहूर्त्त तक वेध आवश्यक नहीं है। किन्तु लव, कला, अर्ध प्रभृति परिमाण भी यहाँ पर्याप्त है। नारदीय (पुराण) में कहा है—

हे विप्रेन्द्र! लव वेध में भी दशमी से एकादशी को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि सुरा बिन्दु से स्पृष्ट गंगा के पानी की तरह निर्मल रहता है।

स्कन्दपुराणेऽपि—

कला-काष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी विभो।
एकादश्यां न कर्त्तव्यं व्रतं राजन् कदाचन॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

कलार्धेनापि विद्धा स्याद्दशम्यैकादशी यदि।
तदाप्येकादशीं हित्वा द्वादशीं समुपोषयेत्॥ इति।

सोऽयं कलाकाष्ठादिवेधोऽरुणोदये सूर्योदये च समानः। तत्र अरुणोदयवेधो वैष्णवविषयः। तच्च गारुडपुराणे विस्पष्टमवगम्यते—

दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः।
नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम्॥ इति।

वैखानस—पञ्चरात्रादिवैष्णवागमोक्तदीक्षां प्राप्तो वैष्णवः[1]। अत एव स्कन्दपुराणे वैष्णवस्वरूपमभिहितम्—

परामापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते।
नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षाऽस्ति वैष्णवी॥

---

१. येषां मुखे हरे र्नाम हृदि विष्णुः सनातनः।
उदरे विष्णुनैवेद्य स श्वपाकोऽपि वैष्णवः॥ पद्मपुराणम् ४, १०, ६६
द्विविध वैष्णवं प्रोक्त बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
शङ्खं चक्रादिभि र्बाह्यमान्तरं वीतरागता॥ प० पु० ६. २५२. ७४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समात्मा सर्वजीवेषु निजाचारादविप्लुतः ।
विष्णवर्पिताऽखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते ॥ इति ।

विष्णुपुराणेऽपि[1]—

न चलति निजवर्णधर्मतो यः
सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।
न हरति न च हन्ति कञ्चिदुच्चैः ।
सितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥ इति ।

स्कन्दपुराण में भी—हे विभु ! काष्ठादि गति से एकादशी में यदि दशमी दिखाई पड़ती है, तो हे राजा ! उसमें व्रत नहीं किया जाता है। दूसरी स्मृति में भी—एक कला से भी अगर एकादशी दशमी से विद्ध होती तो तब भी एकादशी को छोड़कर द्वादशी में उपवास किया जाता है। वह कला काष्ठादि के वेध अरुणोदय और सूर्योदय में भी समान है। वहाँ अरुणोदय वेध वैष्णव विषयक होता है। इसके बारे में गरुड़पुराण में स्पष्ट कहा है—

दशमी के अवशेष से संयुक्त होकर यदि अरुणोदय होता है तो उस दिन में वैष्णवों ने एकादशी के लिए व्रत नहीं किया जाता है। वैखानस, पंचरात्र प्रभृति वैष्णव शास्त्रोक्त दीक्षा प्राप्त वैष्णव कहा जाता है। अत एव स्कन्दपुराण में वैष्णव का स्वरूप अभिहित किया है। परम विपद में और हर्ष के समय उपस्थित होने पर जो वैष्णव दीक्षा को लेकर भी एकादशी को नहीं छोड़ता है, सब जीवों के उपर जिसका समान विचार, अपना आचार से जो भ्रष्ट नहीं होता है, विष्णु के उद्देश्य में जिसका आचार उत्सृष्ट है, उसको वैष्णव कहते हैं।

विष्णुपुराण में भी—अपने कर्म-धर्म से जो विचलित नहीं होता है, शत्रु और मित्रों के पक्षों में जो समान है, जो हरण नहीं करता है, या उच्च स्थान में रहकर भी जो हत्या नहीं करता है, इस प्रकार निर्मलमना को तुम विष्णु भक्त के रूप में जानो।

यथोक्तगुणसंपन्नो वैष्णवदीक्षां प्राप्तो यः, तं प्रति तिथिरेवं निर्णेतव्या। एकादशी द्विविधा, अरुणोदयवेधवती शुद्धा चेति। तत्र वेधवती सर्वथा त्याज्या। "तद्दिनैकादशी व्रतम्" इति गारुडपुराणे सामान्येन

१. विष्णुपुराणम् ३।७।२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिषेधात्। विशेषतस्तु संपृक्तादिभेदेन प्रतिषेधो द्रष्टव्यः। य एते वेधातिवेधमहावेधयोगाख्या दोषाः पूर्वमुक्ताः, तेषु सत्स्वेकादशी संपृक्तसन्दिग्धसंयुक्तसंकीर्णनामभि र्व्यवह्रियते।

अरुणोदयस्य प्रथमघटिकायां दशमीसद्भावो वेध इत्युक्तः। स च द्विविधः, घटिकाप्रारम्भे कृत्स्नघटिकायां च दशमीवृत्तिभेदात्। तत्र, प्रारंभमात्रे दशमीयुक्तैकादशी संपृक्तेत्युच्यते। कृत्स्नघटिकावृत्तिदशमीयुक्तैकादशी सन्दिग्धा। अरुणोदयप्रथममुहूर्त्तदशमीव्याप्तिरतिवेधः, तदुपेतैकादशी संयुक्तेत्युच्यते। सूर्यमण्डलदर्शनसन्देहवेलायां दशमीसद्भावो महावेधः, तद्युक्तैकादशी सङ्कीर्णेत्युच्यते। ता एताः संपृक्तादयश्चतस्रोऽपि त्याज्याः। तथा च गोभिलः—

अरुणोदयवेलायां दशमी यदि सङ्गता।
संपृक्तैकादशीं तान्तु मोहिन्यै दत्तवान्प्रभुः॥ इति।

इस प्रकार गुणों से युक्त जो वैष्णव दीक्षा प्राप्त है, उसके लिए तिथि का निर्णय इस प्रकार होता है। एकादशी दो प्रकार होती है, अरुणोदय वेध वाली और शुद्धा। वहाँ वेध वाली सर्वथा वर्जनीय है। "उस दिन में एकादशी व्रत नहीं किया जाता है" इस प्रकार गरुड़ पुराण में सामान्य रूप से प्रतिषेध किया है। विशेषतः संपृक्त भेदों मे प्रतिषेध द्रष्टव्य है। ये जो वेध, अतिवेध, महावेध और याग इन नामों से ख्यात दोष पहले कहे हैं, उसमें एकादशी संपृक्त, सन्दिग्ध, संयुक्त और संकीर्ण इन नामों के रूप में व्यवहृत होती है।

अरुणोदय की पहली घटिका में दशमी का सद्भाव हो वेध है ऐसा कहा है। वह दो प्रकार है। घटिका के प्रारंभ में और संपूर्ण घटिका में भी दशमी की अवस्थिति से दो प्रकार है। प्रारम्भ मात्र में दशमी से युक्त एकादशी संपृक्ता है। संपूर्ण घटिका में अवस्थित दशमी से युक्त एकादशी सन्दिग्धा हैं। अरुणोदय के पहला मुहूर्त्त में दशमी की प्राप्ति अतिवेध है। उस समय से युक्त एकादशी संयुक्त होती है। सूर्यमण्डल के दर्शन जब सन्देहापन्न होता है। उस समय में दशमी का सद्भाव मे महावेध होता है। उस समय से युक्त एकादशी संकीर्ण होती है। ये सब संपृक्त प्रभृति चार त्याज्य हैं। इसलिए गोभिल ने कहा है—

अरुणोदय वेला में दशमी के साथ रहनेवाली एकादशी संपृक्त होती है। ऐसी एकादशी प्रभु (भगवान) ने मोहिनी को दी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गारुडपुराणे—

उदयात्प्राक् त्रिघटिका व्यापिन्येकादशी यदा।
सन्दिग्धैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मकाङ्क्षिभिः॥
उदयात्प्राक् मुहूर्त्तेन व्यापिन्येकादशी यदा।
संयुक्तैकादशी नाम वर्जयेद्धर्मवृद्धये॥
आदित्योदयवेलाया आरभ्य षष्ठिनाडिका।
सङ्कीर्णैकादशी नाम त्याज्या धर्मफलेप्सुभिः॥
पुत्रपौत्रप्रवृद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपवासयेत्।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्॥ इति।

यद्यपि पूर्वत्र वेधवाक्ये "सार्धं तु घटिकात्रयम्" इत्युक्तम्, अत्र तु सन्दिग्धैकादशीवाक्ये "त्रिघटिका" इत्युक्तम्। तथापि नैतावता वैषम्येण विरोधः शङ्कनीयः। शास्त्रद्वयस्यापि दशमीवेधत्यागपरत्वात्।

तदेवं सामान्यविशेषाभ्यां प्रतिषिद्धत्वादरुणोदयविद्धैकादशी वैष्णवेन परित्याज्या। यस्तु योगसंज्ञकश्चतुर्थो वेधस्तस्य त्याज्यत्व मर्थात्[1] सिद्धम्। अरुणोदयवेधोऽपि यदा त्यज्यते, तदा किमु वक्तव्यं सूर्योदयवेध इति। वचनं त्वत्र कण्वप्रोक्तं पूर्वमेवोदाहृतम्।

गरुड़पुराण में भी कहा है—

उदय से पहली तीन घटिका को जब एकादशी व्याप्त होती है, वह सन्दिग्धा नाम से ख्यात है। धर्म की आकांक्षा करने वाले लोगों से वह छोड़ दी जाती है। उदय से पहली घटिका को व्याप्त होनेवाली संयुक्तानाम से ख्यात है। धर्म वृद्धि के लिए वह परित्याज्य है। आदित्य की उदय वेला से लेकर जो साठ नाड़ी तक व्याप्त होकर रहती है, वह संकीर्णा नाम से ख्यात है। धर्मफल का दर्शन करने के लिए आग्रही लोग के जरिये वह छोड़ दी जातीहै। पुत्र, पौत्र और वृद्धि के लिए द्वादशी में (द्वादशीयुक्त एकादशी में) उववास करते हैं। उसमें सौ क्रतुओं (याग) का पुण्य लाभ होता है। त्रयोदशी में पारण होता है।

यद्यपि पूर्वत्र वेध वाक्य में "साढ़े तीन घटिका" ऐसा कहा है, यहाँ तो संदिग्धा एकादशी वाक्य में "तीन घटिका" ऐसा कहा है। तथापि इतना वैषम्य से होनेवाला विरोध के बारे में शंका नहीं होनी चाहिए। क्योंकि दोनों ही शास्त्र वचन दशमी वेध को त्याग करने के लिए ही कहते हैं।

---

१. अर्थात् नाम अर्थापत्त्या।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार सामान्य और विशेष रूप से प्रतिषिद्ध होने पर अरुणोदय से विद्धा एकादशी वैष्णव जन से छोड़ दी जाती है। इसलिए योग नामक जो चौथा वेध है वह अर्थतः परित्याज्य होता है। अरुणोदय वेध भी जब छोड़ दिया जाता है, तब सूर्योदय वेध के बारे में क्या कहा जायगा। इसलिए समर्थक वचन के रूप में कण्व का वचन बहुत पहले उदाहृत किया है।

या तु चतुर्विधवधरहिता शुद्धैकादशी सा द्विविधा। आधिक्येन युक्ता तद्रहिता चेति। आधिक्यं च त्रिविधम्, एकादश्याधिक्यं, द्वादश्याधिक्यम्, उभयाधिक्यं चेति। त्रिष्वप्येतेषु पक्षेष्वरुणोदय-मारभ्य प्रवृत्तां शुद्धामप्येकादशीं परित्यज्य परेद्युरुपवासः कर्त्तव्यः। तत्रैकादश्याधिक्ये नारद आह—

संपूर्णैकादशी यत्र द्वादश्यां वृद्धिगामिनी।
द्वादश्यां लंघनं कार्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

एकादशी यदा पूर्णा परतः पुनरेव सा।
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम्॥ इति।

विष्णुरहस्येऽपि—

एकादशी कला प्राप्ता येन द्वादश्युपोषिता।
तुल्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम्॥ इति।

द्वादश्याधिक्ये व्यास आह—

एकादशी यदा लुप्ता परतो द्वादशी भवेत्।
उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमां गतिम्॥ इति।

चार प्रकार के वेध से रहित जो शुद्धा एकादशी है वह दो प्रकार होती है। यथा—अधिकता से युक्त और अधिकता से रहित। आधिक्य तीन प्रकार है। यथा—एकादशी का आधिक्य, द्वादशी का आधिक्य और उभयों का आधिक्य। तीन प्रकार पक्षों में अरुणोदय से लेकर प्रवृत्त शुद्धा एकादशी को भी छोड़कर परदिन में उपवास करणीय है। इस प्रकार एकादशी के आधिक्य के बारे में नारद ने कहा है—

जब संपूर्ण एकादशी की द्वादशी में वृद्धि होती है, तब द्वादशी को लंघन करके त्रयोदशी में पारण किया जाता है। दूसरी स्मृति में भी—

जब एकादशी पूर्णा होकर परदिन में फिर रहती है, तब सौ क्रतुओं (याग) का पुण्य यहां कहा है। त्रयोदशी में पारण होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विष्णुरहस्य में भी—एकादशी की कला को प्राप्त होकर जिसके द्वारा द्वादशी में उपवास किया जाता है तो सौ क्रतु की तरह यह उपवास होता है। त्रयोदशी में पारण होता है। द्वादशी का आधिक्य के बारे में व्यास ने कहा है—

जब एकादशी लुप्त होती है, परदिन में द्वादशी रहती है, तब द्वादशी में उपवास किया जाता है अगर परम गति को लाभ करने के लिए इच्छा है।

उभयाधिक्ये भृगुराह—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
तत्रोपोष्या द्वितीया तु परतो द्वादशी यदि ॥ इति।

नारदोऽपि—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि ॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

एकादशी भवेत्पूर्णा परतो द्वादशी यदि।
एकादशीं परित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत् ॥ इति।

उभयाधिक्यरहितायां तु शुद्धायां न कोऽपि सन्देहोऽस्ति।

इति वैष्णवदीक्षायुक्तानामेकादशी निर्णीता ॥

उभयों का आधिक्य के बारे में भृगु ने कहा है—

जब एकादशी संपूर्ण रूप से रहकर फिर प्रभात में भी रहती है, तब उस दिन में उपवास किया जाता है अगर परदिन में द्वादशी है।

नारद ने भी—जब एकादशी संपूर्ण रूप से रहकर, फिर प्रभात में रहती हैं, तब सभी लोगों के जरिये उत्तर दिन में उपवास किया जाता है अगर परदिन में द्वादशी है।

दूसरी स्मृति में भी—एकादशी यदि पूर्ण रहती और परदिन में द्वादशी रहती है तो एकादशी को छोड़कर द्वादशी में उपवास किया जाता है।

जिस शुद्धा में उभयों का आधिक्य नहीं है, उस पर कोई सन्देह नहीं है।

इस प्रकार वैष्णव दीक्षा से युक्त लोग के लिए
एकादशी का निर्णय हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ श्रौत-स्मार्त्त-पर्यवसितानां पञ्चरात्रादि-दीक्षारहितानामेकादशी निर्णीयते

अरूणोदयवेधस्य वैष्णवविषयत्वे व्यवस्थिते सत्युदयवेधः स्मार्त्तानुष्ठायिविषयत्वेन परिशिष्यते। अत एव स्मर्य्यते—

अतिवेधा महावेधा ये वेधास्तिथिषु स्मृताः।
सर्वेऽप्यवेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदये मतः॥ इति।

एवं च सूर्योदयवेधमपेक्ष्यैकादशी द्विधा भिद्यते। शुद्धा विद्धा चेति। तत्र शुद्धायां पूर्ववच्चत्वारो भेदा भवन्ति, एकादश्याधिक्यं, द्वादश्याधिक्यम्, उभयाधिक्यम्, अनुभयाधिक्यञ्चेति। एवं विद्धायामपि चत्वारो भेदा उन्नेयाः। शुद्धायामेकादश्याधिक्ये द्वयोस्तिथ्योरुपवासयोग्यतामाह वृद्धवसिष्ठः—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
लुप्यते द्वादशी तस्मिन्नुपवासः कथं भवेत्॥
उपोष्ये द्वे तिथी तत्र विष्णुप्रीणनतत्परैः॥ इति।

उभयोरधिकारिभेदेन व्यवस्था स्कन्दपुराणे दर्शिता—

प्रथमेऽहनि संपूर्णा व्याप्याहोरात्रसंयुता।
द्वादश्याञ्च तथा तात दृश्यते पुनरेव च।
पूर्वा कार्या गृहस्थैस्तु यतिभिश्चोत्तरा तिथिः॥ इति।

एतच्च परेद्यु द्वादश्यभावविषयम्। तथा च स्मृत्यन्तरे—

पुनः प्रभातसमये घटिकैका यदा भवेत्।
अत्रोपवासो विहितश्चतुर्थाश्रमवासिनाम्॥
विधवायाश्च तत्रैव परतो द्वादशी न चेत्॥ इति।

यहां से पंचरात्र प्रभृति दीक्षा से रहित श्रौत और स्मार्त्त रीति में रहनेवाले लोगों के लिए एकादशी का निर्णय होता है।

अरुणोदय वेध वैष्णव विषय के रूप में व्यवस्थित हो जाने से उदयवेध स्मार्त्तों का अनुष्ठान के लिए रह जाता है। इसलिये स्मरण किया जाता है—

अतिवेध, महावेध या जो कोई वेध तिथियों के बारे में स्मरण किया जाता है, यहाँ सब प्रकार वेध अवेध या निरर्थक होता है, क्योंकि सूर्योदय समय में होनेवाला वेध ही वेध होता है। फिर भी सूर्योदय वेध को आश्रय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर एकादशी दो प्रकार होती है। यथा शुद्धा और विद्धा। पूर्वोक्त प्रकार शुद्धा में चार भेद होते हैं। यथा—एकादशी का आधिक्य, द्वादशी का आधिक्य, दोनों का आधिक्य और दोनों का आधिक्याभाव। इस प्रकार विद्धा में भी चार भेदों का अवगम होना चाहिये। शुद्धा में एकादशी का आधिक्य होने पर दोनों ही तिथियों की योग्यता उपवास के लिये वृद्धवसिष्ठ ने कही है—

जिस दिन में संपूर्ण रूप से एकादशी रहकर और परदिन के प्रभात में भी रहती है, तो इस दिन में द्वादशी का लोप होता हैं, इसलिये उपवास कैसे निर्णीत होता है। यहाँ दो तिथियों को ग्रहण कर विष्णु को सन्तुष्ट करने वाले लोग उपवास कर सकते हैं, स्कन्दपुराण में अधिकारी भेद से दोनों की व्यवस्था कही गयी है—संपूर्ण अहोरात्र से व्याप्त एकादशी पहला दिन में रहकर फिर द्वादशी में अगर दिखाई पड़ती तो पूर्वदिन में गृहस्थ और परदिन में यति लोग उपवास करते हैं। परदिन में द्वादशी का अभाव विषय में यह प्रसङ्ग आता है। भिन्न स्मृति में कहा है—

जब प्रभात समय में एक ही घटिका अगर एकादशी रहती है, तो चतुर्थाश्रमवासियों अर्थात् सन्यासियों और विधवा के लिये उपवास यहाँ विहित है।

गारुडपुराणेऽपि—

पुनः प्रभातसमये घटिकैका यदा भवेत्।
अत्रोपवासो विहितो वनस्थस्य यतेस्तथा॥
विधवायाश्च तत्रैव परतो द्वादशी न चेत्॥ इति।

पुराणान्तरेऽपि—

एकादशी यदा पूर्णा परतः पुनरेव सा।
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम्॥ इति।

एवमेकादश्याधिक्यपक्षे गृहियत्यो र्व्यवस्थाऽभिहिता। द्वादश्याधिक्ये पूर्वेद्यु रुपवासमाह नारदः—

न चेदेकादशी विष्णौ द्वादशी परतः स्थिता।
उपोष्यैकादशी तत्र यदीच्छेत्परमं पदम्॥ इति।

स्कान्देऽपि—

शुद्धा यदा समा हीना समक्षीणाधिकोत्तरा।
एकादश्यामुपवसेन्न शुद्धां वैष्णवीमपि॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दशमीवेधरहिता शुक्लैकादशी यदा परेद्युरुदयादूर्ध्वं नास्ति किन्तूदयसमा ततो न्यूना वा द्वयोरपि पक्षयो र्द्वादशी परेद्युरुदये समा न्यूनाऽधिका वा भवति तत्र सर्वत्र शुद्धैकादशी उपोष्या न त्वविद्धां वैष्णवीं द्वादशीमुपवसेदित्यर्थः। एवञ्च सति प्रकृते द्वादश्याधिक्येऽपि एकादशीसमन्यूनयोरन्यतरत्वात् प्रथमैवोपोष्येत्युक्तं भवति। उभयाधिक्ये परेद्युरुपवासो गारुडपुराणे दर्शितः—

गरुडपुराण में भी—

फिर प्रभात काल में जब एक घटिका एकादशी रहती है, वहां वानप्रस्थी और यति के जरिये उपवास किया जाता है। विधवा की भी इसी प्रकार एकादशी होती है अगर परदिन में द्वादशी हो। दूसरे पुराणों में भी–एकादशी जब पूर्णरूप से रहती है और परदिन में भी रहती है तो, इस स्थल में सौ क्रतुओं का फल कहा गया है और त्रयोदशी में पारण होता है। इस प्रकार एकादशी का आधिक्यपक्ष में गृही और यतियों की व्यवस्था कही गयी है। द्वादशी का आधिक्य होने पर पूर्वदिन में उपवास करने के लिये नारद ने कहा है—

यदि एकादशी नहीं रहती और परदिन में द्वादशी रहती है, इस स्थल में एकादशी का उपवास किया जाता है अगर परम पद को लाभ करने के लिये इच्छा है। स्कन्द (पुराण) में भी—

जब शुद्धा समान या हीना या समानरूप से क्षीण या अधिक उत्तर में रहती है तो इस अवकाश में एकादशी का उपवास किया जाता है। किन्तु शुद्धा भी वैष्णवों के जरिये नहीं की जाती है।

दशमी वेध से रहित शुक्ल एकादशी जब परदिन के उदय से ऊर्ध्व नहीं रहती है, किन्तु उदय तक रहती या न्यून रहती, इन दोनों पक्षों में द्वादशी परदिन के उदय में समान (उदय तक) या न्यूनाधिक रहती है तो इन सब स्थलों में शुद्धा एकादशी की जाती है, किन्तु अविद्धा वैष्णवी एकादशी में उपवास नहीं किया जाता है ऐसा अर्थ मिलता है। ऐसे होने पर इस प्रकरण में द्वादशी का आधिक्य में भी एकादशी समान और न्यून, इन दोनों में एक रहने पर पूर्वदिन में उपवास किया जाता है। उभयाधिक्य स्थल में परदिन उपवास करने के लिये गरुडपुराण में दर्शित किया है—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।
तत्रोपोष्या परा पुण्या परतो द्वादशी यदि ॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वराहपुराणेऽपि--

एकादशी विष्णुना चेत् द्वादशी परतः स्थिता ।
उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमं पदम् ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि--

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।
वैष्णवी चेत् त्रयोदश्यां घटिकैकाऽपि दृश्यते ॥
गृहस्थोऽपि परां कुर्यात् पूर्वान्नोपवसेत् सदा ।
पूर्णाप्येकादशी त्याज्या वर्धते द्वितयं यदि ॥ इति ।

एवमेकैकाधिक्ये द्वितयाधिक्येऽपि निर्णयो दर्शितः । अनुभयाधिक्ये तु नास्ति सन्देहः । इति शुद्धायाश्चत्वारो भेदा व्यवस्थिताः । अथ विद्धायाश्चत्वारो भेदा व्यवस्थाप्यन्ते । तत्राप्येकादश्याधिक्ये पूर्ववत् गृहियत्योर्व्यवस्था द्रष्टव्या । तदाह प्रचेताः—

एकादशी विवृद्धा चेच्छुक्ले कृष्णे विशेषतः ।
उत्तरान्तु यतिः कुर्यात् पूर्वामुपवसेद् गृही ॥ इति ।

न चैतद् वाक्यं शुद्धाधिक्ये चरितार्थमिति शङ्कनीयम् । बाधकाभावेन विद्धाधिक्येऽपि तद्वचनप्रवृत्तेर्निवारयितुमशक्यत्वात् । द्वादश्याधिक्ये परेद्युरुपपासः । तदाह व्यासः--

एकादशी यदा लुप्ता परतो द्वादशी भवेत् ।
उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥ इति ।

जिस स्थल में संपूर्ण रूप से एकादशी रहकर परदिन के प्रभात में फिर रहती है, उस स्थल में परदिन में द्वादशी रहने से उपवास किया जाता है। वराह पुराण में भी—विष्णु के साथ युक्त एकादशी यदि रहती है और परदिन में द्वादशी रहती है, तो द्वादशी में उपवास किया जाता है अगर परमपद लाभ करने के लिये इच्छा है। दूसरी स्मृति में भी—

संपूर्ण एकादशी जब प्रभात में फिर रहती है, वह अगर वैष्णवी है और त्रयोदशी में एक घटिका भी दृश्य है तो गृहस्थ के जरिये भी परदिन में उपवास किया जाता है, पूर्वदिन में उपवास नहीं किया जाता है। पूर्णा एकादशी होने पर भी परित्याज्य है अगर दोनों की वृद्धि हो।

इस प्रकार एक एक का आधिक्य से दोनों का आधिक्य होने पर भी निर्णय दर्शित किया गया है। जब उभयों का आधिक्य नहीं है, उसमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सन्देह नहीं है। इस प्रकार शुद्धा में चार भेदों की व्यवस्था हुई। जब विद्धा का भी चार भेदों की व्यवस्था होगी वहाँ भी एकादशी का आधिक्य में भी पूर्ववत् गृही और यतिओं की तरह होती है। इसके बारे में प्रचेता ने कहा है—

विशेषतः शुक्ल और कृष्ण पक्ष में एकादशी अगर बढ़ती है तो परदिन में यति द्वारा और पूर्वदिन में गृही–गृहस्थ के जरिये उपवास किया जाता है।

यह वाक्य शुद्धाधिका में चरितार्थ होता है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। बाधक का अभाव से विद्धाधिका में भी उस वचन की प्रवृत्ति होने पर उसका निवारण नहीं किया जा सकता है। द्वादशी का आधिक्य में परदिन में उपवास किया जाता है। इस विषय के बारे में व्यास ने कहा है—

जब एकादशी लुप्त होती है तथा परदिन में द्वादशी रहती है, तो उस स्थल में द्वादशी में उपवास किया जाता है अगर परम गति को लाभ करने के लिये इच्छा है।

लुप्ता, आदौ दशमीमिश्रत्वात्परतो वृद्ध्यभावाच्च क्षयं गतेति यावत्। उभयाधिक्येऽपि परेद्युरुपवासः। तदुक्तं भविष्यत्पुराणे--

एकादशीं दिशा युक्तां वर्धमाने विवर्जयेत्।
क्षयमार्गस्थिते सोमे कुर्वीत दशमीयुताम्॥ इति।

उभयान्नाधिक्ये तु नैवास्ति सन्देहः कोट्यन्तराभावात्। न च विद्धत्वादस्ति सन्देहः इति वाच्यम्। असति कोट्यन्तरे विद्धाया अप्युपादेयत्वात्। तथा च विष्णुरहस्यम्--

एकादशी भवेत् काचित् दशम्या दूषिता तिथिः
वृद्धिपक्षे भवेद्दोषः क्षयपक्षे तु पुण्यदा ॥ इति।

इति विद्धाभेदा व्यवस्थापिताः। अत्र शुद्धाविद्धयोरुभयोरप्येष निर्णयसङ्ग्रहः। एकादशी–द्वादश्योरुभयोरपि वृद्धौ परेद्युरुपवासः। द्वयोरप्यवृद्धौ पूर्वेद्युः। एकादशीमात्रवृद्धौ गृहियत्यो र्व्यवस्था। द्वादशीमात्रवृद्धौ शुद्धायां सर्वेषां पूर्वेद्युर्विद्धायां परेद्युरिति।

तदेवं शास्त्रार्थे व्यवस्थिते यानि यावन्ति मुनिवाक्यानि विधायकानि निषेधकानि वा तानि सर्वाणि यथोक्तनिर्णयाविरोधेन व्यवस्थापनीयानि। तत्र व्यवस्थापनप्रकारं दर्शयामः। स्कान्दे--

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिपत्प्रभृतयः सर्वा उदयादोदयाद्रवेः।
संपूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः ॥ इति।

जिस स्थल में पहले दशमी से मिश्रित होने पर पर दिन में वृद्धि के अभाव से एकादशी का क्षय होता है, उस स्थल में एकादशी लुप्त होती है। उभयाधिक्य में भी पर दिन में उपवास किया जाता है। यह विषय भविष्यत्पुराण में कहा है—

दशमी के साथ युक्त होकर एकादशी की वृद्धि होने पर वर्जित होती है। यदि क्षय मार्ग में है, तो दशमी युक्त एकादशी करनी चाहिये। उभयों का आधिक्य न होने पर सन्देह नहीं है क्योंकि यहाँ कोई दूसरी कोटि नहीं हैं। विद्धा होने पर सन्देह नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। दूसरी कोटि के अभाव होने पर विद्धा भी उपादेय होती है। इसलिये विष्णुरहस्य में कहा है—

कभी एकादशी दशमी से युक्त होकर दूषित हो जाती है। वृद्धि होने पर दोष है, किन्तु क्षय होने पर पुण्य देनेवाली है।

इस प्रकार विद्धा के भेद व्यवस्थापित किया गया। यहाँ शुद्धा और विद्धा इन दोनों का यह निर्णय संगृहीत हुआ। एकादशी और द्वादशी इन दोनों की भी वृद्धि होने पर परदिन में उपवास किया जाता है। दोनों की वृद्धि के अभाव स्थल में पूर्वदिन में उपवास किया जाता है। केवल एकादशी की वृद्धि होने पर गृही-यति के अनुसार व्यवस्था होती है। द्वादशी की केवल वृद्धि होने पर शुद्धा में सभी के उपवास पूर्वदिन में और विद्धा में परदिन में प्राप्त होता हैं।

इस प्रकार शास्त्रार्थ व्यवस्थित होने पर मुनियों के जो कुछ वाक्य विधायक या निषेधक होते हैं, उन सबको वैसे व्यवस्थित करना चाहिये जैसे उपर्युक्त निर्णय का विरोध नहीं हो। इस व्यवस्थापन का प्रकार हम बताते हैं। स्कन्दपुराण में कहा है—

प्रतिपद प्रभृति से सब तिथियों को उदय से लेकर उदय तक संपूर्णा कहते हैं। किन्तु यह व्यवस्था हरिवासर अर्थात् एकादशी को छोड़कर प्रवर्त्तित होती है।

हरिवासरे तु संपूर्णत्वं प्रकारान्तरेणोक्तं गारुडे—

उदयात्प्राग् यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता।
संपूर्णैकादशी ज्ञेया तत्रैवोपवसेद् गृही ॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भविष्यत्पुराणेऽपि—

आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता ।
एकादशी तु संपूर्णा विद्धाऽन्या परिकल्पिता ॥ इति ।

तदेतद्वचनद्वयमरुणोदयवेधोपजीवनेन प्रवृत्तत्वाद् वैष्णव-विषयम् । दशमीवेध-निन्दकानि तु वचनानि द्विविधान्युपलभ्यन्ते । कानिचिदरुणोदयानुवादेन प्रवृत्तानि, कानिचित्तदनुवादेनेति । तथा भविष्ये—

अरुणोदयकाले च दशमी यदि दृश्यते ।
तत्र नैकादशी कार्या धर्मकामार्थनाशिनी ॥ इति ।

कौत्सः—

अरुणोदयवेलायां विद्धा काचिदुपोषिता ।
तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ इति ।

एतादृशानि सर्वाणि वैष्णवविषयाणि द्रष्टव्यानि । अरुणोदयानुवादमन्तरेण दशमीविद्धानिन्दकानि च कानिचिद् वचनान्युपलभ्यन्ते तद्यथा । नारदः—

दशम्यनुगता यत्र तिथिरेकादशी भवेत् ।
तत्रापत्यविनाशश्च परेत्य नरकं व्रजेत् ॥ इति ।

हरिवासर की संपूर्णता के बारे में दूसरा प्रकार गरुडपुराण में कहा है—हे विप्र, जब उदय से पहले दो मुहूर्त्तों से युक्त एकादशी संपूर्णा होती है। वहीं गृही द्वारा उपवास किया जाता है। भविष्यत्पुराण में भी कहा है—आदित्य अर्थात् सूर्य की उदय बेला से पहले दो मुहूर्त्तों से अन्वित एकादशी संपूर्णा होती है।

दूसरी एकादशी विद्धारूप से परिकल्पित होती है। इन दो वचनों की प्रवृत्ति अरुणोदय को उपजीव्य करके होती है। इसलिये ये वैष्णव विषय में आते हैं। दशमीवेध को निन्दित करनेवाले वचन दो प्रकार मिलते हैं। कुछ अरुणोदय को अनुवाद कर प्रवृत्त होते हैं। कुछ परम्परा से प्रवृत्त होते हैं।

इसलिये भविष्यपुराण में कहा है—अरुणोदय काल में जो दशमी दिखाई पड़ती है, धर्म, अर्थ और काम को नाश करनेवाली यह एकादशी नहीं की जाती है। कौत्सने भी कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरुणोदय वेला में कोई विद्धा एकादशी अगर की जाती तो सौ पुत्रों को नष्ट कर देती है। इसलिये इस एकादशी को छोड़ देनी चाहिये।

इस प्रकार सब वैष्णव विषयों को देखना होगा। अरुणोदय का अनुवाद के विना दशमी विद्धा को निन्दित करनेवाले कुछ वचन मिलते हैं। यथा नारद ने कहा है—

जब दशमी को अनुगत होकर एकादशी होती है, वह एकादशी अपत्य अर्थात् सन्तान को नष्ट कर देती है और परलोक में नरक देती है।

ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि—

दशमीशेषसंयुक्तां यः करोति विमूढधीः।
एकादशीफलं तस्य न स्याद् द्वादशवार्षिकम्॥ इति।

विष्णुरहस्ये—

दशमीशेषसंयुक्तामुपोष्यैकादशीं किल।
संवत्सरकृतेनेह नरो धर्मेण मुच्यते॥ इति।

ईदृशानि सर्वाणि अरुणोदयवेधसूर्योदयवेधद्वयसामान्येन प्रवृत्तत्वाद् वैष्णवस्मार्त्तोभयविषयाणि। तत्र वैष्णवविषये निरङ्कुशानि प्रवर्त्तन्ते। स्मार्त्तविषये तूभयाधिक्ये द्वादश्याधिक्ये च सर्वपुरुष विषयाणि द्रष्टव्यानि।

दशमीविद्धाऽभ्यनुज्ञापकानि कानिचिद् वचनान्युपलभ्यन्ते। तद्यथा स्कन्दपुराणे—

त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किञ्चन।
उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रिताऽपि च॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

उपोष्यैकादशी तत्र द्वादशी न भवेद्यदि।
दशम्या हि विमिश्रैव एकादश्येव धर्मकृत्॥ इति।

वृद्धवसिष्ठः—

द्वादशी स्वल्पमल्पाऽपि यदि न स्यात्परेऽहनि।
दशमीमिश्रिता कार्या महापातकनाशिनी॥ इति।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में भी-दशमी के कुछ अंश से संयुक्त एकादशी कोई अगर विमूढ़ होकर करें तो वह बारह वर्ष में की गई एकादशी का फल नहीं पाता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। विष्णुरहस्य में कहा है—दशमी के अंश से युक्त एकादशी में उपवास करने से लोक वर्ष भर अर्जित धर्मों से वियुक्त हो जाता है।

इस प्रकार सब अरुणोदय वेध, सूर्योदय वेध इन दोनों के सामान्यरूप से प्रवृत्त होते हैं, इसलिये वैष्णवों और स्मार्तों के लिये ही प्रवृत्त होते हैं। वहाँ वैष्णव विषय में निरंकुश प्रवृत्ति होती है, इसमें कोई बाधा नहीं है। स्मार्त्त विषय में तो उभयाधिक्य और द्वादशी के आधिक्य में सब पुरुषों के लिये द्रष्टव्य है।

दशमी विद्धा को स्वीकृति देने वाले कुछ वचन उपलब्ध होते हैं। यथा स्कन्दपुराण में—त्रयोदशी में यदि द्वादशी नहीं मिलती है, दशमी से मिश्रित (विद्धा) एकादशी भी की जाती है। दूसरी स्मृति में भी एकादशी के बाद यदि द्वादशी नहीं है तो दशमी के साथ मिश्रित एकादशी का अनुष्ठान धर्म कृत लोगों के जरिये की जाती है। बृहद्वसिष्ठ भी—परदिन में यदि द्वादशी अल्प भी नही रहती तो महापातकों को नाश करनेवाली दशमी मिश्रित एकादशी करनी चाहिये।

ऋष्यशृङ्गः—

एकादशी न लभ्येत द्वादशी सकला भवेत्।
उपोष्या दशमीविद्धा ऋषिरुद्दालकोऽब्रवीत् ॥ इति।

हारीतोऽपि—

त्रयोदश्यां यदा नष्टा द्वादशी घटिकाद्वयम्।
दशम्यैकादशी विद्धा सैवोपोष्या सदा तिथिः ॥ इति।

एतादृशानि वाक्यानि सर्वाण्यनुभयाधिक्ये सर्वपुरुषविषयाणि, एकादश्याधिक्ये तु स्मार्त्तगृहस्थमात्रविषयाणि द्रष्टव्यानि, न त्वेतानि वैष्णवविषयाणि। वैष्णवप्रकरणेषु विद्धाऽभ्यनुज्ञाया अदर्शनात्। संपूर्णैकादशीपरित्यागविषयाणि कानिचिद्वचनान्युपलभ्यन्ते।[1]

---

१. चैत्रशुक्लप्रतिपद आरभ्य चतुर्विंशत्येकादशीनां नामानि पद्मपुराणे (६।४१–४५) अभिहितानि, तानि यथा—(१) कामदा (२) वरूथिनी (३) मोहिनी (४) अपरा (५) निर्जला (६) योगिनी (७) शयनी (८) कामिका कामदा (९) पुत्रदा (१०) अजा (११) परिवर्त्तिनी (१२) इन्दिरा (१३) पाशाङ्कुशा (१४) रमा (१५) प्रबोधिनी (१६) उत्पत्ति (१७) मोक्षदा (१८) सकला (१९) पुत्रदा (२०) षट्तिला (२१) जया (२२) विजया (२३) आमलकी। आमर्दकी (२४) पापमोचनी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्यथा स्कन्दपुराणे—

एकादशी भवेत्पूर्णा परतो द्वादशी यदि ।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ॥ इति ।

तथा च कालिकापुराणे—

एकादशी यदा पूर्णा परतो द्वादशी भवेत् ।
उपोष्या द्वादशी तत्र तिथिवृद्धिः प्रशस्यते ॥ इति ।

गारुडपुराणे—

पूर्णा भवेद्यदा नन्दा भद्रा चैव विवर्धते ।
तदोपोष्या तु भद्रा स्यात् तिथिवृद्धिः प्रशस्यते ॥ इति।

ऋष्यशृङ्गने भी–यदि एकादशी नहीं है, परदिन में संपूर्ण रूप से द्वादशी रहती है तो उद्दालक ऋषि के मतानुसार उस स्थल में दशमी विद्धा एकादशी में उपवास किया जाता है। हारीत ने भी—त्रयोदशी में यदि द्वादशी दो घटिका तक भी न रहकर नष्ट हो जाती है, तो दशमी से विद्ध एकादशी में उपवास किया जाता है।

इस प्रकार सब वाक्य उभयाधिक्य स्थल में सभी के लिये हैं। एकादशी आधिक्य में तो स्मार्त्त, गृहस्थ के लिये व्यवस्था है। किन्तु यह वैष्णव के लिये व्यवस्था नहीं है, उनका विषय नहीं है। क्योंकि वैष्णव प्रकरणों में (दशमी) विद्धा एकादशी के लिये कोई स्वीकृति नहीं दिखाई पड़ती है। संपूर्ण दशमी को परित्याग करने के लिये सूचित करने वाले कुछ वचन मिलते हैं। स्कन्दपुराण में—एकादशी यदि पूर्ण रूप से रहती और परदिन में द्वादशी रहती हैं, तव एकादशी को छोड़कर द्वादशी में उपवास किया जाता है।

कालिका पुराण में कहा है—एकादशी जब पूर्ण रहती है और द्वादशी परदिन में रहती है, वहाँ द्वादशी में एकादशी के लिये उपवास किया जाता है। क्योंकि तिथि की वृद्धि प्रशस्त है। गरुड़पुराण में कहा है—जब नन्दा (एकादशी) पूर्ण रहती और भद्रा (द्वादशी) बढ़ती है तब भद्रा में उपवास किया जाता है, क्योंकि तिथि वृद्धि ही प्रशस्त है।

ईदृशानि सर्वाणि वैष्णवविषयाणि। दिनत्रयविषयकाणि कानिचिद्वचनान्युपलभ्यन्ते। नारदः—

यदि दैवात्तु संसिद्धेदेकादश्यां दिनत्रयम् ।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं द्वादशीपारणं भवेत् ॥ इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कूर्मपुराणेऽपि—

द्विस्पृगेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
तामेवोपवसेत्काममकामो विष्णुतत्परः ॥ इति ।

अत्राद्यन्तयो र्दशमीद्वादश्योर्मध्ये एकादशीत्येतादृशं दिनत्रयं यदा प्राप्नोति तदा परतो द्वादशी वृद्धिरवृद्धिश्चेत्युभयं संभवति । तत्र यद्यवृद्धिस्तदा यथोक्तं दिनत्रयमुपोष्यम् । तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

दिनत्रयमृते देवि नोपोष्या दशमीयुता ।
सैवोपोष्या सदा पुण्या परतश्चेत् त्रयोदशी ॥ इति ।

द्वादशीवृद्धौ एकादशी यदा लुप्ता इत्यनेन व्यासवचनेन परेद्युरुपवास इति पूर्वमेव निर्णीतम् । यदा त्वाद्यन्तयोरेकादशीत्रयोदश्योर्मध्ये द्वादशीत्येतादृशं दिनत्रयं, तदा नारदेन स्मर्यते—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥
एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।
त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥ इति ।

ये सब वैष्णवों के लिये कहे गये हैं । तीन दिन के विषय में कुछ वचन मिलते हैं । नारद ने कहा है—यदि तीन दिनों को लेकर एकादशी होती है, तो सौ क्रतुओं का पुण्य इससे मिलता है । द्वादशी में पारण होता है । कूर्म-पुराण में भी—जब द्वादशी दो दिनों को स्पर्श करती है वहां हरि सन्निहित होते हैं । विष्णु के बारे में तत्पर लोग अकाम होकर उसमें उपवास करते हैं ।

यहाँ आदि और अन्त में दशमी और द्वादशी के बीच में एकादशी की अवस्थिति से जब तीन दिन होते हैं, तब परदिन में द्वादशी की वृद्धि और द्वादशी की अवृद्धि इस प्रकार दो भेद होते हैं । वहाँ जब अवृद्धि अर्थात् वृद्धि नहीं होती है, तब यथोक्त तीन दिनों में उपवास प्राप्त होता है । स्कन्दपुराण में कहा है—

जिस स्थल में तीन दिनों को स्पर्श नहीं करती है, उस स्थल में दशमी-युक्त एकादशी को नहीं करते हैं । वही एकादशी की जाती है, जिसके परदिन में त्रयोदशी है ।

द्वादशी वृद्धि के स्थल में 'एकादशी जब लुप्त है' इस व्यास वचन के अनुसार परदिन में उपवास होता है । वैसे पूर्व दिन का निर्णय हुआ है । जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि और अन्त में एकादशी और त्रयोदशी रहकर बीच में द्वादशी रहती है। इस प्रकार भी तीन दिन होते हैं। इनके बारे में नारद ने कहा है—

जब एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी रात के अन्त में रहती हैं वहाँ सौ क्रतुओं का पुण्य होता है। त्रयोदशी में पारण होता है। एकादशी, द्वादशी और रात के अन्त में त्रयोदशी होने से त्रिस्पृशा नाम से प्रसिद्ध है जो एकादशी ब्रह्महत्या को नाश करनेवाली है।

तदेतद्वैष्णवविषयं यतिविषयं वा द्रष्टव्यम्। गृहस्थे तु तन्निषिद्धम्। तथा च कूर्मपुराणे—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी।
उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः॥ इति।

पद्मपुराणेऽपि—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी।[1]
त्र्यहस्पृक् तदहोरात्रं नोपोष्यं तत्सुतार्थिभिः॥ इति।

यत्तु ऋष्यशृङ्गेणोक्तम्—

अविद्धानि निषिद्धैश्च न लभ्यन्ते दिनानि तु।
मुहूर्त्तैः पञ्चभिर्विद्धा ग्राह्यैवैकादशी तिथिः॥
तदर्धविद्धान्यन्यानि दिनान्युपवसेद्बुधः।
पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या षष्ठ्येकादश्यथाष्टमी॥
एकादशीन्तु कुर्वीत क्षयते द्वादशी यदि॥ इति।

अत्र निषेधो यतिविषयः, विधिर्गृहस्थविषयः। वेधबाहुल्येन हेयत्वशङ्का माभूदिति पञ्चभिर्मुहूर्त्तैरित्युक्तम्। तदेवं, नानाविधवचनव्यवस्थापनप्रकारो व्युत्पादितः। अनया व्युत्पत्त्या मन्दबुद्धिरपि व्यवस्थापयितुं शक्नोत्येव।

इत्युपवासतिथिर्निरूपिता॥

यह सब वैष्णव के विषय में अथवा यति के विषय में भी देखना चाहिये। गृहस्थ के बारे में तो यह निषिद्ध है—फिर भी कूर्मपुराण में जिस दिन में

१. गरुडपुराणे वचनमित्थमुपलभ्यते—(१।१२३।१२)
एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी।
नित्यमेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकादशी और द्वादशी रात के अन्त में रहनेवाली त्रयोदशी है तो उसमें पुत्र-पौत्र से युक्त गृहस्थ द्वारा उपवास नहीं किया जाता। पद्मपुराण में— एकादशी द्वादशी और रात के शेष में त्रयोदशी रहने पर तीन तिथियों का स्पर्श से उस अहोरात्र त्र्यहस्पृक् होता हो तो सुतार्थी गृहस्थ उसमें उपवास नहीं करता है। फिर ऋष्यशृङ्ग ने भी कहा है—

निषेधों के द्वारा अविद्ध दिनों की प्राप्ति नहीं होती है। पांच मुहूर्त्तों से विद्ध एकादशी ग्राह्य होती है। उससे अर्धविद्ध दिनों में भी उपवास पण्डितों द्वारा किया जाता है। षष्ठी, एकादशी और अष्टमी पूर्वविद्धा होने पर नहीं की जाती हैं। यदि द्वादशी का क्षय होता है, तो एकादशी की जाती है।

यहाँ निषेध यति का विषय है। विधि गृहस्थ का विषय है। वेध का बाहुल्य से निषेध शंका न हो इसलिये पांच मुहूर्त्तों से वेध ऐसा कहा है। इस प्रकार नानाविध वचनों की व्यवस्था के लिये इस प्रकार व्युत्पत्ति की गई है। इस व्युत्पत्ति से भी मन्द-बुद्धि लोग भी व्यवस्था कर सकते हैं।

इस प्रकार उपवास के लिये ग्रहणीय तिथि का निरूपण हुआ।

अथाधिकारी निरूप्यते

तत्र नारदः—

अष्टब्दादधिको मर्त्यो ह्यपूर्णाशीतिहायनः।
भुङ्क्ते यो मानवो मोहादेकादश्यां स पापकृत्॥ इति।

कात्यायनोऽपि—

अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिन्यूनवत्सरः।
एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि॥ इति।

गृहस्थस्य शुक्लैकादश्यामेव नित्योपवासः। तथा च कूर्मपुराणे—

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।
वानप्रस्थो यतिश्चैव शुक्लामेव सदा गृही॥ इति।

भविष्योत्तरेऽपि—

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।
ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नारी विधवा तस्या एव यतिधर्मत्वात्। पतिमत्यास्तूपवासं निषेधति विष्णुः[1]—

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।
आयुष्यं हरते भर्त्तुर्नरकं चैव गच्छति॥ इति[2]

मनुः (५।१५५)—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते यत्तु[3] तेन स्वर्गे महीयते॥ इति।

अब अधिकारी का निरूपण होता है। वहां नारद ने कहा है—

आठ वर्ष से अधिक और असी वर्ष से कम उमर वाला जो मरणधर्मी लोक मोह के कारण एकादशी में खाता है वह पापी है। कात्यायन ने भी—

आठ वर्ष से अधिक और असी वर्ष से कम वयस्क लोक दोनों पक्षों में एकादशी में उपवास करता है। गृहस्थ केवल शुक्लपक्ष की एकादशी में नित्य उपवास करता है। इसके बारे में कूर्मपुराण में कहा है—

दोनों पक्षों में एकादशी में उपवास नहीं किया जाता है। यह वानप्रस्थ और संन्यास के लिये है। गृही शुक्ल एकादशी में ही उपवास करता है। भविष्योत्तरपुराण में भी—

उभय पक्षों की एकादशी में ब्रह्मचारी और नारी नहीं खाते हैं। गृही शुक्लपक्ष म केवल एकादशी करता हैं।

यहां नारी कहने से विधवा लक्षित होती है। क्योंकि उसकी व्यवस्था यति की तरह होती है। सधवा पतिमती के लिये उपवास का विधान नहीं है। विष्णु ने कहा है--

पति के जीवन काल में व्रताचरण करके जो नारी उपवास करती है, उससे स्वामी का आयुष नष्ट होता है और नरक भी जाती है। मनु ने कहा है—

---

१. वचनमिदं मनोः प्रक्षिप्तवचनत्वेन पठ्यते। मनुस्मृतिः ५।२२

२. पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतं चरेत्।
आयुः सा हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति॥ २५।१६ इति मुद्रितविष्णुस्मृतौ पाठः।

३. 'येन' इति मुद्रितमनुस्मृतौ पाठः। ५।१५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नारिओं के पृथक् कोई यज्ञ करने के लिये नहीं है, व्रत नहीं है, उपवास भी नहीं है। जो पति की शुश्रूषा करती है वह स्वर्ग लाभ करती है।

मार्कण्डेयः[1]—

नारी खल्वननुज्ञाता भर्त्रा पित्रा सुतेन वा।
निष्फलन्तु भवेत्तस्या यत् करोति व्रतादिकम्॥ इति।

आदिशब्दादलङ्कारगन्धपुष्पधूपाञ्जनानामुपसङ्ग्रहः। तदाह मनुः[2]—

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम्। इति।

पत्युरनुमत्या तु पत्नी व्रतादिष्वधिकारिणी भवति। तदाह कात्यायनः[3]—

भार्या पत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत् सदा॥ इति।

शुक्लाभेवेत्येवकारः कृष्णैकादश्यामुपवासनिषेधपरः। तथा च कूर्मपुराणे—

सङ्क्रान्त्यां कृष्णपक्षे च रविशुक्रदिने तथा।
एकादश्यां न कुर्वीत उपवासञ्च पारणम्॥ इति।

गौतमोऽपि—

आदित्येऽहनि सङ्क्रान्त्यामसितैकादशीषु च।
व्यतीपाते कृते श्राद्धे पुत्री नोपवसेद् गृही॥ इति

अत्र पुत्रीति विशेषणं पुत्रवतो दोषविशेषप्रदर्शनार्थम्। तथा च पद्मपुराणे—

---

१. वचनमिदं केशववैजयन्त्यां (विष्णुस्मृतिः २५।१५) मार्कण्डेयमनुवचनत्वेन पठितम्। मुद्रितमनुस्मृतौ न लभ्यते पूर्णप्रकरणस्थवचनं यथा—

न व्रतेनोपवासेन धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात्॥
नारी खल्वननुज्ञाता भर्त्रा पित्रा सुतेन वा।
निष्फलं तु भवेत् तस्या यत् करोति व्रतादिकम्॥ इति

२. मुद्रितमनुस्मृतौ नोपलभ्यते।

३. वचनमिदं केशववैजयन्त्या-(वि० स्मृ० २५।११६)-मुपलभ्यते तत्पृष्ठवचनत्वेन शङ्खवचनं स्पष्टम्। "कामं भर्तुरनुज्ञया व्रतोपवासादीन्याचरेत्"॥ (शङ्खः) (ABORI) भा–८, पृ० ११२)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सङ्क्रान्त्यामुपवासेन पारणेन युधिष्ठिर।
एकादश्यां च कृष्णायां ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ॥ इति।

नारदीयेऽपि--

इन्दुक्षयार्कसङ्क्रान्त्योरेकादश्यां सितेतरे।
उपवासं न कुर्वीत यदीच्छेत् सन्ततिं ध्रुवाम् ॥ इति।

मार्कण्डेय ने कहा है—नारी अगर अपने स्वामी, पिता या पुत्र की अनुमति के विना जो व्रतादि करती है तो उसके सब व्रतादिक निष्फल हो जाते हैं।

यहाँ आदि शब्द से अलंकार; गन्ध, पुष्प, धूप और अञ्जन की सूचना दी गई है। मनु ने कहा है—पुष्प, अलंकार, वस्त्र, गन्ध, अनुलेपन से मण्डित होनी चाहिये। पति की अनुमति से व्रतादि में पत्नी अधिकारिणी होती है। इसके बारे में कात्यायन ने कहा है - पति के मत से भार्या सर्वदा व्रतों का आचरण करती है। शुक्लपक्ष के साथ जो 'एव' का अर्थात् निश्चित है, वह कृष्णपक्ष का निषेध सूचित करता है। फिर भी कूर्मपुराण में कहा है—संक्रान्ति में कृष्णपक्ष में रवि और शुक्रवार में एकादशी होने पर उपवास नहीं किया जाता है और पारण भी।

गौतम ने भी—रविवार न संक्रान्ति होने पर कृष्णपक्ष की एकादशी में व्यतिपातयोग में श्राद्ध करने से पुत्रवान् गृही उपवास नहीं करता है। यहां 'पुत्री' यह विशेषण पुत्रवान गृही के दोष विशेष को प्रदर्शन करने के लिये कहा है। पद्म पुराण ने भी—हे युधिष्ठिर! संक्रान्ति में उपवास या पारण करने से कृष्ण पक्ष की एकादशी में भी करने पर ज्येष्ठ पुत्र का विनाश होता है। नारद पुराण में भी—चन्द्रक्षय में, संक्रान्ति में, कृष्ण एकादशी में निश्चित सन्तति को लाभ करने के लिये इच्छुक लोक उपवास नहीं करता है।

अत्र संक्रान्त्यादिषूपवासस्य निषेधः संक्रान्त्यादिनिमित्तकस्य। तथा च कात्यायनः—

एकादशीषु कृष्णासु रविसंक्रमणे तथा।
चन्द्रसूर्योपरागे च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही ॥
तत्प्रयुक्तोपवासस्य निषेधोऽयमुदाहृतः।
प्रयुक्त्यन्तरयुक्तस्य[1] न विधिर्न निषेधनम् ॥ इति।

---

१. प्रयुक्त्यन्तरं नाम भिन्नप्रयोयोऽर्थात् कार्यान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैमिनिरपि—

तन्निमित्तोपवासस्य निषेधोऽयमुदाहृतः ।
नानुषङ्गकृतो[1] ग्राह्यो यतो नित्यमुपोषणम् ॥ इति ।

अयमर्थः एकादश्युपवासस्य नित्यत्वात् सङ्क्रान्त्याद्युपवासस्य च काम्यत्वात् काम्योपवासनिषेधे न नित्योपवासनिषेधः सिध्यतीति । सङ्क्रान्त्यादिनिमित्तकोपवासः संवर्त्तेनोक्तः—

अमावास्या द्वादशी च सङ्क्रान्तिश्च विशेषतः ।
एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥
अत्र स्नानं जपो होमो देवतानाञ्च पूजनम् ।
उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम् ॥ इति ।

गृहस्थस्य तु शुक्लायामेव नित्योपवास, इत्युक्तम् । नैमित्तिक-काम्योपवासौ तु कृष्णायामपि कर्त्तव्यौ तत्र नैमित्तिकः स्मृत्यन्तरे पठ्यते—

शयनी-बोधिनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।
सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥ इति ।

यहां संक्रान्ति प्रभृतिओं में उपवास का जो निषेध कहा गया, वहां संक्रान्ति को निमित्त करके ही होनेवाला जो उपवास उसका ही होता है । इसके बारे में कात्यायन ने कहा है कि कृष्ण पक्ष की एकादशिओं में, सूर्य संक्रान्ति में, चन्द्र और सूर्य के उपराग में पुत्रवान् गृही उपवास नहीं करता है । इसलिये यहां इस काल को निमित्त करके जो उपवास है, उसका निषेध कहा गया है । दूसरे के विधि या निषेध यहां नहीं कहा गया है ।

---

१. जैमिनिना नैमित्तिकोपवासस्य निषेधः कथितः । सङ्क्रान्त्याद्युपवासोऽनुषङ्गः । सोऽत्र न गृह्यते । यतस्तत्र नित्योपवासविधिः । एकप्रकरणस्थ-पदार्थद्वयविधाने प्रथमपदार्थकं कृत्स्नं वाक्यं तद्गतां पूर्त्तिं विधत्ते । द्वितीय-पदार्थकेन वाक्येन तद्विधपूर्त्यभावे आकाङ्क्षावशात् प्रथमपदार्थकवाक्यात् पूरणसाधनकांशोऽनु पश्चात् आनीय सज्यते योजयित्वा पूर्त्तिर्विधीयते इति अनुषङ्गः । सोऽयमनुषङ्गोऽध्याहाराद् भिन्नः । अध्याहारे एकविधिकतया नानाशेषार्थपूरणाङ्गकतया च विध्यंशोऽध्याह्रियते । अत्र तु एकप्रकरणस्थत्वेऽपि वाक्यद्वये एकवाक्यस्य पूर्त्तिद्वारा भिन्नवाक्यस्य आकांक्षया तदाकाङ्क्षा पूर्त्तिः क्रियते । यथा--ज्योतिष्टोमे आम्नायते--(१)'या ते अग्नेऽयाशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा, उग्रं वचो अपावधीत् त्वेषं वचो अपावधीत् स्वाहा (२) या ते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैमिनि ने भी कहा है—उस काल को निमित्त करके जो उपवास किया जाता है, उसका यह निषेध उदाहृत किया है।

यहां अनुषंग का ग्रहण नहीं किया गया है क्योंकि उसका नित्य उपवास प्राप्त है।

इसका आशय यह है—एकादशी में उपवास नित्य है। संक्रान्ति प्रभृतिओं में उपवास काम्य है। काम्य उपवास का निषेध होने पर नित्य उपवास का निषेध सिद्ध नहीं होता है। संक्रान्तिओं को निमित्त कर उपवास उपसंवर्त्त ने कहा है—

अमावास्या, द्वादशी विशेषतः संक्रान्ति और रविवार ये तिथियाँ प्रशस्त हैं। यहां स्नान, जप, होम, देवता पूजा, उपवास और दान एक-एक पवित्र रूप में स्मरण किये जाते हैं।

शुक्ल एकादशी में गृहस्थ के लिये उपवास किया जाता है, वैसा कहा गया है। नैमित्तिक और काम्य उपवास तो कृष्ण पक्ष में भी किया जाता है। नैमित्तिक के बारे में दूसरी स्मृतियों में पठित है—हरिशयनी एकादशी से लेकर उत्थापन (प्रबोधिनी) देवोत्थानी एकादशी के बीच में जितनी कृष्ण एकादशी आती हैं. उन सब में गृहस्थों द्वारा उपवास किया जाता है, किन्तु दूसरे कृष्ण एकादशी में नहीं किया जाता है।

काम्यस्तु स्कन्दपुराणे—

पितॄणां गतिमन्विच्छन् कृष्णायां समुपोषयेत्। इति।

अग्ने रजाशया (३) या ते अग्ने हराशया' इति। एतेषु त्रीषु वाक्येषु प्रथमवाक्यं स्वाहान्तं संपूर्णं विद्यते। द्वितीयतृतीयवाक्ये तथाऽभावादाकाक्षा जागर्त्ति। साऽऽकाङ्क्षा प्रथमवाक्यस्य पूरणसाधनकांशेन अनु अर्थात् पश्चादानीय सज्यते इति अनुषङ्गः। अत्रायं भावः—अग्नेस्तिस्रस्तनवः। ता अयसा नाम लौहेन रजतेन नाम रौप्येण हिरण्येन नाम सुवर्णेन निर्मिताः, तासु आद्या तनुः वर्षिष्ठानाम वृद्धतमा गह्वरेष्ठा नाम तीक्ष्णलौहावस्थिता। तयो तन्वा क्षुत्पिपासे उपपातकं वीरहत्यादि महापातकं च हे अग्नि त्वं हतवान् असि इति। सोऽयं विषयो जैमिनोये (२।१।१६–१७) अधिकरणद्वये विचारितः बुद्धिस्थसंकल्पनीयस्य सन्निकर्षाध्याहारोऽनुषङ्ग इति सामान्यविमर्शः संक्रान्त्याद्युपवासस्य तथाऽभावात् नानुषङ्गः। अनुषङ्गस्यार्थद्वयमिति अस्मद्गुरुचरणाः। यथा—प्रसङ्गः,लघीयान्। (धर्मशास्त्रशब्दकोषः भा० १, पृ० २९) किन्तु प्रसङ्गो जैमिनीयेऽनुषङ्गापेक्षया भिन्नपदार्थो द्वादशाध्यायविषयः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सनत्कुमार :—

भानुवारेण संयुक्ता कृष्णा सङ्क्रान्तिसंयुता ।
एकादशी सदोपोष्या सर्वसंपत्करी तिथिः ॥ इति ।

मत्स्यपुराणेऽपि—

एकादश्यान्तु कृष्णायामुपोष्य विधिवन्नरः ।
पुत्रानायुः समृद्धिश्च सायुज्यं च स गच्छति ॥ इति ।

दिनक्षये पुत्रवतो गृहस्थस्योपवासो निषिद्धः । तथा च पितामहः—

एकादश्यां दिनक्षये उपवासं करोति यः ।
तस्य पुत्रा विनश्यन्ति मघायां पिण्डतो यथा ॥ इति ।

मत्स्यपुराणे—

दिनक्षयेऽर्कसङ्क्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ इति ।

दिनक्षयलक्षणं पद्मपुराणे—

द्वौ तिथ्यन्तावेकवारे यस्मिन् स स्याद्दिनक्षयः । इति ।

वसिष्ठोऽपि—

एकस्मिन् सावने त्वह्नि तिथीनां त्रितयं यदा ।
तदा दिनक्षयः प्रोक्तः तत्र साहस्रिकं फलम् ॥ इति[1]

फलमत्रोपवासव्यतिरिक्तदानादिजन्यं द्रष्टव्यम्, उपवासस्य निषिद्धत्वात् । ईदृशे विषये किं कर्त्तव्यमित्याकाङ्क्षायां वायुपुराणे पठ्यते-

काम्य उपवास के बारे में स्कन्दपुराण में कहा है--पितृलोक को जाने के लिये इच्छुक एकादशी में उपवास किया जाता है। सनत्कुमार ने कहा है--कृष्ण पक्ष की एकादशी अगर रविवार में संक्रान्ति के साथ होती है, तो सब समय में इस प्रकार एकादशी में उपवास किया जाता है, क्योंकि सभी प्रकार संपत् देनेवाली वही एकादशी है। मत्स्यपुराण में भी—कृष्ण पक्ष की एकादशी में विधिपूर्वक उपवास करके पुत्र, आयु, समृद्धि और सायुज्य मुक्ति पाता है।

---

१. विषयोऽयं त्रिस्पृशामाधृत्य विसर्पति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिनक्षय के स्थल में पुत्रवान गृही के लिये उपवास निषिद्ध है। फिर भी पितामह ने कहा है—एकादशी में दिनक्षय में जो उपवास करता है, उसके पुत्र मरते हैं, जैसे मघानक्षत्र में पिण्ड देने से मरते हैं। मत्स्यपुराण में भी–दिनक्षय में अर्कसंक्रान्ति में, चन्द और सूर्य के ग्रहण में पुत्र और पौत्र से समन्वित गृहस्थ उपवास नहीं करता है। दिनक्षय का लक्षण पद्मपुराण में कहा है—यदि एक दिन में दो तिथियों की समाप्ति होती है तो उसको दिनक्षय कहते हैं।

वसिष्ठ में भी कहा है—एक सावन दिन में तीन तिथिओं की प्राप्ति होने पर दिनक्षय होता है, उससे सहस्रगुणा फल मिलता है।

यहाँ फल उपवास को छोड़कर दानादि से होनेवाला फल को कहते हैं, क्योंकि वहाँ उपवास निषिद्ध है। इस विषय में क्या कर्त्तव्य है, इस प्रकार आकांक्षा होने पर वायुपुराण में कहा है—

उपवासे निषिद्धे तु भक्ष्यं किंचित् प्रकल्पयेत्।
न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत् ॥
नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा
फलन्तिलाः क्षीरमथाम्बुचाज्यम्।
यत्पंचगव्यं यदि चापि वायुः
प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च ॥ इति।

उपवाससमर्थस्तु एकभक्तादीनि कुर्यात्। तथा च स्मृतिः—

उपवासे त्वशक्तानामशीतेरूर्ध्वजीविनाम्।
एकभक्तादिकं कार्यमाह बौधायनो मुनिः ॥ इति।

मार्कण्डेयपुराणे—

एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च।
उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत् ॥ इति।

कूर्मपुराणेऽपि—

एकभक्तेन नक्तेन क्षीणवृद्धातुरः क्षिपेत्।
नातिक्रामेत् द्वादशीं तु उपवासव्रतेन च ॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

एकभक्तेन नक्तेन बालवृद्धातुरः क्षिपेत्।
पयो मूलं फलं वापि न निर्द्वादशिको भवेत् ॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भविष्यत्पुराणे—

एकादश्यामुपवसेन्नक्तं वाऽपि समाचरेत्। इति।

नित्यकाम्ययोरशक्तास्तु प्रतिनिधिभिर्व्रतं कारयेयुः॥

उपवास निषिद्ध होने पर कुछ भक्ष्य का विधान है। इससे उपवास का फल दूषित नहीं होता है। उपवास का फल मिलता है। नक्त, हविष्यान्न, पक्व अन्न से भिन्न, फल, तिल, दूध, पानी, घृत, पंचगव्य और वायु इनके विधान हैं। इनमें पूर्ववर्त्ती से परवर्त्ती प्रशस्त है।

उववास करने के लिये जो समर्थ है, उसके जरिये एकभक्त किया जा सकता है। स्मृति में कहा है—उपवास के लिये जो असमर्थ हैं, अस्सी उमर से भी अधिक उमर वाले हैं उनके जरिये बौधायन मुनि के मतानुसार एकभक्त प्रभृति विधान किया जाता है। मार्कण्डेय पुराण में भी—एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास और दान के द्वारा भी एकादशी करनी चाहिये। किन्तु (निर्द्वादशिक) द्वादशी युक्त एकादशी नहीं छोड़ी जाती है।

कूर्म पुराण में भी–दुर्बल, वृद्ध और रोगी में एकभक्त से या नक्त से एकादशी का कालदोष कहते हैं। किन्तु उपवास नहीं कर द्वादशी को (एकादशी) नहीं छोड़ते हैं। दूसरी स्मृति में भी—बाल, वृद्ध, रोगी ये सब एकभक्त से या नक्त से एकादशी करते हैं। दूध, मूल, फल, के द्वारा भी निर्द्वादशिक नहीं होते हैं। भविष्यत्पुराण में कहा है—"एकादशी में नक्त के द्वारा उपवास करते हैं। नित्य और काम्य में असमर्थ लोग प्रतिनिधियों के द्वारा व्रत कर सकते हैं।

तथाच विष्णुरहस्ये—

असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते च समुपस्थिते।
कारयेद्धर्मपत्नीं वा पुत्रं वा विनयान्वितम्॥ इति।

पैठीनसिः—

भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्।
असामर्थ्ये परस्तास्यां व्रतभङ्गो न जायते॥ इति।

स्कन्दपुराणे—

पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा।
एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं विनियोजयेत्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यत्रापि—

भ्रातरं भगिनीं शिष्यं पुत्रं वा विनियोजयेत् ।
तदभावे तूपवासं कारयेत् ब्राह्मणादिभिः ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

पितृ-मातृ-पति-भ्रातृ-श्वश्रू-गुर्वादि-भूभुजाम् ।
अदृष्टार्थमुपोषित्वा स्वयञ्च फलभाग्भवेत् ॥ इति ।

कात्यायनः—

पितृ-मातृ-स्वसृ-भ्रातृ-गुर्वर्थे च विशेषतः ।
उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥
दक्षिणा नात्र दातव्या शुश्रूषा विहिता च सा
नारी च पतिमुद्दिश्य एकादश्यामुपोषिता ॥
पुण्यं शतगुणं प्राहुर्मुनयः पारदर्शिनः ।
उपवासफलं तस्याः पतिः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

विष्णुरहस्य में कहा है—शरीर असमर्थ होने के समय व्रत उपस्थित होने पर धर्मपत्नी या विनीत पुत्र के द्वारा भी व्रत किया जा सकता है। पैठीनसि ने भी—पति द्वारा भार्या का व्रत किया जाता हैं और भार्या से भी पति का व्रत किया जाता है। ऐसे होने से असामर्थ्य में भी व्रतभंग नहीं होता है।

स्कन्दपुराण में भी विनय युक्त पुत्र, बहिन, भाई इनके अभाव में भी ब्राह्मण को विनियुक्त कर व्रतानुष्ठान किया जाता है। दूसरी जगह में भी भाई, बहिन, शिष्य अथवा विनीत पुत्र को व्रत में विनियुक्त किया जाता है। इनके अभाव में ब्राह्मण के द्वारा उपवास किया जाता है।

दूसरी स्मृति में भी—पिता, माता, पति, भाई, सास, गुरु और राजा के अदृष्टार्थ के लिये जो उपवास करता है, वह स्वयं फल को पाता है। कात्यायन ने भी—पिता, माता, भगिनी, भ्राता और विशेषतः गुरुओं के लिये उपवास करनेवाला सौ गुणा फल पाता है। वहाँ दक्षिणा नहीं देनी चाहिए, शुश्रूषा विहित होती है। नारी पति के उद्देश्य में एकादशी में उपवास कर सौ गुणा पुण्य पाती है। यह पारदर्शी मुनियों ने कहा है और निःसन्देह उसका पति उपवास का फल पाता है?

राज्यस्य क्षत्रियार्थे च एकादश्यामुपोषितः ।
पुरोधाः क्षत्रियस्यार्धं फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिनिधौ च कश्चित् विशेषः स्मर्यते—

काम्ये प्रतिनिधि र्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः।
काम्येऽप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित् प्रतिनिधिं विदुः॥ इति।

अयमर्थः— नित्यं नैमित्तिकं च प्रतिनिधिनाऽप्युपक्रमस्य कारयेत् काम्यन्तु स्वसामर्थ्यं परीक्ष्य स्वयमेवोपक्रम्य कुर्यात्। असामर्थ्ये उपक्रमादूर्ध्वं प्रतिनिधिनाऽपि तत्कारयेत्। उपवासाकरणे प्रायश्चित्तं स्मर्यते—

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां दिवा भुक्त्वैन्दवञ्चरेत्।
एकादश्यां दिवा रात्रौ नक्तं चैव तु पर्वणि॥ इति।

स्मृत्यन्तरे—

अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा।
एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

एकदशी में उपवास करने वाला क्षत्रिय राज्य पाता है। क्षत्रिय के लिये उपवास करने वाला पुरोहित निश्चित रूप से अर्ध फल पाता है। प्रतिनिधि के बारे में कुछ विशेष कहा गया है—काम्य कर्म में प्रतिनिधि का स्वीकार नहीं किया जाता है। नित्य में या नैमित्तिक में किया जा सकता है। काम्य में उपक्रम (आरंभ) से ऊर्ध्व प्रतिनिधि स्वीकार के लिये कुछ शास्त्रकारों ने कहा है।

इसका आशय यह है—नित्य और नैमित्तिक कर्म प्रतिनिधि के द्वारा उपक्रम पूर्वक किया जा सकता है। काम्य तो अपने सामर्थ्य रहने पर परीक्षा पूर्वक अपने ही उपक्रमपूर्वक किया जाता है। असामर्थ्य में उपक्रम से ऊर्ध्व प्रतिनिधि के द्वारा भी किया जा सकता है। उपवास न करने से प्रायश्चित्त करने के लिये स्मरण किया है अर्थात् स्मृति में कहा है—

अष्टमी में और चतुर्दशी में दिन में भोजन करने से चान्द्रायण के द्वारा प्रायश्चित्त किया जाता है। एकादशी में दिन और रात में भोजन करने से और पर्व के नक्त में भोजन करने से भी वैसा प्रायश्चित्त है।

दूसरी स्मृति में भी संक्रान्ति में दो पर्वों के रात में चतुर्दशी और अष्टमी के दिन में और एकादशी के अहोरात्र में भोजन करने पर चान्द्रायण में प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ काम्योपवासक्रमः

तत्राङ्गिराः—

सायमाद्यन्तयोरह्नोः सायं प्रातश्च मध्यमे ।
उपवासफलं प्रेप्सुर्जह्याद्भक्तं चतुष्टयम् ॥ इति ।

देवलः—

दशम्यामेकभक्तस्तु मांसमैथुनवर्जितः ।
एकादशीमुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि ॥
देवतास्तस्य तुष्यन्ति कामिकं तस्य सिद्ध्यति ॥ इति ।

अब काम्य उपवास का प्रकरण प्रारम्भ होता हैं । अंगिरा ने कहा है—पूर्वदिन के सायंकाल, उपवास दिन के सायं और प्रातः एवं पर दिन के प्रातः काल इन चार काल में चार बार भोजन उपवास के फल का इच्छुक कर्त्ता छोड़ देता है ।

देवल ने भी कहा है—मांस और मैथुन को छोड़कर दशमी में एकभक्त करके दोनों पक्षों की एकादशी में जो उपवास करता है, उसके ऊपर देवता सन्तुष्ट रहते हैं और काम्य फल सिद्ध होता है ।

बृहस्पतिरपि—

दिवा निद्रां परान्नञ्च पुनर्भोजनमैथुने ।
क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥[1]

कूर्मपुराणे—

कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोरदूषकान् ।
शाकं मधु परान्नञ्च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम् ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

शाकं मांसं मसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने ।
द्यूतमत्यम्बुपानञ्च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत् ॥ इति ।

विष्णुधर्मे—

असम्भाष्यान् हि संभाष्य तुलस्यतसिकादलम् ।
आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य शुद्ध्यति ॥

---

१. हेमाद्रिः (काल) पृ. २०३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असकृज्जलपानञ्च दिवा स्वापञ्च मैथुनम्।
ताम्बूलचर्वणं मांसं वर्जयेत् व्रतवासरे॥ इति।

वसिष्ठः—

उपवासे तथा श्राद्धे न खादेद्दन्तधावनम्।
दन्तानां काष्ठसंयोगो हन्ति सप्त कुलानि च॥ इति।

दन्तधावने प्रायश्चित्तं विष्णुरहस्ये—

श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम्।
गायत्र्याः शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुध्यति॥ इति।

हारीतः—पतित-पाखण्डि-नास्तिक-संभाषणमनृताश्लीलादिकमुपवासादिषु वर्जयेत्। इति।

बृहस्पति ने भी कहा है—दिन में निद्रा, दूसरे के अन्न, पुनर्वार भोजन, मैथुन, मधु से निर्मित पदार्थ, कांस्य पात्र में भोजन, आमिष और तैल इन आठ द्वादशी में परित्याज्य हैं।

कूर्मपुराण में भी—कांस्य पात्रस्थ पदार्थ, मांस, मसूर, चणक, कोदो, शाक, मधु, परान्न और स्त्रीसंग उपवास करने पर परित्याज्य हैं।

दूसरी स्मृति में भी—

शाक, मांस, मसूर, पुनर्वार भोजन, मैथुन, घृत, अत्यर्थ जल पान ये दशमी में वैष्णव लोगों से परित्याज्य हैं।

विष्णुधर्म में भी—असंभाष्य लोग के साथ संभाषण करने से काला तुलसी दल आँवले के फल को पारण करने पर शुद्ध होते हैं। बारंबार जलपान, दिन में निद्रा, मैथुन, ताम्बूल और मांस ये सब व्रत के दिन परित्याज्य हैं।

वसिष्ठ ने कहा है—उपवास में तथा श्राद्ध में दन्तधावन नहीं किया जाता है। दान्त के साथ काठ (दन्त काष्ठ) का संयोग होने पर सात कुलों का विनाश होता है।

दन्तधावन करने पर प्रायश्चित्त के लिये विष्णुरहस्य में कहा है—

श्राद्ध और उपवास दिन में दन्तधावन करके सौ बार गायत्री पूर्वक आचमन करने पर शुद्ध होते हैं। हारीत ने कहा है—पतित, पाखण्डी और नास्तिकों के साथ संभाषण, एवं मिथ्या, अश्लील भाषा प्रभृति उपवासादि में वर्जनीय है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कूर्मपुराणे—

बहिर्ग्रामान्त्यजान् सूतिं पतितञ्च[1] रजस्वलाम् ।
न स्पृशेन्नाभिभाषेत नेक्षेत व्रतवासरे ॥ इति ।

विष्णुरहस्ये—

स्मृत्यालोकनगन्धादि स्वादनं परिकीर्त्तनम् ।
अन्नस्य वर्जयेत् सर्वं ग्रासानाञ्चाभिकाङ्क्षणम् ॥
गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलञ्चानुलेपनम् ।
व्रतस्थो वर्जयेत् सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम् ॥ इति ।

ब्रह्माण्डपुराणेऽपि—

कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम् ।
व्यायामञ्च प्रवासञ्च दिवास्वप्नं तथाञ्जनम् ॥
तिलपिष्टं मसूराञ्च द्वादशैतानि वैष्णवः ।
द्वादश्यां वर्जयेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते[2] ॥ इति ।

एकादश्यां श्राद्धं कृत्वाऽपि न भोक्तव्यम् । तदाह कात्यायनः—

उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।
उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥ इति ।

तथा—

मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदा ।
अभ्यर्च्य पितृदेवांश्चाजिघ्रेत पितृसेवितम् ॥ इति ।

यत्तु वचनम्—

श्राद्धं कृत्वा तु यो विप्रो न भुङ्क्ते पितृसेवितम् ।
हविर्देवा न गृह्णन्ति कव्यञ्च पितरस्तथा ॥ इति ।

तदेकादशीव्यतिरिक्तविषयम्, आघ्राणेनापि भोजनकार्यं सिद्ध्यति, तस्य भोजनकार्ये विधानात् ।

---

१. द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनम् । गौतमः पतनं यस्य स पतित इत्यर्थः

२. वचनमिदं गरुडपुराणे (१।१३६।३-४) उपलभ्यते

कांस्य मांसं तथा क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम् ।
व्यायामं च व्यवायं च दिवा स्वप्नमथाञ्जनम् ॥
शिलापिष्टं मसूरं च द्वादश्यां वर्जयेन्नरः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कूर्मपुराण में कहा है—व्रत दिन में गाँव के बाहर रहनेवाले अन्त्यज को, प्रसूति, पतित और रजस्वला को नहीं छूते हैं तथा उनके साथ संभाषण नहीं करते हैं एवं उनको देखते भी नहीं हैं।

विष्णुरहस्य में—अन्न का स्मरण, दर्शन, घ्राण, आस्वादन और अन्न के बारे में कीर्त्तन इन सब को वर्जित करना चाहिये। भोजन का ग्रास के बारे में आकांक्षा भी नहीं किया जाता है। शरीर में अभ्यग और शिर के ऊपर अभ्यंग, पान और चन्दनादि का अनुलेपन व्रत में रहने वाला व्यक्ति के जरिये वर्जित किया जाता है और भी जहां-जहां जो जो कुछ वर्जित होने के लिये कहा है, उसको भी वर्जित करना चाहिये।

ब्रह्मपुराण में—कांस्य पात्र में अवस्थित पदार्थ, मास, सुरा, मधु, लोभ, अथवा भाषण, व्यायाम, प्रवास, दिन में सोना, अञ्जन, तिल की पीठी (लड्डू), मसूर—ये बारह पदार्थ द्वादशी में वैष्णव लोगों द्वारा वर्जित किये जाते हैं। वैसे होने पर सब पापों से मुक्ति मिलती है। एकादशी में श्राद्ध करने पर भी भोजन नहीं करना है। इसके बारे में कात्यायन ने कहा है—

जब उपवास नित्य है और श्राद्ध नैमित्तिक है। उस अवसर में पितृ-सेवित अर्थात् श्राद्ध में पितरों के उच्छिष्ट को आघ्राण करके उनका सही करता हैं। फिर भी—माता और पिता के श्राद्धदिवस में जब एकादशी होती है। उस स्थल में पितृ देवताओं को अभ्यर्चित कर पितृभुक्त पदार्थ को नाक से सूंघता है? वचन में भी वैसा कहा है—

श्राद्ध करके जो विप्र पितृसेवित अन्न को नहीं खाता है, तो देवता लोग हवि को और पितृलोक कव्य को नहीं ग्रहण करते हैं।

यह विषय एकादशी व्यतिरिक्त विषय है। आघ्राण से भोजन कार्य सिद्ध होता है, क्योंकि भोजन कार्य इनके बारे में विहित है।

अयमिह व्रतानुष्ठानक्रमः

प्रथमं दशम्यामेकभक्तं कृत्वाऽनन्तरं दन्तधावनं कुर्यात्। तथा च स्मर्यते—

दशम्यामेकभुग्भूत्वा खादयेत् दन्तधावनम्॥ इति।

तदनन्तरं दशम्यां रात्रौ नियमग्रहणं कुर्यात्। तदुक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते—

प्राप्ते हरिदिने सम्यग् विधाय नियमं निशि।
दशम्यामुपवासस्य प्रकुर्यात् वैष्णवं व्रतम्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नियमो नारदीये स्मर्यते—

अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः ।
अवनीतलपशयनाः प्रियसङ्गविवर्जिताः ॥ इति ।

ततः प्रातरुत्थायैकादश्यां बाह्याभ्यन्तरशुद्धिं विदध्यात् । तत्प्रकारस्तु—

शरीरमन्तःकरणोपघातं
वाचश्च विष्णुर्भगवानशेषम् ।
शमन्नयत्वस्तु ममेह शर्म
पयादनन्तो हृदि सन्निविष्टः ।
अन्तःशुद्धिं बहिः शुद्धिं शुद्धो धर्ममयोऽच्युतः ।
स करोतु ममैतस्मिन् शुचिरेवास्मि सर्वदा ॥
बाह्योपघातानघो वौद्धाँश्च भगवानजः ।
शमन्नयत्वनन्तात्मा विष्णुश्चेतसि संस्थितः ॥ इति ।

अनन्तरं प्रातः सङ्कल्पं कुर्यात् ।

अब व्रतानुष्ठान के लिये क्रम कहा जाता है ।

पहले दशमी में एकभक्त करके उसके बाद दन्तधावन दिया जाता है । इस लिये स्मरण किया जाता है कि—(कर्त्ता) दशमी में एक बार भोजन कर दन्तधावन करता है । उसके बाद दशमी की रात में नियम ग्रहण करता है । इसके बारे में ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में कहा है—

हरि के (एकादशी) दिन प्राप्त होने से दशमी की रात में ठीक रूप से नियम का विधान कर विष्णु के लिये होने वाला व्रत में उपवास करना चाहिये ।

नियमों के बारे में नारद पुराण में कहा है—सब व्रती लोग अक्षार लवण और हविष्यान्न भोजन करते हैं, भूमि में शयन कर मैथुनपरित्याग के लिये पत्नी संग छोड़ते हैं ।

इसके बाद प्रातः शय्या त्याग कर एकादशी में बाह्य और अन्तः शौच करते हैं । उसका प्रकार ऐसा है—

शरीर के अन्तःकरण में सन्निविष्ट होकर रहनेवाले अनन्त जी मेरे मङ्गल कर्म की रक्षा करें, जो भगवान विष्णु रूप से शरीर के अन्तःकरण और वचन के अशेष उपघात को शान्त करते हैं । धर्म के प्राचुर्य से तन्मय शुद्ध अच्युत अन्तः और बाह्य शुद्धि को संपादन करे । इसलिये सर्वदा में शुचि रहेगा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनमें अन्तरात्मा की तरह रहने वाले विष्णु अनघ के रूप में बाह्य उपघात को भगवान अज के रूप में बुद्धि को शान्त करे।

इसके बाद प्रातःकाल में संकल्प करना चाहिये।

तदुक्तं वाराहपुराणे—

गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः।
उपवासन्तु गृह्णीयात् यद्वा वार्येव धारयेत्॥ इति।

औदुम्बरं ताम्रपात्रम्। सङ्कल्पमाह विष्णुः—

एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहमपरेऽहनि।
भोक्षामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥
इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत्॥ इति।

अनन्तरं तत्पात्रगतजलं पिबेत्। तदाह कात्यायनः—

अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्तेनाभिमन्त्रितम्।
उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतजलम्॥ इति।

विद्धैकादश्युपवासे रात्रौ सङ्कल्पः। तथा च नारदीये—

विद्धोपवासे सकलं दिनन्त्यक्त्वा समाहितः।
रात्रौ संपूजयेद् विष्णुं संकल्पञ्च तदाऽऽचरेत्॥ इति।

मध्यरात्रादुपरि दशमीयुक्ता चेदेकादशी तस्यां मध्याह्नस्योपरि संकल्पः। तथा च स्मृतिः—

दशम्या सङ्गदोषेण मध्यरात्रात्परेण तु।
वर्जयेच्चतुरो यामान् संकल्पार्चनयोः सदा॥ इति।

एकादश्यां देवस्योपरि पुष्पमण्डपं कारयेत्। तदुक्तं ब्रह्मपुराणे—

एकादश्यां शुभे पक्षे निराहारः समाहितः।
नानापुष्पै मुनिश्रेष्ठ विचित्रं पुष्पमण्डपम्॥
कृत्वा चावरणं पश्चात् जागरं कारयेन्निशि॥ इति।

इसके बारे में वाराह पुराण में कहा है—पानी से पूर्ण ताम्रपात्र को ग्रहण कर पानी को धारण करने की तरह उत्तर मुख होकर उपवास के लिये संकल्प करना है। औदुम्बर पात्र का अर्थ है ताम्रपत्र। विष्णु ने संकल्प के बारे में कहा है—हे पुण्डरीकाक्ष! एकादशी में निराहार होकर मैं परदिन में भोजन करूंगा। हे अच्युत, मुझे शरण दो। ऐसा कहकर विद्वान् लोग पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हैं। बाद में उस पात्रस्थ जल को पान करना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके बारे में कात्यायन ने कहा है—आठ अक्षरों से युक्त मन्त्र का तीन बार जप करके पात्रस्थ जल को अभिमन्त्रित किया जाता है और उपवास फल को प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस जल को पीता है। विद्धा एकादशी में उपवास के लिये रात में संकल्प होता है। इसलिये नारदीय पुराण में कहा है—विद्धा उपवास में दिन भर त्याग करके समाहित होकर रात में विष्णु को पूजते हैं। इस समय में ही संकल्प करते हैं। मध्यरात्रि से ऊपर अगर एकादशी दशमी युक्त होती है तो उस एकादशी में मध्याह्न के बाद संकल्प होता है।

इस लिये स्मृति में कहा है—मध्यरात्र से पर दशमी का संग दोष के कारण संकल्प और अर्चन के लिये चार भाग छोड़ देते हैं। एकादशी में देवता के ऊपर फूलों से मण्डप करना है। इसके बारे में ब्रह्मपुराण में कहा है—

एकादशी के शुभ अर्थात् शुक्लपक्ष में निराहार होकर हे मुनिश्रेष्ठ; नाना प्रकार के पुष्पों से रचित पुष्पमण्डप करके आवरण भी देकर बाद में रात में जागरण करते हैं।

तस्मिन्मण्डपे देवमर्चयेत्। तदुक्तं ब्रह्मपुराणे—

एकादश्यां शुभे पक्षे निराहारः समाहितः।
स्नात्वा सम्यग्विधानेन सोपवासो जितेन्द्रियः॥
संपूज्य विधिवद् विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः।
पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपै दीपै नैवेद्यकैः परैः॥
उपचारै बहुविधैर्जपहोमैः प्रदक्षिणैः।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यै गीतवाद्यैर्मनोहरैः॥
दण्डवत् प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः।
एवं संपूज्य विधिवद्रात्रौ कृत्वा प्रजागरम्॥
याति विष्णोः परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः॥ इति।

द्वादश्यां कर्त्तव्यमाह कात्यायनः—

प्रातः स्नात्वा हरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत्।
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव॥
प्रसादसुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव।
मन्त्रं जपित्वा हरये निवेद्योपोषणं व्रती॥
द्वादश्यां पारणं कुर्यात् वर्जयित्वा ह्युपोदकीम्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूतकादौ तु दानार्चनरहितमुपवासमात्रं कुर्यात्। तदुक्तं कूर्मपुराणे—

काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके।
तत्र काम्यव्रतं कुर्यात् दानार्चनविवर्जितम् ॥ इति।

वाराहपुराणे—

सूतके च नरः स्नात्वा प्रणम्य मनसा हरिम्।
एकादश्यां न भुञ्जीत व्रतमेवं न लुप्यते॥
मृतकेऽपि न भुञ्जीत एकादश्यां सदा नरः।
द्वादश्यान्तु समश्नीयात् स्नात्वा विष्णुं प्रणम्य च ॥ इति।

उस मण्डप में देवता की पूजा करें। इसके बारे में ब्रह्मपुराण में कहा है—

एकादशी के शुक्लपक्ष में निराहार होकर स्नान करके ठीक विधान से उपवास सहित जितेन्द्रिय होकर श्रद्धापूर्वक विधिवद् विष्णु की पूजा करते हैं। पुष्प, धूप, गन्ध, दीप, नैवेद्य, बहुविध उपचार, जव, होम प्रदक्षिण, नानाविध स्तोत्र, दिव्य गीत, मनोहर वाद्य, दण्डवत् प्रणिपात, उत्तम जय शब्द इन सब प्रकार से विधिवत् पूजा करके रात में जागरण कर मनुष्य विष्णुलोक को जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

द्वादशी में करने के लिये कर्त्तव्य के बारे में कात्ययन ने कहा हैं—

प्रातः स्नान करके हरि की पूजा कर उपवास को समापित करते हैं। हे केशव! इस व्रत से अज्ञान अंधकार में रहने वाले मुझे प्रसाद दायी हो। हे नाथ, आप दृष्टिप्रद होवें। मन्त्र जप पूर्वक हरि (एकादशी) के लिये व्रती उपवास को निवेदन कर द्वादशी में पारण करते हैं।

सूतक प्रभृति अशौच में दान और अर्चन नहीं होते हैं, केवल उपवास मात्र किया जाता है। इसके बारे में कूर्मपुराण में कहा हैं—काम्य उपवास का प्रारम्भ होने के बाद बीच में मृत या सूतक होने से भी उस स्थल पर काम्यव्रत किया जाता है। किन्तु दान और अर्चन वर्जित है।

वाराहपुराण में भी सूतक में लोक स्नान करके मन में हरि को प्रणाम कर एकादशी में भोजन न करने से व्रत लोप नहीं होता है। मृत सूतक में भी एकादशी में भोजन नहीं किया जाता है। द्वादशी में स्नान पूर्वक विष्णु को प्रणाम कर भोजन किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र परित्यक्तं देवार्चनादिकं सूतकान्ते कुर्यात्। तदुक्तं मत्स्यपुराणे--

सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् ।
दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते ॥ इति ।

स्त्रीणां रजोदर्शनेऽपि न व्रतत्यागः, किन्तु देवार्चनादिरहितं सूतकादाविवोपवासमात्रं कार्य्यम्। तदाह पौलस्त्यः—

एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि ॥ इति ।

ऋष्यशृङ्गोऽपि—

संप्रवृत्तेऽपि रजसि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् ॥ इति ।

सत्यव्रतोऽपि—

प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् ।
न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन ॥ इति ।

शुद्ध्यनन्तरं देवतार्चनादिकं कुर्यात्। तथा च स्मृतिः—

स्नात्वा भर्त्तुश्चतुर्थेऽह्नि शुद्धा स्यात्परिचारणे ।
पञ्चमेऽहनि शुद्धा स्यात् दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ इति ।

नित्योपवासप्रकारो विष्णुरहस्येऽभिहितः—

अथ नित्योपवासी चेत् सायं प्रातर्भुजिक्रियाम् ।
वर्जयेन्मतिमान् विप्र संप्राप्ते हरिवासरे ॥ इति ।

ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि—

इति विज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम् ।
विशेषनियमासक्तोऽहोरात्रं भुक्तिवर्जितः ॥
निगृहीतेन्द्रियः श्रद्धासहायो विष्णुतत्परः ।
उपाष्यैकादशीं पापान्मुच्यते नात्रसंशयः ॥ इति ।

वहां परित्यक्त देवताओं के अर्चन प्रभृति कर्म सूतक के बाद किये जाते हैं। इसके बारे में मत्स्यपुराण में कहा है—

सूतक के बाद लोग स्नान करके जनार्दन की पूजा करके और विधिपूर्वक दान देकर व्रत का फल पाते हैं ।

स्त्रियों की रजस्वला अवस्था होने से भी व्रत का त्याग नहीं होता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किन्तु देवता की पूजा नहीं होती केवल सूतक की तरह उववास ही किया जाता है। इसके बारे में पौलस्त्य ने कहा है—

रजोदर्शन होने पर भी नारी एकादशी में भोजन नहीं करती है। ऋष्यशृंग ने भी—रजोऽवस्था की प्रवृत्ति होने पर भी द्वादशी व्रत का त्याग नहीं हो सकता। सत्यव्रत ने भी—दीर्घ काल को अभिव्याप्त होकर पूर्व से तपस्या में लगी हुई स्त्रियों का रजोदर्शन व्रत का उपरोध कभी भी नहीं करता है।

शुद्धि के बाद देवताओं के अर्चन प्रभृति कर्म कर सकती है। फिर भी स्मृति में कहा है—रजोदर्शन के बाद स्नान करके चौथा दिन में पति के साथ मिलने के लिये शुद्धा है। किन्तु पांचवें दिन में देवता और पितृकर्म के लिये शुद्धा होती है। विष्णुरहस्य में नित्य उपवास का प्रकार अभिहित किया है—हरिवासर अर्थात् एकादशी को प्राप्त होने पर नित्य उपवास करने वाला मतिमान् विप्र प्रातः और सायंकाल में भोजन क्रिया को छोड़ता है।

ब्रह्मवैवर्त्त में भी—इस प्रकार समझ कर एकादशी में उपवास कर लोग विशेष नियमों से आसक्त दिन और रात में भोजन त्याग कर इन्द्रियनिग्रह करके श्रद्धापूर्वक विष्णु भावना से तत्पर होकर एकादशी व्रत करते हैं। वैसे होने से पाप से मुक्त होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं हैं।

शक्तौ सत्यां नियमानाचरेत्। तथा च कात्यायनः—

शक्तिमांस्तु पुनः कुर्यान्नियमं सविशेषणम्॥ इति।

यदा द्वादश्यां श्रवणानक्षत्रं भवेत्तदा शुद्धैकादशीमपि परित्यज्य द्वादश्यामेवोपवसेत्। तथा च नारदीये—

शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी श्रवणान्विता।
तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यान्तु पारणम्॥ इति।

तथा—

एकादश्यां त्वविद्धायां संप्राप्ते श्रवणे तदा।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा सर्वपापक्षयावहा॥ इति।

यदा त्रयोदश्यां द्वादश्याः कलाद्वयश्चाप्युदये संभवति तदा द्वादशी-काल एव पारणं कार्यम्। तदुक्तं नारदीये—

भवेद्यत्र त्रयोदश्यां द्वादश्याश्च कलाद्वयम्।
कलाद्वयं त्रयं वाऽपि द्वादशीं न त्वतिक्रमेत्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ॥ इति ।

ननु द्वादश्यतिक्रमेऽपि नास्ति दोषः, 'सा तिथिः सकला ज्ञेया' इति वचनेन साकल्याभिधानादिति चेत् । मैवम् । साकल्यस्य स्नानादिविषयत्वात् । वाक्यशेषे "स्नान-दान-जपादिषु" इत्यभिधानात् । पारणे तु न साकलवचनं प्रवर्त्तते "तिथिस्तात्कालिकी स्मृता" इति वचनात् । द्वादशीकाले यदा पारणं, तदा ततः प्रागेव सर्वाः क्रियाः कर्त्तव्याः ।

शक्ति के अनुसार नियमों का आचरण करना है । इसके बारे में कात्यायन ने कहा है—फिर भी शक्तिमान् लोक विशेष नियम को मानना है । जब द्वादशी में श्रवणा नक्षत्र होता है तब शुद्ध एकादशी को भी छोड़कर द्वादशी में भी उपवास करना है । नारदीय पुराण में कहा है—

शुक्ल पक्ष में हो या कृष्णपक्ष में भी हो, द्वादशी में अगर श्रवणा नक्षत्र होता है तो उभय पक्षों में पारण करते हैं । फिर भी—

अविद्धा एकादशी में श्रवणा नक्षत्र होने पर सब पापों को क्षयित करने वाली शुद्धा द्वादशी में उपवास किया जाता है ।

जब त्रयोदशी के उदय काल में द्वादशी की दो कला रहती है तब द्वादशी काल में ही पारण किया जाता है । नारदीयपुराण में कहा है—

जिस त्रयोदशी में द्वादशी भी दो कला तक रहती है, उसमें दो या तीन कला में द्वादशी का अतिक्रम नहीं किया जाता है । क्योंकि पारण और मरण के समय में रहनेवाली तिथि पारण और मरण के लिये मानी जाती है ।

यहां एक प्रश्न होता है कि द्वादशी का अतिक्रम से कोई दोष नहीं है । क्योंकि "वही तिथि सकल दिन में रहती है" इस साकल्य वचन के अनुसार सब काल में रहने के लिये युक्ति मिलती है । यह प्रश्न ठीक नहीं है । क्योंकि यह साकल्य वचन की स्नान, दान प्रभृति विषयों में प्रवृत्ति है । वाक्य शेष अर्थात् अर्थवाद में "स्नान, दान और जप प्रभृतियों में" (मानी जाती है ।) ऐसा कहा है । पारण में साकल्य वचन की प्रवृत्ति नहीं होती । तात्कालिक तिथि की प्रवृत्ति होती है" इस वचन के अनुसार वही निष्पत्ति कीजाती है । द्वादशी के काल से जब पारण का विधान हुआ है, इससे वैसा मालूम पड़ता है कि उस काल से पहले सब क्रियाओं की समाप्ति करनी चाहिये ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदुक्तं नारदीये—

अल्पायामथ विप्रेन्द्र, द्वादश्यामरुणोदये।
स्नानार्चनक्रियाः कार्या दानहोमादिसंयुताः॥
एतस्मात् कारणात् विप्रः प्रत्यूषे स्नानमाचरेत्।
पितृतर्पणसंयुक्तं स्वल्पां दृष्ट्वा च द्वादशीम्॥
महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लंघिता नृणाम्।
करोति धर्महरणमस्नातेव सरस्वती॥ इति।

गरूडपुराणेऽपि—

यथा स्वल्पा द्वादशी स्यादपकर्षो भुजेर्भवेत्।
प्रातर्माध्याह्निकस्यापि तत्र स्यादपकर्षणम्॥ इति।

स्कन्दपुराणेऽपि—

यदा भवेदतीवाल्पा द्वादशी पारणादिने।
उषःकाले द्वयं कुर्यात् प्रातर्माध्याह्निकं तदा॥ इति।

तत्र पारणासंभवे अद्भिः पारणं कुर्यात्। तदाह कात्यायनः—

सन्ध्यादिकं भवेन्नित्यं पारणन्तु निमित्ततः।
अद्भिस्तु पारयित्वाऽथ नैत्यिकान्ते भुजिर्भवेत्॥ इति।

देवलोऽपि—

सङ्कटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत्कथम्।
अद्भिस्तु पारणं कुर्यात् पुनर्भुक्तं न दोषकृत्॥ इति।

यदा कलयाऽपि द्वादशी नास्ति, तदा त्रयोदश्यामपि पारणं कुर्यात्।

नारदीय पुराण में कहा है—हे विप्र श्रेष्ठ! अरुणोदय काल में द्वादशी स्वल्प रहने पर भी उस काल में दान और होम के साथ स्नान और अर्चन प्रभृति कार्यों का अनुष्ठान कर्त्तव्य है। इस कारण से प्रत्यूष में विप्र स्नान करता है। उसके साथ स्वल्प द्वादशी को देख कर पितृतर्पण भी करता है। द्वादशी का लंघन से लोगों की खूब हानि होती है। सरस्वती में स्नान नहीं करने से जैसे धर्महानि होती है, वैसे वहाँ धर्महरण होता है।

गरूड़पुराण में भी—जैसे स्वल्प द्वादशी में भोजन का अपकर्ष होता है, वैसे प्रातः और माध्याह्निक कर्म के लिये अपकर्ष होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्कन्दपुराण में भी पारण दिन में जब द्वादशी अतीव अल्प रहती है, तब उषा काल में प्रातः और मध्याह्न इन दोनों का कृत्य अनुष्ठित होता है।

वहां पारण की संभावना न होने से पानी से पारणा कर लेना चाहिये। इसके बारे में कात्यायन ने कहा है—सन्ध्या प्रभृति कर्म नित्य होते हैं। किन्तु पारण नैमित्तिक होता है। पानी के द्वारा पारण करके नित्य कर्म के बाद में भोजन किया जाता है।

देवल ने भी—विषम संकट उपस्थित होने पर द्वादशी में कैसे पारण होता है ? उस पर पानी से फिर भोजन करने से कोई दोष नहीं होता है।

जहां एक कला तक भी द्वादशी की उपस्थिति नहीं मिलती उस पर त्रयोदशी में पारण किया जाता है।

तदुक्तं नारदीये—

त्रयोदश्यान्तु शुद्धायां पारणं पृथिवीफलम्।
शतयज्ञाधिकं वाऽपि नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ इति।

पारणञ्च नैवेद्य-तुलसीमिश्रितं कुर्यात्। तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

कृत्वा चैवोपवासन्तु योऽश्नाति द्वादशीदिने।
नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम् ॥ इति।

इसके बारे में नारदीय पुराण में कहा है—शुद्धा त्रयोदशी में पारण से पृथ्वी के दान से होने वाला फल की तरह फल मिलता है। सौ संख्यक यज्ञों के फल बिना संशय से मिलता है। पारण नैवेध और तुलसी के साथ होता है।

स्कन्दपुराण में कहा है—उपवास करके जो द्वादशी दिन में खाता है, वह अगर नैवेद्य और तुलसी के साथ खाता तो कोटि संख्यक हत्या का पाप भी विनाश हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथैकादशीमहिमा

तत्र वसिष्ठः—

एकादशीसमुत्थेन वह्निना पातकेन्धनम् ।
भस्मतां याति राजेन्द्र अपि जन्मशतोद्भवम् ॥
नेदृशं पावनं किञ्चिन्नराणां भुवि विद्यते ।
यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम् ॥
तावत्पापानि देहेऽस्मिंस्तिष्ठन्ति मनुजाधिप ।
यावन्नोपवसेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम् ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं भवति प्रभो ।
एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत् ॥
एकादशीसमं किञ्चित् पापत्राणं न विद्यते ।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्रप्रदायिनी ।

वसिष्ठ ने कहा है—हे राजेन्द्र ! एकादशी व्रत से उत्पन्न अग्नि से सौ जन्मों में सञ्चित पातकरूप इन्धन भस्म हो जाता है। विश्व में लोगों के लिये इसकी तरह कोई पवित्र नहीं है। जैसे भगवान् विष्णु पद्मनाभ के दिन (एकादशी) पातक को नष्ट कर देता है। हे मनुजाधिप ! पद्मनाभ के शुभ दिन एकादशी में जो जब तक उपवास नहीं करता है उसके देह में पापों की उपस्थिति तब तक रहती है। हजारों अश्वमेध और सौ वाजपेय याग एकादशी की षोलहवीं कला के बराबर नहीं हो सकते हैं। ग्यारह इन्द्रियों से जो पाप होता हैं, हे प्रभु ! एकादशी के उपवास से इन सब का विलय हो जाता है। पाप से त्राण करने वाला एकादशी के तुल्य कोई नहीं है। स्वर्ग और मोक्ष को देनेवाली एकादशी राज्य और पुत्र को भी देती है।

सुकलत्रप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ।
न गङ्गा न गया भूप, न काशी न च पुष्करम् ॥
न चापि कौरवं क्षेत्रं न रेवा न च देविका ।
यमुना चन्द्रभागा च तुल्या भूप हरेर्दिनम् ॥
अनायासेन राजेन्द्र प्राप्यते वैष्णवं पदम् ।
चिन्तामणिसमा ह्येषा ह्यथवाऽपि निधेः समा ॥
साङ्कल्पपादपप्रख्या देवदेवोपमा तथा ॥ इति ।

अस्यामेकादश्यां यान्युपवासप्रतिनिधिरूपाणि एकभक्तनक्ता-याचितादीनि तेषां प्रतिपदुक्तन्यायेनोपवासतिथावनुष्ठानम् । यानि तु स्वतन्त्राण्येकभक्तनक्तादीनि तेषां पूर्वोक्तन्यायेन मध्याह्नादिव्यापि तिथि-ग्रहणप्राप्तौ दशमीविद्धा प्रतिषिद्ध्यते द्वादशीकल्पे—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्णाविद्धां दिनार्धेन नन्दां पूर्णामपि त्यजेत् ।
यदीच्छेदात्मसन्तानं नियमेषु चतुर्ष्वपि ॥
नोपोषितश्च नक्तश्च नैकभक्तमयाचितम् ।
नन्दायां पूर्णविद्धायां कुर्यादैश्वर्यमोहितः ॥
एकादशीयुता शस्ता द्वादश्या समुपोषणे ।
नक्ते चायाचिते नित्यमेकभक्ते तथाऽनघ ।
नक्तं वाऽयाचितं तात नैकभक्तमथाहरेत् ।
दशमीसहितं दानमनर्थं हरिवासरे ॥ इति ।

दिनार्धेन सार्धसप्तमुहूर्त्तैरित्यर्थः । एतदेवाभिप्रेत्य 'दिक्यरुचदशभिस्तथा' इत्युदाहृतम् । तथा—

सार्धसप्तमुहूर्त्तैस्तु वेधोऽयं बाधते व्रतम् ॥ इति

इतो न्यूनवेधे तु तिथ्यन्तरवन्मध्याह्नादिव्याप्ति र्ग्रहीतव्या ।

इत्येकादशी निर्णयः ।

यह उत्तम पत्नी, शरीर और आरोग्य भी देती है। हे राजा ! गंगा, गया, काशी, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रेवा, देविका, यमुना और चन्द्रभागा भी हरि के दिन एकादशी की बराबर नहीं हो सकती है। हे राजेन्द्र ! बिना परिश्रम के ही एकादशी से विष्णु के पद मिल जाता है। संकल्प वृक्ष की तरह वही एकादशी देवदेवोपमा (विष्णुरूपा) चिन्तामणि के साथ और नव निधि-तुल्य भी है।

इस एकादशी में उपवास के प्रतिनिधिरूप जो एकभक्त, नक्त और अयाचित प्रभृति है, उसके प्रतिपद में कहा गया न्याय से उपवास तिथि में ही अनुष्ठान होता है। जो स्वतन्त्र रूप से एकभक्त और नक्त प्रभृति है, पहले कहा गया न्याय के अनुसार उनके लिये मध्याह्न प्रभृति काल की व्याप्त होने वाली तिथि का ग्रहण होता है।

इससे द्वादशी कल्प में दशमी विद्धा का प्रतिषेध होता है। चार नियमों में अपनी वृद्धि को प्राप्त होने के लिये इच्छुक व्यक्ति के जरिये पूर्णविद्धा नन्दा पूर्णा होने पर भी दिन के अर्ध में भी छोड़ दी जाती है। जिसने उपवास या नक्त या एकभक्त अथवा अयाचित नहीं किया है उसके द्वारा पूर्णविद्धा नन्दा में व्रत किया जाता है। द्वादशी के साथ युक्त एकादशी उपवास के लिये प्रशस्त है। नक्त हो या अयाचित हो, अथवा एकभक्त भी हो। हे तात ! नक्त या अयाचित या एकभक्त दशमी के साथ युक्त हरिवासर अर्थात् एकादशी में अनर्थ होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दान भी वैसे अनर्थ है। यहां दिनार्ध का अर्थ सात और आधा मुहूर्त्त है।

इसीको हि अभिप्रेत करके "दिनपञ्चदशभिः" यह वचन उदाहरण के रूप में कहा गया है। फिर सात और आधा मुहूर्त्तों के द्वारा यह वेध व्रत को बाधा देता है। इस वेध से न्यून वेध स्थल में दूसरी तिथियों की तरह मध्याह्न प्रभृति व्याप्ति ग्रहणीय होती है।

इस प्रकार एकादशी का निर्णय होता है।

अथ द्वादशी निर्णीयते

सा च युग्मादिशास्त्रेण पूर्वविद्धा ग्राह्या। स्कन्दपुराणेऽपि—

द्वादशी च प्रकर्त्तव्या एकादश्यां युता विभो।
सदा कार्या च विद्वद्भिर्विष्णुभक्तैश्च मानवैः॥ इति।

उत्तरविद्धां प्रतिषेधति वृद्धवसिष्ठः—

द्वितीया पंचमी वेधाद्दशमी च त्रयोदशी।
चतुर्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथी॥ इति।

नन्वेवं सत्येकादश्युपवासो द्वादश्युपवासश्चेत्युभयमेकस्मिन्दिने प्राप्नोति। सत्यं, तथापि चोभयस्यान्योन्यं विरोधाभावात्सहैवानुष्ठानं भविष्यति। नन्वेकं व्रतमसमाप्य व्रतान्तरमनुष्ठातुमशक्यम्,

असमाप्ते व्रते पूर्वे नैव कुर्याद् व्रतान्तरम्॥

इति शास्त्रात्। मैवम्, इदं हि शास्त्रमेकव्रतस्य मध्ये व्रतान्तरोपक्रमं निषेधति। प्रकृते तु व्रतद्वयस्यापि सहैवोपक्रम तन्त्रेणानुष्ठानं भविष्यति। नन्वस्त्वेवं खण्डतिथौ संपूर्णतिथौ त्वेकादशीद्वादश्युपवासौ द्वौ नैरन्तर्येण प्राप्नुतः। तत्र पारणमन्तरेण प्रथमोपवासस्य असमाप्तत्वात् द्वितीयोपवासप्रक्रमो न संभवतीति चेत्।

यहां से द्वादशी का निर्णय हो रहा है। वह युग्म वचन के अनुसार द्वादशी पूर्वविद्धा होकर गृहीत होती है। स्कन्दपुराण में भी कहा है—

विष्णुभक्त विद्वान् लोगों के जरिये एकादशी के साथ युक्त होनेवाली द्वादशी की जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृद्ध वसिष्ठ ने उत्तरविद्धा प्रतिषिद्ध की है—

द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, त्रयोदशी और चतुर्दशी वेध के कारण उपवास स्थल में पूर्व और उत्तर तिथि को नाश करती हैं।

यहां एक प्रश्न होता है कि ऐसे होने से एकादशी में होनेवाला उपवास और द्वादशी में होनेवाला उपवास एक ही दिन में आ जाते हैं। ठीक है। तथापि दोनों के परस्पर विरोध होने से मिलकर अनुष्ठान होता है। फिर भी प्रश्न आता है कि एक व्रत को समाप्त न कर दूसरा व्रत का अनुष्ठान नहीं किया जाता है। क्योंकि पूर्व व्रत को असमाप्त कर अन्य व्रत नहीं किया जा सकता ऐसा शास्त्र है।

यह ठीक नहीं है। यह शास्त्र, एक व्रत के बीच में दूसरा व्रत का उपक्रम को निषेध करता है। प्रकरण के अनुसार दोनों ही व्रतों का एकबार उपक्रम का अर्थ है तन्त्र से अनुष्ठान करना। प्रश्न होता है—खण्डतिथि और सपूर्ण तिथि में एकादशी और द्वादशी दो उपवास निरन्तर प्राप्त होते हैं। इस स्थल में पहला उपवास का पारण के बिना व्रत की समाप्ति नहीं होती है, इसलिये दूसरा उपवास का प्रारंभ संभावित होता है ऐसा अगर प्रश्न होता है।

मैवम्, अद्भिः पारणं कृत्वा द्वितीयोपवासस्य प्रक्रमयितुं शक्यत्वात् तादृशन्तु पारणमशितानशितोभयात्मकम्। तत्राशितरूपत्वात् पूर्वोपवासं परिसमापयति। अनशितरूपत्वेनोत्तरोपवासं न विहन्ति। एतच्च द्व्यात्मकत्वं दर्शपूर्णमासप्रकरणे याजमानब्राह्मणे श्रूयते। "यदनश्नन्नुपवसेत्क्षोधुकः स्याद्यदश्नीयात् रुद्रोऽस्य पशूनभिमन्येत यदपोऽश्नाति तन्नैवाशितं नैवानशितं न क्षोधुको भवति नास्य रुद्रः पशूनभिमन्यते इति। तस्मादुदकपारणेनोपवासद्वयनिर्वाहः एतच्च सर्वतिथिसाधारणम्। प्रकृते त्वेकादशीद्वादश्योर्दैवतैक्यादुदकपारणमन्तरेणापि न कश्चिद्दोषः अतएव स्मर्यते—

एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत्।
न तत्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः॥ इति।

उपवासद्वयाशक्तौ केवलद्वादश्युपवासेनोभयोः फलं सिद्धयति। तथा च स्मृतिः—

एवमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्।
पूर्वोपवासजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वादश्यान्तु काम्योपवासो मार्कण्डेयेन दर्शितः—

द्वादश्यामुपवासेन सिद्धार्थो भूपं सर्वशः ।
चक्रवर्त्तित्वमतुलं सम्प्राप्नोत्यतुलां श्रियम् ॥ इति ।

इति द्वादशीनिर्णयः ।

तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि पानी से पारण कर दूसरा उपवास का प्रारंभ किया जा सकता है। इस प्रकार पारण भोजन और अभोजन के रूप में उभयात्मक होता है। इस स्थल में भोजन रूप के पक्ष में पहला उपवास समाप्त होता है और अभोजन रूप के पक्ष में दूसरा उपवास बाधित नहीं होता है। इन दो प्रकार को एक प्रकार से प्रकाश कराना दर्शपूर्णमास प्रकरण में याजमान ब्राह्मण में सुना है। जो न "खाकर उपवास करता है, वह क्षोधुक होता है, रुद्र उसको पशुफल देते हैं। जो जलपान करता है। उसके जरिये भोजन होता है, नहीं भी होता है, क्षोधुक भी नहीं होता है; अतः रुद्र उसको पशुफल देते है। इस कारण से जल पारण के द्वारा दो उपवासों का निर्वाह हो सकता है। सभी तिथियों के लिये यह साधारण नियम है। इस प्रकरण के अनुसार एकादशी और द्वादशी इन दोनों की देवता एक होने पर जल पारण के बिना भी कोई दोष नहीं है। इसलिये पारण किया जाता है।

एकादशी का उपवास करके द्वादशी का उपवास किया जाता है। यहाँ विधिलोप नहीं किया जाता है, क्योंकि उभयों की देवता हरि है। दो उपवासों को करने के लिये आशंका होने पर केवल द्वादशी में उपवास से उभयों की सिद्धि होती है। उभयों का फल भी मिलता है। इसलिये स्मृति में कहा है—

इस प्रकार एकादशी में भोजन करके द्वादशी में उपवास किया जाता है। इससे पूर्वदिन अर्थात् एकादशी का भी पुण्य सर्व-संपूर्ण रूप से मिलता है। द्वादशी में काम्य उपवास के लिये मार्कण्डे ने कहा है—

हे भूप! द्वादशी में उपवास करने से लोक सिद्धार्थ होता है। चक्रवर्त्ती होकर अतुल धनश्री को पाता है।

इस प्रकार द्वादशी का निर्णय हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ त्रयोदशी निर्णीयते

सा च शुक्लकृष्णपक्षभेदेन व्यवतिष्ठते। तत्र शुक्लत्रयोदशी पूर्वविद्धा ग्राह्य। तदुक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते—

त्रयोदशीप्रकर्त्तव्या द्वादशीसहिता मुने।
भूतविद्धा न कर्त्तव्या दर्शः पूर्णा कदाचन॥
वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्॥ इति।

यद्यप्यत्र शुक्लपक्षशब्दो नास्ति, तथापि कृष्णत्रयोदश्याः परविद्धायाः वाचनिकत्वात्पूर्वविद्धतायाः शुक्लपक्षविषयत्वं परिशिष्यते। सायङ्कालत्रिमुहूर्त्तमात्रव्यापित्वेन पूर्वविद्धतायां प्राप्तायां प्रतिपद इवापराह्णसंबन्धोऽपेक्षित इति द्रष्टव्यम्। तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

त्रयोदशी प्रकर्त्तव्या या भवेदापराह्णिकी॥ इति।

कृष्णत्रयोदश्याः परविद्धत्वमुक्तं निगमे—

षष्ठ्यष्टमी अमावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी।
एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वयुतास्तथा॥ इति।

यत्तु बृहद्वसिष्ठवचनम्—

द्वितीया पञ्चमी वेधाद्दशमी च त्रयोदशी।
चतुर्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथी॥ इति।

तच्छुक्लपक्षविषयम्। यदा तु कृष्णपक्षे परविद्धा न लभ्यते, तदा पूर्वविद्धा ग्राह्या। तदाह वसिष्ठः—

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी।
पूर्वविद्धाऽपि कर्त्तव्या यदि न स्यात्परेऽहनि॥ इति।

अनङ्गत्रयोदशी च पूर्वविद्धा। तदाह संवर्त्तः—

अब त्रयोदशी का निर्णय हो रहा है। शुक्ल और कृष्णपक्ष के अनुसार उसकी व्यवस्था होती है। वहां शुक्ल त्रयोदशी पूर्वविद्धा होकर गृहीत होती है। यह विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में कहा है—

हे मुनि! द्वादशी के साथ युक्त होने वाली त्रयोदशी की जाती है। चतुर्दशी के साथ युक्त अमावास्या नहीं की जाती है। किन्तु सावित्री व्रत को छोड़कर यह निष्पत्ति अटूट रहती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ अगर शुक्लपक्ष शब्द नहीं है तथापि कृष्ण त्रयोदशी परविद्धा होकर गृहीत होती है, इसके लिये स्वतन्त्र वचन मिलता है। अतः शुक्लपक्ष की त्रयोदशी पूर्वविद्धा होने पर माननीय होती है ऐसा परिशेष में समझ में आता है। सायंकाल में तीन मुहूर्त्त तक व्याप्ति होने पर पूर्वविद्धा होती है। अतः प्रतिपदा की तरह यहाँ अपराह्ण संबन्ध अपेक्षित है ऐसा द्रष्टव्य है। यह विषय स्कन्दपुराण में कहा है—

वह त्रयोदशी की जाती है जो अपराह्ण को व्याप्त है।

निगम में कृष्णत्रयोदशी परविद्धा होती है ऐसा कहा है—कृष्णपक्ष की षष्ठी, अष्टमी, त्रयोदशी और अमावास्या सब परविद्धा होकर पूज्य होती हैं। उनकी परवर्त्ती तिथि पूर्वविद्धा होकर माननीय होती है। इसके बारे में बृहद्वसिष्ठ ने भी वचन प्रकट किया है—

वेध के कारण द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, त्रयोदशी और चतुर्दशी उपवास स्थल में पूर्व और पर तिथि को नाश कर देती है।

यह शुक्ल पक्ष का विषय लेकर कहा गया है। जब कृष्णपक्ष में परविद्धा उपलब्ध नहीं होती है तब पूर्वविद्धा गृहीत होती है। वसिष्ठ ने कहा है—

एकादशी, तृतीया, षष्ठी और त्रयोदशी पूर्वविद्धा होने पर भी की जाती हैं अगर परदिन में नहीं हैं।

अनंगत्रयोदशी भी पूर्वविद्धा होती है। संवर्त्त ने कहा है—

कृष्णाष्टमी बृहत्तपा सावित्री वटपैतृकी।
अनङ्गत्रयोदशी रम्भा उपोष्याः पूर्वसंयुताः॥ इति

अनङ्गत्रयोदशी भविष्यत्पुराणे दर्शिता। "मार्गशीर्षेऽमले पक्षे" इत्युपक्रम्य व्रतं विधाय,

"अनङ्गेन कृता ह्येषा तेनानङ्गत्रयोदशी"

इत्युपसंहारात्।

नन्वमले पक्षे इत्यनेन शुक्लपक्ष एव तद्व्रतं विहितम्। तथा च त्रयोदशी प्रकर्त्तव्या द्वादशी सहिता इत्यनेन सामान्यशास्त्रेणैवानङ्गत्रयोदश्याः पूर्वविद्धत्वं प्राप्तम्। बाढम्, तदेवानेन विशेषशास्त्रेण विस्पष्टीक्रियते।

इति त्रयोदशीनिर्णयः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृष्णपक्ष की अष्टमी बृहत्तपा, सावित्री, वटपैतृकी, अनङ्ग त्रयोदशी और रंभा तृतीया पूर्वविद्धा होने पर उनमें उपवास किया जाता है।

अनंगत्रयोदशी के बारे में भविष्यत्पुराण में दर्शित किया है। "मार्गशीर्ष के शुक्ल पक्ष में इस प्रकार उपक्रम पूर्वक व्रत विधान करके अनंग ने की है, इसलिये यह अनंगत्रयोदशी के नाम से विहित है" इस वचन में उपसहार किया है।

प्रश्न होता है—"यहां शुक्लपक्ष शब्द से यह व्रत केवल शुक्ल पक्ष में विहित होता है। फिर भी द्वादशी के साथ युक्त त्रयोदशी की जाती है" इस सामान्य शास्त्रवचन से अनंग त्रयोदशी पूर्वविद्धा प्राप्त होती है। यह ठीक है किन्तु यहां विशेष वचन से इसे स्पष्ट की जाती है।

इस प्रकार त्रयोदशी का निर्णय हुआ॥

अथ चतुर्दशी निर्णीयते

अत्रापि शुक्लकृष्णपक्षभेदेन व्यवस्था भवति। तत्र युग्मशास्त्रेण[1] शुक्लचतुर्दशी परविद्धा ग्राह्या। तथा व्यासोऽपि—

शुक्ला चतुर्दशी ग्राह्या परविद्धा सदा व्रते॥ इति।

पूर्वविद्धाप्रतिषेध उत्तरविद्धाविधिश्चेत्युभयं भविष्यत्पुराणे पठ्यते—

सदा कार्या त्रयोदश्या न तु युक्ता चतुर्दशी।
पौर्णमासीयुता सा स्याच्चतुर्दश्या च पूर्णिमा॥

नारदीयेऽपि—

तृतीयैकादशी षष्ठी शुक्लपक्षे चतुर्दशी।
पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कर्त्तव्या परसंयुता॥ इति।

१. चतुर्दश्या च पूर्णिमा इति युग्मवचनम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब चतुर्दशी का निर्णय हो रहा है। यहां भी शुक्ल और कृष्णपक्ष के भेदानुसार व्यवस्था होती है। वहां युग्मवचन के अनुसार शुक्लपक्ष की चतुर्दशी परविद्धा गृहीत होती है। फिर भी व्यास ने कहा है—

सब व्रतों में शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी परविद्धा गृहीत होती है।

पूर्वविद्धा का प्रतिषेध और परविद्धा का विधान में दोनों के बारे में भविष्यत्पुराण में पाठ मिलता है—

चतुर्दशी सब समय में त्रयोदशी के साथ युक्त होने से गृहीत नहीं होती है, पौर्णमासी के साथ युक्त होने पर गृहीत होती है। नारदीयपुराण में भी कहा है—

शुक्लपक्ष की तृतीया, एकादशी, षष्ठी और चतुर्दशी पूर्वविद्धा नहीं की जाती हैं किन्तु परविद्धा की जाती हैं।

यत्तु भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतं[1] भविष्योत्तरेऽभिहितं, तत्र पूर्वविद्धा परविद्धा वा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति केचिदाहुः। लिङ्गञ्च तत्र प्रमाणत्वेनोदाहरन्ति—

मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरित्तटे।
ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससम्॥
चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक् पृथक्॥ इति।

अत्र 'मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्' इत्यनेन मध्याह्नस्य कर्मकालत्वं प्रतीयते। अतस्तद्व्यापिनी तिथि र्ग्राह्या। नैतत्सारम्। यथा विनायकव्रते "मध्याह्ने पूजयेन्नृप" इति मध्याह्नः कर्मकालत्वेन विहितः, नात्र तथा विधिरस्ति। उदाहृतन्तु लिङ्गमर्थवादगतत्वान्न स्वातन्त्रेण कस्यचिदर्थस्य प्रमापकं किन्तु सति प्रमाणान्तरे तस्योपोद्बलकं भवति। न चात्र प्रमाणान्तरं पश्यामः।

अतो न मध्याह्नः कर्मकालः। तथा सति 'दैवे ह्यौदयिकी ग्राह्या'

---

१. अनन्तव्रतं प्रकृत्य अग्निपुराणे (१९२।९)—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान्समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमो नमस्ते॥

वचनमिदं पूजादोरकबन्धनमन्त्रत्वेन कृत्यरत्नाकरे (पृ.२९४) तिथितत्त्वे (पृ. १२३) च दृश्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति वचनेन युग्मशास्त्रादिभिश्चोदयव्यापिनी ग्राह्या[1]। सा च तिथ्यन्तरवत्त्रिमुहूर्त्तेति मुख्यः कल्पः द्विमुहूर्त्तेत्यनुकल्पः। एवं च सति शिष्टाचारोऽप्यनुगृहीतो भवति। चैत्रश्रावणचतुर्दश्यौ शुक्लपक्षे अपि रात्रियोगिन्यौ ग्राह्ये। तथा च बौधायनः—

मधोः श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी।
सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या परा पूर्वाह्णगामिनी॥ इति।

परा मासान्तरवर्त्तिनी शुक्लचतुर्दशी। कृष्णचतुर्दशी तु पूर्वविद्धैव ग्राह्या। तथा चापस्तम्बः—

कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या परविद्धा न कर्हिचित्॥ इति।

भाद्रपदमास की शुक्ल चतुर्दशी में अनन्त व्रत के बारे में जो भविष्योत्तर पुराण में अभिहित किया है, उसमें पूर्वविद्धा या परविद्धा होने से कुछ नहीं है, किन्तु मध्याह्न में समाप्त होने से ही गृहीत होती है वैसा कुछ लोग मानते हैं। इसके बारे में लिंग प्रमाण के उदाहरण को भी उपस्थापित करते हैं—

नदी के किनारे पर मध्याह्न के भोजन समय में लाल रङ्ग के वस्त्रों को पहनी स्त्रियों के समूह को वही शीला देखती थी जो कि चतुर्दशी में अलग-अलग भक्तिपूर्वक देवपूजन में रत थीं।

यहां मध्याह्न के भोजन समय में इस व्यवहार से मध्याह्न कर्मकाल है ऐसा प्रतीत होता है, अतः उस काल को व्याप्त होनेवाली तिथि माननीय होती है। किन्तु यह सारवस्तु नहीं है। जैसे विनायक व्रत में मध्याह्न में पूजते हैं इस वाक्य से मध्याह्न कर्मकाल के रूप में विहित है, वैसा यहां विधि नहीं हैं। लिंगप्रमाण के रूप में जो उदाहरण दिया है वह अर्थवाद के रूप में कहा है। इसलिये स्वतन्त्र रूप से इसकी कोई प्रामाणिकता नहीं है। किन्तु दूसरा प्रमाण होने पर उसको उपोद्बलक के रूप में स्वीकार करते हैं। यहां कोई दूसरा प्रमाण हम नहीं देखते हैं।

---

१. कमलाकरेण सिद्धान्तोऽयं न गृह्यते। उक्तं च तेन निर्णयसिन्धौ यथा—

"तत्त्वं तु······पूर्वा परा वा मध्याह्नव्यापिन्येव मुख्या। माधवस्तु सामान्यवाक्यान्निर्णयं कुर्वन् भ्रान्त एव। अनन्तव्रतस्य पुराणान्तरेष्वभावान्निबन्धान्तरेष्वभावाच्च वचनं निर्मूलमेव॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः मध्याह्न कर्मकाल नहीं है। वैसे होने से "देव कार्य में उदयकाल को व्याप्त होने वाली तिथि गृहीत होती है" और युग्म वचनों के द्वारा भी उदय व्यापिनी तिथि ग्राह्य होती है। वही तिथि दूसरी तिथि की तरह तीन मुहूर्त्त वाली होने पर अनुकल्प के रूपमें गृहीत होती है। ऐसे होने से शिष्टाचार भी अनुगृहीत होता है। चैत्र और श्रावण मास की शुक्ल चतुर्दशी रात में योग होने पर गृहीत होती है। इसके बारे में बौधायन ने कहा है–

मधु अर्थात् चैत्रमास एवं श्रावण की शुक्ल चतुर्दशी रात को व्याप्त होने से पूर्वाह्न को स्पर्श करनेवाली परा तिथि गृहीत होती है। यहां परा का अर्थ दूसरा मास की शुक्ल चतुर्दशी है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी पूर्वविद्धा होने पर गृहीत होती है। इसके बारे में आपस्तम्ब ने कहा है—

कृष्णपक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी पूर्वविद्ध होने पर गृहीत होती है। किन्तु कभी भी परविद्धा गृहीत नहीं होती है।

अपराह्णव्यापित्वे तु शुक्लचतुर्दश्यपि पूर्वविद्धा ग्राह्या। तथा स्कन्दपुराणे—

चतुर्दशी च कर्त्तव्या त्रयोदश्या युता विभो।
मम भक्तै र्महा बाहो भवेद्या चापराह्णिकी॥
दर्शविद्धा न कर्त्तव्या राकाविद्धा कदाचन॥ इति।

अत्र मम भक्तैरितीश्वरोक्तलिङ्गाच्छिव-चतुर्दशीविषयत्वं द्रष्टव्यम्!

तदेव व्रतान्तरेषु चतुर्दशी निर्णीता।

अपराह्न को व्याप्त होने के प्रसंग रहने से भी शुक्ल चतुर्दशी पूर्वविद्धा होने पर गृहीत होती है। स्कन्दपुराण में कहा है—

हे विभु! त्रयोदशी के साथ युक्त होनेवाली चतुर्दशी की जाती है। हे महाबाहु! जो चतुर्दशी अपराह्न को व्याप्त होती है उस को मेरे भक्त करते हैं। यहां अमावास्या और पूर्णिमा विद्धा चतुर्दशी नहीं की जाती है।

यहां मेरे भक्त लोग ऐसे कहे गए ईश्वर के द्वारा उक्त लिंग से शिव चतुर्दशी के विषय वस्तु को देख लें, समझलें।

इसी प्रकार दूसरे व्रतों में चतुर्दशी का भी निर्णय होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ शिवरात्रिव्रतं निर्णीयते

तत्रेदञ्चिन्त्यते। किमयं शिवरात्रिशब्दो रूढः, किं वा यौगिकः उत लाक्षणिकः, अथ वा योगरूढ़? इति किं तावत् प्राप्तम्? रूढ़ः इति। कुतः? तिथिविशेषे शिवरात्रिशब्दस्य संज्ञारूपेण स्मरणात्। तथा च नागरखण्डे—

माघमासस्य शेषे या प्रथमा फाल्गुनस्य च।
कृष्णे चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्त्तिता॥ इति।

कामिके—

माघमासेऽसिते पक्षे विद्यते या चतुर्द्दशी।
तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सर्वपुण्यशुभावहा॥ इति

यद्यप्यत्र शिवस्य रात्रिः शिवरात्रिरित्यवयवार्थः प्रतीयते तथापि योगात् रूढ़े र्बलवत्वाद्योगेऽत्र न ग्राह्याः। प्राबल्यञ्चाश्वकर्णादिशब्दे ष्ववगम्यते। आश्वस्य कर्णः इत्यवयवार्थप्रतीतावपि तमुपेक्ष्य रूढ्या वृक्षविशेषवाचित्वस्वीकारात्॥

अब शिवरात्रि व्रत का निर्णय होता है। यहाँ ऐसी चिन्ता होती है। क्या ये शिवरात्रि शब्द रूढ है या यौगिक या लाक्षणिक या योगरूढ़ है? किस प्रकार पक्ष को विचार में ले सकते हैं? 'रूढ़' पक्ष भी हो सकता है, क्योंकि तिथि-विशेष के बारे में शिवरात्रि शब्द की संज्ञा रूप से स्मरण होता हैं। नागरखण्ड में कहा है—

माघमास के अन्त में या फाल्गुन मास की पहली कृष्णचतुर्दशी शिव-रात्रि के नाम से कीर्तित होती है। कामिक में भी—

सब प्रकार पुण्य माघमास के कृष्ण पक्ष में जो चतुर्दशी है, वही रात्रि और शुभ को देनेवाली शिवरात्रि है।

यहां अगर 'शिव की रात्रि शिवरात्रि' इस प्रकार अवयव से (षष्ठी तत्पुरुष से) सूचित अर्थ प्रतीत होता है, तथापि 'योग से रूढ़ि बलवती है' इस न्याय से योग यहां ग्रहीत नहीं होना चाहिये। प्राबल्य के भी अश्वकर्णादि शब्दों से समझा जा सकता है। अश्व का कर्ण इस प्रकार अवयव अर्थ की प्रतीति में भी उसकी उपेक्षा करके रूढ़ि के द्वारा वृक्ष विशेष को सूचित करने वाला अर्थ यहां समझ में आता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ननु काकदन्तपरीक्षा-समानोऽयं विचारः, यद्ययं शिवरात्रिशब्दो रूढः यदि वा यौगिकः उभयथाऽप्यनुष्ठाने विशेषाभावात्। मैवम्। अस्त्येव महान् विशेषः, यौगिकत्वे शिवसंबन्धिव्रतजातं सर्वं यस्यां यस्यां रात्रावनुष्ठीयते, सा सर्वा शिवरात्रिः स्यात्। माघमासादि-पदञ्च तदानीमुपलक्षणं भवेत्। रूढिपक्षे तु माघमासादेर्विशेषणत्वात् तद्विशिष्टाया एकस्या एव तिथेः शिवरात्रित्वम्। अतः कर्त्तव्य एव विचारः।

तत्र अहीनन्यायेन रूढिमेवाद्रियामहे। तस्य च न्यायस्य संग्राहकावेतौ श्लोकौ भवतः[1]—

अहीनस्य द्वादशेति प्रकृतौ विकृतावुत।
न हीन इति योगेन प्रकृतौ तद्धि कल्प्यताम्॥
शीघ्रधीहेतुतो[2] रूढेरहीने विकृताविदम्।
उत्कृष्यतां द्वादशत्वं साह्नात् प्राकृतकर्मणः॥ इति।

अयमर्थः[3]—ज्योतिष्टोमे श्रूयते। "तिस्र एव साह्नस्योपसदो द्वादशाहीनस्य यज्ञस्य सवीर्यत्वाय" इति। अह्ना सह वर्त्तते— इति साह्न एकदिननिष्पाद्यो ज्योतिष्टोमः! तस्य प्राचीनेषु दिनेष्वङ्गत्वेनानुष्ठेया होमा उपसच्छब्दवाच्याः। तास्तिस्र उपसदो विधाय पुनरहीन-शब्दवाच्यस्य कर्मणो द्वादशोपसदो विधीयन्ते।

यहां एक प्रश्न होता है कि 'कौआ की दन्त गणना' की तरह यह विचार निरर्थक होता है। अगर यह शिवरात्रि शब्द रूढ़ होता तो उभय प्रकार का

---

१. जैमिनीयन्यायमालायामेतद्विषयका भिन्नाः श्लोका—लभ्यन्ते। तद्यथा—(३।३।१३)

तिस्र एव हि साह्ने स्युरहीने द्वादशेत्यतः।
ज्योतिष्टोमे द्वादशत्वमथवाहर्गणे भवेत्॥
अस्तु प्रकरणादाद्यो नाहीनत्वं विरुध्यते।
प्रकृतित्वान्न केनापि हीनोऽतोऽत्र विकल्प्यताम्॥
साह्लाद् भिन्नाहीनसंज्ञा रूढ़ैषाहर्गणे भवेत्।
षष्ठी श्रुत्या द्वादशत्वं प्रक्रियातोऽपकृष्यताम्॥ इति।

२. रूढिश्च विग्रहनिरपेक्षत्वाच्छीघ्रबुद्धिहेतुरिति विस्तरे पङ्क्तिः।

३. अर्थोऽयं जैमिनीयन्यायमालायाः विस्तरटीकातो भिन्नः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुष्ठान में कोई विशेष नहीं है।" यह ठीक नहीं है। क्योंकि बड़ा विशेष है। यौगिक होने पर शिवजी से संबन्धित सब प्रकार के व्रत जिस जिस रात में अनुष्ठित होते हैं, वे सब की रात शिवरात्रि हो जायगी। केवल माघ मास प्रभृति पद वहां उपलक्षण के रूप में रह जायेंगे। रूढ़ि पक्ष में माघमासादि विशेषण के रूप से रहने के कारण माघमास की ही एक तिथि शिवरात्रि होती है। अतः यह विचार करने लायक है।

वहां अहीन न्याय से रूढि को ही हम आदर करेंगे, इस न्याय के संग्राहक ये दो श्लोक हैं। यथा—'बारह अहीन के' इस वाक्य प्रकृति में या विकृति में कहां कल्पित है? इसके बारे में संशय होता है। 'जो हीन नहीं है वह अहीन है' इस योग अर्थात् व्युत्पत्ति से प्रकृति के रूपमें इसकी कल्पना होती है। रूढि खूब शीघ्र बुद्धि में आजाने के कारण प्रकृति कर्म से उत्कर्ष करके अहीन को विकृति के रूप में समझना चाहिये।

इसका आशय यह है—ज्योतिष्टोम प्रकरण में सुना है कि—साह्न की तीन उपसद है, अहीन की बारह है। अहन् का अर्थ दिन। अहन् के साथ जो है वह साह्न अर्थात् एकदिन में निष्पन्न होनेवाला ज्योतिष्टोमयाग। इसके पूर्व दिनों में अङ्ग के रूप में अनुष्ठान योग्य होम उपसत् शब्द से अभिहित किया जाता है। ये तीन उपसद् को विधान करके फिर अहीन शब्द से अभिहित कर्म की बारह उपसद् का विधान किया जाता है।

तत्र संशयः। किमिदं द्वादशोपसत्त्वं द्विरात्राद्यहीनप्रकृतिभूते साह्नशब्दवाच्ये प्रकृते ज्योतिष्टोमे निविशते आहोस्विदहीनशब्दवाच्ये विकृतिरूपे द्विरात्रादावुत्कृष्यते? इति। तदर्थमिदं चिन्त्यते अहीनशब्दो यौगिको रूढो वा? इति। तत्र न हीनः इति व्युत्पत्तेर्विस्पष्टं प्रतिभासाद्यौगिक एवायम्। तदर्थश्च प्रकृतावुपपन्नः। साङ्गप्रधानस्य सर्वस्य साक्षाद्वाचकशब्दैरेवोपदिष्टत्वेन हीनत्वाभावात् विकृतौ तु विशेष एव वाचकशब्दैरुपदिश्यते। इतरत्सर्वमतिदेशात्प्राप्यते।

अतः उक्तिसङ्कोचात्[1] विकृतेर्हीनत्वम्। एवं च सति अहीन-

---

१. "प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या" इति न्यायेन प्रकृतिगता धर्मा विकृतावतिदृश्यन्ते। एतेन विकृतिगतानुष्ठानं प्रकृत्यनुष्ठानवद् भवति। विकृतौ स्वतन्त्रविधानाभावेन प्रकृतिविकारस्याङ्गीकार एव सङ्कोचभावः अतः प्रकृतिधर्मावलम्बनेन विकृतिहीनेति मन्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दस्य ज्योतिष्टोमे प्रवृत्तिसंभवात् प्रकरणानुग्रहाच्च तत्रैव द्वादशत्वं निविशते। न च पूर्ववाक्यविहितेन त्रित्वेन बाधः शङ्कनीयः वाक्ययोः समानबलत्वेन व्रीहियववद्विकल्पोपपत्तेः। तस्माज्ज्योतिष्टोम एव द्वादशत्वविधिरिति प्राप्ते ब्रूमः।

विकृतिरूपे द्विरात्रादाविदं द्वादशत्वं विधीयते। कुतः अहीनशब्दस्य श्रौतप्रयोगबाहुल्येन तत्रैव रूढत्वात्। रूढिश्च शीघ्रबुद्धिहेतुत्वेन योगाद् बलीयसी। योगे त्ववयवार्थं प्रथमतो निश्चित्य पश्चात् समुदायार्थो निश्चेतव्य इति विलम्बः। न चात्र प्रकरणविरोधः शङ्कनीयः बलीयसा वाक्येन प्रकरणस्य बाधितत्वात्[1], तस्मात् इदं द्वादशत्वं प्रकृतज्योतिष्टोमादुत्कृष्य विकृतिषु द्विरात्रादिषु निवेशनीयम् इति।

उस स्थल में संशय होता है यथा—क्या बारह उपसदों का निवेश दो रात्रों के साध्य अहीन की प्रकृति और साह्न शब्द से कथित ज्योतिष्टोम में होता है या अहीन शब्द से अभिहित विकृति रूप दो रात्रि में उत्कृष्य होता है ? इस विषय में ऐसी चिन्ता होती है कि—अहीन शब्द यौगिक है या रूढ है ? जो हीन नहीं है वह 'अहीन' है इस व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है। अतः अहीन शब्द यौगिक है। इसका अर्थ है–अहीन प्रकृति है। अङ्ग और प्रधान सब ही साक्षात् वाचक शब्दों से उपदिष्ट होने से हीन नहीं होती है। विकृति में तो विशेष ही वाचक शब्द से उपदिष्ट होता है।

अन्य सब अतिदेश से प्राप्त है। अत एव उक्ति संकोच से विकृति हीन है। वैसे होने से ज्योतिष्टोम में अहीन शब्द की प्रवृत्ति संभावित है। इसलिये प्रकरण के अनुसार वहां ही बारह उपसदों का विषय निवेशित किया जा सकता है। किन्तु पूर्व वाक्य से विहित त्रित्व से इसकी बाधा के बारे में शंका होती है। क्योंकि दो वाक्यों का समान बलत्व के कारण व्रीहियव की तरह विकल्प की उपपत्ति हो जायगी। इस कारण से ज्योतिष्टोम में ही बारह उपसदों का विधान होता है। ऐसा अगर कहा जाता, तो सिद्धान्त में ऐसा हम कहते हैं।

---

१. "श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षाद्" (पू. मी.) इति सूत्राद् वाक्यापेक्षया प्रकरणस्य परवर्त्तित्वे दौर्बल्यात् वाक्येन तस्य बाध उचितः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकृति के स्वरूप द्विरात्र प्रभृति में इस द्वादशत्व (बारह उपसद) विधि प्रवर्तित होता है। क्योंकि श्रौत प्रयोग की बहुलता के कारण अहीन शब्द वहां ही रूढ़ है। रूढ़ि शीघ्र समझ लेने के लिये एक प्रकृष्ट कारण है। इस लिये वह योग से बलीयसी होती है। किन्तु योग में अवयव अर्थ को पहले निश्चित कर बाद में समुदाय अर्थ को निश्चित किया जाता है। इस कारणसे विलम्ब होता है। इसमें कोई प्रकरण का विरोध है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। क्योंकि वाक्य बलवान् से वह बाधित हो जाता है। इसलिये इस रूपक द्वादशत्व (बारह उपसद) को (प्रकृति के स्वरूप) ज्योतिष्टोम से उत्कर्षण करके विकृति के स्वरूप द्विरात्र प्रभृति में निवेशित किया जाता है।

अत्र यथा रुढोऽहीनशब्दस्तथा शिवरात्रिशब्दोऽपि रूढः इति प्रथमः पक्षः। अपर आह—यौगिक एवायं शिवरात्रिशब्दः। कुतः? शिवसंबन्धमुपजीव्य तच्छब्दस्य प्रवृत्तत्वात्। तथा च स्कन्दपुराणे—

माघस्य कृष्णपक्षे या तिथिश्चैव चतुर्दशी।
शिवरात्रिस्तु सा ख्याता सर्वपापनिषूदनी॥
तस्य रात्रिः समाख्याता शिवरात्रिः शिवप्रिया।
तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु सदा संक्रमते हरः॥
यानि कानि च लिङ्गानि चराणि स्थावराणि च।
तेषु संक्रमते देवि तस्यां रात्रौ यतो हरः।
शिवरात्रिस्ततः प्रोक्ता तेन सा हरवल्लभा॥ इति।

शिवरहस्ये—

तत्प्रभृत्येव देवर्षे माघकृष्णचतुर्दशी।
शिवरात्रिः समख्याता प्रियेयं त्रिपुरद्विषः॥ इति।

अवन्तिखण्डे—

माघफाल्गुनयोर्मध्ये असिता या चतुर्दशी।
शिवरात्रिस्तु सा ख्याता सर्वपापनिषूदनी॥ इति।

तस्मात् शिवसंबन्धिनी रात्रिः शिवरात्रिः इति यौगिकोऽर्थः प्रोक्षणीन्यायेन ग्रहीतव्यः। तस्य च न्यायस्य संग्राहावेतौ श्लोकौ—

यहाँ जैसे अहीन शब्द रूढ़ है वैसे शिवरात्रि शब्द भी रूढ़ है ऐसा पहला पक्ष है। दूसरा कहता है कि शिवरात्रि शब्द यौगिक है, क्योंकि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिवजी के सम्बन्ध को उपजीव्य करके उस शब्द की प्रवृत्ति होती है। इसके बारे में स्कन्दपुराण में कहा है—

माघमास के कृष्ण पक्ष में जो चतुर्दशी तिथि है वही सब पापों को नष्ट करनेवाली शिवरात्रि के नाम से ख्यात है। वह रात्रि शिव जी की रात्रि है। इसलिये यह शिव को प्रिय है। उस रात्रि में सब लिंगों में सर्व्वदा हर (शिव) विद्यमान रहते हैं। जो कोई लिंगचर हो या स्थावर हो, सर्वत्र उस रात्रि में शिव जी विद्यमान रहने के कारण हे देवि! उस शिवरात्रि को हरवल्लभा के नाम से पुकारते हैं।

शिवरहस्य में कहा है—हे देवर्षि, उस कारण से माघकृष्ण चतुर्दशी को त्रिपुरारि की प्रिय शिवरात्रि के नाम से आख्यायित करते हैं।

अवन्तिखण्ड में कहा है—माघ और फाल्गुन के बीच में जो कृष्ण चतुर्दशी है उसको सब पापों को नष्ट करनेवाली शिवरात्रि कहते हैं।

इस कारण से शिव के साथ संबन्ध रखनेवाली रात्रि शिवरात्रि होती है। यह यौगिक अर्थ प्रोक्षणी न्याय से गृहीत होता है। इस न्याय का दो संग्राहक श्लोक हैं—

> संस्कारजातियोगेषु कं ब्रूते प्रोक्षणीरिति।
> संस्कारं सार्वभौमत्वात् जातिमुद्वेजनोक्तितः॥
> अन्योन्याश्रयतो नाद्यो न जातिः कल्प्यशक्तितः।
> यौगिकः क्लृप्तशक्तित्वात् क्लृप्ति र्व्याककरणे स्थिता॥ इति।

अयमर्थः—दर्शपूर्णमासाङ्गतया श्रूयते—"प्रोक्षणीरासादयति"[1] इति। तत्र संशयः। किमयं प्रोक्षणीशब्दोऽभिमन्त्रणासादनाद्युदकसंस्कारं ब्रूते, किं वा जलावान्तरजातिविशेषम्, अहोस्वित् प्रोक्ष्यन्ते पात्राण्याभिरिति योगं तत्र संस्कारं ब्रूते इति तावत्प्राप्तम्। कुतः? सार्वभौमत्वात्। सर्वेषु हि संस्कारविधिवाक्यादिप्रदेशेषु प्रोक्षणीशब्दः श्रूयते। "प्रोक्षणीरासादयेध्माबर्हिरुपसादये" प्रैषवाक्ये प्रयोगः। प्रोक्षणीरासादयति इति विधिवाक्ये। एवमभिमन्त्रणादिवाक्यान्यप्युदाहरणीयानि। तस्मात् संस्कारं ब्रूते इत्येकः पक्षः। जातिं ब्रूते इति पक्षान्तरम्। लोके हि जलक्रीडासु "प्रोक्षणीभिद्वेरुजिताः स्मः इत्युदकजातौ प्रयोगो दृश्यते।

---

१. तैत्तिरीयब्राह्मणम् ३।२।९।१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र न तावत् संस्कारं ब्रूते इत्याद्यः पक्ष उपपद्यते। कुतः ? अन्यो[1]-न्याश्रयत्वात्। नापि जातिं ब्रूते इति द्वितीयः पक्षो युक्तः। उदकजातौ प्रोक्षणीशब्दशक्ते र्व्यवहारे पूर्वमक्लृप्तत्वेनतः परं शक्तेः कल्पनीयत्व-प्रसङ्गात्। न च योगोऽपि शक्तिः कल्पनीया व्याकरणेनैव क्लृप्तत्वात्। व्याकरणे हि 'उक्ष' सेचने[2] इत्यस्माद्धातोः करणे ल्युट्प्रत्ययेन शब्दो व्युत्पादितः। तथा सति प्रकर्षेणोक्ष्यते अनेन इति योगेन सेचनसाधन-मुदकादिकं सर्वं प्रोक्षणशब्दवाच्यं संपद्यते। प्रकृते तु स्त्रीशब्दवाच्या-नामपां सेचनसाधनत्वाद्बहुवचनस्य प्रोक्षणशब्दस्य ङीप्प्रत्ययान्तत्वेना प्रोक्षणीरिति द्वितीयाबहुवचनान्तः शब्दो निष्पद्यते।

संस्कार और जाति के योगों में प्रोक्षणी को क्या कहते हैं ? संस्कार सार्वभौम है और जाति उद्वेजन उक्ति है। अन्योन्याश्रय के कारण से यहां पहला पक्ष ग्रहणीय नहीं होता है। कल्पशक्ति होने के कारण जाति भी नहीं होती है। क्लृप्त शक्ति होने के कारण प्रोक्षणी शब्द यौगिक है। वही क्लृप्ति व्याकरण शास्त्र में उपलब्ध होती है।

इसका आशय यह है—दर्शपूर्णमास के अङ्गरूप से श्रुति में सुना है कि "प्रोक्षणीरासादय"। वहां संशय है। यथा—क्या यह प्रोक्षणीशब्द अभिमन्त्रण और आसादनादि जल के संस्कार को बतलाता है या जल के अवान्तर जाति विशेष को समझाता है। अथवा पात्रों का प्रोक्षण किया जाता है इससे इस प्रकार योग को करता है। क्योंकि सर्वत्र वैसा प्रस्ताव है। सब स्थलों में अर्थात् संस्कार के बारे में उपलब्ध विधिवाक्यों के स्थानों में प्रोक्षणी शब्द सुना है। जैसे प्रोक्षणी का आसादन करता है इस प्रकार विधि-वाक्य में है। इस प्रकार अभिमन्त्रादि वाक्यों का भी उदाहरण दिया जा सकता है। उस कारण से संस्कार को ही कहता है वैसा पहला पक्ष है। दूसरा पक्ष के अनुसार जाति को ही कहते हैं। लोकसमाज में जलक्रीडा को उद्देश्य करके "प्रोक्षणी के द्वारा हम उद्वेजित हैं" वैसा प्रयोग से जल की समूहता (उदक जाति) मालूम होती है।

वहां संस्कार को कहने वाला पहला पक्ष नहीं माना जाता है। क्योंकि यहां अन्योन्याश्रय दोष होता है। जाति को भी नहीं मानते हैं वैसा दूसरा पक्ष है। उदक जाति प्ररिपक्षी में प्रोक्षणी शब्द की शक्ति का व्यवहार होने

१. अन्योन्याश्रयस्य दोषत्वं पाणिनीये "हलन्त्यम्" इति सूत्रस्य द्विरुक्तत्व-विचारे स्पष्टम्।

२. सि. कौ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर पहले अक्लृप्ता के कारण इसके बाद में शक्ति का कल्पनाप्रसंग आ जाता है। योग के द्वारा भी शक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है क्योंकि व्याकरण के द्वारा शक्ति क्लृप्त है। व्याकरण में सेचन अर्थ को प्रकाश करनेवाला "उक्ष" धातु से करण अर्थ में ल्युट्प्रत्यय के द्वारा प्रोक्षणी शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। वैसे होने पर "प्रकर्ष भाव से सेचित (उक्ष्यते) इसके द्वारा" इस प्रकार योग से सेचन क्रिया के साधन उदक अर्थात् पानी प्रभृति सब प्रोक्षणी शब्द से वाच्य होते हैं। इस प्रकरण में अप शब्द स्त्रीलिंग है। इसलिये सेचन के साधन होने पर प्रोक्षणी शब्द ङीप् प्रत्ययान्त होता है और द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में 'प्रोक्षणीः' यह शब्द निष्पन्न हुआ है।

ननु अहीनाधिकरणे रूढेः प्राबल्यमुक्तं, प्रोक्षण्यधिकरणे च योगस्य प्राबल्यमुच्यते। अतः परस्परविरोधः। मैवम्, लब्धात्मिका हि रूढिर्योगमपहरति इति। न च प्रोक्षणीशब्दे रूढिः लभ्यते वृद्धव्यवहारेण जातावव्युत्पादितत्वात्। अहीनशब्दोऽपि द्विरात्रादिषु न वृद्धैर्व्युत्पादित इति चेत्। न व्याकरणे व्युत्पादितत्वात्। "अह्नः खः क्रतौ" इत्यनेन[1] वाररुचेन वार्त्तिकेनाहन्शब्दात् खप्रत्ययमुत्पाद्य तस्येनादेशं कृत्वा क्रतुविषयतया व्युत्पादितोऽहीनशब्दः।

ननु एवं सति घट्ट-कुटी-प्रभात-न्यायस्तव प्रसज्येत, यतोऽहीनशब्दे योगं परिहर्त्तुकामेन भवता व्याकरणमुपजीव्य योगे पर्यवसानं कृतम्। नायं दोषः, पूर्वपक्षिणेऽभिमते समासलक्षणे योगे पर्यवसानस्यानभिधानात्। न च नञ्-समासोऽपि व्याकरणेषु व्युत्पादितः इति शङ्कनीयम्। नञ्समासस्वीकारे सति "अयज्ञो वा एषः" इत्यादाविवाहीनशब्दस्याद्युदात्तत्वप्रसङ्गात्। मध्योदात्तो ह्ययं शब्द आम्नायते।

तस्मात् पक्षद्वये योगसाम्येऽपि समासरूपयोगं पूर्वपक्ष्यभिमतं निराकृत्य श्रौतरूढिः सिद्धान्तिना समाश्रिता। तामेव रूढिं प्रकटयितुं वररुचिना वार्त्तिकं कृतम्। अतः सत्यपि प्रकृति-प्रत्ययविभागे यौगि-

---

१. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (४।२।४३) इति पाणिनिसूत्रमाधृत्य "अह्नः खः" (४।२।४३।१) इति प्रथमं वार्त्तिकं क्रतौ (४।२।४३।२) इति द्वितीयं वार्त्तिकं वररुचिकृतम्। अत्र अह्नः खो वक्तव्यः। अह्नां समूहोऽहीन इति अहीनशब्दव्याख्यानं व्याकरणमहाभाष्ये पतञ्जलिना कृतम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कत्वं न शङ्कितुं शक्यते । यथा गोत्वजातौ रूढस्यापि गोशब्दस्यौणादिकसूत्रेषु "गमेर्डो"[1] इति प्रकृति-प्रत्ययविभागं कृत्वा गच्छतीति गौरिति व्युत्पत्तिः प्रदर्शिता, तद्वदत्राप्यवगन्तव्यम् ।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि अहीनाधिकरण में रूढ़ि का प्राबल्य प्रदर्शित किया है। प्रोक्षणी अधिकारण में योग का प्राधान्य कहा है। अतः परस्पर विरोध होता है। किन्तु ऐसा प्रश्न नहीं हो सकता। प्रसिद्धि के कारण यह है कि रूढ़ि योग को अपहरण करती है। किन्तु प्रोक्षणी शब्द में कोई रूढ़ि उपलब्ध नहीं है। क्योंकि वृद्ध व्यवहार के द्वारा सामान्यतः यह व्युत्पादित नहीं है। अहीनशब्द भी द्विरात्रादिओं के अर्थ में वृद्धों ने व्युत्पादित नहीं किया है ऐसा अगर प्रश्न होता तो ठीक नहीं है, क्योंकि व्युत्पत्ति व्याकरण के द्वारा होती है। "अह्नः खः क्रतौ" इस वररुचि का वार्तिक के अनुसार अहन् शब्द से ख प्रत्यय का ईन आदेश कर क्रतु विषय के अर्थ में अहीनशब्द व्युत्पादित होता है।

प्रश्न होता है कि ऐसा अगर होता तो घट-कुटी-प्रभात न्याय आप के लिए भी प्रसक्त होता है। क्योंकि अहीन शब्द में योग (अर्थात् व्युत्पत्ति) को परिहार करने के लिये प्रवृत्त होकर आपने व्याकरण को उपजीव्य कर योग में पर्यवसान किया है। इसमें कोई दोष नहीं है। पूर्वपक्षी के मतानुसार समास लक्षण से लक्षित योग में पर्यवसान अभिहित नहीं किया है। नञ् समास भी व्याकरणों में व्युत्पादित किया है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। नञ् समास का स्वीकार होने से "यह अयज्ञ है" इसी तरह अहीन शब्द आदि-उदात्त होता है। किन्तु यह शब्द मध्योदात्त के रूप में श्रुति में मिलता है।

इस कारण से दोनों ही पक्षों में समान योग रहने के कारण भी पूर्व पक्षी के मतानुसार होनेवाला समास रूप योग को निराकरण कर श्रौतरूढ़ि

---

१. "गमे र्डोः" इति कृदन्ते औणादिकं सूत्रम् । तत्रोक्तं यथा—

गौर्नादित्ये बलीवर्दे किरणक्रतुभेदयोः ।
स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि ॥
नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाललोमसु ।
बाहुलकाद् द्युतेरपि डोः ॥ इति ।

अनेन प्रत्ययेन गौरित्यस्यानेकेऽर्था प्रतिपद्यन्ते । यथा—

गौः स्वर्गे वृषभे रश्मौ वज्रे चन्द्रे पुमान् भवेत् ।
अर्जुने नेत्रदिग्वाणभूवाग्वारिषु ॥ इति अ० को०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धान्ती ने आश्रित की है। इस रूढ़ि को ही प्रकट करने के लिये वररुचि ने वार्तिक किया है। अत एव प्रकृति-प्रत्यय विभाग रहने पर भी यह अहीन शब्द यौगिक है इसमें शंका नहीं हो सकती है। जैसे गोत्व जाति में रूढ़ गो शब्द का औणादिक सूत्र 'गमेर्डो' के अनुसार प्रकृति प्रत्यय-विभाग करके गच्छति इति अर्थात् जो चलता है वह गौ है इस प्रकार व्युत्पत्ति प्रदर्शित की है। इस पद्धति को अवलम्बन करके यहां भी अवगति होनी चाहिये।

प्रोक्षणीशब्दे न रूढिज्ञापनाय किञ्चित् सूत्रं स्वतन्त्रं विहितमस्ति। किं तर्हि सर्वधातुसाधारणेनावयवार्थव्युत्पादकेन ल्युट्प्रत्ययेन व्युत्पादितत्वात् यौगिक एवायं प्रोक्षणीशब्दः। तस्मात् प्रोक्षणीशब्दवच्छिवरात्रिशब्दो यौगिक इति द्वितीयः पक्षः।

अन्ये तु पुन र्मन्यन्ते। लाक्षणिकोऽयं शिवरात्रिशब्दः, तिथिवाचकेन तेन शब्देन तत्तिथौ क्रियमाणस्य व्रतविशेषस्य लक्ष्यमाणत्वात्। अतएवेशानसंहितायामुक्तम्—

शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।
आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥
अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी।
तत्तिथावेव कुर्वीत शिवरात्रिव्रतं व्रती॥
शिवरात्रिव्रतं कार्यं भूतान्वितमहानिशि।
शिवरात्रि व्रतं देव करिष्ये शिवसन्निधौ॥
निर्विघ्नं कुरु मे देव भक्तग्राह्यमहेश्वर॥ इति।

नारदीयसंहितायाम्—

अर्धरात्रयुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी।
शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा॥ इति।

पद्मपुराणेऽपि—

अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं यदि युक्ता चतुर्दशी।
तत्तिथावेव कुर्वीत शिवरात्रिव्रतं व्रती॥ इति।

प्रोक्षणी शब्द में तो रूढ़ि को प्रदर्शित करने के लिये कोई विशिष्ट सूत्र विहित नहीं है। सब धातुओं से होनेवाला अवयवार्थ के व्युत्पादक ल्युट् प्रत्यय के द्वारा व्युत्पादित होने से प्रोक्षणी शब्द यौगिक है। इसलिये प्रोक्षणी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द की तरह शिवरात्रि शब्द यौगिक होता है ऐसा दूसरा पक्ष के रूप में माना जाता है।

दूसरे शिवरात्रि शब्द को लाक्षणिक के रूप से चाहते हैं। क्योंकि शिवरात्रि शब्द तिथि वाचक होने पर उस तिथि में व्रत विशेष का अनुष्ठान लक्षित होता है। अत एव ईशानसंहिता में कहा है कि—

शिवरात्रि व्रत का अर्थ सब पापों का नाश करने वाला है। चाण्डाल से लेकर मनुष्यों तक भोग और मोक्ष का प्रदायक है। अर्धरात्र से पहले और ऊर्ध्व से चतुर्दशी युक्त होने पर व्रती शिवरात्रि व्रत उस तिथि में करते हैं। महानिशा में भूत अर्थात् चतुर्दशी के साथ युक्त होने से शिवरात्रि व्रत किया जाता है। हे देव! शिव जी के निकट में शिवरात्रि व्रत को मैं करूँगा हे महेश्वर! इस व्रत को निर्विघ्न कीजिये।

नारदीय संहिता में भी कहा है—माघमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी जब अर्धरात्र से युक्त होती है, तब रात में जागरण पूर्वक शिवरात्रि व्रत किया जाता है।

पद्मपुराण में भी कहा है—अर्धरात्रि के निम्न और ऊर्ध्वभाग के साथ जब चतुर्दशी युक्त होती है, उस तिथि में व्रती शिवरात्रि व्रत करता है।

स्कन्दपुराणे—

शिवरात्रि व्रतं देव कथयस्व महेश्वर ॥ इति।

न च कालवाचकस्य शब्दस्य लक्षकत्वमदृष्टचरमिति शङ्कनीयम्, कालवाचकाभ्याममावास्यापौर्णमासीशब्दाभ्यां यागत्रय[1]रूपयोरिष्ट्योस्तत्कालसंबन्धिन्योरुपलक्षितत्वात्। अत एव श्रूयते—"य एवं विद्वान् पौर्णमासीं यजते य एवं विद्वानमावास्यां [2]यजते" इति। स्मृतिष्वपि[3] सर्वत्र तिथिवाचकैः शब्दैस्तत्संबन्धिनो व्रतविशेषा लक्ष्यन्ते। स्कन्दपुराणे—

---

१. आग्नेयः अग्नीषोमीय उपांशुश्चेति त्रय एकस्मिन् गणे आग्नेयः, ऐन्द्र दधि, ऐन्द्रं पयश्चेति त्रय एकस्मिन् गणे अन्तर्भवन्ति एवं मिलित्वा षड् यागाः दर्शपूर्णमासावनुष्ठीयन्ते।

२. तैत्तिरीयसंहिता—१।६।९।१

३. काले हि कर्म चोद्यते न च कर्मणि काल इति स्मार्त्तविवृत्त्या काले एव कर्म लक्ष्यते तदाधारकत्वात् गङ्गायां घोष इव।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जन्माष्टमी नैव कृता कदाचित्।
कल्पायुतं पच्यते रौरवेषु ॥ इति।

ऋष्यशृङ्गोऽपि—

एकादशीं तु कुर्वीत क्षीयते द्वादशी यदा ॥ इति।

एवमन्यत्राप्युदाहार्यम्। तस्मात् लाक्षणिकोऽयं शिवरात्रिशब्द इति तृतीयः पक्षः।

अतः सिद्धान्तं ब्रूमः। योगरूढ एवायं शिवरात्रिशब्दः। योगो द्वितीयपक्षोपन्यासेन दर्शितः, रूढिश्च प्रथमोपन्यासेन। तत्रैकस्य स्वीकारे सत्यन्यविषयं शास्त्रं, तदनुग्राहक उदाहृतो न्यायश्च बाध्येत। न च यौगिकत्वे सति शिवव्रतोपेतेषु त्रयोदश्यादितिथ्यन्तरेषु शिवरात्रित्वं प्रसज्येत इति वाच्यं तस्यातिप्रसङ्गस्य रूढ्या निवारणात्।

यथा पङ्कजशब्दे 'पङ्काज्जायते' इति योगं स्वीकृत्य भेकादिष्वतिप्रसङ्गो रूढिस्वीकारेण निवार्यते। तद्वदत्रापि योगरूढतायां न कोऽप्यतिप्रसङ्गः। न च मुख्ये संभवति लक्षणाऽऽश्रयणमुचितम्।

स्कन्दपुराण में कहा है—

हे देव महेश्वर ! शिवरात्रि व्रत के बारे में मुझे बतईये ॥

काल वाचक शब्द के रूप में शिवरात्रि शब्द लक्षक शब्द होने के लिये कोई पुरातन प्रमाण नहीं है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। कालवाचक शब्द के रूप में अमावास्या और पौर्णमासी इन दो शब्दों के द्वारा तीन-तीन इष्टियाँ उस काल के संबन्धी उपलक्षित होती हैं।

इसलिये श्रुति में सुना है कि इस प्रकार जो विद्वान् पौर्णमासी में याग करता है, जो विद्वान् अमावास्या में याग करता है। स्मृतियों में भी सर्वत्र तिथि वाचक शब्दों के द्वारा उनके संबन्ध में आनेवाले व्रत विशेष लक्षित होते हैं। स्कन्दपुराण में कहा है—

जिसने कभी भी जन्माष्टमी नहीं की है, वह अयुत संख्यक कल्प तक रौरव नरकों में पचता है। ऋष्यशृङ्ग ने भी कहा है—द्वादशी क्षीण होने पर एकादशी को करता है।

इस प्रकार दूसरी जगह में भी उदाहरण उपलब्ध है। इसलिये शिवरात्रि शब्द लाक्षणिक होता है ऐसा तीसरा पक्ष के रूप में माना जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः सिद्धान्त को हम बतायेंगे। शिवरात्रि शब्द योगरूढ़ शब्द है। दूसरा पक्ष का उपन्यास के द्वारा योग प्रदर्शित किया है। रूढ़ि का पहले उपन्यास किया है। इस स्थल में एक पक्ष का स्वीकार कर लेने से दूसरा पक्ष का विषय, उसका अनुग्राहक उदाहृत न्याय भी बाधित हो जाते हैं। यौगिक होने पर शिव व्रत के संयुक्त त्रयोदशी प्रभृति दूसरी तिथिओं में शिवरात्रि की प्रसक्ति हो जा सकती है ऐसा वहाँ कहा जा सकता है। किन्तु यह अतिप्रसंग रूढ़ि के द्वारा बाधित हो जाता है।

जैसे पङ्कज शब्द में पंक से जात = पैदा होता है इस योग (व्युत्पत्ति) को स्वीकार करके 'भेक' प्रभृतियों में होनेवाला अतिप्रसंग रूढ़ि स्वीकार करने से निवारित होता है। इस प्रकार वहां भी योगरूढ़ होने पर कोई अतिप्रसंग नहीं हो सकता है। लक्षणा का आश्रय उचित नहीं है अगर मुख्यार्थ है।

अथोच्यते, लक्षणया अभावे व्रतविषयत्वं न स्यात् इति। तन्न। बहुव्रीहिस्वीकारे योगेनैव तत्सिद्धेः। शिवस्य प्रिया रात्रिर्यस्मिन् व्रतेऽङ्गत्वेन विहिता तद् व्रतं शिवरात्र्याख्यम्। तस्मात् निर्मन्थ्यन्यायेनात्र योगरूढः शिवरात्रिशब्दः। तस्य च न्यायस्य सङ्ग्राहकः[1] श्लोकः —

निर्मन्थ्यो यौगिको योगरूढो वा योगभासनात्।
यौगिकोऽचिरजातेऽग्नौ नियते योगरूढिभाक्॥

अस्यायमर्थः। इष्टकाचयने श्रूयते, 'निर्मन्थ्येनेष्टकाः पचन्ति' इति। तत्र संशयः, किमयं निर्मन्थ्यशब्दो यौगिकः, किं वा योगरूढ इति। निःशेषेण मथ्यते इति योगस्य प्रतीयमानत्वात् प्रोक्षणीन्यायेन यौगिक इति पूर्वः पक्षः।

अत्र द्वावग्नी विद्येते चिरनिर्मथितोऽचिरनिर्मथितश्च। चयनं प्रक्रम्योखां निर्माय तस्यामुखायां कञ्चित् कालं धारणाय योऽग्निर्निर्मथ्यते, सोऽचिरनिर्मथितः। तेनेष्टकाः पच्यन्ते, तस्यैव प्रत्यासन्नत्वात्। तथा

---

१. "तथा निर्मन्थ्ये" (पू. मी. १।४।१२) इति जैमिनीयसूत्रमुपजीव्य प्रवृत्तोऽयं न्यायः। जैमिनीयन्यायमालायां तु इत्थं विषय उपन्यस्तः यथा—

रूढि यौगी योगरूढिर्वा निर्मन्थ्यस्य वर्त्तनम्।
आद्यौ पूर्ववदन्त्योऽचिरजाते नवनीतवत्॥ इति।

जै. न्या. १।४।१० (२८)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

च मथनद्वयाग्निद्वितयसाधारण्येऽप्यचिरनिर्मथितमग्निं नियन्तुं रूढिराश्रयणीया।

यथा वा, 'नावनीतं घृतम्' इत्यत्र नवनीतजन्यत्वयोगस्य चिराचिरयोरुभयोः साधारण्येऽपि नूतन एव घृते नावनीतशब्दो लोके प्रसिद्धे नियम्यते। तद्वदत्राप्यवगन्तव्यम्। तथा च सति प्रतीयमानयोगस्यापरिहृतत्वात्। नियत्यै रूढिस्वीकाराच्च योगरूढोऽयं निर्मन्थ्य इति राद्धान्तः।

उत्तर के रूप में कहा जाता है कि लक्षणा का अभाव होने पर भी व्रत का विषय यह नहीं होता है ऐसा अगर कहा जाता तो ठीक नहीं हैं। क्योंकि यह बहुव्रीहि समास का स्वीकार होने पर योग के द्वारा उसकी सिद्धि होती है। शिव की प्रिय रात्रि जिस व्रत के अङ्ग रूप में विहित है उस व्रत को शिवरात्रि की संज्ञा होती है! इसलिए निर्मन्थ्यन्याय से यहां शिवरात्रि शब्द योगरूढ़ होता है। उस न्याय के संग्राहक श्लोक वैसा है—

"निर्मन्थ्य शब्दः यौगिक या योगरूढ़ ? इनमें किस प्रकार शब्द होता है ? व्युत्पत्ति अर्थात् योग रहने के कारण यौगिक शब्द हो सकता है। कुछ समय तक रहने के कारण अग्नि के अर्थ में यह शब्द नियत रूप से व्यवहृत होने पर योगरूढ़ होता है।

इसका आशय यह है। इष्टक चयन के प्रकरण में वेद में सुना है कि "निर्मन्थ्य के द्वारा ईंटे का पाक किया जाता है" इसमें संशय होता है कि क्या यह निर्मन्थ्य शब्द यौगिक या योगरूढ़ है। निःशेष रूप से मथन करना इस योग का प्रतीयमान होने के कारण प्रोक्षणी न्याय के अनुसार यह शब्द यौगिक होता है ऐसा पूर्वपक्ष का मत है।

यहाँ दो अग्नि हैं। एक चिरनिर्मथित और दूसरी अचिरनिर्मथित है। चयन प्रकरण में सुना है कि उखा निर्माण करके इस उखा में कुछ काल तक धारण करने के लिए जिस अग्नि का निमर्थन होता है वह अग्नि अचिर निर्मथित होती है। इससे ईंटों का पाक होता है क्योंकि वही अग्नि प्रत्यासन्न अर्थात् निकटवर्त्ती है। इस तरह दो प्रकार अग्नि के लिए मथन का ग्रहण होने से अचिर निर्मथित अग्नि को नियत करने के लिए रूढि का आश्रम लिया जाता है।

जैसे "नावनीत ही घृत है" इसमें नवनीत अर्थात् माखन से जात इस प्रकार योग का चिर और अचिर इनमें दोनों अग्नियों के अर्थ में सामान्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप से गृहीत होने पर भी नूतन घृत के अर्थ में नवनीत शब्द समाज में प्रसिद्ध है। इस प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। वैसे होने से प्रतीयमान योग नहीं परित्यक्त होता है। नियतता संपादन करने के लिए रूढ़ि का स्वीकार होने से निर्मन्थ्य शब्द योगरूढ़ होता है। इस प्रकार सिद्धान्त होता है।

अनेनैव न्यायेन शिवरात्रिशब्देऽपि योगरूढिराश्रीयते। तत्र शिवस्य रात्रिः शिवरात्रिरिति तत्पुरुषसमासेन योगेन प्रवर्त्तमानः शब्दो रूढ्या माघकृष्णचतुर्दशीरूपे कालविशेषे नियम्यते। शिवस्य रात्रिर्यस्मिन् व्रते इति बहुव्रीहिसमासेन प्रवृत्तः शब्दो रूढ्या व्रतविशेषे नियम्यते।

तच्च शिवरात्रिव्रतमेकादशीजयन्तीव्रतवत् संयोगपृथक्त्व न्यायेन नित्यं काम्यं चेत्युभयविधम्। तत्र नित्यत्वमकरणप्रत्यवायवीप्सानित्यनिश्चल-शब्दैरवगन्तव्यम्। तत्राकरणे प्रत्यवायः स्कन्दपुराणे पठ्यते—

परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिः परात्परम्।
न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्॥
जन्तु र्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः॥ इति।

वीप्साऽपि तत्र पठिता —

वर्षे वर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता।
शिवरात्रौ महादेवं कामं भक्त्या प्रपूजयेत्॥ इति।[1]

नित्यनिश्चलशब्दौ च तत्रैव —

माघकृष्णचतुर्दश्यां यः शिवं शंसितव्रतः।
मुमुक्षुः पूजयेन्नित्यं स लभेदीप्सितं फलम्॥ इति।
अर्णवो यदि वा शुष्येत् क्षीयते हिमवानपि।
मेरुमन्दरलङ्काश्च श्रीशैलो विन्ध्य एव च॥
चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्॥ इति च।

इसी प्रकार न्याय से शिवरात्रि शब्द में भी योगरूढ़ि का आश्रय लिया जाता है। वहाँ शिव की रात्रि शिवरात्रि इस तत्पुरुष समास के द्वारा होने वाला योग से प्रवर्तित शब्द रूढि के द्वारा माघ कृष्ण चतुर्दशीरूपक

१. पू० मी० ४।३।३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कालविशेष में नियत होता है। शिव की रात्रि जिस व्रत में इस बहुव्रीहि समास से प्रवृत्त शब्द रूढि के द्वारा व्रतविशेष के अर्थ में नियत होता है।

वह शिवरात्रि व्रत एकादशी और जयन्ती की तरह संयोग पृथक्त्व न्याय से नित्य और काम्य दो प्रकार है। वह नित्यत्व प्रत्यवाय, वीप्सा, नित्य और निश्चल प्रभृति शब्दों से समझ में आता है। अकरण से प्रत्यवाय होता है। इसके बारे में स्कन्दपुराण में कहा है—

शिवरात्रि व्रत से कोई बड़ा दूसरा व्रत नहीं है। परात्पर ईश रूद्र त्रिभुवनेश्वर को जो भक्ति पूर्वक नहीं पूजता है वह हजारों जन्म तक निःसंशय शरीर ग्रहण करता है। वीप्सा भी वहाँ पठित है—

हे महादेवी! वर्ष वर्ष में शिवरात्रि में नर और पतिव्रता नारी भक्ति पूर्वक महादेव को पूजते हैं। नित्य और निश्चल शब्द वहां मिलते हैं—

कथित व्रत के अनुसार माघकृष्ण चतुर्दशी में जो मुक्तिकामी शिव जी को नित्य पूजता है, वह इच्छित फल को पाता है। समुद्र शुष्क हो सकता है, हिमालय क्षीण हो सकता है, मेरू, मन्दर, लंका, श्रीशैल और विन्ध्य प्रभृति पर्वत कभी चल सकते हैं किन्तु शिवव्रत सर्वदा निश्चल है।

काम्यत्वं च फलश्रवणादवगन्तव्यम्। तच्च स्कन्दपुराणे—

शिवञ्च पूजयित्वा यो जागर्त्ति च चतुर्दशीम्।
मातुः पयोधररसं न पिबेत् स कदाचन॥
यदीच्छेद्वाञ्छितान् भोगान् दिवि देवि मनोरमान्।
आगमोक्तविधिं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम्॥
मम भक्तस्ततो देवि शिवरात्रिमुपोषकः।
गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम्॥
सर्वान् भुक्त्वा महाभोगान् मृतो भूयो न जायते॥ इति।

काम्यव्रतस्येशानसंहितायां वर्षसङ्ख्या पठ्यते—

एवमेतद्व्रतं कुर्यात् प्रतिसंवत्सरं व्रती।
द्वादशाब्दिकमेतत्स्याच्चतुर्विंशाब्दिकन्तु वा॥
सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य चेह च मानवः॥ इति।

नित्यकाम्यरूपस्यास्य व्रतस्य सर्वाधिकारिकत्वमीशानसंहितायामुक्तम्[1]—

---

१. एतत्प्रकृत्य किञ्चिद् विशिष्टमुच्यते— शैवो वा वैष्णवो वाऽपि यो वा स्यादन्यपूजकः। सर्वं पूजाफलं हन्ति शिवरात्रिबहिर्मुखः॥ तिथितत्त्वधृतमीशानसंहितावचनम्, पृ० १२५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।
आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ इति ।

अधिकारि-नियमाः स्कन्दपुराणे दर्शिताः—

माघमासे तु कृष्णा या फाल्गुनादौ चतुर्दशी ।
सा च पुण्या तिथि र्ज्ञेया सर्वपातकनाशिनी ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधो ब्रह्मचर्यं दया क्षमा ।
शान्तात्मा क्रोधहीनश्च तपस्वी ह्यनसूयकः ॥
तस्मै देयमिदं देवि गुरुपादानुगो यदि ।
अन्यथा यो ददातीदं स तदा नरकं व्रजेत् ॥ इति ।

फल श्रुति के द्वारा काम्यत्व को समझना चाहिये । इस विषय में भी स्कन्दपुराण में कहा है—

शिवजी की पूजा करके जो चतुर्दशी में जाग्रत रहता है, वह कभी भी माँ का स्तन्यपान नहीं करता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। हे देवि ! जो देवताओं के मनोरम लोगों को चाहता है वह आगम में उक्त विधि के अनुसार पूजा करके परम पद को प्राप्त होता है। हे देवि ! मेरे भक्त शिवरात्रि में उपवास करके गण, अक्षय, दिव्य और शिव शासन के रूप सब प्रकार महाभोग को भोग करके, फिर मरने के बाद पैदा नहीं होता है।

ईशानसंहिता में नित्य-काम्यरूप इस व्रत की संख्या कही गयी है—

इस प्रकार व्रत करनेवाला व्यक्ति हर साल व्रत करता है। बारह वर्षों तक और चौबीस वर्षों तक करने से इन्द्रलोक में और परलोक में भी सब प्रकार कामनाओं की पूर्ति करता है। ईशानसंहिता में नित्य और काम्य रूप इस व्रत को सभी लोगों के लिये निर्देश किया है—शिवरात्रि व्रत सब प्रकार पापों का नाश कर देनेवाला है। चण्डाल से लेकर (भद्र) मनुष्य तक सब के लिए यह व्रत भुक्ति और मुक्ति प्रदायक है।

इस व्रत के अधिकारी और नियमों के बारे में स्कन्दपुराण में प्रदर्शित किया है—

माघमास में फाल्गुनादि के जो कृष्ण चतुर्दशी है, वह सब प्रकार के पातकों को नाश करनेवाली पुण्य तिथि है। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, ब्रह्मचर्य, क्षमा शान्तात्मा, क्रोधहीन, तपस्वी, अनसूयक, इन लोगों को ही हे देवि ! सब देय है जो गुरुपाद में निमग्न हैं। अन्यथा अयोग्य को देने पर नरक फल मिलता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उक्ताधिकारिणोऽनुष्ठेयं व्रतस्वरूपं त्रिविधम्। उपवासो जागरणं पूजा च। तदुक्तं नागरखण्डे—

उपवासप्रभावेन बलादपि च जागरात्।
शिवरात्रेस्तथा तस्य लिङ्गस्यापि च पूजया॥
अक्षयान् लभते भोगान् शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ इति।

सह्यखण्डे –

स्वयं च लिङ्गमभ्यर्च्य सोपवासः सजागरः।
अज्ञानन्नपि निष्पापो निषादो गणताङ्गतः॥

अत्रेदं चिन्त्यते। किमेता उपवास-जागर-पूजाः व्रतस्य स्वरूपे स्वेच्छया विकल्प्यन्ते, उत समुच्चीयन्ते इति। तत्र विकल्प्यन्ते इति तावत्प्राप्तम्। कुतः? एकैकस्यैवेतरनिरपेक्षतया विधानात्। तथा हि स्कन्दपुराणे केवलोपवासविधिः पठ्यते—

अखण्डितव्रतो यो हि शिवरात्रिमुपोषयेत्।
सर्वान् कामानवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥ इति।

तथा केवल-जागरणं पठ्यते—

कश्चित्पुण्यविशेषेण व्रतहीनोऽपि यः पुमान्।
जागरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत्॥ इति।

तथा केवलपूजा पठ्यते—

यः पूजयति भक्तेशमनेकफलतां व्रजेत्॥ इति।

इन अधिकारिओं के द्वारा अनुष्ठित होनेवाला व्रत का स्वरूप तीन प्रकार है: (१) उपवास (२) जागरण और (३) पूजा। नागरखण्ड में इसके बारे में कहा है—उपवास के प्रभाव से, जागरण के बल से और लिंगपूजा के द्वारा शिवरात्रि व्रत की पूर्त्ति होती है। इस से सब अक्षय भोग मिलते हैं और अन्त में शिव जी की सायुज्यमुक्ति मिलती है।

सह्यखण्ड में कहा है—कि स्वयं लिंग की अभ्यर्चना कर उपवास पूर्वक जागरण करके अज्ञान से भी निषाद निष्पाप होकर रूद्रगण में अन्तर्भुक्त हो गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहां ऐसी चिन्ता होती है कि उपवास, जागरण और पूजा—ये तीन व्रत के स्वरूप होते हैं या इच्छा के अनुसार विकल्प होते हैं ? या इन सब का समुच्चय स्वीकृत होता है। यहाँ विकल्प होता है ऐसा एक पक्ष मिलता है। क्योंकि एक दूसरे से भिन्न होने के कारण ऐसा विधान है। इस लिए स्कन्दपुराण में केवल उपवास विधि के बारे में पाठ मिलता है—

व्रतका खण्डन न करके जो शिवरात्रि में उपवास करता है, वह सभी कामनाओं को पाता है और शिव के साथ अन्त में आनन्द से रहता है। केवल जागरण के बारे में भी पाठ मिलता है—कोई विशेष पुण्य के कारण व्रतहीन होने पर भी कोई व्यक्ति अगर जागरण करता है तो वह रुद्र की समता को लाभ करता है। इस प्रकार केवल पूजा के बारे में पाठ मिलता है। जो भक्तेश पूजता है, वह अनेक फलों को पाता है।

तस्मादुपवासादयस्त्रयोऽपि विकल्प्यन्ते। यदि नागरखण्डसह्यखण्डयोः समुच्चयविधिरस्तीत्युच्यते; तर्हि प्रत्येकं वा समुदायो वा यथेष्टमनुष्ठीयताम् इति प्राप्ते ब्रूमः। वैश्वानरविद्यो[1]पासनन्यायेन समुदाय एवात्रानुष्ठेयः। तस्य च न्यायस्य सङ्ग्राहकावेतौ श्लोकौ भवतः—

वैश्वानरमुपास्तेऽत्र प्रत्येकसमुदायतः।
विकल्पः समुदायो वा नियतो विविधाद् विधेः॥

विकल्प इति चेन्मैवं समुदायप्रशस्तितः।
अवयुत्यानुवादेन प्रत्येकोक्त्युपपत्तितः॥ इति।

अयमर्थः—छन्दोग्नैराम्नायते[2], "वैश्वानरमुपास्ते" इति विद्युल्लोकादित्यवाय्वाकाशोदकपृथिवीरूपैः षड्भिरवयवैरूपेतोऽवयवी सर्वात्मको

---

१. वैश्वानरविद्या छान्दोग्योपनिषदि आलोच्यते—आत्मानमेवेमं वैश्वानरं संप्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहि (५।११।१, ६)। अधिकं तु द्रष्टव्यं ब्रह्मसूत्रे वैश्वानराधिकरणम् (१-२-२४-३२) सोऽयं विषयः ऋक्संहितायामपि (१०।८८।१२) विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा, वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्॥ इति। बृहदारण्यकेऽपि (५।९) अयमग्नि वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते॥ इति। ब्रह्मसूत्रे वैश्वानराधिकरणस्य प्रसरः छान्दोग्यस्य ५।११–२३ वचनान्याधृत्य भवति।

२. यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति॥ छान्दोग्योपनिषत् ५।१८।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विराट्पुरुषो वैश्वानरशब्दवाच्यः। तत्र संशयः, किं विद्युल्लोकाद्यवयवा अवयवी च प्रत्येकं विकल्पेनोपास्यः, उतावयव्येव नियमेनोपास्यः। इति।

विकल्प इति तावत्प्राप्तम्। कुतः? द्विविधस्य विधेः श्रूयमाणत्वात्। प्राचीनशालसत्ययज्ञेन्द्रद्युम्नजनबुडिलोद्दालकनामभिः[1]षड्भिर्महर्षिभिः क्रमेण विद्युल्लोकादयः षडवयवाः प्रत्येकमुपासिताः। तद्वृत्तान्तकथनपरेषु वाक्येषु षण्णामवयवानां प्रत्येकमुपास्तिविधयो नियमाश्च फलसहिता उपलभ्यन्ते। पुनश्चान्ते षड्भ्यस्तेभ्यो महर्षिभ्योऽश्वपती राजा [2]समुदायोपास्तिमवोचत। अतो द्विविधर्विधिबलेन यथेच्छं विकल्पः। इति प्राप्ते ब्रूमः।

इसलिए उपवास प्रभृति में तीन विकल्प होते हैं। अगर नागरखण्ड और सह्यखण्ड में समुच्चय विधि कही गई है, तब प्रत्येक या फल का विकल्प इच्छा के अनुसार अनुष्ठान किया जा सकता है। ऐसे होने से उत्तर में कहा जाता है कि वैश्वानरविद्या उपासना न्याय से समुदाय ही यहाँ अनुष्ठित होता है। उस न्याय का संग्राहक दो श्लोक हैं—

वैश्वानर की उपासना करते हैं इस विधिवाक्य में प्रत्येक की उपासना होती या समुदाय की इस प्रकार संशय होता है? विकल्प में अनुष्ठान होता है या समुदाय? पूर्वपक्ष के मतानुसार विकल्प होता है। उत्तर पक्ष के मत में यह ठीक नहीं है। क्योंकि समुदाय विधिवाक्य के समर्थक प्रशंसा अर्थवाद मिलता है। अतः अवयुत्यानुवादन्याय से प्रत्येक की उपासना ही समुदाय की उपासना होती है।

इसका अर्थ यह है—सामवेद पढ़नेवालों ने सुना है कि वैश्वानर की उपासना करते हैं। यहाँ विद्युत् लोक, आदित्य, वायु, आकाश, उदक और पृथिवी इन छ रूपों के अवयवों से संयुक्त अवयवी सर्वात्मा विराट् पुरुष

---

१. उपमन्युपुत्रः प्राचीनशालः, पुलुषपुत्रः सत्ययस्तःभाल्लविपुत्रः इन्द्रद्युम्नः शर्कराक्ष्यपुत्रः जनः अश्वतराश्वपुत्रः बुडिलः अरुण पुत्रः उद्दालकः इति षट् महर्षयः छान्दोग्ये प्रसिद्धाः ५।११।१–२

२. समुदायोपासनाप्रकारो यथा—अश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं वैश्वानर मध्येति तं हन्ताभ्यागच्छामेति। तं हाभ्याजगुः। इति छान्दोग्योनिषत् ५।११।४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैश्वानर शब्द से अवगत होते हैं। वहां संशय है—क्या विद्युत् लोक प्रभृति अवयवों और अवयवी इन प्रत्येक की विकल्प से उपासना होती या नियम से अवयवों की उपासना होती है।

यहाँ विकल्प होता है ऐसा पहले मिलता है। क्यों ? दो प्रकार विधियों की श्रुति मिलती है। प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन, बुडिल और उद्दालक इन छ महर्षियों ने क्रमानुसार विद्युत् लोक प्रभृति छ अवयवों की प्रत्येक उपासना की है। इस वृत्तान्त को कहनेवाले वाक्यों ने छ अवयवों में प्रत्येक की उपासना विधि और नियम फल के साथ मिलते हैं। फिर भी अन्त में उन छ महर्षियों को राजा अश्वपति समुदाय की उपासना के बारे में कहा है। अतः दो प्रकार विधियों की उपस्थिति से इच्छानुसार विकल्प मिलता है, ऐसा अगर कहा जाता, तो सिद्धान्त में उत्तर के रूप में कहा जाता है कि—

समुदाय एवात्र नियमेनोपासितव्यः। कुतः प्रशस्ततत्वात्। अवयवोपास्तिवाक्यान्यवयुत्यानुवाद[1]रूपत्वेनाऽप्युपपद्यन्ते। तस्मात् समुदाय एवोपास्यः इति राद्धान्तः।

अनेन न्यायेन प्रकृतेऽप्युपवासादीनां त्रयाणां समुदायस्यैव व्रतरूपत्वम्। ननु क्वचिदुपवासादित्रयं विधाय पुनः पक्षान्तरूपेणेपवास व्यतिरिक्तं द्वयं पठ्यते—

अथवा शिवरात्रिं च पूजाजागरणैर्नयेत्। इति।

नायं दोषः। अथवेत्यनुकल्पोपक्रमेणाशक्तविषयत्वोपपत्तेः। अत्र व्रते विहितानां त्रयाणां परस्परमङ्गाङ्गिभावबोधकप्रमाणाभावादाग्ने-

---

१. प्रकृतौ अवयुत्यानुवाद एव हृदयम्। अवयुत्य नाम पृथक्कृत्य। तत्संपृक्तो वादोऽवयुत्यानुपादः। अवयवस्य प्रशंसामवयवी अभ्येति। यथा हस्तस्य प्रशंसा न हस्तस्य अपि तु पुरुषस्य। तद्वत् वैश्वानराधिकरणे वैश्वानरस्य अवयवरूपविद्युदादीनामुपासना, न तेषामपि तु वैश्वानरस्य। केवलं पृथक्तयाऽनुवादो भवति अत्र। सेऽयं समुदायावगतिः पृथगवगत्यपेक्षया ज्यायसी न्यायोऽयं यथा शिवरात्रिं प्रकृत्य व्रतम्, उपवासः, जागरणं चेति त्रयाणां पृथगुपन्यासेऽपि शिवरात्रेः समुदायविषयो भवति। नात्र व्रतादीनां पृथक्त्वमस्ति तत्प्रकारकविधिवाक्यकल्पनाया असंभवात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या[१]दिषड्यागवत्प्रत्येकं कालसंबन्धविधानात् फलसंबन्धाच्च समप्राधान्यं द्रष्टव्यम् । अस्यैवोपोद्बलकं लिङ्गमभिधीयते । लुब्धकस्य भद्राश्वजन्म प्राप्तवतो दुर्वाससा सह संवादे पठ्यते—

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां न किञ्चिन्मृगमाप्तवान् ।
अण्वपि प्राणयात्रार्थं क्षुधासंपीडितोऽवसत् ॥

इत्युपक्रम्य—

धनुः कोट्या हतान्येव बिल्वपत्राणि मानद ।
पतितानि महाराज शंभोः शिरसि भूतले ॥
तत्रैव तस्थौ राजेन्द्र सर्वरात्रमतन्द्रितः ।
रात्रिशेषं स्थितो व्याधः स्तब्धदृष्टिरधोमुखः ॥
प्रभाते विमले जाते दृष्ट्वा तत्रैव शङ्करम् ।
बिल्वपत्रै नरश्रेष्ठ कन्दमूलैश्च पारितः ॥ इति ।

नियम के द्वारा समुदाय अर्थात् छ अवयवों की कुल उपासना यहां होती है, क्योंकि प्रशस्ति मिलती हैं । अवयवों की उपसना को सूचित करनेवाले वाक्य अनयुत्यानुवाद के रूप में उत्पन्न होते हैं । अतः समुदाय की ही उपासना होती है ऐसा सिद्धान्त है ।

इस न्याय से इस प्रकरण में भी उपवास प्रभृति तीन का समुदाय अर्थात् व्रत का स्वरूप है । यहाँ एक प्रश्न होता है कि कभी-कभी उपवास प्रभृति तीन का विधान करके फिर पक्षान्तर के रूप में उपवास को छोड़कर दूसरे दोनों का पाठ मिलता है । यथा—

अथवा शिवरात्रि को पूजा और जागरण के द्वारा समाप्त करनी चाहिए ।

यह कोई दोष का विषय नहीं है । अथवा ऐसा कहने से अनुकल्प का ही प्रारम्भ होता है । अतः अशक्त लोग के लिए यह विषय उपपन्न होता है । इस व्रत में तीन का विधान के द्वारा परस्पर अङ्गाङ्गित्व सूचित

---

१. आग्नेयः, अग्नीषोमीयः, उपांशुः, आग्नेयः, ऐन्द्रं दधि, ऐन्द्रं पयश्चेति षड्यागा दर्शपौर्णमासयोर्भवन्ति । एतेषां कालगतसंबन्धो गोष्ठीभेदेन भवति, यथा दर्शे पौर्णमासे च । फलसंबन्धस्तु एकत्वे पर्यवस्यति त्रिकापूर्वकल्पनया विषयोऽयं स्पष्टस्तद्वत् प्रकृते उपवासो जागरणं पूजा चेति त्रितयस्य कालगतसंबन्धः फलसंबन्धश्च एक एव । स च कालस्तु चतुदर्शी ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए आग्नेय प्रभृति छ यागों की तरह प्रत्येक का काल के साथ और फल के साथ सम्बन्ध रहने से सभी का समान प्राधान्य है ऐसा देखना पड़ेगा। इसीका उपोद्बलक लिंग कहा जाता है। भद्राश्वजन्म को लाभ करनेवाला लुब्धक का दुर्वासा ऋषि के साथ हुआ जो संवाद के बारे में पाठ मिलता है। यथा—

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में कोई मृग की प्राप्ति नहीं हुई। प्राण निर्वाह करने के लिए अणु के परिमाण भी नहीं मिला। इसलिए क्षुधा पीड़ित होकर उपवास में रह गया। यहाँ से शुरू होकर कहा है—हे मानद! हे महाराज धनुष के अग्रभाग से बिल्वपत्रों को छेदन कर भूतल में शंभु के सिर पर मैंने फेंक दिए हैं। हे राजेन्द्र! उस जगह ही मैंने सारी रात नींद के बिना रात्रि के शेष भाग में निम्न भोग को देखकर स्तब्ध हो गया।

निर्मल प्रभात होने के बाद शङ्कर को देखकर बिल्वपत्र और कन्द-मूल के द्वारा पारण करता था।

एतस्मिन् यथोक्ततिथिं निर्णेतुमिदं विचार्यते। किं व्रतान्तरेष्विवात्राप्युदयास्तमयवेध आदर्त्तव्यः, किं वा प्रदोषवेधः, आहोस्वित् निशीथवेध इति। तत्र पूर्वेद्युरुदये त्रयोदशीवेधः, परेद्युरस्तमये दर्शवेध इत्युदयास्तमयवेधो युक्तः, तस्य व्रतान्तरेषु क्लृप्तत्वात् क्लृप्तस्य च कल्प्याद्बलीयस्त्वात्। मैवम्, सामान्याद्विशेषस्य बलीयस्त्वात्। सामान्यरूपो ह्युदयास्तमयवेधः सर्वतिथिषु सर्वव्रतेषु समानत्वात्[1], विशेषरूपौ प्रदोषनिशीथवेधौ कृष्णचतुर्दशीलक्षणे तिथिविशेषे शिवरात्र्याख्यं व्रतविशेषमुपजीव्य प्रवृत्तत्वात्। एतदेवाभिप्रेत्य ईशानसंहितायामुक्तम्—

उदयेऽन्विताः क्वचिद्ग्राह्याः क्वचिदस्तमयेऽन्विताः।
व्रतिभिस्तिथयो यस्मात् वर्जयित्वा व्रतन्त्विदम्॥ इति।

अस्मिंस्तु व्रते प्रदोषवेधो वायुपुराणे दर्शितः—

त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु।
भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत्॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिचतुर्दशी।
रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत्॥ इति।

---

१. समानप्रवर्त्तमानत्वात्। इति पाठान्तरम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कामिके—

आदित्यास्तमये काले अस्ति चेद्या चतुर्दशी ।
तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात् सा भवेदुत्तमोत्तमा ॥ इति ।

इस अवसर पर कही गई तिथि का निर्णय करने के लिए विचार प्रस्तुत किया जाता है । प्रश्न होता है कि क्या दूसरे व्रतों की तरह यहां भी उदय वेध और अस्तमय वेध का आदर होता है या प्रदोष वेध अथवा निशीथ वेध ? वहां पूर्वदिन के उदय काल में त्रयोदशी वेध, परदिन के अस्तकाल में अमावस्या वेध, इस प्रकार उदयास्तमय वेध युक्तिसंगत होता है । क्योंकि दूसरे व्रतों में यह क्लृप्त (समर्थन रूप से निष्पत्ति) किया है । कल्प्य की अपेक्षा क्लृप्त बलवान है ।

यह ठीक नहीं है, क्योंकि सामान्य से विशेष बलवान है । सामान्य रूप से उदयास्तमय वेध सब तिथियों में और सब व्रतों में समान रूप से प्रवर्त्तित है । विशेष रूप से प्रदोष और निशीथ वेध कृष्ण चतुर्दशी के लक्षण तिथि-विशेष में शिवरात्रि नामक व्रतविशेष को उपजीव्य करके प्रवृत्त है । इस विषय को अभिप्रेत करके ईशान-संहिता में कहा है—

व्रतचारियों द्वारा उदय काल में रहनेवाली कुछ तिथि ग्रहीत होती है । कुछ अस्त काल में रहनेवाली तिथि ग्रहीत होती है किन्तु इस व्रत को छोड़ करके ।

इस व्रत में प्रदोष वेध वायुपुराण में दर्शित किया है—

"सूर्य के अस्तमय काल में यदि त्रयोदशी चार नाड़ी तक रहती है, तो चतुर्दशी विद्धा होने पर शिवरात्रि व्रत किया जाता है ।

दूसरी स्मृति में भी कहा है—

प्रदोष को व्याप्त होनेवाली शिवरात्रि की चतुर्दशी ग्रहीत होती है । रात में जागरण करने से उसमें उपवास किया जाता है ।

कामिक में कहा हैं—

सूर्य के अस्तमय काल में यदि चतुर्दशी रहती, तो वही रात्रि शिवरात्रि होती है और वही रात्रि सब उत्तम रात्रियों से भी उत्तम हैं ।

निशीथवेधो नारदीयसंहितायां दर्शितः—

अर्धरात्रयुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी ।
शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्मृत्यन्तरेऽपि—

भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा ।
शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा ॥

ईशानसंहितायाम्—

माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि ।
शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥
तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः ।
अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी ॥
तत्तिथावेव कुर्वीत शिवरात्रिव्रतं व्रती ।
अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं नास्ति यत्र चतुर्दशी ॥
नैव तत्र व्रतं कुर्यादायुरैश्वर्यहानिदम् ।
व्याप्यार्धरात्रं यस्यान्तु लभ्यते सा चतुर्दशी ॥
तस्यामेव व्रतं कार्यं मत्प्रसादार्थिभि र्नरैः ।
पूर्वेद्युर्वा परेद्युर्वा महानिशि चतुर्दशी ॥
व्याप्ता सा दृश्यते यस्यां तस्यां कुर्याद् व्रतं नरः ।
लिङ्गाविर्भावकाले तु व्याप्ता ग्राह्या चतुर्दशी ॥
तदूर्ध्वाधोऽन्विता भूता सा कार्या व्रतिभिः सदा ।
मम प्रियकरी ह्येषा माघकृष्णचतुर्दशी ॥
महानिशान्विता या तु तत्र कुर्यादिदं व्रतम् ॥ इति ।

निशीथवेध के बारे में नारदीय संहिता में कहा है—

माघमास की कृष्णपक्ष चतुर्दशी अर्धरात्र से युक्त होने पर शिवरात्रि व्रत होता है, उससे अश्वमेधफल मिलता है ।

दूसरी स्मृति में भी कहा है—

जब महानिशा (निशीथ) चतुर्दशी को व्याप्त होकर त्रयोदशी में रहती है तब शिवरात्रि व्रत होता है, उसमें जागरण किया जाता है । ईशान संहिता में कहा हैं—

माघमास की कृष्ण चतुर्दशी की महानिशा में आदिदेव शिवलिङ्ग के रूप में करोड़ों सूर्यों की प्रभा की भाँति उद्भूत होते थे । इसलिए इस काल को व्याप्त होनेवाली तिथि शिवरात्रि व्रत के लिए ग्रहणीय होती है । जब चतुर्दशी अर्धरात्र से निम्न और ऊर्ध्व से युक्त होती है, वही तिथि शिवरात्रि के लिए व्रतियों द्वारा गृहीत होती है । अगर नहीं रहती तो व्रत नहीं होता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस समय में व्रत करने से आयु और ऐश्वर्य की हानि होती है। जब अर्धरात्र में चतुर्दशी समाप्त होती है, उसीमें व्रत किया जाता है और मेरा अनुग्रह उसमें मिलता है। पूर्व दिन हो या परदिन हो जिस महानिशा में चतुर्दशी रहती है, उस रात्रि में व्रत किया जाता है। लिङ्ग के आविर्भाव काल को व्याप्त होनेवाली चतुर्दशी ग्रहणीय होती है। उस काल के पूर्व और पर भाग से संपृक्त चतुर्दशी व्रतियों के जरिये ग्रहणीय है। माघमास की कृष्ण चतुर्दशी मेरी प्रिय है। अगर महानिशा के साथ अन्वित होती है तो उसमें व्रत किया जाता है।

एवं सति पूर्वेद्युरेव वा परेद्युरेव वा यत्र प्रदोषनिशीथोभयव्याप्तिस्तत्र व्रतमाचरणीयम्। पूर्वेद्युरेवोभयव्याप्तौ स्कन्दपुराणे पठ्यते—

त्रयोदशी यदा देवि दिनभुक्तिप्रमाणतः।
जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी॥ इति।

दिनभुक्तिरस्तमयः। परेद्युरेवोभयव्याप्तौ कामिके पठ्यते—

निशाद्वये चतुर्दश्यां पूर्वा त्याज्या परा शुभा॥ इति।

दिनद्वयेऽप्युभयव्याप्तिस्तु न संभाव्यते, यामद्वयवृद्धेरभावात्। दिनद्वयेऽप्युभयव्याप्त्यभावोऽपि न संभाव्यते, यामद्वयक्षयस्याभावात् एकैकस्मिन् दिने एकैकव्याप्तौ तु कथमिति चेत् उच्यते। सा ह्येवं प्रसज्यते; पूर्वेद्युर्निशीथव्याप्तिः परेद्युः प्रदोषव्याप्तिरिति। तत्रैकव्याप्ते दिनद्वये समानत्वेऽपि जयायोगस्य प्रशस्तत्वाद् दर्शयोगस्य निन्दितत्वाच्च पूर्वेद्युरेवोपवासः। जयायोगप्राशस्त्यं चानेकवचनैराघ्रातत्वादवगम्यते। तथा च स्कन्दपुराणे पठ्यते—

कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी।
एता पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्॥
जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च।
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्॥
श्रावणी दुर्गनवमी तथा दूर्वाष्टमी च या।
पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या शिवरात्रि र्बलेर्दिनम्॥ इति।
जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते॥ इति च।

ऐसा होने पर पूर्व दिन हो या पर दिन हो जिस दिन के प्रदोष और निशीथ इन दोनों को व्याप्त होकर चतुर्दशी रहती है, उस दिन में व्रत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का आचरण किया जाता है। पूर्वदिन में उभय अंश की व्याप्ति के बारे में स्कन्दपुराण में कहा है—

हे देवि! दिन भुक्ति का प्रमाण के अनुसार जब त्रयोदशी रहती और रात्रि में पूर्णरूप से चतुर्दशी रहती है तो शिवरात्रि के जागरण के लिये वह दिन प्रशस्त है।

दिनभुक्ति का अर्थ अस्तमन काल है। परदिन में उभय अंश की व्याप्ति के बारे में कामिक में कहा है—

दोनों निशा को व्याप्त होकर चतुर्दशी रहने पर पूर्व निशा को छोड़कर परदिन को ग्रहण करने से शुभ होता है।

दो दिनों में उभय व्याप्ति की संभावना नहीं होती है क्योंकि दो याम (मुहूर्त्त) की वृद्धि नहीं हो सकती है। एक एक दिन में एक एक व्याप्ति कैसे होती है?

वैसा अगर प्रश्न होता, तो उत्तर के रूप में ऐसा कहा जायगा कि इस प्रकार की प्रसक्ति होती है—पूर्व दिन में निशीथ व्याप्ति और परदिन में प्रदोष व्याप्ति। वहां दो दिनों में एक व्याप्ति होने पर भी जया का योग प्रशस्त होने के कारण दर्श योग की भी निन्दा के कारण पूर्व दिन में उपवास होता है। अनेक वचनों के द्वारा जया योग की प्रशस्ति मिलने से उस योगका ही आदर किया जाता है, ऐसा समझ में आता है। स्कन्दपुराण में कहा है—

कृष्ण पक्ष की अष्टमी, स्कन्दषष्ठी और शिवरात्रि की चतुर्दशी ये सब तिथियाँ पूर्वविद्धा होकर ग्रहणीय होती हैं और तिथि के अन्त में पारण होता है। जन्माष्टमी, रोहिणी और शिवरात्रि पूर्वविद्धा की जाती हैं, तिथि और नक्षत्र के अन्त में पारण किया जाता है। श्रावण पूर्णिमा, दुर्गा नवमी और दूर्वाष्टमी पूर्वविद्धा ही की जाती हैं। इसी प्रकार शिवरात्रि और बलि दिन भी होते हैं। जयन्ती भद्रा के साथ और शिवरात्रि जया के साथ अन्वित होकर माननीय होती हैं।

नागरखण्डे—

माघफाल्गुनयोर्मध्ये असिता या चतुर्दशी।
अनङ्गेन समायुक्ता कर्त्तव्या सा सदा तिथिः॥ इति।

पद्मपुराऽणे—

अर्धरात्रात्पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत्।
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्मवैवर्त्ते—

रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्त्तव्या सम्मुखी तिथिः ।
अन्येषु व्रतकल्पेषु परयुक्तामुपावसेत् ॥ इति ।

दर्शयोगनिन्दा च स्कन्दपुराणे दर्शिता—

महतामपि पापानां दृष्टा वै निष्कृतिः पुरा ।
न दृष्टा कुर्वतां पुंसां कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम् ॥ इति ।

अन्यान्यपि यानि कानिचिद्दर्शयोगनिन्दावचनानि तत्र तत्र स्मर्यन्ते तानि सर्वाण्यस्मिन् विषये योजनीयानि । यदा पूर्वेद्युर्निशीथादूर्ध्वं प्रवृत्ता चतुर्दशी परेद्युः क्षयवशान्निशीथादर्वागेव समाप्ता, तदा पूर्वेद्युः प्रदोषनिशीथव्याप्त्योरुभयोरप्यसंभवात्परेद्युः प्रदोषव्याप्तेरेकस्याः सद्भावाच्च परविद्धैव ग्राह्या । एतदेवाभिप्रेत्य स्मर्यते—

माघासिते भूतदिनं कदाचि-
दुपैति योगं यदि पञ्चदश्या ।
जया प्रयुक्तां न तु जातु कुर्या-
च्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य ॥ इति ।

नागर खण्ड में कहा है—माघ और फाल्गुन के बीच में जो कृष्ण-चतुर्दशी है वह अनङ्ग अर्थात् त्रयोदशी के साथ युक्त होने पर कर्त्तव्य है ।

पद्मपुराण में कहा है—

अर्धरात्रि के बाद अगर जया का योग हो, तो शिवप्रिय लोगों के जरिये शिवरात्रि पूर्वविद्धा ही करनी चाहिये । ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में कहा है—

रुद्रव्रतों में सर्वत्र सम्मुखी तिथि मानी जाती है । दूसरे व्रतकल्पों में परविद्धा ही उपवास के लिए मानी जाती है ।

दर्शयोग की निन्दा स्कन्द पुराण में प्रदर्शित है—

प्राचीन काल में बड़े पापों से निष्कृति (प्रायश्चित्त) देखी गई है । शिवपूजा के लिए कुहू अर्थात् अमावास्या के साथ युक्त होनेवाली चतुर्दशी को करने से उत्पन्न पापों से निष्कृति नहीं देखी जाती है—

जो कोई दर्शयोग की निन्दा के बारे में दूसरे वचन वहाँ स्मरण में आते हैं उन सबको इस विषय में संयोजित किये जाते हैं । जब पूर्व दिन में निशीथ से ऊर्ध्व चतुर्दशी की प्रवृत्ति हुई और दूसरे दिन में क्षय के कारण निशीथ से पहले समाप्त हो जाती है, इस अवसर पर पूर्वदिन में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रदोष और निशीथ व्याप्ति इन दोनों की संभावना नहीं होती है। इस कारण से दूसरे दिन में केवल प्रदोष व्याप्ति होने से परविद्धा ही ग्रहणीय होती है। इसको अभिप्रेत करके स्मरण किया जाता है कि—

माघ कृष्ण चतुर्दशी का योग अगर पञ्चदशी अर्थात् अमावस्या के साथ हो तो जया युक्त तिथि कभी भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि शिव की रात्रि शिव की प्रियकारिणी होती है।

यदा पूर्वेद्युः प्रदोषादूर्ध्वं प्रवृत्ता चतुर्दशी परेद्युः क्षयवशात् प्रदोषादर्वागेव समाप्ता, तदा परेद्यु र्व्याप्ति द्वयाभावात् पूर्वेद्युर्निशीथ-व्याप्तेः सद्भावाज्जयायोगाच्च पूर्वेद्युरेवोपवासः।

अत्रायं विवेकः संपन्नः। दिनद्वये निशीथव्याप्तौ तदव्याप्तौ च प्रदोषव्याप्ति र्नियामिका। तथा दिनद्वयेऽपि प्रदोषव्याप्तौ तदव्याप्तौ च निशीथव्याप्ति र्नियामिका। एकैकस्मिन् दिने एकैकव्याप्तौ जयायोगो नियामक इति।

अस्य शिवरात्रिव्रतस्याहोरात्रसाध्यत्वेनाहनि रात्रौ च संबन्धे साधारणे सति अह्नर्बंधमुपेक्ष्य प्रदोषनिशीथयोरेव कुतः शास्त्राणां पक्षपात इति चेत्। रात्रेरत्र प्रधानत्वादिति ब्रूमः। तत्प्राधान्ये चोपपत्तिः स्कन्दपुराणे पठ्यते—

निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः।
अतस्तस्यां त्रयोदश्यां सत्यां तत् पूजनं भवेत्॥ इति।

तस्यां त्रयोदश्यामिति व्याधिकरणे सप्तम्यौ। तथा चायमर्थः संपद्यते। त्रयोदशीनिशीथे तस्यां चतुर्दश्यां विद्यमानायां शिवपूजनं भवेत्॥ इति।

नागरखण्डेऽपि—

माघमासस्य कृष्णायां चतुर्दश्यां सुरेश्वर।
अहं यास्यामि भूपृष्ठे रात्रौनैव दिवा कलौ॥
लिङ्गेषु च समस्तेषु चरेषु स्थावरेषु च।
संक्रमिष्याम्यसन्दिग्धं वर्षपापविशुद्धये॥
रात्रौ तस्यां हि मे पूजां य करिष्यति मानवः।
मन्त्रैरेतैः सुरश्रेष्ठ विपापः स भविष्यति॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब पूर्वदिन में प्रदोष से ऊर्ध्व चतुर्दशी की प्रवृत्ति हुई है और दूसरे दिन में क्षय के कारण प्रदोष से पहले समाप्त हुई है, उस स्थल में दूसरे दिनमें दो प्रकार की व्याप्ति के अभाव से, पूर्वदिन में निशीथ व्याप्ति का सद्भाव से और जया के योग से भी पूर्वदिन में उपवास प्राप्त होता है।

यहाँ इस प्रकार विचार युक्तियुक्त होता है। दो दिनों में निशीथव्याप्ति में और निशीथव्याप्ति के अभाव में भी प्रदोष व्याप्ति नियामक होती है। इस प्रकार दो दिनों में भी प्रदोषव्याप्ति और प्रदोषव्याप्ति के अभाव स्थल पर निशीथ व्याप्ति नियामक होता है। एक एक दिन में एक एक व्याप्ति होने पर जया का योग नियामक होता है।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि शिवरात्रि व्रत अहोरात्र साध्य होने के कारण दिन और रात में इसका सम्बन्ध रहता है। इसलिए दोनों में सम्बन्ध साधारण होने पर दूसरे दिन के साथ होनेवाला वेध को उपेक्षा करके प्रदोष और निशीथ को लेकर क्यों शास्त्रों का पक्षपात होता है? इनके उत्तर में ऐसा कहा जाता है कि रात्रि के साथ संबन्ध अधिक रहने के कारण रात यहाँ प्रधान होती है। रात के प्राधान्य के बारे में स्कन्दपुराण में उपपत्ति पढ़ी गई है—

रात में भूतगण और शिव की शक्तियाँ भ्रमण करती हैं, अतः उस त्रयोदशी की अवस्थिति रहने पर शिवरात्रि में पूजा होती है।

"उस त्रयोदशी में" ऐसा कहने से व्यधिकरण सप्तमी होती है। इस प्रकार भी फिर अर्थ होता है—त्रयोदशी के निशीथ (रात्रि) में चतुर्दशी रहने पर शिव की पूजा होती है। नागरखण्ड में भी कहा है—

हे सुरेश्वर! कलियुग में माघमास की कृष्णचतुर्दशी में रात में भूलोक को जाता हूँ किन्तु दिन में नहीं। वर्षों के पापों की विशुद्धि के लिए निःसंशय से सभी लिंगों में, चर और स्थावरों में भी संक्रमित होता हूँ। जो मानव इन मन्त्रों से रात में मुझे पूजता है, वह निष्पाप हो जाता है।

सा च शिवरात्रिचतुर्दशी त्रिधा भवति; एकतिथ्यात्मिका, तिथिद्वयात्मिका, तिथित्रयात्मिका चेति। तत्र सूर्योदयमारभ्य प्रवृत्ता परदिनोदयपर्यन्तैकतिथ्यात्मिका। सा वेधदोषाभावात् प्रशस्ता। तिथिद्वयात्मकत्वञ्च द्वेधा भवति जयायोगेन दर्शयोगेन च। तत्र यागद्वयमेवैकस्मिन् विषये प्रशस्तम्। स च विषयविशेषः पूर्वमुदाहृतः। तिथित्रयात्मकत्वं त्वतिप्रशस्तम्। एतदभिप्रेत्य पुराणे पठ्यते—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रयोदशीकलाप्येका मध्ये चैव चतुर्दशी।
अन्ते चैव सिनीवाली त्रिस्पृश्यां शिवमर्चयेत् ॥ इति।

तथा त्रिस्पृशी प्रशस्ता, तथा वारविशेषेण योगविशेषेण च प्रशस्ता भवति। तथा च स्कन्दपुराणे पठ्यते—

माघकृष्णचतुर्दश्यां रविवारो यदा भवेत्।
भौमो वाऽथ भवेद्देवि कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् ॥

शिवयोगस्य योगे वै तद्भवेदुत्तमोत्तमम्।
शिवरात्रिव्रतन्त्वेतत्तद्भवेदुत्तमोत्तमम् ॥ इति।

ननु यदा पूर्वविद्धायामुपवासस्तदा परेद्युः किं तिथ्यन्ते पारणं भवति किं वा तिथिमध्ये? शास्त्रन्तु पक्षद्वयेऽपि समानम्। तच्च, तिथ्यन्तपारणवचनानि पूर्वमुदाहृतानि। तिथिमध्यपारणवचनन्तु स्कन्दपुराणे पठ्यते—

और वह शिवरात्रि की चतुर्दशी तीन प्रकार की होती है। यथा—एक तिथि में होनेवाली, दो तिथियों में होनेवाली और तीन तिथियों में होनेवाली। सूर्योदय से शुरू करके दूसरे दिन के उदय तक रहनेवाली एक तिथ्यात्मिका होती है, वेधदोष के अभाव से वह प्रशस्ता है। दो तिथियों में होनेवाली दो प्रकार होती है। यथा—जया योग के अनुसार और दर्शयोग के अनुसार (यहाँ जया का अर्थ चतुर्दशी है)। यह दो योग एक एक विषय में प्रशस्त है। इस विशेष विषय के बारे में पहले कहा गया है। तीन तिथिओं में रहनेवाली अति प्रशस्त है। इस विषय को अभिप्रेत करके पुराण में कहा है—

यदि त्रयोदशी की एक कला, बीच में चतुर्दशी आ जाती है और अन्त में अमावास्या आ जाती, तो वही तिथि त्रिस्पृश्या होती है। उसमें शिवजी की अर्चना की जाती है।

वही त्रिस्पृशी तिथि, वार और योग के विशेष से प्रशस्त भी होती है। स्कन्दपुराण में कहा है—

माघकृष्ण की चतुर्दशी में अगर रविवार या मङ्गलवार होता है तो हे देवि! उसमें किया हुआ व्रत सर्वोत्तम है। मङ्गल योग के कारण यह उत्तमोत्तम होता है। इस उत्तमोत्तम अवसर में शिवरात्रि व्रत किया जाता है।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि जब पूर्वविद्धा में उपवास होता है, तब दूसरे दिन में क्या तिथि के अन्त में पारण होता है या तिथि के बीच में?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शास्त्रों के वचन दोनों पक्षों में भी समान रूप से उपलब्ध होते हैं। तिथि के अन्त में पारण के लिए वचन पहिले कहे गये हैं। तिथि के बीच में पारण के लिए स्कन्दपुराण में कहा है—

उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यान्तु पारणम्।
कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाऽथवा न वा॥
ब्रह्मा स्वयं चतुर्वक्त्रैः पञ्चवक्त्रैस्तथाप्यहम्।
सिक्थे सिक्थे फलं तस्य शक्तो वक्तुं न पार्वति॥
ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै।
संस्थितानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते॥
तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु।
तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद् विना शिवचतुर्दशीम्॥ इति।

बाढम्। अस्ति हि द्विविधं शास्त्रम्। तस्य च द्विविधस्य शास्त्रस्य प्रतिपत्प्रकरणोक्तन्यायेन व्यवस्था द्रष्टव्या। यदा यामत्रयादर्वागेव चतुर्दशी परिसमाप्यते, तदा तिथ्यन्ते पारणम्। यदा तु चतुर्दशी यामत्रयमतिक्रामति तदा चतुर्दशीमध्ये पूर्वाह्णे पारणं कुर्यात्।

॥ इति चतुर्दशीनिर्णयः॥

"चतुर्दशी में उपवास करके, फिर पारण करने से लक्ष संख्यक सुकृत करने पर भी सुफल मिलता है या नहीं; (परन्तु) इसके बारे में हे पार्वती! स्वयं ब्रह्मा चार मुखों से और मैं भी पांच मुखों से स्तर-स्तर पर उसका फल को बतलाने में असमर्थ हैं।

ब्रह्माण्ड के उदर में जितने तीर्थ हैं, चतुर्दशी में पारण करने से सभी आकर एकत्रित होते हैं। सर्व तिथिओं में जो उपवास और व्रतों का अनुष्ठान होता है, उसमें सर्वत्र तिथि के अन्त में पारण किया जाता है, किन्तु शिवचतुर्दशी के बिना ही।

यह तो ठीक है। किन्तु इसके बारे में दो प्रकार के शास्त्र मिलते हैं। इन दो प्रकार के शास्त्रों की प्रतिपद् न्याय के अनुसार व्यवस्था देखनी चाहिए। जब तीन याम (मुहूर्त्त) से पहले चतुर्दशी समाप्त हो जाती है, तब तिथि के अन्त में पारण होता है। जब चतुर्दशी तीन यामों को अतिक्रम करके रहती है तब चतुर्दशी के बीच में भी पूर्वाह्न में पारण होता है।

इस प्रकार चतुर्दशी का निर्णय हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ पञ्चदशी निर्णीयते

सा द्विविधा; पौर्णमास्यमावास्या च। तत्र पौर्णमास्यां परस्पर-विरुद्धानि वाक्यान्युपलभ्यन्ते। तत्र परविद्धाया ग्राह्यत्वं पुराणे पठयते—

भूतविद्धा न कर्त्तव्या कर्त्तव्या प्रतिपद्युता।
पौर्णमासी व्रतारम्भे मनुजैः फलकांक्षिभिः॥ इति।

विष्णुधर्मोत्तरे—

एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी।
अमावस्या तृतीया च उपोष्याः स्युः परान्विताः॥ इति।

पद्मपुराणे—

पूर्वविद्धा तु कर्त्तव्या सप्तमी व्रतिभिर्नरैः।
पौर्णमास्या महीपाल पराया नियमाङ्गता॥ इति।

परविद्धानिषेधः पूर्वविद्धाविधिश्च ब्रह्मपुराणे—

षष्ठ्येकादश्यमावास्या पूर्वविद्धा तथाऽष्टमी।
पूर्णिमा परविद्धा च नोपोष्यन्तिथिपञ्चकम्॥ इति।

पूर्वविद्धाग्राह्यत्वञ्च युग्मवाक्ये 'चतुर्दश्या च पूर्णिमा' इति। एवं परस्परविरोधे सति या व्यवस्था सा ब्रह्मवैवर्त्ते दर्शिता—

पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा।
वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्॥ इति।

यहाँ से पञ्चदशी का निर्णय हो रहा है। यह पञ्चदशी दो प्रकार होती है। यथा—पौर्णमासी और अमावास्या। पौर्णमासी के प्रसङ्ग में परस्पर विरुद्ध वाक्य मिलते हैं। वहाँ परविद्धा का ग्रहण के बारे में पुराण में पाठ मिलता है—

चतुर्दशी से विद्ध होनेवाली पञ्चदशी को स्वीकार नहीं किया जाता है। प्रतिपद से युक्त होने पर फलकामना करनेवाले मनुष्य व्रतारंभ के समय में पौर्णमासी को व्रत के लिए ग्रहण करते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में कहा है—

एकादशी अष्टमी, षष्ठी, पौर्णमासी, चतुर्दशी, अमावास्या और तृतीया परविद्धा होने पर उनमें उपवास किया जाता है। पद्मपुराण में कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे महीपाल ! व्रती लोग पूर्वविद्धा सप्तमी को मानते हैं और नियम के अनुसार परविद्धा पौर्णमासी को भी करते हैं।

परविद्धा को छोड़ देने के लिए और पूर्वविधा को स्वीकार करने के लिए ब्रह्मपुराण में कहा है—

षष्ठी, एकादशी, अमावास्या और अष्टमी अगर पूर्वविद्धा है, और पूणिमा परविद्धा हो तो इन पांच तिथिओं में उपवास नहीं करना है।

"चतुर्दश्या च पूर्णिमा" इस युग्म वाक्य के अनुसार पूर्वविद्धा पूर्णिमा ग्रहणीय होती है। इस प्रकार परस्पर विरोध होने पर जो व्यवस्था होती है वही ब्रह्मवैवर्त्त में देखी गई है—

हे मुनि श्रेष्ठ ! व्रतों के बीच में उत्तम सावित्री व्रत को छोड़कर अमावास्या और पूर्णिमा पूर्वविद्धा होने से ग्रहणीय नहीं होती है।

सावित्री राजकन्या। तया चीर्णं व्रतं सावित्रीव्रतम्। तच्च भविष्योत्तरपुराणे दर्शितम्—

कथयामि कुलस्त्रीणां महिम्नो वर्द्धनं परम्।
यथा चीर्णं व्रतं पूर्वं सावित्र्या राजकन्यया॥ इति।

एतच्च पौर्णमास्याममावास्यायां विहितम्। तस्मिन् व्रते पूर्वविद्धा ग्राह्या, व्रतान्तरे पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या, किं वा परविद्धैव कर्त्तव्येति परस्परविरुद्धस्य शास्त्रद्वयस्य व्यवस्था। यदा तु चतुर्दश्यष्टादशनाडिका भवति, तदा सावित्रीव्रतमपि तत्र परित्याज्यम्—

भूतोऽष्टादशनाडीभि र्दूषयत्युत्तरां तिथिम्॥ इति स्मृतेः।

योऽयं पौर्णमासीनिर्णयः, स एवामावास्यायामप्यवगन्तव्यः। तत्रापि सावित्रीव्रतं पूर्वदिने कर्त्तव्यं व्रतान्तराण्युत्तरदिने। अस्याञ्च व्यवस्थायां ब्रह्मवैवर्त्तवचनं पूर्वमुदाहृतम्। स्कन्दपुराणेऽपि—

भूतविद्धा सिनीवाली न तु तत्र व्रतं चरेत्।
वर्जयित्वा तु सावित्रीव्रतं तु शिखिवाहन॥ इति।

एवं च सति, युग्मशास्त्रं सावित्रीव्रतव्यतिरिक्तेषु व्रतेषु द्रष्टव्यम् प्रचेता अपि—

नागविद्धा तु या षष्ठी सप्तम्या च युताष्टमी।
दशम्येकादशी विद्धा त्रयोदश्या चतुर्दशी॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूतविद्धाऽप्यमावास्या न ग्राह्या मुनिपुङ्गवैः।
उत्तरोत्तरविद्धास्ताः कर्त्तव्याः काठकी श्रुतिः॥ इति।

पद्मपुराणेऽपि—

षष्ठ्यष्टमी तथा दर्शः कृष्णपक्षे त्रयोदशी।
एताः परयुताः कार्याः पराः पूर्वेण संयुताः॥ इति।

सावित्री राजकन्या है। उससे आचरित (किये) होने पर सावित्रीव्रत के नाम से वह व्रत प्रसिद्ध है। इसके बारे में भविष्योत्तरपुराण में प्रदर्शित किया गया है—

कुल स्त्रियों की महिमा का संवर्धन करने वाला तथा राजकन्या सावित्री द्वारा आचरित व्रत को यथारीति कहता हूँ।

यह व्रत पौर्णमासी और अमावास्या में विहित है। उस व्रत में पूर्वविद्धा तिथि गृहीत होती है। किन्तु दूसरे व्रतों में पूर्वविद्धा गृहीत नहीं होती है या परविद्धा गृहीत होती है, इस प्रकार परस्पर विरूद्ध होनेवाले दो शास्त्र वचनों की व्यवस्था मिलती हैं। जब चतुर्दशी अठारह दण्ड तक रहती, उस स्थल में पूर्वविद्धा होने पर भी सावित्री व्रत परित्याज्य है; क्योंकि स्मृति में कहा है कि चतुर्दशी अठारह दण्डों के द्वारा परवर्त्ती तिथि को दूषित करती है।

पौर्णमासी का यह जो निर्णय हो रहा है, अमावास्या में भी इसकी ग्रहणरीति रखनी चाहिये। उस पर भी सावित्री व्रत पूर्वदिन में होती है और दूसरे व्रतों का अनुष्ठान परदिन में होता है। इस व्यवस्था का पृष्ठपोषक ब्रह्मवैवर्त्तपुराण का वचन पहले उदाहृत किया गया है। स्कन्दपुराण में भी कहा है—

चतुर्दशी से विद्ध होनेवाली अमावास्या में व्रत नहीं किया जाता है। परन्तु हे शिखिवाहन! सावित्रीव्रत को छोड़कर।

ऐसा होने से सावित्रीव्रत से व्यतिरिक्त विषय में युग्मवचन द्रष्टव्य है। प्रचेता ने कहा है—

पञ्चमी से विद्धा षष्ठी, सप्तमी से विद्धा अष्टमी, दशमी विद्धा एकादशी, त्रयोदशी से विद्धा चतुर्दशी और चतुर्दशी से विद्धा अमावास्या मुनिपुंगवों में ग्रहणीय नहीं होती हैं। काठकश्रुतिके अनुसार वे तिथियाँ परविद्धा होने पर ही मानी जाती हैं।

पद्मपुराण में भी कहा है—कृष्णपक्ष में षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रयोदशी परविद्धा होने पर मानी जाती हैं, उनकी परतिथियाँ पूर्वविद्धा ही मानी जाती हैं।

यत्तु नारदीयपुराणे—

दर्शं च पौर्णमासञ्च पितुः सांवत्सरं दिनम्।
पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ इति।

तत्सावित्रीव्रतविषयं श्राद्धविषयं वा। अमावास्यायामिव पौर्णमास्यामपि श्राद्धं विहितम्। तथा च पितामहः—

अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च।
विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणः प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥ इति।

अमावास्याश्राद्धस्य च पार्वणरूपत्वमपराह्णस्य तत्कर्मकालत्वं कुतपस्य प्रारम्भकालत्वमित्येतत्त्रितयं प्रतिपत्प्रकरणे प्रत्याब्दिकनिर्णये प्रपञ्चितम्। तथा सति अपराह्णस्य कर्मकालत्वात् पूर्वेद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णव्यापिन्यमावास्या ग्रहीतव्या। तत्रापराह्णव्यापिन्याः पूर्वतिथेर्ग्राह्यतामाह हारीतः—

यस्यां सन्ध्यागतः सोमो मृणालमिव दृश्यते।
अपराह्णे तु या तस्यां पिण्डानां करणं ध्रुवम् ॥ इति।

यत्तु कार्ष्णाजिनिनोक्तम्—

भूतविद्धाममावास्यां मोहादज्ञानतोऽपि वा।
श्राद्धकर्मणि ये कुर्युस्तेषामायुः प्रहीयते ॥ इति।

तदपराह्णव्याप्त्यभावविषयं द्रष्टव्यम्। अपराह्णव्यापिन्या उत्तरतिथेर्ग्राह्यतामाह हारीतः—

अपराह्णः पितॄणान्तु याऽपराह्णानुयायिनी।
सा ग्राह्या पितृकार्ये तु न पूर्वाऽस्तानुयायिनी ॥ इति।

उभयत्रापराह्णव्यापित्वं द्वेधा भिद्यते, एकदेशेन कार्त्स्न्येन चेति। एकदेशव्याप्तिश्च द्वेधा भिद्यते; वैषम्येण साम्येन चेति, तत्र वैषम्येणैकदेशव्याप्तौ महत्त्वेन निर्णेतव्यम्। तथा च स्मृतिः—

अपराह्णद्वयव्यापिन्यमावास्या यदा भवेत्।
तत्राल्पत्वमहत्वाभ्यां निर्णयः पितृकर्मणि ॥ इति।

नारदीयपुराण में कहा है—

दर्श, पौर्णमास और पितृ-सांवत्सरिक श्राद्ध पूर्वविद्धा तिथि में जो नहीं करता है वह नरकगामी होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह सावित्री व्रत के विषय अथवा श्राद्ध के विषय में कहा है। अमावास्या की तरह पूर्णिमा में भी श्राद्ध का विधान मिलता है। पितामह ने कहा है—

"अमावास्या, व्यतीपात योग, पौर्णमासी अर्थात् पूर्णिमा और अष्टका (अष्टमी) में श्राद्ध न करनेवाला विद्वान् प्रायश्चित्त का भागी होता है।

अमावास्या श्राद्ध पार्वण विधि से होता है, अपराह्ण उसका कर्मकाल और कुतप से ही उसका प्रारंभ होता है। इन तीनों का विषय प्रतिपद् प्रकरण में प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध का निर्णय प्रसङ्ग में वर्णित किया है। ऐसा होने से अपराह्ण कर्मकाल होने पर पूर्वदिन या परदिन के अपराह्ण को व्याप्त होनेवाली अमावास्या ग्रहणीय होती है। वहाँ अपराह्ण को व्याप्त होने वाली पूर्व तिथि की ग्रहणीयता के बारे में हारीत ने कहा है—

जिस सन्ध्या के समय में चन्द्रमा मृणाल की तरह दिखाई पड़ता है, उस अपराह्ण में पिण्डदान निश्चित रूप से करना है।

कार्ष्णाजिनि ने कहा है—

चतुर्दशी से विद्धा अमावास्या में जो मोह या अज्ञानता से भी श्राद्ध करते हैं, उनके आयु का नाश होता है।

यह विषय अपराह्ण की व्याप्ति के अभाव के बारे में देखना पड़ता है। अपराह्ण को व्याप्त होनेवाली परवर्त्ती तिथि की ग्रहणीयता के बारे में हारीत ने कहा है—

अपराह्ण ही पितरों का तृप्तिकाल है। अपराह्ण में रहनेवाली तिथि पितृकार्य के लिए ग्राह्य है, किन्तु पूर्वदिन में अस्तकाल को व्याप्त होनेवाली नहीं।

उभयदिनों में अपराह्ण को व्याप्त होनेवाली तिथि दो प्रकार होती है। यथा—वैषम्य व्याप्ति से और साम्य व्याप्ति से। वहां वैषम्य से एकदेश को व्याप्त होनेवाली तिथि अधिक परिमाण को देखकर निर्णीत होती है। इसीलिए स्मृति में कहा है—

जब दो दिनों के अपराह्ण को व्याप्त अमावास्या होती है, तब अल्पत्व (कम) और महत्व (अधिक) को देखकर पितृकर्म (श्राद्ध) में तिथि का निर्णय होता है।

महत्येव ग्राह्येत्यभिप्रायः। स च शिवराघवसंवादे स्पष्टमभिहितः—

अल्पाऽपराह्णे त्याज्याऽमा ग्राह्या स्याद्याऽधिका भवेत्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साम्येनैकदेशव्याप्तौ खर्वादिशास्त्रेण निर्णयः। साम्येनोभयत्रैकदेशव्याप्तिश्च तत्तिथिगतैर्वृद्धिक्षयसाम्यैस्त्रेधा भिद्यते। तथा हि पूर्वेद्युरपराह्णस्य द्वितीयघटिकामारभ्य परेद्युरपराह्णस्य पञ्चघटिकापर्यन्तं यदा तिथिर्वर्त्तते, तदा पूर्वापराह्णस्य प्रथमघटिकां द्वितीयापराह्णस्य चरमघटिकां विहाय शिष्टासु पञ्चसु वर्त्तमानत्वात् साम्येनैकदेशव्याप्ति र्भवति। तिथिश्च तदा घटिकाचतुष्टयेन वर्द्धते।

यदा च पूर्वापराह्णस्य चरमघटिकायामुत्तरापराह्णस्य च प्रथमघटिकायां तिथि र्वर्त्तते, तदापि साम्येनैकदेशव्याप्ति र्भवति। घटिकाचतुष्टयेन तदा तिथिः क्षीयते। यदा पूर्वापराह्णस्य चरमघटिकात्रये द्वितीयापराह्णस्य च प्रथमघटिकात्रये तिथि र्वर्त्तते तदा साम्येनैकदेशव्याप्तिस्तदवस्था। तिथिस्तु न वर्धते नापि क्षीयते, किन्तु समैव। ईदृशे विषये खर्वदर्पवाक्यान्निर्णयः। तच्च खर्वादिवाक्यं सर्वतिथिसाधारण्येन प्रवृत्तत्वादमावास्यायामपि प्रवर्त्तते। तथा अमावास्यायामेव विशेषेण शिवराघवसंवादे स एवार्थो दर्शितः—

अमावास्या तु या हि स्यादपराह्णद्वयेऽपि सा।
क्षये पूर्वा परा वृद्धौ साम्येऽपि च परा स्मृता॥ इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूर्मता।
साम्येऽपि च कुहूर्ज्ञेया वेदवेदाङ्गवेदिभिः॥ इति।

अधिक काल तक व्याप्ति होने पर तिथि ग्रहणीय होती है ऐसा इसका अभिप्राय है। यह विषय शिवराघव संवाद में स्पष्ट अभिहित किया है। "अपराह्ण में अमावास्या अल्प रहने पर त्याज्य है किन्तु अधिक रहने पर ही ग्रहणीय होती है।

साम्य एकदेश व्याप्ति स्थल में खर्व वचन के अनुसार निर्णय होता है। साम्येन उभय का एकदेश व्याप्ति के निर्णय तिथि की वृद्धि, क्षय और साम्य —ये तीन प्रकार होते हैं। इसलिए पूर्वदिन के अपराह्ण की दूसरी घड़ी से शुरू होकर परदिन के अपराह्ण की पांच घड़ी तक जब तिथि रहती है, तब पूर्व दिन के अपराह्ण की पहली घड़ी और दूसरा अपराह्ण की अन्तिम घड़ी को छोड़कर अवशिष्ट पांच घड़ी तक रहने से साम्य एकदेश व्याप्ति होती है। उस अवसर में तिथि चार घड़ी तक बढ़ जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब पूर्वदिन के अपराह्ण की अन्तिम घड़ी में और परदिन के अपराह्ण की पहली घड़ी में तिथि रहती है, तब भी साम्य एकदेश व्याप्त होती है। उस स्थल में चार घड़ी तक तिथि का क्षय होता है। जब पूर्व दिन का अपराह्ण की अन्तिम तीन घड़ी में और दूसरा दिन का अपराह्ण की पहली तीन घड़ी में तिथि रहती है, वहां भी साम्य-एकदेश व्याप्ति इस प्रकार है। तिथि बढ़ती नहीं है, घटती भी नहीं है; किन्तु समानरूप से रहती है। इस परिस्थिति में खर्व और दर्प वचनों के अनुसार निर्णय होता है। यह खर्वादि वाक्य सब तिथियों के लिए साधारण रूप से प्रवर्तित होने से अमावास्या के बारे में इसकी प्रवृत्ति होती है। अमावास्या में विशेष रूप से शिवराघव संवाद में इसका अर्थ दर्शित किया है—

जो अमावास्या दो दिनों के अपराह्ण में रहती है, इस स्थल में क्षय होने पर पूर्व दिन, वृद्धि होने पर दूसरा दिन और समानरूप से रहने पर दूसरा दिन अमावास्या के लिए गृहीत होता है।

दूसरी स्मृति में भी—तिथि का क्षय होने पर अमावास्या 'सिनीवाली' नाम से और तिथि की वृद्धि होने पर अमावास्या 'कुहू' नाम से 'पुकारी' जाती है तथा समान रहने पर भी 'कुहू' कही जाती है; ऐसा वेद-वेदाङ्ग-वादियों ने कहा है।

चतुर्दशीमिश्रा सिनीवाली प्रतिपन्मिश्रा कुहूः। तथा च व्यासः—

दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूर्मता॥ इति।

कार्त्स्न्येनोभयत्रापराह्णव्याप्तावपि तिथिवृद्धित्वात् कुहूरेव ग्राह्या। यदा दिनद्वयेऽप्यपराह्णं न स्पृशति, तदा साग्न्यनग्निकभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या। तदाह जाबालिः—

अपराह्णद्वयाव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये।
आहिताग्नेः सिनीवाली निरग्न्यादेः कुहूर्मता॥ इति।

आदिशब्दात्स्त्रीशूद्रयोरपि ग्रहणम्। तदाह लौगाक्षिः—

सिनीवाली द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि।
स्त्रीभिः शूद्रैः कुहूः कार्या तथा चानग्निकैर्द्विजैः॥ इति।

एवं शास्त्रार्थे व्यवस्थिते सति यानि बहुविधानि वाक्यानि तानि सर्वाणि प्रोक्तेष्वमावास्याभेदेष्वन्यतमविषयत्वेन यथायोगं योजनीयानि। तथाहि तत्र तावद् बोधायन आह—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्याह्नात्परतो यत्र चतुर्दश्यनुवर्त्तते ।
सिनीवाली तु सा ज्ञेया पितृकार्ये तु निष्फला ॥ इति ।

बृहस्पतिरपि—

मध्याह्नाद या त्वमावास्या परस्तात् संप्रवर्त्तते ।
भूतविद्धा तु सा ज्ञेया न सा पञ्चदशी भवेत् ॥ इति ।

चतुर्दशी के साथ रहनेवाली (पूर्वविद्धा) अमावास्या सिनीवाली और प्रतिपद के साथ रहनेवाली (परविद्धा) अमावास्या कुहू है । व्यास ने कहा है—

जिस दिन में चाँद दिखाई पड़ता है, वह सिनीवाली है और जिसमें नहीं दिखाई देता, वह कुहू है ।

उभयदिनों में सम्पूर्ण रूप से अपराह्ण को व्याप्त होने पर भी तिथि वृद्धि के कारण कुहू ही ग्रहणीय होती है । जब दो दिनों के अपराह्ण को नहीं छूती है तब साग्निक और निरग्निक भेद से व्यवस्था होती है । इसके बारे में जाबालि ने कहा है—

दो अपराह्णों को व्याप्त न होनेवाली दर्श तिथि का अगर क्षय हो तो आहिताग्नि के लिए सिनीवाली और निरग्निओं के लिए कुहू व्यवस्थित होती है ।

आदि शब्द से स्त्री और शूद्रों का ग्रहण होता है । इसके बारे में लौगाक्षि ने कहा है—

साग्निक द्विजों के द्वारा पितृकर्म में सिनीवाली की जाती है और इसी प्रकार निरग्निक द्विजों तथा स्त्री-शूद्रों के जरिये कुहू की जाती है ।

इस प्रकार शास्त्रार्थ व्यवस्थित होने पर बहु प्रकार वाक्य मिलते हैं उन सब अमावास्या के पूर्वोक्त भेदों से अन्यतम विषय के रूप में आवश्यकता के अनुसार यथायोग संयोजित किये जाते हैं । इसलिए बौधायन ने कहा है—

मध्याह्न के बाद जहाँ चतुर्दशी अनुवर्त्तित होकर रहती है, वह सिनीवाली के नाम से नामित होती है । पितृकार्य के लिए वह निष्फल होती है । बृहस्पति ने भी—

मध्याह्न के ऊपर जो अमावास्या प्रवर्त्तित होती है, इस प्रकार अमावास्या चतुर्दशी से विद्धा के रूप में समझ में आती है । किन्तु इस प्रकार अमावास्या पञ्चदशी नहीं होती है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्र मध्याह्नादूर्ध्वमपराह्णमतिक्रम्य परस्तादमावास्या प्रवर्त्तते इति व्याख्येयम्। तदेतद्वचनद्वयं परेद्यु रेवापराह्णव्याप्तौ योजनीयम्। यत्तु कात्यायनवचनम्—

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते।
वासरस्य तृतीयेंऽशे नातिसन्ध्यासमीपतः॥ इति।

पिण्डानां पिण्डपितृयज्ञाङ्गभूतानामनु पश्चादाह्रियते क्रियते इति पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धमामावास्यं तत् क्षीणे राजनीन्दौ कर्त्तव्यम्। 'वासरस्य तृतीयेंऽशे' इत्यनेनेषन्नूनोऽपराह्णः सायाह्नसहितोऽभिधीयते। 'नातिसन्ध्यासमीपत' इति सायाह्नस्य प्रतिषेधे सत्यपराह्णः कर्मकालत्वेन परिशिष्यते। तथा च कर्मकालव्यापिनी तिथिर्ग्राह्येत्युक्तम्। तत्रेन्दुक्षयस्य चतुर्दश्यष्टमे प्रहरे प्रारम्भः, अमावास्यायाः सप्तमे प्रहरे समाप्तिः। तदेतदुभयं कात्यायन एवाह—

अष्टमेंऽशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः।
अमावास्याऽष्टमांशे च पुनः किल भवेदणुः॥ इति।

यत्तु जाबालिनोक्तम्—

प्रतिपत्स्वप्यमावास्या पूर्वाह्णव्यापिनी यदि।
भूतविद्धैव सा कार्य्या पित्र्ये कर्मणि सर्वदा॥ इति।

यहां मध्याह्न से ऊपर अपराह्न को अतिक्रम करके बाद में अमावास्या प्रवर्त्तित होती है ऐसी व्याख्या करनी चाहिए। ये दो वचन परदिन में अपराह्न की व्याप्ति के विषय में योजनीय होते हैं। जोकि कात्यायन ने कहा है—

चन्द्रोदय होने पर पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध होता है। जो दिन के तीसरा भाग में सन्ध्या के अति निकटवर्त्ती नहीं होता है।

पिण्डपितृयज्ञ के अङ्ग भूत पिण्डों का पश्चात् अर्थात् बाद में आहरण किया जाता है। इस लिए यह पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध अमावास्या में अनुष्ठित होता है। यह राजा अर्थात् चन्द्र का क्षय होने पर होता है। दिन के तीसरा भाग में ऐसा करने से इषत् न्यून अर्थात् कुछ कम समय तक रहने वाला सायाह्न के साथ अपराह्न अभिहित होता है। "अति निकटवर्त्ती नहीं होता है" ऐसा कहने से सायाह्न का प्रतिषेध होने पर कर्मकाल के रूप में अपराह्न का परिशेष रह जाता है। इसलिए कर्मकाल को व्याप्त होने वाली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिथि ग्रहणीय होती है ऐसा कहा है। वहां चन्द्रक्षय चतुर्दशी के आठवां प्रहर में प्रारम्भ होता है और अमावास्या का सातवां प्रहर में समाप्त होता है। इन दोनों के बारे में कात्यायन ने कहा है—

चतुर्दशी का आठवां अंश में चन्द्रमा क्षीण हो जाता है फिर अमावास्या के आठवां अंश में अणुपरिमाण से दिखाई पड़ता है।

जाबालि ने कहा है—

प्रतिपदों में अगर अमावास्या पूर्वाह्ण को व्याप्त होती है तो चतुर्दशी से विद्धा अमावास्या पितृकार्य के लिए सर्वदा मानी जाती है।

अत्र 'पूर्वाह्णव्यापिनी' इति विशेषकथनादपराह्णव्यापित्वं नास्तीत्यवगम्यते। तादृशी च द्विविधा, पूर्वेद्युरपराह्णव्यापिनी तद्रहिता च। आद्यपक्षे सर्वैरपि भूतविद्धैव कार्या। द्वितीयपक्षे साग्निकैरेव भूतविद्धा कार्या यत्तु हारीतेनोक्तम्—

पूर्वाह्णे चेदमावास्या अपराह्णे न चेत्तु सा।
प्रतिपद्यपि कर्त्तव्यं श्राद्धं श्राद्धविदो विदुः॥ इति।

तद्दिवसद्वयेऽप्यपराह्णव्यापित्वाभावे सति निरग्निकविषयम्। यदपि हारीतेनोक्तम्—

भूतविद्धाऽप्यमावास्या प्रतिपन्मिश्रिताऽपि वा।
पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिर्ग्राह्या कुतपकालिकी॥ इति।

तदेकोद्दिष्टविषयम्। एकोद्दिष्टस्य कुतपप्राधान्यं प्रतिपत्प्रकरणे प्रपञ्चितम्। यद्वा प्रतिपन्मिश्राया अप्यपराह्णव्यापित्वाभावे निरग्निकैरपि हेयत्वाशङ्कायां ग्राह्यत्वे कुतपव्याप्तिरनुकल्पत्वेनाभिधीयते। अपराह्णव्याप्तिः पार्वणे मुख्यकल्पः, कुतपव्याप्तिरनुकल्पः। तथा च मुख्यासंभवेऽनुकल्पस्योपादेयत्वान्निरग्निकैः प्रतिपन्मिश्रिता ग्रहीतुं शक्यते। भूतविद्धायान्तु कुतपकालिकत्वे सत्यापराह्णिकत्वमर्थसिद्धम्।

तथा सति मुख्यानुकल्पयोरुभयोरपि सद्भावात्कुतपस्य प्रारंभकालत्वाच्च प्रात्याब्दिकप्रकरणोदाहृतदेवलादिवचनानुसारेण कर्मोपक्रमोपसंहारे व्याप्तिर्दर्शिता भवति। तच्चात्र दृष्टान्तेनोपन्यस्यते। यथा कुतपव्यापिनी भूतविद्धोपादेया तथा प्रतिपद्विद्धाऽपि कुतपव्याप्त्योपादेया भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ "पूर्वाह्ण व्यापिनी" इस प्रकार विशेष रूप से कहने के कारण यह है कि अपराह्ण को व्याप्त होकर अमावास्या नहीं है ऐसा समझना चाहिए। इस प्रकार व्याप्ति दो प्रकार होती है। पूर्वदिन के अपराह्ण को व्याप्त होने वाली और व्याप्त न होनेवाली। अमावास्या के स्थान पर वही व्याप्ति दिखाई पड़ती है। पहला पक्ष में सभी के द्वारा चतुर्दशीविद्धा अमावास्या की जाती है। दूसरा पक्ष में तो साग्निकों के जरिये ही चतुर्दशीविद्धा अमावास्या की जाती है। हारीत ने कहा है—

अगर अमावास्या पूर्वाह्ण में रहकर अपराह्ण में नहीं रहती है, तो प्रतिपद में भी अमावास्या का श्राद्ध किया जाता है ऐसा श्राद्धविद लोगों ने कहा है।

इन दो दिवसों में भी अपराह्ण को व्याप्त न होने पर यह विषय निरग्नि के विषय में व्यवस्थित होता है। जो कि हारीत ने ऐसा कहा है—

चतुर्दशीविद्धा अमावास्या यदि प्रतिपद के साथ भी र्निश्चित होती है तो कुतप काल में रहनेवाली अमावास्या पितृकर्म के लिए ग्रहणीय है ऐसा विद्वान लोगों ने कहा है।

यह विषय एकोद्दिष्ट के विषय में व्यवस्थित है। एकोद्दिष्ट के लिए कुतप का प्राधान्य प्रतिपद प्रकरण में कहा गया है। प्रतिपद के साथ मिश्रित होने पर भी अपराह्णव्याप्ति के अभाव से निरग्नियों द्वारा इसका त्याग होना चाहिए इस प्रकार शंका होने पर कुतपव्याप्ति अनुकल्प के रूप में ग्रहणीय होती है, ऐसा कहा जाता है। अपराह्ण व्याप्ति पार्वण के लिए मुख्य कल्प है। कुतप व्याप्ति तो अनुकल्प है।

इस प्रकार मुख्य का संभव न होने पर अनुकल्प की उपादेयता आती है। इस कारण से निरग्निओं द्वारा प्रतिपद के साथ मिश्रित अमावास्या ग्रहीत हो सकती है। चतुर्दशी विद्धा अमावास्या कुतप काल में रहने पर अपराह्ण में इसकी अवस्थिति अर्थसिद्ध होती है। ऐसे होने से मुख्य और अनुकल्प इन दोनों की स्थिति से कुतप प्रारंभ काल के रूप में स्वीकृत होता है। इसलिये प्रातः सांवत्सरिक प्रकरण में दिया हुआ देवलवचन के अनुसार कर्म का उवक्रम और उपसंहार की व्याप्ति प्रदर्शित होती है। वह विषय यहां दृष्टान्त के रूप में उपन्यस्त किया जाता है। जैसे कुतप को व्याप्त होनेवाली चतुर्दशीविद्धा अमावास्या उपादेय होती है वैसे प्रतिपद से विद्धा अमावास्या भी कुतप को व्याप्त होने पर उपादेय होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तच्च बोधायन आह—

घटिकैकाऽप्यमावास्या प्रतिपत्सु न चेत्तदा।
भूतविद्धैव सा ग्राह्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ इति।

प्रतिपत्सु घटिकैकाऽपि कर्मकालसंबन्धिनि यदि न स्यादित्यर्थः। तदेतद्वचनं पूर्वेद्युरेवापराह्णव्याप्तौ द्रष्टव्यम्। अस्मिन्नेव विषये जाबालिराह—

प्रतिपत्स्वप्यमावास्या पूर्वाह्णव्यापिनी यदि।
भूतविद्धैव सा ग्राह्या पित्र्ये कर्मणि सर्वदा ॥ इति।

यत्तु हारीतवचनम्—

कन्यामकरमीनेषु तुलायां मिथुने तथा।
भूतविद्धैव सर्वेषां पूज्या भवति यत्नतः ॥

तद्व्रतविषयम्। तथा च जाबालिः—

तुलायां मिथुने मीने कन्यायां मकरेऽप्यमा।
भूतविद्धा व्रते ग्राह्या शेषेषु प्रतिपद्युता ॥ इति।

इति पञ्चदशीनिर्णयः।

यह विषय बोधायन ने कहा है—

"एक ही घटिका अगर प्रतिपदों में नहीं है" तो दैव और पितृकर्म में, चतुर्दशीविद्धा अमावास्या ग्रहणीय होती है।

प्रतिपद में कर्मकाल के साथ सम्बन्ध रखनेवाली एक भी घटिका अगर नहीं है इस प्रकार अर्थ होता है। यह वचन पूर्व दिन में ही अपराह्ण की व्याप्ति देखता है। इस विषय में जाबालि ने कहा है कि—

प्रतिपदों में अमावास्या यदि पूर्वाह्ण को व्याप्त होती है तो चतुर्दशीविद्धा आमावस्या ही पितृकर्म के लिए ग्रहणीय है। हारीत ने कहा है—

कन्या, मकर, मीन और मिथुन मास में चतुर्दशीविद्धा अमावास्या सभी के लिए पूज्य होती है। यह व्रत के विषय में कहा है। इस प्रकार जाबालि ने कहा है—

"तुला, मिथुन, मीन, कन्या और मकर मास में अमावास्या चतुर्दशीविद्धा होकर व्रत में ग्रहणीय होती है, दूसरे स्थलों में प्रतिपद के साथ युक्त होने पर ग्रहणीय होती है।

इस प्रकार पञ्चदशी का निर्णय हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथेष्टिकालो निर्णीयते

न चेष्टेः प्रतिपदि कर्त्तव्यतया पूर्वप्रकरण एव कुतोऽयं नाभिहित इति शङ्कनीयम्। पर्वचतुर्थांशस्यापि प्रतिपद इवेष्टिकालत्वात्। पर्वप्रतिपत्सन्धिसापेक्षत्वाच्च। अतः पर्वनिर्णयानन्तरमस्य निर्णयस्यावसर इतीदानीं निर्णीयते। अत्रेदञ्चिन्त्यते। किं पर्वप्रतिपदोः सन्धिरिष्टिकालः, किं वा सन्धेरुभौ पार्श्वौ? इति। तदर्थं प्रथमं सन्धिस्वरूपं निरूपणीयम्। तन्निरूपणञ्च पर्वभेदाधीनम्। अतः पर्वभेदो निरूप्यते। पर्व च द्विविधं पौर्णमास्यमावास्या चेति।

ननु प्रतिपदमारभ्य चतुर्दश्यन्तानां तिथीनां शुक्लकृष्णपक्षयोर्नास्ति नामभेदः पञ्चदश्यां तु किमर्थोऽयं नामभेद इति चेत्। तयोर्विशेषस्वभावज्ञापनायेति ब्रूमः। प्रथमद्वितीयादीनां चन्द्रकलानां मध्ये यत्संख्याका कला वर्धते तत्संख्याका शुक्लपक्षे तिथि र्व्यवह्रियते। कृष्णपक्षेऽपि क्षीयमाणायास्तस्याः कलाया नाम्ना तत्तिथिव्यवहारः। तेन न्यायेनान्त्यतिथेरपि पक्षद्वये पञ्चदशीत्येव व्यवहारः। तत्र शुक्लायां पञ्चदश्यां चन्द्रमण्डलं स्वकलाभिः सर्वात्मना पूर्यते। सेयं मण्डलपरिपूर्त्तिः पूर्णिमेत्यनेन नाम्ना ज्ञाप्यते। तदुक्तं ब्रह्माण्डमत्स्यपुराणयोः—

कलाक्षये व्यतिक्रान्ते दिवा पूर्णौ परस्परम्।
चन्द्रादित्यौ पराह्णे तु पूर्णत्वात्पूर्णिमा स्मृता[1]॥ इति।

अह्नः परोभागः पराह्णः सूर्यास्तमयकाल इत्यर्थः। तत्र यथाऽऽदित्यः सम्पूर्णमण्डलः सन्नस्तमेति तथोत्तरक्षणे चन्द्रः संपूर्णमण्डलः सन्नुदेतीति दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकभावं विवक्षित्वा उभयोरादित्यचन्द्रयोरुपन्यासः।

इसके अनन्तर इष्टि काल का निर्णय होता है। प्रतिपद में इष्टि का अनुष्ठान होता है। इसलिये पूर्व प्रकरण में इसका विवरण क्यों उपस्थापित नहीं

---

१. पूर्णेन्दोः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिश्च पूर्णिमा।
ततो विरज्यते नक्तं पौर्णमास्यां निशाकरः॥
यदीक्षेते व्यतीपाते दिवा पूर्णे परस्परम्।
चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा॥
यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता॥ ब्रह्माण्डपुराणम्
२१।२८।४३–४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया गया ? इस प्रकार शङ्का नहीं करनी चाहिये। क्योंकि पर्व का चौथा अंश प्रतिपद की तरह इष्टि काल है। पर्व और प्रतिपद की सन्धि होने पर ही इसकी संभावना होती है। अतः पर्व निर्णय के बाद इसका निर्णय के लिए अवसर अब मिलता है। यहां एक चिन्ता आती है कि—पर्व और प्रतिपद की सन्धि या सन्धि के दो पार्श्व इष्टि का काल होते हैं। इसलिये पहले सन्धि का स्वरूप निर्णीत किया जाता है। इसका निरूपण पर्वभेद के अधीन होता है। अतः पर्वभेद का निरूपण आवश्यक है। पौर्णमासी और अमावास्या के भेद से पर्व दो प्रकार होता है।

यहां एक प्रश्न होता है—प्रतिपद से लेकर चतुर्दशी तक होनेवाली शुक्ल और कृष्ण पक्ष की तिथियों का नामभेद नहीं है। पंचदशी का क्यों नामभेद होता है ? इसका उत्तर ऐसा है कि उसमें विशेष स्वभाव को ज्ञापित करने के लिए इस प्रकार नामभेद होता है। पहली और दूसरी चन्द्रकलाओं का बीच में जितनी संख्या कला की वृद्धि होती है, शुक्ल पक्ष में इस संख्या के अनुसार तिथि का व्यवहार होता है। कृष्णपक्ष में भी क्षीण होनेवाली कला का नाम से उस तिथि का व्यवहार होता है। इस न्याय से दूसरी तिथि के दो पक्षों में पञ्चदशी का नाम व्यवहार होता है। शुक्ल पञ्चदशी में चन्द्रमण्डल अपनी कला से पूरित होता है। इस प्रकार जिस मण्डल की पूर्त्ति होती है वह पूर्णिमा नाम से जाना जाता है। ब्रह्माण्ड और मत्स्य पुराण में यह कहा है—

एक दिन में कलाक्षय और व्यतिक्रान्त होने पर पूर्ण चन्द्र और सूर्य परस्पर अपराह्ण में पूर्ण होकर रहने से वह तिथि पूर्णिमा होती है।

अह्नका परवर्त्ती भाग पराह्ण होता है जो सूर्य का अस्तमय काल है। वहां जिस प्रकार सूर्य संपूर्ण मण्डल को परिव्याप्त होकर अस्त होते हैं उस प्रकार उत्तर क्षण में चन्द्र संपूर्ण मण्डल को परिव्याप्त होकर उदित होती है। इस दृष्टान्त और दृष्टान्तलब्ध भाव को बताने की इच्छा से चन्द्र और आदित्य (सूर्य) का उपन्यास किया है।

यथा मण्डलपूर्णत्वविवक्षया पूर्णिमाशब्दः प्रयुज्यते, तथा मासपूर्णत्वविवक्षया पौर्णमासीशब्दः[1] प्रयुज्यते। तदुक्तं भविष्योत्तरे—

---

१. प्रतिपत् कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्णके।
सायाह्ने प्रतिपन्ने च स कालः पौर्णमासिकः॥
ब्रह्माण्ड पु० १।२।२८।३६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पौर्णमासी महाराज सोमस्य दयिता तिथिः।
पूर्णो मासो भवेद्यस्मात् पौर्णमासी ततः स्मृता ॥ इति

पूर्णिमाऽमावास्ययोर्विकल्पेन मासान्तत्वं मासप्रस्तावे दर्शितम्। अमावास्येत्यनेन नाम्ना बहवोऽर्थाः कथ्यन्ते। तत्रामाशब्दस्य चत्वारोऽर्थाः, सहभावः, कन्या, सूर्यरश्मिः, चन्द्रकला चेति। वसुशब्दस्य च चत्वारोऽर्थाः। इन्द्रश्चन्द्रः पितृविशेषः निवासश्चेति। तत्र सहभाववाचिनममाशब्दमिन्द्रवाचिनं वसुशब्दं चोररीकृत्य निर्वचनमेवं प्रवर्त्तते। अमा वसुरस्यामित्यमावास्येति।

अयमर्थः। वृत्रवधानन्तरं प्रोषितेन्द्रसमागमे सन्तुष्टा देवाः परस्परमवोचन्त। अमाऽस्माभिः सहायमिन्द्रो निवसतीति। अतस्तस्य दिनस्यामावास्यात्वमिति। सोऽयमर्थः शतपथब्राह्मणे दर्शपूर्णमासप्रकरणे श्रूयते। "ते देवा अब्रुवन् अमा वै नोऽद्य वसु वसति यो नः प्रावात्सीत्" इति। तैत्तिरीयब्राह्मणेऽपि (२. ५. ३. १२) विस्पष्टमयमेवार्थः श्रूयते— "इन्द्रो वृत्रं हत्वा परं परावतमगच्छदपराधमिति मन्यमानस्तं देवाः प्रैषमैच्छन्" इत्यारभ्य पठ्यते। सोऽमावास्यां प्रत्यागच्छत्तं देवा अभिसमगच्छन्तामा वै नोऽद्य वसु वसतीतीन्द्रो हि देवानां वसु तदमावास्याया अमावास्यात्वम्। (तै० ब्रा० २।५।५।१२–१४) इति। परं परावतम् अत्यन्तदूरदेशमित्यर्थः। अपराधं द्रोहमकार्षम्।

यदा वसुशब्दश्चन्द्रवाची तदाऽप्यमाशब्दस्य वाच्यं सहभावमेवोररीकृत्यैवं निर्वक्तव्यम्। पश्वौषधीभिः सह चन्द्रो वसत्यस्यां रात्राविव्यमावास्या। अयमर्थः शतपथब्राह्मणे "श्रूयते एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः स यत्रैष एतां रात्रिं न पुरस्तान्न पश्चाद्ददृशे तदिमं लोकमागच्छति। स इह पश्वोषधीरनुप्रविशति स वै देवानां वस्वन्नं ह्येषां तद्यदेष एतां रात्रिमिहामा वशति तस्मादमावास्या नाम" इति। [1]बृहदारण्यकेऽपि चन्द्रं प्रकृत्य पठ्यते "सोऽमावास्यां रात्रिमेतया षोडश्या कलया सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविश्य ततः प्रातर्ज्जायते" इति ॥

जैसे मण्डल की पूर्णता को बतलाने के लिए इच्छा करके पूर्णिमा शब्द का प्रयोग हुआ है, वैसे मास की पूर्णता को बतलाने के लिए पौर्णमासी शब्द का प्रयोग होता है। यह विषय भविष्योत्तरपुराण में कहा है—

---

१. बृह० उ० ५. ७. ४-१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे महाराज ! पौर्णमासी तिथि चन्द्र की तिथि है। इस तिथि में मास पूर्ण होने से इसको पौर्णमासी के नाम से स्मरण करते हैं।

मास विषयक प्रस्तावना में पूर्णिमा और अमावास्या विकल्प के रूप में मास की अन्तिम तिथि दर्शित की गई है। अमावास्या शब्द से अनेक अर्थ कहे जाते हैं। वहां अमा शब्द का चार अर्थ हैं। यथा—सहभाव, कन्या, सूर्य रश्मि और चन्द्रकला। वसु शब्द का भी चार अर्थ हैं। यथा—इन्द्र, चन्द्र, पितृ विशेष और निवास। वहाँ सहभाव अर्थ को प्रकाश करनेवाला अमाशब्द को और इन्द्र अर्थ को प्रकाश करनेवाला वसु शब्द को लेकर निर्वचन होता है। "अमा और वसु इस तिथि में" ऐसी व्युत्पत्ति से अमावास्या होती है।

इसका अर्थ यह हैं—वृत्रासुर वध के अनन्तर इन्द्र के समागम से सन्तुष्ट होकर देवता लोग परस्पर कहने लगे—अमा, अर्थात् हमारे साथ इन्द्र निवास करता है। अंतः उस दिन को 'अमावास्या' के नाम से पुकारते हैं। यही अर्थ शतपथ ब्राह्मण में दर्शपूर्णमास प्रकरण में सुना जाता है—"उन देवताओं ने बोला कि जो दूर को गया था वह वसु हमारे साथ आज वसता है।" तैत्तीरीय ब्राह्मण में भी स्पष्ट रूप से यह अर्थ सुना जाता है। "इन्द्र वृत्र की हत्या करके अनन्तर वापस आकर अपराध हुआ ऐसा समझा इसलिए देवताओं ने इसके लिए प्रैष किया" इस विषय से प्रारंभ कर पाठ मिलता है। वह अमावस्या को वापस आया। उसे देवताओं ने संवर्धित किया। हमारे साथ आज इन्द्र बसता है। इसलिए इन्द्र ही देवताओं का वसु है। यही अमावास्या का अमावास्यात्व है। यह परावत, अर्थात् अत्यन्त दूरवर्त्ती देश है। द्रोह से अपराध किया।

जब वसुशब्द चन्द्र अर्थ को प्रकाश करता है, तब अमाशब्द का वाच्य अर्थ "सहभाव" को लेकर इस प्रकार निर्वचन होता है। पशु और ओषधों के साथ चन्द्र इस रात में बसता है इसलिए इसका नाम अमावास्या है। यह अर्थ शतपथ ब्राह्मण में सुना जाता है। वह सोम राजा देवताओं का अन्न जो चन्द्र वह जिसमें है, इस रात्रि के आगे पश्चात् भी नहीं दिखाई पड़ता है। वह इस लोक को आता है। वह वहां पशु और ओषधी में अनुप्रवेश करता है। वही देवताओं का वसु! उनका अन्न ही यह है। इस रात में अमा रहने के कारण अमावास्या इसका नाम है। इस प्रकारं बृहदारण्यक में भी चन्द्र को उद्देश्य करके पाठ मिलता है--वह अमावास्या रात्रि में सोलहवीं कला के साथ सब प्राणाधरियों में अनुप्रवेश कर फिर प्रातःकाल में उदित होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमा-वसुशब्दौ यदा कन्यापितृवाचिनौ तदानीमेवं निर्वक्तव्यम्। अमां वसु नैच्छदस्यां रात्रावित्यमावास्या। अमाशब्दाभिधेया काचित् कन्या तस्यां रात्रौ वसुनामानं पितरं वव्रे। स च पिता धर्मलोपाद् भीतः सन् तां कन्यां नैच्छत्। सोऽयमितिहासः पद्मपुराणेऽवगन्तव्यः।

अमावसुशब्दौ यदा सूर्यरश्मिनिवासवाचिनौ तदा तदनुसारेण निर्वचनं स्कान्दे नागरखण्डे पठ्यते—

अमा नाम रवे रश्मिः सहस्रप्रमुखः स्मृतः।
यस्य वै तेजसा सूर्यः प्रोक्तस्त्रैलोक्यदीपकः॥
तस्मिन् वसति येनेन्दुरमावास्या ततः स्मृता॥ इति

ब्रह्माण्डपुराणेऽपि[1]

अमा नाम रवे रश्मिश्चन्द्रलोके प्रतिष्ठिता।
यस्मात् सोमो वसेत्तस्याममावास्या ततः स्मृता॥ इति।

अमावसुशब्दयोः सहभाव-निवासवाचित्वमाश्रित्य मत्स्यवायुब्रह्माण्डपुराणेषु निर्वचनं कृतम्—

अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ।
एषा पञ्चदशी रात्रिरमावास्या ततः स्मृता[2]॥ इति

अमा और वसु शब्द जब कन्या और पितृ अर्थ को प्रकाश करते हैं. तब इस प्रकार निर्वचन होता है। इस रात्रि में वसु के साथ अमा की इच्छा करने से अमावास्या नाम होता है। अमा शब्द से अभिहित कोई कन्याने उस रात्रि में वसु नामक पिता से बोला। वह पिता धर्मलोप हो जाने के भय से उस कन्या को नहीं चाहा। आगे इस विषय में इतिहास और पद्मपुराण में जानना चाहिए।

अमा और वसु शब्द जब सूर्यरश्मि और निवास के अर्थ में प्रयोजित होते हैं, तब उसके अनुसार स्कन्द पुराण का नागरखण्ड में निर्वचन मिलता है—अमा के काम से रवि की रश्मि हजार मुख वाली है। जिसके तेज से सूर्य तीन लोकों को आलोकित करते हैं। इसमें चन्द्र का निवास के कारण वह अमावास्या नाम से प्रसिद्ध है।

---

१. मुद्रितब्रह्माण्डपुराणे नास्ति

२ ब्रह्माण्डपुराणम्—१।२।२८।४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्माण्ड पुराण में भी अमा नाम के रवि की रश्मि चन्द्रलोक में प्रतिष्ठित है। इसलिए सोम अर्थात् चन्द्र उसमें वसने के कारण अमावास्या के नाम से प्रसिद्ध है।

अमा और वसु शब्दों का सहभाव और निवास इन दोनों अर्थों को लेकर मत्स्यपुराण, वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराणों ने निर्वचन किया है—

चन्द्र और सूर्य जब नक्षत्र में एकत्र बसते हैं, तब इस पन्द्रहवीं रात्रि अमावास्या नाम से स्मृतिशास्त्र में प्रसिद्ध है।

अमाशब्दस्य चन्द्रकलावाचित्वं स्कान्दे दर्शितम्—

अमा षोडशभागेन देवि प्रोक्ता महाकला[1] ॥ इति।

तां कलामुपजीव्य निर्वचनं भगवतीपुराणे[2] दर्शितम्—

कलाऽवशेषो निष्क्रान्तः प्रविष्टः सूर्यमण्डलम्।
अमायां विशते यस्मादमावास्या ततः स्मृता ॥ इति।

अमावास्याशब्दपर्यायो दर्शशब्दोऽपि द्विधा निरुच्यते। सूर्याचन्द्रमसौ परस्परं पश्यतोऽत्रेति दर्शः[3] तदुक्तं मत्स्यपुराणे—

आश्रित्यताममावास्यां पश्यतः सुसमागतौ।
अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ॥ इति।

न दृश्यते चन्द्रोऽत्रेति द्वितीयं निर्वचनम्। यद्यपि तदानीमदर्श इति वक्तव्यं तथापि विपरीतलक्षणया दर्श इत्युच्यते। तदेतद् भट्टाचार्यैरुक्तम्। 'शूरे कातरशब्दवत्' इति। चन्द्रादर्शनञ्च शतपथवाक्येन[4] पूर्वमुदाहृतम्। 'स यत्रैष एतां रात्रिं न पुरस्तान्न पश्चात् ददृशे' इति। अदर्शने च कारणं सूर्याचन्द्रमसोरत्यन्तसन्निकर्षः। सति च तस्मिन् सन्निकर्षे महता सौरेण तेजसा चान्द्रतेजोऽभिभूयते।

---

१. अमा षोडशभागेन देवि प्रोक्ता महाकला।
संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी ॥ स्कन्दपु० प्रभासखण्डे

२. देवीभागवतम्

३. व्युच्छिद्य तममावास्यां पश्यतस्तौ समागतौ।
अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तो यदा तद्दर्श उच्यते ॥ ब्रह्म० पु० १।२।२८।४८
मत्स्ये तु व्युच्छिद्य स्थाने आश्रित्य इति पाठः।

४. श० ब्रा० ५।६।४।१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत एव पौर्णमास्यामत्यन्तविप्रकर्षे सत्यनभिभूतत्वाच्चन्द्रमण्डलं संपूर्णं दृश्यते। तावेतौ सन्निकर्षविप्रकर्षौ गोभिल[1] आह "यः परो विप्रकर्षः सूर्याचन्द्रमसोः सा पौर्णमासी, यः परः सन्निकर्षः साऽमावास्या" इति। तदेवं पर्वाभिधायाः पञ्चदश्याः पूर्णिमादिनाम निर्वचनेन स्वभावविशेषो ज्ञापितो भवति। ते च पूर्णिमास्यमावास्ये प्रत्येकं द्विविधे तच्च पुराणे दर्शितम्—

चन्द्रकला के अर्थ को प्रकाश करने वाला अमा शब्द के बारे में स्कन्दपुराण में प्रदर्शित किया है—हे देवि! सोलह भाग से अमा नामक कला महाकला भाव से प्रसिद्ध है।

उस कला को उपजीव्य करके भगवती पुराण में निर्वचन प्रदर्शित किया है—अवशिष्ट कला बाहर को आकर सूर्यमंडल में प्रवेश की। अमा में प्रवेश करने के कारण अमावास्या के नाम से नामित हुई है।

अमावास्या शब्द का पर्याय दर्शशब्द का भी दो प्रकार निर्वचन होता है। सूर्य और चन्द्र इस तिथि में परस्पर दर्शन करने के कारण अमावास्या का नाम दर्श है। यह विषय मत्स्य पुराण में कहा है—

उस अमावास्या का आश्रय से चन्द्र और सूर्य एक दूसरे का दर्शन करते हैं अतः उसको दर्श कहते हैं।

चन्द्र इसमें नहीं दृश्य होते हैं इस प्रकार दूसरा निर्वचन होता है। इस व्युत्पत्ति से यद्यपि 'अदर्श' ऐसा कहना उचित है, तथापि विपरीत लक्षणा के द्वारा दर्श कहा जाता है। इस विषय में भट्टाचार्यों ने कहा है—शूर शब्द कातर के अर्थ में जैसे प्रयुक्त होता है इसी प्रकार वहां है। चन्द्र का अदर्शन के विषय में शतपथ ब्राह्मण का वाक्य के द्वारा पहला उदाहरण में प्रतिपादित किया है। जैसे यह जहां रात के आगे और पश्चात् में नहीं दिखाई पड़ा था। सूर्य और चन्द्र के अत्यन्त सन्निकर्ष अर्थात् निकटवर्तिता ही अदर्शन का कारण है। उस निकटवर्त्तिता के कारण सूर्य के अत्यन्त तेज से चन्द्र तेज अभिभूत हो जाता है, मन्द पड़ जाता है।

अत एव पूर्णिमा में दूरवर्त्ती हो जाने के कारण अभिभूत न होकर चन्द्रमण्डल संपूर्ण रूप से दिखाई पड़ता है। इस सन्निकर्ष और विप्रकर्ष के बारे में गोभिल ने कहा है—सूर्य और चन्द्र का जो अत्यन्त विप्रकर्ष वह पौर्ण-

---

१. गोभि० गृ० सू० १।५।७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मासी है और जो सन्निकर्ष वह अमावास्या है। इस प्रकार पर्व रूप से अभिहित पंचदशी तिथि के पूर्णिमा प्रभृति नामों का निर्वचन में अपने विशेष स्वभाव ज्ञापित्व नहीं होता है। और ये पूर्णिमा और अमावास्या प्रत्येक दो प्रकार होते हैं। यह विषय पुराण में प्रदर्शित किया हैं—

राका चानुमतिश्चैव पौर्णमासी द्विधा स्मृता।
सिनीवाली [1]कुहूश्चैवममावास्या द्विधैव तु॥ इति।

एतासां चतसृणां स्वरूपं काठकशाखायां विस्पष्टं श्रूयते—

या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिर्योत्तरा सा राका।
या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः॥ इति।

वृद्धवसिष्ठोऽपि—

राका चानुमतिश्चैव पौर्णमासीद्वयं विदुः।
राका संपूर्णचन्द्रा स्यात् कलोनाऽनुमतिर्मता॥
पौर्णमासी दिवा दृष्टे शशिन्यनुमतिः स्मृता।
रात्रिदृष्टे पुनस्तस्मिन् सैव राकेति कीर्त्तिता॥ इति।

मत्स्य-ब्रह्माण्डपुराणयोः—

यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह।
तस्मादनुमति र्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता[2]॥
अत्यर्थं राजते यस्यां पौर्णमास्यां निशाकरः।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः[3]॥ इति।

बृहद्वसिष्ठः—

दृष्टचन्द्राममावास्यां[4] सिनीवालीं प्रचक्षते।
एतामेव कुहूमाहुर्नष्टचन्द्रां महर्षयः॥ इति।

---

१. या पूर्वामावास्या सिनीवाली, या उत्तरा सा कुहूरिति। कौशिकसूत्रम् १।१३०

२. ब्रह्माण्ड पु० १।२।२८।४५

३. ब्रह्माण्डे पृथक्पाठः—अत्यर्थं भ्राजते यस्माद् व्योम्न्यस्यां वै निशाकरः।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयोऽब्रुवन्॥
१।२।२८।४६

४. स वै देवानां विस्वन्नं ह्येषां तद्यदा रात्रिमिहामा वसति तस्मादमा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राका और अनुमति के नाम से पौर्णमासी दो प्रकार है। इस प्रकार सिनीवाली और कुहू के नाम से अमावास्या दो प्रकार है।

इन चारों का स्वरूप काठक शाखा में स्पष्ट रूप से सुना है—जो पूर्वविद्धा पौर्णमासी वह अनुमति और जो परविद्धा पौर्णमासी वह राका है। इस प्रकार जो पूर्वविद्धा अमावास्या वह सिनीवाली और जो परविद्धा अमावास्या वह कुहू है। वृद्धवसिष्ठ में भी—राका और अनुमति के नाम से पौर्णमासी दो प्रकार है। जिसमें चन्द्र संपूर्ण रूप से रहते हैं वह राका और एक कला से न्यून होने से अनुमति होती है। जिस पौर्णमासी में चन्द्र दिन में दृश्य होते हैं, वही पौर्णमासी अनुमति है और जिस पौर्णमासी में रात में दृष्ट होते हैं, वही राका नाम से कीर्त्तित है।

मत्स्य और ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है—देवताओं के साथ पितरगण जिस कारण से उसको अनुमति देते हैं, इस कारण से वही पूर्णिमा अनुमति के नाम से कही गई है। जिस पूर्णिमा में निशाकर अर्थात् चन्द्र अतिमात्रा से दिखाई पड़ते हैं। अर्थात् रञ्जित होते हैं, अन्य का रंजन के कारण उसे राका नाम से क्रान्तदर्शी कवियों ने कहा है। वृहद् वसिष्ठ ने कहा है—

चन्द्र दृष्ट होनेवाली अमावास्या को सिनीवाली के नाम से कहते हैं। महर्षियों ने जिसमें चन्द्र नहीं दिखाई पड़ता उसे कुहू के नाम से कहा है।

तदेवं चत्वारः पर्वभेदा निरूपिताः तेषु कुहूव्यतिरिक्तानां त्रयाणां भेदानां लघ्वक्षरोच्चारणपरिमितः कालः सन्धिरित्युच्यते। कुह्वास्त्वक्षरद्वयपरिमितः कालः। तदेतदुक्तं भगवतीपुराणे—

अनुमत्याश्च राकायाः सिनीवाल्याः कुहूं विना।
एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृता[1]॥ इति

वास्या नाम, स चन्द्रमाः। शतपथब्राह्मणम इति धर्मशास्त्रशब्दकोषः भा. १ पृ० ५१

यः परमविप्रकर्षः सूर्याचन्द्रमसोः सा पौर्णमासी।
यः परमः सन्निकर्षः सामावास्या॥

गोभिलगृ० सू० १।५।७

१. अनुमत्या सराकाया सिनीवाल्या कुहूं विना।
एतासां द्विलवः कालः कुमात्रेति कुहूः स्मृता॥ इति देवीपु० ४८।६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा लवस्वरूपं स्मृत्यन्तरे दर्शितम्—

लघ्वक्षरचतुर्भागस्त्रुटि[1]रित्यभिधीयते।
त्रुटिद्वयं लवः प्रोक्तो निमेषस्तु लवद्वयम्॥ इति

एवञ्च सति त्रुटिशब्दाभिधेयानां भागानां चतुष्टयं लवद्वयरूपं लघ्वक्षरसमं भवति। तस्मिन् लघ्वक्षरपरिमिते काले एकः पर्वणो भागः द्वितीयः प्रतिपदः। तदुभयं मिलित्वा सन्धिर्भवति। कुहूप्रतिपदोः सन्धिस्तु पूर्वस्माद्द्विगुणः अक्षरद्वयपरिमितत्वात्। मत्स्य—ब्रह्माण्डपुराणयोः।

एका चानुमतिश्चैव सिनीवाली कुहूस्तथा।
एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूस्तथा॥
कुह्विति कोकिलेनोक्ते यावान् कालः समाप्यते।
तत्कालसंज्ञिता चैषा अमावास्या कुहूः स्मृता॥
इत्येष पर्वसन्धीनां कालो वा द्विविधः स्मृतः॥ इति।

एवं सन्धौ निरूपिते सति योऽयं प्रक्रान्तो विचारस्तत्र सन्धिरेवेष्टिकाल इति तावत्प्राप्तम्। "सन्धौ यजेत" इति श्रुतेः।

इस प्रकार पर्व के चार भेदों का निरूपण हुआ उनमें कुहू को छोड़कर दूसरे तीन भेदों का लघु अक्षर का उच्चारण के लिए आवश्यक परिमित काल सन्धि के रूप में कहा जाता है। दो अक्षरों का उच्चारण काल कुहू का है। यह विषय भगवती पुराण में कहा है—

कुहू के बिना अनुमति राका और सिनीवाली इनके दो लवों का परिमित काल है। कुहू कहने के लिए जितना काल है उतना काल कुहू का है।

दूसरी स्मृतिओं में लव का स्वरूप प्रदर्शित किया है—चार लघु अक्षरों से एक त्रुटि होती है। दो त्रुटिओं से एक लव कहा है। दो लवों से एक निमेष होता है।

ऐसे होने से त्रुटि शब्द से अभिहित चार भाग दो लवों का रूप एक लघु अक्षर के समान है। उस लघु अक्षर का परिमित काल में एक पार्वण (अमावास्या का) भाग और दूसरा प्रतिपद भाग है। इन दोनों के मिलन से सन्धि होती है। कुहू और प्रतिपद की सन्धि पूर्व से द्विगुण है क्योंकि दो

---

१. द्वौ निमेषौ त्रुटिर्ज्ञेया प्राणो दशत्रुटिः स्मृतः॥
विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् १।७३।२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अक्षरों का परिमित काल ही इसका काल है। मत्स्य पुराण और ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा है—

अनुमति, सिनीवाली और कुहू इनका काल दो लवों का परिमाण है। कुहूमात्रा ही कुहू का काल है। कोयल पक्षी द्वारा कुहू कहने में जितना काल लगता है, उतना काल ही 'कुहू' लेती है इसलिए कुहू इसकी संज्ञा होती है। इस प्रकार पर्वसन्धियों का काल दो प्रकार है।

इस प्रकार सन्धिनिरूपित होनेपर जो विचार सामने आया वहीं सन्धि इष्टिकाल है। 'सन्धि में ही यज्ञ करना है' यह श्रुति का कहना है।

मैवम्, सन्धेः सूक्ष्मत्वात्तत्र यागानुष्ठानानुपपत्तेः। का तर्हि श्रुतेर्गतिः। पार्श्वद्वयलक्षणा इति ब्रूमः। यथा गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गाशब्दः प्रवाहेऽनुपपन्नस्तत्समीपं तीरं लक्षयति, तथा सन्धिशब्दोऽपि पार्श्वद्वयं लक्षयतु। अत एव श्रुत्यन्तरम्—"सन्धिमभितो यजेत" इति। बौधायनोऽपि—

सूक्ष्मत्वात् सन्धिकालस्य सन्धेर्विषय उच्यते।
सामीप्यं विषयं प्राहुः पूर्वेणाप्यपरेण वा॥ इति।

अत्र पूर्वापरशब्दाभ्यां सन्धेः प्राचीनं पर्वदिनं पराचीनं प्रतिपद्दिनञ्चाभिधीयते। तत्र पूर्वस्मिन् पर्वदिने यागप्रारम्भः उत्तरस्मिन् प्रतिपद्दिने यागसमाप्तिः। अन्वाधानमिध्माबर्हिःसंपादनमग्निपरिग्रह उपस्तरणञ्चेत्येवमादिः प्रयोगः प्रारम्भः। स पूर्वेद्युरनुष्ठेयः। तथा च तैत्तिरीयब्राह्मणे श्रूयते "पूर्वेद्युरिध्माबर्हिः करोति, यज्ञमेवारभ्य गृहीत्वोपवसति" इति। शतपथब्राह्मणेऽपि "पूर्वेद्युरग्निं गृह्णाति उत्तरमहर्यजति" इति।

तत्राग्निग्रहणं नामाध्वर्युणा आहवनीय-गार्हपत्य-दक्षिणाग्निषु 'ममाग्ने वर्चः' इत्यादिभिरृग्भिः समिदाधानलक्षणेऽन्वाधाने क्रियमाणे पार्श्ववर्त्तिना यजमानेन 'अग्निं गृह्णामि' इत्यादीनां मन्त्राणां पठनम्। तदिदं पर्वदिने क्रियते। प्रतिपद्दिने तु "कर्मणे वान्देवेभ्यः" इत्यादिभिरध्वर्युर्हस्तप्रक्षालनतण्डुलनिर्वापपुरोडाशप्रदानादिलक्षणं प्रयोगं करोति। तदिदं यजनम्।

यह ठीक नहीं है, क्योंकि सन्धि का काल सूक्ष्म होने से उस काल में याग का अनुष्ठान असंभव है। वैसे होने पर श्रुति की गति क्या होगी? यहाँ कहा जा सकता कि लक्षणा के द्वारा सन्धि का उभय पार्श्व भी यागानुष्ठान का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काल के रूप में स्वीकृत होगा। जैसे 'गङ्गा में घोष' इस स्थल में गङ्गा शब्द से पानी का प्रवाह अर्थ बोध होने पर उस पर घोष की अवस्थिति संभव नहीं है, इसलिए उसका समीपवर्त्ती तीर यहाँ लक्षित होता है, वैसे ही सन्धि शब्द भी दोनों ही पार्श्वों को लक्षित करे। अत एव दूसरी श्रुति मिलती है कि सन्धि के निकट में याग किया जाता है। बौधायन ने भी कहा है—

सन्धि का काल सूक्ष्म होने के कारण सन्धि के निकटवर्त्ती पूर्व या पर भी सन्धि का विषय के रूप में गृहीत होता है। इस प्रकार कहते हैं।

यहाँ पूर्व और पर शब्द से पर्व दिन और परवर्त्ती प्रतिपद दिन अभिहित होते हैं। इस स्थल में पूर्व पर्वदिन में याग का प्रारंभ होकर प्रतिपद दिन में समाप्ति होती है। अन्वाधान समिध और कुश का संग्रह अग्नि का चयन और आस्तरण प्रभृति प्रयोग प्रारंभ के रूप में माने जाते है। वह पूर्वदिन में अनुष्ठित होता है। इसलिए तैत्तिरीय ब्राह्मण में सुना है पूर्वदिन में समिध और कुशों का संग्रह किया जाता है, इसलिए यहाँ भाग का प्रारंभ किया जाता है। शतपथब्राह्मण में भी पूर्वदिन में अग्नि का चयन किया जाता है और परदिन में याग किया जाता है।

इस स्थल में अग्नि-ग्रहण शब्द से यह समझ में आता है कि—अध्यर्यु आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणा अग्नि में "ममाग्ने वर्चः" इस मन्त्र से समिदाधान रूपक अन्वाधान करने पर निकट में होनेवाला यजमान 'अग्निं गृह्णामि' इस मन्त्र को पढ़ता है। यह सब पर्व दिन में किया जाता है। प्रतिपद दिन में "कर्मणे वा देवेभ्यः" इन मन्त्रों को पाठ कर अध्वर्यु हस्त प्रक्षालन तंडुल का निर्वपण और पुरोडाशों का प्रदान प्रभृति प्रयोग करता है। यह याग का स्वरूप होता है।

एतदेवाभिप्रेत्य गोभिल आह—"पक्षान्ता उपवस्तव्याः पक्षादयोऽभियष्टव्याः" इति।

अत्रोपवासशब्देनाग्न्युपस्तरणादिर्विवक्षितः। तस्मिन् क्रियमाणे यजमानसमीपे देवतानां निवासात्। तदेतत्तैत्तिरीयब्राह्मणे दर्शितम्। "उपास्मिन् श्वो यक्ष्यमाणे देवता वसन्ति य एवं विद्वानग्निमुपस्तृणाति" इति।

उपवासशब्दाभिधेयस्य पर्वदिने कर्त्तव्यस्यान्वाधानादेः पर्वणि चतुरंशवति आद्यास्त्रयोंऽशा विहितः कालः। न तु चतुर्थांशः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यागस्य तु पर्वचतुर्थांशः प्रतिपदंशास्त्रयश्च विहितः कालः। न तु प्रतिपदश्चतुर्थांशः। तदेतदाह लौगाक्षिः—

त्रीनंशानौपवस्तस्य यागस्य चतुरो विदुः।
द्वावंशावुत्सृजेदन्त्यौ यागे च व्रतकर्मणि ॥ इति।

तमेतं यज्ञकालं यज्ञपार्श्वोऽप्याह—

पञ्चदश्याः परः पादः पक्षादेः प्रथमास्त्रयः।
कालः पार्वणयागे स्यादथान्त्ये तु न विद्यते ॥ इति।

वृद्धशातातपोऽपि—

पर्वणो यश्चतुर्थांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः।
यागकालः स विज्ञेयः प्रातरुक्तो मनीषिभिः ॥ इति।

इसको अभिप्रेत करके गोभिल ने कहा है—पक्ष के अन्तिम दिवस में उपवास किया जाता है और पक्ष के पहला दिन में याग कि॰ जाता है।

यहाँ उपवास शब्द से अग्नि का उपस्तरण प्रभृति कर्मों की विवक्षा होती है। इस प्रकार होने से यजमान के निकट में देवताओं का निवास होता है। इसके बारे में तैत्तिरीय ब्राह्मण में दर्शित किया गया है—कि जो विद्वान अग्नि का उपस्तरण कर परदिन में याग करने के लिए प्रस्तुत रहता है; क्योंकि उसके निकट में देवता रहते हैं।

उपवास शब्द से ऐसा स्थिरीकृत है कि पर्वदिन में होने वाले अन्वाधान प्रभृति कर्मों का अनुष्ठान के लिए चार भागों से विभक्त पर्व का पहले तीन अंश काल के रूप में माना जाता है। किन्तु चौथा अंश नहीं माना जाता है; क्योंकि याग के लिए पर्व का चौथा अंश और प्रतिपद का तीन अंश मिलकर काल के रूप में विहित होते हैं। इसके बारे में लौगाक्षि ने कहा है—

तीन अंशों में उपवास किया जाता है। याग के चार ही कालांश होते हैं, अन्त में रहनेवाले दो अंश याग और व्रत कर्म में उत्सर्ग के लिए स्वीकृत किये जाते हैं।

यज्ञपार्श्व ने इस यज्ञ-काल के विषय में कहा है—पूर्णिमा का परवर्त्ती पाद को और पक्ष का आदि अर्थात् प्रतिपद के तीन पादों को लेकर पार्वण योग में काल निर्धारित है। अन्त में तो नहीं रहता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृद्धशातातप ने भी कहा है—पर्व का चौथा अंश और प्रतिपद का पहला तीन अंश मिलकर याग का काल होते हैं। वह याग काल है ऐसा जानना चाहिए। मनीषियों ने यह प्रात है ऐसा कहा गया है।

अत्र 'प्रातर्' इति विशेषणात् सूर्योदयस्योपरि मुहूर्त्तत्रयं यागकाल इत्युक्तं भवति। प्रतिपदश्चतुर्थांशं निषेधति कात्यायनः—

न यष्टव्यं चतुर्थांशे यागैः प्रतिपदः क्वचित्।
रक्षांसि तद्विलुम्पन्ति श्रुतिरेषा सनातनी ॥ इति।

तदेवं पर्वण्यन्वाधानादिकं प्रतिपदि चेष्टिरिति सन्धिपार्श्वयोः प्रारम्भपरिसमाप्ती व्यवस्थिते। यदा पर्वप्रतिपादवुदयमारभ्य पूर्णतिथी भवतः तदा न सन्देह एव। यदा तु खण्ड-तिथी तदा तु निर्णयोऽभिधीयते। तत्र गोभिलः—

आवर्त्तने तदा सन्धिः पर्वप्रतिपदोर्भवेत्।
तदहर्याग इष्येत परतश्चेत् परेऽहनि ॥
पर्वप्रतिपदोः सन्धिरर्वागावर्त्तनाद्यदि।
तस्मिन्नहनि यष्टव्यं पूर्वेद्युस्तदुपक्रमः ॥
आवर्त्तनात्परः सन्धिर्यदि तस्मिन्नुपक्रमः।
परेद्युरिष्टिरित्येष पर्वद्वयविनिश्चयः ॥ इति।

आवर्त्तनमह्नो मध्यभागः। लौगाक्षिरपि—

पूर्वाह्णे वाऽथ मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते।
उपोष्य तत्र पूर्वेद्युस्तदहर्याग इष्यते ॥
अपराह्णेऽथवा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते।
उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते याग इष्यते ॥ इति।

एषु वचनेषु मध्याह्नादिशब्दा यौगिकाः, न तु पञ्चधा विभागमाश्रित्य प्रवृत्ताः।

यहाँ 'प्रातः' शब्द विशेषण के रूप से रखने का यह कारण होता है कि सूर्योदय के बाद तीन मुहूर्त्त याग का काल है ऐसा कहा है। कात्यायन ने पतिपद का चौथा अंश निषिद्ध घोषित किया है। यथा—

प्रतिपद का चौथा अंश में याग नहीं किया जाता है। अगर हो तो राक्षसगण याग को ग्रास कर लेते हैं, ऐसी बात श्रुति में चिरन्तन है।

इसलिए पर्व में अन्वाधानादि और प्रतिपद में इष्टि इस प्रकार सन्धि के दो पार्श्वों में प्रारंभ और समाप्ति व्यवस्थित होकर अनुष्ठित होती हैं। जिस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थल में पर्व अर्थात् अमावास्या और प्रतिपद उदय से लेकर पूर्णरूप से रहती है, उस स्थल में सन्देह नहीं है। जब खण्डा तिथि होती है, तब निर्णय का प्रकार कहा जाता है। वहां गोभिल ने कहा है -

सूर्य का आवर्त्तन में यदि पर्व और प्रतिपद की सन्धि होती है तो दिन में याग होता है। पर में अगर होता तो परदिन में होता है। सूर्य का आवर्त्तन के बाद में सन्धि हो तो उस दिन में उपवास करके परदिन में इष्टि होती है। इस प्रकार निर्णय होता है।

आवर्त्तन का अर्थ है दिन का मध्यभाग। लौगाक्षि ने भी—

"पूर्वाह्न में या मध्याह्न में अगर पर्व की समाप्ति होती तो पूर्वदिन में याग होता है। अपराह्न या रात में अगर पर्व की समाप्ति होती है तो उस दिन में उपोषण करके परदिन में याग होता है।

इन वचनों में मध्याह्न प्रभृति शब्द यौगिक है किन्तु पाँच प्रकार विभाग को लेकर दिवस का कल्पित भाग यहां विवक्षित नहीं है।

तथा सति 'अह्नो मध्यं मध्याह्नः' इति व्युत्पत्तिरावर्त्तनं' मध्याह्न-शब्देनाऽभिधीयते। अत एव गोभिलेनावर्त्तनशब्दः प्रयुक्तः। शातात-पेनापि मध्यमशब्दः प्रयुक्तः—

पूर्वाह्णे मध्यमे वाऽपि यदि पर्व समाप्यते।
तदोपवासः पूर्वेद्युस्तदहर्याग इष्यते॥ इति।

अह्नः पूर्वो भागः पूर्वाह्णः। अह्नोऽपरो भागोऽपराह्णः। अतस्ताभ्यां शब्दाभ्यामावर्त्तनात् पूर्वोत्तरभागावभिधीयेते। वाजसनेयिनान्तु विशेषमाह भाष्यार्थसङ्ग्रहकारः—

मध्यन्दिनात् स्यादहनीह यस्मिन्।
प्राक् पर्वणः सन्धिरियं तृतीया।
सा सर्विका वाजसनेयिभत्या।
तस्यामुपोष्याऽथ परेद्युरिष्टिः॥ इति।

आवर्त्तनादूर्ध्वमस्तमयादर्वाग्यदा सन्धि र्भवति तदाऽहःसन्धि-तिथिः प्रथमा। रात्रौ सन्धिश्चेत् सा तिथि र्द्वितीया ते उभे अपेक्ष्य पूर्वाह्णे सन्धिमती पर्वतिथिस्तृतीया भवति। तस्या तृतीयायां तिथौ पर्वकालस्याल्पत्वात् सा खर्विकेत्युच्यते। शाखान्तराध्यायिनामीदृशे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषये पूर्वेद्युरन्वाधानादिकं[1] सन्धितिथाविष्टिः। वाजसनेयिनां तु सन्धितिथावन्वाधानमुत्तरतिथाविष्टिः । एवं सति वाजसनेयिनां न क्वापि सन्धिदिनात् पूर्वेद्युरन्वाधानादिकमस्ति। सोऽयं विशेषः।

ऐसे होने से अहन् अर्थात् दिवस का बीच मध्याह्न इस व्युपत्ति से आवर्त्तन मध्याह्न शब्द के द्वारा अभिहित होता है। अतएव गोभिल ने आवर्त्तन शब्द का प्रयोग किया। शातातप ने भी मध्यम शब्द का प्रयोग किया। यथा—

पूर्वाह्न या मध्यम में यदि पर्व की समाप्ति होती है जो पूर्वदिन में उपवास करके उस दिन में याग होता है।

अहन् अर्थात् दिन का पूर्व अर्थात् पहला भाग पूर्वाह्न है। अह्न का अपर भाग अपराह्न है। अतः इन शब्दों के द्वारा आवर्त्तन से पूर्व और उत्तर भाग अभिहित होते हैं। भाष्यार्थ-संग्रहकार ने वाजसनेयियों के लिए विशेष रूप से कहा—

जिस दिन में मध्याह्न से पहले पर्व की सन्धि होती है, वह तीसरी है। वाजसनेयियों के मतानुसार वह दिन खर्व रूप से ग्रहीत होता है। उस दिन में उपवास करके पर दिन में इष्टि होती है।

आवर्त्तन से ऊर्ध्व और अस्तमन से पहले जब सन्धि होती है, तब दिन में सन्धितिथि पहली है, रात में सन्धि हो तो वह तिथि दूसरी है। इन दोनों को उपेक्षा करके पूर्वाह्न में सन्धि होने से वही पर्वतिथि तीसरी है। इस तीसरी तिथि से पर्व काल अल्प रहने के कारण वह खर्व है। ऐसा कहा गया है। दूसरी शाखा को अध्ययन करनेवालों के मतानुसार इस विषय में पूर्वदिन में अन्वाधानादि का अनुष्ठान और सन्धितिथि में इष्टि होती है। वाजसनेयियों को तो अन्वाधान उत्तर तिथि में इष्ट है। ऐसे होने से वाजसनेयियों के लिए कभी भी सन्धि दिन के पहला दिन में अन्वाधानादि का अनुष्ठान नहीं होता है। वह विशेष इस प्रकार है।

---

१. अन्वाधानस्वरूपं यथा—अध्वर्युर्यजमानो वा गार्हपत्यस्य पश्चात् पद्मासनेन उपविश्य त्रिभिः स्वाहाकारान्तैः ऋङ्मन्त्रैः तिस्रः स्थूलाः समिधोऽभ्यादधाति। ततो दक्षिणाग्नावूर्ध्वजानुरुपविश्य तथैवाऽभ्याधाय गार्हपत्यस्य पश्चान्मार्गेणागत्य आहवनीयाद् वायव्यदेशे प्रह्वोऽवस्थाय तथैव तिस्रः समिधो अभ्यादधाति। ततस्तत्रैव तिष्ठन् दशमेन ऋङ्मन्त्रेणोपस्थानं करोति। तदेतत् सकलं कर्म अनुकूलं करिष्यमाणस्य कर्मणः समिधामाधानमिति व्युत्पत्त्या अन्वाधानमुच्यते इति श्रौतपदार्थनिर्वचने ।। धर्मशास्त्रशब्दकोषः भा० १, पृ० ३५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आवर्त्तने ततः पुरा वा यदि सन्धिर्भवति, तदा वाजसनेयिव्यतिरिक्तानां पर्वचतुर्थांशो इष्टिः प्राप्नोति। तत्र विशेषमाह गार्ग्यः—

प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः समाप्यते।
पुनः प्रणीय कृत्स्नेष्टिः कर्त्तव्या यागवित्तमैः॥ इति।

पर्वणश्चतुर्थोऽशः प्रतिपदस्त्रयोऽशाश्च यागकालत्वेन विहिताः। तत्र पर्वचतुर्थांशस्य विषय उदाहृतः। प्रतिपदंशानां विषय उदाह्रियते उषः काले सन्धौ, प्रतिपदः प्रथमांशो यागकालः। निशीथे सन्धौ द्वितीयोऽशः। रात्रिप्रारम्भे सन्धौ तृतीयांशः।

ननु अनेन न्यायेनापराह्णे सन्धौ प्रतिपच्चतुर्थांशस्य प्रयोगकालत्वं प्राप्नोति। तच्च प्रतिषिद्धं 'न यष्टव्यं चतुर्थेंऽशे' इति श्रुतेः। अतस्तादृशे विषये याग एव लुप्येत, इति चेत्। मैवम्। वृद्धशातातपेन प्रतिप्रसवाभिधानात्—

सन्धिर्यद्यपराह्णे स्याद्यागं प्रातः परेऽहनि।
कुर्वाणः प्रतिपद्भागे चतुर्थेऽपि न दुष्यति॥ इति।

एवं तर्हि प्रतिषेधो निर्विषयः स्यादिति चेत्। मैवम्। सद्यस्कालविषये चरितार्थत्वात्। तच्च विषयं दर्शयति कात्यायनः—

सन्धिश्चेत् संगवादूर्ध्वं प्राक् चेदावर्त्तनाद्रवेः।
सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यस्कालविधौ तिथिः॥ इति।

भाष्यार्थसंग्रहकारोऽपि—

अन्वाहितिश्चास्तरणोपवासाः
पूर्वेद्युरेते खलु पौर्णमास्याम्।
आवर्त्तनात् प्राग्यदि पर्वसन्धिः
सद्यस्तु यागः क्रियते समस्तः॥ इति।

आवर्त्तन में या उससे पहले अगर सन्धि हो तो वाजसनेयिओं को छोड़कर पर्व का चौथा भाग में इष्टि होती है। वहाँ गार्ग्य ने विशेष प्रदर्शित किया है—

प्रतिपद का प्रवेश होने से यदि इष्टि की समाप्ति होती है तो संपूर्ण इष्टि को फिर संप्रणयन करके यागविद लोग याग करते हैं।

पर्व का चौथा अंश और प्रतिपद का तीन अंश मिलकर याग का काल विहित है। वहाँ पर्व का चौथा अंश उदाहरण के रूप में कहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गया हैं। प्रतिपद के अंशों के विषय में उदाहरण दिया जाता है। उषा काल में सन्धि होने पर प्रतिपद का पहला अंश याग काल है। निशीथ में सन्धि होने पर दूसरा अंश याग काल है। रात्रि के प्रारंभ में सन्धि होने पर तीसरा अंश याग काल है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि इस न्याय से अपराह्ण में सन्धि होने पर प्रतिपद का चौथा अंश प्रयोग काल के रूप में मिलता है। किन्तु इसका प्रतिषेध 'चौथा अंश में इष्टि नहीं की जाती है' ऐसा श्रुति में किया है। अतः उस विषय में याग का लोप होगा। यहाँ सिद्धान्त में कहा जाता है कि यह मत ठीक नहीं है। वृद्धशातातप ने इसके प्रतिप्रसव की घोषणा की है—

सन्धि यदि अपराह्ण में हो तो याग पर दिन के प्रातः काल में होता है। प्रतिपद का चौथा भाग में करने से कोई दोष नहीं होता है।

फिर भी प्रश्न होता तो इस प्रकार निष्पत्ति होने से प्रतिषेध हो जायगा। यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि यह प्रतिषेध सद्यः काल विषय में चरितार्थ होता है। कात्यायन ने यह विषय प्रदर्शित किया है —

सङ्गव से ऊर्ध्व और सूर्य के आवर्त्तन से पहले अगर सन्धि हो तो सद्यः काल विधि के लिए पौर्णमासी तिथि उपयुक्त होती है।

भाष्यार्थ-संग्रहकार ने कहा है कि—अन्वाधान आस्तारण और उपवास इनका अनुष्ठान पौर्णमासी के पूर्व दिन में होता है। आवर्त्तन के पहले यदि पर्व की सन्धि होती है तो संपूर्ण याग का सद्य विधान होता है।

आपस्तम्बोऽपि "पौर्णमास्यामन्वाधानपरिस्तरणोपवासाः सद्यो वा सद्यस्कालायां सर्वं क्रियते" इति। सङ्गवावर्त्तनयोर्मध्ये पौर्णमासी—प्रतिपदोः सन्धौ सति पूर्वोदाहृतै र्वचनैः सन्धिदिनात् पूर्वेद्युरन्वाधानादिकं प्राप्तम्। तच्च सद्यस्कालवाक्यैः सन्धिदिने उत्कृष्यते।

ननु ईदृशे विषये सन्धिदिनात्परदिने याग उत्कृष्यताम्। तथा सत्यपराह्णादिसन्धिष्विवान्वाधानयागयोर्दिनभेदो भविष्यति। अस्ति चात्र दृष्टान्तः। वाजसनेयिनामीदृशे विषयेऽन्वाधानोत्कर्षे सति यागस्याप्युत्कृष्टत्वात्। मैवम्। अन्वयव्यतिरेकरूपाभ्यां विधिनिषेधाभ्यामस्याः शङ्काया निवारितत्वात्। तत्र सद्यस्कालविधयोऽ-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्वयरूपाः प्रतिपच्चतुर्थांश—प्रतिषेधा व्यतिरेकरूपाः। एवञ्च सति प्रतिषेधवाक्यं सावकाशं भवति। अमावास्यायां विशेषमाह वृद्ध-शातातपः—

द्वितीया त्रिमुहूर्त्ता चेत् प्रतिपद्याऽपराह्णिकी।
अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोदमर्शनात्॥ इति।

सोऽयं विशेषो नाश्वलायनापस्तम्बविषयः। किं तु बौधायन-मतानुयायिविषयः। अत एव बौधायनः—

द्वितीया त्रिमुहूर्त्ता चेत् प्रतिपद्याऽऽपराह्णिकी।
अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात्॥

चतुर्दशी चतुर्यामा अमावास्या न दृश्यते।
श्वोभूते प्रतिपच्चेत्स्यात् पूर्वां तत्रैव कारयेत्॥

चतुर्दशी च संपूर्णा द्वितीया क्षय-कारिणी
चरुरिष्टिरमायां स्याद् भूते कव्यादिकी क्रिया॥

आपस्तम्ब ने भी कहा है कि पौर्णमासी में अन्वाधान, परिस्तरण और उपवास सद्य अथवा सद्यः काल तिथि में किये जाते हैं। संगव और आवर्त्तन के बीच में पौर्णमासी और प्रतिपद की सन्धि होने पर पूर्व में उदाहृत वचनों के द्वारा सन्धि दिन के पहला दिन में अन्वाधानादि कर्मों की प्राप्ति होती है। उनका सद्यस्काल वाक्यों के द्वारा सन्धिदिन में उत्कर्ष होता है।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि इस सन्धिदिन के परदिन में याग का उत्कर्ष होने दो? ऐसा होने से अपराह्ण प्रभृति सन्धियों में अन्वाधान और याग का दिन में भेद हो जायगा। इसके बारे में दृष्टान्त भी मिलता है। वाजसने-यिओं के इस विषय में अन्वाधान का उत्कर्ष होने पर भी याग उत्कृष्ट होता है। यह ठीक नहीं है, क्योंकि अन्वय और व्यतिरेक के रूप विधि और निषेध के द्वारा ऐसी शंका निवारित हुई है। वहाँ सद्यस्काल विधियाँ अन्वय के रूप में हैं। प्रतिपद का चौथा अंश का प्रतिषेध व्यतिरेक के रूप में है। फिर ऐसे होने से प्रतिषेध वाक्य सावकाश होता है। वृद्धशातातप ने अमा-वास्या के बारे में विशेषरूप से कहा—

अपराह्ण को व्याप्त होनेवाली प्रतिपद में अगर द्वितीया तीन मुहूर्त्त तक रहती है तो परदिन में चन्द्र का दर्शन होने से चतुर्दशी में अन्वाधान किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह विशेष व्यवस्था आश्वलायन और आपस्तम्ब के मतानुयायियों के लिये नहीं किन्तु बौधायन मतानुयायियों के लिये है।

अत एव बौधायन ने कहा है —

अपराह्ण को व्याप्त होनेवाली प्रतिपद में अगर द्वितीया तीन मुहूर्त्त तक रहती है तो परदिन में चन्द्र का दर्शन होने से चतुर्दशी में अन्वाधान किया जाता है। चतुर्दशी यदि चार मुहूर्त्त रहती, अमावास्या नहीं दिखाई पड़ती है और परदिन में प्रतिपदा होती है तो पूर्वदिन की तिथि में इष्टि करनी चाहिये। चतुर्दशी यदि संपूर्ण रहती है और द्वितीया का क्षय होता है तो अमावास्या में चरु के द्वारा इष्टि होती है और चतुर्दशी में कव्यादि क्रिया अर्थात् पितरों के लिये क्रिया (श्राद्ध क्रिया) होती है।

एतेषां वचनानामयमर्थः। अह्नि चतुर्दशी संपूर्णा, अस्तमयादर्वागमावास्या स्वल्पा। तत एवापराह्णव्याप्त्यभावाच्छ्राद्धायान्वाधानाय वा पूर्वोक्तरीत्या यद्यपि निमित्तभावं न भजते, तथापि प्रतिपदि द्वितीयायां सत्यां चन्द्रस्य दृश्यमानत्वात्तद्दर्शने चेष्टे र्निषिद्धत्वात् प्रतिपद्युतायाममावास्यायामिष्टिः, स्वल्पामावास्योपेतायां चतुर्दश्यां श्राद्धाऽन्वाधानादिकं कर्त्तव्यम् इति। एतदेवाभिप्रेत्य स्मृत्यन्तरे—

आदित्येऽस्तमिते चन्द्रः प्रतीच्यामुदियाद्यदि।
प्रतिपद्यतिपत्तिः स्यात् पञ्चदश्यां यजेत्तदा॥ इति।

वृद्धवसिष्ठोऽपि—

इन्दौ निरुप्ते पयसि पुरस्तादुदिते विधेः।
यद्वैगुण्यं हुते तस्मिन् पश्चादपि हि तद्भवेत्॥ इति।

अस्यायमर्थः। यदा संपूर्णचतुर्दश्यामविचारेणामावास्याबुद्धिं कृत्वाऽन्वाधानादिकं कृत्वा हविर्निर्वापं करोति, कृते तस्मिन्नुषःकाले पूर्वस्यां दिशि चन्द्रमा उदेति, तदा न दर्शकर्म भवितुमर्हति, दर्शकालस्याप्राप्तत्वात् किन्तु कालापराधं निमित्तीकृत्य दर्शदेवता अपनीय दात्रादिगुणविशिष्टान्यग्न्यादिदेवतान्तराण्युद्दिश्य हविःप्रक्षेपो विहितः। तदेतत्तैत्तिरीय-ब्राह्मणे श्रूयते—"यस्य हवि र्निरुप्तं पुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति तण्डुलान् विभजेद् ये मध्यमाः स्युस्तानग्नये दात्रे पुरोडाशमष्टाकपालं कुर्याद्ये स्थविष्ठास्तानिन्द्राय प्रदात्रे दधंश्चरुं ये क्षोदिष्ठास्तान् विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरुम्" इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन वचनों का इस प्रकार अर्थ होता है—दिन में चतुर्दशी संपूर्ण रूप से रहती है। अस्त से पहले अमावास्या अल्प रहती है। इस स्थल पर अपराह्ण में अमावास्या का अभाव होने पर अपराह्णव्याप्ति नहीं होती है। इसलिये श्राद्ध और अन्वाधान के लिये पूर्वरीति के अनुसार कोई निमित्त का अभाव अगर होता है, तथापि प्रतिपद में द्वितीया रहने पर चन्द्र का दर्शन होता है। दर्शन होने पर इष्टि का निषेध होता है, क्योंकि प्रतिपदा से युक्त अमावास्या में इष्टि होती है और स्वल्प अमावास्यायुक्त चतुर्दशी में श्राद्ध और अन्वाधानादि का अनुष्ठान होता है।

इस विषय को अभिप्रेत करके दूसरी स्मृति में कहा है कि—आदित्य अर्थात् सूर्य (अर्थात् वैगुण्य) अस्तमित होने के समय यदि पूर्व दिशा में चन्द्र का उदय होता है, प्रतिपद में अतिपत्ति होती है, तो पञ्चदशी में याग होता है।

वृद्धवसिष्ठ ने भी कहा है कि—निर्वपण होने के समय चन्द्रोदय यदि होता है, उस समय में दर्शकर्म का विधान से जो निगुणता होती है, तो बाद में भी उस प्रकार निगुणता होती है।

इसका आशय यह है—जब कोई नासमझी से संपूर्ण चतुर्दशी में अमावास्या को समझ कर अन्वाधानादि कार्यों को करके हवि का निर्वपण करता है, तब ऐसा करने से उषा काल में पूर्व दिशा में अगर चन्द्रोदय हो तो उस काल में दर्श का कर्म नहीं किया जाता है। क्योंकि उस काल में दर्श का काल प्राप्त नहीं है। किन्तु कालजन्य अपराध को निमित्त करके दर्श-देवताओं को अपसारण कर दाता के गुणविशिष्ट अग्नि प्रभृति दूसरी देवताओं के उद्देश्य में हवि का प्रक्षेप विहित है। इस विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण में सुना जाता है—जिसका हवि निरुप्त हुआ है, सामने चन्द्र का उदय होता है और वह तण्डुलों को विभक्त करता है। मध्यम भागों के द्वारा पुरोडाश करके आठ कपालों से दाता अग्नि के उद्देश्य से देता है। बडे (पुराने) भागों के तंडुलों से पुरोडास कर प्रदाता इन्द्र के उद्देश्य में देता है और क्षुद्रतम भाग के तण्डुलों का चरु को पाक कर शिपिविष्ट-विष्णु देवता के उद्देश्य में देता है।

सोऽयं दृष्टान्तः। हविषि निरुप्ते सति तत ऊर्ध्वं पूर्वस्यां दिशीन्दावुदिते सति दर्शकर्मविधे यद्वैगुण्यमुक्तरीत्या व्यवस्थितं, तदेव वैगुण्यं होमदिने पश्चिमदिशि चन्द्रोदये भवति इति। एतदेव बौधायन-मतमुपोद्बलयति श्रुतिः—'यस्मिन्नहनि पुरस्तात्पश्चात् सोमो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न दृश्यन्ते तदहर्यजेत' इति। अयमर्थः। सिनीवाल्यां पुरस्ताच्चन्द्रदर्शनं भवति, द्वितीयायुक्तायां प्रतिपदि पश्चाच्चन्द्रो दृश्यते, तयोरुभयोर्मध्यवर्त्तिन्यां कुह्वां द्विविधमपि चन्द्रदर्शनं नास्ति, अतस्तस्मिन् दिने यष्टव्यम् इति। चन्द्रदर्शनोपेतायां शुक्लप्रतिपदि यागानुष्ठाने प्रायश्चित्तमाह कात्यायनः—

यजनीयेऽह्नि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते।
तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दण्डं दद्याद् द्विजातये ॥ इति।

चन्द्रदर्शनराहित्यमेवाभिप्रेत्य बौधायनकारिकासु पठ्यते—

इष्टेरलं प्रतिपदादिभवास्तु नाड्यः
सप्ताष्ट वा यत्र भवन्ति तत्स्यात्।
क्षीणासु नाडीषु दिनस्य पूर्वः
कल्पोऽथ वृद्धौ च भवेद् द्वितीयः॥ इति।

यह दृष्टान्त है—हवि का निर्वपण होने पर उसके बाद पूर्व दिशा में चन्द्र का उदय होने से दर्श कर्म का विधान होने पर जो वैगुण्य उक्त रीति के अनुसार व्यवस्थित होता है, वह वैगुण्य होम दिन में पश्चिम दिशा में चन्द्रोदय होने से होता है। बौधायन के इस मत को श्रुति समर्थन करती है। यथा—जिस दिन में सामने और पश्चात् चन्द्र का दर्शन नहीं होता है, उस दिन में याग किया जाता है। इसका अर्थ यह है—सिनीवाली में सामने चन्द्र का दर्शन होता है। द्वितीया युक्त प्रतिपदा में पश्चात् चन्द्र का दर्शन होता है, इन दोनों के मध्यवर्त्ती कुहू में दो प्रकार चन्द्र दर्शन नही होते हैं। अत एव उस दिन याग किया जाता है। चन्द्र दर्शन के साथ युक्त शुक्ल प्रतिपदा में याग का अनुष्ठान होने से प्रायश्चित्त करने के लिये कात्यायन ने कहा है—

होमदिन में पश्चिम दिशा में चन्द्रोदय होने पर उसके लिये प्रायश्चित्त के स्वरूप व्याहृति होम करके द्विजातियों के लिए दण्ड दान दिया जाता है।

चन्द्र-दर्शन के अभाव को अभिप्रेत करके बौधायन कारिकाओं में कहा है—

प्रतिपदा की नाडियाँ इष्टि के लिये योग्य होती हैं अगर सात या आठ नाड़ी क्षीण हो जाती हैं। अगर वे फिर वृद्धि होती हैं तो दूसरा पक्ष स्वीकृत होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयमर्थः। आमावास्यातिथेः संबन्धिनीषु नाडीषु क्षीणासु सतीषु तस्मिन् दिने अस्तमयात् पूर्वं प्रतिपत्संबन्धिन्यो नाड्यः सप्ताष्ट वा यदि भवन्ति, तदा तद्दिनमिष्टेरलं योग्यम्। सोऽयमेकः पक्षः। अमावास्याप्रतिपदौ यदा वर्धेते, तदा द्वितीयः कल्पो भवेत्; अमावास्यायामन्वाधाय सोमदर्शनरहिते प्रतिपद्दिने यागः कर्त्तव्य इति।

स्मृत्यन्तरेऽपि—

अर्वागस्तमयाद् यत्र द्वितीया तु प्रदृश्यते।
तत्र यागं न कुर्वीत श्वोदेवास्तु पराङ्मुखाः॥ इति।

बौधायनमतानुसारिणामन्वाधानवद्दर्शश्राद्धमपि स्वल्पामावास्योपेतायां चतुर्दश्यां कर्त्तव्यम्। तथा च बौधायनेनोक्तम्—

यदा चतुर्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत्।
अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमाचरेत्॥
चतुर्दश्यां चतुर्यामे अमा यत्र न दृश्यते।
श्वोभूते प्रतिपद् यत्र भूते कव्यादिकी क्रिया॥ इति।

चतुर्थे यामे अमावास्या संपूर्णा न दृश्यते, किन्त्ववसाने स्वल्पा सा च परदिने क्षीयते, तदानीं चतुर्दश्यां श्राद्धमाचरेत्।

इसका अर्थ यह है—अमावास्या तिथि की नाडियाँ क्षीण होने पर उस दिन में अस्त से पहले प्रतिपदा की नाडियाँ अगर सात या आठ रहती हैं तो इष्टि के लिये यह दिन योग्य होता है। यह एक पक्ष है। अगर अमावास्या और प्रतिपदा की वृद्धि हो तो दूसरा पक्ष होता है। अमावास्या में अन्वाधान करके चन्द्र-दर्शन न होनेवाली प्रतिपदा में याग किया जाता है।

दूसरी स्मृति में भी कहा है—

जहाँ अस्त से पहले द्वितीया दिखाई पड़ती है, उस काल में याग नहीं किया जाता है। क्योंकि परदिन में (कल) देवता परांमुख हो जाता है।

बौधायन मत के अनुयायियों के जरिये अन्वाधान की तरह दर्शश्राद्ध भी स्वल्प अमावास्या से युक्त चतुर्दशी में किया जाता है। इसलिये बौधायन ने कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब चतुर्दशी का चौथा याम में अनुपूरित होकर अमावास्या का क्षय होता है तो उस अवसर पर श्राद्ध करना चाहिये।

चतुर्दशी का चौथा याम में जब अमावास्या नहीं दिखाई पड़ती है तब अनन्तर दिन में प्रतिपदा होती है जिस पर भूत अर्थात् चतुर्दशी में क्रव्यादि क्रिया होती है।

चौथा याम में अमावास्या नहीं दिखाई पड़ती है, किन्तु अवसान समय में स्वल्प रहने पर अनन्तर दिन में क्षयित होती है, उस समय में चतुर्दशी में श्राद्ध किया जाता है।

ननु चन्द्रदर्शनोपेतायां प्रतिपदि इष्टिः समाम्नाता। तथा च शतपथब्राह्मणम् —"यदहः पश्चाचन्द्रमा अभ्युदेति तदहर्यजन्निमाँल्लोकानभ्युदेति" इति। तैत्तिरीयब्राह्मणमपि —"एषा वै सुमनानामेष्टिर्यमभियजमानं पश्चाचन्द्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवास्मै लोके समृद्धिर्भवति" इति।

अयमर्थः। येयमिष्टिश्चन्द्रदर्शनोपेते दिने क्रियते, सेयमिष्टिः सुमनःशब्दवाच्या, तादृशीमिष्टिं कृतवन्तं यं यजमानमभिलक्ष्य तस्मिन्नेव दिने पश्चाचन्द्रमा उदेति, तस्मै यजमानायास्मिन् लोके समृद्धिर्भवतीति। बाढम्। तदेतच्छ्रुतिद्वयं बौधायन-मतानुसारिव्यतिरिक्तविषयम्। एतदेवाभिप्रेत्य प्रतिपच्चतुर्थांशे याग उदाहृतः।

ननु बौधायनव्यतिरिक्तानामपि चन्द्रदर्शनयोग्यं द्वितीयायुतं प्रतिपद्दिनमिष्टौ निषिद्धम्। तथा च स्मृतिः—

पर्वणोऽशे चतुर्थे तु कार्या नेष्टिर्द्विजोत्तमैः।
द्वितीयासहितं यस्मात् दूषयन्त्याश्वलायनाः॥ इति।

तदेतदावर्त्तनतत्पूर्वकालयोः सन्धौ सति द्रष्टव्यम्। अपराह्णादिसन्धिषु पर्वचतुर्थस्येष्टावप्राप्तत्वात्। तदेवं प्रकृतिरूपाया इष्टेः कालो निरूपितः। विकृतेस्तु कालो निरूप्यते। तत्र कात्यायनः—

आवर्त्तनात्प्राक् यदि पर्वसन्धिः
कृत्वा तु तस्मिन् प्रकृतिं विकृत्याः।
तत्रैव यागः परतो यदि स्यात्
तस्मिन् विकृत्याः प्रकृतेः परेद्युः॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ एक प्रश्न होता है कि चन्द्रदर्शन होनेवाली प्रतिपदा में इष्टि करने के लिए कहा गया है। इसलिए शतपथ ब्राह्मण में कहा कि जिस दिन में बाद में चन्द्र का उदय होता है, उस दिन में याग करने से इस लोक का लाभ होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी सुना है—देवताओं की यह इष्टि है, जिसमें इष्टि करने से बाद में चन्द्रमा का उदय होता है, उस अवसर में इस लोक की समृद्धि होती है।

इसका अर्थ यह है—यह जो इष्टि चन्द्रदर्शन युक्त दिन में की जाती है, वही इष्टि 'सुमन' शब्द से कही जाती है। इस प्रकार इष्टि को करने वाले यजमान को लक्ष्य करके उस दिन में बाद में चन्द्रमा का उदय होता है, उस यजमान के लिए उस लोक में समृद्धि मिलती है। सिद्धान्त के रूप में यहाँ कहा जाता है कि यह तो ठीक है। किन्तु ये दो श्रुतियाँ बौधायन मत को छोड़कर दूसरे मतों के लिए व्यवस्थापित हैं। इस विषय को अभिप्रेत करके प्रतिपदा का चौथा अंश में याग करने के लिए उदाहरण दिया गया है।

यहाँ भी एक प्रश्न होता है कि बौधायन व्यतिरिक्त मतवालों का भी चन्द्रदर्शन योग्य द्वितीयां युक्त प्रतिपद दिन भी इष्टि के लिये निषिद्ध है। इसलिये स्मृति में कहा है—

द्विजोत्तमों को पर्व अर्थात् अमावास्या का चौथा अंश में इष्टि नहीं करनी चाहिये। आश्वलायन मतानुयायिओं ने द्वितीया युक्त प्रतिपदा दूषित घोषित की है।

यह विषय आवर्त्तन अर्थात् सूर्य का दिनार्ध में संक्रमण और उससे पहला काल, इन दो कालों में सन्धि होने पर ही माना जाता है। अपराह्ण प्रभृति सन्धियों में पर्व का चौथा अंश इष्टि के लिये प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार प्रकृतिरूपा इष्टि का काल निरूपित हुआ है। अब विकृति का काल निरूपित होगा। कात्यायन ने कहा है—

आवर्त्तन से पहले यदि पर्व की सन्धि होती है तो उस दिन में प्रकृतिरूपा इष्टि का विधान करके बाद में सन्धि होने पर अनन्तर दिन में विकृति का विधान होता है।

आवर्त्तने ततः पुरा वा पर्वसन्धौ। तस्मिन् सन्धिदिने प्रथमं प्रकृतियागं कृत्वा पश्चाद् विकृतिसंबन्धी यागः कर्त्तव्यः। यद्यावर्त्तनात् परतः सन्धिः, तदा केवल विकृतियागः सन्धिदिने कर्त्तव्यः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृतियागस्तु सन्धिदिनात्परेद्युरनुष्ठेय इत्यर्थः। आवर्त्तने, ततः पूर्वकाले परकाले वा सन्धिरित्येषु त्रिष्वपि पक्षेषु सन्धिदिन एव विकृतेरनुष्ठानम्। प्रकृतेस्तु पूर्वोक्तरीत्या सन्धिदिने परेद्युश्चा-नुष्ठानं व्यवतिष्ठते। इष्टीनां सर्वासां दर्शपूर्णमासौ प्रकृतिः। 'ऐन्द्रा-ग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् प्रजाकामः"[1]इत्यादयः काण्डान्तरपठिताः काम्येष्टयो विकृतयः। तत्र 'प्रकृतिवद्विकृतिः कर्त्तव्ये"ति न्यायेन विकृतीनामपि सन्धिदिनात् परेद्युः कदाचिदनुष्ठानं प्राप्तं, तदेतदुदा-हृतेन वचनेन निवार्यते॥

इष्टिविकृतिन्यायः पशुविकृतिसोमविकृत्योरपि द्रष्टव्यः। पशूनां सर्वेषामग्नीषोमीयः पशुः प्रकृतिः। "वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम"[2] इत्यादयः काण्डान्तरपठिताः काम्यपशवो विकृतयः। सोमयागानां सर्वेषामग्निष्टोमः प्रकृतिः। उक्थ्यषोडश्यतिरात्रादयो विकृतय-स्त्रिविधानामिष्टिपशुसोमविकृतीनां पर्वैव कालः। तदेतदापस्तम्बः आह—"यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा यजेत" इति। अत्रापि पूर्ववत्। प्रतिपदि कदाचिदिष्टि-प्राप्तौ तद्व्यावृत्तये पुनः कालो विधीयते। तस्माद् विकृतीनां पर्वैव काल इति स्थितम्।

आवर्त्तन में अथवा उससे पहले यदि सन्धि होती है। उस सन्धिदिन में पहले प्रकृति याग करके बाद में सम्बन्धी याग करना चाहिये। अगर आवर्त्तन के बाद में सन्धि हो तो केवल विकृति याग सन्धिदिन में करना चाहिए। प्रकृति याग तो सन्धिदिन का अनन्तर दिन में किया जाता है ऐसा अर्थ समझ में आता है। आवर्त्तन में या आवर्त्तन के पहले या बाद में सन्धि होने पर इन तीन पक्षों में सन्धिदिन में ही विकृति का अनुष्ठान होता है। पूर्वोक्त रीति के अनुसार प्रकृति का सन्धिदिन में और अनन्तर दिन में भी अनुष्ठान व्यवस्थित होता है। सब प्रकार इष्टिओं की प्रकृति दर्श और पौर्णमास होती हैं। प्रजाओं की कामना करके इन्द्र देवता के उद्देश्य में ग्यारहकपालों से किया जानेवाला निर्वपण प्रभृत्ति वाक्यों के द्वारा दूसरे काण्ड में पठित काम्य इष्टि विकृतियां हैं। यहां "प्रकृति की तरह विकृति की जाती है" इस न्याय से विकृतिओं का भी सन्धिदिन का अनन्तर दिन में

---

१. तै० सं २।२।१

२. तै० स २।१।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी कभी अनुष्ठान प्राप्त होता है, अतः इस उदाहृत वचन के द्वारा इसका निवारण किया जाता है।

यह इष्टि-विकृति-न्याय पशु-विकृति और सोम-विकृति में भी द्रष्टव्य है। सब पशुयागों की अग्नीषोमीय पशुयाग विकृति है। वायु देवता के उद्देश्यमें ऐश्वर्यकामी लोगों द्वारा श्वेत छाग का आलभन किया जाता है। इन वाक्यों से दूसरे कांडों में पठित काम्य पशु विकृति होता है। सब सोम यागों की प्रकृति अग्निष्ठोम होता है। उक्थ्य षोडशी और अतिरात्र विकृति होती हैं। इन तीन पशुसोम विकृतियों का पर्व ही काल है। इसके बारे में आपस्तम्ब ने कहा है—"अगर कोई इष्टि पशु या सोम याग करे तो वह अमावास्या अथवा पूर्णिमा में ही करता है।" यहाँ भी पूर्ववत् विधान है। प्रतिपदा में कभी इष्टि की प्राप्ति होने पर इसको पृथक् करने के लिये फिर काल का विधान किया जाता है। इसलिये विकृतियों का पर्व ही काल है ऐसी स्थिति है।

ननु प्रकृते र्यथोक्तकालात्कालान्तरं क्वचित् स्मर्यते—

षोडशेऽहन्यभीष्टेष्टि र्मध्या पञ्चदशेऽहनि।
चतुर्दशे जघन्येष्टिः पापा सप्तदशेऽहनि॥ इति।

अयमर्थः। पूर्वं प्रतिपद्दिनमारभ्य गणनायामागामि प्रतिपद्दिनं षोडशं भवति। तत्रेष्टिरभीष्टोत्तमा। ततः पूर्वस्मिन् पञ्चदशे दिने मध्यमा। ततः पूर्वस्मिन् चतुर्दशेऽहनि जघन्या। तदेवं कालत्रयं विहितम्। उत्तमकालात् षोडशदिनादूर्ध्ववर्तिनि सप्तदशे दिने प्रतिषिद्धा। बाढम्। तत्रोत्तममध्यमपक्षौ शास्त्रीयौ। तिथीनां वृद्धिक्षयाभावे सत्युत्तमः पक्षः प्राप्नोति। एकस्मिन् दिने क्षीणे सति मध्यमः पक्षः प्राप्नोति। जघन्यपक्षस्तु न शास्त्रीयः, दिनद्वयक्षयाभावात्। अतो जघन्यशब्दो निषेधविवक्षया प्रयुक्तः, न तु पक्षान्तरविवक्षया।

ननु तिथिवृद्धाविष्टेः सप्तदशी तिथिः कदाचिद्भवति, तत्कथं "पापा सप्तदशेऽहनि" इति प्रतिषेधः। नायं दोषः। अल्पतिथिवृद्धौ यदा षोडशदिने अमावास्या दशघटिका सप्तदशदिने प्रतिपद्वर्धते, तदानीं प्रतिपच्चतुर्थांशस्येष्टिकालत्वभ्रान्त्यानुष्ठानं प्रसक्तं वचनेन निवार्यते। तच्च न्याय्यं पूर्वाह्णसन्ध्युपेतदिने एव इष्टेः कर्त्तव्यत्वेन निर्णीयतत्वात्।

यहां एक प्रश्न होता है कि प्रकृति का यथोक्त काल से भिन्न एक काल भी कभी कहीं स्मृति में कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काम्य इष्टि के लिये सोलह, मध्यमा के लिये पन्द्रह; जघन्य इष्टि के लिये चौदह और पाप इष्टि के लिये सतरह दिन काल है।

इसका अभिप्राय यह है—पूर्व प्रतिपद दिन से शुरू कर गणना के द्वारा आगामी प्रतिपद सोलहवां दिन होता है। यहाँ अभीष्ट इष्टि उत्तम है। उससे पहले पन्द्रहवां दिन मध्यम। उसके पहले चौदहवाँ दिन जघन्य। इस प्रकार तीन कालों का विधान है। उत्तम काल के रूप सोलहवाँ दिन के परवर्ती सतरहवां दिन में इष्टि प्रतिषिद्ध है। यह ठीक है। वहां उत्तम और मध्यम पक्ष शास्त्रीय है। तिथियों की वृद्धि और क्षय के अभाव से भी उत्तम पक्ष मिलता है। एक दिन क्षीण अर्थात् कम होने पर मध्यम पक्ष होता है। दो दिनों का क्षय होनेवाला जो जघन्य पक्ष वह शास्त्रीय नहीं है। अतः यहां निषेध को लक्ष्य करके जघन्य शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु दूसरा पक्ष की विवक्षा में नहीं।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि तिथि वृद्धि के स्थल में इष्टि की कभी सतरहवीं तिथि होती है। यह कैसे संभव है? "सतरहवीं तिथि में पाप है" इस (अर्थवाद) के द्वारा प्रतिषेध सुना है। यह कोई दोष नहीं है। तिथि के अल्प वृद्धि काल में जब सोलहवें दिन में अमावास्या दश घटिका तक और सतरहवें दिन में प्रतिपद की वृद्धि होती है तब प्रतिपद का चौथा अंश भ्रान्ति से अग्निकाल के रूप में अनुष्ठान के लिये प्रसक्त होता है। वचन के द्वारा इसका निवारण किया जाता है। यह ठीक है, क्योंकि पूर्वाह्न में सन्धि होनेवाला दिन में ही इष्टि करने के लिये निर्णय हुआ है।

यदा तु महत्या वृद्धया षोडशदिने अमावास्या संपूर्णा सप्तदशे दिने प्रतिपत् संपूर्णा तदा न प्रतिषिध्यते।

ननु बौधायनेन त्रयोदश-सप्तदशदिनयोरन्वाधानं प्रतिषिध्यते—

यत्रौपवसथं कर्म यजनीयात् त्रयोदशम्।
भवेत् सप्तदशं वाऽपि तत्प्रयत्नेन वर्जयेत्॥ इति।

अत्र यजनीयं प्रतिपद्दिनमारभ्य पञ्चदशदिनमौपवसथस्य मुख्यः कालः, तिथिक्षये चतुर्दशं दिनं, तिथिवृद्धौ षोडशदिनम्। तथा सति त्रयोदशसप्तदशयोः प्रसक्तिरेव नास्ति, तत्कथं प्रतिषिध्यते इति चेत् एवं तर्ह्ययमप्रसक्तप्रतिषेधो नित्यानुवादोऽस्तु। अस्ति चाप्रसक्तप्रतिषेधरूपो नित्यानुवादो वेदे "न पृथिव्यां नान्तरीक्षे न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिव्यग्निश्चेतव्यः" इति । पूर्वत्र पर्वप्रतिपदोः सन्धिमुपजीव्यान्वाधानेष्टिकालौ व्यवस्थापितौ । तत्र तिथिक्षयवृद्ध्योः सन्धिविषये किञ्चिद् विशेषमाह कात्यायनः—

परेऽह्नि घटिकान्यूनास्तथैवाभ्यधिकाश्च याः ।
तदर्धक्लृप्त्या पूर्वस्मिन् ह्रासवृद्धी प्रकल्पयेत् ॥ इति ।

लौगाक्षिरपि—

जब अधिक वृद्धि होने पर सोलहवें दिन में अमावास्या संपूर्ण होती और सतरहवें दिन में प्रतिपद समाप्त होती है, तब प्रतिषेध नहीं होता है।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि बौधायन ने तेरहवाँ और सतरहवाँ दिनों में अन्वाधान का निषेध किया है—
जहाँ औपवसथ कर्म होने वाला है, वहाँ प्रयत्न करके तेरहवाँ और सतरहवाँ दिन को वर्जन करना चाहिये।

यहाँ याग करने के लिये प्रतिपद दिन से प्रारम्भ करने से पन्द्रहवाँ दिन औपवसथ का मुख्य काल होता है। तिथि का क्षय होने पर चौदहवां दिन और वृद्धि होने पर सोलहवां दिन होते हैं। ऐसे होने से तेरहवां और सतरहवां दिनों की प्रसक्ति नहीं होती है, अतः प्रतिषेध कैसे होता है ? ऐसा अगर प्रश्न हो तो उत्तर में कहा जायगा कि यह अप्रसक्त प्रतिषेध नित्यानुवाद हो। वेद में अप्रसक्त प्रतिषेध का स्वरूप नित्यानुवाद उपलब्ध है। यथा— "पृथिवी में नहीं, अन्तरीक्ष में नहीं; फिर भी दिवि अर्थात् स्वर्ग में भी अग्नि का चयन नहीं किया जाता है।" पूर्व दिन की पर्व और प्रतिपद की सन्धि को लेकर अन्वाधान और इष्टि का काल व्यवस्थापित किये हैं। वहां तिथि का क्षय और वृद्धि के कुछ विशेष सन्धिविषय को लेकर कात्यायन ने कहा है—

दूसरा दिन में जितनी घटिका न्यून होती है, उनके आधा को पूर्वदिन में निश्चित कर ह्रास और वृद्धि की कल्पना की जाती हैं।

लौगाक्षि ने भी कहा है—

तिथेः परस्या घटिकास्तु याः स्यु-
न्यूनास्तथा चाभ्यधिकास्तु तासाम् ।
अर्धं वियोज्यश्च तथा प्रयोज्यं
ह्रासे च वृद्धौ प्रथमे दिने तत् ॥ इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परवर्त्ती तिथि की जितनी घटिकाएँ न्यून होती हैं और जितनी घटिकाएँ अधिक होती हैं उन घटिकाओं का आधा परिमाण ह्रास और वृद्धि के स्थल में पूर्व दिन में यथाक्रम जोड़ दिया जाता है काट भी दिया जाता है।

पूर्वेद्युरमावास्या पञ्चदशघटिका परेद्युः प्रतिपदपि तावती, तदा यथास्थितत्वमेवोपजीव्य सन्धिर्विज्ञेयः। यदा प्रतिपदः षट् घटिकाः क्षीयन्ते, तदा घटिकात्रयह्रासोऽमावास्यायां योजनीयः। तस्मिन् योजिते द्वादशघटिकाऽमावास्या भवति। तदाऽवर्त्तनात् पूर्वं सन्धिः संपद्यते। अनेनैव न्यायेन घटिकात्रयवृद्धौ योजितायामष्टादशघटिकाऽमावास्या भवति। तथा सत्यावर्त्तनादूर्ध्वं सन्धिर्भवति। इत्येवं सन्धिं विज्ञाय तदनुसारेणान्वाधानेष्टी अनुष्ठातव्ये॥

इतीष्टिनिर्णयः॥

पूर्वदिन में अमावास्या पन्द्रह घटिका रहती और अनन्तर दिन में प्रतिपदा भी उतनी रहती है तो उस स्थल में स्थिति को देखकर सन्धि को समझ लेना चाहिए। जब प्रतिपद का छै घटिका तक क्षय होता है तब तीन घटिका तक ह्रास अमावास्या में जोड़ देना चाहिये। इस योग के अनुसार अमावास्या बारह घटिकावाली होती है। ऐसे होने से आवर्त्तन से पहले सन्धि होती है।' इस न्याय से तीन घटिकाओं की वृद्धि का योग होने पर अमावास्या अठारह घटिकावाली होती है। ऐसे होने से आवर्त्तन के बाद सन्धि होती है। इस प्रकार सन्धि को जानकर उसके अनुसार अन्वाधान और इष्टि का अनुष्ठान किया जाता है।

इस प्रकार इष्टि का निर्णय हुआ है।

ननु इष्टिकालवद्ग्रहणकालोऽप्यत्र निर्णेतव्यः। पर्वप्रतिपत्सन्ध्युपजीवनेन प्रवृत्तत्वात्। तथा च वृद्धगार्ग्यः—

पूर्णिमाप्रतिपत्सन्धौ राहुः संपूर्णमण्डलम्।
ग्रसते चन्द्रमर्कञ्च दर्शप्रतिपदन्तरे॥ इति।

ब्रह्मसिद्धान्ते—

तावान् कालः पर्वणः स्यात्तावान् प्रतिपदादिमः।
रवीन्दुग्रहणेऽनेहा स पुण्यो मिश्रणाद्भवेत्॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेहा कालः। बाढम् । यद्यप्यस्ति सन्ध्युपजीवनं तथापि निर्णेतव्यांशस्य तिथिविषयस्याभावादस्मिन् प्रकरणे न तद्योग्यम्। कर्त्तव्यविशेषस्तूपरितनप्रकरणे निरूपयिष्यते।

इति माधवीये कालनिर्णये द्वितीयादितिथिनिर्णयाख्यं चतुर्थं प्रकरणम् ।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि इष्टि काल की तरह ग्रहण के काल का भी यहाँ निर्णय होना चाहिए। पर्व और प्रतिपद की सन्धि को उपजीव्य करके ही ग्रहण की प्रवृत्ति होती है। इसलिए वृद्ध गार्ग्य ने कहा है कि—

"पूर्णिमा और प्रतिपद की सन्धि में राहु संपूर्ण मंडल को ग्रास करता है और अमावास्या प्रतिपद की सन्धि में चन्द्र और सूर्य को ग्रास करता है। ब्रह्मसिद्धान्त में कहा है—

पर्व का जितना काल और प्रतिपद का पहला उतना काल सूर्य और चन्द्र के ग्रहण में मिश्रित होकर पुण्य काल होते हैं।

यहाँ अनेहा का अर्थ काल है, यह ठीक है। यद्यपि यहाँ सन्धि को लेकर विचार होता है, तथापि तिथि विषय को लेकर प्रवृत्त होने से इस प्रकरण में निर्णेतव्य अंश का अभाव का विचार भी अनुचित होगा। इसलिये परवर्त्ती प्रकरण में इस कर्त्तव्य विशेष का निरूपण किया जायगा।

इस प्रकार माधवीय कालनिर्णय में द्वितीया प्रभृति तिथिओं का निर्णय नामक चौथा प्रकरण समाप्त हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ पञ्चमं प्रकीर्णकाख्यं प्रकरणम्

तृतीयचतुर्थाभ्यां प्रकरणाभ्यां प्रतिपदाद्याः पञ्चदश्यन्ताः सर्वास्तिथयो नीर्णिताः। अथ प्रकीर्णकरूपे पञ्चमप्रकरणे नक्षत्रयोगादयः कालविशेषेषु कर्त्तव्यविशेषाश्च संक्षेपेण निरूप्यन्ते। अत्रापि तिथिवत् सम्पूर्णनक्षत्रे सन्देहाभावात् खण्डनक्षत्रे निर्णयो वक्ष्यते। स च निर्णयो दर्शितो विष्णुधर्मोत्तरे—

उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद्रविः।
युज्यते यत्र वा राम निशीथे शशिना सह॥ इति।

अत्रास्तमययोगो निशीथयोगश्चेति योगद्वयं प्रयोजकम्। अस्तमययोगो मुख्यः कालः, निशीथयोगोऽनुकल्पः। योगद्वये लब्धे सत्यनुष्ठानमतिप्रशस्तम्। यदा तु पूर्वेद्युः केवलो निशीथयोगः परेद्युः केवलोऽस्तमययोगः, तदा मुख्यकल्पानुसारेण परेद्युरेवोपवासः। तथा सति प्रातः सङ्कल्पकाले नक्षत्रसद्भावोऽपि लभ्यते। निशीथे शशिना युज्यते इति ज्योतिःशास्त्रसिद्धस्य शशियोगस्य विवक्षितत्वात् नक्षत्रसद्भावमात्रमभिधीयते इत्यवगन्तव्यम्। दिनद्वयेऽप्यस्तमययोगाभावे निशीथयोगेन पूर्वेद्युरेवोपवासः। तदाह सुमन्तुः—

यत्रार्धरात्रादर्वाक् तु नक्षत्रं प्राप्यते तिथौ।
तन्नक्षत्रव्रतं कुर्यादतीते पारणं भवेत्॥ इति।

अब प्रकीर्णक नामक पांचवां प्रकरण प्रारम्भ होता है। तीसरे और चौथे प्रकरणों में प्रतिपद प्रभृति से लेकर पञ्चदशी तक सब तिथियों का निर्णय हो गया है। अब प्रकीर्णक के रूप पांचवां प्रकरण में नक्षत्र; योगादि और काल विशेषों का संक्षेप निरूपण होगा। यहाँ भी तिथि की तरह संपूर्ण नक्षत्र में सन्देह नहीं हैं। खण्ड नक्षत्र के बारे में निर्णय विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रदर्शित किया है—

जिस नक्षत्र में रवि अस्त जाते हैं, हे राम! जिस निशीथ में शशी के साथ योग होता है। उसमें उपवास किया जाता है।

यहां अस्तमय योग और निशीथ योग ये दो योग प्रयोजक हैं। अस्तमय योग मुख्य काल और निशीथ योग अनुकल्प हैं। इन दो योगों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का लाभ से अनुष्ठान अति प्रशस्त होता है। जब पूर्वदिन में केवल निशीथ योग और अनन्तर दिन में केवल अस्तमय योग है, तब मुख्य काल के अनुसार अनन्तर दिन में उपवास होता है। ऐसे होने से प्रातः संकल्प काल में नक्षत्र की उपस्थिति उपलब्ध रहेगी। "निशीथ में चन्द्र के साथ योग" इस ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध चन्द्रयोग विवक्षित होने पर नक्षत्र का सद्भाव मात्र ही अभिहित होता है ऐसा समझना चाहिए। दो दिनों में अस्तमय योग का अभाव होने पर निशीथ योग के कारण पूर्वदिन में उपवास होता है। इसके बारे में सुमन्तु ने कहा है—

जिस तिथि में अर्धरात्र से पहले नक्षत्र का योग मिलता है तब नक्षत्र व्रत किया जाता है। नक्षत्र अतीत होने पर पारण किया जाता है।

नात्र तिथिष्वेवैकभक्तनक्तयोर्मध्याह्नप्रदोषव्याप्तिभ्यां निर्णयः। किं तर्ह्युपवासनक्षत्र एव तदुभयोः कर्त्तव्यता। तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

तत्र चोपवसेदृक्षे यन्निशीथादधो भवेत्।
उपवासे यदृक्षं स्यात्तद्धि नक्तैकभक्तयोः॥ इति।

यत्तु विष्णुधर्मोत्तरे—

सा तिथिस्तच्च नक्षत्रं यस्यामभ्युदितो रविः।
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥ इति।

तदुपवासव्यतिरिक्तव्रतादिविषयम्। तदपि बौधायनवचनम्—

सा तिथिस्तच्च नक्षत्रं यस्यामभ्युदितो रविः।
वर्धमानस्य पक्षस्य हीने त्वस्तमयं प्रति॥ इति।

तत्पितृकार्यविषयम्। यदपि मार्कण्डेयेनोक्तम्—

तन्नक्षत्रमहोरात्रं यस्मिन्नस्तमितो रविः।
यस्मिन्नुदेति सविता तन्नक्षत्रं भवेद्दिनम्॥ इति।

तस्यायमर्थः। द्विविधो नक्षत्रसंबन्धी कालविशेषः; अहोरात्रो दिनञ्च। तत्रोदितं कर्मापि द्विविधम्; अहोरात्रसाध्यं दिनसाध्यञ्च। उपवासैकभक्तादिकमहोरात्रसाध्यम्। यद्यपि विशिष्टकालनिष्पाद्यं भोजनमेकभक्तादेः स्वरूपं, तथापि तस्मिन्नहोरात्रे भोजनान्तरस्यैकभक्तादिनियमपातितया भोजनान्तरपरित्यागसहितस्यैव भोजनस्यैकभक्तादिस्वरूपत्वादहोरात्रसाध्यत्वमप्यविरुद्धम्। दिनमात्रसाध्यानि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तु दानव्रतश्राद्धानि, तेषामहन्येव विधानात्। तत्रोपवासादौ नक्षत्रोऽहोरात्रो ग्रहीतव्यः।

यहाँ तिथियों में एकभक्त और नक्त का मध्याह्न और प्रदोष की व्याप्ति के द्वारा निर्णय नहीं होता है। क्या उपवास नक्षत्र में इन दोनों की कर्त्तव्यता आई है? इसके बारे में स्कन्दपुराण में कहा है—

निशीथ से पहले रहनेवाला नक्षत्र में उपवास किया जाता है। उपवास के लिए जो नक्षत्र है; नक्त और एकभक्त के लिए वही नक्षत्र माना जाता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा है—

जिस तिथि में सूर्योदय होता है उस तिथि तथा उस समय का नक्षत्र मान्य है। उसमें सब कार्य होंगे उसमें तो किसी तिथि की हानि और वृद्धि कारण नहीं है। यह उपवास से अलग व्रत का विषय है। यद्यपि बौद्धायन वचन भी है—

वर्धमान अर्थात् शुक्लपक्ष में जिस तिथि और नक्षत्र में सूर्य उदित होते हैं, वह तिथि और नक्षत्र उस दिन के लिए माने जाते हैं। हीन अर्थात् कृष्णपक्ष में सूर्यास्त को लक्ष्य करके तिथि और नक्षत्र की स्वीकृति होती है। यह पितृकार्य के लिए माना जाता है। मार्कण्डेय ने कहा है—

जिसमें रवि अस्त होते हैं, वह नक्षत्र अहोरात्र के लिए माना जाता है। सूर्य जिसमें उदित होते हैं, वह नक्षत्र उस दिन के लिए है।

उसका तात्पर्य यह है—नक्षत्र से संबन्धित कालविशेष दो प्रकार है। अहोरात्र और दिन। उदयकालिक कर्म भी दो प्रकार है। अहोरात्र साध्य और दिन साध्य। उपवास और एकभक्त प्रभृति अहोरात्र साध्य है। यद्यपि विशिष्ट काल में भोजन करना एकभक्त प्रभृतिओं के द्वारा साध्य है, तथापि उस अहोरात्र में दूसरा भोजन एकभक्त के नियमान्तर्गत परिसर में आजाने से उस दूसरे भोजन का परित्याग के सहित होनेवाला एक बार भोजन एकभक्त का स्वरूप है। इसलिए अहोरात्र साध्य होने के लिए कोई विरोध नहीं है। केवल दिन में साध्य दान, व्रत और श्राद्ध होते हैं, उनका विधान दिन में ही है। वहां उपवास प्रभृति में नक्षत्र संबन्धित अहोरात्र गृहीत होना चाहिये।

व्रतादौ तु नाक्षत्रं दिनं ग्रहीतव्यम्। अहोरात्रस्य नाक्षत्रत्वं सूर्यास्तमयकाले नक्षत्रव्याप्त्या संपद्यते। दिनस्य तु नाक्षत्रत्वं सूर्योदये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नक्षत्रव्याप्त्या संभवतीति। यद्यपि 'यस्मिन्नुदेति सविता' इत्यत्र सूर्योदयकाले नक्षत्रसद्भावमात्रं प्रतीयते, न तु परिमाणविशेषः, तथापि त्रिमुहूर्त्तपरिमाणस्य तिथौ कॢप्तत्वात्तदेवात्रानुसन्धेयम्।

ननु दान-व्रतवच्छ्राद्धेऽपि नाक्षत्रदिनस्वीकारे प्रातःकालमात्रव्यापिनक्षत्रे श्राद्धं प्रसज्येत। मैवम्, अपराह्णस्य श्राद्धकालत्वेन तद्व्याप्तेरपेक्षितत्वात्। तथा च स्मृतिः—

नक्षत्रे खण्डिते येन प्राप्तः कालस्तु कर्मणः।
नक्षत्रकार्याण्यत्रैव तिथि-कर्म तथैव च॥ इति।

न चानेनैव न्यायेनैकभक्ते मध्याह्नव्यापिनक्षत्रं ग्राह्यमिति शङ्कनीयम्। उपवासनक्षत्रस्यैवैकभक्ते प्रतिपदोक्तत्वात्। यदपि स्मृतिवचनम्—

तिथीनामन्तिमो भागस्तिथि-कर्मसु पूजितः।
ऋक्षाणां पूर्व्वभागस्तु ऋक्षकर्मसु पूजितः॥इति।

तत्र, तिथ्यन्तस्य पूज्यत्वं दान-व्रत-विषयम्। नक्षत्र-पूर्वभागपूज्यत्वं उपवासादि-विषयम्। उपवासादिव्यतिरिक्ते तु दैवे कर्मणि नक्षत्रस्याप्यन्त्यभागपूज्यत्वं द्रष्टव्यम्। नक्षत्रविशेषेषु पूर्वरूपस्य लिङ्गस्य—

श्रवणेन तु यत्कर्म उत्तराषाढसंयुतम्।
संवत्सरकृतोऽध्यायस्तत्क्षणादेव नश्यति॥
धनिष्ठासंयुतं कुर्याच्छ्रावणं कर्म यद्भवेत्।
तत्कर्म सफलं विद्यादुपाकरणसंज्ञकम्॥

इति निषिद्धत्वात्।

व्रतादि में नक्षत्र साध्य दिन गृहीत होता है। नक्षत्र को लेकर होनेवाला अहोरात्र सूर्य के अस्तमन काल के द्वारा संपादित होता है। सूर्योदय में नक्षत्र की व्याप्ति होने से नाक्षत्र दिवस होता है। यद्यपि "जिसमें सविता का उदय होता है।" इस वचन के द्वारा सूर्योदय काल में नक्षत्र की उपस्थिति मात्र ही प्रतीत होती है, किन्तु परिभाण विशेष नहीं है, तथापि तीन मुहूर्त्त परिभाषा तिथि के लिये माना जाता है। इसके बारे में यहां अनुसन्धान होना चाहिये।

यहां प्रश्न होता है कि दान और व्रत की तरह श्राद्ध में भी नक्षत्र दिन का स्वीकार होने पर प्रातःकाल को ही केवल व्याप्त होकर नक्षत्र में भी श्राद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की प्रसक्ति हो जाती है। किन्तु यह ठीक नहीं है। इसलिये स्मृति में कहा है—

नक्षत्र से खण्डित होने पर जिससे कर्म का काल प्राप्त हुआ उससे नक्षत्र कार्यों का विधान करना चाहिए। इसी तरह तिथि कर्म भी है।

उस न्याय से एकभक्त में मध्याह्न को व्याप्त होनेवाला नक्षत्र का ग्रहण होता है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए। उपवास के लिये निश्चित नक्षत्र ही एकभक्त के लिये होता है। ऐसा प्रतिपद प्रकरण में कहा गया है।

उपवासादि के विषय में नक्षत्र का पूर्वभाग पूज्य है। उपवास प्रभृति को छोड़कर दूसरा दैव कर्म में नक्षत्र का अन्त्य भाग पूज्य होता है ऐसा द्रष्टव्य है। नक्षत्र विशेषों में पूर्व रूप लिंग का निषेध सुना है। यथा—

उत्तराषाढ से संयुक्त कर्म अगर श्रवणा नक्षत्र के साथ होकर होता है, तो संवत्सर में संपादित हुआ अध्ययन तत्क्षण नष्ट हो जाता है। धनिष्ठा के साथ श्रावण कर्म जो होता है, उपाकरण नाम से प्रसिद्ध वह कर्म सफल होता है।

योगेषु तु कस्यचिल्लिङ्गस्य पूर्वेद्युर्निशीथमात्रव्याप्ति प्रत्यसूचकत्वात्सायङ्कालादि–व्याप्तिर्ग्राह्या। यदि योगः पूर्वेद्युर्निशीथमात्रं व्याप्नुयात् तदा परेद्युरहनि पारणं प्राप्नुयात्, रात्रौ पारणस्य निषिद्धत्वात्। अतोऽह्न्येव व्यतीपात-पारणं ब्रुवच्छास्त्रं पूर्वेद्युर्दिवसे सायंकालादियोगं प्रयोजकं सूचयति। तस्माद्विष्कम्भादियोग उपवासादौ पूर्वविद्धो ग्रहीतव्यः। दानव्रतयोरुदयव्यापी ग्राह्यः श्राद्धस्य तु कर्मकाल-व्यापी इति निर्णेतव्यम्।

बव-बालवादिकरणानां तिथ्यर्द्धपरिमितत्वेन दिनद्वयाव्यापित्वात्सन्देहो नास्ति तस्मादुदयेऽस्तमये वा यस्मिन्दिने करणसद्भावः, तस्मिन्नेव दिने तत्कर्मानुष्ठेयम्। यदा तु सायंसन्ध्यामारभ्य परेद्युरुदयात्प्रागेव करणं समाप्यते, तत्र कथमिति चेत्। तदा भद्राकरणोक्तन्यायेन सर्वेषु करणेषु निर्णयः—इति ब्रूमः। भद्राकरणे च निर्णयो भविष्योत्तरे भद्राव्रते पठ्यते—

यस्मिन्दिने भवेद्भद्रा तस्मिन्नहनि भारत।
उपवासस्य नियमङ्कुर्यान्नारी नरोऽपि वा॥
यदि रात्रौ भवेद्विष्टिरेकभक्तं दिनद्वये।
कार्यं तेनोपवासः स्यादिति पौराणिको विधिः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रहरस्योपरि यदा स्याद्विष्टिः प्रहरत्रयम् ।
उपवासस्तदा कार्य एकभक्तन्ततोऽन्यथा ॥ इति ।

योगों में तो पूर्वदिन में निशीथ व्याप्ति के लिये कोई लिङ्ग सूचक नहीं होता है । इसलिये सायंकाल की व्याप्ति गृहीत होनी चाहिये । अगर योग पूर्वदिन में केवल निशीथ को व्याप्त होता है तब परदिन के दिवाभाग में पारण की प्राप्ति होती है । क्योंकि रात में पारण का निषेध सुना है । अत एव दिन में व्यतीपात पारण को बोलनेवाला शास्त्र पूर्वदिन के दिवस में सायंकालादि योग के रूप प्रयोजक को सूचित करता है । इसलिये विष्कंभादि में पूर्वदिन होकर गृहीत होता है । दान और व्रत में उदय को व्याप्त होने पर गृहीत होता है । श्राद्ध के लिये तो कर्मकाल व्याप्ति होनी चाहिये इस प्रकार निर्णय होता है ।

बव और बालव प्रभृति करणों एक तिथि के अर्ध परिमित होने से दो दिनोंको व्याप्त नहीं होते हैं इस पर सन्देह नहीं है । इसलिये उदय या अस्तमय में जिस दिन में करण का सद्भाव है, उस दिन में अब कर्म का अनुष्ठान हो सकता है । जब सायं संध्या से लेकर दूसरा दिन का उदय से पहले करण की समाप्ति होती है, वहाँ कैसे निर्णय होगा ? उत्तर ऐसा होता है कि तब भद्रा करणोक्त न्याय से सब करणों में निर्णय होता है ऐसा हम बोलेंगे । भद्रा करणोक्त निर्णय भविष्योत्तरपुराण में भद्रा व्रत को लेकर ऐसा पढा जाता है—

हे भारत ! जिस दिन में भद्रा है, उस दिन में नारी या नर उपवास का नियम पालन करेंगे । अगर रात में विष्टि (भद्रा) है तो दो दिनों में एकभक्त करता है । इसके द्वारा उपवास करता है ऐसी पौराणिक विधि है । प्रहर के ऊपर अगर तीन प्रहर तक विष्टि रहती तो उपवास करना चाहिए, अन्यथा उसके बाद एकभक्त करना है ।

उदयादारभ्य यावदस्तमयं विष्टिसत्तायां नास्त्युपवासे सन्देहः यदा तु प्रहरमात्रे विष्टिर्नास्ति तस्योपरि प्रहरत्रयं विष्टिर्भवति, तदा कृत्स्नदिनव्याप्तेर्भद्राया अभावेऽपि एकदेशव्याप्तेः सद्भावादुपवासोऽनुष्ठेयः । 'अन्यथा'—इत्यनेनैकदेशव्याप्त्यभावोऽपि विवक्षितः । तस्मिन् पक्षे समनन्तरातीतवचनाद्दिनद्वयेऽप्येकभक्तं कार्यम् । यस्तु भद्राव्रतं संकल्पाऽहोरात्रमुपोषितुं न शक्नुयात् असौ, भद्रायुक्तघटिकासु भोजनम्परित्यजेत् । भद्रारहितकाले भुक्त्वाऽपि उपवासान्न हीयते । तथा च भविष्योत्तरे पठ्यते—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्नातः सम्पूज्य तामेव ब्राह्मणं च स्वशक्तितः ।
ततो भुञ्जीत राजेन्द्र यावद्भद्रा न जायते ॥

अथवाऽऽन्तेऽपि भद्रायाः कामतो वाग्यतः शुचिः ।
न किञ्चिद्भक्षयेत् प्राज्ञो यावद्भद्रा प्रवर्त्तते ॥ इति ।

अह्नश्चरमभागे यदा भद्रा प्रवेशस्तदानीमेकदेशे भद्रा योगिनो दिनस्य तद्व्रतार्हत्वादशक्तस्य भद्राप्रवेशात् प्रागेव भोजने प्राप्ते सत्य-भुक्तेन पूजादेरनुष्ठेयत्वाद्भद्रारहितेऽपि काले पूजादिकं न विरुध्यते । यदा तु भद्राया अन्ते भुङ्क्ते, तदा कर्म-काल-व्याप्तिशास्त्राद्भद्रोपेत-काल एव पूजादिकं कर्त्तव्यम् । पक्षद्वयेऽपि भद्रायुक्तघटिकासु न किञ्चिद्भक्षयेत् तावतैव भद्रोपवासः पूर्य्यते ।

बवादि करणेषु कस्यापि विशेषस्य शास्त्रेणानुक्तत्वात् भद्रायां क्लृप्तस्य न्यायस्यातिक्रमे कारणाभावाच्चायमेव निर्णयप्रकारः सर्वोऽपि योजनीयः । न च तिथि-नक्षत्र-योगकरणानां पञ्चाङ्गान्तःपातिनां निर्णयं कृत्वा तदन्तःपाती शास्त्रीयकर्मोपयोगी वारः कुतः उपेक्षितः इति शंकनीयम् । अहोरात्रपरिमितत्वेन वासरे सन्देहाभावात् ।

तदेवं नक्षत्र-योग-करणानि निर्णीतानि ॥

उदय से लेकर अस्त काल तक विष्टि की सत्ता रहने से उपवास में सन्देह नहीं है । किन्तु जब प्रहरमात्र तक विष्टि नहीं है, उसके ऊपर तीन प्रहर तक रहती है तब संपूर्ण दिन की व्याप्ति होने से भद्रा का अभाव में भी एकदेशव्याप्ति होने पर उपवास का अनुष्ठान होता है । "अन्यथा" यह संकेत एकदेश व्याप्ति का अभाव में भी विवक्षित होता है । उस पक्ष में 'ठीक अनन्तर अतीत हुआ है ।' इस वचन से दो दिनों में भी एकभक्त किया जाता है । जो कि भद्राव्रत के लिये संकल्प और अहोरात्र उपवास को नहीं करा सकता है । जो व्यक्ति व्रत करता है, वह भद्रायुक्त घटिकाओं में भोजन छोड़ देता है । भद्रा रहित काल में मुक्त होने पर भी उपवास रहित नहीं होता है । इसलिये भविष्योत्तरपुराण में कहा है—

अपनी शक्ति के अनुसार स्नानपूर्वक उसकी (भद्रा) और ब्राह्मण की पूजा करके उसके बाद भोजन करना है । हे राजेन्द्र ! जब तक भद्रा की उपस्थिति नहीं होती तब तक ऐसा होता है । अथवा भद्रा का अन्त में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी कामना पूर्वक वाक्संयम करके शुचि होकर भद्रा का आगमन पर्यन्त कुछ नहीं खाता है।

दिन के अन्तिम भाग में जब भद्रा का प्रवेश होता है, तब एकदेश में भद्रा युक्त दिन उस व्रत के लिये योग्य होता है। अशक्त लोग के लिए भद्रा प्रवेश से पहले भोजन प्राप्त होने पर भोजन न करके पूजादि का अनुष्ठान के लिए नियम रहने से भद्रारहित काल में भी पूजादिका विरोध नहीं होता है। जब व्रती भद्रा का अन्त में भोजन करता है, तब कर्मकाल व्याप्ति शास्त्र के द्वारा भद्रायुक्त काल में ही पूजादि का अनुष्ठान किया जाता है। दोनों ही पक्षों में भद्रायुक्त घटिकाओं में कुछ नहीं खाता है। इससे ही भद्रा उपवास पूर्ण होता है।

बव प्रभृति करणों के विषय में कोई विशेष शास्त्र की उपस्थिति नहीं है भद्रा में उपयोग प्राप्त न्याय का अतिक्रम करने के लिए कोई कारण भी नहीं है इसलिए उसका निर्णय प्रकार सब जगह योजित किया जाता है। पचांग के अन्तर्गत तिथि नक्षत्र, योग और करण का निर्णय करके, उनके अन्तर्गत शास्त्रीय कर्म के लिये उपयोगी वार की उपेक्षा क्यों हुई ऐसी शंका नहीं की जा सकती है; क्योंकि अहोरात्र व्याप्त होनेवाला वासर अर्थात् वारके विषय में कोई सन्देह नहीं है।

इस प्रकार नक्षत्र, योग और करणों का निर्णय हुआ।

अथ संक्रान्तिर्निर्णीयते

मेषादिषु द्वादशराशिषु क्रमेण सञ्चरतः सूर्यस्य पूर्वस्माद्राशेरुत्तरराशौ संक्रमणं प्रवेशः संक्रान्तिः[1]। अतस्तत्तद्राशिनाम-पुरःसरं सा संक्रान्तिर्व्यपदिश्यते। राशयश्चामी मेष-वृष-मिथुन–कर्कट–सिंह-कन्या-तुला-वृश्चिक-धनुर्-मकर-कुम्भ-मीन-नामकाः। तेषु द्वादशसु चत्वारि त्रिकानि भवन्ति। तत्रैकैकस्त्रिके क्रमेण चर-स्थिर-द्विस्व–

१. रवेः संक्रमणं राशौ संक्रान्तिरिति कथ्यते।
स्नानदानतपः श्राद्धः रोमादिषु महाफला ॥ इति नागरखण्डे
(स्कन्दपुराणे)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावास्त्रयो राशयः। तथा च चतुर्षु त्रिकेषु मध्ये ये मध्यमा वृषभ-सिंह-वृश्चिक-कुम्भनामकाः स्थिरराशयश्चत्वारः, तेषां विष्णुपदमिति नाम स्मृतिषु प्रसिद्धम्। ये त्वन्तिमा मिथुन-कन्या-धनुमीन-नामका द्विस्वभावा राशयस्ते षडशीतिमुखसंज्ञकाः। ये पुनः प्रथमे मेष-कर्कट-तुला-मकर-रूपाश्चत्वारश्चलराशयः तेषु मेषतुले विषुवसंज्ञके। कर्कट-मकरावयनसंज्ञकौ तदेतत् सर्वं वृद्धवसिष्ठः आह—

"अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः।
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः
झष–कर्कट-संक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने।
बिषुवे तु तुला-मेषौ गेल-मध्ये ततोऽपराः॥
कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः।
षडशीतिमुखाः प्रोक्ताः षडशीतिगुणाः फलैः॥
वृष-वृश्चिक-सिंहेषु कुम्भे चैव रवेर्गतिः।
एतद्विष्णुपदं नाम विषुवादधिकं फलैः॥ इति।

अब संक्रान्ति का निर्णय होगा। शेष प्रभृति बारह राशियों में क्रमानुसार संचरित सूर्य के पूर्व राशि से परवर्त्ती राशि को जो संक्रमण अर्थात् प्रवेश वह संक्रान्ति है। इसलिए उन राशियों का नामों के द्वारा संक्रान्ति का निर्देश किया जाता है। राशियाँ हैं यथा—मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। इन बारह राशियों में चार त्रिक अर्थात् मंडल है। यहाँ एक एक त्रिक में क्रमानुसार चार चर और इन दोनों का स्वभाव रखनेवाले तीन राशियों की स्थिति है। फिर भी चार दिनों के बीच में जो मध्यम रहते हैं यथा—वृषभ, सिंह, वृश्चिक, और कुंभ—ये स्थिर राशि के रूप से माने जाते हैं। ये विष्णुपद नाम से स्मृति में प्रसिद्ध हैं। अन्तिम मिथुन, कन्या, धनु और मीन नाम से जो राशि चक्र है, वे इन दोनों का स्वभाव को अपनानेवाली षडशीति संज्ञा से अभिहित है जो फिर पहले मेष, कर्कट, तुला, मकर के नाम से प्रसिद्ध हैं वे चलराशि के रूप में अभिहित है, उनमें मेष और तुला विषुव संज्ञा से प्रसिद्ध है और कर्कट और मकर अयन के रूप से प्रसिद्ध हैं। इन सबके बारे में वृद्ध वसिष्ठ ने कहा है—

अयन के रूप में दो, विषुव के रूप में दो, षडशीति के रूप में चार और विष्णुपदी के रूप में चार; कुल मिलकर बारह राशियों की परिगणना है। मकर (झष) और कर्कट इन दो संक्रान्ति को लेकर उत्तरायण और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दक्षिणायन भी होते हैं। विषुव में तुला और मेष गोल के बीच में रहते हैं। कन्या, मिथुन, मीन और धनु इन राशियों को सूर्य की गति से षडशीति नाम होता है। इनमें इस संख्या फल मिलते हैं। वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ में रवि की गति से विष्णुपद नाम होता है, इनमें विषुव से अधिक फल है।

विषुवाभ्यामयनाभ्यां च युक्तं राशिचतुष्कं गोल इत्यभिधीयते। तत्र मेषाख्यविषुवस्य कर्कटाख्यायनस्य च मध्ये विष्णुपदसंज्ञको वृषभः षडशीतिसंज्ञकं मिथुनं च तिष्ठति। तथा कर्कटाख्यायनस्य तुलाख्यविषुवस्य च मध्ये सिंहकन्यके। तुलामकरयो र्मध्ये वृश्चिक-धनुषी। 'एवमन्यदप्युदाहार्यम्। गालवोऽप्याह—

स्थिरभे विष्णुपदं षडशीतिमुखं द्वितनुभे तुलामेषौ।
विषुवन्तुर्ये दक्षिणमयनं सौम्यं मृगे सूर्य्ये॥ इति

भशब्दवाच्यो राशिः। स्थिरराशौ स्थिते सूर्य्ये सति विष्णुपदं भवति। द्विस्वभावराशौ सूर्ये स्थिते सति षडशीतिमुखं भवति। तुलामेषद्वये सूर्य्ये स्थिते सति विषुवं भवति। तुर्य्ये कर्कटके दक्षिणा-यनम्। मृगे मकरे सौम्यं सोमदिङ्नामकमुत्तरायणम्। तैरेतैः संज्ञाभेदैः राशयो व्यवह्रियन्ते। तद्राशिसंबन्धात्तद्राशिसंक्रान्तीना-मपि तान्येव नामानि। तासु च संक्रातिषु होमस्नानादिकमन्वयव्यति-रेकाभ्यां शातातप आह'—

संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः।
तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि॥
रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यदि मानवः।
सप्तजन्मसु रोगी स्याद् दुःखभागिह जायते॥ इति।

विषुव और अयन इन चार राशिओं का योग गोल कहा जाता है। वहाँ मेष नामक विषुव और कर्कट नामक अयन के बीच में विष्णुपद नामक वृषभ और षडशीति संज्ञक मिथुन रहता है। उसी तरह कर्कट अयन और तुला-विषुव इन दोनों के बीच में सिंह और कन्या रहती है। तुला और मकर के बीच में वृश्चिक और धनु की स्थिति है। इस प्रकार दूसरी संक्रान्तियों का उदाहरण मिलता है। गालव ने भी कहा है—

---

१. एतद्वचनद्वयं देवीपुराणवचनत्वेन कालविवेके (पृ० ३८०), राज-मार्त्तण्डवचनत्वेन वर्षक्रियाकौमुद्याम् (पृ० २१२, २१४) वचनद्वयं तु राज-मार्त्तंडे-(१४०६-७) लभ्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"स्थिर नक्षत्र में विष्णुपद, दोनों के स्वभाव को लेकर षडशीति, तुला और मेष को लेकर विषुव तुर्य में दक्षिणायन और युग में उत्तरायण होता है।

इसका अभिप्राय यह है कि भ शब्द से राशि अभिहित होती है। स्थिर राशि में सूर्य की स्थिति होने पर विष्णुपद होती हैं। द्विस्वभाव युक्त राशि में सूर्य की स्थिति होने पर षडशीतिमुख होती है। तुला और मेष इन दोनों में सूर्य की स्थिति होने पर विषुव संक्रान्ति होती है। तुर्य अर्थात् कर्कट संक्रान्ति में दक्षिणायन होता है। मृग अर्थात् मकर में सौम्य अर्थात् सोमदिशा नामक अर्थात् उत्तरायण होता है। इन सब संज्ञा भेदों के द्वारा राशिओं का व्यवहार होता है। उन राशियों का सम्बन्ध से उन राशियों के नामानुसार संक्रान्ति होती है। उन संक्रान्तियों में होम और स्नानादि के बारे में अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा शातातप ने कहा है—

दाताओं द्वारा संक्रान्ति में जो हव्य-कव्य दिया जाता है सूर्य उन द्रव्यों को हर जन्म में सर्वदा देते हैं। संक्रान्ति में अगर कोई मानव स्नान नहीं करता है तो वह सात जन्म तक रोगी होकर दुखी के रूप में फिर जन्म लेता है।

स्नानदानादिविध्यङ्गभूते संक्रान्तिकाले मुख्यकल्पस्यासंभवादनुकल्प एवादर्त्तव्यः। तदाह देवलः—

संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितेक्षणैः।
तद्योगादप्यधश्चोर्ध्वं त्रिंशन्नाड्यः[1] पवित्रिताः॥ इति।

देशाव्यवधानादत्यन्तसंश्लिष्टयोः पूर्वोत्तरराश्योर्मध्ये सूर्यः पूर्वराशिं परित्यज्य यावता काललेशेनोत्तरराशिं प्रविशति, स लेशो योगदृष्टिं विना मांसदृष्ट्या दुर्लक्ष्यः। अतोऽनुष्ठाने मुख्यसंक्रान्तिकालासंभवात् संक्रान्तिसंबन्धिनौ पूर्वोत्तरकालौ ग्रहीतव्यौ। संक्रान्तेः पूर्वोत्तरयोः कालयोरेकैकस्मिंस्त्रिंशद्घटिकाः पुण्याः इति सामान्येनोक्तम्। तत्र विशेषमाह वृद्धवसिष्ठः—

अतीतानागते पुण्ये द्वे उदग्दक्षिणायने।
त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः॥ इति

---

१. वचनमिदं हेमाद्रौ कालखण्डे (पृ० ४१७) वसिष्ठवचनत्वेनोद्धृतम्। तत्र त्रिंशन्नाड्यो यथा—अधश्च त्रिंशन्नाड्यः ऊर्ध्वं च त्रिंशन्नाड्यः पुण्यकालः। यद्वा त्रिंशन्नाड्या पूर्वं पंचदश पश्चात्पंचदशेति ज्ञेयम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्गयनमतीतं सत्पुण्यं भवति, दक्षिणायनमनागतं पुण्यम्। त्रिंशदित्यादिना तदेव स्पष्टीक्रियते । कर्कटाख्याद् दक्षिणायनात् प्राचीनास्त्रिंशद्घटिकाः पुण्याः । मकराख्यादुत्तरायणादूर्ध्वकालीना विंशतिघटिकाः पुण्याः । बृहस्पतिरपि—

स्नान और दान प्रभृति तिथि के अङ्गस्वरूप संक्रान्ति-काल में अगर मुख्य कल्प असंभव हो तो अनुकल्प आदृत होना चाहिए। इसके बारे में देवल ने कहा है—

संक्रान्ति का समय सूक्ष्म है। चर्म चक्षुओं के द्वारा जानना संभव नहीं है। अतः संक्रमण का योग की पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती तीस नाड़ि तक संक्रान्ति का पुण्य काल रहता है।

देश का अव्यवधान से अत्यन्त संश्लिष्ट पूर्व और उत्तर दो राशियों के बीच में सूर्य पूर्वराशि को छोड़कर जितना काल लेकर उत्तर राशि अर्थात् परवर्त्ती राशि में प्रवेश करते हैं वह सूक्ष्म काल योग दृष्टि के बिना चर्ममय दृष्टि में लक्षित नहीं हो सकता है। अतः अनुष्ठान के समय मुख्य संक्रान्ति काल की अवस्थिति असंभव होने से संक्रान्ति के संबन्धित पूर्व और उत्तर दो कालों का ग्रहण होता है। संक्रान्ति के पूर्व और उत्तर इन दो कालों में प्रत्येक पार्श्व में तीस घटिका पुण्यकाल के रूप में सामान्यरूप से मानी जाती है। उस स्थल में विशेष के रूप में वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—

उत्तरायण और दक्षिणायन में अतीत होने पर और अतीत होने का पूर्ववर्त्ती काल पुण्य है। कर्कट संक्रान्ति में तीस और मकर-संक्रान्ति में बीस नाटिका (नाड़ी) पुण्यहै ।

अर्थात्—उत्तरायण अतीत होने के बाद पुण्य काल होता है। दक्षिणायन के आगमन से पहले पुण्य काल रहता है। "तीस" घटिका कहने से यह स्पष्ट होता है। कर्कट संज्ञा से सूचित दक्षिणायन का पूर्ववर्त्ती तीस घटिका पुण्य है। मकर संज्ञा से सूचित उत्तरायण का ऊर्ध्व अर्थात् परवर्त्ती बीस घटिकायें पुण्य हैं। बृहस्पति ने भी कहा है—

[1]अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः पराः।
वर्त्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश॥ इति।

---

१. नि. सि. पाठो यथा—माधवीयेऽपि जाबालिः—
संक्रान्तिषु यथा कालस्तदीयेऽप्ययने तथा ।
अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा ॥ इति । पृ. १

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न चात्र त्रिंशद्घटिकावादिना सामान्यवचनेन विरोधः शङ्कनीयः सामान्यवचनस्याभ्यनुज्ञापरत्वात् । विशेषवचनोक्तो घटिकासंकोच एव प्रशस्तः ।

'याः याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः'

इति देवलेनोक्तत्वात् । केनापि निमित्तेन सन्निहितघटिकास्वनुष्ठानासंभवे त्रिंशद्घटिकाः परमावधित्वेनाभ्यनुज्ञायन्ते । षडशीतिषु ततोऽपि दीर्घमवधिमाह वृद्धवसिष्ठः—

षडशीत्यामतीतायां षष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः ॥ इति ।

विष्णुपद्यां प्रशस्तकालं स एवाह—

पुण्यायां विष्णुपद्याञ्च प्राक् पश्चादपि षोडश ॥ इति ।

संक्रान्तीनां पूर्वोत्तरौ पुण्यकालौ निर्णीतौ । ताश्च संक्रान्तयः कदाचिदह्नि भवन्ति कदाचिद्रात्रौ भवन्ति । तद्भेदानुष्ठानभेदमाह वृद्धवसिष्ठः—

अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्त्तितम् ।
रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः ॥
अर्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया ।
ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् ॥
पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः ।
प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ इति

अयन संक्रान्ति में पूर्ववर्त्ती बीस, मकरसंक्रान्ति में परवर्त्ती बीस, तुला और मेष-संक्रान्तियों में उभय पार्श्वों में दस नाड़ी तक पुण्य काल रहता है ।

यहां तीस घटिका सूचित करनेवालों का सामान्य वचन के साथ विरोध है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि सामान्य वचन केवल अभ्यनुज्ञा अर्थात् स्वीकृति के लिए उद्दिष्ट है । किन्तु विशेष वचन से उक्त घटिका का संकोच प्रशस्त है । "जो सन्निहित अर्थात् निकटवर्त्ती नाड़ियां हैं, वे पुण्यतम हैं ऐसा स्मृति में कहा है" इस प्रकार देवल ने कहा है । किस निमित्त से अगर सन्निहित घटिकाओं में अनुष्ठान नहीं हो पाया तो तीस घटिका अन्तिम कालसीमा के रूप में मानी जाती है । षड-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शीति संक्रान्तियों में उनसे भी दीर्घ कालसीमा के बारे में वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—षडशीति संक्रान्ति अतीत होने पर साठ नाड़ी तक पुण्य काल रहता हैं। विष्णुपदी में प्रशस्त काल के बारे में कहा है—"पुण्यदायिनी विष्णुपद संक्रान्ति में पूर्ववर्त्ती सोलह घटिका तक पुण्य काल रहता है"।

संक्रान्तिओं का पूर्व और उत्तर अर्थात् परवर्त्ती काल पुण्य काल के रूप में निर्णीत हुआ। उन संक्रान्तिओं की स्थिति कभी दिन में और कभी रात में मालूम पड़ती है। इस प्रकार स्थितिगत भेद से अनुष्ठान में भी होनेवाला भेद के बारे में वृद्ध वसिष्ठ ने कहा हैं—

"दिन में संक्रमण होने पर संपूर्ण दिन पुण्य है। रात में सूर्य का संक्रमण होने पर स्नान और दान के लिए दिन का आधा भाग पुण्य है। अर्धरात्र से पहले संक्रमण होने पर मध्याह्न का ऊपर पुण्य होता है। अर्धरात्र के बाद में होने पर परदिन का सूर्योदय से परवर्त्ती दो प्रहर तक पुण्यकाल है। अर्धरात्र पूर्ण होने के समय जब रात्रि में संक्रमण होता है, तो मकर और कर्कट-संक्रान्ति को छोड़कर दो दिन अर्थात् पूर्व और परदिन पुण्य होते हैं।

अह्नि यदा संक्रान्ति र्भवति, तदा कृत्स्नस्याह्नः पुण्यत्वं रात्रौ संक्रमणे पूर्वोत्तरदिनोर्ध्वयोः पुण्यत्वं विधतता वचनेनार्थाद्रात्रौ स्नानदानादिकं प्रतिषिध्यते। एवं सत्युदयानन्तरभाविनि दक्षिणायनेपू र्वभागे प्राशस्त्यं बाधित्वोत्तरभागेऽनुष्ठानं भवति। अस्तमयप्राचीनक्षणभाविन्युत्तरायणे चोत्तरभागप्राशस्त्यं परित्यज्य पूर्वभागेऽनुष्ठातव्यम्। उत्तरभागप्राशस्त्यं तु मध्याह्नादिसंक्रमणविषयम्। तत्राहन्येव हेयोपादेययोः पूर्वोत्तरभागयोः संभवात् अनेनैव न्यायेन कर्कटेऽपि मध्याह्न भाविनि पूर्वभागप्राशस्त्यं भवति।

अस्तमयप्राचीनभाविषु षडशीतिमुखेष्वप्युत्तरभागप्राशस्त्यं परित्यज्य मकरन्यायेन पूर्वभागप्राशस्त्यं विधातव्यम्। उदयानन्तरभाविषु तेषु वचनान्तराविरोधेनोत्तरभाग एवानुष्ठानसंभवात्तद्विरुद्धं पूर्वभागप्राशस्त्यं न विधीयते। उभयभागप्राशस्त्योपेतेषु विषुवद्विष्णुपदेषु मध्याह्नभाविषु पूर्वत्रोत्तरत्र वा स्वेच्छयाऽनुष्ठातव्यम्। उदयानन्तरभाविषु तेषु पूर्वभागप्राशस्त्यं बाध्यते। अस्तमयप्राप्तेषु तेषु उत्तरभागप्राशस्त्यं बाध्यते इति विवेकः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतद्वचनानुसारेण यस्य संक्रमणस्य यस्मिन् भागेऽनुष्ठानं तस्मिन्नेव भागे व्यवहिता नाड्यः ईषत्सन्निहिताः पुण्यतराः, अत्यन्तसन्निहिताः पुण्यतमा द्रष्टव्याः ।

जब दिन में संक्रान्ति होती है, तब संपूर्ण दिन पुण्य होता है। रात में संक्रमण होने पर पूर्व और उत्तर दिनों में ऊर्ध्वकाल का पुण्यत्व विधान करनेवाला वचन के द्वारा रात में स्नान और दान प्रभृति प्रतिषिद्ध होते हैं। ऐसे होने पर उदय के अनन्तर होनेवाला दक्षिणायन संक्रान्ति में पूर्वभाग में होनेवाला प्राशस्त्य को बाधित कर उत्तरभाग में अनुष्ठान होता है। अस्तमय होनेवाला प्राचीनक्षण के संलग्न उत्तरायण में भी उत्तरभाग का प्राशस्त्य को छोड़कर पूर्भाग में अनुष्ठान करना चाहिये। उत्तरभाग का प्राशस्त्य तो मध्याह्न में होनेवाला संक्रमण विषय के साथ संबन्धित है। वहां दिन में हो पूर्व और उत्तर भाग का होना और छोड़देना संभव है। इस न्याय से कर्कट का मध्याह्न में संक्रमण होने पर पूर्वभाग प्राशस्त्य रहता है।

षडशीति प्रभृति अस्तमय के संलग्न प्राचीन भावी संक्रान्तिओं में भी उत्तरभाग का प्राशस्त्य को छोड़कर मकरन्याय के अनुसार पूर्वभाग का प्राशस्त्य विधान करना चाहिए। उदय के अनंतर भावी इन स्थलों में दूसरे वचनों का विरोध न होने पर उत्तरभाग में ही अनुष्ठान की संभावना है। इसलिये इसका विरुद्ध पूर्वभाग का प्राशस्त्य विहित हो सकता है। उभय भागों का प्राशस्त्य से युक्त विषुव और विष्णुपद संक्रान्तिओं में जो मध्याह्न में होनेवाले हैं, उन स्थलों में पूर्व या उत्तरभाग में विकल्प से इच्छानुसार अनुष्ठान हो सकता है। उदय का अनन्तर काल में होने के अवसर पर पूर्वभाग का प्राशस्त्य बाधित होता है। अस्तमय में प्राप्त होने पर उन स्थलों में उत्तरभाग का प्राशस्त्य बाधित होता है ऐसी विवेचना होती है।

इस वचन के अनुसार जिस संक्रमण का जिस भाग में अनुष्ठान होता है, उन संक्रमण में उस भाग में व्यवहित रहनेवाली नाड़ियाँ पुण्य होती हैं, कुछ सन्निहित होने पर पुण्यतर और अत्यन्त सन्निहित होने पर पुण्यतम होती हैं ऐसा द्रष्टव्य है।

यदा रात्रौ भानोः संक्रमणं भवति, तदा तस्या रात्रेः पूर्वस्य चोत्तरस्य वा दिनस्यार्द्धं प्रहरद्वयं स्नानदानयोः पुण्यम्। कुत्र पूर्वदिनं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुत्र परदिनमिति विवक्षायां तदुभयम् अर्धरात्रादिति वचनेन व्यवस्थाप्यते। रात्रेरर्द्धमर्द्धरात्रः, द्वितीयप्रहरस्य चरमघटिका तृतीयप्रहरस्य प्रथमघटिकेत्येवं घटिकाद्वययुक्तः कालः। तस्मादर्धरात्रादधः संक्रमणे सति पूर्वदिनमध्याह्नस्योपरितने प्रहरद्वये क्रिया कार्या। अर्धरात्रादूर्ध्वं संक्रमणे सति उत्तरकालीनादुदयादूर्ध्वं प्रहरद्वयं पुण्यम्। पूर्णेऽर्धरात्रे घटिकाद्वये संक्रान्तौ पूर्वोत्तरदिनद्वयं कृत्स्नं पुण्यम्। तदुक्तं भविष्योत्तरेऽपि—

संक्रमस्तु निशीथे स्यात् षड्यामाः पूर्वपश्चिमाः।
संक्रान्तिकालो विज्ञेयस्तत्र स्नानादिकञ्चरेत्॥ इति।

अत्रेयं व्यवस्था। अर्धरात्रे यदा षडशीतिः स्यात् तदानीमेतद्वचनानुसारेण पूर्वोत्तरदिनद्वयस्य पुण्यत्वाद् यद्यप्यैच्छिको विकल्पः प्राप्नोति तथाप्युत्तरदिने षष्टिघटिकाप्रतिपादकप्रातिस्विकवचनानुग्रहलाभात्तत्रैवानुष्ठातव्यम्। विषुवयो र्विष्णुपदेषु च प्रातिस्विकवचनं न नियामकम्। तस्य वचनस्य पूर्वोत्तरभागयोः सामान्येन प्राशस्त्य प्रतिपादकत्वात्। प्रकृतवचनं पूर्वोत्तरदिने साम्येन विधत्ते। तस्मात् पूर्वस्मिन्नुत्तरस्मिन् वा स्वेच्छयाऽनुष्ठानमिति विकल्प्यते। अयनयोस्तु प्रकारान्तरं वक्ष्यते।

जिस स्थल में रात में भानु अर्थात् सूर्य का संक्रमण होता है, उस स्थल में इस रात के पूर्व या उत्तर दिन का आधाभाग में रहनेवाले दो प्रहर स्नान और दान के लिए पुण्य होते हैं। कहाँ पूर्वदिन और कहाँ परदिन इस प्रकार विवक्षा होने पर इन दोनों का "अर्धरात" से इस वचन से व्यवस्था होती है। रात का आधा आधारात अर्थात् अर्धरात्र! दूसरा प्रहर का चरम अर्थात् अन्तिम घटिका और तृतीय प्रहर की पहली घटिका इन दोनों को लेकर काल सूचित होता है। इसलिये अर्धरात्र से नीचे संक्रमण होने पर पूर्वदिन का मध्याह्न का परवर्त्ती दो प्रहरों में क्रिया की जाती है। अर्धरात्र के ऊर्ध्ववर्त्ती भाग में संक्रमण होने पर उत्तरकालीन अर्थात् परवर्त्ती दिन का उदय से ऊर्ध्व दो प्रहर तक पुण्यकाल होते हैं। पूर्व अर्धरात्र में दो घटिकाओं में संक्रान्ति होने पर पूर्व और उत्तर ये दो दिन संपूर्ण रूप से पुण्य माने जाते हैं। भविष्योत्तर में भी ऐसा कहा गया है—

निशीथ में संक्रमण होने से पूर्व और पश्चिम छ याम संक्रान्ति का काल जाने जाते हैं। उस समय स्नान और दान होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहां ऐसी व्यवस्था है—अर्धरात्र में जब षडशीति है, उस अवसर पर उस वचन के अनुसार पूर्व और दूसरा इन दो दिन पुण्य होने से यद्यपि इच्छा के अनुसार विकल्प हो सकता है, तथापि दूसरा दिन में साठघटिका का प्रतिपादक प्रातिस्विक वचन से अनुग्रह लाभ होने पर वहां ही अनुष्ठान होता है। दो विषुव और विष्णुपदों में भी प्रतिस्विक वचन नियामक नहीं होता है क्योंकि पूर्व और उत्तरभाग में वह वचन सामान्य रूप से प्राशस्त्य का प्रतिपादक है। प्रकृत वचन अर्थात् प्रकरण में प्राप्त हुआ वचन पूर्व और उत्तर दिन को समान रूप से विधान करता है। इसलिये पूर्व का उत्तरभाग में इच्छा के अनुसार विकल्प से अनुष्ठान होता है। अयनों में तो दूसरा प्रकार कहा जायगा।

अयनव्यतिरिक्तासु दशसु संक्रान्तिषु मध्यरात्रादूर्ध्वं प्रवृत्तासु परेद्युरनुष्ठानमित्यत्र न कोऽपि सन्देहः। अर्धरात्रात् पूर्वं प्रवृत्तासु तासु दशसु मध्ये षडशीतिव्यतिरिक्तानां षण्णां पूर्वदिनेऽनुष्ठानमित्यत्रापि नास्ति सन्देहः। षडशीत्यां तु प्रकृतवचनेन पूर्वेद्युरनुष्ठानं प्राप्तम्। षष्टिघटिकाप्राशस्त्यप्रतिपादकप्रातिस्विकवचनेन परेद्युः प्राप्नोति। अतः सन्देहे सति पूर्वेद्युरनुष्ठानमिति निर्णयो द्रष्टव्यः। कुतः?

विष्णुपद्यां धनुर्मीननृयुक्कन्यासु वै यदा।
पूर्वोत्तरगतं रात्रौ भानोः संक्रमणं भवेत्॥
पूर्वाह्णे पञ्च नाड्यस्तु पुण्याः प्रोक्ता मनीषिभिः।
अपराह्णे तु पञ्चैव श्रौते स्मार्त्ते च कर्मणि॥ इति।

इति स्मृतेः। यदा रात्रौ पूर्वभागगतं विष्णुपदी-षडशीति संक्रमणं भवेत्, तदा पूर्वेद्युरपराह्णे पञ्च नाड्यः पुण्याः। उत्तरभागगते तत्संक्रमणे परेद्युः पूर्वाह्णे पञ्चनाड्यः पुण्याः। न चैवं सति प्रहरद्वयपुण्यत्वविरोध इति वाच्यम्। पञ्च नाडिकावचनेषु पुण्याधिक्यस्य विवक्षितत्वात्। अतः प्रहरद्वयवाक्यं पुण्यमात्राभिप्रायम्। एतस्मिन्नेव विषये देवीपुराणे पठ्यते—

असंपूर्णेऽर्धरात्रे तु उदयेऽस्तमयेऽपि च।
मानार्द्धे भास्करे पुण्यमपूर्णे शर्वरीदले॥
अर्धरात्रे त्वसपूर्णे दिवा पुण्यमनागतम्॥
संपूर्णे उभयोर्ज्ञेयमतिरिक्ते परेऽहनि॥ इति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयनों को छोड़कर दस संक्रान्तिओं में मध्यरात्र से ऊर्ध्वभाग में संक्रमण होने पर दूसरा दिन में अनुष्ठान होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अर्धरात्र से पहले संक्रमण प्रवृत्त होने पर उन दस संक्रान्तिओं में से षडशीति को छोड़कर छ संक्रान्तिओं में पूर्वदिन में अनुष्ठान होता है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है। षडशीति में तो प्रकृतवचन के द्वारा पूर्वदिन अनुष्ठान प्राप्त हुआ है। साठ घटिका के प्राशस्त्य का प्रतिपादक प्रातिस्विक वचन के द्वारा दूसरा-दिन में प्राप्त होता है। अतः इस प्रकार सन्देह होने पर पूर्वदिन में अनुष्ठान होता है ऐसा निर्णय होता है। क्यों ?

विष्णुपदी में, घनु, मीन, मिथुन, और कन्या में रात में यदि सूर्य का पूर्व और उत्तर गत संक्रमण होता है, तो श्रौत और स्मार्त्त कर्म के लिए पूर्वाह्न में पांच और अपराह्न में पांच नाड़ी पुण्य काल के रूप में मनीषिओं ने कही गई है। ऐसा स्मृति में कहा है।

जब रात का पूर्वभाग में विष्णुपदी और षडशीति का संक्रमण होता है, तब पूर्वदिन का अपराह्न में पांच नाडी तक पुण्य काल रहता है। उत्तरभाग में संक्रमण होने पर परदिन का पूर्वाह्न में पांच नाडी तक पुण्य काल रहता है। इस प्रकार होने से दो प्रहर तक पुण्यत्व रहनेवाला पक्ष के साथ विरोध होता है ऐसा नहीं कहा जाता है। पांच नाडी को कहने वाले वचनों में अधिक पुण्य की विवक्षा है। अतः दो प्रहर को कहनेवाला वाक्य केवल पुण्य मात्र को ही अभिप्रेत करता है। इस विषय में देवी पुराण में कहा है—

अर्धरात्र असंपूर्ण रहने के समय उदय और अस्तमय में भी भास्कर अर्थात् सूर्य संयुक्त दिन रहने पर मानार्ध पुण्य है और शर्वरी अर्थात् रात की अपूर्णता रहने पर भी। अर्धरात्र असंपूर्ण रहने पर दिन में पुण्य नहीं आता है। अर्धरात्र की संपूर्णता होने पर उभय दिनों का पुण्य काल अर्थात् संक्रान्ति के रूप में ग्रहण होता है। अर्धरात्र के बाद में संक्रमण होने पर दूसरे दिन संक्रान्ति होती है।

अत्र भास्करशब्देन सूर्ययुक्तं दिनमुपलक्ष्यते यद्वा, भास्करशब्दो न सूर्ये रूढः किन्तु यौगिकः, भासं करोतीति व्युत्पत्तिसंभवात्। तथा च सूर्यः इव दिनेऽपि भास्करशब्दो मुख्यः। तस्यापि भासं प्रत्यधि-करणकारकत्वात्। भास्करे दिवसे विद्यमानं प्रहरचतुष्टयं तस्यार्द्धं प्रहरद्वयम्। आदित्यास्तमयस्योपरितन आगामिसूर्योदयात्प्राचीनः कालो रात्रिः। उदयोपरि अस्तमयात्प्राचीनः कालो दिनम्। उदयास्त-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मयकालौ सन्धिरूपतया प्रोक्ताभ्यां रात्रिदिवसाभ्यां पृथक् इत्येके। रेखामात्रस्यापि सूर्यमण्डलांशस्य दृश्यमानतया दिवसान्तःपातिनौ इत्यपरे। सर्वथाऽपि न रात्रौ तयोरन्तर्भावः।

सा च रात्रिस्त्रेधा भिद्यते; मध्यवर्त्तिघटिकाद्वयात्मक एको भागस्तस्मात्पूर्वोत्तरौ द्वौ भागौ। तत्र पूर्वभागोऽसंपूर्णेऽर्धरात्रे इत्यनेन विवक्ष्यते। तस्मिन् यदा संक्रान्तिस्तदानीं सूर्यास्तमये प्रत्यासन्नं यत्पूर्वदिनस्योत्तरार्द्धं तत्पुण्यम्। 'अपूर्णे शर्वरीदले' इत्यनेनार्धरात्राद-नन्तरभावी रात्रिभागो विवक्षितः। पूर्वोत्तरयोर्निशादलयोरेकैकस्याः घटिकाया अर्धरात्रकालार्धस्य पृथक्कृतत्वादसंपूर्त्तिरवगन्तव्या। तस्मिन् घटिकान्यूने परभागे यदा संक्रान्तिस्तदानीं भाविसूर्योदये प्रत्यासन्नं दिनार्द्धं पुण्यम्। अयमेवार्थो द्वितीयश्लोके प्रपञ्च्यते। घटिकान्यूनत्वे नासंपूर्णार्धरात्रे पूर्वभागे यदा संक्रमणं भवति तदा यद्यपि दिवा संक्रमणमनागतं तथापि तस्य दिवसस्य उत्तरार्द्धं पुण्यं, यदा संपूर्णेऽर्धरात्रे घटिकाद्वयात्मके निशीथे संक्रमणं भवेत्तदानीं पूर्वोत्तरयोर्दिनयोः पुण्यत्वं ज्ञेयम्। अतिरिक्ते परभागे संक्रान्तौ परेऽहनि पूर्वार्धं पुण्यम्। देवलोऽपि—

यहाँ भास्कर शब्द से सूर्य से संयुक्त दिन उपलक्षित होता है। फिर भी भास्कर शब्द सूर्य के अर्थ में रूढ़ नहीं है किन्तु यौगिक है। क्योंकि भास् अर्थात् दीप्ति को कहते हैं ऐसी व्युत्पत्ति होती है। सूर्य की तरह दिन का अर्थ में भी भास्कर शब्द मुख्य है। इस दिन का भी भास् अधिकरण कारक के रूप में माना जाता है। भास्कर में अर्थात् दिन में विद्यमान है जो चार प्रहर, उनका आधा दो प्रहर है। आदित्य का अस्तमय से ऊपर और आगामी सूर्योदय से पहले विद्यमान काल रात्रि है। उदय से ऊपर और अस्तमय से पहले विद्यमान काल दिन है। उदय और अस्तमय काल सन्धि रूप से कहे गये हैं। इसलिए रात और दिन से भिन्न है। ऐसे कुछ कहते हैं, दूसरे भी कहते हैं कि सूर्यमंडल का रेखामात्र दृश्यमान होने पर भी इन दोनों को दिवस के भीतर अन्तर्भुक्त किये जाते हैं। सर्वथा रात में इन दोनों का अन्तर्भाव नहीं होता है।

वह रात तीन भागों से विभक्त है। बीच में या मध्यवर्त्ती दो घटिका को लेकर एक भाग और इन घटिकाओं के पूर्व और उत्तर दो भाग वहाँ पूर्वभाग कहने से "असंपूर्णेऽ अर्धरात्रे" इससे विवक्षित है। उस भाग में जब संक्रान्ति होती है, उस अवसर में सूर्यास्त रूप काल में पूर्वदिन के निकटवर्त्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरार्ध पुण्य काल है। "अपूर्णे शर्बरीदले" इस वचनांश से अर्धरात्र के अनन्तर रात्रिभाग विवक्षित होता है। निशा या दल अर्थात् रात का पूर्व और उत्तर भागों की एक-एक घटिका अर्धरात्र काल का अर्धकाल रूप से पृथक् है इस प्रकार असंपूर्त्ति अर्थात् संपूर्णता का अभाव समझना चाहिये। यह घटिका न्यून होने पर परभाग में जब संक्रान्ति होती तब भावी सूर्योदय में प्रत्यासन्न अर्थात् संलग्न दिनार्ध पुण्य काल है। इस प्रकार अर्थ दूसरा (द्वितीय) श्लोक में गुंफित है। घटिका न्यून होने के कारण जब असंपूर्ण अर्धरात्र का पूर्व भाग में संक्रमण होता है, तब दिवाभाग में संक्रमण का आगमन न होने पर भी उस दिवस का उत्तरार्ध पुण्यकाल के रूप से माना जाता है। जब संपूर्ण अर्धरात्र के दो घटिकाओं के अवसर पर निशीथ में संक्रमण होता है तब पूर्व और उत्तर दिन पुण्यकाल के रूप में व्यवहृत होते हैं ऐसा जानना चाहिये। निशीथ के पर अतिरिक्त काल में संक्रान्ति होने पर दूसरा दिन का पूर्वार्ध पुण्य है। देवल ने भी कहा है—

आसन्नसंक्रमं पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः।
रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्ययने दिने ॥ इति।

अयमर्थः—रात्रौ भानोः संक्रमणे विषुवन्नामके जाते सति संक्रमण प्रत्यासन्नदिनार्धं पुण्यम्। तत्र पूर्वरात्रसंक्रमणे पूर्वदिनस्योत्तरार्धं पुण्यम्। अपररात्रसंक्रमणे परदिनस्य पूर्वार्धमित्यवगन्तव्यम्। अयने अयननामके भानोः संक्रमणे दिवा जाते सति यथायोगं तद्दिनार्धं पुण्यं द्रष्टव्यम्। कर्कटे पूर्वार्धं मकरे उत्तरार्धम्। एतच्च मध्यन्दिनायन-विषयम्। उदयास्तमयप्रत्यासन्ने त्वयने पूर्वोत्तरभागप्राशस्त्यबाधया कृत्स्नदिवसपुण्यत्वनिर्णयः पूर्वमेवोक्तः। अयनव्यतिरिक्तेषु दशसु संक्रमणेषु रात्रिगतेषु यो निर्णयस्तं सर्वं पर्युदसितुं तद्वचःशेषः "मुक्त्वा मकरकर्कटौ" इति वर्णितम् ॥

संक्रमण आसन्न होने पर स्नान और दान के लिये दिनार्ध पुण्य है। विष्णु नामक सूर्य के संक्रमण रात में होने पर और अयन संक्रान्तिओं में भी ऐसी स्थिति है।

इसका तात्पर्य यह है—रात में सूर्य के संक्रमण होने पर विषुव संक्रान्ति में संक्रमण का प्रत्यासन्न दिनार्ध पुण्य है। वहाँ पूर्वरात्र में संक्रमण होने पर पूर्वदिन का उत्तरार्ध पुण्य होता है। अगर रात में अर्थात् रात के अपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाग में संक्रमण होने पर परदिन के पूर्वार्ध पुण्य काल के रूप में अवगत होना चाहिये। अयन में अर्थात् अयन नामक भानु के संक्रमण दिवाभाग में होने से योग के अनुसार उस दिनार्ध के रूप में पुण्य काल में माना जाता है। कर्कटसंक्रान्ति में पूर्वार्ध और मकरसंक्रान्ति में उत्तरार्ध पुण्यकाल है। यह मध्यदिन (मध्याह्न) अयन का विषय है। अयन उदय या अस्तमय का प्रत्यासन्न होने पर पूर्व और उत्तर भाग का प्राशस्त्य की बाधा से संपूर्ण दिनका पुण्यत्व को लेकर होनेवाला निर्णय पहले कहा गया है। अयन को छोड़कर दूसरे दस संक्रमण रात में होने पर भी जो निर्णय किया है उन सब को पर्युदास ग्रस्त कराने के लिये इस वचन का अवशेष "मकर और कर्कट को छोड़कर" ऐसा वर्णित किया है।

"या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः" पुण्यतमाः इत्युक्तेन सामान्य-वचनेन सर्वेषु रात्रिसंक्रमणेषु रात्रावेवानुष्ठानं प्रसक्तं, तदपोह्य दशसु संक्रान्तिषु दिवाऽनुष्ठानं विधाय मकरकर्कटयोस्तत्पर्युदासे सति पूर्व-प्रसक्तं रात्रावनुष्ठानमेव पर्यवस्यति। एवं सति रात्रौ संक्रान्तिस्नान-मभ्युपगच्छतो याज्ञवल्क्यवचनस्यापि कश्चिद्विषयः संपद्यते। तथा च याज्ञवल्क्यः[1]—

राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु।
स्नानदानादिकं कार्यं निशिकाम्यव्रतेषु च॥ इति।

सुमन्तुरपि—

रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः।
नैमित्तिकं च कुर्वीत स्नानं दानञ्च रात्रिषु॥
यज्ञे विवाहे यात्रायां तथा पुस्तकवाचने।
दानान्येतानि शस्तानि रात्रौ देवालये तथा॥
ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्राऽऽर्त्तिप्रसवेषु च।
श्रवणे चेतिहासस्य रात्रौ दानं प्रशस्यते॥ इति।

"जो जो नाडियां सन्निहित हैं, वे पुण्यतम होती हैं" इस सामान्य वचन के द्वारा सब रात्रि संक्रमणों में रात में ही अनुष्ठान प्रसक्त हैं, उसको उपोद्दलन कर दस संक्रान्तिओं में दिन में अनुष्ठान करके मकर और कर्कट संक्रान्ति में पर्युदास करने पर पूर्व से प्रसक्त रात में अनुष्ठान का पर्य-

---

१. मुद्रित या० स्मृ० नास्ति । नि० सि० विष्णु-गाभिलवचनत्वेन पाठः, पृ० ११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वसान होता है। ऐसे होने से रात में संक्रान्ति स्नान को अभ्युपगम सिद्धान्त के द्वारा बतलाने वाला याज्ञवल्क्य वचन का भी कुछ विषय आ जाता है। याज्ञवल्क्य ने कहा है—

राहुदर्शन (ग्रहण या उपराग), संक्रान्ति, विवाह और नाश की वृद्धि स्थलों में और काम्य व्रतों में भी रात में स्नान और दान किया जाता है। सुमन्तु ने भी कहा है—

रात में स्नान नहीं किया जाता है। विशेषतः दान नहीं किया जाता है। किन्तु रात में नैमित्तिक स्नान और दान किये जाते हैं। यज्ञ, विवाह, यात्रा और पुस्तक वाचन के अवसर पर रात में और देवालय में भी ये दान प्रशस्त हैं। ग्रहण, उद्वाह, संक्रान्ति, यात्रा, आर्त्ति (दुःख की अवस्था), प्रसव और इतिहास (पुराण) श्रवण के अवसर पर रात में दान प्रशस्त है।

ननु यथोक्तपर्युदासानुगृहीतैः पुण्यतमत्ववादि-देवल-याज्ञवल्क्य-सुमन्तुवचनैर्मकरकर्कटयो र्निश्यनुष्ठानप्रापणं शास्त्रान्तरेण विरुद्धम्। तथा च भविष्योत्तरे—

मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः।
प्रभाते वा निशीथे वा कुर्यादहनि पूर्वतः॥
कार्मुकन्तु परित्यज्य झषं संक्रमते रविः।
प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥ इति

वृद्धगार्ग्योऽपि—

यदाऽस्तमयवेलायां मकरं याति भास्करः।
प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा स्नाने दानं परेऽहनि॥
अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रान्तौ दक्षिणायने।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः॥ इति

नैवम्। भविष्योत्तरवृद्धगार्ग्यवचनेषु रात्र्यनुष्ठानप्रतिषेधस्याप्रतीतेः। दिवसानुष्ठानविधानेनैवार्थात् रात्र्यनुष्ठानप्रतिषेधकल्पने च पर्युदासानुगृहीतवचनानामानर्थक्यं प्राप्नोति। तस्माच्छास्त्रद्वयेन विकल्पप्राप्तौ तत्तद्देशप्रसिद्धशिष्टाचारेण व्यवस्था द्रष्टव्या। यथोक्तानां द्वादशसंक्रान्तीनां यथोक्तेषु पुण्यकालेषु मन्दादिसंज्ञोपजीवनेन कश्चिद् विशेषो देवीपुराणे दर्शितः'—

यहाँ एक प्रश्न होता है कि प्रर्युदास से पुण्यतमत्व के बारे में कहने

१. देवीपुराणम् --२५।२–६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाले देवल, याज्ञवल्क्य और सुमन्तु के वचनों के द्वारा मकर और कर्कट संक्रान्ति में रात में अनुष्ठान विषय दूसरे शास्त्रों से विरुद्ध होता है। इसके बारे में भविष्योत्तर पुराण में कहा है—

मिथुन से कर्कट को अंशुमाली अर्थात् सूर्य की जो संक्रान्ति प्रभात में या निशीथ में होती है, उस स्थल में पूर्वदिन में अनुष्ठान किया जाता है। कार्मुक अर्थात् धनु को छोड़कर रवि अगर मकर को प्रदोष या अर्धरात्र में जाते हैं तो स्नान और दान दूसरे दिन में होते हैं। वृद्ध गार्ग्य ने भी कहा है—

जब अस्तमय समय सूर्य मकरराशि को प्रदोष या अर्धरात्र में जाते हैं, तो दूसरा दिन में स्नान और दान होते हैं। अर्धरात्र से ऊर्ध्व काल में दक्षिणायन में संक्रान्ति होने पर पूर्वदिन गृहीत होता है जब तक सूर्योदय नहीं होता।

किन्तु यह ठीक नहीं है। भविष्योत्तरपुराण और वृद्धगार्ग्यवचनों से रात्रि में होनेवाला अनुष्ठान का प्रतिषेध के बारे में कुछ प्रतीति नहीं होती हैं। दिवस में अनुष्ठान का विधान होने से अर्थात् रात से अनुष्ठान का प्रतिषेध की कल्पना करने पर पर्युदास से अनुगृहीत होनेवाले वचनों का आनर्थक्य आ जाता है। इस प्रकार दो शास्त्रों से विकल्प की प्राप्ति होने पर उस उस देश में प्रसिद्ध शिष्टाचार की व्यवस्था देखनी चहिये। कही गई बारह संक्रान्तिओं का पुण्य कालों के बारे में मन्दादि संज्ञा को लेकर कुछ विशेष देवी पुराण में प्रदर्शित किया है—

द्वादशैव समाख्याताः समासंक्रान्तिकल्पनाः।
सप्तधा तु[1] प्रबोद्धव्या एकैकैव यथा श्रृणु॥
मन्दा मन्दाकिनी ध्वांक्षी घोरा चैव महोदरी।
राक्षसी मिश्रिता प्रोक्ता संक्रान्तिः सप्तधा ध्रुवम्[2]॥
मन्दा ध्रुवेषु विज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा।
क्षिप्रे ध्वांक्षीं विजानीयादुग्रे[3] घोरा प्रकीर्त्तिता॥
चरे[4] महोदरी ज्ञेया क्रूरे ॠक्षैस्तु राक्षसी।

---

१. सा तु बोद्धव्या इति दे० पु० पा०

२. नृप इति दे० पु० पाठः

३. उग्रैः इति दे० पु० पाठः

४. चरैः इति दे० पु० पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिश्रिता चैव विज्ञेया[1] मिश्रर्क्षैस्तु[2] संक्रमे ॥
द्विचतुः[3] पञ्चसप्ताष्ट-नव द्वादश एव च ।
क्रमेण घटिका ह्येतास्तत्पुण्यं पारमार्थिकम् ॥ इति ।

अत्र समाशब्दः संवत्सरवाची । समासंबन्धिन्यः संक्रान्तिकल्पना मेषादीनां द्वादशैव समाख्याताः । तासु द्वादशसंक्रान्तिष्वेकैका मन्दादिभिर्नामभि र्व्यवहार्या । तानि च नामानि नक्षत्रविशेषोपजीवनेन प्रवृत्तानि । तद्यथा ध्रुवेषु नक्षत्रेषु प्रारब्धा संक्रान्तिर्मन्दा । एवं मृदुक्षिप्रादिनक्षत्रेषु प्रारब्धा सक्रान्तिः क्रमेण मन्दाकिनी-ध्वांक्ष्यादिनामभाग् भवति ।

एक संवत्सर में बारह संक्रान्ति की कल्पना होती है । उनको सात भागों में विभक्त की जाती है । एक-एक भाग के बारे में सुनिये । मन्दा, मन्दाकिनी, ध्वांक्षी, घोरा, राक्षसी और मिश्रिता संज्ञा से संक्रान्ति के सात भेद हैं । ध्रुव नक्षत्रों में मन्दा, मृदु में मन्दाकिनी, क्षिप्रा में ध्वांक्षी, उग्र में घोरा, चर में महोदरी क्रूरों में राक्षसी और मिश्र में मिश्रिता संज्ञक संक्रान्ति होती है । दो, चार, पांच, सात, आठ, नौ और बारह घटिका क्रमानुसार इन संक्रान्तिओं का पारमार्थिक पुण्यकाल है ।

यहां समा शब्द संवत्सर का अर्थ सूचित करता है । समा अर्थात् संवत्सर का सम्बन्ध से मेष प्रभृति संक्रान्तिओं की तरह संज्ञा आख्यान की जाती है । उन बारह संक्रान्तिओं में से एक एक संक्रान्तिक मन्दाकिनी प्रभृति नाम से व्यवहार होता है । उन सब नाम नक्षत्र विशेष को उपजीव्य कर प्रवृत्त है । यथा—ध्रुव नक्षत्रों में शुरू हुई संक्रान्ति मन्दा है । इस प्रकार मृदु क्षिप्र प्रभृति नक्षत्रों में प्रारब्ध हुई संक्रान्ति क्रमानुसार मन्दाकिनी और ध्वांक्षी आदि नाम को धारण करती है ।

रोहिण्युत्तरात्रयं चेति चत्वार्य्येतानि नक्षत्राणि ध्रुवाणि । रेवतिचित्राऽनुराधामृगशीर्षाणि चत्वारि मृदूनि । हस्ताश्विनीपुष्याभिजिन्नक्षत्राणि चत्वारि क्षिप्राणि । भरणी पूर्वात्रयं मघा चेत्येतानि पञ्चोग्राणि । श्रवण-पुनर्वसु-शतभिषक्-धनिष्ठा-स्वात्याख्यानि पञ्च चराणि । आश्लेषा मूलार्द्राज्येष्ठानि चत्वारि क्रूराणि । कृत्तिका-विशाखाऽश्विन्याख्यानि मिश्राणि । सेयं सप्तधा नक्षत्रव्यवस्था ज्योतिर्ग्रन्थे मुहूर्त्तविधानसारे पठिता—

---

१. निर्दिष्टा इति दे० पु० पाठः ।

२. मिश्रिताक्षैंस्तु दे० पु० पाठः । ३. त्रि इति दे० पु० पाठः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षिप्रञ्च स्थिरमुग्रञ्च दारुणं चरमेव च।
मृदु साधारणं ऋक्षं सप्त भेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥
कराश्विनी वाक्पतिभं तथाऽभिजि—
लघूनि पुण्ये गमने विभूषणे ।
हिरण्यगर्भाधिपमुत्तरात्रयं
ध्रुवाख्यमेतद्धि तथाऽनुनामतः ॥
युतं भरण्या सह पूर्विकात्रयं
मघा तथोग्राख्यमिदं भपञ्चकम् ।
जङ्गमं नैर्ऋतमैन्द्रमार्द्रा
भवन्ति तीक्ष्णानि हि तानि सर्वदा ॥

रोहिणी और तीनों उत्तरा (उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनि और उत्तरभाद्रपद) ये चार नक्षत्र ध्रुव नाम से अभिहित हैं। रेवती, चित्रा, अनुराधा और मृगसिरा इन चार नक्षत्रों को मृदुनाम से; हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् इन चार को क्षिप्र नाम से; भरणी, तीनों पूर्वा (पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपद और पूर्वफाल्गुनि) और मघा ये पांच उग्र नाम से; श्रवणा, पुनर्वसु, शतभिषक् धनिष्ठा और स्वाती—ये पांच चर नाम से; अश्लेषा, मूला, आद्रा और ज्येष्ठा ये चार क्रूर नाम से और कृत्तिका, विशाखा, और अश्विनी—ये तीन मिश्र नाम से अभिहित हैं। सात प्रकार की यह नक्षत्र व्यवस्था ज्योतिष ग्रन्थ मुहूर्त्त विधानसार में पठित है। यथा—

क्षिप्र, स्थिर, उग्र, दारुण, चार मृदु और साधारण इन सात नक्षत्रों का भेद है। कर (हस्त), अश्विनी, वाक्पतिभ (पुष्य) और अभिजित लघु नक्षत्र होकर गमन और विभूषण के लिए पुण्य है। हिरण्यगर्भाधिप (रोहिणी) और तीनों उत्तरा (उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनि और भाद्रपद)—ये चार ध्रुव नक्षत्र हैं। भरणी के साथ पूर्वा तीनों (पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, पूर्वफाल्गुनि) नक्षत्र और मघा ये पांच उग्र नक्षत्र हैं। जंगम (मूल), नैऋत (अश्लेषा) ऐन्द्र (ज्येष्ठा) और आद्रा तीक्ष्ण नक्षत्र हैं।

चराणि पञ्च श्रवणं पुनर्वसू
जलेशभं वासवमानिलं तथा।
मृदूनि पौष्णं सुरवर्द्धकीश्वरं
तथाऽनुराधाऽमृतरश्मिदैवतम् ॥
हुताशनर्क्षेण सह द्विदैव
मुशन्ति साधारणसंज्ञमस्मिन् ॥ इति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथोक्तनक्षत्रविशेषोपजीवनेन प्रवृत्तै र्मन्दादिभिः सप्तनामभिर्युतमेषादिसंक्रान्तौ क्रमेण द्विचतुरित्यादिसप्तविधसंख्यानाड्यः पुण्या इति यदुक्तं तत्र नास्ति सन्देह इत्यस्मिन्नर्थे पारमार्थिकशब्दः प्रयुक्तः। मन्दायां प्रत्यासन्नं घटिकाद्वयं पुण्यं मन्दाकिन्यां घटिकाचतुष्टयं ध्वाङ्क्ष्यां पञ्चकं घोरायां सप्तकं, महोदर्यामष्टकं, राक्षस्यां नवकं मिश्रितायां द्वादशकम्। मेषसंक्रान्तावुदाहृतः सोऽयं प्रकारो वृषभादिष्वेकादशसु संक्रान्तिष्वनुसन्धेयः।

देवीपुराणोदाहरणात् प्राचीनग्रन्थे तत्तत् संक्रान्तिषु यः पुण्यकालो निर्णीतस्तस्मिन् काले देवीपुराणोक्तो द्विचतुरित्यादिकः पुण्यातिशयप्रतिपादको विशेषो द्रष्टव्यः। निर्णीतेषु संक्रान्त्यादीनां पुण्यकालेषु यत्कर्त्तव्यं स्नानदानादिकं तत् सर्वमेव शातातपवचनद्वयेनोदाहृतम्।

पांच चर नक्षत्र श्रवण, पुनर्वसु, शतभिषा, धनिष्ठा और स्वाती; मृदु नक्षत्रों—रेवती, चित्रा, अनुराधा मृगशिरा, कृत्तिका और अश्विनी ये साधारण संज्ञक हैं।

उक्त प्रकार विशेषत्व को उपजीव्य कर प्रवृत्त मन्दादि सात नामों के द्वारा मेष प्रभृति संक्रान्तिओं में क्रमानुसार दो, चार ऐसे सात संख्यक नाड़ियाँ पुण्य हैं ऐसा जो कहा गया है, उसमें सन्देह नहीं है। इस अर्थ में पारमार्थिक शब्द का प्रयोग किया गया है। मन्दा में प्रत्यासन्न दो घटिका पुण्य है, मन्दाकिनी में चार घटिका, ध्वांक्षी में पांच, घोरामें सात, महोदरी में आठ, राक्षसी में नौ और मिश्रिता में बारह घटिका पुण्य काल हैं। मेष-संक्रान्ति में उदाहृत यह प्रकार वृष प्रभृति ग्यारह संक्रान्तिओं में लगता है।

देवीपुराण के उदाहरण से प्राचीन ग्रन्थ में उन संक्रान्तिओं के जो पुण्यकाल निर्णीत किये गये हैं, उन काल में देवीपुराणोक्त "द्विचतुः" इस वचन से अतिशय पुण्य को प्रतिपादित करनेवाला विशेष द्रष्टव्य है। संक्रान्तिओं के निर्णीत पुण्य कालों में स्नान और दान प्रभृति जो कर्त्तव्य है, ये सब शातातप के दो वचनों में उदाहृत किये गये हैं।

ब्रह्मपुराणेऽपि—

नित्यं द्वयोरयनयोस्तथा विषुवतोर्द्वयोः।
चन्द्रार्कयो र्ग्रहणयोर्व्यतीपातेषु पर्वसु॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अहोरात्रोषितः स्नानमर्घ्यं दानं तथा जपम् ।
यः करोति प्रसन्नात्मा तस्य स्यादक्षयञ्च तत् ॥
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
कृतोपवासः सुस्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति ।

वसिष्ठोऽपि—

उपोष्यैव तु संक्रान्तौ स्नातो योऽभ्यर्चयेद् रविम् ।
प्रातः पञ्चोपचारेण स काम्यं फलमश्नुते ॥
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
त्रिरात्रोपोषितनरः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
स्नात्वा यः पूजयेदीशं सर्वान् कामान् समश्नुते ।
सप्तोपोष्य रवे वारानादौ स्नात्वा तु संक्रमे ॥
अर्कमभ्यर्चयेद्यस्तु सोऽदुःखी सुखमश्नुते ॥ इति ।

शातातपः—

अयानादौ सदा ज्ञेयं द्रव्यं नित्यं गृहे च यत् ।
षडशीतिमुखे चैव मोक्षे वै चन्द्रसूर्ययोः ॥ इति ।

ब्रह्मपुराण में भी कहा है—

दो अयन, दो विषुव, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण, व्यतीपात और पर्व में अहोरात्र उपवास कर जो प्रसन्नात्मा स्नान, दान और जप करता है, उसका पुण्य अक्षय है। अयन, विषुव, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में उत्तम स्नान पूर्वक जो उपवास करता है, वह सब पापों से मुक्त होता है।

वसिष्ठ ने भी कहा है —

"जो प्रातः स्नान करके उपवास पूर्वक पांच उपचारों से रवि की अर्चना करता है, वह काम्य फल पाता है। अयन, विषुव और चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में तीन रात तक उपवास पूर्वक व्रत करने से सब पापों से मुक्त होता है। जो स्नान करके ईश को पूजता है वह सब कामना को सिद्ध करता है। रविवार में सात बार स्नान पूर्वक उपवास करके जो अर्क की अर्चना करता है, वह अदुःखी होकर सुख पाता हैं।

शातातप ने कहा है—अयन षडशीति का प्रारंभ में और चन्द्र-सूर्य के मोक्ष में सर्वदा घर में द्रव्य दान किया जाता है।

उक्तस्य स्नानदानादिकर्त्तव्यस्य संक्रान्तिविशेषमुपजीव्य काल-विशेषमाह शातातपः—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुर्यात् सदाऽयने मध्ये विष्णुपद्यां विषुवति ।
षडशीत्यामन्तभागे स्नानादिविधिमादृतः ॥ इति ।

गालवोऽपि—

मध्ये विषुवति दानं विष्णुपदे दक्षिणायने चादौ ।
षडशीतिमुखेऽतीते तथोद्गयने च भूरिफलम् ॥ इति ।

अयनादिषु यत्र यावान्पुण्यः कालः पूर्वं निर्णीतस्तत्र तावन्तं कालं त्रेधा विभज्य मध्ये विषुवतीत्याद्यवगन्तव्यम् । तस्मिन्नपि मध्यादि भागे सन्निहितानां नाडीनां पूर्वोदाहृतवचनेन पुण्यतमत्वं द्रष्टव्यम् । संक्रान्तिषु फलमाह भरद्वाजः—

षडशीत्यां तु यद्दानं यद्दानं विषुवद्वये ।
दृश्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव दृश्यते ॥ इति ।

वृद्धवसिष्ठः—

अयने कोटिपुण्यं च सहस्रं विषुवे फलम् ।
षडशीत्यां सहस्रं तु फलं विष्णुपदेषु च ॥ इति ।

संक्रान्ति विषय को उपजीव्य कर कहा गया स्नान, दानादि कर्त्तव्य काल विशेष के बारे में शातातप ने कहा है—

अयन के बीच में विष्णुपदी, विषुव और षडशीति के अन्त भाग में स्नानादिकार्य आदर पूर्वक किया जाता है ।

गालव ने भी कहा है—विषुव संक्रान्ति के बीच में विष्णुपद और दक्षिणायन संक्रान्ति के प्रारंभ में, षडशीति का मुख में, उत्तरायण में अयन काल अतीत होने पर दान करने से अधिक फल मिलता है ।

अयन प्रभृति संक्रान्ति में जहाँ जितना पुण्य पहले निर्णीत किया गया है, उतना काल को तीन भागों से विभक्त कर विषुव के बीच में इस प्रकार समझना चाहिये । उस मध्यादि (बीच में) भाग में पहले कहा गया वचन के द्वारा सन्निहित नाडी पुण्यतम के रूप से देखना है ।

भरद्वाज ने संक्रान्ति में होनेवाला फल के बारे में कहा है—

षडशीति में जो दान किया जाता है और जो दान दो विषुवों में कहा है, उसका अन्त नहीं दिखाई पड़ता है किन्तु सागर का अन्त (समाप्ति) दिखाई पड़ता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—अयन में करोड संख्यक पुण्य, विषुव में हजारों फल षडशीति और विष्णुपदों में भी हजारों फल मिलते हैं।

मेषादिसंक्रान्तयो यस्मिन् दिने भवन्ति तस्माद्दिनात् पूर्वेभ्य एकादशदिनेभ्यः प्राचीने दिने मेषायनं वृषायनमित्येवं तत्तन्नामाङ्कितमयनं भवति। तस्मिन्नयने स्नानादिषु पुण्यकालमाह जाबालिः—

संक्रान्तिषु यथाकालस्तदीयेऽप्ययने तथा।
अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा॥ इति।

मकरव्यतिरिक्तैकादशसंक्रान्तिसन्धिषु अयनेषु तत्तत्संक्रान्तिवत् पुण्यकालोऽवगन्तव्यः। मकरसंक्रान्तिसबन्धिनि त्वयने संक्रान्तिवैलक्षण्यम्। तद्यथा—मकरायने प्राचीना विंशतिघटिकाः पुण्याः, मकरसंक्रान्तौ तु पाश्चात्या विंशतिघटिकाः पुण्याः। न केवलमादित्यस्यैव संक्रमायने पुण्यकालः, किं तु सर्वेषामपि ग्रहाणां नक्षत्रराशिसंक्रमं पुण्यकालो भवति। तदुक्तं ज्योतिःशास्त्रे—

नक्षत्रराश्यो रविसंक्रमे स्यु-
र्वाक् परस्ताद्रसचन्द्रनाड्यः।
पुण्यास्तिथेन्दोस्त्रिधरापलैर्युग्
एकैव नाडी मुनिभिः शुभोक्ता॥

मेष प्रभृति संक्रान्ति जिस दिन में होती है, उस दिन से पहला ग्यारहवां दिन में मेषायन और वृषायन इस प्रकार उन नामों से नामांकित अयन होता है। उस अयन में स्नानादि के लिए पुण्यकाल के बारे में जाबालि ने कहा है—

संक्रान्तिओं में काल जैसे उनके अयन में भी वैसे हैं। अयन में पहली बीस घटिका और मकरसंक्रान्ति में परवर्ती बीस घटिका पुण्य है।

मकर को छोड़कर दूसरी ग्यारह संक्रान्तिओं के सम्बन्धी अयनों में उस संक्रान्ति की तरह पुण्य काल समझना चाहिये। मकरसंक्रान्ति के सम्बन्धी अयन में संक्रान्ति की कुछ विलक्षणता है। यथा—मकर अयन में पहली बीस घटिका पुण्य है, किन्तु मकर-संक्रान्ति में तो परवर्ती बीस घटिका पुण्य हैं। यह पुण्य काल केवल सूर्य-संक्रमण का अयन में है ऐसा नहीं किन्तु सब ग्रहों का नक्षत्र और राशि में संक्रमण जनित पुण्यकाल है। यह विषय ज्योतिषशास्त्र में कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नक्षत्र और राशि में रवि का संक्रमण होने पर पूर्व और पर रस (६) चन्द्र (१) १६ नाड़ीपुण्य काल है। चन्द्र की त्रि = ३, धरा = १ = १३ और एक घटिका पूर्व और पर पुण्य काल है, ऐसा मुनियों ने कहा है।

नाड्यश्चतस्रः सपलाः कुजस्य बुधस्य तिस्रः पलविश्वयुक्ताः।

[1]सार्धाश्चतस्रो घटिकाः पलानि गुरोस्तु सप्तैव भृगोश्चतस्रः॥

नाड्यः पलैकं घटिका द्व्यशीतिः पलानि सप्तैव शनैश्चरस्य।

आद्यन्तमध्ये जपहोमदानं कुर्वन्नवाप्नोति सुरेन्द्रधाम॥ इति।

अयमर्थः—आदित्यस्य राशिनक्षत्रगमने अर्वाक् परतश्च षोडशघटिकाः पुण्यकालः। तथा चन्द्रस्यापि घटिकैका पलानि त्रयोदशार्वाक् परतश्च पुण्यकालः। एवं मङ्गलस्य घटिकाश्चतस्रः पलमेकश्च पुण्यकालः। तथा बुधस्य तिस्रो घटिकाश्चतुर्दश पलानि पुण्यकालः। बृहस्पतेरपि सार्धचतस्रो घटिकाः सप्तपलानि पुण्यकालः। शुक्रस्य चतस्रो घटिकाः पलमेकञ्च पुण्यकालः। शनैश्चरस्य द्व्यशीतिघटिकाः पलानि सप्त पुण्यकालः। स्कान्दे नागरखण्डे—

एकान्ते ते मया प्रोक्ताः कालाः संक्रान्तिपूर्विकाः।
नैतेषु विद्यते विघ्नो यताश्चाक्षयसंज्ञिताः॥
अश्रद्धयाऽपि यद्दत्तं कुपात्रेभ्योऽपि मानवैः।
अकालेऽपि हि तत् सर्वं सत्यमक्षयतां व्रजेत्॥ इति

इति संक्रान्तिनिर्णयः॥

कुज (अर्थात् मंगल) की एक पल के साथ चार नाड़ी पुण्य काल है। बुध की तीन घटिका और (विश्व) १४ पल पारिमाण पुण्य काल है। गुरु (बृहस्पति) की सात, भृगु (शुक्र) की चार घटिका और एक पल तथा शनि की ८२ घटिका और सात पल पुण्य काल है। इस पुण्य काल के आदि और अन्त के बीच में जप, होम और दान करने से सुरेन्द्रधाम (स्वर्ग) मिलता है।

इसका तात्पर्य यह है—सूर्य के राशि और नक्षत्र के गमन में पूर्व और पर सोलह घटिका पुण्य काल है। उसी प्रकार चन्द्र का भी एक घटिका और

---

१. अध्यर्धनाड्यः पलसप्तयुक्ता
गुरोश्चतस्रः सपलाश्च शुक्रे।
द्विनागनाड्यः पलसप्तमुक्ताः
शनैश्चरस्याभिहिताश्च पुण्याः॥ इति 'ख' पु० पाठः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१३ पल पूर्व और परवर्त्ती भाग में पुण्य काल है। मङ्गल की चार घटिका और एक पल पुण्य काल है। बुध का ३ घटिका और १४ पल पुण्य काल है। बृहस्पति का भी सार्ध ४ घटिका और सात पल पुण्य काल है। शुक्र का चार घटिका एक पल पुण्य काल है। शनि का ८२ घटिका और सात पल पुण्य काल है। स्कन्दपुराण का नागर खण्ड में कहा है—

एकान्त में संक्रान्तिपूर्विका काल मैने कहा है। इस काल की संज्ञा अक्षय है। इसलिये इसमें कोई विघ्न नहीं होता है। मानव द्वारा श्रद्धाहीन-भाव से कु(बूरा)पात्र को अकाल में भी जो दिया जाता है, यह सब सत्य होकर भी अक्षय हो जाता है।

इस प्रकार संक्रान्ति का निर्णय हुआ॥

अथ [१]ग्रहणं निर्णीयते

तत्र वृद्धगार्ग्यः—

पूर्णिमाप्रतिपत्-सन्धौ राहुः संपूर्णमण्डलम्।
ग्रसते चन्द्रमर्कञ्च दर्शप्रतिपदन्तरे॥ इति।

तत्र पर्वणोऽन्तभागः स्पर्शकालः प्रतिपद आद्यो भागो मोक्षकालः। तदुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—

यावान् कालः पर्वणोऽन्ते तावान् प्रतिपदादिभिः।
रवीन्दुग्रहणानेहा स पुण्यो मिश्रणाद् भवेत्॥ इति।

ग्रहणानेहा राहुग्रहणकालः तत्र कर्त्तव्यमाह वृद्धवसिष्ठः—

गङ्गातोये तु संप्राप्ते इन्दोः कोटी रवे र्दश।
गवां कोटिप्रदानेन सम्यग्दत्तेन यत्फलम्॥
गङ्गास्नाने तत्फलं स्याद्राहुग्रस्ते निशाकरे।
दिवाकरे पुनस्तत्र दशसंख्यमुदाहृतम्॥ इति।

अस्य श्लोकद्वयस्य प्रथमार्धमपेक्षितपदाध्याहारेण योजनीयम्। तद्यथा—इन्दोर्ग्रहणे संप्राप्ते सति गङ्गातोयेऽवगाहनं कोटिगोदानसमं

---

१. भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः॥ ...... इत्युपराग-कारणमुक्तमिदं दिगम्बराचार्यैः। राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः॥ इति ग्रहणकारणे बृहत्संहिता—५।८, १३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवति, रवेर्ग्रहणे ततो दशगुणं फलम्। अयमेवार्थः उपरितनार्धत्रयेण स्पष्टीकृतः।

अब ग्रहण का निर्णय हो रहा है। इस विषय में वृद्धगार्ग्य ने कहा है—

पूर्णिमा और प्रतिपद की सन्धि में और दर्श प्रतिपद की सन्धि में राहु, चन्द्र और सूर्य का जो संपूर्ण मंडल ग्रास करता है, वहां पर्व अर्थात् अमावास्या का अन्तभाग स्पर्श काल और प्रतिपद का आद्यभाग मोक्ष काल है। इसके बारे में ब्रह्मसिद्धान्त में कहा है—

प्रतिपदों के साथ मिश्रित होकर पर्व का अन्त में जितना काल है, उतना काल सूर्य और चन्द्र गहण का जनित काल पुण्य है।

'ग्रहणानेहा' का अर्थ राहु का ग्रहण काल है। उस समय में अनुष्ठित होनेवाला कर्त्तव्य के बारे में वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—

गङ्गा जल प्राप्त होने पर चन्द्र-ग्रहण में करोड़, सूर्योपराग में उससे दश गुणा और करोड़ गोदान करने से जितना पुण्य मिलता है, उतना फल राहुग्रस्त चन्द्र-ग्रहण में गङ्गा स्नान में मिलता है। राहुग्रस्त सूर्योपराग में फिर उनसे दस गुणा फल मिलता है।

इन दो श्लोकों का पहला अर्ध अपेक्षित पदों का अध्याहार करके संयोजित किया जाता है। यथा—चन्द्र-ग्रहण होने पर गङ्गा जल में स्नान करने से करोड़ गोदान के समान फल होता है। सूर्य-ग्रहण में उससे दस गुणा फल मिलता है। यह अर्थ ऊपर तीन आधा भागों के द्वारा (श्लोकका) स्पष्ट किया गया है।

व्यासोऽपि—

इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं ततः।
गङ्गातोये तु संप्राप्ते इन्दोः कोटी रवेर्दश॥
गवां कोटिप्रदानस्य यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं जाह्नवीस्नाने राहुग्रस्ते निशाकरे॥
दिवाकरे तु स्नातस्य दशसंख्यमुदाहृतम्।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव योऽवगाहेत जाह्नवीम्॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु किमर्थमटते महीम्॥

गङ्गाव्यतिरिक्तमहानदीतोये लक्षगुणदशलक्षगुणत्वम्। गङ्गातोये तु कोटिगुणत्वम्। ब्रह्मपुराणेऽपि—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिस्रो नद्यो महापुण्याः वेणी गोदा च जाह्नवी ।
गां हरीशाङ्घ्रिकात् प्राप्ता गङ्गा इतीह कीर्त्तिताः ।। इति ।

हरिश्चेशश्च हरीशौ । अङ्घ्रिः पादः, कं शिरः । अङ्घ्रिश्च कञ्च अङ्घ्रिकम् । हरीशयोरङ्घ्रिकम् तस्मात् हरेः पादादीश्वरस्य शिरसश्च गां भूमिं प्राप्ता गङ्गा । यद्यपि जाह्नव्येव तादृशी, न तु वेणीगोदे, तथापि छत्रिणो गच्छन्तीति न्यायेन जाह्नव्या सह निर्दिष्टयोस्तयोरपि गङ्गा-त्वमविरुद्धम् । यद्वा जाह्नवीजलमेव केनचिन्निमित्तेन ब्रह्मगिरिवायु-गिर्योरुद्भूतमिति कृत्वा तयोरपि मुख्यमेव गङ्गात्वम् । तासु गङ्गासु स्नानं मुख्यम् । तदसंभवे नद्यन्तरेषु स्नायात् । तदुक्तं महाभारते—

व्यास ने भी कहा है—

चन्द्र ग्रहण में लाख गुणा और सूर्य ग्रहण में उनसे दस गुणा पुण्य होता है । गङ्गा जल प्राप्त होने पर चन्द्र-ग्रहण में करोड़ गुणा पुण्य और सूर्यग्रहण में उनसे दस गुणा फल मिलते हैं । करोड़ गोदान में जितना फल मिलता है, उतना फल राहु ग्रस्त चन्द्र ग्रहण में जाह्नवी स्नान अर्थात् गङ्गा-स्नान से मिलता है । सूर्यग्रहण में स्नान करनेवाला चन्द्र-ग्रहण स्नान से दस संख्यक अधिक गुण फल पाता है । चन्द्र और सूर्य ग्रहण में जो गङ्गा स्नान करता है, वह सब तीर्थों में स्नान करता है । फिर वह क्यों मही पर्यटन करता ?

गङ्गा व्यतिरिक्त दूसरी महानदियों के जल में स्नान से लक्ष का दश लक्ष गुणा फल मिलता है । किन्तु गङ्गा में स्नान से करोड़ गुणा फल मिलता है । ब्रह्मपुराण में भी कहा है—

वेणी, गोदा (गोदावरी) और जाह्नवी (गंगा)—ये तीन महापुण्य देनेवाली नदियाँ हैं ।

हरि (विष्णु) का पैर से और ईश (शिव) का सिर से भूमिभाग को प्राप्त करने से गंगा के नाम से कीर्तित होती है । हरि और ईश हरीश ! अंघ्रि का अर्थ पाद और क का अर्थ सिर ! अंघ्रि और क अंघ्रिक ! हरि और ईश के अंघ्रिक ! उनसे अर्थात् हरि के पाद से और ईश्वर के सिर से गा अर्थात् भूमि को प्राप्त होनेवाली गङ्गा कहलाती है ।

यदि जाह्नवी इस प्रकार है, तो वेणी और गोदा नहीं है । तथापि छत्रि (छातावाले) जाते हैं इस न्याय से जाह्नवी के साथ निर्दिष्ट इन दोनों का भी गङ्गात्व का प्रतिपादन में कोई विरोध नहीं है । फिर जाह्नवी का जल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ कारण से ब्रह्मगिरि और वायुगिरि से उद्भूत हैं; इसलिये उनमें भी मुख्यरूप से गङ्गात्व है। और उन गङ्गाओं में स्नान मुख्य है। उनके अभाव में दूसरी नदी में स्नान करना है। इसके बारे में महाभारत में कहा है—

गङ्गास्नानं प्रकुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
महानदीषु वाऽन्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ इति।

महानद्यो ब्रह्मपुराणे [1]दर्शिताः—

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका।
तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्त्तिताः ॥
भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती।
विशोका च वितस्ता च विन्ध्यस्योत्तरतस्तथा[2] ॥ इति।

महानद्यसंभवे जलान्तराण्याह शंखः—

वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेषु च।
नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धृताम्बुनि ॥
उष्णोदकेन वा स्नायाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ इति।

एतत्सर्वमभिप्रेत्याह व्यासः—

सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः।
सर्वं भूमिसमं दानं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ इति।

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में गङ्गा में स्नान करते हैं। महानदी में या दूसरी नदियों में भी विधिपूर्वक स्नान करते हैं।

महानदियाँ ब्रह्मपुराण में प्रदर्शित की गई हैं—

विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा; वेणिका, तापी, और पयोष्णी (महानदी के रूप में) प्रसिद्ध हैं। उत्तर में भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता प्रसिद्ध हैं। महानदी के अभाव में दूसरे पानी में स्नान करने के लिये शंख ने कहा है—

---

१. ब्रह्मपुराणम् ७०।३२–३५

२. हिमवत्पर्वताश्रिताः इति पाठान्तरम्। अतः परं एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्थान्युदाहृताः। इति पाठः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वापी, कूप, तडाग, गिरि का प्रस्रवण, नदी, नद, देवखात, सरसि, उठा हुआ पानी और उष्णोदक में भी चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में स्नान करते हैं। इन सबको अभिप्रेत करके व्यासने कहा है—

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में सब पानी गङ्गा का पानी है, सब ब्राह्मण व्यास के समान हैं और सब दान भूमि-दान के समान है—

उष्णोदकस्यातुरविषयत्वं व्याघ्र आह[1] ।

आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतं च वह्निना ।
अतो व्याध्यातुरः स्नायाद् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा ॥ इति ।

गङ्गातोयमारभ्योष्णोदकान्तेषु उत्तरोत्तरस्यानुकल्पत्वमुक्तम् । एतदेवाभिप्रेत्योष्णोदकादिषु समुद्रजलान्तेषु उत्तरोत्तरस्य प्राशस्त्यमाह मार्कण्डेयः—

शीतमुष्णोदकात्पुण्यमपारक्यं परोदकात् ।
भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ॥
ततोऽपि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् ।
तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यम्बु पावनम् ॥
ततस्ततोऽपि गङ्गाम्बु पुण्यं[2] पुण्यस्ततोऽम्बुधिः ॥ इति ।

मासविशेषेण नदीविशेषो देवीपुराणे[3]ऽभिहितः—

कार्त्तिके ग्रहणं श्रेष्ठं गङ्गायमुनासङ्गमे ।
मार्गे तु ग्रहणं प्रोक्तं[3] देविकायां महामुने ॥
[4]पौषे तु नर्मदा पुण्या माघे सन्निहिता शुभा ।
फाल्गुने[5] वरणा पुण्या चैत्रे पुण्या सरस्वती ॥
वैशाखे तु महापुण्या चन्द्रभागा सरिद्वरा ।
ज्येष्ठे तु कौशिकी पुण्या आषाढ़े तापिका[6] नदी ॥

---

१. मुदितव्याघ्रस्मृतौ (B. O. R. I. १९८५) नास्ति । स्मृतिमुक्ताफलस्य अह्निककाण्डे (पृ० २७१) उद्ध्रियते ।
२. देवीपुराणम् ७४।११–१४
३. पुण्यम् इति दे० पु० पाठः
४. पुष्ये इति दे० पु० पाठः
५. ख्याता इति दे० पु० पाठः
६. भाविका इति दे० पु० पाठः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रावणे सिन्धुनामा तु तथा [1]भाद्रे तु गण्डकी ।
आश्विने सरयूः श्रेष्ठा [2]तथा पुण्या तु नर्मदा ॥ इति ।

रोगियों को उष्णोदकसे स्नान करने के लिये व्याघ्र ने कहा है —

सूर्य की किरणों से पवित्र (तपे हुए) या फिर आग से तपे पवित्र गरम जल से रोग-पीड़ित लोग स्नान करें अर्थात्—

सूर्य के किरणों से पवित्र, फिर अग्नि से पवित्र उष्णोदक अर्थात् गरम पानी से ग्रहण में आतुरलोगों को स्नान करना चाहिए ।

गङ्गा जल से लेकर उष्णोदक तक उत्तरोत्तरवर्त्ती अनुकल्प विधान के अनुसार मान लिया जाता है। इस अभिप्राय से उष्णोदक से समुद्र का पानी तक उत्तरोत्तर के प्रशस्त मार्कण्डेय ने प्रदर्शित किया गया है—

गरम पानी से ठंडा पानी उत्तम एवं पुण्य हैं। दूसरा पानी से अपना पानी पुण्य हैं। उठा हुआ पानी से भूमि में रहनेवाला पानी पुण्य है। उससे प्रस्रवण पानी, फिर उससे सरसी में रहनेवाला पानी, फिर उससे नदी का पानी, फिर उससे तीर्थ जल; फिर उससे महानदी का पानी, फिर उससे गङ्गाजल और समुद्र का पानी सबसे पुण्यतम है।

मास विशेष और नदी विशेष को लेकर देवीपुराण में कहा है—

कार्त्तिक में ग्रहण होने पर गङ्गा और यमुना के संगम में स्नान श्रेष्ठ है। मार्गशीर्ष में देविका, पौष में नर्मदा, माघ में सन्निहित जो कोई नदी, फाल्गुन में वरणा, चैत्र में सरस्वती, वैशाख में महापुण्या चन्द्रभागा, ज्येष्ठ में कौशिकी, आषाढ़ में तापिका (तापी), श्रावण में सिन्धु, भाद्रपद में गंडकी और आश्विन में सरयू और नर्मदा पुण्यदायिनी हैं।

ग्रहणविशेषे नदीविशेषस्तत्रैवाभिहितः —[3]

गोदावरी महापुण्या चन्द्रे राहुसमन्विते ।
सूर्य्ये च राहुणा[4] ग्रस्ते तमोभूते महामुने ॥
नर्मदातोयसंस्पर्शे[5] कृतकृत्या भवन्ति हि ॥ इति ।

स्नानवत्स्मरणादिष्वपि [6]पुण्यमाह—

---

१. प्रोष्ठे श्रेष्ठा इति दे० पु० पाठः २. भूयः इति दे० पु० पाठः

३. देवीपुराणम् ७४।१५–१६

४. शशिना ग्रस्ते तमोभूते—इति दे० पु० पाठः

५. संस्पर्शात् इति दे० पु० पाठः

६. मुद्रितदेवीपुराणे (७४।१८–१९) तु इत्थं पाठः
स्नात्वा राजक्रतुं लेभे दृष्ट्वा गोदानजं फलम् ।
स्पृष्ट्वा गोमेधतुल्यन्तु पीत्वा सौत्रामणिं लभेत् ।
स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारणात् ॥ इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्मृत्वा शतक्रतुफलं दृष्ट्वाऽग्निष्टोमजं फलम् ।
स्पृष्ट्वा गोमेधपुण्यं तु पीत्वा सौत्रामणेर्लभेत् ॥
स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारितः ।
रविचन्द्रोपरागे च अयने चोत्तरे तथा ॥ इति ।

क्षेत्रविशेषमाह—

गङ्गा कनखलं पुण्यं प्रयागः पुष्करं तथा ।
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ इति ।

ग्रहणे श्राद्धं विहितं लिङ्गपुराणे—

व्यतीपातक्षणो यावान् चन्द्रसूर्यग्रहक्षणः ।
गजच्छाया तु सा प्रोक्ता पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ इति ।

[1]महाभारतेऽपि—

सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने ।
अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात् पङ्के गौरिव सीदति ॥ इति ।

ऋष्यश्रृङ्गोऽपि—

चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत् ।
तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥ इति ।

वहीं पर ग्रहण-विशेष और नदीविशेष के बारे में कहा है—

राहुग्रस्त चन्द्र-ग्रहण में गोदावरी महा पुण्यवती होती है । राहुग्रस्त सूर्यग्रहण में नर्मदा पुण्यवती होती है । उस अवसर में नर्मदा का जल स्पर्श से लोग कृतकृत्य होते हैं ।

स्नान की तरह स्मरण प्रभृति के द्वारा होनेवाला पुण्य के बारे में कहा है—

सूर्य और चन्द्र के ग्रहण में और उत्तरायण में भी स्मरण करके सौ क्रतुओं का फल, दर्शन करके अग्निष्टोम का फल, स्पर्श करके गोमेघ का पुण्य, पान करके सौत्रामणि का पुण्य और स्नान करके अश्वमेध का फल अनजाने मिलता है ।

क्षेत्र विशेष के बारे में कहा है—राहुग्रस्त सूर्योपराग में गङ्गा, कनखल, प्रयाग, पुष्कर और कुरुक्षेत्र महा पुण्य देनेवाले हैं ।

लिंगपुराण में ग्रहण श्राद्ध के बारे में कहा है—

व्यतीपात योग का क्षण में, चन्द्र और सूर्य ग्रहण का क्षण में और

---

१. केशववैजयन्त्यां लिंगपुराणवचनत्वेनोद्धृतम् । विष्णु स्मृ० ७७।७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गजच्छाया योग का क्षण में पितरों के उद्देश्य में देने से दत्त पदार्थ अक्षय होता है।

महाभारत में भी कहा है—राहु दर्शन अर्थात् ग्रहण में सर्वस्व देकर भी श्राद्ध किया जाता है। जो नास्तिकता से नहीं करता है वह पंक में फँसी गाय की तरह दुःख पाता है।

ऋष्यशृंग ने भी कहा है—चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में जो विधिपूर्वक श्राद्ध करता है; उसके जरिये विप्र के हाथ में सारी पृथ्वी दी जाती है ऐसा मान लिया जाता है।

विष्णुरपि[1]—

राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम्।
गुणवत्सर्वकामीयं पितृणामुपतिष्ठते ॥ इति

ग्रहणे रात्रावपि स्नानादे र्न निषेधः। तथा च शातातपः—

स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने।
आसुरी रात्रिरन्यत्र तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ इति।

देवलः—

यथा स्नानञ्च दानञ्च सूर्यस्य ग्रहणे दिवा।
सोमस्यापि तथा रात्रौ स्नानं दानं विधीयते ॥ इति।

श्राद्धं प्रकृत्य कूर्मपुराणे[2]—

नैमित्तिकं तु कर्त्तव्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
बान्धवानाञ्च मरणे नारकी स्यादतोऽन्यथा ॥

काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु ॥ इति।

वारविशेषयोगे फलातिशयमाह व्यासः—

रविग्रहः सूर्य्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा।
चूडामणिरिति ख्यातस्तदाऽनन्तफलं भवेत् ॥
वारेष्वन्येषु यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
तत्पुण्यं कोटिगुणितं ग्रासे चूडामणौ स्मृतम् ॥ इति।

---

१. विष्णुस्मृतिः ७७।९

२. संपूर्णवचनस्यावशेषो यथा—
अयने विषुवे चैव व्यतीपातेऽप्यनन्तकम्।
संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि।
नक्षत्रेषु च सर्वेषु कार्यं काम्यं विशेषतः ॥ कूर्मपुराणम्—५९३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विष्णु ने भी कहा है—

राहु दर्शन (ग्रहण) में दान किया हुआ चन्द्र और तारका का अवस्थिति काल तक सब कामना को पूरण कर पितरों के पास में पहुँच जाता है। ग्रहण में रात में भी स्नान प्रभृति का निषेध नहीं है। शतातप ने कहा है—

राहुदर्शन में स्नान, दान, तप और श्राद्ध का अन्त नहीं होता है। दूसरी रात (इसको छोड़कर) आसुरी है। इसलिये उनको छोड़ देना चाहिए।

देवल ने कहा है—जैसे सूर्य के ग्रहण में स्नान और दान दिन में विहित हैं, वैसे चन्द्र का ग्रहण में रात में भी स्नान और दान विहित है।

कूर्म पुराण में श्राद्ध प्रकरण में कहा है कि—चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में नैमित्तिक कर्म किया जाता है और बन्धुओं का मरण में भी किया जाता हैं। अन्यथा नारकी होना पड़ता है। ग्रहण प्रभृतिओं में काम्य श्राद्ध किये जाते हैं।

वार विशेष का योग से अतिशय फल मिलता है। व्यास ने कहा है—

रविवार में सूर्योपरा, सोमवार में चन्द्रग्रहण चूडामणि योग के नाम से ख्यात है उनका अनन्त फल है। चन्द्र और सूर्य ग्रहण दूसरे बार में होने से जो पुण्य होता है, चूडामणि योग में वह पुण्य करोड़ गुणों से गुणित हो जाता है।

अतिथिप्राप्त्यादिवद् ग्रहणस्यापि श्राद्धकालत्वमाह मार्कण्डेयः—

[1]विशिष्टब्राह्मणे प्राप्ते सूर्येन्दुग्रहणे दिने।
जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्यात्तथोच्छ्रये ॥ इति।

अत्र श्राद्धं नान्नेन, किन्तु हेमादिना। तदाह बौधायनः—

अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि।
हेमश्राद्धं सग्रहे च कुर्याच्छूद्रः सदैव हि ॥ इति।

---

१. संपूर्णवचनस्येत्थं पाठः—

विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्येन्दुग्रहणेऽयने।
विषुवे रविसंक्रान्तौ व्यतीपाते च पुत्रक ॥
श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने।
जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया ॥ मार्क० पु० ३१।२१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा—

दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिक उपस्थिते ।
अन्नेनासंभवे कुर्याद्धेम्ना वाऽऽमेन वा पुनः ॥ इति ।

शातातपोऽपि—

आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।
आमश्राद्धं द्विजो दद्याच्छूद्रो दद्यात्सदैव हि ॥ इति ।

आशौचिनोऽपि ग्रहणे स्नानादि न निषिद्धम् । तथा च वृद्धवसिष्ठः

सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने ।
तावदेव भवेच्छुद्धि र्यावन्मुक्ति र्न दृश्यते ॥ इति ।

इयं च शुद्धिः सर्वस्मार्त्तकर्मविषया अविशेषोक्तेः । एतदेवाभिप्रेत्य व्याघ्रपद आह—[1]

स्मार्त्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके ।
श्रौते कर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ इति ।

अतिथिओं की प्राप्ति में जैसे—श्राद्ध किया जाता है, इस प्रकार ग्रहण भी श्राद्ध का काल है । इसके बारे में मार्कण्डेय ने कहा है—

सूर्य और चन्द्र के ग्रहण दिन में विशिष्ट ब्राह्मण प्राप्त होने पर जन्म नक्षत्र और ग्रह पीड़ा की वृद्धि होने पर भी श्राद्ध किया जाता है ।

यहाँ श्राद्ध अन्न के द्वारा नहीं होता है किन्तु सुवर्ण के द्वारा होता हैं । बौधायन ने कहा है—

अन्न के अभाव में, ब्राह्मण के अभाव में, प्रवास में, पुत्रजन्म में और ग्रहण में शूद्र के जरिये हेमश्राद्ध किया जाता है ।

इसी प्रकार अमावास्या में, सूर्य ग्रहण के अवसर पर माता और पिता का सांवत्सरिक श्राद्ध उपस्थित होने से अन्न का अभाव अगर हो तो सुवर्ण या आम अन्न अर्थात् तण्डुल के द्वारा श्राद्ध किया जाता है ।

शाताताप ने भी कहा है—आपद के समय में, अनग्नि होने पर, तीर्थ में, चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में, द्विज के जरिये आम श्राद्ध किया जाता है । लेकिन शूद्र के हाथों सर्वदा आम श्राद्ध किया जाता है ।

अशौचग्रस्त लोगों का स्नान ग्रहण में मनाही नहीं है । वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—

---

१. मुद्रितव्याघ्रस्मृतौ (G. O. R. I. 1985) नास्ति । मिताक्षरायां (या स्मृ. 3/If) केशव वैजयन्त्यां (22/8) विद्यते ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूतक, मृतक और राहुदर्शन में दोष नहीं है जब तक मुक्ति नहीं दिखाई पड़ती है ।

यह शुद्धि सब प्रकार स्मार्त्त कर्मों के विषय में है, इसमें कुछ विशेष नहीं कहा गया है । इस विषय को अभिप्रेत करके व्याघ्रपद ने कहा है—

राहुग्रस्त ग्रहण के विना दूसरे सूतकों में स्मार्त्त कर्म का परित्याग होता है । उस समय श्रौत कर्म के लिए स्नान करके शुद्ध होते हैं ।

यत्तु ग्रहणनिमित्तमाशौचं तत्स्नानेन निवर्त्यम् । तदुक्तं ब्रह्माण्ड-पुराणे[1]—

अशौचं जायते नृणां ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
राहुस्पर्शे तयोः स्नात्वा स्नानादौ कल्पते नरः ॥ इति ।

षट्त्रिंशन्मतेऽपि—

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने ।
स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रृतमन्नं विवर्जयेत् ॥ इति ।

ग्रहणस्याद्यन्तयोः स्नानं विहितं स्मृत्यन्तरे—

ग्रस्यमाने भवेत् स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते ।
मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते ॥ इति ।

होमदानवद्देवार्चनमपि स्नानद्वयमध्ये कार्य्यम् । तदुक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते

स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम् ॥ इति ।

तत्काले स्वापादिकं न कुर्यात् । तदुक्तं शिवरहस्ये—

सूर्येन्दुग्रहणं यावत् तावत्कुर्याज्जपादिकम् ।
न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः ॥ इति ।

मोक्षानन्तरभावि यत्स्नानं तस्य शुद्ध्यर्थतया तत्सचैलं विधेयम् । तदाह वृद्धवसिष्ठः—

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने ।
सचैलन्तु भवेत्स्नानं सूतकान्नञ्च वर्जयेत् ॥ इति ।

ग्रहणकाले ततः पूर्वं वा यावत् पक्वं तत्सूतकान्नं तत्तु पश्चादपि न भुञ्जीत । आदिमध्यावसानेषु यद्यद् विहितं तस्य फलातिशय उक्तो ब्रह्मपुराणे—

ग्रहण को निमित्त करके जो अशौच होता है वह स्नान से निवर्तित हो जाता है । उसके बारे में ब्रह्माण्डपुराण में कहा है कि—

---

१. मुद्रितब्रह्माण्डपुराणे नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में जो अशौच होता है, इन दो अवसरों पर राहु स्पर्श में स्नान करने से शुद्धि मिलती है। इस प्रकार स्नानादि की कल्पना की है। षट्त्रिंशन्मत में भी कहा है कि—

राहु दर्शन में सब वर्णों का सूतक होता है। स्नान करके कर्म किया जाता है और रसोई पका हुआ अन्न फेंक दिया जाता है।

ग्रहण का आदि और अन्त में स्नान स्मृत्यन्तर में विहित है—

ग्रास होने से स्नान होता है, ग्रास होने के बाद होम किया जाता है। मुक्ति के अवसर पर दान किया जाता है और मुक्त होने के बाद स्नान का विधान है।

होम और दान की तरह देवार्चन भी दो स्नानों के बीच में करणीय है। यह ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कहा है—

उपरागादि में स्नान किया जाता है और बीच में होम और देवार्चन किये जाते हैं।

उस समय सोना (नींद लेना) उचित नहीं है। शिवरहस्य में कहा है—

सूर्य और चन्द्र के ग्रहण जब तक है तब तक जप करना है। सोना (नींद) और भोजन नहीं करना चाहिए। मुक्ति के अनन्तर स्नान पूर्वक भोजन करना है।

मोक्ष के अनन्तर जो स्नान करणीय है, वह केवल शुद्धि के लिए सवस्त्र स्नान विधेय है। वृद्धवसिष्ठ ने कहा है—

राहु दर्शन में सब वर्णों का सूतक होता है। सवस्त्र स्नान विहित है और सूतक अन्न फेंक देना चाहिए (त्याज्य है)।

ग्रहण के काल में या उससे पहले जितना पक्व है, वे सब सूतकान्न है। बाद में भी उनका भोजन नहीं किया जाता है। ग्रहण के आदि मध्य और अन्त में जो करणीय है, उसका फलातिशय ब्रह्मपुराण में कहा है—

उपमर्दे लक्षगुणं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
पुण्यं कोटिगुणं मध्ये मुक्तिकाले त्वनन्तकम्॥ इति।

अत्र ग्रहणे यद्दानं तत्सुपात्रे कर्त्तव्यम्। तदुक्तं महाभारते—

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
पात्रभूताय विप्राय भूमिं दद्यात् सदक्षिणाम्॥ इति।

पात्रलक्षणमाह याज्ञवल्क्यः[1]—

---

१. याज्ञवल्क्यस्मृति १।२००

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता ।
यत्र [1]वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ इति ।

पात्रे मुख्यानुकल्पावाह बौधायनः—

श्रोत्रियोऽश्रोत्रियो वाऽपि पात्रं वाऽपात्रमेव वा ।
[2]विप्रब्रुवोऽपि वा विप्रो ग्रहणे दानमर्हति ॥ इति ।

भूमिवद् गवादीन्यपि देयानि । तदुक्तं महाभारते—

भूमिर्गावः सुवर्णं वा धान्यं वा यद्यदीप्सितम् ।
तत्सर्वं ग्रहणे देयमात्मनः श्रेय इच्छता ॥ इति ।

ग्रहीतृभेदेन फलतारतम्यं दक्षेणोक्तम्—

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।
श्रोत्रिये शतसाहस्रं पात्रे त्वानन्त्यमश्नुते ॥ इति ।

चन्द्र और सूर्यग्रहण के प्रारंभ में लक्षगुण, बीच में करोड़ गुण और मुक्ति काल में अनन्त पुण्य मिलते हैं ।

ग्रहण में जो दान होता है वह उत्तम पात्र के लिए होना चाहिए । महाभारत में कहा है—

अयन, विषुव और चन्द्रसूर्य के ग्रहण में पात्रीभूत विप्र को दक्षिणा के साथ भूमि दान करना चाहिए ।

पात्र लक्षण याज्ञवल्क्य ने कहा है—केवल विद्या या केवल तपस्या के द्वारा पात्रता नहीं मिलती, जहाँ ये दोनों का अनुष्ठान मिलता है, वह पात्र के रूप में कीर्तित होता है ।

पात्रों में मुख्य और अनुकल्प के बारे में बौधायन ने कहा है—

श्रोत्रिय या अश्रोत्रिय, पात्र या अपात्र, विप्रब्रुव (ब्राह्मणब्रुव—अपना मन को मान ब्राह्मण कहनेवाला) विप्र भी ग्रहण में दान के लिए प्रशस्त है ।

---

१. गुरुपूजा घृणा सत्यं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
प्रवर्त्तनं हितानां च तत्सर्वं वृत्तमुच्यते ॥

२. विप्रब्रुवो ब्राह्मणब्रुव इत्यर्थः । स च यथा—
धर्मकर्मविहीनश्च ब्राह्मैर्लिङ्गै र्विवर्जितः ।
ब्रवीति ब्राह्मणश्चाहं स ज्ञेयो ब्राह्मणब्रुवः ॥
गर्भाधानादिसंस्कारैर्युक्तश्च नियतव्रतः ।
नाध्यापयति नाधीते स ज्ञेयो ब्राह्मणब्रुवः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमिदान की तरह गोदानादि किये जाते हैं। महाभारत में कहा है—

भूमि, गाय, सुवर्ण, धान्य या जो कुछ इप्सित पदार्थ, वे सब अपने श्रेय प्राप्ति के लिए ग्रहण में दिये जाते हैं।

दान के प्रतिग्रहीता का भेद से फल में तारतम्य आता है। दक्ष ने कहा है—

ब्राह्मण ग्रहीता का स्थल में समान फल, ब्राह्मणब्रुव में दो गुणा, श्रोत्रिय में सौ हजार और सुपात्र ब्राह्मण को ग्रहीता रूप से लाभ कर अनन्त फल मिलता है।

अह्नि सूर्यग्रहणं चन्द्रग्रहणमिति हि प्रसिद्धिः सार्वजनीना तादृशे ग्रहणे यद् वक्तव्यं तदुक्तम्। यत्तु कालविपर्यासेन प्राप्यमाणं ज्योतिःशास्त्रमात्रप्रसिद्धं ग्रहणं तत्र स्नानादिकं न कर्त्तव्यम्। तदुक्तं निगमे—

सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा।
तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानञ्च न क्वचित्॥ इति।

ग्रस्तास्तमये जाबालिराह—

संक्रान्तौ पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कला।
चन्द्रसूर्योपरागे च यावद्दर्शनगोचरः॥ इति।

ग्रस्तस्यास्तमनपर्यन्तं दर्शनगोचरत्वात्तावान् पुण्यकालो भवति। ग्रहणे भोजनव्यवस्थामाह मनुः[1]—

चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यादद्यात्स्नात्वा विमुक्तयोः।
अमुक्तयोरस्तगयोर्दृष्ट्वा स्नात्वा परेऽहनि॥ इति।

ग्रहे ग्रहणकाले। स्पर्शमारभ्य मोक्षपर्यन्तो ग्रहणकालः। तस्मिन् काले न भुञ्जीत किन्तु राहुणा चन्द्रासूर्ययो र्मुक्तयोः सतोः पश्चात्स्नात्वा भुञ्जीत। यदा तु ग्रस्तास्तमयस्तदा परेद्युर्विमुक्तौ तौ दृष्ट्वा भुञ्जीत। न केवलं ग्रहणकाले भोजनाभावः, किन्तु ग्रहणात्प्रागपि। तदाह व्यासः—

नाद्यात्सूर्यग्रहात्पूर्वमह्नि सायं शशिग्रहात्।
ग्रहकाले च नाश्नीयात् स्नात्वाऽश्नीयाद् विमुक्तयोः॥

मुक्ते शशिनि भुञ्जीत यदि न स्यान्महानिशा।
अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि॥ इति।

---

१. मुद्रितमनुस्मृतौ नास्ति. पराशरमाधवीयेऽपि मनुवचनत्वेन पठ्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वकालभोजननिषेधे विशेषमाह वृद्धवसिष्ठः —

ग्रहणन्तु भवेदिन्दोः प्रथमादधियामतः ।
भुञ्जीतावर्त्तनात्पूर्वं पश्चिमे प्रथमादधः ॥

दिन में सूर्य-ग्रहण की और रात में चन्द्र-ग्रहण की प्रसिद्धि सार्वजनीन है। इस ग्रहण के बारे में जो कहना है, वह कहा गया है। काल के विपर्यास से ज्योतिःशास्त्र प्रसिद्ध (अर्थात् ज्योतिःशास्त्र के गणनानुसार) ग्रहण प्राप्त होने पर उसमें स्नानादि नहीं किये जाते हैं। निगम में कहा है—

रात में सूर्य-ग्रहण और दिन में चन्द्रग्रहण अगर हो तो उसमें स्नान नहीं किया जाता है और दान भी नहीं दिया जाता है।

ग्रस्तास्त के बारे जाबालि ने कहा—

संक्रान्ति में पुण्यकाल सोलह कला तक है परन्तु चन्द्र और सूर्य ग्रहण में जब तक आँखों से देखना संभव हो तब तक (पुण्य काल) है।

ग्रस्त का अस्त काल तक आंख से देखना संभव है। इसलिये यह काल पुण्य काल है। ग्रहण में भोजन की व्यवस्था के बारे में मनु ने कहा है—

चन्द्र और सूर्यग्रहण में भोजन नहीं करना है। मुक्त होने पर ही स्नान करके दान देना है, मुक्त न होकर अस्त होने से पर दिन में देखकर स्नान करके सब काम करना है।

ग्रहे का अर्थ ग्रहण काल में। स्पर्श काल से लेकर मोक्ष पर्यन्त ग्रहण काल है। उस काल में भोजन नहीं किया जाता है। किन्तु राहु से चन्द्र और सूर्य मुक्त होने पर बाद में स्नान करके भोजन करना उचित है। केवल ग्रहण काल में भोजन निषिद्ध है ऐसा नहीं, किन्तु ग्रहण से पहले भी। व्यास ने कहा है—

सूर्य ग्रहण के पूर्व दिन में और चन्द्रग्रहण के सायं काल में भोजन नहीं किया जाता है। ग्रहण काल में भोजन नहीं किया जाता है। मुक्त होने पर स्नान करके भोजन किया जाता है।

चन्द्र का ग्रहण मुक्त होने पर भोजन किया जाता है अगर महानिशा नहीं है। अमुक्त अवस्था में अगर अस्त हो तो, पर दिन में देखकर भोजन करना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ग्रहण के) पूर्व काल में भोजन का निषेध के बारे में वृद्धवसिष्ठ ने विशेष रूप से कहा है—

चन्द्रग्रहण अगर पहला याम में हो, तो आवर्त्तन से पहले पश्चिम याम के पूर्वभाग में भोजन करना है ।

रवेस्त्वावर्त्तनादूर्ध्वमर्वागेव निशीथतः ।
चतुर्थे प्रहरे चेत्स्याच्चतुर्थप्रहरादधः ॥ इति ।

रात्रौ प्रथमयामादूर्ध्वं चन्द्रग्रहणं चेत् आवर्त्तनान्मध्याह्नात्पूर्व भुञ्जीत,रात्रिपश्चिमयामे च रात्रिप्रथमयामादर्वाग्भुञ्जीत । अह्नस्तृतीय-प्रहरे चेद्रविग्रहस्तदा पूर्वदिनस्यार्धरात्रात्प्राग्भुञ्जीत । अह्नश्चतुर्थ-प्रहरे रविग्रहणश्चेद्रात्रेश्चतुर्थप्रहरादधो भुञ्जीतेत्यर्थः । निशीथोमध्य-रात्रः । शशिग्रहणे यामत्रयेण व्यवधानमपेक्षितम् , सूर्यग्रहणे याम-चतुष्टयेनेति तात्पर्यार्थः । तथा च वृद्धगौतमः—

सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम् ।
चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना ॥ इति ।

बालवृद्धातुरविषये मत्स्यः—

[1]सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यादपराह्णे न भोजनम् ।
अपराह्णे न मध्याह्ने मध्याह्ने न तु सङ्गवे ॥
भुञ्जीत सङ्गवे चेत्स्यान्न पूर्वं भुजिमाचरेत् ॥ इति ।

समर्थस्य तु भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं कात्यायनेन—

चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यति ।
तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ इति ।

शशिग्रहे यामत्रयस्यापवादमाह वृद्धवसिष्ठः—

ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत् ॥ इति ।

आवर्त्तन से ऊर्ध्व सूर्य-ग्रहण के स्थल में निशीथ (रात्रि) से पहले भोजन किया जाता है । चौथा प्रहर में होने से चौथा प्रहर से पहले भोजन किया जाता है ।

रात में पहला याम के ऊर्ध्व समय में चन्द्रग्रहण हो तो आवर्त्तन से पूर्व अर्थात् मध्याह्न के पहले भोजन किया जाता है । रात के पश्चिम

---

१. सायाह्ने ग्रहणमिति मार्कण्डेयवचनत्वेन केशववैजयन्तीपाठः विष्णुस्मृ० ६८।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

याम में ग्रहण होने से रात में पहला याम के पूर्व भोजन किया जाता है। दिन का तिसरा प्रहर में अगर सूर्यग्रहण हो तो पूर्वदिन के आधा रात से पहले भोजन किया जाता है। दिन के चौथा प्रहर में सूर्य-ग्रहण होने पर रात के चौथा प्रहर का निम्न भाग में भोजन किया जाता है। ऐसा अर्थ है। निशीथ का अर्थ मध्यरात्र। चन्द्रग्रहण में तीन यामों का व्यवधान अपेक्षित है। सूर्यग्रहण में चार यामों का व्यवधान अपेक्षित है। ऐसा तात्पर्य है। इसलिए वृद्ध गौतम ने कहा है—

सूर्यग्रह में पूर्व चार यामों में भोजन नहीं किया जाता है। चन्द्रग्रहण में पूर्व तीन यामों में भोजन नहीं किया जाता है। किन्तु बालक, वृद्ध और रोगी के लिए यह नियम लागू नहीं होता। बालक वृद्ध और रोगी के बारे में मत्स्य पुराण में कहा हैं—

सायाह्न में ग्रहण न होने पर अपराह्न में भोजन नहीं किया जाता है। अपराह्न में होने पर मध्याह्न में, मध्याह्न में होने पर सङ्गव में और सङ्गव में होने पर उससे पहले भोजन नहीं किया जाता है।

समर्थ लोग का भोजन का प्रायश्चित्त कात्यायन ने बताया है—

चन्द्रसूर्य ग्रहण में भोजन करके प्राजापत्य से शुद्ध होते हैं। उसी दिन में भोजन करके तीन रात में शुद्ध होते हैं।

चन्द्रग्रहण में तीन यामों का अपवाद (खंडन) वृद्ध वसिष्ठ ने कहा है—चन्द्र के ग्रस्तोदय (ग्रस्त होकर उदय) अवस्था में दिन में भोजन नही किया जाता है।

ग्रस्तास्तमये विशेषमाह भृगुः—

ग्रस्तावेवास्तमानन्तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि।
परेद्युरुदये स्नात्वा शुद्धोऽभ्यवहरेन्नरः॥ इति।

वृद्धगार्ग्योऽपि—

सन्ध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ।
तदहनैव भुञ्जीत रात्रावपि कदाचन॥ इति।

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा।
मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्॥ इति।

ननु मेघाद्यन्तर्धाने चाक्षुषं दर्शनं न सम्भवतीति चेन्न। दर्शन शब्देन शास्त्रीयज्ञानस्य विवक्षितत्वात्। तदाह वृद्धगौतमः—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यात्तस्मिन्नहनि पूर्वतः ।
राहोर्विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वीत भोजनम् ॥ इति ।

एवं तर्हि परेद्युरुदयात्प्रागपि शास्त्रविज्ञानसम्भवात् तदैव भोजनं प्रसज्येत । तन्न । "परेद्युरुदयेऽभ्यवहरेत्" "अहोरात्रं भोक्तव्यम्" इति वचनद्वयेन तदप्रसक्तेः । यत्तु स्कन्दपुराणे—

यदा चन्द्रग्रहस्तात निशीथात्परतो भवेत् ।
भोक्तव्यं तात पूर्वाह्णे नापराह्णे कथञ्चन ॥ इति ।

ग्रस्तास्त के बारे में भृगु ने विशेष बताया है—

सूर्य और चन्द्र ग्रस्त होकर अगर अस्त होते हैं तो परदिन के उदय में स्नान करके शुद्ध होकर भोजन किया जाता है ।

वृद्धगार्ग्य ने कहा है—सन्ध्याकाल में जब राहु चन्द्र और सूर्य को ग्रसता है तो उस समय दिन में और रात में भोजन नहीं किया जाता है ।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी कहा है—

चन्द्र और सूर्य ग्रहण के अवसर पर दिन और रात में भोजन नहीं किया जाता है । राहु से मुक्ति को (देखकर) जानकर स्नान करके भोजन किया जाता है ।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि मेघ प्रभृति प्रतिबन्ध से आँखों के द्वारा ग्रहण का दर्शन संभव नहीं है, ऐसा अगर कहा जाता है तो ठीक नहीं है, क्योंकि दर्शन शब्द से शास्त्रीय ज्ञान की विवक्षा की जाती है । इसके बारे में वृद्ध गौतम ने कहा है—

चन्द्र और सूर्यग्रहण में उस दिन से पहले भोजन नहीं किया जाता है । राहु से मुक्ति को जानकर स्नान करके भोजन किया जाता है ।

ऐसा अगर हो तो पर दिन के उदय से पहले भी शास्त्र ज्ञान संभव होने पर उस समय ही भोजन का प्रसङ्ग आता है । ऐसा नहीं; क्योंकि 'दूसरे दिन उदय होने पर भोजन करना चाहिए । 'अहोरात्र' अर्थात् दिन और रात में भोजन नहीं किया जाता है ।' इन दो वचनों से यह प्रसङ्ग नहीं आता है क्योंकि स्कन्द पुराण मे कहा है—

हे तात ! निशीथ (रात्रि) के बाद में जब चन्द्रग्रहण होता है, तो पूर्वाह्ण में भोजन किया जाता है, किन्तु अपराह्ण में कभी भोजन नहीं किया जाता है ।

यच्च—

पूर्वं निशीथाद् ग्रहणं यदा चन्द्रस्य वै भवेत् ।
तदा दिवा न कर्त्तव्यं भोजनं शिखिवाहन ॥ इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदिदं यामत्रयाभिप्रायम् । "चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्" इति विशेषश्च वृद्धगौतमेनाभिधानात् । पापक्षयकामो ग्रहणदिनमुपवसेत् । तदाह दक्षः—

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
अहोरात्रोषितः स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति ।

पुत्री तु नोपवसेत् । तदाह नारदः—

संक्रान्त्यामुपवासश्च कृष्णैकादशिवासरे ।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्पुत्रवान् गृही ॥ इति ।

तस्य प्रतिषिद्धे उपवासे भोजनकालः स्मृत्यन्तरे दर्शितः—

सायाह्ने सङ्गवेऽश्नीयाच्छारदे सङ्गवादधः ।
मध्याह्ने परतोऽश्नीयान्नोपवासो रवेर्ग्रहे ॥ इति ।

शारदोऽपराह्णः "यदाऽपराह्णोऽथ शारदः" इति श्रुतेः । ग्रस्तास्तमये तु पुत्रिणोऽप्युपवास एव । "अहोरात्रं न भोक्तव्यम्" इति भोजनप्रतिषेधात् । अत्र[1] विष्णुशातातपौ—

नाद्याच्चन्द्रग्रहात्पूर्वमह्नि सायं रविग्रहात् ।
ग्रहकाले च नाश्नीयात् स्नात्वाऽश्नीयात्तु मुक्तयोः ॥
मुक्ते शशिनि भुञ्जीत यदि न स्यान्महानिशा ।
दृष्ट्वा स्नात्वा परेद्युस्तु ग्रस्तास्तमितयोस्तयोः ॥

मत्स्यपुराणे—

चन्द्रसूर्यग्रहे नाद्यादद्यात् स्नात्वा तु मुक्तयोः ।
ग्रस्तयोरस्तं गतयो दृष्ट्वा स्नात्वा परेऽहनि ॥

इति श्रीमाधवीये कालनिर्णये ग्रहणनिर्णयः ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

फिर भी—हे शिखिवाहन (कार्तिकेय) ! जब चन्द्र का ग्रहण निशीथ से पहले होता है तब दिन में भोजन नहीं किया जाता है ।

यह विषय तीन यामों को लेकर प्रवर्त्तित है । (क्योंकि)'चन्द्रग्रहण में तीन याम' यह विशेष वचन वृद्ध गौतम ने कहा है—

पापक्षय के लिए कामना करके ग्रहण दिन में उपवास करना उचित है ।

---

१. मूलपुस्तके इतोऽवशिष्टांशो नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दक्ष ने कहा है—

अयन, विषुव और चन्द्रसूर्य के ग्रहण में अहोरात्र (दिन-रात) उपवास कर सब पापों से मुक्त होते हैं।

पुत्रवान व्यक्ति उपवास नहीं करता है। नारद ने कहा है—

संक्रान्ति, कृष्णपक्ष की एकादशी, चन्द्र और सूर्य के ग्रहण—इन सब के अवसर पर पुत्रवान गृही (गृहस्थ व्यक्ति द्वारा) उपवास नहीं किया जाता है।

उपवास उन सब अवसरों में प्रतिषिद्ध होने पर स्मृत्यन्तर में भोजन का काल प्रदर्शित किया गया है—

सूर्यग्रहण सायाह्न में होने पर सङ्गव में भोजन किया जाता है। शारद में (अपराह्ण) होने से सङ्गव से पहले भोजन किया जाता है। मध्याह्न में यह भोजन नहीं किया जाता है। सूर्य ग्रहण में इस प्रकार उपवास का विधान है।

शारद का अर्थ अपराह्ण है, "जब अपराह्ण वह शारद" इस प्रकार श्रुति उपलब्ध होती है। ग्रस्तास्त के स्थल में भी पुत्रवान गृही द्वारा उपवास किया जाता है। "अहोरात्र में भोजन नहीं करना" इस प्रकार भोजन का प्रतिषेध है।

यहाँ विष्णु और शातातप ने कहा है—

चन्द्रग्रहण में पूर्व दिन और सूर्य ग्रहण में पूर्व दिन का सायं काल में भोजन नहीं किया जाता है। ग्रहण काल में भोजन मना है। मुक्त होने पर स्नान पूर्वक भोजन किया जाता है। चन्द्र ग्रहण मुक्त होने पर भोजन किया जाता है, अगर महानिशा न हो। ग्रस्तास्त होने से परदिन में देख कर स्नान पूर्वक भोजन किया जाता है। मत्स्यपुराण में कहा है—

चन्द्र और सूर्यग्रहण में भोजन नहीं किया जाता है। मुक्त होने के बाद स्नान पूर्वक दान किया जाता है। ग्रस्तास्त होने पर पूर्वदिन में देखकर स्नान किया जाता है।

इस प्रकार माधवीय काल-निर्णय में ग्रहण का निर्णय हुआ।

॥ ग्रन्थ समाप्त ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पारिभाषिक शब्दावली

अ

अग्नि = तृतीया तिथि

अग्निष्टोम = सात सोमसंस्था के अन्तर्गत एक सोमसंस्था (अग्निस्तोम स्तोत्र, जो सात सोम संस्थाओं में एक सोमसंस्था)।

अग्निहोत्र = गृह्य अग्नि में सायं प्रात विहित होम

अंग = सहायक

अंगारक चतुर्थी = स्कन्दपुराण में प्रसिद्ध मंगल देवना के उद्देश्य में विहित व्रत

अंगि = प्रधान

अच्छिद्रकाण्ड = वेद का एक काण्ड

अजपाद = रात में मुहूर्त्त का नाम

अजर = ब्रह्म का लिंग, वास्तव में ब्रह्म देवता

अजिर = मुहूर्त्त का नाम, रात्रिगत द्वितीय मुहूर्त का नाम अजपाद है।

अतिद्रवन् = अति सूक्ष्म मूहूर्त, जो वेद में पठित है।

अतिक्रम दोष = नित्यत्वद्योतक वाक्यांश

अतिरात्र = सात सोमसंस्था के अन्तर्गत एक सोमसंस्था

अतिवेध = अरुणोदय के लिये सूर्योदय से पहले दो घटिकात्मक काल

अध्यवसाय = निश्चय

अध्वर = हिंसारहित याग (न ध्वरोऽध्वरः)

अनुपादेय = पूर्व मीमांसा दर्शन में प्रसिद्ध अनुपादेय पञ्चक—देश, काल, निमित्त, फल, संस्कार्य।

अनुमति = चतुर्दशी युक्ता पूर्णिमा

अनुमन्ता = मुहूर्त्त का नाम, कृष्णपक्ष की रात्रि का नाम अनुमन्ता है।

अन्तःकरण = मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार

अन्वाधान = दर्श इष्टि का पहला दिन में अनुष्ठेय कर्म विशेष

अपमृत्यु = अकाल मृत्यु

अपराह्ण = त्रिधा विभक्त मुहूर्त्त का तीसरा भाग
= द्विधा " " दूसरा "
= पञ्चधा " " चौथा "

अपान = पांच वायुओं में दूसरा वायु, अधो निसृत वायु, गुदा वायु

अप्रमाण स्वीकार = विकल्प का एक दोष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब्दोदक = पहला वर्ष का श्राद्ध, पितृतर्पण
अभिचार = अपना स्वार्थ साधन के लिये शत्रु मारण याग
अभिजानत् = शुक्ल पक्ष में दिन का नाम
अभितपत् = शुक्ल पक्ष के दिन के मुहूर्त का नाम
अभिशास्ता = कृष्ण पक्ष में दिन के मुहूर्त्तका नाम
अभिषूयमाणा = कृष्ण पक्ष में रात्रि का नाम
अभ्यास = कर्म भेद का एक हेतु, एक ही शब्द को बार-बार दोहराना
अमा = अमावास्या
अमृत = ब्रह्म का लिंग = परिचायक, समुद्र-मंथन से प्राप्त तरल पदार्थ, जिसके पान से अमृतत्व की प्राप्ति होती है।
अयन = कर्कट राशि में सूर्य रहने पर दक्षिणायन और मकर राशि में सूर्य के रहने पर उत्तरायन होता है।
अयाचित = मांग कर भोजन नहीं करना,
प्रत्येक व्रतों में प्रायः अयाचित
अरुण = कृष्ण पक्ष में दिन का नाम
अरुणोदय = सूर्योदय से पहली तीन नाड़ी
अर्थवाद = प्रशंसा और हिंसा को अर्थवाद कहते हैं।
अलभ्य योग = श्राद्ध के लिये एक पुण्य काल और योग विशेष
अवयुत्यानुवाद = वैश्वानर अधिकरण न्याय से प्रसिद्ध पृथक् अनुवाद
अव्रतघ्न = फल, मूल, दूध, पानी, हवि, ब्राह्मणोचित कामना, गुरुवचन और औषध—ये आठ व्रतभंग नहीं करते हैं।
अष्टका = पौष, माघ और फाल्गुन की कृष्ण अष्टमी में अनुष्ठेय श्राद्ध
असञ्जातविरोधित्व = जिसका विरोधी पैदा नहीं हुआ और जिसका पैदा हुआ है इनमें पहला का प्राबल्य प्रतिपादक न्याय
असूर्य = सूर्य की संक्रान्ति रहित मास, मलमास
अहंकार = सांख्यदर्शन में प्रसिद्ध सप्त प्रकृति-विकृतियों में दूसरा तत्त्व
अहिर्बुध्न्य = रात में मुहूर्त्त का नाम
अहीन = सोम याग का एक भेद
अहोरात्र = दिन और रात को लेकर साठ नाडियों (बारह-बारह घण्टे) की समष्टि।

आ

आगम = शास्त्र प्रमाण
आग्नावैष्णव = अग्नि और विष्णु के उद्देश्य में अनुष्ठेय याग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आग्रयण = नवान्न के लिये आहिताग्नि द्वारा मार्गशीर्ष मास में अनुष्ठेय इष्टि

आतप = मुहूर्त्त का नाम, शुक्ल पक्ष के दिन का मुहूर्त्त नाम ।

आथर्वणिक = अथर्व वेद के पाठक

आदि = संगव काल में उदित होने वाला आदित्य

आदितेय = रात में मुहूर्त्त का नाम

आधान = अग्नि का स्थापन

आनन्द = ब्रह्म का लिंग = परिचायक

आपूर्यमाणा = शुक्ल पक्ष में रात का नाम

आप्यायमाना = शुक्ल पक्ष में रात का नाम

आभवन् = मुहूर्त्त का नाम

आभान् = शुक्ल पक्ष में दिन के मुहूर्त्त का नाम

आभू = कृष्ण पक्ष में रात्रि के मुहूर्त्त का नाम

आमश्राद्ध = पूर्वाह्न में आमान्न से अनुष्ठेय श्राद्ध, कच्चा अन्न ब्राह्मण को देकर किया जाने वाला श्राद्ध

आमिक्षाधिकरण = पूर्वमीमांसा (२।२।१) का प्रसिद्ध अधिकरण जिसमें आमिक्षा = छेना के विषय में विचार है

आम्नाय = वेद

आयन्त्य = शुक्लपक्ष में दिन का नाम

आयुष्मती = कृष्ण पक्ष में रात का नाम

आयुर्वेद = अथर्व वेद का उपवेद, भारतीय चिकित्सा विज्ञान

आरोग्य सप्तमी = वराह पुराण में प्रसिद्ध व्रत

आवेशयन् = शुक्ल पक्ष की रात्रि के मुहूर्त्त का नाम

आशीयान् = मुहूर्त्त का नाम

आशु (पुं) = मुहूर्त्त का नाम

आशु (क्ली.) = मुहूर्त्त का नाम

आश्रम स्वीकृति = ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थाश्रमकी स्वीकृति = विवाह

आश्वयुज = आश्विन मास

आश्विन = रात में मुहूर्त्त का नाम

आसादयन् = कृष्ण पक्ष में रात्रि के मुहूर्त्त का नाम

इ

इदानीं = सूक्ष्म मुहूर्त्त का नाम

इरा = शुक्लपक्ष में रात का नाम

इष्टि = शाक द्रव्य के द्वारा अनुष्ठेय याग, जिसकी प्रकृति दर्शपौर्णमास है

इष्टि काल = पर्व और प्रतिपदा की सन्धि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उ

उक्थ्य = एक सोम संस्था, अग्निष्टोम की गुण विकृति, और इसमें एक स्तोत्र अधिक है।

उत्तराषाढ़ = एक नक्षत्र का नाम

उत्पत्तिवाक्य = पूर्वमीमांसा में प्रसिद्ध छ प्रकार विधिवाक्यों में जिसमें द्रव्य और देवता दोनों रहें ऐसा कर्मोत्पत्ति वाक्य

उत्पत्तिशिष्ट = द्रव्य देवता से युक्त वाक्य

उत्पन्न शिष्ट = उत्पत्ति वाक्य के बाद आनेवाला वाक्य जो द्रव्य देवता से युक्त हो, जैसे:—आमिक्षा में वाजिन।

उत्सर्ग = सामान्य, त्याग, साँड़ छोड़ना, वृषोत्सर्ग

उत्सर्जन = वेदाध्ययन की समाप्ति

उद्गीथ = सामवेद का एक भेद

उपकल्पमान = शुक्ल पक्ष में दिन का नाम

उपक्लृप्त = शुक्लपक्ष में दिन का नाम

उपचय = शुक्ल पक्ष, वर्द्धमान

उपद्रव = अपराह्ण और अस्त के बीच में उदित होनेवाला आदित्य

उपलक्षण = वर्तमान अर्थ को समझा कर दूसरे अर्थ को समझाना, जैसे—काकवन्तो देवदत्तस्य गृहम्।

उपसद् = एक दिन साध्य ज्योतिष्टोम याग का पूर्व दिन में अनुष्ठेय होम

उपाकर्म = वेदाध्ययन का आरंभ और उस के द्वारा अनुष्ठेय कर्म, यज्ञोपवीत संस्कार-विशेषः कर्मनामधेय और वेदारम्भ।

उपाधि = बाहरी तत्त्व की उपाधि, आगन्तुक वस्तु।

उमा = ग्यारहवीं चन्द्रकला को पीनेवाली देवी

ऊ

ऊन मासिक = उत्तर षोडश श्राद्धों में मास पूर्त्ति के पूर्व दिन में अनुष्ठेय श्राद्ध

ऊन षाण्मासिक = सप्तम मास का मृताह दिन के पूर्व दिन में अनुष्ठेय श्राद्ध

ऊनाब्दिक = सांवत्सरिक मृताह दिन से पूर्व दिन में अनुष्ठेय श्राद्ध

ऋ

ऋषि = सातवीं चन्द्रकला को पीनेवाले दिव्य को ऋषि कहते हैं।

ए

एकभक्त = मध्याह्न में नियम पूर्वक एक बार ही जो भोजन सो एक भक्त।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकोद्दिष्ट = एक पुरुष के लिये मध्याह्न में अनुष्ठेय श्राद्ध
एकैकपात् = आठवीं चन्द्र कला को पीने वाले तत्त्व का नाम
एतर्हि = मुहूर्त्तों के मुहूर्त्त का एक नाम, अर्थात् सूक्ष्म मुहूर्त

ओ

ओषधि = फल पाक के अनन्तर नाश होनेवाला शस्य, —ओषध्यः फलमाकांक्षा ।

औ

औदुम्बर = गुलर की लकड़ी का बना पात्र
औदुम्बरी = गुलर वृक्ष निर्मित काष्ठ-शाखा
औपवसथ = पूर्णमासेष्टि में प्रथम दिन के कृत्य का नाम उपदसथ है ।

क

कणोद्रवन् = सूक्ष्म मुहूर्त्त का एक नाम
कपिल = सांख्यदर्शन के आदि आचार्य
कर्मधर्म = क्रत्वर्थ
कर्मप्रयुक्तशास्त्र = कर्म को सूचित करनेवाला विशेष शास्त्र का एक प्रकार
कला = तीस काष्ठा विशिष्ट प्रसिद्ध कालांश, चन्द्र किरण का अंश
कल्याण = मुहूर्त्त का नाम, शुक्ल पक्ष में दिन का नाम
कान्ता = कृष्ण पक्ष में रात का नाम
कामजाता = कृष्ण पक्ष में रात का नाम
कामदुघा = कृष्ण पक्ष में रात का नाम
काम्य = अभिलषित कर्म
काम्या = कृष्ण पक्ष में रात का नाम
कारीरी = वृष्टि के लिये अनुष्ठेय याग
कालादर्श = एक धर्मशास्त्र ग्रन्थ
कालाष्टमी = वामन पुराण में भाद्रपद कृष्ण अष्टमी का प्रसिद्ध व्रत
काष्ठा = अठारह निमेष विशिष्ट कालांश
कुतप = दिन का अष्टम मुहूर्त्त, जिस समय सूर्य अपनी छाया में प्रवेश कर खड्ग की तरह दृश्य होते हैं ।
कुबेर = धनाध्यक्ष, प्रसिद्ध यक्षाधिपति, उत्तर दिशा का अधिपति
कुहू = चन्द्रक्षय विशिष्ट अमावास्या
कूप्य = स्वर्ण और रौप्य व्यतिरिक्त दूसरा धातु, चर्म निर्मित तैलपात्र
कृच्छ्र = प्राजापत्य व्रत
कृष्णल = तीन यव परिमित सुवर्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्लृप्त = शुक्ल पक्ष में दिन का नाम

केतु = शुक्ल पक्ष में दिन के मुहूर्त्त का एक नाम

कैमुतिकन्याय = जहाँ निकृष्ट वस्तु से महावस्तु की उपलब्धि (सिद्धि) अपने आप हो जाय।

क्रतु = याग

क्षण = तीस कला विशिष्ट एक कालांश

क्षत्र = क्षत्रिय

क्षिप्र = मुहूर्त्त का एक नाम

ख

खण्ड = जो तिथि संपूर्ण नहीं है

खर्व = ह्रास-वृद्धि सम रहित तिथि का नाम

ग

गजच्छाया = चन्द्रका मघा में, सूर्य का हस्त में अवस्थान से गजच्छाया योग होता है।

गर्भ = गर्भ की गणना

गुण = कर्मभेद का हेतु

गुणविधि = द्रव्य और देवता को विधान करने वाली विधि, अंग विधि, सहायक विधि ।

गान्धर्व = मुहूर्त्त का एक नाम, दिन का सातवाँ मुहूर्त्त

घ

घट-कुटी प्रभातन्याय = यथास्थित

घोरा = उग्र (भरणी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, पूर्वफाल्गुनि)नक्षत्र युक्त संक्रान्ति

च

चतुर्मूर्त्तिव्रत = विष्णु देवता के उद्देश्य में अनुष्ठेय विष्णुधर्मोत्तर पुराण प्रसिद्ध व्रत

चर = मेष, कर्कट, तुला और मकर राशि

चातुर्मास्य = वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध और सुनासीरीय इन चार पर्वों की समष्टि से अनुष्ठेय इष्टि

चान्द्र = रात में एक मुहूर्त्त

चान्द्रमान = सूर्य से आकर पूर्व दिशा को जानेवाला चन्द्र का प्रमाण

चान्द्रायण = व्रत विशेष, कृष्ण पक्ष में एक एक पिण्ड ह्रास और शुक्लपक्ष में वृद्धि कर प्रतिदिन घटाना-बढ़ाना।

चित्र = मुहूर्त्त का एक नाम

चूडाकर्म = पहला और तीसरा वत्सर में उपनयन से पहले अनुष्ठेय संस्कार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज

जप = मन्त्र और मन्त्रार्थ का भेद चिन्तन पूर्वक विधि के अनुसार उच्चारण
जया = तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी का पारिभाषिक नाम
जव = मुहूर्त्त का एक नाम
जयन्त = मुहूर्त्त का एक नाम
जयन्ती = रोहिणी नक्षत्र युक्त भाद्रपद कृष्ण अष्टमी
जातकर्म = चार गर्भ संस्कारों में चौथा संस्कार
जाति = एकत्व में बहुत्व का समवाय
जानत् = शुक्लपक्ष में दिन का नाम
जैव = रात का मुहूर्त्त का नाम
जैमिनीय = सामवेद की एक शाखा का ब्राह्मण ग्रन्थ
ज्योतिरधिकरण = पूर्वमीमांसा दर्शन का (२. २. ८) प्रसिद्ध अधिकरण।
ज्योतिष्टोम = सोमयागों की प्रकृति
ज्योतिष्मान् = मुहूर्त्त का एक नाम
ज्वलन् = मुहूर्त्त का एक नाम
ज्वलिता = मुहूर्त्त का एक नाम

त

तदानीं = मुहूर्त्त का एक नाम
तन्त्र = एका कर्त्ता के द्वारा एक काल में एक स्थान में अनेक कर्मों का एक वार अनुष्ठान।
तन्मात्र = सांख्य दर्शन में प्रसिद्ध पांच महाभूतों का सूक्ष्मांश
तपन् = मुहूर्त्त का एक नाम
तपन = मुहूर्त्त का एक नाम
तपस्वत् = कृष्ण पक्ष में दिन का नाम
तमस् = सांख्य शास्त्र में प्रसिद्ध तीन गुणों में अन्तर्गत
तर्पयन्ती = कृष्ण पक्ष में रात का नाम
तवलकार = सामवेद का एक ब्राह्मण ग्रन्थ
ताण्डि = सामवेद की एक शाखा का ब्राह्मण ग्रन्थ
तामिस्र = एक नरक का नाम
तिथि = चन्द्र कला को वर्धित और क्षीण करने वाला काल विशेष
तिथि प्रयुक्त शास्त्र = तिथि को सूचित करने वाला विशेष शास्त्र का एक प्रकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिलक = मुहूर्त्त का नाम

तृप्ति = कृष्ण पक्ष में रात का नाम

तेजस् = कृष्ण पक्ष में दिन का नाम

तेजस्वान् = मुहूर्त्त का नाम

तेजस्वी = कृष्ण पक्ष में दिन का नाम

त्रिवृत्स्तोम = सामों का समूह

त्रिस्पृशा = एक अहोरात्र में एकादशी, द्वादशी और रात्रि शेष में त्रयोदशी रहने से अनुष्ठेय एकादशी

त्रुटि = एक लघु अक्षर उच्चारण का एक चतुर्थांश काल, दो निमेष विशिष्ट एक कालांश

त्वरन् = मुहूर्त्त का नाम

त्वरमाण = मुहूर्त्त का नाम

द

दर्प = बढ़ने वाली तिथि

दर्श = चन्द्र और सूर्यों के सन्निकर्ष से निर्णीत तिथि, इसमें समाप्त होनेवाली इष्टि।

दर्शना = शुक्ल पक्ष में रात का नाम

दर्शश्राद्ध = अमावास्या में अनुष्ठेय तीन पुरुषों के लिये पार्वण श्राद्ध,

दर्शा = शुक्ल प्रतिपद की रात्रि। एक अनुवाक का नाम

दाता = मुहूर्त्त का नाम

दिवानक्त = दिनके अन्तिम दो घटिकाओं में भोजन पूर्वक अनुष्ठेय व्रत

दीपयन् = मुहूर्त्त का नाम

दीप्त = मुहूर्त्त का नाम

दीप्यमान् = मुहूर्त्त का नाम

दूर्वाष्टमी = भविष्य पुराण प्रसिद्ध भाद्र शुक्ल अष्टमी में अनुष्ठेय व्रत।

दूर्वागणपत्यादिव्रत = सौरपुराण में प्रसिद्ध विनायक देवता के उद्देश्य में अनुष्ठेय व्रत

दृष्टा = शुक्लपक्ष की द्वितीया का नाम, अनुवाक का नाम

देवीव्रत = देवी पुराण प्रसिद्ध श्रावण शुक्ल अष्टमी में अनुष्ठेय व्रत।

दैविकश्राद्ध = देवताओं के उद्देश्य में नित्य श्राद्ध की तरह द्वादशी प्रभृति तिथियों में अनुष्ठेय श्राद्ध।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध

धनाध्यक्ष = त्रयोदश चन्द्र-कला को पीनेवाली देवता

धान्यव्रत = वराहपुराण में प्रसिद्ध व्रत

धनिष्ठा = नक्षत्र विशेष

ध्वांक्षी = क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) नक्षत्र युक्त संक्रान्ति

न

न कदाचिदतिक्रामेत् = नित्यत्वद्योतक वाक्यांश

नक्तकाल = नक्षत्र दर्शन योग्य काल या एक मुहूर्त्त न्यून होनेवाला दिन का समय

नन्द = मुहूर्त्त का एक नाम

नन्दा = एकादशी

नभस्य = भाद्रपदमास

नवश्राद्ध = मृत्युदिवस, तृतीय, पञ्चम, सप्तम, नवम और एकादश दिनों में अनुष्ठेय श्राद्ध ।

नागचतुर्थी = शंखपालादि सर्पों के उद्देश्य में अनुष्ठेय कूर्म पुराण प्रसिद्ध व्रत,

नाभस्वत् = रात में मुहूर्त्त का नाम

नामधेय = कर्मभेद का हेतु

निकृत = मुहूर्त्त का एक नाम

नित्य = सदा, यावदायु आदि आठ लक्षणों से लक्षित कर्म विशेष, परमात्मा

निधन = अस्त से पहला भाग में उदित आदित्य

निमेष = दो लब विशिष्ट काल, मुहूर्त्त का नाम

निर्देश = शास्त्र वचन, विधिवाक्य

निर्मन्थ्य = चयन याग में उखा निर्माण कर उसमें धारणीय अग्नि

निर्वपण = याग या श्राद्ध में बलि का भूमि के ऊपर प्रदान ।

निवेशयन् = मुहूर्त्त का नाम

निशानक्त = रात का पहला यामार्ध में अनुष्ठेय व्रत

निषादयन् = मुहूर्त्त का नाम

निषेध = प्राप्ति का वारण

निष्क्रम = बहिर्निष्क्रिमण संस्कार

निष्फला = कामनापूर्वक अनुष्ठेय कर्मों का निषेध ।

नीलज्येष्ठा = स्कन्दपुराण प्रसिद्ध भाद्रपद अष्टमी रविवार में अनुष्ठेय व्रत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नृसिंहव्रत = गरुड पुराण प्रसिद्ध शुक्ल अष्टमी में अनुष्ठेय व्रत
नैऋत = मुहूर्त्त का नाम
नैमित्तिक = प्रायश्चित या निमित्त करके अनुष्ठेय कर्म
न्याय = युक्ति प्रमाण

प

पक्ष = दो भागों में विभक्त मास का एक भाग
पञ्चदश स्तोम = साम समूहों का नाम
पञ्चांग = तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण इन पांच अंगों को लेकर गणना
पञ्ची परिणाम = दूसरी अवस्था प्राप्ति (सांख्यसिद्धान्त के अनुसार)
परित्यक्त प्रमाण = विकल्प का एक दोष
पर्यनुयोग = प्रश्न
पर्युदस्त = उत्तरपद के साथ नञ्युक्त होने से निषेधार्थ सूचना देनेवाला समासान्त पद ।
पर्युदास = पर्युदस्त द्रष्टव्य
पर्व = अमावास्या दर्श पूर्णमास का एक एक अंश
पशुपति = चतुर्दश चन्द्र कला को पीनेवाली देवता
पारण = व्रतसमाप्ति का सूचक पहला भोजन
पार्वण = तीन पुरुषों के लिये अनुष्ठेय श्राद्ध
पितर = द्वादश चन्द्र कला को पीनेवाली देवता
पीति = कृष्णपक्ष में रात का नाम
पुंसव = पुंसवन, चार गर्भ संस्कारों में दूसरा संस्कार
पुंसूति = पुंसव द्रष्टव्य
पुरुष = सांख्य दर्शन में प्रसिद्ध निर्विकार और निर्लिप्त तत्त्व विशेष ।
पुरुषधर्म = पुरुषार्थ
पुरोनुवाक्या = देवताओं का आवाहनार्थ प्रयोज्य मन्त्र
पूरयन्ती = शुक्लपक्ष रात्रि का नाम
पूर्णा = शुक्ल पक्ष में रात्रि का नाम। सूर्योदय में यो तिथि अल्प रहकर भी साकल्य न्याय से पूर्ण ।
पूर्णिमा = सूर्य और चन्द्र का विप्रकर्ष से निर्णीत तिथि
पूर्यमाणा = शुक्ल पक्ष में रात्रि का नाम
पूर्वाह्ण = त्रिधा विभक्त दिन का पहला भाग, द्विधा विभक्त दिन का पहला भाग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पौर्णमासी = शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा तिथि का नाम
प्यायमाना = शुक्लपक्ष में रात्रि का नाम
प्याया = शुक्लपक्ष में रात्रि का नाम
प्रकरण = छ सहकारी प्रमाणों में चौथा प्रमाण
प्रकृति = सांख्यदर्शनोक्त सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की समावस्था।
प्रकल्पमान = शुक्ल पक्ष में दिन का नाम
प्रक्रिया = कर्मभेद का हेतु
प्रजापति = अन्तिम चन्द्र कला को पीने वाली देवता
प्रतिचार = अभिचार का विरुद्ध कर्म
प्रतिप्रसव = निषिद्ध का पुनः स्वीकार
प्रतिहार = मध्याह्न और अपराह्ण के बीच में उदित सूर्य
प्रत्यवाय = नित्यकर्म का अननुष्ठान से उत्पन्न प्रतिक्रिया
प्रत्युज्जीवन कल्पना = विकल्प का एक दोष
प्रदाता = मुहूर्त्त का नाम
प्रपा = कृष्णपक्ष में रात का नाम
प्रभवन् = मुहूर्त्त का नाम
प्रभान् = मुहूर्त्त का नाम
प्रभू = मुहूर्त्त का नाम
प्रमाणत्वपरित्याग = विकल्प का एक दोष
प्रमोद = मुहूर्त्त का नाम
प्रसविता = मुहूर्त्त का नाम
प्रसूता = कृष्णपक्ष रात का नाम
प्रस्ताव = पहला आदित्य
प्रस्तुत = कृष्णपक्ष में दिन का नाम। वेद का एक अनुवाक्
प्राजापत्यर्क्ष = रोहिणी नक्षत्र
प्राण = परब्रह्म, पांच वायुओं में पहला वायु दश त्रुटिओं की समष्टि से निर्दिष्ट कालांश
प्राणाधिकरण = वेदान्त में प्रसिद्ध अधिकरण
प्रातः = दिन का तीन मुहूर्त्त वाला पहला भाग
प्रोक्षणी = श्रौत याग का उपकरण

फ

फलषष्ठी = भविष्योत्तर पुराण में प्रसिद्ध व्रत
फलश्रुति = नित्यत्व बोधक लक्षण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब

बव = ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध करण विशेष

बाध = पूर्वमीमांसादर्शन का तत्त्व विशेष। प्रकृतियाग के धर्म का विकृतियाग में प्रयोजनाभाव के कारण अनुष्ठानाभाव।

वार्धुषिक = कुसीद व्यवस्था

बाल = षोलह वर्ष तक रहनेवाली अवस्था

बालव = ज्योतिषशास्त्र प्रसिद्ध करण विशेष

बृहत्तपा = भविष्योत्तर पुराण में प्रसिद्ध व्रत

बृहस्पति = मध्याह्न की देवता

बोधिनी = हरि उत्थापन एकादशी

ब्रह्म = ब्राह्मण, वेद, कुशमुष्टि, वेदान्त प्रतिपादित तत्व।

ब्रह्मसिद्धान्त = आर्यभट्ट प्रणीत ज्योतिष ग्रन्थ

ब्राह्म = ब्रह्ममुहूर्त्त, रात्रि का अन्तिम प्रहर

ब्राह्मण-ब्रूव = ब्राह्मण-कर्म विहीन ब्राह्मण कहने वाला

भ

भगण = नक्षत्रों का समूह

भद्रा = द्वादशी

भर्ग = अपराह्ण की देवता

भानुमत् = कृष्णपक्ष में दिन का नाम

भुव = मुहूर्त्त का नाम

भूत = पञ्चमी, शुक्लपक्ष में दिन का नाम, मुहूर्त्त का नाम

म

मध्याह्न = त्रिधा विभक्त दिन का दूसरा भाग
पञ्चधा विभक्त दिन का तीसरा भाग

मन्दा = ध्रुवनक्षत्र (रोहिणी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफाल्गुनि) युक्त संक्रान्ति

मन्दाकिनी = मृदु नक्षत्र (रेवती, चित्रा, अनुराधा, मृगशीर्षा) युक्त संक्रान्ति

मन्दारषष्ठी = भविष्योत्तर पुराण में प्रसिद्ध व्रत

मन्वादि = चौदह मनु के उत्पत्ति दिनों में अनुष्ठेय श्राद्ध

मरीचिमत् = कृष्णपक्ष में दिन का नाम

महान् = सांख्यशास्त्रों का दूसरा तत्त्व, महत्तत्त्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महानदी = गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, यमुना, सरस्वती, और विशाखा नदी

महानिशा = आधीरात

महालया = आश्विन अमावास्या में अनुष्ठेय श्राद्ध, सब श्राद्धों की प्रकृति

महावेध = अरुणोदय के लिये सूर्योदय से पहले सूर्य का ईषत् दर्शन।

महेन्द्र = मुहूर्त्त का नाम

महोदरी = चर (श्रावण, पुनर्वसु, शतभिषक्, धनिष्ठा, स्वाति) नक्षत्र युक्त संक्रान्ति

मांगल्य व्रत = गरुड पुराण में प्रसिद्ध विष्णु देवता के उद्देश्य में अनुष्ठेय व्रत

मात्रा = एक लघु अक्षर का उच्चारण काल

मित्र = संगव की देवता

माधव = वैशाखमास

मिश्रिता = मिश्र (कृत्तिका, विशाखा, अश्विनी) नक्षत्र युक्त संक्रान्ति।

मुक्ताभरणसप्तमी = भविष्योत्तर पुराण में प्रसिद्ध व्रत

मुनि = सप्तमी तिथि

मुहूर्त्त = बारह क्षण विशिष्ट प्रसिद्ध कालांश

मेखला = कटि सूत्र, इमसे लक्षित उपनयन संस्कार

मेचक = कृष्ण पक्ष

मैत्र = मुहूर्त्त का नाम

मैत्रक = रात में मुहूर्त्त का नाम

मोद = मुहूर्त्त का नाम

मौञ्जीबन्धन = उपनयन संस्कार

य

यम = नवमी चन्द्रकला को पीने वाली देवता

यमव्रत = कूर्म पुराण में प्रसिद्ध यम देवता के उद्देश्य में अनुष्ठेय व्रत

याज्या = आहुति के लिये मन्त्र वाक्य

याम्य = रात में मुहूर्त्त का नाम

यावज्जीवाधिकरण = पूर्वमीमांसा का (२. ४. १) प्रसिद्ध अधिकरण

यावदायुः = नित्यत्व बोधक वाक्यांश

युक्त = उपयुक्त युक्ति में कुशल

युग = चतुर्थी तिथि

युगादि = वैशाख शुक्ल तृतीया सत्य युग का, कार्त्तिक शुक्ल नवमी त्रेता युग का, भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी द्वापर युग का और माघ पूर्णिमा कलियुग का, उत्पत्ति दिन में अनुष्ठेय श्राद्ध।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युग्म = द्वितीया तिथि

युग्मवचन = "युग्मादि युगभूतानां......" व्यास का वचन

युग्मवाक्य = दैव कार्य के लिये निगमवाक्य

योग = सूर्योदय

योगरूढ़ = व्युत्पत्ति और प्रसिद्ध अर्थ वाला शब्द

यौगिक = व्युत्पत्ति के अनुसार निश्चित अर्थ वाला शब्द

र

रक्षस् = राक्षस

रक्षोघ्न = मन्त्र विशेष

रक्षोघ्नी इष्टि = भूत और पैशाचों से शिशु को रक्षा के लिये अनुष्ठेय याग

रजस् = सांख्य शास्त्रों में प्रसिद्ध तीन गुणों के अन्तर्गत गुण

रथसप्तमी = भविष्योत्तर पुराण में प्रसिद्ध तृतीया से सप्तमी तक अनुष्ठेय श्राद्ध

रन्ध्र = नवमी तिथि

रवि = द्वितीया चन्द्रकला को पीने वाला देवता

राका = प्रतिपत् युक्त पूर्णिमा

राक्षसी = सायाह्न में अनुष्ठेय श्राद्ध का काल, क्रूर (अश्लेषा, मूला, आर्द्रा, ज्येष्ठा) नक्षत्र युक्त संक्रान्ति

राजरोग = दुरारोग्य रोग

राजा = चन्द्र

रूढ़ि = प्रसिद्धि

रोचन = मुहूर्त्त का नाम

रोचमान = मुहूर्त्त का नाम

रौद्र = मुहूर्त्त का नाम

रौहिण = दिन का नवम मुहूर्त्त

ल

लव = दो त्रुटि विशिष्ट काल

लाक्षणिक = मुख्य अर्थ को बाधित कर गौण अर्थ के साहचर्य से दूसरा कल्पित अर्थ वाला शब्द

लिंग = छ सहकारी प्रमाणों से सामर्थ्य का सूचित करनेवाला दूसरा प्रमाण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व

वषट्कार होम = अग्निहोत्र, उपासन और वैश्वदेव की गोष्ठी
वरुण = मुहूर्त्त का नाम सायं की देवता
वषट्कार = पंचम चन्द्रकला को पीनेवाली देवता
वसीय = शुक्लपक्ष में दिन का नाम
वसु = इन्द्र, चन्द्र, पितृ और निवास। अष्टमी तिथि
वह्नि = पहली चन्द्रकला को पीनेवाली देवता
वाक्य = छ सहकारी प्रमाणों से दूसरे पदों को लेकर अन्त में एक अर्थ को निर्णय करनेवाला तीसरा प्रमाण
वाक्यशेष = अर्थवाद
वाम = मुहूर्त्त का नाम
वायु = दशम चन्द्रकला को पीनेवाली देवता
वासव = षष्ठ चन्द्रकला को पीनेवाली देवता
वस्तु निवेशन = गृहप्रवेश
वाह्लेय = रात में मुहूर्त्त का नाम
विकल्प = एक विषय में दो वाक्यों की एक उत्स से प्रवृत्ति होने पर समान बल के कारण इच्छानुसार अन्यतम का स्वीकार
विकृति = प्रकृति याग की तरह अनुष्ठित याग
विजय = मुहूर्त्त का नाम
विजयसप्तमी = भविष्योत्तर पुराण में प्रसिद्ध सूर्य देवता के उद्देश्य में अनुष्ठेय व्रत
विज्ञान = शुक्ल पक्ष में दिन का नाम। एक अनुवाक का नाम
विद् = वैश्य
वितपत् = मुहूर्त्त का नाम
विधि = अप्राप्त का प्रापक
विनाडिका = छ प्राणों की समष्टि
विभव = मुहूर्त्त का नाम
विभू = मुहूर्त्त का नाम
विरिञ्चि = मुहूर्त्त का नाम
विविदिषाधिकरण = वेदान्त दर्शन में (३. ४. ८) प्रसिद्ध अधिकरण
विश्वरूप = कृष्ण पक्ष में दिन का नाम
विश्वरूपा = शुक्ल पक्ष में रात्रि का नाम
विश्वेदेवा = तृतीय चन्द्रकला को पीनेवाली देवता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषुव = मेष और तुला राशि
विष्कंभ = ज्योतिषशास्त्र प्रसिद्ध योग विशेष
विष्टुत = कृष्ण पक्ष में दिन का नाम, एक अनुवाक का नाम
वीप्सा = नित्यत्व द्योतक लक्षण
वृद्धिश्राद्ध = प्रात में अनुष्ठेय श्राद्ध
वृष्टि काम = वृष्टि के लिये कारीरी याग का कर्त्ता
वेध = तीन मुहूर्त्तों से होनेवाला दो तिथिओं का मिश्रण
वैधात्र = रात में मुहूर्त्त का नाम
वैशेषिक = कणाद ने प्रवर्त्तित दर्शन
वैश्वदेव = मुहूर्त्त का नाम चतुर्मास्य इष्टि के अन्तर्गत एक पर्व
वैश्वानर = विद्युत, आलोक, आदित्य, वायु, उदक और पृथिवी इनका समवाय से निर्णीत देवता, पुत्र जन्म में अनुष्ठेय इष्टि
वैश्वानर व्रत = ब्रह्मपुराण में प्रसिद्ध व्रत
वैश्वानरेष्टि = मीमांसा (१. ४. १२) अधिकरण में आलोचित इष्टि का न्याय
वैष्णव = रात में मुहूर्त्त का नाम, वैश्वानर, पांच रात्रादि वैष्णवागम दीक्षा
व्यतीपात = सताईस योगों से अन्यतम योग। श्रवणा, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा और अश्लेषा में चन्द्र और रविवार में अमावस्या होने से योग विशेष
व्रत = नियम विशेष

श

शंकर = रात में मुहूर्त्त का नाम
शब्दान्तर = कर्मभेद का हेतु
शंकर = मुहूर्त्त का नाम
शम्भू = मुहूर्त्त का नाम
शयनी = हरिशयन एकादशी
शर्वरी = रात्रि
शस्त्र = गुणी में रहनेवाले गुणों का गीत विहीन कथन
शान्त = मुहूर्त्त का नाम
शार्द्दूल = साम वेद की एक शाखा
शालंकट = मुहूर्त्त का नाम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुक्र = कृष्ण पक्ष में दिन का नाम

शुद्ध = सूर्योदय से साठ नाड़ी तक रहनेवाली तिथि

शुद्ध मास = साठ दिनात्मक मास में शुभकर्मों का अनुष्ठान के लिये तीस दिनात्मक मलमास व्यतिरिक्त योग्य काल

शुंभ = मुहूर्त्त का नाम

शुंभमान् = मुहूर्त्त का नाम

शृंग ग्राहिक न्याय = निर्दिष्ट करने के लिये प्रसिद्ध न्याय

शोभन = मुहूर्त्त का नाम

शोभमान = मुहूर्त्त का नाम

श्रुति = छ सहकारी प्रमाणों से निरपेक्ष अर्थ को प्रकाश करनेवाला पहला प्रमाण

श्रेयः = शुकल पक्ष में दिन का नाम

श्वेत = मुहूर्त्त का नाम

ष

षष्ठीष्टि = काठक शाखा में प्रसिद्ध याग विशेष

षोडशी = एक सोम संस्था

स

सकला = दैव कर्म के लिये सूर्योदय होनेवाली तिथि

सगतिक = दूसरा उपाय वाला

सत्र = दीर्घदिन साध्य याग

सत्त्व = सांख्यशास्त्र में प्रसिद्ध तीन गुणों से अन्यतम

सदा = नित्यत्व द्योतक पद

सद्यस्काल = इष्टि के लिये योग्य, प्रातः काल

संतपत् = मुहूर्त्त का नाम

सन्तानाष्टमी = विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रसिद्ध व्रत

सन्दिग्धा = सूर्योदय से पहले तीन घटिका रहनेवाली एकादशी

सन्धि = एक लघु अक्षर का उच्चारण काल में अमावास्या और प्रतिपद का मिलन

सन्न = मुहूर्त्त का नाम

सपिण्डीकरण = प्रेत का पितृगण में अन्तर्भाव हेतु श्राद्ध

संकल्पमान = शुक्ल पक्ष में दिन का नाम

संकीर्णा = सूर्योदय से साठ दण्ड पर्यन्त रहनेवाली एकादशी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संकोच = एक पक्ष में रहना

संख्या = कर्मभेद का हेतु

संगव = पञ्चधा विभक्त दिन का दूसरा भाग

संज्ञान = शुक्ल पक्ष में दिन का नाम एक अनुवाक का नाम

संपा = कृष्ण पक्ष में रात का नाम

संपूर्ण = एकादशी को छोड़कर सूर्योदय से सूर्योदय तक रहने वाली तिथि

संपूर्णा = उदय से पहले दो मुहूर्त्त तक रहने वाली एकादशी

संभवन् = मुहूर्त्त का एक नाम

संभान् = मुहूर्त्त का एक नाम

संभूत = शुक्ल पक्ष में दिन का नाम

= मुहूर्त्त का नाम

संमुखी = सायाह्न को व्याप्त होनेवाली तिथि

संवेशन = मुहूर्त्त का नाम

संयुक्ता = सूर्योदय से पहले एक मुहूर्त्त रहनेवाली एकादशी

संयोगपृथकत्व = नित्यत्व और काम्यत्व के साथ मिलन से निर्णीत न्याय

संशय = दो कोटी को अवलंबन कर होनेवाला विमर्श

संशान्त = मुहूर्त्त का नाम

संसन्न = मुहूर्त्त का नाम

संसादन = मुहूर्त्त का नाम

संस्तुत = कृष्ण पक्ष में दिन का नाम

समाख्या = छ सहकारी प्रमाणों से अभिधेय अर्थ को प्रकाश करनेवाला अंतिम प्रमाण

समिद्ध = कृष्णपक्ष में दिन का नाम

सलिलाधिप = वरुण । चतुर्थ चन्द्रकला को पीनेवाला देवता

सविता = प्रातः की देवता, मुहूर्त्त का नाम

सांकप्रस्थायीय = दर्श याग का विकृति याग

सांख्य = कपिल द्वारा प्रवर्त्तित दर्शन

साग्निक = अग्निहोत्री

सानाय्य = दधि और दूध का विकार पदार्थ

सामान्यशास्त्र = साधारण वचन

सायाह्न = चतुर्धा विभक्त दिन का अन्तिम भाग

सारभट = मुहूर्त्त का नाम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सावन = सूर्योदय से सूर्योदय तक संपूर्ण अहोरात्र का मान,
३६० दिनात्मक संवत्सर का मान

सावित्र = मुहूर्त्त का नाम

साहचर्य = छ सहकारी प्रमाणों से सातवां प्रमाण 'स्थान' नाम से प्रसिद्ध।

सिद्धान्तशिरोमणि = आर्यभट्ट प्रणीत ज्योतिष ग्रन्थ

सिनीवाली = चन्द्रकला रहनेवाली अमावास्या

सीमन्त = चार गर्भसंस्कारों में तीसरा संस्कार, सीमन्तोन्नयन के नाम से प्रसिद्ध।

सुता = कृष्ण पक्ष में रात का नाम, एक अनुवाक का नाम

सुदर्शना = शुक्ल पक्ष में रात का नाम

सुन्वती = कृष्ण पक्ष में रात्रि का नाम, एक अनुवाक का नाम

सुमन = चन्द्रदर्शन युक्त पूर्णिमा में अनुष्ठेय इष्टि

सूनृता = शुक्ल पक्ष में रात्रि का नाम

सूयमाना = कृष्ण पक्ष में रात्रि का योग

सोमयाग = सोम लता से अनुष्ठेय याग विशेष

सौर = रात का मुहूर्त्त का नाम, एक राशि में रवि का रात्रि स्थिति काल का तीस तम अंश

सौरनक्त = सप्तमी और रविवार में सायं काल व्याप्ति को मुख्य कल्प के रूप से स्वीकार कर करणीय व्रत

स्कन्दषष्ठी = लिंगपुराणोक्त प्रसिद्ध व्रत

स्थिर = वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ राशि, ये विष्णुपद नाम से प्रसिद्ध है तथा स्थिर कहे जाते हैं।

स्थालीपाक = गृहस्थ ने अनुष्ठेय रसोई द्रव्य से याग

ह

हरिनक्त = वैष्णवों द्वारा अनुष्ठेय व्रत

हिंकार = सूर्य का एक काल भेद

हिंस्र = क्षय होनेवाली तिथि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्धृतप्रमाणवाक्यसूची

अ

४६६ अकाले. स्क. पु.
२५७ अकुर्वन्
४७३ अकुर्वाणः. महा. भा.
३७९ अक्षयान्. स्क. पु.
५१ अक्षय्यं
३४३ अक्षार. नार.
३७९ अखण्डित. स्क. पु.
७० अग्नये. तै. सं. २. ३. २३
३५ अग्निर्नि. चा. ब्रा.
२९८ अग्निहोत्रं. तै. सं. १. ५. ९.१.
५६ अग्नीषोमौ
४१६ अग्नि
७४ अग्न्याधान. काला
८२ अग्न्याधेयं. वृ. म.
३७९ अजानन्. स्क. पु.
३४४ अज्ञान. कात्या.
२३ अणुश. आ. ब्रा.
३८३ अण्वपि
१०१ अतः. विष्णुध.
३१० अतस्त. स्क. पु.
१४४ अतथात्वे. जावा.
३१५ अतिवेधा
३०६ अतिवेधो. ब्र. वै.
४४७ अतीता. वृ. व.
२४२ ,, स्क. पु.
२८२ अतोऽन्यथा. स्क. पु.
१२७ ,, सुम.
३१६ अत्रोप. ग. पु.
३१५ ,,
३३१ अत्र स्नानं. सं. व.
१७९ अत्राष्टमी. म. पु.
४१३ अत्यर्थं. मत्स्य.
३४६ अथ. विष्णुर.
१३४ अथ यदि
१०७ अथ यत्
८८ अथ ये
४४३ अथ वा. भविर.
३८२ ,,
१८ अथाकलित
३० अथात. स्क. पु.
१४८ अथापरं. गौ. ध.
२४८ अथेति. जै. न्या.
२४८ अथैष. जै. न्या.
२४८ ता. ब्रा. १६. ८. ८१
३३६ अदृष्टार्थं
२८० अद्भिस्तु. देव
३४६ ,, कात्या.
७० अधिमासे
८२ अधिमासे. कौथु.
३४ अधिसंवत्सर. ज्योति.
३५७ ,, संव.
२३७ अनंग. ना. पु.
३८८ अनंगेन. स्क. पु.
३५७ ,, भविपु.
७१ अनन्य
२९३ अनमा. नापु.
१३ अनादि. पु.
१५ ,, विष्णुध. १।७२।१
१५ ,, वि. पु. १।२।२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१६ अनादि. विष्णुध.
१५ ,, कूर्म. १।५।२०
३५१ अनायासेन. वसि.
३०१ अनित्य. वै. न्या. ३।४।८
७४ ,, काला.
४१४ अनुमत्या. देभा.
३८९ अन्येषु. ब्र. वै.
३९२ अन्ते
३४२ अन्तः
८५ अन्ते वा. कार्ष्णा.
५१ अन्तोपा
७५ अन्नप्रा. काला.
३४० अन्नस्य. विष्णुर.
४७५ अन्नाभावे. बौधा.
४७६ अन्नेन. बौधा.
२८२ अन्यतिथ्या. ब्र. वै.
१४९ अन्यत्र. यास्मृ. १।२१५
१२८ अन्यथा. देव.
२८२ ,, ब्र. वै.
३७८ ,, स्क. पु.
११२ अन्येषाम्. वै. न्या. १।१।११।२८
२०३ अन्येषु. ब्र. वै.
४११ अन्योन्यं. मत्स्य.
३६७ अन्योन्या
४२४ अन्वाधानं बौधा
४२४ ,, वृ. शा.
४२२ अन्वाहीति. वा. भा.
१ अपरस्मिन्. वै. द. २।२।६
३९७ अपराह्णः. हारीत.
१०५ ,, स्क. पु.
१६६ ,, हारीत
१८२ ,, ,,
४०० ,, जाबा.
३९७ अपराह्णः.
१८३ ,, बौ.
१६६ अपराह्णिका
४१९ अपराह्णे. लौगा.
३९७ ,, हारी.
४५६ ,,
४८२ ,, मत्स्य
१७० ,, शाता.
१३३ अपशवो. तै. सं. ५।२।९।४
२७८ अपिवर्षं. स्क. पु.
७७ अब्दमम्बु. कौथु.
८७ अब्दान्तरे. वृ. मि.
७४ अब्दोद. काला.
३४० अभ्यर्च्य. कात्या.
४१० अमा. ब्रह्म.
४१० ,, स्क. पु.
९२ ,, सि. शि.
९२ अमादि. ,,
४११ अमायां. देभा.
९४ ,,
४५ अमावास्यया. तै. सं. ७।५।६।३
३९४ अमावास्या. विष्णुध.
३९९ ,, स्क. पु.
५० ,, ब्र. सि.
२३५ ,, विष्णुध.
४२८ ,, बौ.
२०२ ,, बृह.
२२८ ,, विष्णुध.
३९७ ,, पिता
४०२ ,, कात्या.
३३१ ,, सं. व.
१०९ अमावास्यायां
६ अमिति. जै. न्या. १।३।२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४८० अमुक्त. व्यास.
३८० ,, मनु.
८ अमूला. वै. न्या.
३६६ अयज्ञो
४६३ अयना. शाता.
४६३ अयने. वसि.
४४५ ,, ,,
४६३ ,, ब्रह्म.
४६४ ,, कृ. व.
४६५ ,, दक्ष.
४६५ ,, जाबा.
४४८ ,, बृह.
४७८ ,, महा.
३० ,, स्क. पु.
१५० अयाचितं. उशना.
१५० अयाचिता. या. स्मृ. १।२४
१४६ अयाचिते. चतु.
५४ अरुण
३०६ अरूणी. ब्र. वै.
३०५ अरुणो. भवि.
३०७ ,, ब्र. वै.
३११ ,, गोभि.
३२१ ,, कौत्स.
३२१ ,, भवि.
४६३ अर्क. वसि.
६५ अर्काद्. सि. शि.
३३७ अर्के
५४ अर्जुन
३७६ अर्णवो
४३४ अर्धं. लौगा.
२८५ अर्धनारी. प. पु.
२३७ ,, ,,
५ अर्धमासाः. तै. ना. १।८
४६ अर्धमासैः तै. सं. ७।५।३।२
३८५ अर्धरात्र. वा. सं.
३७१ ,, ,,
२५७ ,, ,,
४४६ अर्धरात्रा. वृ.व.
२६५ ,, आ. पु.
२६७ ,, योगी.
३०६ अर्धरात्रात्
३८८ ,, प. पु.
३७१ अर्धरात्रा. ई. सं.
३८६ ,, ,,
३७१ ,, प. पु.
४५३ अर्धरात्रे. दे. पु.
२८३ ,,
२६८ ,, विष्णुध.
३०७ ,, ब्र. वै.
४५८ ,, वृ. शा.
४२८ अर्वाक्तु
३६८ अल्पा. स्क. पु.
३४६ अल्पायाः. नार.
३४२ अवनी. नार.
३८० अवयुत्य
७५ अवरोह. कात्या.
७२ अवषट्कार. गृ. प.
१७२ अवाप्नोतिन मार्क.
२७५ अविद्धा. ब्र. वै.
३२६ अविद्धानि. ऋष्य.
४६६ अश्रद्धया. स्क, पु,
३५१ अश्वमेध. वसि.
४६ अश्वयुक्
३२७ अष्ट. ना. पु.
२६६ अष्टमी
२४५ ,, वि. र.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२३७ अष्टमी प. पु.
२७८ ,, विष्णुध
२३४ ,, स्क. पु.
२६४ ,, वसि.
४०२ अष्टमे. कात्या.
१७९ ,, मत्स्य.
३३७ अष्टम्या
२८१ ,, ब्र. वै.
२८५ ,, प. पु.
२७३ अष्टम्यां
३२७ अष्टवर्षे. कात्या.
३४३ अष्टाक्ष ,,
२६६ अष्टादश. अ. को. १।४।११
१४० अष्टैतानि
३३९ असकृत्. विष्णुध.
६१ असंक्रान्त. ज्यो. सि.
८० असंक्रान्ते. हारीत
५४ असंक्रान्तो
४५३ असंपूर्णे. दे. पू.
३३८ असंभा. विष्णुध्र.
३५३ असमात्त
२८० ,, आ. पु.
३३५ असामर्थ्ये. वि. र.
३३५ ,, पै. ठी.
६९ असूर्या
३९० अहं. स्क. पु.
१२ ,,
२६४ अहः सु. जाबालि
३६९ अह्नः. पा. सू.
४४९ अह्नि. वृव.
३६३ अहीन
१७९ अह्नो. मत्स्य
१८८ अह्न्यस्त व्यास
३७८ अहिंसा. स्क. पु.
४८३ अहोरात्रम्. विष्णुध.
२६८ ,, व. सं.
१०१ ,, विष्णुध,
४६३ अहोरात्रो. ब्रह्म.
४८५ ,, दक्ष

आ

७० आगते. गृ.
३७७ आगमोक्त. स्क. पु.
७० आग्नावै. तै. सं. १।८।१७
३७१ आचाण्डाल. ई. सं.
३७१ ,, ,,
३७८ ,,
११ आचारात्
१०५ आतृतीयाद्. गोभि.
१४४ आत्मनो स्क. पु.
९९ आत्वा
१०३ आदितेयो.
४७१ आदित्य. व्याघ्र.
३८५ आदित्या. कामिक
४२५ ,, गौतम
३२९ आदित्यो. भवि.
३१२ ,, ग. पु.
१०७ ,,
१५९ आदित्योदय. वा. सं.
१५४ ,, बौधा
९९ ,, ना. पु.
९५ आदित्वाद्. विष्णुध
४६६ आद्यन्त. ज्योति.
६१ आद्यो
५६ ,,
१८ आधिभौतिक
४७६ आपद्य. शाता.
८० आब्दिकं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५१ आब्दिके
३३८ आमलक्याः. विष्णुध.
४७६ आमश्राद्धं. शाता.
१२३ ,, हारीत
१६८ आमश्राद्धे ,,
२५२ आमिछो. जै. न्या. २।२।८
३२८ आयुष्यं. वि. स्मृ. २५।१६
१६८ आरभ्य. गौतम.
३१ आर्त्तं वा
१०४ नावर्त्तनात् स्क. पु.
४१९ ,, गोभिल
४२२ ,, वारा.
४२९ ,, कात्या,
४१९ आवर्त्तने. गोभि.
४७७ आशौचं. ब्रह्म.
७४ आश्रम. काला.
४११ आश्रित्य. मत्स्य.
४७२ आश्विने. दे. पु.
१०३ आश्विनो
८५ आषाढी. जातु.
१३० आषोडशात्. या. स्मृ. १।३७
४५६ आसन्न. देवलः.
१७९ आसुरं. यम.
४७४ आसुरी. शाता.
४०० आहिताग्ने. जाबालि

इ

३४६ इति विज्ञाय. ब्र. वै.
३६ इत्पूर्वश्च. विष्णुध. ३।१६३।२
३६ इत्पूर्वे ,,
२९२ इत्युक्त्या
३४३ इत्युचार्य. विष्णु.
४१५ इत्येष. मत्स्य.
३५ इद्वत्सर. ब्र. वै.
१०३ इदानीं
३५ इदापूर्वे. विष्णुध.
३६ ,, ,, ३।१५३।१
३५ इदावत्सर. ब्र. वै.
३३० इन्दुक्षय. ना. पु.
४६८ इन्दो. व्यास.
४२५ इन्दौ. वृ. व.
५६ इन्द्राग्नी
४०८ इन्द्रो. तै. ब्रा.
४२ इषश्च. विष्णुध. ३।६।५
८२ इष्टं. कौमु.
४२७ इष्टे. धौ. का.
६८ इष्ट्यादि
२४३ इहधर्मे. भवि.

ई

७५ ईशानस्य. काला.

उ

५ उक्तो. तै. ब्रा. १।१२।१५
२६३ उक्थ्य. ब. ब्रा.
१०६ उतायातं ऋ. वे. ५।७६।३
३६३ उत्कृष्यतां
३१८ उत्तरा. प्रणेता.
१०१ उत्तरां. विष्णुध.
८४ उत्तरे. प्रजा
८२ ,,
८४ ,, ज्यो. प.
३९६ उत्तरोत्तर. प्रचेता.
३८ उदगयने. बृ. उ. ६।३।१
१५३ उदयन्नेव. व्यास.
१४३ उदयस्था. स्क. पु.
३०५ उदयात्. स्क. पु.
३१२ ,, ग. पु.
३२० ,, ,,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४२ उपयाम
१६४ उदये. सुम.
२७८ ,, स्क. पु.
१७३ ,,
१५४ ,, प. पु.
,, ,, स्क. पु.
,, ,, विष्णुध.
१३७ ,, बौधा.
३८४ ,, ई. सं.
३०७ उदयो. कण्व.
२६० उदासीने
१५५ उदिते
१६६ ,, बौधा.
६६ उपचय सि. शि.
३४४ उपचारैः ब्रह्म.
४७८ उपमर्दे. ब्रह्म.
३३३ उपवासं. मत्स्य.
३३० ,, ना. पु.
३२६ ,, कूर्मं.
३३६ ,, कात्या.
३४० ,, कात्या.
३४३ उपवासन्तु. वाराह.
२३३ उपवास. निगम.
३३६ ,, कात्या.
३३१ ,, संव.
३७१ ,, स्क. पु.
४४२ उपवासः. भविर.
३४३ ,, कात्या.
३३८ ,, अङ्गिरा
२४२ उपवासश्च. अत्रि
४४२ उपदासस्य. भविर.
२३५ उपवासादि. निग.
३३४ उपवासे. वा. पु.
४३८ ,, स्क. पु.
३३९ ,, वसि.
३३४ ,,
,, उपवासेन, मार्कं
२८० उपवासेषु. देवल
१२८ ,, ,,
३४० उपवासो. कात्या.
१७५ उपसन्ध्यं. स्क. पु,
७५ उपाकर्म. कला.
८४ ,, प्रजा.
८४ ,, हारीत.
,, ,, ज्यो. प.
४१७ उपास्मिन्. तै. ब्रा.
२८७ उपोषणं. अ. सं.
३९३ ,, स्क. पु.
४३७ उपोषितव्य. विष्णुध.
२५७ उपोष्य. ना. सं.
१२८ ,,
४१९ ,, लौगा.
१३७ उपोष्या
२११ उपोष्याः वृ. व.
३१३ उपोष्या, व्यास
३२४ 'का' पु.
३१८ ,, व. पु
३२३ ,, ऋष्य
३१८ ,, व्यास
३४७ ,, नार
१२२ उपोष्यः
११५ ,,
११० ,,
३१५ उपोष्ये, बृ. व,
३१६ ,, ना. पु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३२२ उपोष्यैव रक्त. पु
४६२ ,, वसि
३४६ ,, ब्र. वै
२९५ उपोष्यैका स्क. पु
२९३ ,, ग. पु
३४९ उषः काले स्क. पु
४७० उष्णोदकेन शंख
१९३ उपोष्यैव. ना. पु
१७८ उभयोरपि. आप

ऊ

४४९ ऊर्ध्वं वृ. व
१०५ ,, स्क. पु
१७९ ,, मत्स्य

ऋ

४४० ऋक्षाणां
१०५ ऋग्भिः
३७ ऋतुत्रयम्. विष्णुध. १. ७३. १७
४९ ऋतुसन्धि
४२ ऋतुरन्यो ऋ. वे १०. ५५. १८
१८ ऋतुषट्क

ए

३३४ एकभक्त
१३६ एकभक्तं स्क. पु
१३६ ,, देवल
३३४ एकभक्तेन मार्क
३३४ ,, कूर्म
१६३ एकमुद्दिश्य कण्व.
१६८ ,, व्यास
४५ एकराशौ ब्र. सि
६५ एकस्मिन्. जाबालि
३३३ ,, वसि
२९८ एकस्य जै. सू. ४. ३. ५.
४१५ एकर. मत्स्य
४६६ एकान्त स्क. पु
५३ एकादशा विष्णुध
३५६ एकादशी. वसि
३५१ ,,
३३८ ,, देवल
३२२ ,, ब्र. वै
३२३ ,, ऋष्य
३२४ ,, स्क. पु
३२४ ,, का. पु
३२५ ,, ना. पु
३२५ ,, ना. पु
३२१ ,, भवि
३२६ ,, कूर्म
३१९ ,, वि. र
३१८ ,, प्रचेता
३१८ ,, व्यास
११० ,, ,,
३१८ ,, व. पु
३२६ ,, प. प.
,, ,, ऋष्य
३१३ एकादशी वि. र
३१३ ,, व्यास
३३० ,, कात्या
३३३ ,, स. सं
३१४ ,,
३१६ ,, पुरा
१२२ ,,
२९६ ,, ना. पु
२२९ ,, वसि
२०३ ,, वसि
२११ वृ. व
२९३ ,, स. सं
३५१ ,, वसि
३५२ ,,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३५४ एकादशीं.
३९४ ,, विष्णुध
३१९ ,, भवि
१४३ ,, वत्स
३७३ ,, ऋष्य
३५१ एकादशे वसि
२९३ एकादश्य स. सं
१९५ ,, विष्णुध
२०२ एकादश्यष्टमी बृह
२३५ ,, विष्णुध
२३५ ,, ,,
,, ,, श. गी
,, ,, शि. शं
२२८ ,, विष्णुध
३१६ एकादश्या स्क. पु
३३५ ,, भवि
३३३ ,, मत्स्य
२९६ ,, स्क. पु
२९३ ,, कण्व
३२७ ,, कात्या
३९४ ,,
३४६ एकादश्यां. पौलस्त्य
३४७ ,, नार
३३७ ,,
३४३ ,, ब्रह्म
३२९ एकादश्यां कूर्म
३२७ ,, भवि
,, ,, कूर्म
३०९ ,, स्क. पु
३३० ,, प. पु
३३३ ,, पिता
२९५ ,, कात्या
२९६ ,, कात्या.
२९६ एकादश्यां बि. र.
२९४ ,, स्क. पु.
२९३ ,, विष्णु.
,, ,, स. सं.
३४५ ,, वाराह
३४४ ,, ब्रह्म.
३४३ ,, विष्णु.
३५१ एकादश्यु. वसि.
१६४ एकोद्दिष्ट. पैठी.
१५९ ,,
१६८ एकोद्दिष्टं. व्यास.
७६ ,, गभस्ति
१२३ ,, मनुः.
१२७ एकोद्दिष्टादि. व्यास.
१५ एको हि. कूर्म. १।५।२१
११० एतद्
४४५ ,, वसि.
७० एतयैव. तै. सं. २।२।६।३
३४९ एतस्मात्. ना. पु.
३८७ एताः. स्क. पु.
३३१ एताः सं व.
३५६ ,, निगम.
२२७ ,, वसि.
३९६ ,, प. पु.
४१३ एतामेव. बुव,
४१५ एतासां. मत्स्य.
४१४ ,, दे. भा.
५४ एते
१० एतै. तै. आ.
११९ एवमेषो
२८८ ,,
३० एवं. स्क. पु.
१४४ ,, स्क. पु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६० एवं. स्क. पु.
३४४ ,, ब्रह्म.,
२३ ,, आ. ब्रा.
३७७ ,, ई. सं.
३५४ ,,
४०६ एष व. श. ब्रा.
४१० एषा. ब्रह्मा.
३३५ ,, स्क. पु.
४२६ ,, तै. ब्रा.

ऐ

४३१ ऐन्द्राग्न
२६६ ऐश्वर्यं. कात्या.

ओ

२०७ ओमित्ये छा. उ. १।१।१
२६३ ,, ,,
६ औदुम्बरी. जै. न्या. १।३।२
,, ,, तै. सं. २।१।१
,, औदुम्बरी जै. न्या. १।३।२
७ ,, तै० सं. २।१।१

क

३९५ कथयामि. भरपु.
४०५ कन्या. हारीत.
८५ कन्यागते. पु.
४४५ कन्यायां. वसि.
३०७ कपाल ब्र. वै.
४६१ कराश्विनी
३४९ करोति. नार.
८७ कर्कट वृ. मि.
२५६ कर्त्तव्यं. आ. पु.
२०२ कर्त्तव्या. स्क. पु.
२१२ ,, ब्र. वै.
२३१ कर्त्तव्यां. स्क पु.
१५२ कर्मणो. याज्ञ.
१५ कर्षणात्. विष्णुध. १।७२।१
१५ कल्पनात्. विष्णुध. १।७२।१
४०६ कला. मत्स्य.
४११ ,, देभा.
३४७ ,, नार.
०० ,, स्क. पु.
६४ ,,
२७८ कलाकष्ठा. प. पु.
३०९ ,, स्क. पु.
५ कलामुहूर्त्ता. तै. ना. १।८
३०९ कलार्धेन
१८ कल्प
३७९ कश्चित्. स्क. पु.
२५८ काकोला. स्क. पु.
१२ काच
२९ कामं. विष्णुध. ३।१९९।१०
२२८ कामत्रिद्धो. निग.
३४५ काम्य. कूर्म.
२९९ ,, जै. न्या. २।४:१
४७४ काम्यानि. कूर्म.
३३७ काम्ये
३०४ ,,
३३५ कारयेत्. वि. र.
७१ कारीर्या
४७१ कार्त्तिके दे. पु.
४५८ कार्मूक. भविर.
४४१ कार्ये. भविर.
७३ कार्याणि. यमः.
७५ ,, काला.
२७४ कार्यावेद्धा. आ. पु.
२७५ ,, प. पु.
२१ कालं. मनुः. १।२४
१२ ,, ,,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४१८ कालः. य. पा.
१० काल. श्वेता.
२९९ कालत्वात्. जै. न्या. २।४।१
५४ कालान्तरात्
१५ कालेनैव. कूर्म. १।५।१६
८ कालो. भोज.
२३ ,, ज्योति.
३४० कांस्यं. ब्रह्म.
३३८ ,, कूर्म.
२४२ किंपुनः. प. पु.
२७८ ,, ,,
३०५ कीदृश. ब्र. वै.
१६८ कुतप. व्यास.
१७७ कुतपादय
४७३ कुरुक्षेत्रम्
४६४ कुर्यात्. शाता.
७९ ,, सत्य.
१४४ कुर्यान्नक्त. स्क. पु.
६८ कुर्वन्. पैठी.
४२२ कुर्वाणः. वृ. शा.
४१५ कुह्विति. मत्स्य.
१२ कृतं. ऋ. वे. १०।४२।९
३९३ कृतैः. स्क. पु.
४६३ कृतोपवास. ब्रह्मा.
३५० कृत्वा. स्क. पु.
१५१ ,, भविर.
३४० ,, ब्रह्म
२९ विष्णुध. ३।११।१०
२७४ कृत्वोप. विष्णुध.
२४१ कृष्णजन्माष्टमी. भवि.
२९० कृष्णपक्षे. मार्क.
१९० ,, ,,
२३५ ,, निगम
२०९ कृष्णपक्षे. मार्क.
२१० ,, ,,
१८० ,, ,,
३६० ,, आप
३८३ कृष्णपक्षे
३६२ कृष्णे. स्क. पु.
२३५ कृष्णाष्टमी. ना. पु.
३५७ ,, संवर्त्त.
३८७ ,, स्क. पु.
२०२ ,, स्क. पु.
२२७ ,, वसि.
२५६ कृष्णाष्टम्यां. अ. पु.
२५५ केवलेन
१०३ को नाशो. काश्यप.
८५ क्रतुभिः. पु.
४६० क्रमेण. देपु.
२५८ क्रियाहीनस्य. स्क. पु.
८० क्वचित्. ल. हा.
६१ क्षयः. ज्यो. सि.
२१९ क्षयामर्ण. भवि.
३९९ क्षय. स्क. पु.
१८३ ,, वौ.
४६१ क्षिप्रं
४५९ क्षिप्रे. दे. पु.
४२७ क्षीणासु वौ. का.
१०१ क्षीयन्ते. विष्णुध
२१९ क्षीरेण. देव
३३८ क्षौद्रं. बृह.

ख

१८ खड्ग
१५७ खर्व. पिता.
१५७ खर्वं. भविर.
,, ,, उशना.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१८३ खर्वं.
१५७ खर्वो. उशना.
१८३ ,,
६७ ,, गर्ग
१५७ ,, भविर
,, ,, पिता
२६७ खादिरं
२६७ खादिरो. श. ब्रा. ३।६।२।१२

ग

४७३ गंगा
४६७ ,, वृ. व.
४६८ ,, व्यास
४७० ,, महा.
४७३ गजच्छाया. लिंग.
३७७ गणत्व. स्क. पु.
६२ गतेऽब्धि. सि. शि.
३७० गमे. पा. सू.
७५ गर्भे. यमा
४६७ गवां. वृ. व.
४६८ ,, व्यास
४६८ गांग. ब्रह्म
१७२ गाणपत्यं. मार्क
३४० गात्राभ्यङ्गं. वि. द.
३३६ गायत्र्याः. वि. र.
३५२ गुण. जै. न्या. २।२।६
४७४ गुणवत्. विष्णु.
२५२ गुणो ,,
२४८ गुणः. जै. न्या.
३४ गुरोर्मध्यम. ज्योति.
३१८ गृहस्थो
३४२ गृहीत्वौ. वारा.
४७२ गोदावरी. दे. पू.
४७० ,, ब्रह्म.
७८ गोभू. मत्स्य.
३० गोसत्रम्
१०३ गौरी. कश्यप.
४३५ ग्रसते. वृ. शा.
४६७ ,, वृ. गा.
४८३ ग्रस्ता. भृगु.
४८२ ग्रस्तोदये वृ. व.
४७७ ग्रस्यमाने
४८० ग्रहकाले. व्यास.
७६ ग्रहणं. गौतम.
४८१ ,, वृ. व.
१७३ गहणे. शंख.
४५७ ग्रहणो. सुमन्तु.
१७७ ग्रहादि
२८ ग्रहान्

घ

५४ घटिकानां
४०५ घटिकैका बोधा

च

३५५ चक्रवर्ती. मार्क.
४४५ चतस्रो. वसि.
३०५ ,, ब्र. वै.
२१८ चतुर्थी. ना. पु.
२२० ,,
२१२ ,, स्क. पु.
२१३ ,, बृह.
२१२ ,, ब्र. वै.
२२३ ,, आप.
२२१ ,, हारीत
१७६ चतुर्थे. यम.
,, ,,
४८२ ,, वृ. व.
२१८ चतुर्थ्यां. लिंग.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२०२ चतुर्थ्यां. ब्र. वै.
३६१ चतुर्दशी. स्क. पु.
३५६ ,, बृ. व.
४२४ ,, बौधा.
३५३ ,, बृ. व.
४३२ ,,
२३४ ,, जाबालि.
२११ ,,
१११ ,, बृ. व.
६४ चतुर्दशीं
४२८ चतुर्दश्यां. बौध.
३५९ ,,
३०५ चतुष्टये ब्र. वै.
४८२ चन्द्र. बृगौ
४८२ ,, कात्या.
४८५ ,, नार.
४७३ ,, ऋष्य.
४८० ,, जाबा.
४८० ,, मनु.
४६८ ,, व्यास.
४८४ ,, बृगौ.
७५ ,, काला.
७३ ,, यम.
९५ चन्द्रमाः विष्णुध.
४६२ चन्द्रार्क. ब्रह्म.
९५ ,, विष्णुध.
४०६ चन्द्रादि. मत्स्य.
३३० चन्द्रो. कात्या.
४६१ चराणि
४५९ चरे. देपु.
४२४ चरु. बौधा.
३७६ चलन्ति
४८ चान्द्रः
४५ चान्द्रः ब्र. सि.
२७ ,,
५३ चान्द्रो. ब्र. सि.
१०१ चित्रः. तै. सं.
१०२ ,, ,,
३१ चित्रा
३५१ चिन्तामणि. वसि.
४७४ चूडामणि. व्यास.
२८७ चैत्र. अ. सं.
२८६ ,, अ. सं.
६६ चैत्रात्. ब्र. सि.
५९ चैत्राद्यः. ज्योति.
२८ चैत्रे. ब्र. पू.
४१ चैत्रो. विष्णुध. ३।६।३

ज

४६१ जंगमं
३७६ जन्तु स्क. पु.
४७५ जन्मर्क्षे. मार्क.
३८७ जन्माष्टमी. स्क. पु.
२४१ ,,
२५९ ,, भृगु.
३७३ ,, स्क. पु.
२४५ जयं ,,
२४६ जयन्ती. पु.
२४५ ,, विष्णुध
२५६ ,, अ. पु.
२५८ ,, स्क. पु.
२६५ ,, आ. पु.
२६७ ,, योगी.
२६८ ,,
३८७ ,, स्क. पु.
२७४ ,, विष्णुध.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२५६ जयन्त्या. विष्णुध.
२४२ जयन्त्यां. अग्नि.
२७५ ,, ग. पु.
२१५ जया
३८८ जया
९६ जलमय सि. शि.
३७९ जागरं. स्क. पु.
३८७ जागरे. स्क. पु.
७६ जातकर्म
७५ ,, काला.
७६ जातकर्माणि. गौतमः
१४ ज्ञः. श्रुति
१७१ ज्ञाति. याज्ञ.
२०१ ज्येष्ठ. भवि.
४१ ,, विष्णुध ३।६।२
४७१ ज्येष्ठे. दे. पु.
२१९ ज्यैष्ठे. स्क. तु.

झ

४४५ झष. वृ. वसि.

त

४७१ ततः. मार्क.
१०६ ,, बु. प.
२७ ,, भविर.
४४३ ततो. भविर
४७१ ,, मार्क.
,, ,, व्याघ्र.
१२४ ,, भवि.
४४० तत्कर्म. ,,
६५ तत्कार्त्तिक
७६ त्कार्यम्. गभस्ति.
४१५ तत्काल. मत्स्य.
३८६ ,, ईसं.
९४ तत्क्षीर
९५ तच्चान्द्र
३७१ तत्तिथा. ई. सं.
३८६ ,, ,,
३७१ ,, प. पु.
२५७ तत्पापं. स्क. पु.
४७४ तत्पुण्यं. व्यास.
३६६ तत्प्रभृति. शि. र.
३३० तत्प्रयुक्तो. कात्या.
४६८ तत्फलम्. व्यास.
३२१ तत्र. भवि.
८३ ,, ज्यो.
१०१ ,, विष्णुध.
८४ ,, ज्यो.प.
१८२ ,,
४८० ,, निगम.
३४५ तत्र कूर्म.
३२५ ,, ना. पु.
३२४ ,, ,,
४३८ ,, स्क. पु.
२६७ ,, विष्णुध.
४२७ ,, कात्या.
४८२ ,,
३२१ ,, ग. पु.
३२१ तत्राप ना. पु.
३९७ तत्राल्पत्व
१४३ तत्रोत्तरत्र. जाबालि.
३१७ तत्रोप. ग. पु.
३१४ ,, भृगु.
३०६ तत्रोण
२७५ ,, प. पु.
४२९ तत्रैव. कात्या.
२८२ ,, ना. पु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३८३ तत्रैव.
४७९ तत्सर्व. महा.
१०४ तथा. मनु, ३।२७८
१५२ ,, याज्ञ.
१७३ ,, मनु. ३।३७८
८० तथैव. हारीत.
८२ तथैव. कौथु.
१७९ तदन्नं
३३६ तदभावे
४३४ तदर्धं. कात्या.
३२६ ,, ऋष्य.
४८३ तदह. वृ. गा.
४१९ ,, गोभिल.
४८४ तदा. स्क. पु.
९५ ,, विष्णुध.
१०१ ,, ,,
३३३ ,, व. सि.
६१ ,, ज्यो. सि.
१०१ ,, विष्णुध.
१४४ ,. कूर्म.
३०९ ,,
२७७ तदाष्ट. स्क. पु.
४२० तदोप. शाता.
३२४ ,, ग. पु.
४४७ तद्योगात्. देवल
३६२ तद्रात्रिः. कामिक.
३८५ ,, ,,
१४४ तन्नक्तं. स्क. पु.
४३७ तन्नक्षत्र. मार्क.
,, ,, सुमन्तु.
१२४ तन्नित्य. विश्वा.
३३१ तन्निमित्त. जै. मि.
९२ तन्यते. सि. शि.
४० तपश्च. वा. सं. १५।५७
११९ तप्ते. तै. ब्रा. १।६।२
२५२ ,, ,,
५६ तमतिक्रम्य
२३ तमहमिह. ज्योति.
३०१ तमेतं. बृ. उ. ४।४।२२
२६७ तमेवो. विष्णुध.
९४ तमोषधि
१५३ तया. गार्ग्य.
४३८ ,, विष्णुध.
३४७ तयो. नार.
२४६ ,, व. सं.
२०४ तर्को. महा. ३।२।११
७४ तर्पणं. कात्या.
२८१ तस्मात्. ब्र. वै.
२५६ ,, भवि.
९८ ,, पैठी.
१५ ,, कूर्म. १।५।१९
,, ,, विष्णु. १।२।२५
१२९ ,, ब्रह्म.
१०५ ,, शाता.
४१३ ,, मत्स्य
१७९ ,, मत्स्य.
३६ ,,
४८२ तस्मिन्. कात्या.
४१९ ,, गोभिल.
२३९ ,, स्क. पु.
३७८ तस्मै ,,
३६६ तस्य ,,
१९ ,, गीता. ७. २१
३३३ ,, पिता
२९४ ,, वि. र.
२६४ तस्या ,,
३२१ तस्या. कौत्स.
३८४ ,, ई. सं.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३६६ तस्यां. स्क. पु.
१४५ ,, सुमन्तु.
१४१ ,, वा. पु.
,, तस्याः. तै. आ. १।२१
३३ ता गूता.
३२४ ता दाह्ले. स्क. पु.
२४२ तात्. अग्नि.
४४६ तानि. माता.
२९३ तानि. ना. पु.
४७० तापी. ब्रह्म.
२८२ तामसे. ब्र. वै.
३२५ वामेवो. कूर्म.
३३९ ताम्बूल. विष्णुध
३५१ तावत्. वसि.
४७६ तावदेव. वृ. व.
१८४ तावान्
२६६ तास्तु. अ. को. १।४।११
२३ तां. आ. ब्रा.
९२ तिथय. सि. शि.
३९९ तिथिक्षये
२८२ तिथिनक्षत्र. ना. पु.
,, ,, स्क. पु.
२५ ,, गर्ग. जावा.
७१ ,,
१२७ तिथिनक्षत्र. सुमन्तु.
२७९ तिथिभान्ने
१६६ तिथिं. बृह.
१२६ तिथिः देवल.
२८१ तिथिर. ब्र. वै.
१२४ तिथिर्या. बौधा.
९९ तिथिस्तु
१२९ तिथीनामेव. स्क. ग.
२६९ ,,
९८ तिथनामेव गार्ग्यं.
३९३ ,, स्क. पु.
४४० तिथीना. स्मृति
६२ तिथीशं. सि. शि.
४३४ तिथेः लौगा
१४० तिथौ. सुमन्तु.
२१९ ,, कूर्म.
२८३ तिथ्यक्षयो
१२९ तिथ्यन्ते. स्क. पु.
३९३ ,, स्क. पु.
२७५ तिथ्यन्ते. ग. पु.
२८४ ,,
६७ तिथ्यर्धे
१८४ तिथ्यादौ
७४ तिलगो. काला.
३४० तिलपिष्टं. ब्रह्म.
३६३ तिस्रः
४६९ ,, ब्रह्म.
४७१ तीर्थं. मार्क.
७५ ,, काला.
७७ तुभ्यं ऋ. वे. ८।४३।१८
३०६ तुरीय. ब्र. वै.
४०५ तुलायां. जाबा.
३१३ तुल्यं. विर,
२५६ तुष्ट्यर्थं. अ. पु.
२१२ तृतीयया. ब्र. वै.
१९६ ,, व्यास.
२०० तृतीया. आप
,, ,, स्क. पु.
३५८ तृतीयै. नार.
४०८ ते देवा. श. ब्रा.
१८ तेन
१७२ ,, मार्क.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२०१ तेन भवि.
३०८ ,,
४७३ तेनैवय. ऋष्य.
२४२ ते भव, स्क. पु.
२९ तेन. नि. प्र.
५८ तेषां. महा.
३६ ,, विष्णुध. ३।१५३।२
३६६ तेषु. स्क. पु.
१०३ तोये. काश्यप.
६६ त्रयोदशं
१९५ त्रयोदशी. विष्णुध.
३५६ , ब्र. वै.
३८७ ,, स्क. पु.
३९२ ,, ,,
६८ त्रयोदशे. पैठी.
९४ त्रयोदशीं
३८४ त्रयोदश्यं. वायु.
३२२ त्रयोदश्यां. स्क. पु.
३२३ ,, हारीत
३५० ,, नार.
१०९ त्रिभिः. पैठी.
१४५ त्रिमुहूर्त्तं. सुमन्तु.
१४६ त्रिमुहूर्त्तः
१४३ त्रिमुहूर्त्तं. व्यासः.
१५६ त्रिमुहूर्त्ता. दक्ष.
४६३ त्रिरात्रो. वसि.
२८१ त्रिरात्रौ. वसि.
३२५ त्रिस्पृशा. ना. पु.
४४७ त्रिंशत्. वृ. व.
१०१ ,, विष्णुध.
९५ त्रिंशांश ,,
४१८ त्रीन्. लौगाक्षि.
१६३ त्रीनुद्दिश्य. कण्व.
१७० ,, काण्व
४१५ त्रुटि
२४१ त्रैलोक्य
३२६ त्र्यहस्पृक्. प. पु.
१४८ त्र्यहं. बृह.
१८ त्वम्

द

३३७ दक्षिणा. कात्या.
१०१ दक्षिणां. विष्णुध.
३८ दक्षिणा. सत्य.
३४४ दण्डवत्. ब्रह्म.
३३९ दन्तानां. वसि.
३५९ ददर्श
२४३ ददाति. स्क. पु.
३३८ द्यूत
१७१ द्यूतं. याज्ञ.
१७० दर्श
१८८ दर्शं. ना. पु.
३९७ ,, नार
३६१ दर्शा. स्क. पु.
४७६ दर्शे. बौधा.
३५२ दशमी
३२२ ,, वृ. व.
३२२ ,, ब्र. वै.
३२२ ,, विर.
३०९ ,, ग. पु.
३०५ ,, ग. पु.
३२१ ,, ना. पु.
२९० ,,
९४ दशमीं
३९५ दशमे प्रचेता
३४३ दशम्या
३४१ ,, ब्र. वै.
३४१ ,,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३३८ दशम्या देवल.
३२२ दशम्यां
३०८ दशम्याः
२२८ दशम्ये. सौर.
३९५ ,, प्रचेता.
३४६ दान. मत्स्य.
३०७ दानवे. कण्व.
४५७ दानानि. सुम.
३३३ दिनक्षये. मत्स्य.
३२५ दिनत्रय. स्क. पु.
२४ दिनत्वं. ज्योति.
५३ दिनरात्रा. विष्णुध.
१०१ दिनवृधौ ,,
१७३ दिनान्ते
१४६ ,, भवि.
१३६ दिनार्ध. देवल.
,, ,, स्क. पु.
९४ दिने
१०१ दिवसः. बिष्णुधा
१७८ दिवसस्य. वायु.
३३८ दिवा. वृह.
४६८ दिवाकरे. व्यास.
४६७ ,, वृ. व.
१०६ दिवानक्तम्. ऋ. ये., ५।७६।३
१९१ दिवावा
२२७ दीप्तान्सिः. लिंग.
१७२ दीर्घ. मार्क.
७५ दुर्गेन्द्र. काला.
३०५ दुष्टं. भवि.
४६४ दृश्यते. भरि.
२६९ ,,
४८५ दृष्ट्वा. विशा
४०० दृष्टचन्द्रा. व्यास.
४१३ दृष्टचन्द्रा. वृ, व.
१६७ देवकार्य. भा.
३३८ देवता. देवल.
३८ ,, सत्य.
१०७ देवस्य
१२४ देवानु. विश्वा.
१५१ देवाय. ब्रह्म.
७४ देवाराम. काला.
८४ दैवं. ज्योति.
१६३ ,, व्यास.
१०० ,, ,,
२२५ दैवे
२२१ ,, हारीतः
३९ द्वन्द्व
५४ द्वात्रिंश
३४७ द्वादश
२१ ,,
३९४ द्वादशाब्दं. ना. पु.
७४ द्वादशाह. काला.
२९३ द्वादशी. वि. र.
२९४ ,, ना. पु.
२३६ ,, ई. सं.
३२२ ,, वृ. व.
३५३ ,, स्क. पु.
९४ द्वादशीं
४५९ द्वादशैव. दे. पु.
३४० द्वादश्यां. ब्रह्मा.
१७२ द्वादश्यां. मार्क.
३१३ ,, नापु.
३४५ ,, वारा.
३४४ ,, कात्या.
३१५ द्वादश्या. स्क. पु.
३५५ ,, मार्क.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४१८ द्वार्वंशा. लौगा.
४६० द्विचतुः. देपु.
२००द्वितीयया. आप.
२०२ ,, स्क. पु.
१५० द्वितीया
२०० ,, स्क. पु.
११ ,, आपः.
२११ ,,
३५३ द्वितीया वृ. व.
१११ द्वितीया वृ. व.
४२४ द्वितीया. बौधा.
४२९ ,,
४२४ ,, वृ. शा.
३५३ ,, बृ. व.
३५६ ,, वृ. व.
१२७ ,, व्यास.
१६६ द्विमुहूर्त्तं. बौधा.
१५५ द्विमुहूर्त्तं
१५६ द्विमुहूर्त्तः. दक्ष.
८७ द्विराषाढ़. वृ. मि.
६१ द्विसंक्रान्त. ज्यो. सि.
३२५ द्विस्पृग्. कूर्म.
१९० द्वयपराह्न. मरीचि.
१८७ द्वयहे. मनु.
,, ,, सुम.
५१ द्वे द्वे
३३३ द्वौ. पपु.
१०१ ,, विष्णुध.

ध

६६ धटकन्या. ज्यो. सि.
४४० धनिष्ठा
३८३ धनुः
२३७ धन्या. नापु.
१२६ धर्मक्र. सौपु.
२४३ धर्मम. स्क. पु.
२०४ धर्मस्य. महा. ३।२।११
९७ धर्माधर्म. गर्ग.
८ धर्मे. वै. न्या.
२७ धार्यं. भविर.

न

२९३ न करोति. स. सं.
२५८ ,, स्क. पु.
२४१ ,, भवि.
२८५ न कार्या. प. पु.
२९९ न कालो. जै. न्या. २।४।१
४४३ न किञ्चित्. भविर
८३ न कुर्यात्. ज्योति.
२५८ न कृतघ्न. स्क. पु.
१४२ नक्तं
१४३ ,, व्यास.
३३४ ,, वा. पु.
२६४ नक्तादि. जाबा.
४६५ नक्षत्र. ज्योति.
४४० नक्षत्र. स्मृति.
१४२ नक्षत्र. भवि.
४४० नक्षत्रे. स्मृति.
३१० न चलति. विपु. ३।७।२०
३१६ न चेत्. ना. पु.
३०७ न तत्. ब्र. वै.
२३ नदी. आ. ब्रा.
३३४ न दुष्य. वा. पु.
३८१ न दृष्टा. ना. पु.
४७० नद्यां. शंख.
२९१ नन्दा. कूर्म.
५४ नपुंसके.
८३ न प्रति. ज्योति.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४० नभश्च. वा. सं. १४।१५
२९५ न भोक्तव्यं. कूर्म.
४१ नभो. विष्णुध. ३।६।५
२३९ ,, स्क. पु.
७९ नमो. नागर.
८३ न यात्रां. ज्योति.
४७२ नर्मदा. देपु.
२४३ नरो. भवि.
२५७ न लोको. स्क. पु.
२९० नवमी. बृ. वै.
२८७ ,, अ. सं.
९४ नवमीं
२८५ नवम्या. भवि.
२३४ ,, पपु.
२३८ ,, स्क. पु.
२७८ नवम्यां प. पु.
२८ नव वर्षापि
२०४ न वा. महा. ३।२।११
४७९ विद्यूया. या. स्मृ.
२९४ न समा. वि. र.
४७७ न स्वप. शि. र.
३१० न हरति. वि. पु. ३।७।२०
२२८ न हि. ब्र. वै.
८३ न हिरण्यं. ज्योति.
३९५ नाग. प्रचेता.
२२५ ,,
२३५ ,, स्क. पु.
२३४ ,, जाबा.
२२८ ,, निगम.
२२९ नागो. स्क. पु.
३०८ ,, स्क. पु.
४६६ नाडच. ज्योति.
४८० नाद्यात्. व्यास
४८५ नाद्यात्. विशा.
३३४ नानि कूर्म.
८ नाना. भोज.
३३१ नानुषगं. जैमि.
१२५ नापराह्णे
२४१ नाप्नोति. भवि.
३२९ नारी. मार्क.
३३६ ,, कात्या.
२३४ नाष्टमी. पपु.
२३८ नाष्टमी. स्क. पु.
३२८ नास्ति. मनु. ५।१५५
१७६ नाहं भवि.
७८ नित्य. बृह.
६९ ,, बृह.
२९६ नित्यं. ना. पु.
४६२ ,, ब्र. पु.
२९२ ,,
७४ नित्या. काला.
१७ नित्यो
२१८ निद्रां. भवि.
९८ निमित्तं. गार्ग्य
२६८ नियतात्मा. विष्णुध.
१४३ निशा
३८७ ,,
३९० निशि. स्क. पु.
९८ निषेध. गार्ग्य.
२८३ निष्कृति. स. सं.
९४ निष्पीतः
३२९ नष्फल. मार्क.
५४ निसूर्यो
२३९ नील:. स्क. पु.
१६ न्यून. शिष्य.
५४ नैऋतैः
३०९ नैकादशीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४६६ नैतेषु, स्क. पु.
४७४ नैमित्तिकं. कूर्म.
४५७ ,, सुम.
१७७ नैमित्तिकेषु
१५१ नैवेद्यं. ब्रह्म.
३०९ नैवोपो. गपु.
३०५ ,, ,,
१०१ नोपलभ्यं. विष्णुध.

प

१०९ पक्षद्वये. पैंठी.
४१७ पक्षान्ता. गोभि.
२९५ पक्षे. स. सं.
२९६ ,, नापु.
४१८ पञ्चदश्या. य. पा.
३४६ पञ्चमे
१०० पञ्चमी. पैंठी.
२३२ ,, ,,
२२५ ,,
२२३ ,,
९४ पञ्चमीं
५८ पञ्चमे
१६७ ,, पैंठी.
१०६ पञ्चमो. बृ. प.
२४ पञ्च. ज्योति.
१७६ पण्डिता. मरीचि.
३३९ पतित. हारीत
३२८ पतिं. मनु. ५।१५५
३८३ पतितानि
३२८ पत्यौ. वि. २५।१६
३३४ पयो
४१९ पर्व. गोभि.
४२९ पर्वणो
४१८ ,, वृशा.
१५ परंब्रह्म. कूर्मं. १।५।१९
२९५ परमा. विर.
३०९ ,,
३७६ परात्. स्क. पु.
२९४ परिगुह्य. विर.
१२ परिणाम. पात. २।१६
३५ परिपूर्वे. विष्णुध.
४८ परिशेषेषु स्मृतिः
४८३ ,, भृगु.
४१९ ,, गोभि.
४३४ परेह्नि. कात्या.
९९ पवस्व. तै. सं. ५।४।१२।१
२४२ पातितं. स्क. पु.
३७८ पात्र. महा.
२८२ पारणन्तु ना. पु.
२८० पारणान्तं. आ. पू.
३४८ पारणे. नार.
१८८ ,, नापु.
१६८ पार्वणं. हारीत.
१२३ ,, ,,
४०२ पिण्डान्. कात्या.
१६७ पितृकार्ये. वृ. या.
३३२ पितृणां. स्क. पु.
३४९ पितृतर्पण. नार.
३३६ पितृमातृ
,, ,, कात्या.
१७१ पितृव्यस्य. ब्रह्म.
४०३ पित्र्ये. हारीत
१८८ पित्र्ये. ना. पु.
,, ,, वसि.
४७९ पुण्यं. ब्रह्म.
४४९ पुण्यायां
४६५ पुण्याः. ज्योति.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३१३ पुण्यं
३१६ ,, पुरा.
३३६ ,, कात्या.
३१२ पुत्र. गपु.
२४३ ,, भवि.
३३५ पुत्रं. स्क. पु.
३३३ पुत्रान्. मत्स्य.
४२२ पुनः. गार्ग्य.
३१५ ,,
३१६ ,, गपु.
२८७ पुनर्वसु. अग.
८ पुंसो. योग.
३३६ पुरोधा. कात्या.
३३६ ,, ,,
३२९ पुष्णाल. मनु.
१५१ पुष्पै. भविर.
३४४ ,, ब्रह्म.
२९ पूजयेद्. विष्णुध. ३।१९९।२
२१९ पूजा. कूर्म.
१४० ,,
१७२ पूजाव्रतेषु. मार्क.
२१८. पूजां. लिंग.
२३५ पूज्याः. शंगी.
१५४ पूर्णा. बौधा.
१५९ ,,
२२३ ,,
३२५ ,, गपु.
३१८ पूर्णापि
४६७ पूर्णिमा. वृ. गा.
४६७ ,, वृ. गा.
३९४ ,, ब्रह्म.
४४९ पूर्णे. वृ. व.
४०८ पूर्णो. भविर.
४८४ पूर्व. स्क. पु.
७५ पूर्वत्र. काला.
४५८ पूर्वमेव. वृगा.
६१ पूर्वमर्धं. ज्योति.
३९७ पूर्वविद्ध. नार.
१८८ ,, नापु.
३५८ पूर्वविद्धा. नार.
३५६ ,, वसि.
२०३ ,, वसि.
१२२ ,,
२२९ ,, वसि.
२३३ ,, निगम.
३९४ ,, ब्र. वै., प. पु.
३६० ,, आप.
२४५ ,, प. पु.
२७८ ,, प. पु.
२३५ पूर्वविद्धा. निग.
२३१ ,, ब्रह्म.
२४२ ,, स्क. पु.
३२६ ,, ऋष्य.
१२८ पूर्वविद्धासु
३८७ पूर्वविद्धैव. स्क. पु.
३८८ ,, पपु.
१८७ ,, मनु.
२३७ पूर्वविद्धैव प. पु.
२५९ ,, भृगु
१८७ पूर्वस्यां. सुम.
७४ पूर्वहोम. काला.
३१५ पूर्वा. स्क. पु.
४२ पूर्वा. ऋ. वे. १०।५८।१८
६० पूर्वार्धं. ज्यो. पि.
१०५ पूर्वाह्णः. स्क. पु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१०५ पूर्वाह्ले. गोभि.
१३३ पूर्वाह्लिका ,,
१६७ पूर्वाह्लिकी. स्क. पु. ,,
४२० पूर्वाह्ले. शाता.
४१६ ,, लोगा.
४५३ ,,
१६८ ,,
१७३ ,, शंख
४०३ ,, हारीत
१२३ ,, मनु.
११५ पूर्वाह्लो
२२५ पूर्वो
२६६ पूर्वेद्यु:
३८६ ,, ई. सं.
४१६ ,, तै. ब्रा.
४५३ पूर्वोत्तर
१२४ पृष्ट्वा. भवि.
१८७ पैन्यं. ना. पु.
३५८ पौर्णमासी. भवि. पु.
३६४ ,,
४०८ ,, भविर.
४१३ ,, वृ. व.
४२३ पौर्णमास्या. आप. श्रौ.
३६४ ,, पपु.
१५१ पोर्वाह्लिका. याज्ञ.
४७१ पौषे. देपु.
१५ प्रकृतौ. वि. पु. १।२।२५
२१८ प्रज्ञां. भवि.
६० प्रजापति. तै. सं. ३।१।१।१
११० प्रतिप.
१६३ प्रतिपत्. व्यास.
२३२ ,, पैठी.
६७ ,, स्क. पु.
१०० प्रतिपत्. पैंठी.
,, ,, व्यास
१७२ ,, मार्क.
१६७ ,, स्क. पु.
१६७ ,, पैठी.
२६० ,, ब्रवै.
१६६ ,, आप.
१६६ ,,
१७१ ,, याज्ञ.
१०० ,, स्क. पु.
४०५ ,, जाबा.
४०२ ,, ,,
४०३ ,, हारीत.
२२३ ,, आप.
३२० ,, स्क. पु.
१५१ प्रतिपत्सु. भविर.
४२२ प्रतिपद्. गार्ग्य.
४२५ ,,
१११ ,, आप.
१३० प्रतिपद्येक. स्क. पु.
७७ प्रतिमासं. मरीचि.
२६३ प्रतिमासे. स. सं.
१६४ प्रतिसंवत्सरं. या. स्मृ. १।२५६
२४३ प्रतिवर्षं. भवि.
७० प्रति वे तै. सं. २।२।९।२
१७१ ,, ब्रह्म
८ प्रत्यक्ष. वै. न्या.
२२७ प्रत्यब्द. लिंग.
१७१ प्रत्यब्दं
८० ,, ल. हा.
,, ,, व्यास.
६४ प्रथमां
३१५ प्रथमे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

७६ प्रथमे. मिता. १।२५२
३८४ प्रदोष
१४३ ,, वत्स.
,, ,, कूर्म
१४४ ,, स्क. पु.
४५८ प्रदोषे. भविर.
,, ,, वृगा.
१४६ प्रदोषो
१४ प्रधानम्. श्रुति.
२३ प्रभव. ज्योति.
४५९ प्रभाते. भविर.
३८३ ,,
३३० प्रयुक्त्य. कात्या.
३०१ प्रयोजन. वै. न्या. ३।४।८
२८ प्रवर्त्तयामास. ब्रह्म.
७० प्रवृत्तं का. गृ.
३३४ प्रसस्तं. वा. पु.
३४४ प्रसाद. कात्या.
४४२ प्रहर. भविर.
१३ प्रहरौ. महा.
६४ प्राकृतः
६५ ,,
३६ प्राग्. विष्णुध. ३।१५३।३
२७३ प्राजापत्य
२४५ ,, विष्णुध
२५७ ,,
२७७ प्राजापत्यं. स्क. पु.
२४५ प्राजापत्येन ,,
११३ प्राणोऽस्मि. कौ. ब्रा. ३।१
११२ ,, वै. न्या. १।१।११।२८
१७७ प्रातः
४६३ ,, वसि.
३४९ ,, गपु.
३४४ प्रातः. कात्या.
२१५ ,,
१२५ ,,
,, प्रातरारभ्य
१४९ प्रातस्तु. चतु.
१०६ ,, वृ. प.
३४१ प्राप्ते. ब्र. वै.
२९ प्राप्नोति. विष्णुध. ३।१९९।१०
२२० प्रायः. शिर.
१८७ ,, सौर.
७५ प्रायश्चित्तं. काला.
७४ ,, ,,
३४६ प्रारब्ध. सत्य
४४९ प्राहुः. वृव.
२२० प्रीताः
२४२ प्रेतयोनि. पपु.
२७८ ,, ,,
२० प्रेतान्. गीता. ७।१४
३६७ प्रोक्षणी
१५ प्रोच्यते. कूर्म. २।५।१८

फ

३३४ फलं. वा. पु.
१५१ फलानि. ब्रह्म.
२९२ फलाश्रुते
३१ फाल्गुनी
४७१ फाल्गुने. देपु.

ब

३४० बहिः. कूर्म.
२४२ बहु. विष्णुध.
४७४ बान्धवा. कूर्म.
८२ बाले. र.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३४२ बाह्योप
३८३ बिल्व
२०२ बृहत्तपा. स्क. पु.
२३५ ,, नापु.
१३० ब्रह्मक्षत्र. या. स्मृ. १।३७
२५७ ब्रह्मघ्नस्य. स्क. पु.
३२७ ब्रह्मचारी. भवि.
११२ ब्रह्मणो. वै. न्या. १।१।११।२८
१५ ,, कूर्म. १।५।२१
२३७ ब्रह्मन्. भवि.
१५ ब्रह्मनारा. कूर्म. १।५।१८
१७१ ब्रह्मवर्च. याज्ञ.
१०३ ब्रह्मा. कश्यप.
३९३ ,, स्क. पु.
३९३ ब्रह्माण्डो. स्क. पु.
२५६ ब्राह्मणान्. भवि.
१९३ ,, ना. पु.
१०३ ब्राह्मो

भ

९५ भगणेन. विष्णुध.
२९ भगवान्. ,, ३।१९९।१
२०१ भद्रे. भवि.
३४७ भवेत्. नार.
३८६ ,,
२४५ ,, वि. र.
४९ ,,
४३३ ,, बौधा.
२७८ भवेत्तु. स्क. पु.
२७८ ,, विष्णुध.
३५१ भस्मतां. वसि.
४७० भागीरथी. ब्रह्म.
३३३ भानुवारे ससं.

३३५ भार्या. पैठी.
३२९ ,, काला.
८ भावि. भोज.
१५० भिक्षा. उशना.
१९ भुक्तानि. यो. वा.
४८२ भुञ्जीत. मत्स्य.
१५१ भुज्यन्ते. ब्रह्म.
३२७ भुंक्ते. नापु.
३९५ भूतविद्धा. प्रचेता.
३८४ ,, वायु.
३९५ ,, वायु.
३९४ ,, स्क. पु.
२३५ ,, स्क. पु.
४०२ ,, ज.बा.
४०३ ,, हारीत.
४०१ ,, बृह.
३५७ ,, ब्र. वै.
३९७ ,, कार्ष्णा.
४०५ ,, बौधा.
४०५ ,, जाबा.
२१ भूतं मा. उ.
१६ भूतानां. ज्योति.
३०८ भूतो. स्क. पु.
२२९ ,, ,,
३९५ ,, ,,
४७९ भूमि. महा.
४७१ भूमिष्ठ. महा.
३३ भूय
२९१ भृगुणा. कूर्म
४८४ भोक्तव्यं. स्क. पु.
३४३ भोक्ष्यामि. विष्णु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१६ भोक्तारः. यो. वा.
१७६ भोजको. भवि.
३१२ भौमो. स्क. पु.
३३६ भ्रातरं

म

६६ मकरे. ज्यो. सि.
७५ मघा. काला.
२६३ मद्यपा. ससं.
३६० मद्योः. बोधा,
३९ मधुश्च. तै. सं. १।६।२।३
४२० मध्यान्दिनात्. वा. भा.
२१३ मध्याह्न. वृह.
१८२ ,,
१०५ ,, व्यास.
१६७ ,, वृ. गौ.
१०९ ,,
१३७ ,,
,, ,, बौधा.
४०१ मध्याह्नात्. वृह.
४०१ ,, बौधा.
३५९ मध्याह्ने
४८५ ,,
२१३ ,,
४६४ मध्ये. गालव.
८५ ,, वृष.
१७९ ,, नार.
२३ मनु. ज्योति.
२५ मनुष्याणां प. स्मृ. १।२
३४४ मन्त्रं. कात्या.
३९० मन्त्रै.. स्क. पु.
२७९ मन्दा. देपु.
७४ मन्दादिषु. काला.
७७ मन्वादौ. मरीचि.
३८६ मम. ईसं.
३७७ ,, स्क. पु.
३६१ ,, स्क. पु.
८० मलमास. पैठी.
८२ ,, वृ. म.
८१ ,, भृगु.
५५ ,,
७२ मलमासे. गृ. प.
८१ ,, भृगु.
७९ ,, सत्य.
७६ मलि
७४ ,, काला
५४ ,,
७६ ,,
७१ मले. का. गृ.
४५ मस्यन्ते सिशी.
३८९ महता. स्क. पु.
१९० महनी. मरीचि.
२४३ महा. स्क. पु.
२०४ ,, महा. ३.२.११
३८६ ,, ईसं.
७३ ,, कागृ. प.
३०६ ,, ब्र. वै.
३४९ ,, नार.
३८ महिषा. वै. सं.
२३७ महेश. भवि.
१८ मां
८२ मांगल्य. वृभ.
२४१ मांसं
४२ माघ. विष्णुध. ३।९।६
३७६ माघ. स्क. पु.
३८६ ,, ई. सं.
३६३ ,, स्क. पु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३८८ माघ स्क. पु.
३९०, ३९२ माघ. स्क. पु.
३६६ माघ. स्क. पु.
३७८ माघ. स्क. पु.
३९२ ,, कामिक.
३९२ ,, स्क. पु.
२१८ ,, नापु.
३८८ माघा
१७६ माता. भवि.
३४० ,, कात्या.
१७६ मातु. ,,
३७७ ,, स्क. पु.
३३ मातुल. आपु.
३८ मातृ. वै. सं.
२९४ ,, स्क. पु.
२१३ ,,
८७ माधवा. वृ मि.
४५३ माना. देपु.
४८ मानैः. स्मृति.
२०१ मार्ग. भवि.
१४१ ,, वा. तु.
४७१ मार्गे. देपु.
५३ मासं. ग.पु.
८४ मास. ज्यो. पि.
८० मास. व्यास.
१७१ ,,
४५ ,, सि. शि.
८४ ,, हारीत
८२ मास
१८ ,,
६४ ,,
६५ ,,
५१ ,,
८४ मास हारीत
५१ मासा
६७ ,,
४९ मासि
५१ ,,
१५१ ,,
२३८ ,, स्क. पु.
२५६ ,, भवि.
१६९ ,, पैठी.
५६ मासे
५४ मासेंयु
४८ मासो. आध.
४५८ मिथुनात्. भविर.
,, ,, देपु.
२९ मीन. विष्णुध. ३।१९९।१
४३ ,, बौधा.
४८३ मुक्ति–विष्णुध
४८० मुक्ते. व्यास.
२६९ मुख्य. वसि.
४७१ मुच्य
३७६ मुमुक्षु. स्क. पु.
१७९ मुहूर्त. मत्य.
१०५ ,, व्यास.
२७८ ,, पपु.
२७३ ,,
२६८ ,, वसं.
३२६ मुहूर्त्तः. ऋष्य.
१४२ मुहूर्त्तोनं. भवि.
१ मूल. सां. का. ३
१८७ मूले. सौ.
३४५ मृतके. बाराह.
१७६ मृताहं. मरीचि.
१७६ मृते. भवि.
१६४ ,, या. स्मृ. १।२५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४६१ मृदु
४६१ मृदुनि
३७६ मेदु.
२९ मेष. विष्णुध. ३।१९९।२
८७ मेषादि. बृ. मि.
५९ ,, ज्योति.
२९ म्लेछ. विष्णुध. ३।१९९।१
,, म्लेछ. ,, ३।१९९।१०

य

३७२ य एवं
२१ यच्चान्यत्. मा. उ.
३५४ यदन. तै. ब्रा.
४२७ यजनीये. कात्या.
२० यजन्ते. भ. गी. ७।१४
२९९ यजिना. शा. दि. २।४।१
१०५ यजुर्वेदे
४५७ यज्ञे. सुमन्तु.
४६ यज्ञेन
३३४ यत्. वा. पु.
४२ ,, प्र. ब्रा.
१४२ यतिश्च
,, यते. देवल.
४७९ यत्र. याज्ञ.
४३७ यत्रार्ध. सुमन्तु
४३३ यत्रोप. बौधा.
१०४ यथा. मनुः ३।२७८
३९५ ,, भविर.
३४९ ,, स्क. पु.
४७४ ,, देवल
७६ यद्. मरीचिः
२५६ ,, भवि.
२४२ ,, विष्णुध.
७६ यद्. मिता. १।२५२
४२५ ,, बृ. च.
३५४ यदन
४२९ यदाह. श. ब्रा.
१६० यदा. बृ. व.
१०१ ,, विष्णुध.
४८४ ,, स्क. पु.
३४९ ,, ,,
४५९ ,, वृ गा.
४८५ ,,
४२८ ,, बौधा.
२४६ ,. व. सं.
१६० ,, मार्क.
६८ यदि. ब्रसि
३२४ यदि. ना. पु
४४१ ,, भविर.
२९६ यदीच्छेत्. विर.
२०० ,, स्क. पु.
२९६ ,, ग.
३५२ ,,
३७७ ,, स्क. पु.
४३१ यदीष्ट्वा. आ. श्रौ.
६५ यद्वर्षे
२५८ यमस्य. स्क. पु.
३३६ यमुद्दिश्य. कात्या.
३५१ यमुनो. वसि.
४१३ यस्मात्. मत्स्य.
४१० ,, ब्रह्मा.
५५ यस्मिन्. का. श्रु.
२३८ ,, स्क. पु.
२३९ ,, ,,
११५ ,,
१३५ ,, मनुः २।१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६४ यस्मिन्. बर्हि.
४४१ ,, भविर.
४३८ ,, मार्क.
४२६ ,, तै. ब्रा.
४२५ यस्य. तै. ब्रा.
१६ ,,
४१० ,, स्क. पु.
१८७ यस्या. मनु.
७२ ,,
१६६ ,, बृह.
१६० ,, पपु.
१२६ यस्यां. वृव.
३६७ ,, हारीत.
४६३ यः. ब्रह्म.
४१२ ,, गोभि,
३७६ ,, स्क. पु.
६६ ,, गोभि.
४१८ याग. वृ. शा.
४१३ या. काठ.
३५१ या. वसि.
३५१ तादृशं. वसि.
३६६ यानि. स्क. पु.
४४६ या. देवल.
३४४ यानि. ब्रह्म.
४६७ यावा. वसि.
१२६ याम.
१२६ यां, स्क. पु.
,, ,, देवल.
,, ,, सौ.
३६ यान्. बृ. उ. ६।२।१६
२६३ यानि. ना. पु.
२६६ यावत्. जै. न्या. २।४।१
२६३ यावत्. ब. ब्रा.
१५३ यां. देवल.
२८४ याः
३६ यान्
१२६ याग. वृ. व.
२०० याक. स्क. पु.
२८८ युक्ता. अङ्गिरा.
१६२ ,, ,,
२३ युग. ज्योति.
२१६ युगं. देवल.
११० युग्माग्नि
४३७ युज्यते. विष्णुध.
४६१ युतं
१७२ युवानः. मार्क.
८८ ये चामी
१४६ ये त्वा. भवि,
२४२ येन. स्क. पु.
२१ येना. श्वेउ.
२०८ यैः. पपु.
२४२ ,, ,,
३०५ योग. ब्र. वै.
४६ यो वै. तै. सं. ७।५।६५
२५६ योगे. भवि.
१८ यो न
१५३ यो प. गार्ग्य
१२५ ,, स्क. पु.
१२४ ,, बौधा.
७१ योमृ. तै. सं. २।२।३।२
२५८ यो भू. स्क. पु.
१६ यो यो. भगी. ७. २१
३७४ यौगिकः
२३७ यौगिको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र

४१६ रक्षांसि. कात्या.
२४२ रटन्तो. स्क. पु.
२०३ रंभा. ब्र. वै.
२०१ ,, भवि.
४७४ रवि. व्यास.
४७३ ,,
४४६ ,, शाता.
८४ रविणा. ज्यो. प.
६४ ,,
४६७ रवीन्दु. वसि.
४८२ रवेः. वृव.
९७ रवे. ब्र. सि.
४१३ रंजनात्. मत्स्य.
२६७ रवीन्दु. व्रसि.
४१३ राका. बृत्र.
४१५ राका. मत्स्य.
४५९ राक्षसी. देपु.
१७३ ,,
७५ राजा. काला.
७८ ,, भृगु.
३३६ राज्यस्य. कात्या.
३८३ रात्रि.
४१३ ,, वृव.
२३८ ,, स्क. पु.
२६९ ,,
१७४ रात्रें. व्याघ्र.
३८४ रात्रौ
४५७ ,, देवल.
३९० ,, स्क. पु.
३४३ ,, नार.
४५८ ,, सुम.
१७४ रात्रौ शाता.
११ ,, मनु.
१०३ ,, काश्य,
२६५ रात्र्यर्धं. वसं.
१०१ रात्र्या. विष्णुध.
४५७ राहु. याज्ञ.
४७४ ,, विष्णु.
४७७ ,, ब्रह्म.
४८४ राहोः बृ. गौ.
२८४ रूक्षा
३८९ रुद्र. ब्र वै.
१०३ रुद्रां. काश्य.
११० रुद्रेण
७४ रोगे. काल.
७६ ,, मरीचि.
२६८ रोहिणी
२६७ ,, विष्णुध.
२४५ ,, सनत्
२४६ ,, पु.
२४५ ,, विष्णुध.
२६४ रोहिण्या. विर.
१०३ रौद्रः
१०८ रौद्र. शंख.
१०३ रौहिण

ल

१०१ लघ्वक्षर. विष्णुध.
४१५ ,,
१९ लभते च. भ. गी. ७।२२
२७ ललाट. भविर.
३०८ लव. नापु.
३८६ लिंगा. ईसं.
३९० लिंगे. स्क. पु.
३१५ लुप्यते. बृ. व.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१०६ लेखा. वृप.
३० लोक्यं. विष्णुध.

व

५४ वत्सरा
२९५ वदन्नी. कूर्म.
२९५ वनस्थ. देवल.
१७२ वरार्थिनीं. मार्क.
३४ वर्जनीया. ज्योति.
२७५ ,, ब्र. वै.
३४६ वर्जयेत्. वि. र.
३४३ ,,
३९५ वर्जयित्वा. स्क. पु.
३९४ ,, ब्र. वै.
३५६ ,, ,,
१३५ वर्णानां. मनु. २।१८
४४८ वर्त्तमाने. बृह.
४३८ वर्धमान. बौधा.
१६० ,, बृव.
,, ,, बौधा.
,, वर्धमाने. मार्ग.
८२ वर्वंबुद्धि. कौथुमि.
३७६ वर्षे. स्क. पु.
७९ ,, सत्य.
८२ ,,
२४१ ,, भवि.
७८ ,, मत्स्य.
२५७ ,,
३९ वसन्त. वा. सं. १३।२४
२४४ वसन्ते. आ. श्रौ. १०।२।५
२७ ,, भविर.
४३ ,,
४१ वसन्तो
२३७ वानप्रस्थो. कूर्म.

४७० वापी. शंख.
८३ ,, ज्योति.
४३१ वायव्यं. तै. सं.
४७४ वारेषु. व्यास.
४०२ वासरस्य. कात्या.
२६९ वासरे
३८० विकला:
११९ ,,
२८८ ,,
२३ विदित. ज्योति.
१२५ विद्यमा. स्क. पु.
२१८ विद्या. भवि.
३०१ ,, वै. न्या. ३।४।८
३९७ विद्वान्. पिता.
२०० विधत्रा. स्क. पु.
३१५ ,,
३१६ ,, गपु.
९८ विधि:. गार्ग्य.
१७४ ,, व्याघ्र.
१६८ ,, गौ.
३४३ विद्धोप. नार.
२७४ विना. आपु.
१०१ ,, विष्णुध.
२१२ ,, स्क. पु.
२१९ ,, स्क. पु.
२१७ ,, भवि.
४७९ विप्र. बौधा.
६ विरोधा. जै. न्या. १।३।२
४७५ विशिष्ट. मार्कं.
३४६ विशेष. मार्क.
२६९ विशेषेण
४७० विशोका. ब्रह्म
४२ विश्वा. ऋ. वे. १०।५५।१
९४ विश्वेदेव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२१९ विषाणि. देव.
" " कूर्म.
४४६ विषुवं. गालव.
४४५ विषुवे. वसि.
१०३ विष्णु. काश्यप.
४५३ विष्णुः. काश्यप.
३१० विष्व
२०२ विहाय. स्क. पु.
७९ वृद्धि. भृगु.
३१९ " विर.
४४५ वृष. वसि.
८२ वेद. वृ. म.
१७२ वेदान्. मार्क
१०५ वेदै
४७१ वैशाखे. दे.पु.
३८० वैश्वा
११६ " तै. सं. २।२।५।१
७३ " तै. सं. १।२५१
३१८ वैष्णवो
४७३ व्यतीपात. लिंग.
३२९ " गौ.
३८६ व्याप्ता. ईसं.
३८६ व्याप्या. ईसं.
३४० व्यायाम. ब्रह्म
३४० व्रतस्थो. विर.
६९ व्रतानां
७५ व्रतारं. काला.
३८४ व्रतिभि. ईसं.
१६० व्रते. पपु.
१५३ व्रतो. भविर.
१५४ " पपु.
२८८ व्रीहिः. आ. श्रौ. ६।३१।१३

श

३४७ शक्तिमान्. कात्या.
३५९ शत. नार.
२५५ " "
३३१ शयनी
२५६ शशांक. भवि.
१०३ शंकर
३४२ शमन्न
३४२ शरीर
२१९ शंखपाल. कूर्म.
१०३ शंबर
३३८ शाकं. कूर्मं.
५४ शाता
३७८ शान्तात्मा. स्क. पु.
१७ शास्त्रा. श्स्रो. वा. १।२८
३८६ शिव. ईसं.
३८५ " नासं
" "
३७६ " स्क. पु.
३९२ " "
३७८ " ईसं.
३६६ शिव. शिर.
३७२ " स्क. पु.
३७१ " "
३८६, ३७१ शिव. ईसं.
३६६ शिव. स्क. पु.
३७१ " ना. सं.
३९२, ३६३ शिव. स्क. पु.
२३७ शिव. पपु.
३७७ शिवं. स्क. पु.
४२ शिशू. ऋ. वे. १०।५५।१८
३६३ शीघ्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४७१ शीत. मार्क.
२३३ शुक्ल. निग.
२०९ ,, मार्क.
२८५ ,, आप.
१६० ,, मार्क.
२९० शूक्ल. मार्क.
२८ ,, ब्रह्म.
१८० ,, मार्क.
१९३ शुक्ला नापु.
२७ ,, भविर.
२०१ ,, भवि.
३४७ ,, वार.
३५८ ,, व्यास.
१०० शुद्धा सूसि.
३१६ ,, स्कपु.
२५७ शुद्रा ,,
५१ शेषा
२४५ शृणुष्व ससं.
४५७ श्रवणे सुम.
४४० ,,
१२ श्राद्ध या. स्मृ. १।२१८
८५ ,, जातू.
३९७ ,, कार्ष्णा.
७६ ,,
७४ श्राद्धं काला.
३४० ,,
१७२ ,, मार्क.
८२ श्राद्धीये
३०१ श्राद्धार्थं वै. न्या. ३।४।८
३३९ श्राद्धोप वि. र.
२४५ श्रावण ससं.
२३७ श्रावणी पपु.
३८७ ,, स्कपु.
१२२ ,,
४७२ श्रावणे देपु.
२४१ ,, भवि.
२४६ ,, वसं.
२४५ ,, ससं.
१७२ श्रियं मार्क.
२८७ श्रीराम अग.
४७९ श्रोत्रिय बोधा
४७९ ,, दक्ष.
६८ श्रौत पैठी.
४७६ श्रौते व्याघ्र.
४२८ श्वोभूते बोधा.
४२४ ,, ,,

ष

४४५ षड्शी वृव.
४६४ षडशी गाल.
४६३ ,, शाता.
४६४ ,, वृष.
४६ षडहैः तै. सं. ७।५।६।१-२
४७ ,, ,,
४३ षड्वा
३९ ,,
७२ षष्टी सागृप
२३१ षष्ठी स्कपु.
३९४ ,, ब्रह्म.
३९६ षष्ठ्य पपु.
३५६ ,, निगम.
११० ,,
६१ षष्ठया ज्योति.
६० ,, ज्यो-प.
२२७ ,, भवि.
८२ ,,
२३२ षष्ठेय स्कपु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१६४ षाण्मा पैठी.
४३२ षोडशे

स

१८ स उपेत्य.
३४२ स करोतु.
१७५ स काल स्कपु.
१३ ,, मभा.
१७७ , भवि.
१७८ , वायु.
१७९ ,, नार.
५३ सचाभि विष्णुध.
२९० सचैलं वृव.
१९ स तया भ. गी ७।२२
२३ स तैः आ. ब्रा.
३० सत्रा विष्युध.
३५८ सदा भविर.
३५३ ,, स्कपु.
१४३ सद्दिवा
,, सदैव जाबा.
२२७ सद्रव्य भवि.
२९३ स नरो ससं.
८५ स पक्षः वृम.
८५ ,, कार्ष्णा.
१६४ सपिण्डां पैठी.
७५ ,, काला.
८२ ,, कौथुमि.
१८७ सपितृ मनु.
४४६ सप्त शाता
२४२ सप्त उपक
२४९ सप्त तै. ब्रा. १।३।४
४५९ ,, देपु.
७९ ,, नागर.
१७८ ,, आप.
९४ सप्तमी
२७७ ,, स्कपु.
२८८ , ,,
२३२ सप्तमी स्क. पु.
, ,, ब्र वै.
२३३ ,, ब्र वै.
२३४ सप्तम्या स्क. पु.
२२८ ,, ब्र. वै.
२६७ ., विष्णुध.
४६३ सप्तो वसि.
१०१ सम विष्णुध.
४७९ ,, दक्ष
३१० ,, वि. पु. ३।७।२०
२९४ समा बिर.
३१० ,,
५३ ,, विष्णुध.
४११ सयत्रै म. ब्रा.
१७६ सयाति भवि.
२०० ,, आप.
१४ सविश्व श्रुति.
४६८ सस्ना व्यास.
४० सह. वासं १४।२७
४२ सहो विष्णुध. ३।९।५
३४९ संकटे देवल.
२८० ,, ,,
३५१ संकल्प वसि.
३१२ संकीर्णैः गपु.
३९० संक्रमि स्कपु.
५० संक्रान्ति ब्रसि.
४४७ ,, देवल.
४५२ ,, भविर.
४६५ ,, जाबा.
७३ संक्रान्ति पैठी.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४४६ संक्रान्तौ शाता.
४८० ,, जाबा.
४८५ संक्रान्त्या नार.
३३० ,, पपु.
३२९ संक्रान्त्यां कूर्म.
२७५ संक्रम भविर.
२४८ संख्ये जै. न्या.
१०६ संगव वृ. प.
१७८ संत्यज्य नार.
३१२ संदिग्धै गपु.
१०८ संधि कात्या.
४१६ ,,
४२२ ,, कात्या.
४:२ ,, वृशा.
४१५ सन्धौ
१७४ सन्ध्ययोः मनु.
१०८ संध्या
३४९ ,, कात्या.
४८३ ,, वृशा.
२५८ संपीड्यते स्कपु.
३४४ संपूज्य ब्रह्म.
१६२ संपूर्णा अंगिरा.
२८८ ,, ,,
३२० ,, स्क. पु.
९७ ,, ,,
४५३ संपूर्णे दैपु.
३११ संपृक्तै गोभि.
३१५ संपूर्णैः वृव.
३१४ संपूर्णैः भृगु.
,, ,, नापु.
३१३ ,, ,,
३२० ,, गपु.
३१७ ,, ,,
३१८ संपूर्णे
३४६ संप्रवृ ऋष्य.
१०० संमुखी स्क. पु.
१६७ संमुखी ,,
३१२ संयुक्तै गपु.
२०० संवत्सर आप
३१ ,,
३६ ,, विष्णुध. ३।१५३।१
३३ ,,
३५ ,, ब्र. वै.
३२२ ,, विर.
४४० ,,
७७ संवत्सरे कौथुमि.
३५ ,, विष्णु ध. ३।११९।२-३
,, संवत्सरो ज्योतिः
६४ संसर्पा बार्ह.
१९ संसार योवा.
२९६ ,, कात्या.
३६७ संस्कार
९२ संस्थिता सिशि.
३९३ ,, स्कपु.
४७० सर्व व्यास.
३०८ सर्वं निग.
१५ ,, कूर्म ०।५।२०
१३४ ,, आप सू. २।११। २९।१५
१६ सर्व. विष्णुध.
४५ ,, ब्र. सि.
२१७ ,, भवि.
४७३ सर्वस्वे म. भा
१०० सर्वा. भू. सि.
३७७ सर्वान्. स्क. पु.
१७२ ,, मार्क.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२९ सेर्वान्. क. सू.
७७ ,, काठ. सं. ३५।१८
३७७ ,, ई. सं.
५ सर्वे. तै. ना. १।८
३१५ ,,
४७७ सर्वेषां. षट्.
२३३ सर्वेषु. ब्र. वै.
१६ ,,
२३२ ,, ब्र. वै.
२८२ ,, ब्रा. वै.
२५६ सर्वे. विष्णुध.
३१४ ,, ना. पु.
१६ ,,
४२० साखर्विका. नारा.
३९७ सा. हारीत.
१८२ ,, हारीय.
३०५ ,, भवि.
१६६ ,, हारीत.
३६० ,, बौधा.
१२६ ,, स्क. पु.
१६० ,, बौधा.
१५४ ,, भविर.
१५३ ,, व्यास.
,, ,, देवल.
१५९ ,,
२०० सा. स्क. पु.
८ सांख्य. वै. न्या.
२७५ सा ब्र. वै.
३७८ सा. स्क. पु.
४२२ ,, कत्या.
१०८ ,, ,,
३६० ,, बौधा.
१०५ साम
९९ सामिधेनी
४१६ सामीप्यं. बौधा.
३९९ साम्येऽपि.
३३८ सायं. अंगिरा.
१८८ सायाह्न. गोभि.
१०६ ,, व्यास.
४८५ सायाह्ने.
४८२ ,, मत्स्य.
३०८ सार्घ. निग.
३५२ ,,
४६६ सार्धा. ज्योति.
९७ सावनं. ब्र. सि.
५३ सावने. विष्णुध.
१०८ सावित्र. शंख.
२०० सावै, आप.
२ सांप्रत. सां. का. ३३
२८२ सांयोगि. ना. पु.
३९३ सिञ्थे. स्क. पु.
३१० सितम. वि. पु.
१७ सिद्धार्थ. श्लो. वा.
४१३ सिनीवाली
४०१ ,, बौधा.
४०० ,, लौगा.
६४ ,,
२६५ सिंहे. व. स.
७४ सीमन्त. काला.
२९६ सुकलत्र. ना. पु.
३५१ ,, वसि.
८३ सुजरत. ज्यो. शा.
३०८ सुराया. ना. पु.
४१६ सूक्ष्म. बौधा.
३४६ सूत. मत्स्य.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३४५ सूत वारा.
२९५ ,, विर.
४७६ ,, वृ. व.
४८२ सूर्य. वृ. गौ.
४८० ,, निगम
४७७ सूर्ये. शि. र.
४७२ ,, दे. पु.
१०८ ,, वा. सं. ३।१९
१७४ ,, शाता.
२४ सोऽका. बृ. उ. १।२।४
४०८ सोऽमा. बृ. उ,
,, ,, तै. ब्रा.
२८७ सैव. अग.
१८८ ,, व्यास.
२८३ ,, अ. सं.
३२५ सैवो. स्क. ?.
३३१ ,,
२४६ सोप. विष्णुध.
४७४ सोम. देवल.
७२ ,, का. गृप.
१७ सोवा
२०१ सोभा. भवि.
३३ सौर. आयुः.
५३ ,, विष्णुध.
,, सौरेण ,,
५१ सौरो
१५१ सौवर्ण. भविर.
२२४ स्कन्दो
४०० स्त्रीभिः. लौगा.
३४४ स्तोत्रैः. ब्रह्म.
४४६ स्थिर. गालव.
४४३ स्नात. भविर.
४६३ स्नात्वा. वसि.
३४४ ,, ब्रह्म.
३४६ ,,
४७७ ,, षट्.
४७३ ,,
४५७ स्नान. याज्ञ.
४७४ स्नानं. शाता.
७५ ,, काला.
४७७ ,, ब्र. वै.
७४ ,, काला.
३४९ स्नाना. नार.
७३ स्पष्ट
४७३ स्पृष्ट्वा.
३४ स्फुट. ज्योति,
४७६ स्मार्त्त. व्याघ्र.
१० स्मृति. तै. आ.
३४० स्मृत्या. विर.
४७३ स्मृत्वा
१७४ स्वकाल. व्यास.
३७९ स्वयं. स्क. पु.
१९ ,, यो. वा.
२९६ स्वर्ग. ना. पु.
३५१ ,, वसि.
१८ स्वाकार

ह

२८१ हन्यात्. ब्र. वै.
१४० हवि.
३४० ,,
४६१ हिरण्य
२५६ हिरण्यं. भवि.
९४ हुतम्.
४६१ हुताशन.
३९ हेम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न

४४३ न किंचित्. भविर.
३५२ नक्ते.
४४० नक्षत्र.
४६५ ,, ज्योति.
४४० नक्षत्रे.
३५१ अ गंगा. वसि.
३५१ न चापि. वसि.
३५४ न नत्र
३४६ ,, सत्य.
३५२ नन्दायां
३७६ नपून स्क. पु.
४३३ न पृथि
४२२ न यष्ट
४१९ ,, कात्या.
४७९ न विद्यया याज्ञ.
३४० न स्पृशेत्. कूर्मं.
४७७ न स्वपेत्. शिवर.
३६३ न हीन
३९५ नाग. प्रचेता.
४७९ नाद्यात्. व्यास.
३४३ नाना. ब्रह्म.
३४६ तिगृ. ब्र. वै.
४६२ नित्यं. ब्रह्म.
३७४ निर्मंघ्य.
३७१ निर्विघ्न
३५१ नेदृशं. वसि.
४५७ नैमित्तिकं. सुम.
३८६ नैव ई. सं.
३५० मैवेद्यं. स्क. पु.
३५२ नोपोषित.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहायक ग्रन्थ-पञ्जी

वैदिक

ऋग्वेद	वैदिक संशोधन मंडल, पुना
काठकसंहिता	सं० सूर्यकान्त, १९८१
तैत्तिरीयसंहिता	आनन्दाश्रम, पुना
माध्यन्दिनसंहिना (शु. य.)	निर्णयसागर, बम्बई
वाजसनेयी संहिता	मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
कौषीतकिब्राह्मण	
ताण्ड्यमहाब्राह्मण	एसीयाटिक सोसायिटी, कलिकाता
तैत्तिरीयब्राह्मण	आनन्दाश्रम, पुना
बह्वृचब्राह्मण	
शतपथ ब्राह्मण	वैदिक यन्त्रालय, अजमीर
सामविधानब्राह्मण	सं० महेन्द्र नाथ सरकार, कलिकाता
तैत्तिरीयारण्यक	आनन्दाश्रम, पुना
कौशिकसूत्र	मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
आपस्तम्बश्रौतसूत्र	सं० रीचार्ड गार्वे, कलिकाता
गोभिलगृह्यसूत्र	वाराणसी
कठोपनिषत्	गीताप्रेस, गोरखपुर
छान्दोग्योपनिषत्	गीताप्रेस, गोरखपुर
बृहदारण्यकोपनिषत्	,,
महानारायणोपनिषत्	मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
श्वेताश्वेतरोपनिषत्	गीता प्रेस; गोरखपुर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मशास्त्र

आपस्तम्बधर्मसूत्र	चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी
गौतमधर्मसूत्र	,,
बौधायन धर्मसूत्र	,,
देवलस्मृति	स्मृतीनां समुच्चय, आनन्दाश्रम, पुना
पराशरस्मृति (माधवीयसहित)	एसीयाटिक सोसायिटी, कलिकाता
मनुस्मृति	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
याज्ञवल्क्यस्मृति (मिताक्षरासहित)	निर्णयसागर, बम्बई
विष्णुस्मृति (केशववैजयन्तीसहित)	आड्यार लाईब्रेरी, माद्रास
व्याघ्रस्मृति	सं० एस० जि० मोघे, भण्डारकरप्राच्य-विद्यासंशोधनागार, पुना
व्यासस्मृति	स्मृतीनां समुच्चय, आनन्दाश्रम, पुना
शंखस्मृति	ABORI. Vol. viii

निबन्ध

कालविवेक	एसीयाटीक सोसायिटी, कलिकाता
कालमाधव	हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी
,,	सं. चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार, वेंकटेश्वर-स्टीम प्रेस, बम्बई, सं० १९७३
कृत्यरत्नाकर	एसीयाटिक सोसायिटी, कलिकाता
चतुर्वर्गचिन्तामणि	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
तिथितत्त्व	सं० जीवानन्दविद्यासागर, कलिकाता
निर्णयसिन्धु	निर्णयसागर, बम्बई
वर्षक्रियाकौमुदी	एसीयाटिक सोसायिटी, कलिकाता
श्राद्धप्रदीप	सं० व्रजकिशोर स्वाईं, पुरी १९८२

पुराण

अग्निपुराण	नाग पब्लिसर्स, दिल्ली
कूर्मपुराण	नाग पब्लिसर्स, दिल्ली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गरुडपुराण	नाग पब्लिसर्स, दिल्ली
देवीपुराण	लालबहादूर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली
पद्मपुराण	सं० रविषेणाचार्य, १९७७
ब्रह्मपुराण	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
ब्रह्मवैवर्त्तपुराण	नाग पब्लिसर्स, दिल्ली १९८१
ब्रह्माण्डपुराण	मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
भगवद्गीता	गीता प्रेस, गोरखपुर
महाभारत	भण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधनागार, पुणे
मार्कण्डेयपुराण	नाग पब्लिसर्स, दिल्ली
विष्णुधर्मोत्तरपुराण	नाग पब्लिशर्स, दिल्ली
विष्णुपुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर
हरिवंश	भण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधनागार, पुणे

मीमांसा

तन्त्ररत्न	संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
तन्त्रसिद्धान्तमुक्तावली	चिन्नस्वामी शास्त्री, वि० एच० यु० वाराणसी
जैमिनिसूत्र (शाबरभाष्य-तन्त्रवार्त्तिकसहित)	आनन्दाश्रम, पुना
जैमिनीयन्यायमाला	विद्यारण्य विद्यापीठ ट्रष्ट, होसपेट
मीमांसान्यायप्रकाश	भण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधनागार, पुणे
मीमांसापरिभाषा	सं० मेधाचैतन्य, संस्कृत पुस्तक भण्डार, कलिकाता
श्लोकवार्त्तिक	'उम्वेक' टीका सहित, माड्रास
शास्त्रदीपिका	लालबहादूर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दर्शन

न्यायसूत्र (वात्स्यायन भाष्य सहित)	वाराणसी १९७६
पातञ्जलयोगसूत्र	सं० उदयवीर शास्त्री १९७८
ब्रह्मसूत्र	सं० श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, वाराणसी सं० २०४०
वैयासकिन्यायमाला	प्र० श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, वाराणसी सं० २०२९
वैशेषिक दर्शन (प्रशस्तपाद भाष्य सहित)	वाराणसी १९७७
सांख्यकारिका	सं० विमला, कर्णाटक १९७६
सांख्यतत्त्वकौमुदी	सं० गजानन शास्त्री मुसलगांवकर १९७९

ज्योतिष

बृहत्संहिता	
ब्रह्मसिद्धान्त	
राजमार्त्तण्ड	
सिद्धान्तशिरोमणि	सं० मुरलीधर चतुर्वेद १९८१
सूर्यसिद्धान्त	सं० कपिलेश्वर शास्त्री

व्याकरण

अष्टाध्यायी	चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी
सिद्धान्तकौमुदी	चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी

कोश

अमरकोश	नाग पब्लिसर्स, दिल्ली
धर्मशास्त्र शब्दकोश	कुलमणिमिश्र, ओडिशा सरकार, भा–१, १९८२, भा–२, १९८५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्य

काव्यप्रकाश — भण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधनागार, पुणे

चन्द्रालोक — निर्णयसागर, बम्बई

नैषधीयचरित — निर्णयसागर, बम्बई

रघुवंश — निर्णयसागर, बम्बई

English

Bose and Haldar, *Tantras : Their Philosophy and Occult Secretsh* Calcutta. 1981

Goyal, S. R, *Religious History of Ancient India,* Meerut. 1986

Hazra, R. C, *Studies in the Puranic Records on Hindu* Rites *Customs*, Delhi. 1975

Studies on Upapurāṇas, Calcutta. 1958

Indian Law Reports. Vol. xiv. Allahabad

Kane, P. V. *History of Dharmaśāstra*. Vol. I-V, B. O. R. I. Poona. 1975

Radhakrishnan, S, *Hindu View of Life*. Bombay. 1983

Rangaswami, Aiyangar K. V, *Kṛtyakalpataru (intro)-Śrāddha-kāṇḍa, Niyatakālakāṇḍa*, Baroda,

Sarkar, B. K, *Positive Background of Hindu Sociology,* Delhi. 1985.

Sarkar, K. L, *Mīmāṁsā Rules of Interpretation,* Calcutta (TLL)

Schneider, H. W, *A History of American Philosophy*, Delhi. 1969

Sastri, P. N, *Introduction to Pūrvamīmāṁsā*, Varanasi. 1980

Swain, B. K, *A Peep into Dharmaśāstra*, Delhi. 1983

Tilak, B. G, *The Arctic Home of the Vedas*, Poona

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाल्मीकि विद्यापीठ-पुस्तकालय
१५३५२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

CATURVARGACINTĀMAṆI

चतुर्वर्गचिन्तामणिः

OF

ŚRĪ HEMĀDRI

Edited by

PANDIT BHARATACANDRA ŚIROMAṆI

PANDIT YAJÑEŚVARA BHAṬṬĀCĀRYA SMṚTIRATNA

PANDIT KĀMĀKHYĀNĀTHA TARKAVĀGĪŚA

PANDIT PRAMATHA NĀTHA TARKA BHŪṢAṆA

7233 p. 23 cm. Sanskrit. Cloth binding with plastic jacket, 1985

Rs. 2500-00 for the set of four volumes in seven Parts.

Volume I —DĀNAKHAṆḌA Rs. 400–00

Volume II—VRATAKHAṆḌA (Parts 1–2) Rs. 1000–00

Volume III—PARIŚEṢAKHAṆḌA

—ŚRĀDDHAKALPA (Parts 1–2) Rs. 800–00

—KĀLANIRṆAYA (Part 3) Rs. 400–00

Volume IV—PRĀYAŚCITTAKHAṆḌA Rs. 400–00

प्राप्तिस्थान—चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी–२२१००१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu